आधुनिक हिन्दी कविता
(अ)

मैथिलीशरण गुप्त
जयशंकर प्रसाद
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)

प्रश्न पत्र-1
Paper-1

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक—124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

मैथिलीशरण गुप्त

खण्ड 'क' : व्याख्या 5

खण्ड 'ख' : आलोचना

1. साकेत के नवम सर्ग की कथा-योजना 57
2. साकेत में चित्रित उर्मिला-विरह 64
3. साकेत में उर्मिला का चरित्र-चित्रण 67
4. साकेत के नवम सर्ग की गीतात्मकता 69
5. गुप्त जी युग के प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि 71
6. राम भक्ति हिन्दी काव्यधारा और साकेत 72
7. साकेत का नामकरण 74
8. साकेत की प्रबंधात्मकता 76
9. साकेत काव्य का वैशिष्ट्य 81
10. साकेत में चित्रित गार्हस्थ्य जीवन 92
11. वात्सल्य 94
12. साकेत में चरित्र-चित्रण 99
13. साकेत में वैष्णव भक्ति 103
14. साकेत में भारतीय संस्कृति 107
15. हिन्दी काव्य में साकेत का स्थान 109
16. साकेत का नायकत्व 111
17. साकेत में प्रकृति चित्रण 113

जयशंकर प्रसाद

खण्ड (क) : व्याख्या

अध्याय 1 श्रद्धा 117

अध्याय 2 इड़ा 146

अध्याय 3 रहस्य 166

खण्ड (ख) : आलोचना

अध्याय 4 ऐतिहासिकता एवं कल्पना 186

अध्याय 5 भाव पक्ष 190

अध्याय 6 कला पक्ष 195

अध्याय 7 महाकाव्यत्व 198

अध्याय 8 आधुनिक संदर्भ 203

अध्याय 9 सौन्दर्य बोध 215

अध्याय 10 समरसता 226

अध्याय 11 अंगीरस 236

अध्याय 12 दार्शनिकता 241

अध्याय 13 रूपक 250

अध्याय 14 प्रकृति-चित्रण 254

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

खण्ड (क) : व्याख्या

अध्याय 1 राम की शक्ति पूजा 258

अध्याय 2 सरोज स्म ति : पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला 275

अध्याय 3 निराला : कुकुरमुत्ता 294

खण्ड (ख) : आलोचना

अध्याय 4 निरालाः युगबोध एवं मानवतावाद 304

अध्याय 5 निरालाः प्रगति चेतना 311

अध्याय 6 निरालाः क्रांतिकारी एवं विद्रोही कवि 315

अध्याय 7 निराला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक द ष्टि 324

अध्याय 8 काव्य-प्रयोग में विविध आयाम 333

अध्याय 9 मुक्त छंद-अवधारणा एवं प्रयोग 340

अध्याय 10 राम की शक्ति पूजा : समीक्षात्मक द ष्टि 345

अध्याय 11 सरोज स्म ति—विशेषताएँ 351

अध्याय 12 शोक गीत : सरोज स्म ति—काव्य सौंदर्य 355

अध्याय 13 कुकुरमुत्ता : व्यंग्यात्मकता 360

आधुनिक हिन्दी कविता

पूर्णांकः 100

समयः 3 घंटे

पाठ्य विषय

1.	**मैथिलीशरण गुप्त**	साकेत (नवम सर्ग)
2.	**जय शंकर प्रसाद**	कामायनी (श्रद्धा, झंडा और रहस्य सर्ग)
3.	**सूर्यकांत त्रिपाटी 'निराला'**	राम की भक्ति पूजा, सरोज सम ति और कुकुरमुत्ता

मैथिलीशरण गुप्त

खंड ‘क’ : व्याख्या

खण्ड ‘ख’ : आलोचना

1. साकेत के नवम सर्ग की कथा-योजना
2. साकेत में चित्रित उर्मिला का विरह
3. साकेत में उर्मिला का चरित्र-चित्रण
4. साकेत के नवम सर्ग की गीतात्मकता
5. गुप्त जी युग के प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि
6. राम भक्ति हिन्दी काव्य धारा और साकेत
7. साकेत का नामकरण
8. साकेत की प्रबंधात्मकता
9. साकेत काव्य का वैशिष्ट्य
10. साकेत में चित्रित गार्हस्थ्य जीवन
11. साकेत में चरित्र-चित्रण
12. साकेत में वैष्ठव भक्ति
13. साकेत में भारतीय संस्कृति
14. हिन्दी काव्य में साकेत का स्थान
15. साकेत में नायकत्व
16. साकेत में प्रकृति-चित्रण

खंड 'क' : व्याख्या

(1) **दो वंशों में प्रकट करने पावनी लोक-लीला**
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला,
त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेही,
राजा-योगी जय जनक, वे पुण्यदेही, विदेही।

शब्दार्थ :-पूतशीला-पवित्र। पूतशीला-पूत शब्द का अर्थ पवित्र और पुत्र है। जनम की पुत्रियाँ 'पूतशीला' हैं अर्थात् पुत्रों से भी अधिक हैं।

सन्दर्भ-प्रसंग :- सीता कहती थीं कि-"अरे रे,
आ पहुँचे पित -पद भी मेरे।"

इन पंक्तियों के साथ 'साकेत' के अष्टम सर्ग की कथा समाप्त होती है। उर्मिला का प्रियतम से मधुर मिलन क्षणिक ही होकर वहीं रुक गया। सीता अपने प्रियतम के साथ साकेत से चित्रकूट में आई एवं वहीं आकर सानन्द रहने लगीं, किन्तु उर्मिला को अब भीषण वियोग सहना पड़ा। नवम सर्ग की सभी कथा उर्मिला के अश्रुओं से गीली है। सीता और उर्मिला के ही कारण जनक धन्य समझे गए हैं।

व्याख्या :- सीता एवं उर्मिला ने निमि एवं रघु दो वंशों में अपनी पावनी-लोक-लीला प्रकट की। अतएव जनक के लिए वे पुत्रों से भी अधिक पुण्यशालाएँ हैं, अर्थात् जिन राजा की पुत्रियाँ पुत्रों से अधिक पुण्यशील हैं, जिनकी शरण में बड़े-बड़े त्यागी पुरुष भी आते हैं, जो ग हस्थ होते हुए भी अनासक्त हैं, जो राजा होते हुए भी योगी स्वरूप में रहते हैं, उन पुण्य देही-वैदेही राजा जनक की जय हो।

विशेष : 1. छन्द-गीतिका 26 मात्राएं हैं।

2. अलंकार, विरोधाभास की व्यंजना हैं।

3. विदेह का भौतिक-अध्यात्म समन्वित चिंतन। इस छन्द में राजा जनक की जय ध्वनि की गई है, साथ ही उर्मिला एवं सीता का भी महत्त्व स्थापित किया गया है।

4. रस छन्द में विदेह जनक की स्तुति मंगलाचरण के रूप में मान सकते हैं।

(2) **विफल जीवन व्यर्थ बहा, बहा,**
सरस दो पद भी न हुए हहा !
कठिन है कविते, तव भूमि ही,
पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा।

शब्दार्थ :- जीवन-जीवन प्रवाह। सरस-रस युक्त।

सन्दर्भ-प्रंसग :- उर्मिला का समस्त जीवन प्रिय-वियोग के कारण व्यर्थ ही रहा, किन्तु उसको ही वह सुखमय जानकर व्यतीत करती है। कवि यहाँ अपनी विनय और शील को अभिव्यक्त करता हुआ अपने को असफल कहता है।

व्याख्या :- हे कविते ! इस 'साकेत' में तेरा समस्त जीवन व्यर्थ एवं विफल ही रहा' उसमें दो पद भी सरस न हो सके। अतः यह सिद्ध है कि तेरी भूमि कठिन है, किन्तु सन्तोष इसी में है कि इस श्रम में भी मुझे सुख है।

दूसरा अर्थ :- उर्मिला को सम्बोधित करते हुए गुप्त जी कहते हैं, हे उर्मिले ! तेरा समस्त जीवन प्रिय-वियोग के कारण व्यर्थ एवं विफल रहा, उसमें सरस अंश द ष्टिगत न हुआ अर्थात् मधुर मिलन न हो सका। अतः तेरा जीवनमात्र ही कष्ट है, किन्तु तू इस विलापमय जीवन में भी सुख का अनुभव करती है।

विशेष :- 1. इसमें कविता एवं उर्मिला दोनों के सम्बन्ध में एक ही बात कही गई है।

2. अलंकार-पर्याय 'जीवन और सरस' में श्लेष, छन्द आर्य।

3. तुलसी, सूर आदि महाकवियों ने भी अपनी कृति को असफल कहा है।

कवित विवेक एक नहिं मोरे।

सत्य कहीं लिख कागद कोरे।। -तुलसी

(3) करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई-

'मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई?।

शब्दार्थ :- उत्तर-भवभूतिकृत उत्तर रामचरित नाटक, सीता निर्वासन की कथा। 'भवभूति-नाटककार, संसार की विभूति', शिवजी के शरीर की भस्म।

सन्दर्भ-प्रसंग :- गुप्त जी नवम सर्ग में विरहिणी उर्मिला के जीवन को कारुणिक बतलाते हैं। जिस प्रकार सीता का जीवन करुण रस की धारा बहाता रहा, उसी प्रकार उर्मिला भी करुणरस-पयोधि में पाठकों को निमग्न करने में समर्थ रही।

व्याख्या :- अरी करुणे ! तू इस उर्मिला चरित्र पर क्यों रोती है। इसके उत्तर में तू भी कुछ न कह कर अधिक रोने लगी। अर्थात् उत्तर रामचरित नाटक में करुणा अधिक रोई है। इस रोने का कारण पूछा गया तो करुणा कहती है-उस नाटक की महत्ता मेरी विभूति के कारण ही संसार में हुई, किन्तु उसे कवि भवभूति की विभूति कहते हैं। भवभूति संसार की विभूति नहीं, न शिव की विभूति है। वह तो मेरी विभूति है अर्थात् मेरा ही अभिन्न अंग है।

अर्थात् काव्य में सरसता जो मेरे (करुण-रस) के कारण उत्पन्न होती है, उसे सभी लोग संसार की विभूति कहते हैं।

विशेष :- 1. यहाँ करुणा के प्रस्तुत प्रसंग के साथ-साथ कवि 'उत्तर' तथा 'भवभूति' दो पदों के द्वारा यह भी बतला देता है कि उत्तर रामचरित नाटक' में भवभूति कवि द्वारा वर्णित करुण रस इस सर्ग से अधिक है।

2. करुणा का मानवीकरण।

3. अलंकार-श्लेष, वक्रोक्ति।

4. छन्द-आर्या।

(4) अवध को अपनाकर त्याग से,

वन तपोवन-सा प्रभु ने किया।

भरत ने उनके अनुराग से,

भवन में वन का व्रत लिया।

सन्दर्भ-प्रसंग :- राम एवं भरत के त्याग का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं-

व्याख्या :- श्री रामचन्द्रजी ने त्याग के कारण अयोध्या के प्रजा-वर्ग को अपना लिया एवं चित्रकूट में निवास करके उसे तपोवन सा पवित्र कर दिया। इसी के साथ उन्हीं के पुनीत प्रेम में निमग्न होकर भरत ने राज्य-भव में वन-व्रत को धारण किया।

विशेष :- 1. यहाँ राम से भी अधिक भरत के चरित्र को उच्च बतलाया गया है। मानस में भी तुलसी ने भरत के चरित्र को सराहा है।

2. इस छन्द में राम एवं भरत के चरित्रों एवं कर्मों का कवि ने वर्णन किया है।

राम के त्याग और अयोध्या-वासियों के प्रति प्रेम का ज्ञान राम के इस कथन से होता है :-

"तुमसे प्यारा मुझे कौन ? कातर न हो,

अपना भी त्याग करूँ तुम पर अहो।"

3. कोमल कांत पदावली का प्रयोग है।

4. माधुर्य और प्रसाद गुण सम्पन्न शैली का प्रयोग है।

(5) **स्वामी सहित सीता ने**
नन्दन माना सघन-गहन कानन भी,
वन ऊर्मिला वधू ने
किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी
अपने अतुलित कुल में
प्रकट हुआ था कलंक जो काला,
वह उस कुल बाला ने
अश्रु सलिल से समस्त धो डाला।

सन्दर्भ-प्रसंग :- सीता-पति राम एवं भरत का कर्म निश्चित करने के उपरान्त कवि सीता एवं उर्मिला के सम्बन्ध में कहता है-

व्याख्या :- सीता ने अपने स्वामी श्रीराम के साथ सघन एवं गहन वन भी नंदन वन सद श सुखमय माना, किन्तु इसके विपरीत अपने प्रियतम के कारण अपने राजोद्यान को वन सद श क्लेशकर उर्मिला ने समझ लिया। अर्थात् प्रियतम के कर्म में विघ्न न हो, इसी कारण उन्हें राम के साथ भेजकर अपना सुखमय जीवन दुखी बना लिया।

रघुवंश में राम-वन गमन के कारण जो काला कलंक का धब्बा पड़ गया था, उसी कालिमा को उस कुल-बाला उर्मिला ने मानों अपने अश्रु-जल से प्रक्षालित कर दिया।

विशेष :- 1. उक्त छन्द में उर्मिला के चरित्र को सीता की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल बतलाया गया है।

2. कुल-कालिमा को हटाने के कारण उर्मिला का चरित्र और भी उज्ज्वल द ष्टिगत होने लगा।

3. अलंकार-'स्वामि सहित सीता' और 'सलिल से समस्त' में अनुप्रास अलंकार।

4. छन्द-आर्या।

(6) **भूल अविध-सुध प्रिय से**
कहती जगती हुई कभी-'आओ'।
किंतु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर-'जाओ'।

शब्दार्थ :- अवधि-नियत समय। सुध-पाद।

सन्दर्भ-प्रसंग :- प्रियतम के वियोग से व्यथित बाला उर्मिला उन्मादिनी सी होकर विलाप करने लगी-

व्याख्या :- वियोगिनी उर्मिला चौदह वर्ष की अवधि को भूलकर कभी कहती थी, हे प्रियतम ! तुम आओ मैं तुमको बुलाती हूँ। किन्तु कभी-कभी जब वह सो जाया करती थी, तो चौंक जाती थी और यकायक कह उठती-"जाओ"। इस प्रकार वह अनजाने ही कहने लगती थी।

विशेष :- 1. उर्मिला की विरह-जन्य वियोग की उन्माद दशा का चित्रण।

2. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

3. सरल तथा सुबोध भाषा।

(7) **मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,**
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप !
आँखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग !

आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान !

शब्दार्थ :- स्थापित कर। प्रतिमा-मूर्ति।

सन्दर्भ-प्रसंग :- विरहानल विदग्धा बाला उर्मिला अपने प्रिय आराध्य लक्ष्मण के ध्यान में लीन हो गई थी। वह उसी के हेतु सब कुछ त्याग उसी में निमग्न थी। गुप्त जी का हृदयस्पर्शी तथ्य को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

व्याख्या :- वह सती उर्मिला अपने मन रूपी मन्दिर में अपने पतिदेव की प्रतिमा स्थापित करके स्वयं उनके विरह में प्रज्ज्वलित होती हुई आरती स्वरूप बनी हुई थी। लक्ष्मण के विरह में व्यथित है। उसके नयनों में केवल प्रिय मूर्ति थी, अन्य कुछ दिखलाई ही क्यों देता ? उसने सभी सुख-भोग भुला दिये थे। किसी भी सुख देने वाली वस्तु में उसे आनन्द नहीं आता। इस प्रकार उसका विषम वियोग योग से भी अधिक कष्टकर था। उस बाला को आठों पहर, चौंसठ घड़ी, अर्थात् रात-दिन अपने स्वामी लक्ष्मण का ही ध्यान रहता है। इस तल्लीनता के कारण उसका आत्म-ज्ञान भी स्वयं समाप्त हो गया।

विशेष :- 1. प्रियतम के वियोग में उर्मिला की अवस्था जलती हुई नीराजना के सद श हो गई है। इनमें विरह की करुण दशा के दर्शन होते हैं। साथ ही लक्ष्मण के प्रति पूज्य भाव द ष्टिगत होते हुए भी विप्रलम्भ श ंगार रस है।

2. योग से अधिक कष्टकर वियोग को बतलाने की कवियों में प्राचीन परम्परा रही है।

3. उर्मिला की उन्माद का चित्रांकन है।

4. विरोधाभास, श्लेष और रूपक अलंकार है।

(8) **उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,**
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?

शब्दार्थ :- रुदन्ती-एक प्रकार की वनस्पति, जिसके रस को यदि ताम्रपत्र पर लेप करके अग्नि में डाला जाये तो सोना बन जाता है। विक्षेप-भावातिरेक। कर्ण-कान। स्वर्ण-सोना।

सन्दर्भ-प्रसंग :-कवि पर उन महानुभावों का प्रभाव पड़ा था, जो उर्मिला को कवियों द्वारा तिरस्कृता नारी समझते थे, जिसका वर्णन कवि-कर्त्तव्य समझते थे, वे उसके चरित्र को इतना महान् मानते कि कवि स्वयं उसके वर्णन करने से महाकवि हो सकता है। इसी की ओर संकेत करते हुए गुप्त जी कहते हैं-

व्याख्या :- उस प्रिय-विरह में रोती हुई विरहिणी बाला उर्मिला अश्रुजल रूपी रस एवं प्रिय-विरह की अग्नि से ताप प्राप्त करके कवि जनों के प्रत्येक वर्ण कर्ण के विभूषण (कर्ण-प्रिय) बन जाते हैं। तब वे कर्ण क्यों न कवि जनों के सुन्दर वर्णों में लिखित ताम्रपत्र के सद श उपाधि-युक्त हो जावें।

भावार्थ :- "रसायन वह कल्पित योग है जिसक द्वारा ताँबे से सोना बनना माना जाता है। रसायन-शास्त्रज्ञ ताम्र को सुवर्ण बना देते हैं। ताम्रपत्र पर लिखी हुई उर्मिला की कथा रसायन का काम करेगी।

विशेष :- 1. यहाँ पर कवि ने ताम्र से सुवर्ण बनाने की रीति को भी श्लेष द्वारा बतलाया है।

2. रुदन्ती नामक जड़ी-बूटी को जब गर्म किया जाता है, तब उससे एक प्रकार का रस पिघल कर निकलने लगता है। उस रस में जब ताम्रपत्र डुबाया जाता है, तब वह सुवर्ण सद श बन जाता है, जिसके कारण उसका रंग सुनहरी होकर कुण्डल के रूप में कर्ण का विभूषण बनता है।

3. यहाँ कवि के आयुर्वेदीय ज्ञान की प्रतीति होती है।

4. भाषा सरल ओर सहज है।

(9) **पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,**
छींटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे ?

उसे बहुत थी विरह के एक दण्ड की चोट
धन्य सखी देती रही निज यत्नों की ओट।

शब्दार्थ :- मानस-हृदय।

सन्दर्भ-प्रसंग :- उर्मिला के नेत्रों में सदैव प्रियतम की मंजु मूर्त्ति विद्यमान थी, किन्तु वही मूर्ति अब उसके हृदय में विराजमान हो गई। उसी का चमत्कारिक वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं-

व्याख्या :- उर्मिला के नाथ प्रथम उसके नयनों में विराजमान थे, किन्तु अब वे ही हृदय रूपी सरोवर में कूद कर निमग्न हो गये। उससे यह फल निकला कि कूदने के कारण उस हृदय-सर में से छींटे उड़े। वे ही बड़े-बड़े अश्रु के रूप में नेत्र मार्ग से निकलने लगे। विरह बेला की एक घड़ी उसे युग सद श (अधिक समय वाली) प्रतीत होती थी। उस उर्मिला को विरह रूपी एक क्षण-दण्ड की चोट भी अधिक दुःखदायी लगती थी। वे सखियाँ धन्य थीं, जो अपने यत्नों से उसे बचाया करती थीं। (विरह बेला का ज्ञान नहीं होने देती थी।)

विशेष :- 1. उस प्रिय-विरह में रोती हुई बाला के रोने का कारण कितना तार्किक एवं चमत्कारिक है।

2. कवि की अनूठी कल्पना की प्रस्तुति है।

(10) **मिलाप था दूर अभी धनी का,**
विलाप ही था बस का बनी का।
अपूर्व आलाप वही हमारा,
यथा विपंची-दिर दार दारा।

शब्दार्थ :- धनी-पति। बनी-नवविवाहिता। विपंची-वीणा। आलाप-तान।

सन्दर्भ-प्रसंग :- चौदह वर्षों की विरह-अवधि को पार करने वाली नायिका उर्मिला का वर्णन करते हुए गुप्तजी कहते हैं-

व्याख्या :- उस उर्मिला के लिए स्वामी लक्ष्मण का मिलाप अभी दूर था। उसके लिए केवल विलाप करना ही शेष था। अतः आलियाँ कहती हैं कि जिस प्रकार एक सितार पर 'दिर दार दारा' की ध्वनि समय व्यतीत करने में हो सकती है, उसी प्रकार हम भी अपने अपूर्व आलाप में समय व्यतीत करती रहेंगी।

विशेष :- 1. नायक की अंगुलियों द्वारा वीणा के तार स्पर्श किये जाने पर जिस प्रकार 'दिर-दारा दारा' की ध्वनि मिलती है। वैसे ही शरीर के स्पर्श-मात्र से उर्मिला की विलाप ध्वनि निकलती है। 'धनी' शब्द पति के अर्थ में और 'बनी' शब्द नव-वधू के अर्थ में आया है।

2. 'मिलाप', 'विलाप' और आलाप के आन्तरिक तक के कारण नाद-सौन्दर्य प्रकट हुआ है।
3. 'विलाप भी अपूर्व आलाप' बन गया। विरोधात्मक प्रयोग से काव्य-सौंदर्य में व द्धि हुई है।
4. सखियों की सहज सद्भावना की अभिव्यक्ति है।
5. अलंकार-द ष्टान्त।

(11) **सींचें ही बस मालिनें, कलश लें, कोई न ले कर्त्तरी,**
शाखी फूल फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लताएँ हरी।
क्रीड़ा-कानन-शैल यंत्र-जल से संसिक्त होता रहे,
मेरे जीवन का, चलो सखि, वहीं सोता भिगोता बहे !

शब्दार्थ :- कर्त्तरी-कैंची। शाखी-व क्ष। यथेच्छ-इच्छा से। संसिक्त-भीगा हुआ।

सन्दर्भ-प्रसंग :- प्रिय-विरह से विक्षुब्ध उर्मिला रानी अपने राजोद्यान में बैठकर मालिनों को आदेश देती हुई अपनी सखियों से कहती है-

व्याख्या :- अरी आलियों ! आज उपवन की मालिनों को आदेश दे दीजिए कि वे व क्ष एवं पादपों को केवल कलश

से सीचती रहें, कोई भी हाथ में कर्त्तरी न लें। मेरी इच्छा है व क्ष यथेष्ट रूप से फूलें फलें सवं आगे बढ़ कर उनकी हरी बल्लरियाँ फैलती रहे। हमारा क्रीड़ा-काना-शैल यंत्र-जल (फव्वारे) से सदैव सिंचित होता रहे। हे सखी ! मेरे जीवन (जल) का स्त्रोत इसी प्रकार से जलमय बना रहे।

विशेष :- 1. शोकाकुल होती हुई उर्मिला चराचर को प्रसन्न देखना चाहती है।

2. उसकी उदारता का यहाँ वर्णन किया गया है।

3. विरह-वेदना के कारण उर्मिला की हृदय-व त्ति बहुत कोमल हो गई है। वह व क्षों, लताओं के फूलने-फलने व अपने जीवन के झरना से इसे भिगोना चाहती है।

4. 'जीवन का सोता' में रूपक।

5. छन्द-शार्दूलविक्रीड़ित।

(12) **क्या क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ !**
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पाँचवीं तू प्रवीणा !

शब्दार्थ :- तूली-तूलिका। प्रवीण-चतुर।

सन्दर्भ-प्रसंग :- उर्मिला अपनी सखी से कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! तुझे मैं क्या बताऊँ ? इन विषम परिस्थितियों में मेरा कोई भी साथी नहीं है। मेरी संगिनी केवल तूलिका, पुस्तिका तो चित्र निर्माण के हेतु एवं वीणा बजाने के लिए है। एक मैं और एक तू, ये ही मेरी सहचरी है।

विशेष :- 1. इस छन्द में कवि उर्मिला के एकाकीपन एवं कला एवं संगीत-ज्ञान का परिचय देता है।

2. उर्मिला की कला-प्रवीणता का वर्णन है।

3. भाषा आकर्षक परिमार्जित है।

(13) **हुआ एक दुःस्वप्न-सा सखि, कैसा उत्पात,**
जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन रात।
खान-पान तो ठीक है पर तदनन्तर हाय !
आवश्यक विश्राम जो उसका कौन उपाय ?

सन्दर्भ-प्रसंग :- विरह व्यथित नायिका रात-दिन चैन से नहीं रह पाती। उसे रात्रि में ही दुःख रूप दीखते हैं, जिनके कारण जगने पर रात-दिन एक सा व्यतीत होता है। उसी को कवि यहाँ देखता है-

व्याख्या :- उर्मिला अपनी सखी से कहती है-हे सखि ! आज बड़ा उत्पात हो गया। मुझे रात्रि को एक दुःस्वरूप दिखाई पड़ा, जिसके कारण जागने पर रात-दिन एक सा ही व्यतीत होने लगा। अरी सखी ! खाने-पीने में जो समय दूसरों के सम्पर्क में व्यतीत हो जाता है, वही सुखकर रहता है, उसके अनन्तर पुनः 'हाय' ही रह जाती है। रात एवं दिन दोनों समय आवश्यक विश्राम जब मैं करती हूँ, तब मुझे प्रिय का ध्यान आ जाता है और मेरा वह समय युग के समान हो जाता है। मेरी द ष्टि में इसका कोई उपाय नहीं है।

विशेष :- 1. वियोग का चित्रण।

2. भाषा सरल-सुबोध।

(14) **अरी, व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई**
हटा थाल, तू क्यों इसे आप लाई?

वही पाक है, जो बिना भूख भावे,
बता किन्तु तू ही, उसे कौन खावे?
बनाती रसोई, सभी को खिलाती,
इसी काम में आज मैं त प्ति पाती।
रहा किन्तु मेरे लिए एक रोना,
खिलाऊँ किसे मैं अलौना-सलौना ?

शब्दार्थ :- व्यंजन-भोजन। बड़ाई-प्रशंसा। त प्ति-संतुष्टि।

सन्दर्भ-प्रसंग :- उर्मिला सखी से वार्तालाप कर रही थी, उसी समय भोजन का समय हुआ। दासी व्यंजनों का थाल लेकर उसके पास आई, एवं व्यंजनों की प्रशंसा करने लगी। उसको उत्तर देती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! मैं प्रिय-विरह के कारण दुःखित हूँ, मुझे खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अतः मेरे समक्ष व्यंजनों की बड़ाई करना उचित नहीं। तू बिना पूछे इस भोजन के थाल को यहाँ क्यों ले आई। पकवान वहीं कहा जाता है, जो बिना भूख के भाता है, किन्तु जब भूख नहीं है, तो उसको कौन खायेगा।

मैं पूर्व काल में सभी को स्वयं अपने करों से रसोई बनाकर खिलाती थी। उस समय मैं इसी भोजन बनाने के कार्य में सन्तोष लाभ करती थी। अब तो प्रिय-विरह के कारण केवल रोना मात्र रह गया है। मेरे जब स्वामी ही नहीं हैं, तो मैं किसके लिए सुन्दर-सुन्दर व्यंजन बना कर खिलाऊँ।

विशेष :- 1. पूर्व स्म ति के आधार पर उर्मिला अपने भोजन पकाने की क्रिया का उल्लेख करती है। प्रिय-विरह में उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। खान-पान भूलकर उसने रोना ही उचित समझा।

2. भाषा सरल और सुबोध है।

3. अलंकार-स्मरण।

(15) **वन की भेंट मिली है,**
एक नई वह जड़ी मुझे जीजी से,
खाने पर सखि, जिसके
गुड़-गोबर-सा लगे स्वयं ही जी से !
रस हैं बहुत, परन्तु सखी,
विष है विषम प्रयोग।
बिना प्रयोक्ता के हुए, यहाँ भोग भी रोग !

शब्दार्थ :- जीजी-बहन। गोबर-सा-स्वादहीन। भोग-सुख।

सन्दर्भ-प्रसंग :- चित्रकूट से लौटने पर सीता ने एक जड़ी-बूटी उर्मिला को प्रदान की, जिसके खाने से भूख प्यास सभी शान्त हो जाती थी। इसका उल्लेख करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- वनोपहार स्वरूप में जीजी सीता से एक नवीन जड़ी-बूटी मैं लाई थी, जिसके कारण मुझे भूख-प्यास भी नहीं लगती। अतः हे आली ! जिसके कारण भोजन गुड़ गोबर प्रतीत होता है।

अरी सखी ! इस भोजन में बहुत रस है, किन्तु मुझे प्रिय, वियोग में यह विष-प्रयोग सद श दुःखकर प्रतीत होता है। क्योंकि बिना प्रयोक्ता के भोग भी रोग सद श होता है।

विशेष :- 1. वियोग में सभी वस्तुएं नीरस लग रही हैं।

2. भाषा सहज स्वाभाविक है।

3. लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है।

(16) **लाई है क्षीर क्यों तू ? हठ मत कर यों,**
मैं पियूँगी न आली,
मैं हूँ क्या हाय ! कोई शिशु सफल हठी,
रंक भी राज्यशाली !
माना तूने मुझे है तरुण, विरहिणी,
वीर के साथ ब्याहा,
आँखों का तीर ही क्या कम फिर मुझको?
चाहिए और क्या हा !

शब्दार्थ :- क्षीर-दूध। आली-सखी। रंक-निर्धन। नीर-पानी।

संदर्भ-प्रसंग :- प्रिय-विरह विक्षुब्धा बाला वियोगिनी उर्मिला व्यथित होने के कारण भोजन नहीं करना चाहती है, एवं धात्री को वापिस कर देती है। तदनन्तर दासी दूध लाती है, केवल पय-पानार्थ आग्रह करती है। उर्मिला उसका भी निषेध कर देती है वह कहती है-

व्याख्या :- अरी आली ! तू मेरे लिए दूध क्यों लाई है ? मुझसे इसके लिये हठ मत कर। मैं पय-पान नहीं करूँगी। तू क्यों हठ करती है ? तू सोचती होगी, अरी मैं क्या हूँ; केवल सफल हठी शिशु। नहीं मैं स्त्री, राज्यशाली रंक भी हूँ, अतः हठ उचित है; तूने मुझे जब तरुण विरहिणी मान लिया है, एवं एक वीर वधू समझ लिया है, उभय प्रकारेण मुझको अब क्या चाहिये ? केवल नयन नीर ही क्या मुझको कम हैं। अर्थात् रुदन पर्याप्त है।

विशेष :- 1. उर्मिला खान-पान सब त्याग कर प्रिय-विरह में रह रही है। उसे कुछ और अच्छा ही नहीं लगता है।

2. भाषा सरल और सुबोध है।

"कोई शिशु सफल हठी रंक ही राज्यशाली।"

(17) **चाहे फटा-फटा हो, मेरा अम्बर अशून्य है आली,**
आकर किसी अनिल ने भला यहाँ धूलि तो डाली !
धूलि-धूसर हैं तो क्या, यों तो म ण्यमात्र गात्र भी,
वस्त्र ये वल्कलों से तो हैं सुरम्य, सुपात्र भी !
फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार से;
किन्तु पहनते हैं क्या उनको हम सब इसी विचार से;
पिऊँ ला खाऊँ ला, सखि, पहन लूँ ला, सब करूँ;
जिऊँ मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूँ।
कहे जो, मानूँ सो, किस विध बता, धीरज धरूँ;
अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ।

शब्दार्थ :- अम्बर-वस्त्र। अशून्य-भरा। अली-सुखी। अनिल-वायु। म ण्यपात्र-मिट्टी का पात्र। सुरम्य-सुन्दर। अर्णव-सागर। पदे-चरण।

संदर्भ-प्रसंग :- अपने हृदयाकाश की मलिनावस्था का वर्णन करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरी आली ? चाहे मेरा हृदयाकाश प्रिय-विरह के कारण फटा-फटा सा प्रतीत हो रहा है, किन्तु वह शून्य नहीं है, अर्थात् उसमें प्रिय-मूर्ति विराजमान है। वह प्रिय-मूर्ति धूमिल हो गई, क्योंकि किसी विरह-व्यथा रूपी अनिल ने उसको व्यथित करके धूमिल कर दिया है, व्यर्थ कर दिया है।

चाहे मेरा हृदय धूल धूसरित ही सही, इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं। देखा जाये तो यह शरीर ही मूलन्मात्र है। यदि

अम्बर को वस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाये, तो यद्यपि मेरे वस्त्र धूलमय हैं, तथापि वल्कल से तो अच्छे ही हैं, एवं धारण करने वाली भी मैं सुन्दर हूँ।

यह शरीर आत्मा का वस्त्र है। म त होने पर यह बदल कर आत्मा दूसरे वस्त्र रूपी शरीर को धारण करती है। अतः सांसारिक क्षेत्र में वस्त्र के बदलने से कोई मोह नहीं होता, उसी प्रकार शरीर के बदलने में भी मोह नहीं करना चाहिए।

व्यवहार से सभी वस्त्र मैले होते हैं, फटते हैं, किन्तु इस प्रकार से निर्मोह होकर यह फटेंगे, इस भावना से कोई भी इनको नहीं पहनता। इसी प्रकार शरीर समाप्त हो जाएगा। इस भावना से कोई भी मनुष्य जीवन व्यतीत नहीं करता।

अरी सखी ! ला मैं पीऊँ, खाऊँ, पहनूँ एवं सभी कर्म करूँ। मुझे तो जीवित रहकर इस विरह-अवधि रूपी सागर को तरना ही पड़ेगा। अरी तू जो कहे उसे ही मानूँगी; तू ही बता किस प्रकार से मैं धीरज धरूँ।

अरी मुझे अपने प्रियतम के पद पकड़ना अभीष्ट है। मैं उनके पदों में ही मरूँ, यही मेरी कामना है।

विशेष :- 1. विरह का हृदयस्पर्शी स्वरूप-चित्रण है।

2. मिलन का आन्दोलित भाव है।

3. भाषा सरल सुबोध है।

4. अनुप्रास अलंकार का मोहक प्रयोग है।

(18) **रोती हैं और दूनी निरख कर मुझे**
दीन-सी तीन साँसें,
होते हैं देवरश्री नत, हत बहनें
छोड़ती हैं उसाँसें।
आली, तू ही बता दे, इस विजन बिना
मैं कहाँ आज जाऊँ?
दीना, हीना, अधीना ठहर कर जहाँ
शान्ति दूँ और पाऊँ?

शब्दार्थ :- निरख-देखना। दीन-असहाय। देवर श्री-शत्रुघ्न। विजन-निर्जन। बहनें-मांडवी और श्रुतिकीर्ति।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला खीझकर खाना-पीना सभी कर्म करने को तत्पर हो जाती है। उसका अब प्रिय पद-पद्मों को पकड़ने के लिए जीवित रहना अभीष्ट है, एवं इसी के लिए भोजन अनिवार्य है, किन्तु वह अपनी व्यथित दशा पर अन्य दु:खी व्यक्तियों की ओर संकेत करती हुई कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! मुझे इस प्रकार व्यथित देखकर दीन-सी तीनों सांसें रो रही हैं। मेरे देवर श्री शत्रुघ्न मुझे देखकर नत हो जाते हैं। माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति बहिनें भी उसांसे छोड़ने लगती हैं।

अरी आली ! मैं तुझी से पूछती हूँ कि इस विजन बिना आज कहाँ चली जाऊँ, जिससे मैं दीना, हीना, अधीना सी होकर दूसरों को शान्ति प्रदान करूँ एवं स्वयं प्राप्त करूँ।

विशेष :- 1. उर्मिला का भोलापन प्रभावी रूप से प्रकट हो रहा है।

2. तत्सम प्रधान सरल भाषा का प्रयोग है।

3. अलंकार-'दीन सी तीन साँसें' में उपमा।

(19) **आई थी सखि, मैं यहाँ लेकर हर्षोल्लास,**
जाऊँगी कैसे भला देकर यह निःश्वास ?
कहाँ जायेंगे प्राण ये लेकर इतना ताप ?
प्रिय के फिरने पर इन्हें फिरना होगा आप।

शब्दार्थ :- हर्षोल्लास-प्रसन्नता। ताप-संताप।

संदर्भ-प्रसंग :- विरह व्यथा से व्याकुल दशा में भी वह मरना नहीं चाहती। वह प्रिय-दर्शन के हेतु जीवित रहना चाहती है। वह कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! मैं जन्म काल में हर्ष एवं उल्लास के साथ संसार में आई थी, किन्तु क्या इस प्रकार निःश्वास देकर ही संसार से दुखी दशा में ही मर जाऊँ ? नहीं।

अरी ! इतना पाप लेकर मेरे प्राण कहाँ जायेंगे, उन्हें कहीं भी जगह नहीं है। यदि वे चले भी गये तो प्रियतम के वापिस लौटने पर वे स्वयं पुनः आ जाएंगे।

विशेष :-1. वियोग का हृदयस्पर्शी वर्णन है।

2. भाषा सरल और सुबोध है।

(20) **साल रही सखि, माँ की**
झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोलीं जब वे मुझसे-
'मिला न वन ही न भवन ही तुझको !

शब्दार्थ :- साल रही-पीड़ित कर रही। भवन-घर।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला चित्रकूट की बातों का स्मरण करके सखी से कहती है-

व्याख्या :- अरी सखि ! चित्रकूट वाली माँ की झाँकी मुझको अब भी दुःख दे रही है। जिस समय उन्होंने मुझसे कहा-

"अरी तुझको प्रिय के साथ न वन ही मिला न भवन ही।"

विशेष :- 1. माता कैकेयी की बात स्वाभाविक रूप से हृदय में चुभने वाली थी। अन्य तीन बहिनों को प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त हुआ, किन्तु उर्मिला ही ऐसी थी, जिसको प्रिय-वियोग सहन करना पड़ा।

2. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।

(21) **जात तथा जामाता समान ही मान तात थे आये,**
पर निज राज्य न मँझली माता को वे प्रदान कर पाये।
मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?
बहे आँसू होके सखि, सब उपालम्भ गल के।
उन्हें हो आई जो निरख मुझको नीरव दया,
उसी की पीड़ा का अनुभव मुझे हा ! रह गया !

शब्दार्थ :- जात-बेटा, जामाता-दामाद। तात-पिता। उपालम्भ-उलाहना। नीरव-शांत, मौन।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला चित्रकूट में आए हुए राजा जनक के मनोभावों का वर्णन करती हुई कहती है-

व्याख्या :- मेरे पिता राजा जनक उनको पुत्र एवं जामाता दोनों ही समझ कर वहाँ आए थे, किन्तु मंझली माता कैकेयी को अपना राज्य न दे सके। मैं चित्रकूट में स्वामी से मिली थी, किन्तु उसने कोई भी बात सावधानी से न कह सकी। मेरे हृदय में जो उपालम्भ भरा हुआ था, एवं जिनको मैं उनसे कहना चाहती थी, वह सब अश्रु बनकर ही रह गया। मैंने जब उनको बनवासी रूप में विलोका तो मेरा हृदय दयाद्र हो उठा। अतः केवल उसी की पीड़ा का मुझे अनुभव हुआ, शेष भूल गई।

विशेष :- 1. कैकेयी की राज्यलिप्सा पर बड़ा ही कठोर व्यंग्य है।

2. चिन्ता एवं विषाद व्यभिचारी भावों का वर्णन किया गया है।

3. विरह की चिन्ता नामक दशा है।

4. अलंकार-स्मरण।

(22) **न कुछ कह सकी अपनी,**
न उन्हीं की पूछ मैं सकी भय से,
अपने को भूले वे,
मेरी ही कह उठे सखेद हृदय से।

संदर्भ-प्रसंग :- चित्रकूट-मिलन पूर्णरूपेण न होने से उस विषय में पश्चाताप करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! मैं उस समय भय के कारण न तो अपने मनोभावों का व्यक्त ही कर सकी, एवं न उन से कुछ पूछ सकी, जिससे उनकी बात ज्ञात होती, वे तो अपने आप को भूले हुए थे, वे मेरी ही बात सशोक हृदय से कहने लगे।

विशेष :- 1. मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

2. मौन भाषा का प्रभावी रूप।

3. अलंकार-स्मरण।

(23) **मिथिला मेरा मूल है और अयोध्या फूल,**
चित्रकूट को क्या कहूँ, रह जाती है भूल।
सिद्ध शिलाओं के आधार,
औ गौरव-गिरि, उच्च उदार?
तुझ पर ऊँचे-ऊँचे झाड़,
तने पत्रमय छत्र पहाड़ !
क्या अपूर्व है तेरी आड़,
करत हैं बहु जीव विहार,
ओ गौरव गिरि, उच्च उदार !

संदर्भ-प्रसंग :- चित्रकूट मिलन की बात कह कर उर्मिला को उस गिरी तटवर्ती वन प्रदेश का स्मरण हो आना ही स्वाभाविक है। वह उसी भावना से प्रथम चित्रकूट को क्या कहें, उसे सोचती है। पुनः उस गिरि की प्रशंसा करने लगती है। चित्रकूट के प्रति आशंका करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! मैं अपने जीवन रूपी विरवा की जड़ मिथला प्रदेश मानती हूँ, जहाँ इसकी उत्पत्ति हुई है। साथ ही इस विरवा का विकास (जीवन का यौवन-काल) साकेत में हुआ है। अतः वह उस विरवा का फूल है। किन्तु मैं बार-बार यह भूल जाती हूँ कि चित्रकूट को क्या कहूँ। उससे मेरे जीवन का क्या सम्बन्ध है ? अरे चित्रकूट ! तू सिद्ध शिलाओं का आधार है। अर्थात् तेरे वक्षस्थल पर ऐसी शिलाएँ विद्यमान हैं, जिस पर रहने वाले व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। अतएव वे शिलाएँ कहलाती हैं एवं तू पर्वतों में गौरव प्राप्त किये हुए है। तू अति उच्च एवं उदार है, कारण कि सभी को आश्रयय-दान देता है। तेरे वक्षस्थल पर उच्च व क्ष सुशोभित हैं जिनके तने एवं पत्र पहाड़ के छत्र सम प्रतीत होते हैं। तू बीच-बीच में रोक या व्यवधान उपस्थित करता है, जो अति अपूर्व है, उसी आड़ के कारण अनेक जीव कानन में विहार करते हैं। अतः ओ चित्रकूट! तू गौरवमय उच्च एवं उदार है।

विशेष :- 1. विरहिणी प्रिय स्थान चित्रकूट से सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है।

2. स्त्री सुलभ भावाभिव्यक्ति है।

3. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

4. भाषा सरल और सुबोध है।

(24) **घिर कर तेरे चारों ओर,**
करते हैं घन क्या ही घोर !
नाच नाच गाते हैं मोर,

उठती हैं गहरी गुंजार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च उदार !
नहलाती है नभ की व ष्टि,
अंग पोंछती आतप-स ष्टि,
करता है शशि शीतल द ष्टि,
देता है ऋतुपति श ंगार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च-उदार।

संदर्भ-प्रसंग :- चित्रकूट मिलन की बात कह कर उर्मिला को उस गिरी तटवर्ती वन प्रदेश का स्मरण हो आना ही स्वाभाविक है। वह उसी भावना से प्रथम चित्रकूट को क्या कहें, उसे सोचती है। पुनः उस गिरि की प्रशंसा करने लगती है। चित्रकूट के प्रति आशंका करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरे चित्रकूट ! तेरे चारों ओर घने घने घिरकर अतीव शोभा उत्पन्न करते हैं; जिनको देखकर मोर आनन्द से नाचने और गाने लगते हैं।

उन मयूरादिक पक्षियों की गहरी गुंजार उस वन प्रदेश में गुंजित हो जाती है। अतएव तू गिरों में गौरवता प्राप्त करने वाला उच्च उदार पर्वत है।

अरे चित्रकूट ! समस्त प्रकृति तेरी अर्चना में लगी रहती। आकाश से होने वाली वर्षा तुझको स्नान कराती है। उससे समस्त अंग जलमय होकर भीग जाता है। अतः गर्मी का ताप तेरे अंगों को पोंछता है। चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका से तुझे शीतल द ष्टि प्रदान करता है। स्वयं बसंत ऋतु में विभिन्न कुसुमों के विकास से ऋतुपति तेरा श ंगार करता है।

(25) **तू निर्झर का डाल दुकूल,**
लेकर कन्द-मूल-फल-फूल,
स्वगतार्थ सबके अनुकूल,
खड़ा खोल दरियों के द्वार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च-उदार !

संदर्भ-प्रसंग :- चित्रकूट मिलन की बात कह कर उर्मिला को उस गिरी तटवर्ती वन प्रदेश का स्मरण हो आना ही स्वाभाविक है। वह उसी भावना से प्रथम चित्रकूट को क्या कहें, उसे सोचती है। पुनः उस गिरि की प्रशंसा करने लगती है। चित्रकूट के प्रति आशंका करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरे गौरवमय, गिरि एवं उच्च पर्वत ! चित्रकूट। तेरे ऊपर निर्झर निरन्तर झरते रहते हैं, जिनसे प्रतीत होता है वे निर्झर-जल का दुकूल धारण किये हुए हैं। तेरे व क्षों में कन्दमूल, फल-फूल उत्पन्न होते हैं, मानों तू उन्हें अपने आगन्तुक अतिथियों के स्वागतार्थ लिए हुए खड़ा हुआ है। तूने उनके विश्रामार्थ अपनी गुजा के द्वार-कपाट खोल दिये हैं।

(26) **सुद ढ़ धातुमय उपलशरीर,**
अन्तःस्थल में निर्मल नीर,
अटल-अचल तू धीर-गंभीर,
समशीतोष्ण शान्तिसुखसार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च-उदार !
विविध राग-रंजित, अभिराम,
तू विराग-साधन, वन धाम,
कामद होकर आप अकाम,

नमस्कार तुझको शतवार,

औ गौरव-गिरि, उच्च उदार !

संदर्भ-प्रसंग :- चित्रकूट मिलन की बात कह कर उर्मिला को उस गिरी तटवर्ती वन प्रदेश का स्मरण हो आना ही स्वाभाविक है। वह उसी भावना से प्रथम चित्रकूट को क्या कहें, उसे सोचती है। पुनः उस गिरि की प्रशंसा करने लगती है। चित्रकूट के प्रति आशंका करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरे गौरव गिरी उच्च पर्वत चित्रकूट ! तेरा शरीर सद ढ़ धातुमय एवं पाषाण निर्मित है। अर्थात् तेरे प्रस्तर मजबूत हैं। धातु एवं गेंरु तुझसे प्राप्त होते हैं। निर्झर प्रभावित होने के कारण मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे हृदय में निर्मल नीर भरा हुआ है। तू अटल (न टलने वाला) अचल (न चलने वाला) धीर एवं गम्भीर है। तेरे वन प्रदेश में शीत एवं गर्मी दोनों ही समान रूप से पड़ती हैं। (न अधिक गर्मी न अधिक शीत) तू अपने वन प्रान्त निवासियों को शान्ति एवं सुख प्रदान करने वाला है। अरे गौरव-गिरि ! तू अनेक प्रकार के रंगों सं रंजित एवं प्रेम से आनन्ददायक है। तू सुन्दर है। तेरे वन-प्रदेश में आने वाले व्यक्तियों को स्वतः वैराग्य प्राप्त हो जाता है। अतः तू विराग का साधन है, अनेक वनों का धाम है। तू स्वयं दूसरों की कामना पूरी करता है और स्वयं अकाम या कामना-रहित है।

अतः हे उच्च एवं उदार गिरिवर मुझे शतबार नमस्कार है।

विशेष :- 1. प्रथम पद में चित्रकूट की प्राकृतिक रचना, दूसरे पद में प्राकृतिक सुषमा, तीसरे में ऋतु गत विशेषता, चौथे में अटलता, पाँचवें में प्राकृतिक निर्माण एवं छठे में गुणावलि का वर्णन है।

2. प्रत्येक पद में परिकर एवं परिकरांकुर अलंकारों की छटा अवलोकनीय है।
3. चित्रकूट को मानवीकरण से विभूषित किया गया है।
4. गेय-गीत की कोटि में यह छन्द होने के कारण लयात्मक है।
5. अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।
6. प्रसाद-माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।

(27) **प्रोषितपतिकाएँ हों**

जितनी भी सखि, उन्हें निमन्त्रण दे आ,

समदुःखिनी मिलें तो

दुःख बँटे, जा, प्रणयपुरस्पर ले आ।

शब्दार्थ :- प्रोषितपतिका-विरहिणी-वह नायिका, जिसका पति परदेश चला गया है। सम दुःखिनी-समान दुःख वाली। प्रणय-प्रेम। पुरस्सर-साथ।

व्याख्या :- उर्मिला वियोग में ऊब गई है और थोड़ी देर के लिए उस दुःख को दूसरों के साथ मिल बैठकर भुलाना चाहती है। इस कार्य के लिए भी वह सुखी और सम्भोगी स्त्रियों को नहीं बुलाती, वरन् समदुखियों को बुलाती है, क्योंकि उनके प्रति उसके मन में समान भाव से प्रेरित समवेदना है। इससे कुछ देर के लिए उर्मिला को सन्तोष मिलेगा और अन्य विरहिणी स्त्रियाँ भी अपना दुःख भुला सकेंगी। वह अपनी सखी को इन्हें ले आने के लिए भेजती है-'हे सखी अयोध्या में जितनी विरहिणी स्त्रियाँ हों तू उन सबको प्रेमपूर्वक निमन्त्रण देना और फिर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने साथ लिवा कर लाना, क्योंकि समदुखिनी के मिलने पर दुःख बँट जाता है।

विशेष :- 1. यहाँ उर्मिला समान दुःख वाली स्त्रियों को बुलाती है।

2. उर्मिला उसी को अपनी सखी बना सकने की मानसिक स्थिति में है, जो उसी की-सी मानसिक दशा में हो, जिसने वैसे ही खट्टे-मीठे अनुभव किये हों।

3. संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग है।

(28) **सुख दे सकते हैं तो दुःखी जन ही मुझे, उन्हें यदि भेटूँ,**

कोई नहीं यहाँ क्या जिसका कोई अभाव मैं भी मेटूँ ?

इतनी बड़ी पुरी में, क्या ऐसी दुःखिनी नहीं कोई ?
जिसकी सखी बनूँ मैं, जो मुझ-सी हो हँसी-रोई ?
मैं निज ललितकलाएँ भूल न जाऊँ वियोग-वेदन में,
सखि, पुरबाला-शाला खुलवा दे क्यों न उपवन में !

शब्दार्थ :- अभाव-कमी। पुरी-नगरी। वेदन-वेदना।

व्याख्या :- उर्मिला दुखियों के प्रति अपनी सहृदयता प्रकट करती है। मुझे यदि कोई सुख दे सकता है तो वे दुखी पुर-बालाएं हैं। दुखियों के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं है। जिसकी किसी कमी को दूर कर सकूँ। इतनी बड़ी अयोध्या नगरी में क्या मेरे समान दुःखी और कोई दूसरी स्त्री नहीं है, जिसकी मैं सखी बन सकूँ और जो मेरे समान हँसी-रोई हो। अर्थात् जिसने मेरे समान सुख और दुःख उठाए हों।

उर्मिला बेकार समय में कुछ शिक्षण-कार्य करना चाहती है, जिससे बेकार समय कट जाए और ललित कलाओं का अभ्यास बना रहे। अपनी सखी से उर्मिला कहती है-हे सखी ! कहीं ऐसा न हो कि मैं वियोग की वेदना में चिर अभ्यस्त ललित कलाओं को ही भूल जाऊँ। अतः तू हमारे उपवन में नगर की स्त्रियों की पाठशाला खुलवा दे, जिनको पढ़ाने में समय का सदुपयोग होता रहेगा तथा मेरी कलाओं का अभ्यास बना रहेगा।

विशेष :- 1. उर्मिला अत्यन्त दयावान और पर-दुःख कातर बन गई है।

2. सहानुभूति का सहज भाव चित्रण है।

3. भाषा सरल सहज है।

4. लयात्मकता और गेयता है।

(29) **कौन-सा दिखाऊँ द श्य वन का बता मैं आज ?**
हो रही है आलि, मुझ चित्र-रचना की चाह,
नाला पड़ा पथ में, किनारे जेठ-जीजी खड़े,
अम्बु अवगाह आर्य पुत्र ले रहे हैं थाह ?
किंवा वे खड़ी हों घूम प्रभु के सहारे आह,
तलवे से कण्टक निकालते हों ये कराह ?
अथवा झुकाये खड़े हों ये लता और जीजी,
फूल ले रही हों, प्रभु दे रहे हों, वाह वाह ?

शब्दार्थ :- आलि-सखी। रचना-निर्माण।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला अपनी सखी से चित्रकला के विषय में चर्चा कर रही है।

व्याख्या :- उर्मिला अपनी सखी से पूछती है-हे सखी ! तू यह बता कि आज मैं अपने चित्र में कौन-सा द श्य बनाऊँ। आज मुझे चित्र बनाने की बड़ी भारी इच्छा हो रही है। मैं चित्र बनाये बिना नहीं रह सकती। कुछ चित्र की रूपरेखा सम्बन्ध सहायता दे। उर्मिला अपने चित्रकला के अभ्यास के लिए कुछ विकल्प सोचती है। चित्रों के पूर्व रूपमय प्रसंग उनके मन में उभरते हैं और उनका वर्णन वह अपनी सखी से करती है-:हे सखी ! कुछ चित्रों के पूर्व रूप यह हो सकते हैं-

१- रास्ता चलते-चलते राम, लक्ष्मण और सीता के सामने कोई नाला आ गया है, जिसके किनारे जेठ जी जीजी (श्रीराम तथा सीताजी) खड़े हैं। आर्य पुत्र (लक्ष्मण जी) पानी में घुस कर थाह ले रहे हैं। (इस चित्र की कल्पना में भी लक्ष्मणजी सेवा में निरत रहते दिखाई पड़ते हैं। भाई और भाभी के लिए अपने अस्तित्व को जल में डुबाने के लिए तैयार हैं)।

२ - दूसरा चित्र सामने आता है और वे कहती हैं-'अथवा जीजी (सीताजी) घूमकर प्रभु (श्रीराम) के सहारे खड़ी हों और आर्य पुत्र (लक्ष्मण) उनके पैर से काँटे निकाल रहे हों।

(यहाँ भी सीता जी के प्रति लक्ष्मण की पूज्य भावना और कर्म परायणता का चित्र है।)

३ - तीसरे चित्र में उर्मिला कल्पना करती है कि किसी लता को अपने हाथ से झुकाकर आर्यपुत्र खड़े हों, जीजी उस लता पर से फूल तोड़ रही हों और उनकी इस क्रिया पर, प्रशंसात्मक शब्द वाह-वाह आदि कर रहे हों।

विशेष :- 1. इन चित्रों में यथार्थ और कल्पना दोनों को समन्वित कर देती है।

2. उर्मिला अन्यत्र भी लक्ष्मण और राम का आदर्श प्रेम कल्पित करती है और उसी की कामना से उसका हृदय ओत-प्रोत है :-

भात -स्नेह सुधा बरसै
भू पर स्वर्ण भाव सरसै।

3. इसमें असंगति अलंकार है। काँटा लगा है सीता जी के और कराह रहे हैं लक्ष्मण जी।

(30) **प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय, जो तेरी,**
आज प्रतीक्षा-द्वारा, लेते हैं वे यहाँ परीक्षा मेरी ?

शब्दार्थ :- प्रणय-प्रेम। प्रतीक्षा-इन्तजार।

संदर्भ-प्रसंग :- प्रस्तुत पंक्तियाँ साकेत के नवम सर्ग से ली गई हैं। उर्मिला को लगता है उनकी परीक्षा हो रही है।

व्याख्या :- उर्मिला अपने प्रेम को सम्बोधित करके कहती है-'हे प्रणय ! तेरी जो दीक्षा प्रिय ने मुझे सहज गुणों के साथ दी है, आज उसी प्रदीक्षित प्रणय की परीक्षा, प्रतीक्षा द्वारा ली जा रही है। प्रिय आज परीक्षा ले रहे हैं कि उन्होंने जिस प्रेम की शिक्षा दी थी, मैंने उसे भली प्रकार सीखा है या नहीं ?

विशेष :- 1. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

2. उर्मिला के कथन के साथ-साथ उसके अन्य अङ्ग भी भाव-व्यंजित करते हैं।

(31) **जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी,**
हरी भूमि के पात पात में मैंने हृद्‌गति हेरी।
खींच रही थी द ष्टि-स ष्टि यह स्वर्णरश्मियाँ लेकर,
पाल रही ब्रह्माण्ड प्रकृति थी, सदय हृदय में लेकर।
त ण त ण को नभ सींच रहा था बूँद बूँद रस देकर,
बढ़ा रहा था सुख की नौका समय समीरण खेकर।
बजा रहे थे द्विज दल-बल से शुभ भावों की भेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।

शब्दार्थ :- हृद्‌गति-हृदय की गति। स्वर्ण-रश्मियाँ-सोने की किरणें। सदय-दया से युक्त। द्विज-ब्राह्मण, पक्षी, भेरी-दुंदभी-वाद्य यंत्र।

संदर्भ-प्रसंग :- इस गीत में उर्मिला अपनी सखी से उन दिनों का वर्णन कर रही है जब उसके जीवन में नव यौवनागमन के साथ प्रियतम से मिलन का सुख उपलब्ध हुआ था।

व्याख्या :- हे सखि ! जब जीवन के पहले प्रभात में मेरी आँखें खुली अर्थात् यौवन व पति का आनन्ददायक सान्निध्य मिला तो मैंने अपने हृदय के कोमल भावों का प्रसार हरी भूमि के पत्ते-पत्ते तक देखा। यह सुनहरी किरणों से मण्डित स ष्टि मुझे बरबस आकर्षित कर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो यह प्रकृति सदय मन से इस ब्रह्माण्ड को पाल रही थी। आकाश बूँद-बूँद रस लेकर अर्थात् ओस कणों के माध्यम से धरती के त ण-त ण को सींच रहा था। समय रूपी वायु सुख की नौका को खेकर आगे बढ़ा रहा था। तात्पर्य यह कि समय की गति के साथ-साथ मेरे सुख बढ़ते चले जा रहे थे। पक्षियों का समूह मधुर स्वरों से चहचहाते हुए मानों शुभ भावों की दुंदभी बजा रहे थे, अर्थात् पूरा परिवेश सुखमय था।

विशेष : 1. प्रकृति-चित्रण का आकर्षक रूप है।

2. रूपक, अनुप्रास, मानवीकरण अलंकारों का सहज प्रयोग है।

3. गेयता तथा संगीतात्मकता का आकर्षक रूप है।
4. भाषा भावानुरूप प्रभावशाली है।

(32) **वह जीवन-मध्याह्न सखी, अब श्रान्ति-क्लान्ति जो लाया,**
खेद और प्रस्वेद-पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया।
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया ?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया।
यह विषाद ! वह हर्ष कहाँ अब देता था जो फेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।

शब्दार्थ :- जीवन मध्याह्न-जीवन की दोपहरी, व्यथापूर्ण जीवन। श्रान्ति-क्लान्ति-खेद व थकावट। प्रस्वेद-पसीना।

संदर्भ प्रसंग :- इन पंक्तियों में उर्मिला अपने जीवन के मध्याह्न अर्थात् विषादमय समय का हृदयस्पर्शी वर्णन कर रही है।

व्याख्या :- जिस प्रकार दोपहर होने पर धूप व ताप बढ़ने से थकावट होने लगती है, शरीर पसीने से तर हो जाता है, उसी प्रकार मेरे जीवन की दोपहरी भी वियोगजन्य व्याकुलता वह हताशा लाई है। पति के संसर्ग में जीवन का जो आनन्द व उल्लास मैंने पाया था वह अब खो चुका है। यह विचारणीय है कि वह सब खोकर हमने क्या पाया। हमारे राम भी हमारे बीच न रहे और जिस राजसिंहासन हेतु उन्हें वन भेजा गया था, उसका भोग भी कोई नहीं कर रहा। यहाँ 'माया मिली न राम' की प्रतिच्छाया है। अब तो हमारे जीवन में विषाद व्याप्त हो गया है। वह प्रसन्नता अब दिखाई नहीं देती जो राम, सीता व प्रियतम के यहाँ होने पर मिलती थी।

विशेष : 1. उर्मिला का प्रभावी चित्रण है।
2. प्रथम दोनों पंक्तियों में श्लेष अलंकार का चमत्कार द्रष्टव्य है।
3. भाषा प्रवाहपूर्ण और आकर्षक है।

(33) **वह कोइल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,**
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-व ष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि धूलि चरती है,
उबल सूखती है जलधारा, यह धरती मरती है।
पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी-तेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।

शब्दार्थ :- हूक भरती है-पीड़ा से कराहती है। रोष-व ष्टि-क्रोध की वर्षा। निःश्वास-आह। समीरण=हवा। सुरभि=सुगंध।

संदर्भ-प्रसंग :-पूर्ववत्।

व्याख्या :- वियोगावस्था में विरहिणी को कुछ भी नहीं भाता है। जो कोयल पहले प्रसन्नता से कूकती थी, जिसे स्वर कर्णप्रिय थे; वह अब हूक भरती है। पूर्व और पश्चिम की लाली अर्थात् मोर की लालिमा तथा संध्या के समय की रक्तिमा जो पहले आँखों को शीतलता प्रदान करती थी, अब विरहिणी को ऐसा प्रतीत होता है मानो क्रोध की वर्षा कर रही हो। मनोस्थिति मनोदशा के अनुरूप ही प्रकृति सुहावनी व कष्टकारी प्रतीत होती है। ऊर्मिला भी पति के अभाव में दुःखी है इसीलिए उसे कुछ भी नहीं भाता। वायु भी आहें भर रही है। जो सुगन्ध पहले सारे वातावरण को सुरभित कर रही थी, अब वह धूलि चाट रहा है। जो जलधारा पहले प थ्वी को सींचती हुई बह रही थी, अब जल उबल रहा है। धारा क्षीण हो गई है। बिना सिंचाई के प थ्वी सूख रही है, हरियाली के आधार पत्ते व फूल झड़ गए हैं। वास्तविकता यह है कि इस तेज दोपहरी के कारण किसी की भी कुशलता नहीं।

विशेष : 1. प्रकृति का उद्दीपन रूप है।

2. प्रिय के अभाव में सुख प्रकृति भी कष्टदायी प्रतीत हो रही है।

3. अनुप्रास अलंकार से समूचा पद अनुप्राणित है।

4. मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

5. भाषा सरल सहज है।

(34) **आगे जीवन की संन्ध्या है, देखें क्या हा आली,**
तू कहती है-'चन्द्रोदय ही, काली में उजियाली ?
सिर-आँख पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पद लाली ?
किन्तु करेंगे कोक-शोक की तारे जो रखवाली ?
'फिर प्रभात होगा' क्या सचमुच ? तो कृतार्थ यह चेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।

शब्दार्थ :-जीवन की सन्ध्या-वद्धावस्था। आली-सखी। चन्द्रोदय-चाँद का उदय। कुमुदिनी-कमलिनी। पद-लाली-चाँद के निकट की लालिमा, प्रियतम के चरणों की शोभा। चेरी-दासी। कोक-चकवा, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह रात को प्रियतमा से बिछड़ जाता है।

संदर्भ प्रसंग :- इस पद्यांश में उर्मिला जीवन की सन्ध्या के विषय में अपनी सखी से चर्चा कर रही है। वह असमंजस में भी है।

व्याख्या :- मेरे जीवन का मध्याह्न तो कष्टप्रद था। अब आगे संध्या होने वाली है। हे सखि ! जीवन के अवसान के समय न जाने क्या घटित हो। तेरा कहना है कि संध्या के समय चाँद का उदय होने से कालिमा उजाले में बदल जाएगी। अर्थात् प्रिय से मिलन होगा और मेरे विषाद सुख में बदल जायेंगे। रात्रि को चाँद को देख कुमुदिनी खिलती है और चाँद के पास की लालिमा देख प्रसन्न होती है, उसी प्रकार मैं भी प्रियतम के चरणों की शोभा को ग्रहण कर आनन्द विभोर हो जाऊँगी। कोक जो रात भर अपनी प्रियतमा से दूर होने के कारण शोकाकुल रहता है, क्या उसके लिए फिर से प्रभात होगा। उसे फिर से प्रिय-मिलन का सुख मिलेगा ? क्या मुझे भी फिर से प्रियतम-सुख मिलेगा ? यदि ऐसा हुआ तो अपने स्वामी की यह दासी स्वयं को धन्य मानेगी।

विशेष : 1. जीवन की संध्या के विषय में विरहिणी ऊर्मिला के मन की अभिव्यक्ति है।

2. प्रकृति के माध्यम से ऊर्मिला की विरह-व्यंजना है।

3. आकर्षक गेयता और लयात्मकता है।

4. भाषा सरल और परिनिष्ठित है।

(35) **सखि, विहग उड़ा दे, हों सभी मुक्तिमानी,**
सुन शठ शुक-वाणी-'हाय ! रूठो न रानी।
खग, जनकपुरी की ब्याह दूँ सारिका मैं !
तदपि यह वहीं की त्यक्त हूँ दारिका मैं ?
कह विहग, कहाँ हैं आज आचार्य तेरे ?
विकच वदन वाले वे कृती कान्त मेरे ?
सचमुच 'म गया में ?' तो अहेरी नये वे,
यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे ?

सन्दर्भ प्रसंग :- अपनी जीवन व्यथा कह चुकने के उपरान्त उर्मिला अपने सभी पक्षियों एवं पशुओं को स्वतन्त्र करने

की आज्ञा प्रसारित करती है। वह अपनी मनोव्यथा उन्हीं के सम्मुख रखती है। वह पगली सी कहने लगती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! इन सभी पक्षियों को उड़ा दो, क्योंकि इन सभी को स्वतन्त्र हो जाना चाहिये। इस बात को सुनकर तोते की यह ध्वनि हुई-"हाय ! रूठो न रानी।" इसको सुनकर उर्मिला अरे पक्षी ! तू अप्रसन्न मत हो। मैं तुझे जनकपुरी की सारिका ब्याह दूँगी, किन्तु इस बात को समझ ले, मैं उस जनकपुरी-त्यक्त दारिका हूँ। अरे पक्षी ! मुझे बता दीजिए कि तेरे आचार्य (लक्ष्मण) कहाँ गये हुए हैं। अरे सुन्दर केशमय बदन वाले कृति एवं मेरे कान्त कहाँ गये हैं। क्या वे म गया हत हरिणी को यहाँ क्यों छोड़ गए हैं। भाव यह है कि शिकारी स्वयं हत शिकार (पशु) का प्रथम ग्रहण करता है, एवं उसको लेकर अन्य शिकार की खोज करता है, किन्तु हिरणी की तरह आहत मुझको यहीं छोड़ देना उनका अनाड़ीपन सिद्ध करता है।

विशेष :- 1. विरह की उद्दीपन स्थिति है।

2. अनुप्रास अलंकार की छटा है।
3. संवादात्मक शैली है।
4. सरल भाषा का प्रयोग है।

(36) **निहार सखि, सारिका कुछ कहे बिना शान्त सी,**
दिये श्रवण हैं यहीं, इधर मैं हुई भ्रान्त-सी।
इसे पिशुन जान तू, सुन सुभाषिणी है बनी-
'धरो !' खगि, किसे धरूँ? ध ति लिए गये हैं धनी।

सन्दर्भ प्रसंग :-मैना की ओर इंगित करती हुई उर्मिला अपनी सखी से कहती है।

व्याख्या :- अरी सखी ! देख ते इस सारिका को देख, वह मेरे द्वारा बिना कुछ कहे हुए भी यह शान्त सी प्रतीत होती है, किन्तु मेरी बात सुनने के हेतु इधर ही कान लगाये हुये है। इस आकृति को देखकर मैं स्वयं भ्रान्त सी हो गई हूँ। इस समय यह सुभाषिणी बनी हुई है, किन्तु इसे तू पिशुन मात्र समझ। अरी मैं किस को धारण करूँ। मेरे धनी तो धैर्य जिसे धारणा करना पड़ता है, स्वयं ले गये हैं।

विशेष :- 1. विहरण का मार्मिक वर्णन है।

2. अलंकारिक भाषा है।
3. राजपूताने में पति को 'धनी' कहते हैं।
4. गेय-लयात्मक काव्य है।

(37) **तुझ पर मुझ पर हाथ फेरते साथ यहाँ,**
शशक, विदित है तुझे आज वे नाथ कहाँ ?
तेरी ही प्रिय जन्मभूमि में, दूर नहीं,
जा तू भी कहना कि ऊर्मिला क्रूर नहीं !

सन्दर्भ प्रसंग :- उर्मिला शशक को सम्बोधित करती हुई कहती है।

व्याख्या :- अरे शशक ! क्या तुझे विदित है कि तेरे वे नाथ कहाँ हैं, जो एक साथ ही तुझ पर एवं मुझ पर आथ फेरा करते थे, तुझे पता नहीं तो मैं बताऊँ कि वे तेरी प्रिय जन्मभूमि (कानन) में ही गये हैं, दूर नहीं गए। तू वही चला जा एवं उनसे कहना कि क्रूर उर्मिला वहीं पर विराजमान है।

विशेष :- 1. मानवीकरण।

(38) **लेते गये क्यों न तुम्हें कपोत वे,**
गाते सदा जो गुण थे तुम्हारे ?
लाते तुम्हीं हा ! प्रिय-पत्र-पोते वे,
दुःखाब्धि में जो बनते सहारे।

सन्दर्भ प्रसंग :-उर्मिला कपोत को सम्बोधित करती हुई कहती है।

व्याख्या :- अरे कपोत गण ! वे नाथ तुमको साथ क्यों न लेते गये। यहाँ तो वे तुम्हारे गुण गाया करते थे। तुम ही हमारे उन प्रिय-पत्र को लाया करते थे, जो हमारे दु:खाब्धि में पोत स्वरूप सहारे बनते थे।

विशेष :- 1. मानवीकरण।

(39) **औरों की क्या कहिए,**
निज रुचि ही एकता नहीं रखती,
चन्द्रामृत पीकर तू
चकोरि, अंगार है चखती !

सन्दर्भ प्रसंग :- उर्मिला चकोरी से कहती है-

व्याख्या :- अरी चकोरी ! मैं औरों के सम्बन्ध में क्या कहूँ। तू अपनी रुचि में ही एकता नहीं रखती, क्योंकि तू चन्द्रामृत पीकर स्वयं अंगार चखती है।

विशेष :- 1. उक्त छन्द में उर्मिला शुक, सारिका, शशक कपोत एवं चकोरी से ही-अपने प्रियतम के सम्बन्ध में पूछती है उसे यह ज्ञान न रहा कि इन पशु पक्षियों की उसकी सुधि, वे कहाँ गए। वह इस प्रकार उन्माद की दशा में प्रतीत होती है।

2. मानवीकरण।

3. अलंकार-उपमा, अनुप्रास, रूपक एवं स्वाभावोक्ति है।

(40) **विहग उड़ना भी ये हो बद्ध भूल गये, अये,**
यदि अब इन्हें छोडूं तो और निदर्यता, दये;
परिजन इन्हें भूले ये भी उन्हें, सब हैं बहे,
बस अब हमीं साथी-संगी, सभी इनके रहे।

शब्दार्थ :- विहग-पक्षी। बद्ध-बंदी। परिजन-पंछियों के अपने साथी। दये-दया का सम्बोधित रूप।

संदर्भ प्रसंग :- पूर्ववत्। अपने कक्ष के बन्द पंछियों को मुक्त करने के विषय में सोचती हुई उर्मिला कहती है।

व्याख्या :- अब यदि मैं इन पंछियों को मुक्त भी कर दूँ, तो हे सखि, ऐसा लगता है ये उड़ेगे नहीं, क्योंकि दीघ्र अवधि से पिंजड़ों में बंद पड़े रहने से ये उड़ना भूल गये होंगे। इसके अतिरिक्त ये अपने परिवार के अन्य सदस्यों की ओर वे इन्हें भूल गए होंगे। ऐसी दशा में इन्हें छोड़ना एक प्रकार से इनके प्रति निदर्यता होगी। आखिरकार ये जाएँगे कहाँ ? क्योंकि इनके साथी तो उड़कर न जाने कहाँ पहुँच गए होंगे। अब तो हम ही इनके संगी-साथी हैं। इनके सभी कुछ हम ही हैं। अतः इन्हें मुक्त करना सुकर व सहज नहीं।

विशेष : 1. दु:ख मानव को अन्य प्राणियों से जोड़ता है। दु:ख में आत्मा का विस्तार होता है। ऊर्मिला का आत्मीय रूप है।

2. ऊर्मिला की करुणा, संवेदना व परदु:खकातरता उजागर हुई है।

3. अनुप्रासत्व का वैभव अवलोकनीय है। (गये, अये, निदर्यता, दये, सब हैं बहे, बस अब, साथी-संगी सभी)।

4. भाषा परिष्कृत व प्रांजल है।

(41) **आ, अभाव की एक आत्मजे, और अदृष्टि-जनी !**
तेरी ही छाती है सचमुच उपमोचितस्तनी !
अरी वियोग-समाधि, अनोखी, तू क्या ठीक ठनी,
अपने को, प्रिय को, जगती को दूखूँ खिंची-तनी।
मन-सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल-खनी,
तुझे तभी छोडूँ जब सजनी, पाऊँ प्राण-धनी।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला 'लाल' नामक पक्षियों को सम्बोधित करती हुई कहती है।

व्याख्या :- हे खग गण ! तुम मेरे उर रूपी अंगार के साथी बने रहो। तुम मुनियों से पालित होकर यहीं रहो। हे वेदने ! मेरे हृदय के अन्तर्गत तेरा निवास बना रहना अच्छा है। क्योंकि तेरे ही कारण मुझे सदैव प्रिय का ध्यान बना रहता है। अतः तुझी में मैंनं अपनी धनी चाह प्राप्त की है। तू वह हीरकमाणि के सद श है, जिसने मेरे जीवन में एक नया प्रकाश, नया मोड़ अथवा नई किरण उत्पन्न की है। अरी वेदने ! प्रिय के वार्णे की अनी (नोक) के सद श हैं, तम मुझे निरत सालती रह, जिससे मैं सजग बनी रहूँ। मैं विरह वेदना के कारण सदैव रोती रहती हूँ, एवं उसके कारण मेरा भी अङ्ग गर्म अश्रु-जल से भीगता रहता है, अतएव मेरी यह देह प्रिय विरह में ठण्डी नहीं होने पाती। चूँकि तू इस देह को गर्म रखने का कार्य करती है, अतएव तू तपन मणि सद श प्रिय है।

अरी ! तेरे कारण मुझको ज्ञान होता है कि मुझे किसी का (प्रियतम) का अभाव है। अतः अभाव भाव से उत्पन्न होने के कारण तू अभाव की आत्मजा है, एवं भाग्य से जन्म ग्रहण करने वाली है। अरी वेदने ! स्तन अपने शिशु जात का पोषण करता है, एवं वक्षस्थल को सफलता प्रदान करता है, अतः वेदना से पालित मुझ विरहिणी को सदैव अपने शिशु रूप प्रिय ध्यान को मेरे हृदय में बनाये रखने के कारण ही मैं तेरी छाती को उपमोचित स्तनी कहती हूँ। तू अनोखी वियोग की समाधि स्वरूप है, तू क्या सजी-धजी रहती है। मैं तेरे ही कारण स्वयं को, प्रिय को एवं संसार को एक दूसरे से खिंचानता देखती हूँ।

अरी पत्थर की खान ! मुझे तेरे में मन के अनुकूल प्रिय रूपी मानिक प्राप्त हुआ है। मैं तुमको तभी त्याग सकती हूँ, जब अपने प्राणधनी लक्ष्मण को प्राप्त कर लूँ। अर्थात् उन प्रियतम के दर्शन के साथ तू समाप्त हो जायेगी।

विशेष :- 'वेदना' सभी के लिए दुखदायी होती है, किन्तु कवि ने उसको प्रिय और मन भावनी वस्तु माना है। उसने इसका कारण भी उपस्थित किया है। वह कहता है कि वेदना के कारण सदैव प्रिय का ध्यान हृदय में बना रहता है।

अलंकार :- 1. परिकरांकुर 2. लोकोक्ति 3. विरोधाभाष।

(42) **विरह संग अभिसार भी,**
भार जहाँ आभार भी।
मैं पिंजड़े में पड़ी हूँ किन्तु खुला है द्वार भी,
काल कठिन क्यों न हो किन्तु है मेरे लिए उदार भी !
जहाँ विरह ने गार दिया है किया वहाँ उपकार भी,
सुध बुध हर ली, किन्तु दिया है काल-ज्ञान विचार भी।
जना दिया है उसने मुझको जन जीवन है भार भी।
और मरण ? वह बन जाता है कभी हिये का हार भी।
जाना मैंने इस उर में थी ज्वाला भी जलधार भी,
प्रिय ही नहीं यहाँ मैं भी थी, और एक संसार भी !

सन्दर्भ-प्रसंग :-उर्मिला प्रिय-विरह-व्यथा के कारण इतनी व्यथित हो जाती है कि उसे यह जीवन दूभर प्रतीत होने लगता है, एवं वह म त्यु को आलिंगन करना चाहती है। इसी भावना को अभिव्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! आज प्रिय नहीं, किन्तु प्रिय-विरह के साथ अभिसार करना है, जहाँ अभार प्रदर्शन भी भार स्वरूप है।

आये ! यद्यपि मेरी आत्मा तन रूपी पिंजड़े में हुआ है, किन्तु उसके लिए द्वार भी खुला हुआ है, कभी भी कहीं निकल कर चला जाय। यद्यपि संसार में यह कथोक्ति है कि काल कठिन होता है। यह सत्य ही क्यों न हो, किन्तु मेरे लिए यह काल उदार है।

अरी सजनी ! जहाँ प्रिय-विरह ने मुझको कष्ट दिया है, मुझे गला दिया है, वहाँ मेरे साथ उपकार भी किया है। यद्यपि उसके कारण मेरी समस्त सुध-बुध हरण कर ली गई है, तथापि काल ज्ञान का विचार अवशिष्ट है।

मुझको यह पूर्ण रूप से विदित हो गया है कि विरह के कारण जन-जीवन भार सद श हो जाता है।

इसी विरह काल में मरण भी हृदय-हार सद श हो जाता है। मैं यह जान सकी हूँ कि मेरे हृदय में जलधारा एवं ज्वाला है भी, विरहानल एवं विरहाश्र है। साथ ही प्रियतम, स्वयं एवं संसार तीनों को एक साथ सोचती विचारती हूँ।

विशेष :- 1. अलंकारिक भाषा का प्रयोग।

2. ओज और प्रसाद गुण शैली का प्रयोग।

3. यहाँ पर प्रिय विरह के कारण उर्मिला मरण को आलिंगन करना चाहती है। विरह की यह जड़ दशा है।

(43) **लिख कर लोहित लेख डूब गया है दिन अहा !**
व्योम-सिन्धु सखि देख तारक-बुदबुद दे रहा !

सन्दर्भ प्रसंग :- इस प्रकार विलापमय प्रलाप करते-करते सूर्यास्त हो गया। उस सूर्य की आभा पर अपने विचार प्रकट करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! आकाश में लाल रंग को फैलाकर दिनकर अस्त हो गया। अरी व्यौम रूपी सागर को देख उसमें तारागण बुद-बुद के सद श उदित हो रहे हैं।

विशेष :- 1. किसी जलाशय में किसी व्यक्ति एवं वस्तु के साथ कूदने या गिरने पर छींटे एवं बुदबुदे उत्पन्न हो जाते हैं। उसी भावना से यहाँ तारा-मंडल के द ष्टिगत होने में विचार किया गया ही नवीन कल्पना है।

2. अलंकार-रूपक, उत्प्रेक्षा प्रयोग है।

(44) **दीपक-संग शलभ भी जला न सखि, जीत सत्व से तम को।**
क्या देखना-दिखाना क्या करना है प्रकाश का हमको।

शब्दार्थ :-शलभ-पतंग। संग-साथ। तम-अंधेरा।

संदर्भ प्रसंग :- उर्मिला वियोग में व्यथित है। अपनी सखी से दीपक जला कर प्रकाश करने से रोकते हुए कहती है।

व्याख्या :- हे सखि ! तू दीपक न जला। इसके जलने से पतंगे भी तो जलेंगे। विरहदशा में अत्यधिक करुण होने के कारण उर्मिला किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहती। दीपक जलाने की अपेक्षा अंधकार को अपने सत्त्व गुण से दूर कर। यों भी मुझे प्रकाश का क्या करना है। प्रियतम तो यहाँ हैं नहीं, अतएव प्रकाश जला किसको अपना रूप दिखाना है। अतः उनके अभाव में प्रकाश भी व्यर्थ है।

विशेष : 1. सच्चे प्रेमी ही प्रेम में बलिदान देते हैं। प्राण बनाकर जीवन में उन्हें सार्थकता दिखायी नहीं देती।

2. 'दीपक-तमको' में विरोधाभास अलंकार द्रष्टव्य है।

3. द्वितीय पंक्ति में काकवक्रोक्ति अलंकार है।

4. संगीतात्मकता व गेयता अवलोकनीय है।

5. भाषा सहज, सरल है।

(45) **दीपक के जलने में आली,**
फिर भी है जीवन की लाली,
किन्तु पतंग-भाग्य-लिपि काली,
किसका वश चलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है।

शब्दार्थ :-आली-सखी। काली-दुःखदायी।

संदर्भ प्रसंग :- उर्मिला प्रेम संबंध के बने प्रभाव के विषय में चर्चा करती है। इस सम्बन्ध में दीपक और पतंग की भी चर्चा है।

व्याख्या :- उर्मिला अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखि ! दीपक के जलने में फिर भी जीवन

की लालिमा है, अर्थात् उसके जलने से प्रकाश फैलता है। इसके विपरीत पतंगे की भाग्य-लिपि तो बस काली है, तात्पर्य यह है कि वह जलकर स्वाहा हो जाता है, किसी का कोई उपकार अथवा कल्याण नहीं कर पाता। इस संदर्भ में किसी का कोई वश नहीं चलता।

विशेष : 1. दीपक स्वयं को जलाकर दूसरों को प्रकाशमय बनाता है, लेकिन पतंगा तो हतभाग्य है उसका बलिदान किसी के काम नहीं आता।

2. 'किसका वश चलता है ?' पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।
3. तत्सम शब्दों के साथ तद्‌भव का सुन्दर योग है।
4. अनुप्रास की छटा है।
5. भाषा प्रवाहमयी है।

(46) **जगती वणिग्व त्ति है रखती,**
उसे चाहती जिससे चखती;
काम नहीं, परिणाम निरखती,
मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

शब्दार्थ :- जगती-विश्व। वणिग्व त्ति-व्यापारी की व त्ति, लाभ की व त्ति। खलता-बुरा लगता। निखरना-अधिक सुन्दर होना या अनुकूल होना।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला ने प्रेम के समर्पण और त्याग को महत्त्व दिया है।

व्याख्या :- उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि इस संसार के लोग लाभ की व त्ति को महत्त्व देते हैं। ये केवल उसे चाहते हैं जिससे कुछ प्राप्त होता है। इनके प्रेम का आधार स्वार्थ है। ये लोग काम नहीं, अपितु परिणाम को महत्त्व देते हैं। इनके लिए काम का आनन्द कोई महत्त्व नहीं रखता, बस फल पर ही इनकी द ष्टि टिकी रहती है। उसे यह द ष्टिकोण बहुत कष्टकर है।

विशेष : 1. सच्चा प्रेम निःस्वार्थ होता है।

2. स्वार्थ प्रेम को कलंकित करता है।
3. 'वणिग्व त्ति' शब्द का चयन व प्रयोग सटीक बन पड़ा है।
4. अपहनुति अलंकार उल्लेख्य है।
5. भाषा सरल और संस्कृतनिष्ठ है।

(47) **अरी, सुरभि जा, लौट जा, अपने अंग सहेज,**
तू है फूलों में पली, यह काँटों की सेज !
यथार्थ था सो सपना हुआ है,
अलीक था जो अपना हुआ है।
रही यहाँ केवल है कहानी,
सुना वही एक नई-पुरानी।

शब्दार्थ :-सुरभि-सुगंध। सहेज-समेट, संभाल। काँटों की सेज-कष्टप्रद। अलीक-मिथ्या।

संदर्भ-प्रसंग :- इस पद्यांश में उर्मिला ने विरहोत्तेजक सुरभि को लौट जाने को कहा है।

व्याख्या :- ऐ सुगन्ध, तू यहाँ ये अपने अंगों को बचाकर दूर निकल जा। तेरा वास तो फूलों में होता है, तू कोमलता में पगी है लेकिन मेरे पास तो काँटों की सेज है जो तेरे अनुकूल नहीं। अतः तू लौट जा। उर्मिला आगे अपनी सखी को कहती

है कि मिलन के जो क्षण मेरे जीवन में वास्तव में आए थे, वे आज सपने के समान प्रतीत होते हैं। जो मिथ्या था अर्थात् जिस विरह की कभी कल्पना न की थी वही आज मेरे साथ जुड़ गया है। अब तो जीवन के पिछले सुखों की कहानी को सुना जिससे मैं सब कुछ भूल जाऊँ।

विशेष : 1. सुरभि उर्मिला के मन में गत मिलन-क्षणों को ताजा कर कष्टकर हो रही है।

2. सुरभि का मानवीकरण हुआ है।
3. अन्तिम पंक्ति में विरोधाभास है।
4. सुन्दर शब्द-शिल्प है।
5. गीत के अनुरूप लयात्मकता है।

(48) **आ आ, मेरी निदिया गूँगी !**
आ, मैं सिर आँखों पर लेकर चन्द्रखिलौना दूँगी !
प्रिय के आने पर आवेगी,
अर्द्धचन्द्र ही तो पावेगी।
पर यदि आज उन्हें लावेगी,
तो तुझसे ही लूँगी।
आ जा, मेरी निंदिया गूँगी।
पलक-पाँवड़ों पर पद रख तू,
तनिक सलोना रस भी चख तू,
आ दुखिया की ओर निरख तू,
मैं न्योछावर हूँगी।
आ जा, मेरी निंदिया गूँगी।

शब्दार्थ :- सिर आँखों पर लेकर-हार्दिक स्वागत करके। अर्धचन्द्र-अनादर। पलक-पाँवड़ों पर-पलक रूपी पाँवड़ों पर (किसी के स्वागतार्थ बिछाये गये वस्त्र को पाँवड़ा कहते हैं)। सलोना-सुन्दर, अनुकूल।

संदर्भ-प्रसंग :- रात्रि अधिक हो जाने पर उर्मिला सोना चाहती है, एवं निद्रा को निमन्त्रण देती हुई कहती है-

व्याख्या :- अरी मूक निद्रा ! तू आ। यदि तू मुझे आ जायेगी तो सहर्ष मैं तुझे चन्द्र-खिलौना अर्पित कर दूँगी। अरी निद्रा ! यदि तू इस विरह-काल में न आकर प्रिय के आगमन होने पर आयेगी तो तू गर्दन पकड़कर निकाल दी जायेगी। यदि तू स्वप्न में उन प्रियतम को लावेगी तो मैं उनको तुझी से ग्रहण करूंगी। अतएव मूक निद्रा ! तू अवश्य आ जा।

यदि तू इस समय आकर मेरी मन की इच्छा पूर्ण कर देगी, तब मुझको अधिकार होगा कि मेरे पलक रूपी पावड़ों पर पद रख सकेगी, अर्थात् तुझे सादर ग्रहण करूँगी। तुझको कुछ सुन्दर रस (आनन्द) भी प्रदान करूँगी। अरी तू संसार की ओर देखकर उन पर दया करने का कष्ट कर यदि तू ऐसा करेगी तो मैं न्यौछावर हो जाऊँगी। अरी मेरी मूक निद्रा शीघ्र आ जा।

विशेष :- 1. यहाँ पर निद्रा का आह्वान दो कारणों से किया गया है, प्रथम निद्रा से रात्रि सुख से कट जायेगी। द्वितीय निद्रा आने पर स्वप्न न होगा एवं स्वप्न में प्रिय दर्शन होंगे। इस प्रकार अकथनीय आनन्द की प्राप्ति होगी।

2. दूसरे अर्द्ध चन्द्र पाना, निकल जाना, यह एक लोकोक्ति है, जिसका साभिप्राय कथन है कि प्रिय सानिध्य में निद्रा कब अच्छी लगेगी।

3. अनुप्रास, रूपक अलंकारों का प्रयोग है।

(49) **स्नेह जलाता है यह बत्ती !**
फिर भी वह प्रतिभा है इसमें, दीखे जिसमें राई-रत्ती।
रखती है इस अन्धकार में सखि, तू अपनी साख,
मिल जाती है रवि-चरणों में कर अपने को राख।
खिल जाती है पत्ती-पत्ती,
स्नेह जलाता है यह बत्ती।
होने दे निज शिखा न चंचल, ले अंचल की ओट,
ईंट ईंट लेकर चुनते हैं हम कोसों का कोट।
ठंडी न पड़, बनी रह तत्ती,
स्नेह लाता है यह बत्ती !

शब्दार्थ :-स्नेह-तेल, प्रेम। बत्ती-बाती, अहं। प्रतिभा-प्रकाश, अलौकिक ज्योति। राई-रत्ती-छोटे से छोटा पदार्थ। अंधकार-अंधेरा, अज्ञान। रवि-सूर्य, परम शक्ति। कोट-परकोट। तत्ती-गर्म।

सन्दर्भ-प्रसंग :- प्रेम एक ऐसा बन्धन है, जिसके कारण स्वतन्त्र मनुष्य भी परवश बंध जाता है। इसमें सुखी भी दुखी रहता है। एवं दुखी सुखी रहता है। इस प्रेम बन्धन में किसी प्रकार की चतुराई विद्वत्ता, तार्किक द ष्टिकोण कुछ भी कार्य नहीं करता। वह बन्धन दिनों-दिन निगाढ़ होता ही रहता है। प्रेम का दूसरा नाम स्नेह है, उससे प्रेमी जलता रहता है। इसी के सम्बन्ध में उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! दीपक की बत्ती को तेल जला रहा है, तथापि उसमें इतनी प्रतिभा है, जिससे सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु भी द ष्टिगोचर हो जाती है।

अरी सखी ! इस अन्धकारमय रात्रि में यह दीपक की बत्ती ही अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं, किन्तु सूर्य की किरणों के प्रसारित होते ही राख के रूप में समाप्त हो जाती है, जिससे पत्ती-पत्ती (प्रत्येक वस्तु) लिख जाती है। इस प्रकार दीपक व तेल उसकी बत्ती को जलाता है।

अरी सखी ! प्रियतम का प्रेम मेरे इस तन को दग्ध कर रहा है, तथापि मुख पर अति तेज छाया हुआ है। इस विरहमय रात्रि के अन्धकार में अरी सखी ! तू साक्षी रूप है, किन्तु सूर्य रूप प्रिय चरणों में स्वयं रख कर उनसे मिल जाऊँगी तब मैं अंग-प्रत्यंग से प्रसन्न हो जाऊँगी।

अरी दीपक की बत्ती तू मेरे अंचल की ओट ले ले, किन्तु अपनी शिखा को चंचल मत कर। अरी हम वे हैं, जो एक-एक करके करोड़ों किलों का निर्माण कर देती हैं, तू तप्त बनी रह, शीतल मत हो। अरे मन ! मेरे अंचल की ओट में स्थापित होकर तू चलायमान मत हो। करोड़ों किला निर्माण करने की शक्ति हम रखती हैं, यदि मन स्थित हो। अतः तू तप्त बनी रह, शीतल मत हो।

विशेष :- 1. इस गीत में 'स्नेह' में श्लेष अलंकार है। जिससे प्रेम एवं तेल का अर्थ प्रतिपादित होता है। जहाँ दूसरा अर्थ ध्वनित होता है।

2. समासोक्ति अलंकार है।
3. भाषा स्थूल, बोधगम्य है।

(50) **ओहो ! मरा वह वराक बसंत कैसा ?**
ऊँचा गला रुँध गया अब अन्त जैसा।
देखो, बढ़ा ज्वर, जरा-जड़ता जगी है,
लो, ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है !

शब्दार्थ :- वराक-दीन, बेचारा। जरा-जड़ता-बुढ़ापा व अचेतनता। ऊर्ध्व-साँस-लम्बी साँस।

सन्दर्भ प्रसंग :- यहाँ से ऋतु वर्णन प्रारम्भ होता है। शनैः शनैः बसन्त ऋतु समाप्त होने लगी एवं ग्रीष्म का आगमन हुआ। उसकी अन्तिम दशा का वर्णन करती हुई उर्मिला कहती है।

व्याख्या :- देखो अब बेचारा बसन्त मरने लगा है, उसका सस्वर गला रुँध गया है, अर्थात् कोकिल-स्वर समाप्त हो गया है, अब ग्रीष्म ज्वर बढ़ता जा रहा है एवं जरा जन्य जड़ता उत्पन्न हो गई है। यह तीव्र बयार नहीं ऊर्ध्व साँस चलने लगी है। इस प्रकार उसका अन्त समीप है।

विशेष :- 1. विरह का षड्ऋतु वर्णन रूप है।

2. वसंत का मानवीकरण सुन्दर है।

3. भाषा सरल सहज है।

4. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।

(51) **आकाश-जाल सब ओर तना,**
रवि तन्तुवाय है आज बना,
करता है पद-प्रहार वही,
मक्खी-सी भिन्ना रही मही।
लपट से झट रूख जले, जले,
नद-नदी घट सुख चले, चले।
विकल वे म ग-मीन मरे, मरे,
विफल में द ग दीन भरे, भरे।

शब्दार्थ :- तन्तुवाय-मकड़ा। प्रहार-आघात। भिन्ना रही-दुःखी हो रही है। मही-धरती। रूख-व क्ष। नद-नाले। विकल-बेचैन। म ग-हिरण। मीन-मछली।

संदर्भ-प्रसंग :- ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता का वर्णन करते हुए उर्मिला अपनी सखी से कह रही है।

व्याख्या :- आकाश रूपी प्रबल जाल चारों ओर तना है, जिसमें सूर्य एक मकड़े की भूमिका अदा कर रहा है। जिस प्रकार जाल में फंसी मक्खी को मकड़ा अपने पैरों से चोट करता है और वह भिनभिनाती है, वैसे ही सूर्य अपनी प्रचण्ड व झुलसाने वाली किरणों से प थ्वी पर प्रहार कर उसे उत्पीड़ित कर रहा है। इस प्रकार धरतीवासी सूर्य के भयावह ताप से व्यथित हैं। गर्मी इतनी भीषण है कि उसकी लपाटों से व क्ष जल गए हैं। नदियों व नालों का पानी सूखकर कम हो गया है। अत्यधिक गर्मी से परेशान होकर वनों में हिरण व जलाशयों में मछलियाँ मर रही हैं। असफल इसलिए कि इन्हें प्रियतम के दर्शन नहीं हुए।

विशेष : 1. ग्रीष्मकाल की प्रचण्डता का सजीव चित्रण है।

2. रूपक (आकाश-जाल, रवि-तन्तुवाय), उपमा (मक्खी सी भिन्ना रही) पुनरुक्ति व अनुप्रास अलंकारों का सहज प्रयोग है।

3. अंतिम पंक्ति में विभावना अलंकार है।

4. भाषा सहज, सरल व बोधगम्य है।

(52) **मन को यों मत जीतो,**
बैठी है, यह यहाँ मानिनी, सुध लो इसकी भी तो !
इतना तप न तपो तुम प्यारे,
जले आग-सी जिसके मारे।
देखो, ग्रीष्म भीष्म तनु धारे,
जन को भी मनचीतो,

मन को यों मत जीतो !

प्यासे हैं प्रियतम, सब प्राणी,
उन पर दया करो हे दानी,
इन प्यासी आँखों में पानी,
मानस, कभी न रीतो,
मन को यों मत जीतो !

शब्दार्थ :-मानिनी-प्रेम पर गर्व करने वाली नायिका। सुध लो-खबर लो। भीष्म-भीषण। मानस-हृदय। रीतो-खाली रखो। चीतो-पहचानो।

सन्दर्भ-प्रसंग :- निदाध दाध से दुग्ध एवं विरहानल से भस्म सी हुई उर्मिला व्यथित हो जाती है। वह समझने लगती है कि हाय यह ग्रीष्म है अथवा प्रियतम के तप का तोप। अतः वह प्रियतम से प्रार्थना करने लगती है-

व्याख्या :- हे प्रियतम ! मेरे मन पर इस प्रकार विजय प्राप्त न कीजिये, अर्थात् मेरे मन को चलायमान न कीजिए। अरे प्रियतम ! यहाँ तुम्हारी मानिनी बैठी हुई है, उसकी भी सु ध लीजिये। प्यारे ! तुम इतना तप मत करो जिससे आग सी तन में लगने लगे। देखो भयावह रूप धारण किये ग्रीष्म ही उपस्थित है। अपने जन की इच्छा पूर्ण करो। प्रियतम ! इस ग्रीष्म काल में सभी प्राणी प्यासे हैं। हे दानी ! तुम उस पर दया करो। मेरी इन प्यासी आँखों में भी पानी भरा हुआ है, उसे रिक्त न करो।

विशेष :- 1. ग्रीष्म ऋतु का हृदयस्पर्शी वर्णन।

2. अनुप्रास अलंकार की सुन्दर योजना है।
3. सहज भाषा-प्रयोग है।

(53) **धर कर धरा धूप ने धाँधी,**
धूल उड़ाती है यह आँधी,
प्रलय, आज किस पर कटि बाँधी ?
जड़ न बनो, दिन बीतो,
मन को यों मत जीतो !
मेरी चिन्ता छोड़ो,
मग्न रहो नाथ, आत्मचिन्तन में;
बैठी हूँ मैं फिर भी,
अपने इस न प-निकेतन में।

शब्दार्थ :- धौंधी-अंधेर होना। प्रलय-महाविनाश। कटि बाँधी-तैयार होना। आत्मचिन्तन-तपस्या। न प-निकेतन-राजभवन।

संदर्भ-प्रसंग :- ग्रीष्म की गर्मी से तप्त उर्मिला अपने पति की साधना की सफलता चाहती है।

व्याख्या :- भीषण गर्मी का वर्णन करते हुए उर्मिला कह रही है कि गर्मी की प्रचण्ड धूप ने प थ्वी को पकड़ कर उधम मचा रखा है। प थ्वीवासी झुलस रहे हैं। इस मौसम में तेज हवा धूल उड़ाते हुए बहती है। इतना भीषण अंधड़ देखकर यों लगता है मानो प्रलय किसी को नष्ट करने के लिए कमर कस के आया हो। हे ग्रीष्म-दिवस ! तुम तो ठहर ही गए हो। तुम्हारे कारण लोग बेचैन हो रहे हैं। तुम शीघ्र बीत जाओ।

गीत के अन्त में उर्मिला अपने प्रियतम को सम्बोधित कर कहती है कि आप मेरी चिंता मत करना। आप अपने आत्मचिंतन व तप में लीन रहना। कुछ भी हो, मैं फिर भी अपने राजभवन में बैठी हूँ, जहाँ ग्रीष्म से राहत के लिए अनेक सुविधाएँ हैं। आप तो वन में तप रहे हैं।

विशेष : 1. ग्रीष्म ऋतु के भीषण रूप का चित्रण किया गया है।

2. वियोगिनी का कर्त्तव्य बोध है और वह प्रियतम की सफलता चाहती है।

3. अन्तिम पंक्ति में मुहावरे का सहज प्रयोग हुआ है।

4. भाषा सरल और तरल है।

(54) मेरी ही प थिवी का पानी,
ले लेकर यह अन्तरिक्ष सखि, आज बना है दानी !
मेरी ही धरती का धूम,
बना आज आली, घन घूम।
गरज रहा गज-सा झुक झुम,
ढाल रहा मत मानी,
मेरी ही प थिवी का पानी।
अब विश्राम करे, रवि-चन्द्र;
उठें नये अंकुर निस्तन्द्र;
वीर सुनाओ निज म दुमन्द्र,
कोई नई कहानी,
मेरी ही प थिवी का पानी।
बरस घटा बरसूँ मैं संग,
सरसें अवनी के सब अंग;
मिले मुझे भी कभी उमंग,
सब के साय सयानी।
मेरी ही प थिवी का पानी।

शब्दार्थ :- प थिवी-धरती। अंतरिक्ष-नभ। आली-सखी। गज-हाथी। धूम-धुआँ। निस्तन्द्र-तन्द्रा को त्याग कर। म दुमंद्र-मधुर व मंद। सरसें-फूले। अवनी-धरती।

सन्दर्भ-प्रसंग :- पावस ऋतु में वर्षा होने लगती है। वह वर्षा विरह जन्य दशा में कामोद्दीप्त करने के कारण उर्मिला को असह्य है। अतः उस वर्षा पर आरोप लगाती हुई वह कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! आज अन्तरिक्ष मेरी ही प थ्वी का पानी लेकर प थ्वी पर उसे वर्षा के रूप में प्रदान कर रहा है, इस प्रकार वह दानी बना हुआ है। अरी देख, इन बादलों के शरीर के निर्माण में मेरी ही प थ्वी का धूम्र है, जो ऊपर उठकर वाष्प से संयोग करके बादल बन गया है एवं आज हाथी की तरह मस्ती से गरज रहा है और अपने मद-जल की वर्षा कर रहा है। अरी सखी ! मेरी राय में अब रवि एवं चन्द्र दोनों को विश्राम करना चाहिये। अब भूमि में पानी पड़ जाने से वह कोमल या नरम हो गई है। अतः उसमें नये-नये अंकुर भी उगने चाहिये। इस सुहावने समय में मेरी इच्छा है कि तुम मुझे अपने मन्दे स्वर में एक कहानी सुनाओ।

उर्मिला घन-घटा को इंगित करती हुई कहती है कि हे घटा ! तू बरसती रह, मैं भी तेरे साथ बरसूंगी। अर्थात् जितना पानी तू वर्षा के रूप में छोड़ेगी, मैं अश्रु रूप में उतना ही पानी छोड़ दूँगी। तेरी वर्षा के कारण प थ्वी के सभी अंग सरसाने लगे, जिसे मुझे सभी के साथ उमंग प्राप्त हो। अरी सयानी ! मेरी ही प थ्वी का पानी लेकर आज अन्तरिक्ष दानी बना हुआ है।

विशेष :- 1. प्रथम दो पंक्तियों में आज के विज्ञान का नियम बताया गया है। प थ्वी पर स्थित जलाशयों का जल ग्रीष्म काल में भाप बनकर पवन के साथ उड़ जाता है, वह जल वर्षा काल में बादलों से वर्षा कर देता है।

2. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

3. आकाश का मानवीकरण है।

4. भाषा सरल, सहज है।

(55) **दरसो परसो घन बरसो,**

सरसो जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नव यौवन, बरसो।

घुमड़ उठो आषाढ़ उमड़ कर पावन सावन, बरसो।

भाद्र-भद्र, आश्विन से चित्रित हस्ति, स्वातिपन, बरसो।

स ष्टि-द ष्टि के अंजन रंजन, ताप विभंजन, बरसो।

व्यग्र उदग्र जगज्जननी के, अयि अग्रस्तन, बरसो।

शब्दार्थ :-दरसो-दर्शन दो। परसो-स्पर्श करो। सरसो-हरा-भरा बनाओ। जीर्ण-शीर्ण-थका-हारा। जगती-संसार। भाद्र-भद्र-कल्याणकारी भादों का महीना। हस्ति-हस्ति नामक एक नक्षत्र। स्वाति-घन-स्वाति नक्षत्र के समय बरसने वाला बादल। अंजन-काजल। विभंजन-संहारक। व्यग्र-व्याकुल। उदग्र-उत्कण्ठित, उदार। अग्रस्तन-स्तनों के आगे का काला अंश।

संदर्भ-प्रसंग :- यह सरस गीत 'साकेत' के नवम सर्ग का अंश है। इसके अन्तर्गत विरहिणी उर्मिला बादलों को सम्बोधित कर उन्हें भली प्रकार बरस कर धरती व धरतीवासियों की तपन को बुझाने का आह्वान कर रही है।

व्याख्या :- हे घन ! इस प थ्वी का स्पर्श करके मुझे दर्शन दो एवं वर्षा करो। हे घन ! तुम ग्रीष्मकाल के कारण जीर्ण-शीर्ण संसार को नव यौवन प्रदान करके बरसते रहो। तुम्हारी घटा आषाढ़ मास में उमड़-उमड़ कर उठती हैं एवं सावन एवं भाद्रपद मास में पूर्ण रूप से बरसती है। उसी प्रकार वर्षा करो। हे घन ! तुम भाद्रपद एवं आश्विन मास में जब सूर्य हरित, चित्रा एवं स्वाति नक्षत्र में प्रवेश करता है, तब सुखकारी होकर बरसो। हे बादल ! तुम इस संसार रूपी नायिका की द ष्टि के अंजन स्वरूप हो जो सबको प्रसन्न करने वाला है। तुम ताप के नष्ट करने वाले हो। तुम बरसो। तुम ग्रीष्म काल के कारण व्याकुल जग-जननी के अग्र स्तन रूप हो, जिससे पय धारा की वर्षा करके संसार का पोषण करते हो। अब बरसो।

विशेष :- 1. इस छन्द में ज्योतिष का ज्ञान भी प्रदर्शित किया गया है। भाद्रपद आश्विन के चित्रित हस्ति स्वाति घन बरसो। इस छन्द में मेघ के विशेषण अथवा गुणों के अनुसार अनेक नाम उल्लिखित किये गये हैं।

2. साथ ही 'त्रिभुवन मानस' में रूपक, कन-कन, छन-छन, में पुनरुक्तिप्रकाश, समग्र में परिकरांकुर अलंकार है।

3. भाव-साम्य - "व्यग्र उदग्र, अग्रस्तत।"

"भौहैं सुरचाप चारु प्रभुवित पयोधर,

भूखन जराय जीति तड़ित रलाई है। -केशवदास

(56) **न जा उधर हे सखी, वह शिखी सुखी हो, नचे,**

न संकुचित हो कहीं, मुदित लास्य-लीला रचे।

बनूँ न पर विघ्न में बस मुझे अबाधा यही,

विराग-अनुराग में अहह ! इष्ट-एकान्त ही।

शब्दार्थ :- शिखी-मोर। मुदित-प्रसन्न। लास्य-न त्य।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला अपनी सखी से मोरों की ओर जाने से रोकते हुए कहती है।

व्याख्या :- हे सखि ! तुम उधर मत जाओ, जिधर मोर सुखी हो नाच रहे हैं। तुम्हारे उधर जाने से कहीं आनन्दित हो न त्य-क्रीड़ा करने वाले मोर संकुचित न हो जाएँ। मेरा सुख तो इस बात में है कि मैं किसी की आनन्द-प्रक्रिया में बाधा न बनूँ। सच्चाई तो यह है कि कोई विराग में लीन हो या प्रेम में, चाहते तो सभी एकान्त हैं। कोई बाधित नहीं होना चाहता।

विशेष : 1. उर्मिला का वियोगावस्था में परदु:खकातरता का चित्रण है।

2. अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

3. संस्कृतनिष्ठ, सहज, सरल भाषा का प्रयोग है।

(57) **अवसर न खो निठल्ली,**
बढ़ जा, बढ़ जा विटपि-निकट वल्ली,
अब छोड़ना न लल्ली,
कदम्ब - अवलम्ब तू मल्ली !

शब्दार्थ :- निठल्ली-बेकार। विटपि-व क्ष। वल्ली-बेंल। मल्ली-मल्लिका नामक लता। अवलम्ब-सहारा।

संदर्भ-प्रसंग :- व क्ष और लता के माध्यम से प्रेम का चित्रांकन है।

व्याख्या :- विरहिणी उर्मिला पति से वियुक्त होने की व्यथा भली-भाँति समझती है। इसलिए मल्लिका लता को समझाती है कि निठल्ली बेल ! तू अवसर न खो, बल्कि शीघ्र बढ़कर व क्ष से लिपट जा। हे मल्लिका लता ! तू अब कदम्ब के सहारे को मत छोड़ना वरन् लिपटी रहना।

विशेष : 1. नारी के लिए प्रियतम के अवलम्ब का महत्त्व बताया गया हैं

2. छेकानुप्रास व पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकारों का सहज प्रयोग किया गया है।

(58) **कुलिश किसी पर कड़क रहे हैं,**
आली, तोयद तड़क रहे हैं,
कुछ कहने के लिए लता के,
अरुण अधर वे फड़क रहे हैं।
मैं कहती हूँ-रहें किसी के,
हृदय वही जो धड़क रहे हैं।
अटक अटक कर, भटक भटक कर,
भाव वही जो भड़क रहे हैं।

सन्दर्भ-प्रसंग :- वर्षा काल में मेघ गर्जन एवं उसमें होने वाली प्राणियों की दशा का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं-

व्याख्या :- उर्मिला कहती है अरे सखी ! देख गगन में वज्र की गुरु गर्जना हो रही है। मानो बादल ही परस्पर गर्ज-तर्ज रहे हों। इस समय लता के पल्लव प्रकम्पित हो रहे थे, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो इस लता के अरुण अधर कुछ उत्तर देने के लिए फड़क रहे हैं। किन्तु सखी मुझे यह भी है कि इस गर्जन को सुनकर न जाने कितनी अबला कामिनियों के हृदय धड़क रहे होंगे।

विशेष :- 1. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

2. कुछ कहने के लिए लता के अरुण अधर फड़क रहे हैं में फलोत्प्रेक्षा।

3. भाषा प्रवाहमयी है।

(59) **मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,**
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी,
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली-झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी,
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी?

शब्दार्थ :-अलिंद-छज्जा। गमकना-महकना। स्वनूपुर-अपनी पाजेब। चंचला-बिजली। घनाली-मेघों का समूह।

सन्दर्भ-प्रसंग :- प्रकृति का स्वभाव है जब कभी किसी साम्य वस्तु का दर्शन किया जाये तो अनुरूप द श्य का स्मरण हो ही जाता है।, विशेषकर वियोगी जीवन में प्रिय-प्रिया के ह्रदय पटल में इसका आभास अधिक होने लगता है। यही नहीं वे विरहावस्था की स्म ति दशा में विरहाधिक्य के कारण उस निगूढ़ भाव एवं चरित्र को तुरन्त अभिव्यक्त कर देते हैं। यही दशा यहाँ उर्मिला की है। वह कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी एक रात्रि को मैं अपने अलिन्द में खड़ी हुई थी, उस समय गगन में घनघटा आच्छादित थी एवं नन्हीं-नन्हीं बूँदें पड़ रही थीं। उसमें केतकी की गन्ध चारों ओर गमक रही थी। मेरे मन को आनन्द देने वाली झींगुरों की झनकार सुनाई पड़ रही थी, उस झनकार का अनुकरण अपने नूपूर की झनकार से मैं भी करने लगी। उस समय अचानक ही बिजली चमक उठी एवं घनघोर बादल छा गये। मैं चौंक पड़ी एवं देखा कि मेरे प्रियतम चुपचाप कोने में खड़े हुए थे। मैं लज्जित हो गई, किन्तु उस समय लज्जा से अरुण मुख को प्रिय की छाती में लिपट कर छिपा लिया।

विशेष :- 1. वर्षा का नैसर्गिक चित्रांकन है।

2. अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

3. "इसमें उर्मिला आलम्बन विभाव है। बूँदों का पड़ना, घटा का छाना, फूल का गमकना, झिल्लियों का झनकारना उद्दीपन है। छाती में मुँह छिपाना प्रेमी का अनुभाव है। लज्जा, स्म ति, विबोध आदि संचारी भाव हैं। इन भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव विप्रलम्भ श ंगार रस में परिणत होकर ध्वनित होता है।

(60) **तम में तू भी कम नहीं, जी, जुगनू बड़ भाग,**
भवन भवन में दीप हैं, जा वन वन में जाग।
हा ! वह सहृदयता भी क्रीड़ा में है कठोरता जड़िता,
तड़प-तड़प उठती है स्वजनि, घनालिंगिता तड़िता !
गाढ़ तिमिर की बाढ़ में डूब रही सब स ष्टि,
मानों चक्कर में पड़ी चकराती है द ष्टि।

शब्दार्थ :- बड़भाग-सौभाग्यशाली है। स्वजनि-हे सखि। घनालिंगिता-मेघ के आलिंगन में आबद्ध।

संदर्भ-प्रसंग :- वियोगावस्था में जुगनू को देखकर उर्मिला उससे कह रही है।

व्याख्या :- हे जुगनू ! भले ही तेरा प्रकाश बहुत कम होता है, लेकिन उसका भी महत्त्व है। तू सौभाग्यशाली है जो देदीप्यमान रहता है। तू चिरंजीवी हो। एक बात का तू ध्यान रख कि यहाँ तो घर-घर में दीपकों का प्रकाश है। अतः तू यहाँ न जगमगा कर वन-वन जाकर अपना प्रकाश फैला। हो सकता है किसी वन में मेरे प्रियतम को भी तेरे चमकने से लाभ हो। मेघ में से चमकती तड़ित को देखकर उर्मिला कहती है कि कभी-कभी संयोग की कोमल क्रीडाएं भी कठोर बन जाती हैं जैसे कि मेघ से आलिंगनबद्ध बिजली उसके कसने से बार-बार तड़प उठती है।

वर्षा के कारण रात्रि का अंधेरा बढ़कर गाढ़ा हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो अंधेरे की बाढ़ में सारा संसार डूब रहा हो। जैसे चक्कर आ जाने पर द ष्टि चकरा जाती है और उसे चारों ओर अंधेरा दिखायी देने लगता है।

विशेष : 1. पहले पद्यांश में उर्मिला का अपने प्रियतम के प्रति अगाध प्रेम प्रदर्शित हुआ है। वह अंधेरे में रह रहे पति के मार्ग को प्रशस्त करने हेतु जुगनू को वहाँ जाने का अनुरोध करती है।

2. पुनरुक्तिप्रकाश, छेकानुप्रास, रूपक, अलंकारों का सहज प्रयोग है।

3. बिम्ब योजना सुन्दर आकर्षक बन पड़ी है।

4. सुन्दर शब्द शिल्प हैं।

(61) **रह चिरदिन तू हरी-भरी,**
बढ़ सुख से बढ़ स ष्टि-सुन्दरी,

सुध प्रियतम की मिले मुझे,
जन जीवन-दान का तुझे।
हँसो, हँसो हे शशि, फूल, फूलो,
हँसो, हिंड़ोरे पर बैठ झूलो।
यथेष्ट में रोदन के लिए हूँ,
झड़ी लगा दूँ, इतना पिये हूँ।
प्रकृति, तू प्रिय की स्म ति-मूर्ति है,
जड़ित चेतन की त्रुटि-पूर्ति है।
रख सजीव मुझे मन की व्यथा,
कह सखी, कह, तू उनकी कथा।

शब्दार्थ :- चिरदिन-सदैव। हिंड़ोरा-झूला। यथेष्ट-पर्याप्त। रोदन-रोनां। स्म ति-मूर्ति-स्म ति रूपी मूर्ति। त्रुटिपूर्ण-भूलवाली। व्यथा-पीड़ा।

संदर्भ-प्रसंग :- इन पद्यांशों में उर्मिला प्रकृति व उसके उपादानों-वर्षा, चाँद, फूल इत्यादि के प्रति सहानुभूति व्यक्त कर रही है।

व्याख्या :- हे वर्षा ऋतु ! तू सदैव हरी-भरी बनी रह। हे स ष्टि की सुन्दरी ! तू बढ़ती रह, सुखपूर्वक विकसित हो। तुझे देखकर मुझे अपने प्रियतम की स्म ति बनी रहती है। मुझे भी सभी जीवों को जल के द्वारा जीवनदान करने का फल मिलता रहे।

हे चाँद ! तुम सदैव हँसते रहो। हँसते हुए अपनी चाँदनी बिखरते रहो। हे फूल, तुम खिले रहो। लता के हिंडोले में बैठ कर झूलते रहो। तुम को बुरे दिन न देखने पड़ें। मैं ही रोने के लिए पर्याप्त हूँ। मैं वेदना-जल को इतना पिये हुए हूँ कि चाहे आँसुओं के रूप में उसकी झड़ी लगा दूँ।

हे प्रकृति ! तू मेरे प्रियतम की स्म ति का साकार रूप हो अर्थात् तुझे देखकर मुझे अपने प्रियतम की याद बनी रहती है। तुम उन चेतन प्राणियों के कष्टों को दूर करने वाली हो, जो दुःखों के कारण जड़-सा जीवन जी रहे हैं। मैं चाहती हूँ कि मेरे मन की पीड़ा मुझे स्पन्दित किए रहे। उर्मिला सखी से भी यही चाहती है कि वह उसके प्रियतम की कहानी व अतीत के सुखद प्रसंग उसे सुनाती रहे ताकि उसका मन लगा रहे।

विशेष : 1. उर्मिला सामान्य विरहणियों से भिन्न है कि उसे प्रकृति से सहानुभूति होती है, द्वेष नहीं।

2. उर्मिला सबके सुख की कामना करती है।
3. वर्षा को 'स ष्टि-सुन्दरी' इसलिए कहा गया है क्योंकि उसके बरसने के बाद निष्प्राण धरती हरी-भरी होकर आकर्षक दिखाई देने लगती है।
4. विरोधाभास, पुनरुक्तिप्रकाश, रूपक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।
5. भाषा सरल और प्रवाहमय है।

(62) **निरख सखी, ये खंजन आये,**
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये !
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहीं, ये हंस यहाँ उड़ छाये !
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बन्धूक सुहाये !

स्वागत, स्वागत, शरद् भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, ये अश्रु अर्ध्य पर लाये !

शब्दार्थ :- निरख-देखो। खंजन-एक पंछी। आतप-धूप, आलोक। सर-सरोवर। बन्धूक-लाल रंग का एक फूल प्रायः अधरों की तुलना की जाती है। शरद्-शरद् ऋतु जिससे शीतकाल की शुरुआत होती है। अर्ध्य-पूजा हेतु जल।

संदर्भ-प्रसंग :- प्रस्तुत गीत में उर्मिला ने वर्षा की समाप्ति पर शरद ऋतु के आगमन का स्वागत करते हुए प्राकृतिक उपादानों में अपने प्रियतम की छवि देखी है।

व्याख्या :- हे सखी ! देखो शरद् ऋतु प्रारम्भ हो गई है। ये खंजन पक्षी आ गये हैं। मुझे तो लगता है कि जैसे इन खंजन पक्षियों के आने के माध्यम से मेरे प्रियतम ने ही अपने नेत्र इस ओर घुमाए हों। (खंजन की उपमा नेत्रों से दी जाती है और उर्मिला की खंजन को देखकर प्रिय के नेत्र याद आ जाते हैं। नेत्रों को नेत्र ही सबसे अच्छे लगते हैं। यहाँ भी उर्मिला को अपने प्रियतम के नेत्रों का उपमान अच्छा लगता है-जो स्वाभाविक है।) इस ऋतु में चारों ओर कष्ट की अपेक्षा आनन्द देने वाली धूप फैल गई है। यह मेरे प्रियतम के शरीर का प्रकाश है-शरीर का सौन्दर्य है। इस ऋतु के आने पर तालाब में चारों ओर कमल खिल उठे हैं, वे ऐसे प्रतीत होता हैं, मानो उनका सरस और स्निग्ध मन ही हो। उनके मन की स्निग्धताके कारण ही तालाब सरसित हो गये हैं। (मन की उपमा तालाब से दी जाती है।) मेरे प्रियतम जहाँ हैं, वहाँ से इस ओर घूमे होंगे-उन्होंने मेरा और यहाँ का स्मरण किया होगा-इसी कारण ये हंस उड़कर यहाँ आ गये हैं। (चाल की उपमा हंस से दी जाती है अतः मुड़ने पर दूसरे का यहाँ आ जाना एक प्रमाण है।)

हे सखी ! मेरे प्रियतम आज मेरा ध्यान करके अवश्य ही मुस्कराये हैं इसलिए ये कमल फूल उठे हैं। हँसते समय उनके लाल-लाल होंठ जो प्रस्फुटित हुए हैं-उसी कारण ये दुपहरिया के फूल खिल उठे हैं। हे शरद् ऋतु ! तुम्हारा स्वागत है। मेरा परम सौभाग्य है, जिससे कि तुम्हारे (शरद् के द्वारा प्रियतम के भी) दर्शन मिल गये हैं। तुम्हारे इस शुभ आगमन पर केवल मैं ही प्रसन्न होऊँ ऐसा नहीं है। वरन् आकाश भी प्रसन्नतापूर्वक अपनी ओस की बूँदें मोती न्योछावर कर रहा है और इधर मेरे नेत्रों में जो आँसू आ गये हैं, वही तुम्हारे शुभागमन के अवसर पर अर्पित अर्ध्य है। हे शरद ऋतु ! तुम इन सबको स्वीकार कर कृतार्थ करो।

विशेष :- 1. प्रकृति का मोहक चित्रण है।

2. भाव-साम्य।

पावा रूप रूप जस चहा।
ससि मुख जनु दरपन होइ रहा।।
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।।

3. अपह्नुति, अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

4. भाषा सरल सहज है।

(63) **कोक शोक मत कर हे तात,**
कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो, सुन तू मेरी बात।
धीरज धर, अवसर आते हैं सह ले यह उत्पात,
मेरा सुप्रभात वह तेरी सुख-सुहाग की रात !

शब्दार्थ :-कोक-चकवा। तात-बेटा। कोकि-चकवी। उत्पात-कष्ट।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला इन पंक्तियों में वियोगी चकवे व वियोगिनी चकवी को सांत्वना देते हुए कहती है।

व्याख्या :- हे कोक ! तुम शोक न करो। यह शोक करने का अवसर नहीं है वरन् वियोग को धैर्यपूर्वक सहने और स्वीकार करने का अवसर है। हे कोकी ! तू भी शोकमग्न न हो, जरा मेरी बात सुन। संसार में अकेली तू ही कष्ट में या वियोग

में नहीं पड़ी है वरन् और भी तेरे समान कष्ट में हैं-दु:ख भोग रहे हैं। दूसरे कष्ट भोगने वालों में तू मेरी गिनती कर सकती है। मैं भी अपने प्रियतम के वियोग में अत्यन्त दु:खी हूँ। आज जो चारों ओर से तेरे ऊपर अत्याचार हो रहा है उसे सह ले, धैर्य धारण कर ले और यह सोच ले कि इस वियोग के बाद संयोग का अवसर भी आएगा। प्रियतम से तेरा मिलन भी होगा। जो इन लोगों के लिए मंगलकारी है, वह तेरे भी सुख-सुहाग का प्रभात देने वाली रात होगी।

विशेष :- 1. 'ध ति संचारी की व्यंजना है'।

2. उर्मिला के आदर्श चरित्र की प्रस्तुति है।

3. सरल सहज भाषा है।

(64) किसने मेरी स्म ति को
बना दिया है निशीथ में मतवाला !
नीलम के प्याले में
बुदबुद दे कर उफन रही वह हाला !

शब्दार्थ :- निशीथ-रात्रि। हाला-शराब। नीलम-नीलमणि।

संदर्भ-प्रसंग :- अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए उर्मिला कर रही है।

व्याख्या :- हे सखि ! जिस प्रकार प्याले में शराब बुदबुदे उत्पन्न करती है और उसका सेवन करने वाला मतवाला होकर अपनी याद खो देता है, उसी प्रकार तारों से भरी इस रात्रि ने मेरी वियोग-वेदना को उद्दीप्त करके मुझे मतवाला-सा बना दिया है। उर्मिला को आकाश प्याले के समान तथा तारे शराब के बुलबुलों के समान दिखाई दे रहे हैं।

विशेष : 1. वियोगिनी उर्मिला का सहज चरित्रांकन है।

2. भाषा सहज, सरल व स्वाभाविक है।

(65) लोल लहरियाँ डोल रही हैं,
भू-विलास-रस घोल रही हैं,
इंगित ही में बोल रही हूँ।
मुखरित कूल किनारा !
सखि निरख नदी की धारा !
पाया-अब पाया-वह सागर,
चली जा रही आप उजागर।
कब तक आवेंगे निज नागर,
अवधि-दूतिका-द्वारा ?
सखि, निरख नदी की धारा।
मेरी छाती दलक रही है,
मानस-शफरी ललक रही है,
लोचन सीमा झलक रही है,
आगे नहीं सहारा !
सखि, निरख नदी की धारा।

शब्दार्थ :- लोल लहरियाँ-चंचल लहरें। भू-विलास-भौ-संचालन। मुखरित-ध्वनित। नागर-प्रियतम। ढलकना-दु:खी होना। मानस-हृदय। शफरी-मछली।

संदर्भ-प्रसंग :- वियोगिनी उर्मिला सरिता के सम्मुख खड़ी अपने भावों को प्रकट कर रही है।

व्याख्या :- हे सखि ! नदी को देखा। उसकी धार में चंचल लहरें डोल रही हैं, जो रमणियों के समान भौहों के संचालन से उत्पन्न आनन्द दे रही हैं। लज्जा के कारण मानों इशारों द्वारा ही अपनी बात कर रही हैं। उनके किनारे से टकराने से वह भी मुखरित हो उठता है।

नदी अपने प्रियतम सागर से मिलने की लालसा लिए गतिशील है। वह इसी भाव से प्रसन्न हुए चली जा रही है कि उसका प्रियतम सागर बस अभी मिल जायेगा। नदी रूपी नायिका की मिलनोत्कण्ठा देख विरहिणी उर्मिला को भी अपने प्रियतम की स्म ति आ जाती है। वह सोचती है कि न जाने मेरे प्रियतम अवधि रूपी दूतिका के द्वारा कब तक मिलवाये जायेंगे अर्थात् बनवास की अवधि समाप्त होने पर ही मेरे प्रियतम मुझसे मिलेंगे।

प्रियतम के दर्शनों के लिए मैं व्यग्र हो रही हूँ। मेरी छाती फटने को है। मेरे हृदय रूपी मछली प्रियतम की छवि निहारने के लिए व्याकुल है। जहाँ तक आँखें देखती हैं अभी आशा की कोई किरण दिखाई नहीं देती। अवधि अभी लम्बी है और कोई सहारा भी दिखाई नहीं देता।

विशेष : 1. नदी लहरों का वर्णन विलक्षण बन पड़ा है।

2. नदी पर वियोगिनी नायिका का आरोप मार्मिक बन पड़ा है।
3. रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास अलंकारों का सहज प्रयोग है।
4. 'अवधि-दूतिका' तथा 'मानस-शफरी' में एक रूपक अलंकार देदीप्यमान है।
5. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

(66) **मेरी दुर्बलता क्या**
दिखा रही तू अरी मुझे दर्पण में ?
देख, निरख मुख मेरा
वह तो धुँधला हुआ स्वयं ही क्षण में !
एक अनोखी मैं ही
क्या दुबली हो गई सखी, घर में ?
देख, पद्मिनी भी तो
आज हुई नालशेष निज सर में !

शब्दार्थ :-निरख-देखकर। पद्मिनी-कमलिनी। नालशेष-जिसकी केवल नाल शेष रही गई है।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला की सखी उसे दर्पण दिखा कर यह बताना चाहती है कि वह कितनी कमजोर हो गयी है इस पर उर्मिला कहती है।

व्याख्या :- मुझे दर्पण में मेरी कमजोरी क्या दिखा रही है। मेरे मुख पर सच्चे प्रेम की इतनी आभा है कि उसके समक्ष दर्पण पल भर में स्वयं ही शरमा कर धुंधला हो जायेगा। इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि दर्पण पर मेरे निःश्वासों वे वह धुँधला हो जाएगा, तो वह मुझे क्या दिखा पायेगा।

पूरे घर में एक मैं ही तो क्षीण नहीं हुई। सभी उदास व परेशान हैं। यहाँ तक कि प्रकृति के पदार्थ भी लक्ष्मण के वियोग में परेशान हैं। सरोवर में रहते हुए भी कमलिनी पूर्णतया सूख गई है। उसकी केवल नाल बची है।

विशेष : 1. विरहिणी उर्मिला के स्वाभिमान तथा असहायता की एक साथ अभिव्यक्ति है।

2. व्यतिरेक, छेकानुप्रास अलंकार हैं।
3. 'एक अलेखी...घर में' पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

(67) **हम राज्य लिए मरते हैं ?**
सच्चा राज्य परन्तु मारे कर्षक ही करते हैं।

जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न,
पत्नी सहित विचरते हैं ये, भव-वैभव भरते हैं,
हम राज्य लिए मरते हैं।
वे गो-धन के धनी उदार,
उनको सुलभ सुधा की धार,
सहनशीलता के आगर वे श्रम-सागर तरते हैं,
हम राज्य लिए मरते हैं।
यदि वे करें उचित है गर्व,
बात बात में उत्सव-पर्व,
हम-से प्रहरी रक्षक जिनके, वे किससे डरते हैं ?
हम राज्य लिए मरते हैं।

शब्दार्थ :- सम्पन्न-सम द्ध, धनी। कर्षक-किसान। भव-वैभव-सांसारिक ऐश्वर्य। प्रहरी-पहरेदार। आगर-भण्डार।

संदर्भ-प्रसंग :- कृषक बाला की बातों को सुनकर उर्मिला सच्चा राज्य किसानों का ही समझती है। उनके कर्मों के समक्ष वह अपना राज्य भी तुच्छ समझती है। वह सखी से कहती है-

व्याख्या :- हे सजनी ! हम क्षत्रिय गण राज्य प्राप्त करके परस्पर मिथ्याभिमान करते हैं एवं लड़ते रहते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सच्चा राज्यसुख तो कृषक वर्ग भोगते हैं। उन किसानों के खेतों में अन्न उत्पन्न होता है एवं वे उनसे सम्पन्न प्रतीत होते हैं। वे पत्नी सहित विचरण करते रहते हैं एवं संसार में वैभव भरते हैं। हम व्यर्थ ही राज्य के लिए स्वाभिमान करते हैं। वे गो-धन के धनी एवं उदार गो-पति हैं एवं गोरस को मुफ्त में प्रदान करने वाले हैं। अम त सम दुग्ध उनको सुलभ है। वे सहनशीलता के आंगार हैं, वे सभी की बातें एवं सुख-दुःख सहते रहते हैं। इस सहनशीलता के द्वारा वे श्रम रूपी सागर को पार करते रहते हैं। हम व्यर्थ ही राज्य के प्रति मिथ्याभिमान करते हैं।

हे सखी ! यदि वे किसान इस राज्य पर गर्व करें तो उचित है। उनके यहां आये दिन उत्सव एवं पर्व मनाये जाते हैं। अरी आली ! हम क्षत्रिय जैसे उनके प्रहरी एवं रक्षक विद्यमान हैं तब उनको किसका डर है। हम झूठे ही राजा बनते हैं।

विशेष : 1. किसानों के सहज, सरल जीवन का चित्रांकन है।

2. 'हम राज्य लिए मरते हैं' द्वारा शासन-विसंगति का चित्रण है।
3. रूपक, पुनरुक्ति प्रकाश, उपमा आदि अलंकारों की छटा है।
4. उर्मिला का उदार चरित्रांकन है।

(68) **प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार,**
म त्यु दण्ड उन तात को, राज्य, तुझे धिक्कार !
चौदह चक्कर खायेगी जब यह भूमि अभंग,
घूमेंगे इस ओर तब प्रियतम प्रभु के संग।
प्रियतम प्रभु के संग आयेंगे तब हे सजनी,
अब दिन पर दिन गिनो और रजनी पर रजनी!
पर पल पल ले रहा यहाँ प्राणों से टक्कर,
कलह-मूल यह भूमि लगावै चौदह चक्कर !

सिकुड़ा सिकुड़ा दिन था, सभीत-सा शीत के कसाले से,
सजनी, यह रजनी तो जम बैठी विषम पाले से !

शब्दार्थ :-निष्कासन-निकाला। तात-पिता। अभंग-पूरे। कलज-कूल-झगड़े की जड़। कसाले-कष्ट, पीड़ा।

सन्दर्भ-प्रसंग :- विरह व्यथित बाला उर्मिला अपने प्रिय के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार व्यक्त करती है। साथ ही उससे सम्बन्धित व्यक्ति एवं वस्तुओं पर भी कुछ शब्द कह देती है। वह अपने एकांकी जीवन के सम्बन्ध में कहती है-

व्याख्या :- अरी सखी ! इस राज्य के कारण ही प्रभु श्रीराम एवं लक्ष्मण को वनवास प्राप्त हुआ। मुझे कारागार सद श दुःख उठाना पड़ा एवं राजा दशरथ को काल के कराल गाल में जाना पड़ा। अतएव मेरी द ष्टि में ऐसे राज्य को धिक्कार है। इस प्रकार समस्त ऋतुओं का वर्णन करती हुई उर्मिला को प्रिय का स्मरण हो आता है एवं एक गूढ़ वेदना से आह भरती हुई वह कह उठती है-अरी सखी ! यह अखण्ड भूमि जब चौदह बार प्रत्येक ऋतु का भोग कर लेगी अर्थात् चौदह वर्ष व्यतीत हो जायेंगे तब प्रभु श्रीरामजी के साथ मेरे प्राणनाथ इधर पधारेंगे।

हे सजनी ! चौदह वर्षोपरान्त ही प्रभु के साथ स्वामी पधारेंगे, तब तक मुझे रात और दिन एक-एक गिन कर काटने पड़ेंगे। किन्तु सखी ! अधैर्य मेरे हृदय में बढ़ता चला जा रहा है। प्राणों की बाजी आ पड़ी है। इस कलह-मूल भूमि पर जब चौदह वर्ष चक्कर लगाकर चले जायेंगे तब प्रियतम पधारेंगे। रात और दिन शीत एवं ग्रीष्म के कारण बढ़ते एवं घटते रहते हैं। शीतकाल में रात बड़ी एवं दिन छोटा हो जाता है। उसी का निरूपण करती हुई उर्मिला कहती है-अरी सखी ! शीत के प्रकोप के कारण भयभीत सा दिन सिकुड़ा हुआ प्रतीत होता था वह शीघ्र ही व्यतीत हो गया। किन्तु यह रात्रि तो शीत एवं पाले के कारण जमकर बैठ गयी है, जो काटने से भी नहीं कटती।

विशेष :- 1. उर्मिला का आदर्श चरित्र-चित्रण है।

2. लोकोक्ति हेतुत्प्रेक्षा (शीत के भय से दिन सिकुड़ता जाता है।) अलंकार है।
3. सरल, सहज भाषा का प्रयोग है।

(69) **शिशिर न फिर गिरि-वन में,**
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में।
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।
सखि कह रही, पाण्डुरता का क्या अभाव आनन में ?
वीर जगा दे नयन-नीर चदि तू मानस-भाजन में,
तो मोती-पा मैं अकिंचना रक्खूँ उसको मन में,
हँसी गई, रो भी न सकूँ मैं, -अपने इस जीवन में,
तो उत्कण्ठा है देखूँ फिर क्या हो भाव-भुवन में।

शब्दार्थ :- नन्दन-स्वर्ग में इन्द्र का उपवन, यहाँ उर्मिला का उपवन। पाण्डुरता-पीलापन। आनन-चेहरा, मुख। मानव-भाजन-हृदय रूपी पात्र। अकिंचना-बेचारी। उत्कण्ठा-इच्छा। भुवन-संसार।

सन्दर्भ-प्रसंग :- शिशिर ऋतु का सम्बोधन करती हुई उर्मिला कहती है कि वह व्यर्थ ही वन-उपवन में घूमती है। उसे अपने सारे उपकरण उर्मिला के शरीर में ही मिल सकते हैं-

व्याख्या :- हे शिशिर ! तू व्यर्थ ही वन और पर्वतों में घूमती हुई न फिर। मैं तुझे तेरे सरे अभीप्सित उपकरण देने में समर्थ हूँ। मेरा शरीर रूपी उपवन पतझड़ से युक्त है। तू कम्पन के वेग से सभी को कंपा देती है। मैं प्रियतम के विरह में दिन-रात काँपती रहती हूँ। अतः तुझे जितना कम्पन चाहिये, मेरे शरीर में मिल जायेगा। तू आकर समस्त वनस्पतियों को पीला कर देती है। तुझे यहाँ पीलापन भी मिलेगा क्योंकि मेरी सखी कहती है कि मेरे मुख में पीलेपन की कमी नहीं है।

हे शिशिर ! तुझे अपनी सखी मैं कहती हूँ। जल को जमा देने की तेरे में प्रव त्ति है। तू यदि मेरे हृदय रूपी वर्तन में मेरे अश्रुओं को जमा दे, तो मैं अकिंचन उस मोती के समान ही अपने मन में सहेज कर रख सकूं। अर्थात् उसे मैं अपने जीवन

का सर्वस्व बना लूँ। मैं इतनी विवश हूँ कि इस जीवन में रो भी नहीं सकती हूँ । यह जानने और देखने की मेरी अब यह प्रबल उत्कण्ठा है कि हँसने और रोने के अभाव में अब मेरे भाव-जगत में क्या शेष रह गया है ?

विशेष :- 1. छायावादी शैली में शिशिर ऋतु का मानवीकरण किया गया है।

2. अलंकार - मानवीकरण, रूपक, उपमा, काव्यलिंग।

3. उर्मिला की चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई विरह दशा का चित्रण हुआ है। वियोग में विवशता का सजीव चित्र अंकित हुआ है।

4. अनुभावों की सुन्दर योजना है। वैवर्ण्य, कम्प, अश्रु, शारीरिक, अनुभाव है।

(70)

काली काली कोइल बोली,-
होली - होली - होली !
हँस कर लाल लाल होठों पर हरियाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली।
होली - होली - होली !
अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अँखियाँ खोली,
मल दी ऊषा ने अम्बर में दिन के मुख पर रोली !
होली - होली - होली !
सभी फूलों ने पराग से भर ली अपनी झोली,
और ओस ने केसर उनके स्फुट-सम्पुट में भोली।
होली - होली - होली !
ऋतु ने रवि-शशि के पलड़ों पर तुल्य प्रकृति निज तोली,
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली ?
होली - होली - होली !
गूँज उठी खिली कलियों पर उड़ अलियों की टोली,
प्रिय की श्वास-सुरभि दक्षिण से आती है अनमोली।
होली - होली - होली !

शब्दार्थ :- अलस-आलस्य से भरी हुई। कलरव-मधुर स्वर। रोली-कुंकुम। स्फुट-सम्पुट-खुली हुई पंखुड़ियाँ, खुली हुई हथेलियाँ। सिहर उठी-उद्दीप्त हो उठी। भुवन-भावना-लौकिक सुखों की कामना। अलि-भँवरा।

सन्दर्भ-प्रसंग :- होली का पर्व हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध पर्व है। उसमें रंगरलियाँ, नाचगबान एवं सुन्दर खान-पान की अधिकता रहती है। बसन्त का प्रसार हो जाता है। नर नारी ही क्या प्रकृति भी काम-विभोहित हो जाती है। कोकिल का कलरव होता है। सरसों का पुष्पित होना, हरियाली का छा जाना आदि सभी सुन्दरता की अभिव द्धि करते हैं। उसका वर्णन उर्मिला सखी से करती है-

व्याख्या :- हे सजनी ! अब काली कोकिल कूकने लगी है। अतः होली पर्व का आगमन हो गया है। लाल-लाल किसलय आ गये हैं। प्रकृति रूपी नायिका को पीली चोली को फाड़कर मानो यौवन निखर आया हो। होली है होली। कमलिनी सर में खिली हुई है। मानो आज आलस्य मन कमलिनी ने सूर्योदय के समय अपनी उन्मत्त आँखों को खोला है। उषा काल का समय लाल रंग का नहीं हुआ, मानो उषा रूपी नायिका ने दिन के सुख एवं वस्त्र में लाल रोली मल दी हो। कारण कि होली है।

फूलों में पराग आ गया है वह ऐसा ज्ञात होता है मानो अनुरागी पुष्पों में रंगने के हेंतु अपनी झोली पराग से भर दी

हो। उन पर ओस पड़ रही है। उससे ऐसा ज्ञात होता है मानो उसने उनके खुले सम्पुट में केसर धोल दी हो।

आज रात-दिन-सूर्य-चन्द्र सभी बराबर हैं। न गर्मी है न सर्दी। अतः ऋतु ने आज सूर्य चन्द्र रूपी तराहू के पलड़ों में अपनी प्रकृति को समान रूप से तोल दिया है। न जाने क्यों मेरी भोली भुवन भावना आज सिहर उठी है। आज सभी में मस्ती छा गई है। देखो ! अलियों की टोली खिली हुई कलियों पर मंडराने लगी है अथवा नव यौवन सम्पन्न नायिकाओं पर युवक एवं युवतियों की टोली उनका आनन्द लेने के लिए मंडराने लगी हैं। इस समय दक्षिण दिशा में मेरे स्वामी प्रियतम की अमूल्य श्वास-वायु चली जा रही है।

विशेष :- 1. इस प्रगीत में प्रकृति का पूर्ण यौवन एवं उसका नया रूप दिखलाया है। इसके साथ ही प्रकृति में भी होली की उमंग बसन्त की तरंग एवं काम का प्रभाव दिखलाया है। कवि ने उर्मिला की दशा का भी इस यौवन वन सम्पन्न प्रकृति के मध्य उचित वर्णन किया है।

2. होली की तरंग एवं उसका रंग सभी में ज्ञात होता है। उचित उपमा का प्रयोग किया गया है।
3. अपह्नुति उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, अनुप्रास एवं उपमा अलंकारों का प्रयोग है।
4. भाषा सरल सहज है।

(71) **जा, मलयानिल, लौट जा, यहीं अवधि का शाप,**
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप !
भ्रमर, इधर मत भटकना, ये खट्टे अंगूर,
लेना चम्पक-गंध तुम, किन्तु दूर ही दूर,
सहज मात गण गन्ध था कर्णिकार का भाग;
विगुण रूप-द ष्टान्त के अर्थ न हो यह त्याग।

शब्दार्थ :- मलयानिल-मलय पर्वत से आने वाली वुाय जो शीतल व सुरभित होती है। चम्पक गंध-चम्पा के फूल की सुगन्ध। कर्णिकार-कनेर का पुष्प।

सन्दर्भ-प्रसंग :- उर्मिला अपने प्रिय-विरह से विदग्ध हुई वसन्त के उपकरणों को नहीं चाहती। वह उनमें कोई दोष न लगाकर स्वयं को दोष-पूर्ण बताकर उन्हें अपने पास से वापस भेजना चाहती है। प्रथम वह मलयानिल को सम्बोधित करती हुई कहती है-

व्याख्या :- अरी मलयालिन (पवन) जा लौट जा ! मैं विरहानल के कारण संतप्त हो रही हूँ। यह अनल प्रिय-आगमन-अवधि पर्यन्त रहेगा, अतः तभी तक मैं गर्म रहूँगी, क्योंकि मुझे अवधि का शाप है। इस कारण मुझे आशंका है कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा तन स्पर्श करके तू गर्म हो जावे एवं लू बनकर स्वयं को लगने लगे। उर्मिला विरह के कारण पीली पड़ गई है। उसमें न गन्ध है और न सुन्दरता वह अपने को चम्पक सद श बतलाती हुई भ्रमर से कहती है-

हे भ्रमर ! तू इधर (मेरी ओर) भूलकर भी मत आना। नहीं तो खट्टे अंगूर की भाँति तुझे पछताना पड़ेगा। अरे तू दूर ही से मुझ रूपी इस चम्पक पुष्प की गन्ध ग्रहण करना। कर्णिकार (जिसे कनेर कहते हैं) में गन्ध या गुण नहीं होता। केवल वह दर्शनीय होता है। उसी का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं-कर्णिकार भाव मात्र के अनुसार ही गन्ध-गुण से समन्वित होता है किन्तु इसमें यह विशेषता है कि गुणहीन होता हुआ रूप-सौन्दर्य उपस्थित करने के हेतु इसने उस गुण का भी त्याग कर दिया है।

विशेष :- 1. प्रथम छन्द में विरहाधिक्य का वर्णन है।

2. अतिशयोक्ति अलंकार है।
3. भाषा सरल और प्रभावी है।

(72) **मुझे फूल मत मारो।**
मैं अबला वाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो !

होकर मधु के मीत मदन, पटु, तुम कटु गरल न गारो,
मुझे विकलता, तुम्हें विफलता, ठहरो, श्रम परिहारो।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर-बिन्दु यह-यह हरनेत्र निहारो !
रूप-दर्प कन्दपं, तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो।

शब्दार्थ :- मदन-कामदेव। पटु-बुद्धिमान। गरल-विष। गारो-धोली। विकलता-व्यथा। परिहारो-दूर करो। हरनेत्र-शिव का नेत्र; कहा जाता है कि शिव ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था। रूप-दर्प-रूप का घमण्ड। कंदर्प-कामदेव। रति-कामदेव की स्त्री का नाम।

सन्दर्भ-प्रसंग :- पुष्पों की शोभा को देखकर विरहिणी उर्मिला दुःखी हो जाती है, उसे ऐसा लगता है, मानो वे उसको मारना चाहते हैं। समय को अपने प्रतिकूल समझकर वीर क्षत्राणी उर्मिला दयनीय दशा में याचना करती हुई कहती है-

व्याख्या :- हे कामदेव ! मुझे पुष्प न मारो। मुझे कष्ट मत दो। मैं अबला (बल रहित) हूँ, बाला एवं वियोगिनी हूँ। मुझे पति का सान्निध्य प्राप्त नहीं है। मुझ पर कुछ तो दया कीजिये। मैं मानती हूँ कि हे कामदेव ! तुम बसन्त के मित्र हो। किन्तु हे चतुर देव ! उस बसन्त के मित्र होकर तुम्हें कटु गरल की वर्षा नहीं करनी चाहिए। कारण कि मधु का मित्र भी स्वभाव से मधु होना चाहिए, कटु नहीं। यदि मुझ पर तुम अपना विष वमन करोगे तो तुम्हारा श्रम व्यर्थ जायेगा क्योंकि मुझको विकलता प्राप्त होगी, किन्तु तुम मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, अतः तुमको विफलता प्राप्त होगी। हे मदन ! तुम कितना भी अपना जाल पसारो, मैं उसमें फँसने वाली नहीं हूँ। मैं संयम से रहने वाली नारी हूँ। मैं भोंगिनी बाला नहीं, जो विमोहित होकर सतीत्व छोड़ दे। विरहिणी उर्मिला को क्रोध आ जाता है। वह कहती है, हे काम, सावधान ! यदि तुझ में बल है तो वह मेरे मस्तक पर लगा हुआ सिन्दूर बिन्दु देखो। यह हर नेत्र की तरह तुझे भस्म कर डालेगा।

अरे कन्दर्प ! तुझे यदि रूप का दर्प है तो मेरे पति तुझसे भी अधिक रूपवान हैं। उन पर इसे न्यौछावर कर दे। ले मेरी चरण-धूलि ले जा और अपनी पत्नी रति पर डाल दे।

विशेष :- 1. इस पद में उर्मिला का सतीत्व-बल प्रदर्शित किया गया है।

2. "मुझे फूल मत मारो" व्यंग्यात्मक काव्य का प्रतीक है। इसके दो अर्थ हैं।

(1) हे पुष्प ! मुझको न मारो अथवा सताओ।

(2) हे काम ! मुझको तुम अपने पुष्प वाणों से न मारो। यहाँ कामदेव को पुष्प-धन्वा कहे जाने वाली उक्ति से लाभ उठाया गया है। पुष्प-सर भी कामदेव का नाम है।

3. 'मधु' और 'रति' में श्लेष, साथ ही परिष्कर, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यंग्योक्ति आदि अलंकार हैं।

(73) **सहज, सजल सौन्दर्य का जीवनधन तू पद्म,**
आर्य जाति के जगत की लक्ष्मी का शुभ सद्म।
क्या यथर्थ है यह विश्वास,
खिल सहस्त्रदल, सरस सुवास।
रह कर भी जल-जाल में तू अलिप्त अरविन्द,
फिर तुझ पर गूँजे न क्यों कविजन-मनोमिलिन्द !
कौन नहीं दानी का दास ?
खिल सहस्त्रदल, सरस सुवास।
तेरे पट है खोलता आकर दिनकर आप;
हरता रह निष्पाप तू हम सबके सन्ताप।

ओ मेरे मानस के हास !

खिल सहस्रदल, सरस सुवास।

शब्दार्थ :- सजल-रमणीय। सद्य-घर। अलिप्त-अनासक्त, विलग। अरविन्द-कमल। पद्य-कमल। मनोमिलिन्द-मन रूपी भ्रमर। पट-पंखुड़ियाँ। मानस-हृदय, मानसरोवर। हास-हँसी, शुभ्रता, उज्ज्वलता।

सन्दर्भ-प्रसंग :- बसन्त ऋतु में कमल सरोवर में सहज भाव से खिलते रहते हैं। राजोद्यान में सहस्रदल कमल होता है, जिसकी अनुपम शोभा होती है उसको देखकर उर्मिला कहती है।

व्याख्या :- हे सहस्रदल कमल ! तू सरस सुगन्धमय होकर पुष्पित होता रहे एवं मैं तुझको प्रसन्नतापूर्वक देखती रहूँ। इस संसार में अम्बु (पानी) कुल के सद श कोई भी स्वच्छ एवं मल (विकार) रहित नहीं है। अरे जिसमें उत्पन्न होने वाला अम्बुज तू कितना स्वच्छ एवं सुन्दर है अतएव धन्य है, तू धन्य है। तू इस सरोवर के वैभव को विकसित करने वाला एक मात्र साधन है। तू खिलता रह।

अरे कमल ! इस संसार में न फूलों के साथ फल होता है और न फलों के साथ फूल होता है। वास्तव में तू ही ऐसा फूल है जिसके साथ फल होता है। तू मधु (रस) का अनोखा आगार है। तू सुगन्ध एवं रसमय होकर खिलता रह। अरे कमल ! संसार में तेरे उपमेय तो अनेक हैं किन्तु उन सबका एकमात्र तू ही उपमान है। इसी कारण से रूप, रंग, गुण एवं गन्ध में तू ही गौरवशली एवं प्रख्यात है। हे कमल ! तू नर-नारियों के अंगों को आभासित करने वाला है। तू सदैव पुष्पित होता रह। अरे कमल ! तू उन प्रियतम के शोभामय हस्त के सद श है तू रति के मुख के सद श है और सरस है। तू लीला (कटाक्ष) करने वाले नयनों के सद श नलिन है। तू प्रभु के पद के तुल्य राजीव है। तू मेरे मन-सरोवर की लहरों को लेकर रास रचता रह एवं सरस होकर खिलता रह।

विशेष :- 1. कमल का सौन्दर्य-चित्रण है।

2. सूर्य का मानवीकरण।

3. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

4. संस्कृतनिष्ठ प्रवाहमयी भाषा है।

(74) **अरी, गूँजती मधुमक्खी,**

किसके लिए बता तूने वह रस की मटकी रक्खी ?

किसका संचय दैव सहेगा ?

काल घात में लगा रहेगा,

व्याघ बात भी नहीं कहेगा,

लूटेगा पर लक्खी;

अरी, गूँजती मधुमक्खी।

इसे त्याग का रंग नव दीजो,

अपने श्रम का फल है, लीजो,

जय जयकार कुसुम का कीजो,

जहाँ सुधा-सी चक्खी।

अरी, गूँजती मधुमक्खी।

शब्दार्थ :- रस की मटकी-शहद से भरा छता। दैव-भाग्य। व्याध-वहेलिया। घर लक्खी-लाखों छिद्रों वाला छत्ता।

संदर्भ-प्रसंग :- इस गीत में उर्मिला ने मधुमक्खी को सम्बोधित करते हुए उसे दैव व काल की निष्ठुरता के प्रति सचेत किया है।

व्याख्या :- हे मधुमक्खी ! इस रस को तू त्याग की भावना में बहकर छोड़ मत देना। इससे तू अपने परिश्रम का फल

प्राप्त करना। जिस फूल से तुझे रस प्राप्त हुआ है, उसको तू जय-जयकार करना। तूने ही अम त रस को चखा है।

विशेष :- 1. मधुमक्खी के संदर्भ से कथा-चित्रण है।

2. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।

3. प्रवाहपूर्ण सरस भाषा है।

(75) **छोड़, छोड़, फूल मत तोड़ आली, देख मेरा**
हाथ लगाते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं ?
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है,
दु:खिनी लता के लाल आँसुओं से छाये हैं।
किन्तु नहीं, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब,
रूप, गुण, गन्ध से जो तेरे मन भाये हैं,
जाये नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिए
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाये हैं।

शब्दार्थ :- लतिका-बेल। लाल-माणिक्य, पुत्र। जाये-पैदा किए।

सन्दर्भ-प्रसंग :- राजोद्यान में विराजमान विरहिणी उर्मिला अपनी सखी से अपने छली प्रियतम की कपटपूर्ण करनी का वर्णन कर रही थी, उसी समय उसकी द ष्टि पूजा के हेतु पुष्प तोड़ने वाली एक दूसरी सखी पर पड़ी। उसने उसको वहीं रोक दिया एवं इस प्रकार कहने लगी-

व्याख्या :- अरी आली ! तू फूल मत तोड़। तू छोड़ दे। देख तेरा हाथ लगते ही वे किस प्रकार से कुम्हलाये हैं। अपने क्षणिक विनोद में इतना भारी विनाश हो जाता है। इस जननी लता को फूल तोड़ने में अति दु:ख हुआ है। उससे जो लाल रस निकलता है, मानो अश्रुधारा बह रही है। इसके तुरन्त बाद ही उसके विचारों में परिवर्तन होता है एवं वह कहती है-नहीं नहीं। तू इन विकसित सभी फूलों को तोड़ ले, जो रूप, गुण एवं गन्ध में तुझे अच्छे लगते हों। इस लता ने इनको व्यर्थ ही झड़ने के लिए उत्पन्न नहीं किया, अपितु गौरव के साथ किसी पर चढ़ने को उत्पन्न किया है।

विशेष :- 1. लता का मानवीकरण है।

2. अतिशयोक्ति अलंकार है।

3. सरल भाषा है।

(76) **सखि बिखर गई हैं कलियाँ;**
कहाँ गया प्रिय झुकामुकी में करके दे रँग-रलियाँ ?
भुला सकेंगी पुनः पवन को अब क्या इनकी गलियाँ !
यही बहुत, ये पर्चे उन्हीं में जो थी रँगस्थलियाँ !

शब्दार्थ :- झुकामुकी-अनजाने में। रँग-रलियां-प्रेम क्रीड़ा।

संदर्भ-प्रसंग :- बिखरी हुई कलियों को निहार कर उर्मिला अपनी सखी को सम्बोधित कर कह रही है।

व्याख्या :- उर्मिला बिखरी हुई कलियों को देखकर अपनी सखी से कहती है-अरी सखी ! देख ये पुष्प की कलियाँ बिखर गई हैं। अरे, वह प्रियतम रंगरेली करके न जाने कहाँ चला गया है। क्या पवन इस मार्ग को विस्त त कर सकेगा। वह तो विकसित होने पर सदैव आया करेगा। अब यही इच्छा होगा कि रंगस्थलियाँ इसी में समा जायें।

विशेष :-1. कलियों का उदाहरण देकर अपनी दशा का ही उर्मिला वर्णन कर रही है।

2. अन्योक्ति अलंकार है।

3. सरल बोधगम्य भाषा है।

(77) **कह कथा अपनी इस प्राण से,**
उड़ गये मधु-सौरभ प्राण-से।
फल मिलें हमको-तुमको सखी,
तदपि बीज रहें सब प्राण से।
उठती है उर में हाय ! हूक,
ओ कोइल, कह, कौन कूक ?
क्या ही सकरुण, दारुण, गंभीर,
निकली है सभी का चित्त चीर,
होते हैं दो दो द ग सनीर,
लगती है लय की एक लूक !
ओ कोइल, कह, कौन कूक ?
तेरे क्रन्दन तक में सु-गान,
सुनते हैं जग के कुटिल कान,
लेने में ऐसा रस महान।
हम चतुर करें किस भाँति चूक !
ओ कोइल, कह, कौन कूक ?
री, आवेगा फिर भी बसन्त,
जैसे मेरे प्रिय प्रेमवन्त।
दुःखों का भी है एक अन्त,
हो रहिए दुर्दिन देख मूक।
ओ कोइल, कह, कौन कूक ?
अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनों ने, शोक, भरम खो दिया, रो दिया।

शब्दार्थ :-घ्राण-नासिका। दारुण-कंपा देने वाला। सनीर-आँसुओं से युक्त। लूक-आग की लपट। कुटिल-दुष्ट।

सन्दर्भ-प्रसंग :- पुष्प-कली से अपनी साद श्यता बतलाती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- जो सुगन्ध तुझमें विकास काल में आ रही थी, वह मधु एवं सौरभ इस समय तुझमें से समाप्त हो गया है। पवन रूपी प्राण भी वे समाप्त हो गये हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा प्रिय मिलन का फल हम दोनों को प्राप्त होगा, जबकि बीज रूप में प्राण हमारी रक्षार्थ हमारे भीतर बने रहेंगे।

हे कोयल ! तेरी इस कूक एवं कूकने को सुनकर मेरे विरही ह्रदय में हूक उठ रही है। यह हूक कितनी करुणाजनक, दारुण एवं गंभीर है। ऐसा लगता है, मानो यह हूक नभ का अन्तःस्थल विदीर्ण करके निकली है, जिसके कारण मेरे दोनों नयन सनीर हो गये हैं। प्रिय लगन की एक रट लग जाती है, संसार में कटु शब्दों को सुनने वाले मनुष्य भी तेरे इस क्रन्दन में सुगान का सा आनन्द लाभ करते हैं। अतः हम चतुर जन इस महान आनन्द को प्राप्त करने में क्यों गलती करें एवं समय को व्यर्थ जाने दें। अरी कोकिल यह तेरा कैसा कूजन है, जिससे ह्रदय में टीस उत्पन्न होती है। हे कोकिल ! अब बसन्त की समाप्ति है, किन्तुं एक दिन पुनः बसन्त का आगमन होगा। इसी प्रकार मेरे प्रियतम एक दिवस अवश्य लौटेंगे। क्योंकि इस संसार में दुःखों का भी अन्त होता है, इसलिए दुर्दिन के समय चुप रहना चाहिए।

विशेष :- 1. विरहिणी उर्मिला की वेदना का चित्रांकन है।

2. भाषा कोमलकांत पदावलीयुक्त है।

3. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

4. भाषा सरल परिमार्जित है।

(78) **न जा अधीर धूल में,**
द गम्बु, आ, दुकूल में।
रहे एक ही पानी चाहे हम दोनों के मूल में,
मेरे भाव आँसुओं में हैं, और लता के फूल में।
द गम्बु, आ, दुकूल में।
फूल और आँसू दोनों ही उठे ह्रदय की हूल में,
मिलन-सूत्र-सूची से कम क्या अभी विरह के शूल में।
द गम्बु, आ, दुकूल में।
मधु हँसने में, लवण रुदन में, रहे न कोई भूल में,
मौज किन्तु मँझधार बीच है किंवा है वह कूल में ?
द गम्बु, आ, दुकूल में।

शब्दार्थ :- अधीर-व्याकुल। द गम्बु-आँसू। दुकूल-आँचल। हूल-कसम, व्यथा। सूची-सूई। शूल-काँटा। किंवा-अथवा। मौज-लहर, आनन्द।

सन्दर्भ-प्रसंग :- रोती हुई उर्मिला के ह्रदय में यह आन्तरिक ज्ञान विद्यमान है कि वह अश्रुकणों का धूल में गिरकर नष्ट होना नहीं देखना चाहती। वह उनके अंचल से ही उन्हें पोंछ लेती है। वह अपनी निगूढ़ भावना को इस प्रकार व्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या :- रे अधीर अश्रु ! तुम धूल में मत गिरो । मेरे इस दूकूल में आ जाओ। अरे, लता एवं मुझ नारी के मूल में चाहे एक ही प्रकार का पानी रहे। किन्तु मेरे मानस-भाव अश्रु रूप में प्रकट होते हैं एवं लता के भाव फूलों से विदित होते हैं। अतः तू मेरे दुकूल में ही आ जा। अरी सखी ! फूल एवं आँसू दोनों ह्रदय की अस्थिर स्थिति के कारण ही उत्पन्न होते हैं। फूल तो परस्पर सुई, एवं धागे के द्वारा मिलकर सुई में छिदने का कष्ट प्राप्त करते हैं एवं अश्रु के लिये विरह-शूल भी कम नहीं हैं। अरे हँसने में जो अश्रु निकलते हैं, वे मीठे होते हैं-आनन्दप्रद होते हैं एवं रुदन के कारण निकले हुए आँसू लवण से (नुनखरे) दुखद मिल रूपी सरोवर के किनारे ही आवेगा।

विशेष :- 1. आँसुओं का महत्त्व प्रदर्शित है।

2. मानवीकरण का आकर्षक रूप है।

3. भाषा प्रवाहमयी है।

(79) **सखे, जाओ तुम हँसकर भूल, रहूँ मैं सुध करके रोती।**
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।
मानती हूँ तुम मेरे साध्य,
अहर्निशि एक मात्र आराध्य,
साधिका मैं भी किन्तु अवाध्य,
जागती होऊँ या सोती।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।

सफल हो सहज तुम्हारा त्याग,
नहीं निष्फल मेरा अनुराग,
सिद्धि है स्वयं साधना-भाग,
सुधा, क्या, क्षुधा जो न होती !
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।
काल की रुके न चाहे चाल,
मिलन से बड़ा विरह का काल;
वहाँ लय, यहाँ प्रलय सुविशाल।
द ष्टि में दर्शनार्थ धोती।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।

शब्दार्थ :- साध्य-जिसकी साधना की जाए। अहर्निशि-दिन-रात। अबाध्य-बाधाविहीन। निष्फल-व्यर्थ। क्षुधा-भूख। काल-समय। प्रलय-उद्वेलन।

सन्दर्भ-प्रसंग :- विरहिणी उर्मिला अपने रुदन को अवश्यम्भावी मानती हुई प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती है-

व्याख्या :- हे सखे ! चाहे तुम मुझ हँसकर भूल जाओ किन्तु मैं तुम्हारा स्मरण करके रोती रहती हूँ। अरे तुम्हारे हँसने में पुष्प-वर्षा होती है तथा हमारे रोने में मोती की द ष्टि होती है। मैं मानती हूँ कि तुम मेरे साध्य हो, तुम्हीं रात-दिन रहने वाले मेरे आराध्य देव हो, किन्तु इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि मैं भी आपकी अबाध्य साधिका हूँ। मैं जाग त एवं सुषुप्त दोनों अवस्थाओं में तुम्हारी आराधना करती हूँ। हे प्रियतम ! तुम्हारा सहज त्याग सफल हो जाय, किन्तु मेरा आपके प्रति प्रेम भी कम एवं निष्फल न हो। यदि व्यक्ति के मुख न हो, तो अमुत की भी आवश्यकता नहीं होती है। सिद्धि स्वयं साधना का एक अंश होती है। चाहे काल का चक्र न रुके किन्तु मिलन से बड़ा विरह में लय होता है, किन्तु यहाँ दीर्घकालीन लय होती है। इसीलिए तुम्हारे दर्शनों के लिए नाथ मैं अपनी द ष्टि धोकर उज्ज्वल कर रही हूँ। तुम्हारे हँसने में फूल झड़ते हैं और हमारे रोने में मोती हैं।

विशेष :- 1. उर्मिला के अनन्य प्रेम का चित्रण है।

2. उत्प्रेक्षा (तुम्हारे हँसने में है फूल-मोती) अलंकार है।
3. गीत में मार्मिक भाव है।
4. भाषा सरल प्रवाहमयी है।

(80) **अब जो प्रियतम को पाऊँ !**

तो इच्छा है, उन चरणों की रज मैं आप रमाऊँ,
आप अवधि बन सकूँ, कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ।
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।
ऊषा-सी आई थी जग में, संध्या-सी क्या जाऊँ ?
श्रान्त पवन-से वे आवें, मैं सुरभि-समान समाऊँ !
मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है, कुछ गाऊँ,
उधर गान कहता है, रोना आये तो मै ं आऊँ !
इधर अनल है और उधर जल, हाय! किधर मैं जाऊँ ?
प्रबल वाष्प, फट जाय न यह घट, कह तो हाहा खाऊँ ?

शब्दार्थ :- रज-धूलि। श्रान्त-थका हुआ। सुरभि-सुगन्ध। रोदन-रोना। अनल-आग। घट-हृदय, घड़ा। वाष्प-भाप। हाहा खाना-विनती करना।

संदर्भ-प्रसंग :-अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करती हुई उर्मिला कहती है-

व्याख्या :- हे सखी ! मेरी इच्छा है कि यदि मुझे अब मेरे प्रिय नाथ के दर्शन हो जायें तो उनकी चरण-रज को अपने शरीर में मल लूँ। मैं स्वयं अवधि ही बन जाऊँ, उसमें यत्किंचित भी विलम्ब न लगाऊँ। यदि उनकी प्राप्ति में मुझे स्वयं को मर मिटना पड़े तो मैं ऐसा ही करके स्वयं आकर उनको प्राप्त करूँ।

अरी सखी ! मैं अपने जीवन में ऊषा की तरह प्रसन्नता को लिए हुए आई थी, क्या अब सन्ध्या की तरह उदासी देकर इस जीवन में विदा ग्रहण करूँ। यदि मेरे स्वामी अमित पवन की तरह धीमे-धीमे आयेंगे तो मेरी इच्छा है मैं उनके अंग में सुरभि की भाँति समा जाऊँ। मुझ रोते-रोते बहुत समय व्यतीत हो गया। मेरा हृदय अधिक कष्ट सहन नहीं कर सकता। वह चाहता है, मैं कुछ गाऊँ, किन्तु गान कहता है कि "रोना आने पर ही गाया जा सकता हूँ।"

मेरी परिस्थितियाँ विषम हैं। मुझे इधर अनल और उधर जल, इन दोनों ही कष्टप्रद वस्तुओं का सामना करना पड़ रहा है। मैं क्या करूँ ? मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरे हृदय में विरहानल एवं नेत्रों में अश्रुजल बह रहे हैं। कहीं गरम वाष्प में मेरा हृदय न फट जाय।

विशेष :- 1. उर्मिला का अप्रतिम प्रेम चित्रण है।

2. 'लाक्षणिक प्रयोग है।

3. रोदन का मानवीकरण है।

4. उत्तम गीत है।

(81) मेरे चपल यौवन-बाल !

अंचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल।
बीतने दे रात, होगा सुप्रभात विशाल,
खेलना फिर खेल मन के पहन के मणि-माल।
पक रहे हैं भाग्य-फल तेरे सुरम्य-रसाल,
डर न, अवसर आ रहा है, जा रहा है काल।
मन पुजारी और तन इस दुःखिनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल।

शब्दार्थ :- यौवन-बाल-यौवन रूपी बालक। चपल-चंचल। अचल-शान्त। साल-दुःख देना। मणि-माल-मणियों की माला। सुरम्य-सुन्दर। रसाल-आम। लाल-मणि।

सन्दर्भ-प्रसंग :- वियोगिनी उर्मिला अपने यौवन को सम्बोधित करती हुई कहती है-

व्याख्या :- अरे मेरे चपल यौवन रूपी बाल ! तू मेरे अंचल में ही अचल होकर पड़ा रह। तू बच्चों की तरह मचलकर मुझे कष्ट प्रदान मत कर। यह रात्रि है और विरह का समय है। इसमें तेरा सोना ही उचित है। पति के आगमन पर सुप्रभात होगा, तुम उस समय मणिमाला पहन कर मन के अनुसार खेलते रहना। सुन्दर एवं आम्र सम मधुर एवं सरस मेरे भाग्यफल पक रहे हैं, जो कभी तो पूर्ण फल प्रदान करेंगे। अब दुःख का समय व्यतीत हो रहा है एवं सुख का समय आ रहा है। मेरा आराध्य देव मेरा प्रियतम है, उसकी आराधना करने हेतु मेरा मन पुजारी है एवं इस दुःखिनी का तन थाल साद श है किन्तु हे यौवन ! उस प्रिय स्वामी को उपहार के रूप में अर्पण करने हेतु ही एक रत्न है।

विशेष :- 1. बाल सम यौवन की चंचलता का चित्रण है।

2. यहाँ पर 'यौवन बाल' में रूपक अलंकार है, जिसकी सहायता से सम्पूर्ण हार्दिक भावना व्यक्त की गई है।

3. लाल शब्द में श्लेष अलंकार है।

(82) **रस पिया सखि, नित्य जहाँ नया,**
अब अलभ्य वहाँ विष हो गया !
मरण-जीवन की यह संगिनी,
बन सकी वन की न विहंगिनी !
सखि, यहाँ सब ओर निहार तू ।
फिर विचार अतीत-विहार तू।
उदित-से सब हास-विलास हैं,
रुदित-से सब किन्तु उदास हैं।
स्वजनि, पागल भी यदि हो सकूँ,
कुशल तो अपनापन खो सकूँ।
शपथ है उपचार न कीजियो,
अवधि की सुध ही तुम लीजियो।
बस इसी प्रिय-कानन-कुंज में,
मिलन-भाषण के स्म ति-पुंज में।
अभय छोड़ मुझे तुम दीजियो,
हसन-रोदन से न पसीजियो।
सखि, न म त्यु न आधि, न व्याधि ही,
समझियो तुम स्वप्न-समाधि ही।
हहह ! पागल हो यदि उर्मिला,
विरह-सर्प स्वयं फिर तो किला !
प्रिय यहाँ वन से जब आयेंगे,
सब विकार स्वयं मिट जायेंगे।
न सपने सपने रह पायेंगे,
प्रकटता अपनी दिखलायेंगे।
अब भी समक्ष वह नाच खड़े,
बढ़ किन्तु रिक्त यह हाथ पड़े।
न वियोग है न यह योग सखी,
कह, कौन भाग्य-भय भोग सखी ?

शब्दार्थ :- अलभ्य-अप्राप्य। विहंगिनी-पक्षिणी। निहार-देख। रुदित-रोये हुए। स्म ति-पुंज-स्म तियों का समूह। आधि-मानसिक कष्ट। व्याधि-शारीरिक कष्ट। स्वप्न-समाधि-स्वप्न में मिलन। किला-मंत्र से वशीभूत हो गया।

सन्दर्भ-प्रसंग :- वियोगिनी बाला विरह-काल से व्यथित होकर सखी से अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या :- जिस मेरे सुख में दाम्पत्य-जीवन में आनन्द ही आनन्द था, वह अब विष बन गया है और सुख अप्राप्य हो गया है। यह मैं प्रिय के जीवन मरण की संगिनी थी, जो वन में साथ न दे सकी। अरी सखी ! तू सब तरफ देखकर मेरे अतीत जीवन पर द ष्टिपात करती हुई विचार कर कि मैं कितनी दुःखी हूँ। उनके उदय (आगमन) से सभी तरफ हास-विलास

छा जायेगा एवं मेरे रुदन से उदासी छाई हुई है। अरे सखी ! यदि मैं पागल भी हो जाऊँ तो अच्छा है। मैं इसी प्रकार अपने चेतन को समाप्त कर दूँ। मेरे पागल होने पर मुझे अच्छा करने के लिए कोई उपचार मत करना। तुझे मेरी शपथ है। मेरी अवधि पूर्ण हो जाने पर मुझे अच्छा करने की चेष्टा करना। मैं तुझसे कहती हूँ कि इसी प्रिय के कानन-कुंज में जहाँ मेरा प्रियतम के साथ मधुर मिलन हुआ था-आलाप संलाप हुए थे, उसी स्म ति-पुंज स्वरूप कुंज में मुझे अकेली छोड़ दीजिये मैं उसमें अभय रूप से विचरण करूँगी। मेरे हँसने एवं रोने में जरा भी विचलित न होना। अरे सखी ! मैं उस अवस्था में हो जाऊँ, तो उसे तुम न म त्यु, न आधि, न व्याधि समझना। केवल उसे स्वप्न-समाधि ही मानना। यदि वास्तव में यह उर्मिला पागल हो जाये, तो स्वयं मेरा विरह-सर्प कीला हुआ ही मानना चाहिए। मुझे विरह का इतना कष्ट नहीं होगा। अरी सजनी ! जब मेरे प्रियतम वन से पधारेंगे तो स्वतः ही मेरे सब-दुःख द्वन्द्व समाप्त हो जायेंगे। यह स्वप्न न रहेंगे। वे मधुर दिवस साकार होकर प्रकट होंगे।

हे सखी ! अब भी मेरे समक्ष वे स्वामी खड़े हुए हैं, किन्तु मेरे हाथ तो खाली ही रह गये, उन्हें पकड़ न सके। अरे ! यह न योग (मिलन) है और न वियोग है तो बता, यह कौन-सा भाग्य-मय-भोग है, जिसे भोगना पड़ रहा है।

विशेष :- 1. उर्मिला इतनी विरहातुर हो जाती है कि वह पागल बनना ही स्वीकार कर लेती है। उसे मन में विश्वास है कि पागल होने पर मेरी विरह-व्यथा समाप्त हो जायेगी।

2. भाव-साम्य-'कामायनी' के मनु ने भी इसी प्रकार इच्छा प्रकट की थी-

"विस्म ति आ, अवसाद घेर ले,
नीरवते ! बस चुप कर दे।
चेतनता चल जा, जड़ता से-
आज शून्य मेरा भर दे।"

3. रूपक अलंकार की सुन्दर योजना है।

(83) **विजय नाथ की हो सभी कहीं,**
तदपि क्यों खड़े हो गये वहीं ?
प्रिय, प्रविष्ट हो, द्वार मुक्त हैं !
मिलन-योग तो, द्वार युक्त हैं,
तुम महान हो और हीन मैं,
तदपि, धूल-सी अंध्रिलीन मैं,
दयति देखते देव भक्ति को,
निरखते नहीं नाथ व्यक्ति को।
तुम बड़े, बने और भी बड़े,
तदपि उर्मिला-भाग में पड़े।
अब नहीं, रही दीन मैं कभी,
तुम मुझे मिले तो मिला सभी।
प्रभु कहाँ, कहाँ किन्तु अग्रजा,
कि जिनके लिए था मुझे तजा?
वह नहीं फिरे? क्या तुम्हीं फिरे?
हम गिरे अहो ! तो गिरे, गिरे।
दयित, क्या मुझे आर्त्त जान के,
अधिप ने अनुक्रोश मान के,

घर दिया तुम्हें भेज आप ही !
यह हुआ मुझे और ताप ही !
प्रिय, फिरो, फिरो हा! फिरो, फिरो!
न इस मोह की घूम से घिरो !
विकल मैं यहाँ, किन्तु गर्विणी,
न कर दो मुझे नष्टपर्विणी।
घर फिरे तुम्हें मोह से कहीं,
तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं ?
च्युत हुए अहो नाथ, जो यथा,
धिक ! व था हुई उर्मिला-व्यथा।
समय है अभी, हा ! फिरो, फिरो,
तुम न यों, यशःस्वर्ग से गिरो।
प्रभु दयालु हैं, लौट के मिलो,
न उनके कुटी-द्वार से हिलो।

शब्दार्थ :- अंघ्रिलीन-चरणों में लीन। युक्त-उचित। प्रभु-राम। अग्रजा-बड़ी बहिन, सीता। दयित-प्रियतम। आर्त्त-दुखी। अधिप-राजा अर्थात् राम। अनुक्रोश-दया। घूम-चक्कर। विकल-व्याकुल। नष्टपर्विणी-नष्ट यश वाली। च्युत-भ्रष्ट। यश'स्वर्ग-यश रूपी स्वर्ग।

संदर्भ-प्रसंग :- उर्मिला उसी प्रसंग को आगे बढ़ाती हुई उन्माद की अवस्था में अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करती हुई कहती है-

व्याख्या :- मैं तो यह जानती हूँ कि नाथ की सर्वत्र विजय है, किन्तु वे वहीं खड़े क्यों हो गये हैं ? आते क्यों नहीं हैं ? हे प्रिय ! आप भीतर पधारें। द्वार खुला हुआ है। मिलन का योग तो नित्य ही उचित है।

मैं मानती हूँ कि हे नाथ ! तुम महान हो एवं मैं हीन हूँ। किन्तु आँधी में धूल की तरह लीन होना चाहती हूँ। प्रकृति या भाग्य तो भक्ति को देखते हैं, वे व्यक्ति को नहीं देखते। इसी प्रकार मेरी भक्ति पर ही ध्यान दीजिये। मुझ पर गौर मत कीजिये। तुम महान् हो और भी महान हो जाओ। तब भी उर्मिला के होकर ही रहोगे, क्योंकि तुम मेरे हिस्से में हो। नाथ ! तुमको प्राप्त करके मैं कभी भी दीन नहीं रह सकती। यदि तुम मुझको प्राप्त हो गये तो सब कुछ प्राप्त हो गया। हे नाथ ! तुम आ गये। किन्तु प्रभु राम कहाँ हैं। बड़ी बहिन सीता कहाँ हैं, जिनके लिये आपने मुझको त्याग दिया था। हे नाथ ! वे नहीं आये हैं। क्या तुम्हीं आये हो। यदि हम गिर गये तो और पतित हो गये। हा भाग्य ! क्या विरह से मुझे इतना व्याकुल जानकर प्रभु राम ने मेरा प्रलाप मानकर आपको घर भेज दिया है। यदि ऐसा हुआ तो मुझे विरह-ताप से भी अधिक संताप हुआ है। अतः हे नाथ ! तुम वापिस वन लौट जाओ। मेरे मोह के चक्कर में मत घूमो। यद्यपि मैं विकल हूँ तथापि गर्विणी हूँ। मुझे भ्रष्ट गर्विणी मत बनाओ। यदि नाथ ! तुम स्वतः मेरे मोह के कारण घर वापिस आ गये हो, तो तुम तपोभ्रष्ट हो गये। यदि नाथ इस प्रकार तुम कर्मच्युत हो गये हो, तो मेरी यह साधना व्यर्थ हुई। मुझे, धिक्कार है। अब भी समय है नाथ ! तुम वापिस चले जाओ। तुम इस प्रकार यश के स्वर्ग से मत गिरो। प्रभु राम दयालु हैं। लौटकर मिलो।

विशेष :- 1. 'तुम व्रती रहो और मैं सती रहूँ' में उर्मिला की अन्यतम अभिलाषा है।

2. उर्मिला का कर्त्तव्य बोध दर्शाया गया है।

3. "धिक.....' मैं वीप्सा अलंकार हूँ।

4. भाववेग का प्रबल रूप है।

5. सरल सहज भाषा है।

(84) **'बिसरता नहीं न्याय भी दया,**
बस रहो प्रिये, जान मैं गया।
तुम अधीर हो तुच्छ ताप में,
रह सकी ना आप, आप में !
न उस धूप में और मेह में,
तुम रहीं यहाँ राजगेह में !
विदित क्या तुम्हें, देवि, क्या हुआ,
रुधिर स्वेद के रूप में चुआ।
विपिन में कभी सो सका न मैं,
अधिक क्या कहूँ, रो सका न मैं,
वचन ये पुरस्कार में मिले,
अहह ऊर्मिले ! हाय ऊर्मिले !
गिन सको, गिनो शूल, जो चुभे,
सहज है समालोचना शुभे।
कठिन साधना किन्तु तत्त्व की,
प्रथम चाहिए सिद्धि सत्व की।
कठिन कर्म का क्षेत्र था वहाँ,
पर यहाँ? कहो देवि, क्या यहाँ।
उलहना कभी देव को दिया,
बहुत जो किया नेक रो लिया !
सतत पुण्य या पाप-संगिनी,
समझता रहा आत्म-अंगिनी।
स्वपति-पुण्य ही इष्ट था तुम्हें,
कटु मुझे, तथा मिष्ट था तुम्हें।
प्रियतम तपोभ्रष्ट मैं ? भला !
मत छुओ मुझे, लौट मैं चला।
तुम सुखी रहो हे विरागिनी,
बस विदा मुझे पुण्यभागिनी !
हट सुलक्षणे रोक तू न यों,
पतित मैं, मुझे टोक तू न यों।
विवश लक्-,'नहीं ऊर्मिला हहा!
किधर ऊर्मिला? आलि, क्या कहा?

शब्दार्थ :- राजगेह-राजमहल। स्वेद-पसीना। आत्मअंगिनी-अपना ही अंग। मिष्ट-मधुर, प्रिय। दैव-भाग्य। नेक-थोड़ा। सुलक्षणा-उर्मिला की सखी का नाम। पतित-गिरी हुई।

संदर्भ-प्रसंग :- उन्मादावस्था के अन्तर्गत प्रियतम को कटु शब्द कह लेने के कारण उर्मिला को ग्लानिबोध होता है।

फिर उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके प्रियतम उससे रूठ गये हैं और उसे खरी-खोटी सुनाते हुए कह रहे हैं।

व्याख्या :- न्याय दया की बात भी अपनी द ष्टि में रखता है। यह उसे विस्त त नहीं करता। हे प्रिय ! अब तुम शान्त हो जाओ। मैं सब कुछ समझ गया हूँ। तुम इस साधारण से कष्ट के कारण व्याकुल हो गई और अपनी सुध-बुध भूलकर अपने को वश में न रख सकी। ऐसी बात हम लोगों को शोभा नहीं देती। तुम मेरी तरह प्रकाश के नीचे वन में, धूप तथा वर्षा में नहीं रहीं और न ही राजप्रासाद के सुख-साधनों-रहित रहीं। हे देवि ! तुम्हें कुछ पता भी है कि मेरे साथ कैसे बीती ? मेरा रक्त पसीने के रूप में बहता रहा। वन में मैं कभी भी तनिक न सो सका। मैं अधिक और क्या कहूँ, मैं तुम्हारी तरह रोकर व्यथा को व्यक्त भी न कर सका। हे उर्मिले ! इतना कष्ट सहन करने पर भी तुम्हारी ओर से मुझे ये तिरस्कारपूर्ण वचन पुरस्कार में मिले हैं। यदि तुम्हारे लिए मेरे शरीर में चुभे हुए कंटक चुनना संभव हो, तो तुम उनको चुन लो।

हे प्रिय ! किसी की आलोचना करना सरल होता है, परन्तु यथार्थ का जानना बहुत कठिन है। इसके लिए सबसे पहले सतोगुण की सिद्धि करनी पड़ती है। वन में मेरे सामने बहुत सी कठिन कर्मक्षेत्र था। हे देवि ! मुझे यह तो बताओ कि यहाँ क्या था ? यहाँ पर कभी तो दैव को उलाहना दे दिया और यदि बहुत कुछ किया तो रो दिया। इसके अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं किया। दूसरी ओर मैं सदैव ही तुम्हें अपने पाप-पुण्य की संगिनी मानता रहा और अपनी आत्म-संगिनी भी समझता रहा। अर्थात् तुम्हें कभी भी अपने से अलग नहीं माना। तुम्हें तो अपने पति का पुण्य ही इष्ट था और अभी जो अभिलाषा थी। इस प्रकार तुम्हें जो मधुर था मुझे वह कटु ही इष्ट था।

हे प्रियतमे ! क्या मैं तपोभ्रष्ट हूँ। तुम मुझे स्पर्श न करो। क्योंकि मुझ तपोभ्रष्ट का स्पर्श करने से तुम भी भ्रष्ट हो जाओगी। लो मैं लौटकर जा रहा हूँ। हे विरागिनी ! तुम सुखपूर्वक रहो। हे पुण्यभागिनी ! मुझे तो बस विदा दे दो।

हे सुलक्षणे ! तुम हट जाओ। मुझे इस प्रकार न रोको। मैं तो पतित हूँ। इसलिए तुम मुझे न रोको। इसी उन्माद की दशा में उर्मिला के मुख से निकल जाता है-"विवश लक्...।" उर्मिला पति का नाम उच्चारण करने ही चली थी कि सखी रोक देती है और कहती है "हाय ! नहीं उर्मिला !" उर्मिला ने यह सुनकर कहा हे सखी ! तुमने क्या कहा। उर्मिला किधर है ?

विशेष :- 1. यहाँ लक्ष्मण के स्वप्न से उर्मिला अपनी ही भर्त्सना करती है।

2. पाठक के ह्रदय में उर्मिला के प्रति वेदना जाग त हो जाती है।
3. 'विवश लक्.....क्या कहा' में नाटकीय सौन्दर्य है।
4. सरल भाषा स्वरूप है।

(85) **सिर-माथे तेरा वह दान,**
हे मेरे प्रेरक भगवान !
अब क्या माँगूँ भला और मैं फैलाकर ये हाथ ?
मुझे भूलकर ही विभु वन में विचरे मेरे नाथ !
मुझे न भूल उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !
डूबी बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये ऊर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।
विधि से चलता रहे विधान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !
दहन दिया तो भला सहन क्या होगा तुझे अदेय?
प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय ।
यही रुदन है मेरा गान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !

शब्दार्थ :- सिर-माथे-सहर्ष स्वीकार करना। विभु-ईश्वर। सती-पार्वती। पैठ-घुसकर। दहन-जलन। अदेय-जो न दिया जा सके। श्रेय-कल्याण।

संदर्भ-प्रसंग :- अन्त में उर्मिला प्रभु से वरदान माँगती है कि उसका प्रियतम वन में अपना कर्त्तव्य पाल करता रहे और वह उसकी प्रतीक्षा में लीन रहे-

व्याख्या :- हे मेरे प्रेरक भगवान ! तुम्हारा वियोग के रूप में दिया गया यह दान शिरोधार्य है। मुझे इतना अधिक मिल गया है कि अब मैं अपने हाथ फैलकर तुझसे क्या माँगू। मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे प्रियतम मुझे भूलकर प्रभु श्रीरामचन्द्र के साथ वन में रहकर अपना कर्त्तव्य पालन करें। हे प्रेरणादायक भगवान ! मुझे उनका ध्यान कभी न भूले।

देवी लक्ष्मी ने जल प्रवेश करके नारद के शाप से अपनी रक्षा की और सती पार्वती ने शिव के शोक के कारण अग्नि में प्रवेश करके अपनी रक्षा की। परन्तु यह उर्मिला जीवित रहकर अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करे और सभी कुछ सहन करे। इस प्रकार यह सामान्य विधि-विधान चलता रहे।

हे मेरे प्रेरक भगवान ! तुमने जब मुझे यह विरह की ज्वाला प्रदान की है, तो क्या मुझे सहन करने की शक्ति नहीं दे सकोगे ? प्रिय की इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका हित हो। मेरा गान तो मेरा यह रोदन ही है।

विशेष :- 1. ईश्वर पर द ढ़ आस्था-चित्रण है।

2. दुःख को सुख समझने का अनूठा भाव है।

3. सुन्दर लयात्मकता और गेयता है।

4. सरल, बोधगम्य भाषा है।

(86) **अवधि-शिला का उर पर था गुरु-भार,**
तिलतिल काट रही थी द ग-जल-धार।

शब्दार्थ :- अवधि-शिला-अवधि रूपी शिला, चट्टान। उर-हृदय। गुरु-अधिक। तिलतिल-थोड़ा-थोड़ा। द ग-जल-आँसू। धार-धारा।

व्याख्या :- इस प्रकार उर्मिला के कोमल हृदय पर स्म ति रूपी शिला का भारी बोझ रहा था, जिसका उसके नेत्रों से निरन्तर बहती हुई अश्रुधारा तिल-तिल करके काट रही थी।

विशेष :- 1. अलंकार-रूपक।

2. शिला और जलधार का यह रूपक भावाभिव्यक्त में सहायक है। अपनी पहाड़ सी वियोग-अवधि को उर्मिला आँसुओं की जलधारा से काट रही है। परन्तु यह भारी शिला कब तक कट सकती है ? नियति की निष्ठुरता पर किसका वश चलता है। कवि की यह मार्मिक उक्ति पाठकों के हृदय पर सीधी चोट करती है।

3. 'अवधि-शिला' में रूपक अलंकार है।

4. भाषा सरल सुबोध है।

खंड 'ख' : आलोचना

1. 'साकेत' के नवम् सर्ग की कथा-योजना-

साकेत के नवम् सर्ग में कवि ने उर्मिला के विरही-जीवन के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किये हैं। वह विभिन्न ऋतुओं में कैसे व्यथित होती है और किस प्रकार विक्षिप्त होकर उन्माद की अवस्था में पहुँच जाती है। आदि का वर्णन विस्तार से हुआ है। रीतिकालीन विरह-वर्णन का प्रभाव होने के कारण उर्मिला का विरह-वर्णन कहीं-कहीं पर हास्यास्पद हो गया है।

काव्य वैभव की द ष्टि से साकेत का नवम् सर्ग महत्त्वपूर्ण है। 'साकेत' के अन्य सर्गों के समान ही इस सर्ग का भी प्रारंभ सम्बोधन-पद्धति से हुआ है। कवि करुणा को सम्बोधन करता हुआ कह रहा है

"करुणे ! क्यों रोती है ?' 'उत्तर' में और अधिक तू रोई;
मेरी विभूति है जो, उसको भवभूति क्यों कहे कोई ?"

इस आर्या छन्द में उत्कृष्ट शब्द व्यंजना है। यहाँ 'उत्तर' के 'उत्तर' 'उत्तर रामचरित' दो तथा भवभूति 'संसार की विभूति', शिव की विभूति' और 'कवि' विशेष का नाम तीन अर्थ हैं। नवम् सर्ग में कवि का करुण रस का वर्णन करना, अभीष्ट है। इसलिए कवि करुण रस निष्णात् भवभूति का स्मरण कर रहा है।

'साकेत' नवम् सर्ग में वर्णन करने की विभिन्न पद्धतियों को ग्रहण किया गया है। निम्न छंद में यमक और विरोधाभास का सुन्दर प्रयोग है-

"अवध को अपनाकर त्याग से,
वन तपोवन-सा प्रभु ने किया।
भरत ने उनके अनुराग से
भवन में वन का व्रत ले लिया।।"

अपनाया जाता है ग्रहण से 'त्याग' ने नहीं इसलिए यहाँ विरोधाभास है। भवन और वन में यमक द्रष्टव्य है।

उर्मिला का चित्रण मध्या नायिका के रूप में हुआ है। मध्या नायिका में लज्जा और काम समान रूप से होता है। जाग तावस्था में उर्मिला को जब चौदह वर्ष की अवधि में समय स्मरण न रहता तब वह अपने प्रिय को मिलन के लिए आमंत्रित करती है। निद्रा की अवस्था में जब लक्ष्मण से उसका मिलन होता है, वह मध्या नायिका के समान चौंककर 'जाओ' कह उठती है। 'आओ' और 'जाओ' काम और लज्जा को प्रकट करते हैं-

"भूल अवधि सुध प्रिय से कहती जागती हुई कभी 'आओ' !
किन्तु कभी सोती तो उठती, वह चौंक बोलकर 'आओ' !"

उर्मिला मानस-मन्दिर में पति की प्रतिमा स्थापित कर स्वयं आरती बनी हुई रात-दिन जलती रहती है। उसका विषम वियोग योग से भी अधिक हो गया है-

"हुआ योग से अधिक उसका विषम वियोग।"

'साकेत' का नवम् सर्ग उक्ति वैचित्र्य से भरा हुआ है। निम्न उदाहरण में हेत्वापहुति और श्लेष के लाघव से रूपक का सुन्दर प्रयोग हुआ है। मानस में हलचल होने पर नेत्रों में अश्रु आने का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

"पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न अब वे थे,
छींटे वहीं छड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे।।"

सरोवर में कूदने से जैसे छींटे उड़ते हैं, उसी प्रकार उर्मिला के मन रूपी मानसरोवर में लक्ष्मण के कूदने से जो छींटे उड़े उन्हें आँसू क्यों कहा जाय ?

'साकेत' के नवम् सर्ग में कवि ने विभिन्न छंदों में उर्मिला के विरह जनित उद्गारों का चित्रण किया है। कहीं धनाक्षरी, तो कहीं सवैया, कहीं गीत तो कहीं वर्णिक और मात्रिक छंद अपना सौंदर्य बिखेरते हैं। रूपक और श्लेष के प्रयोग से निम्न दोहे के सौन्दर्य का निखार दर्शनीय है-

उसे बहुत थी विरह के एक दण्ड की चोट।
धन्य सखी देती रही, निज यत्नों की ओट।"

यहाँ 'दण्ड' का अर्थ 'डण्डा' एवं 'साठ पल का समय' है। 'दण्ड की चोट' रूपक के आधार पर 'यत्नों की ओट' रूपक का निरुपण होने से परंपरित रूपक होता है।

नवम् सर्ग में विरह-वर्णन परंपरागत विरह-वर्णन से भिन्न और अपनी मौलिकता लिए हुए है। वियोगिनी उद्दीपन विभावों को प्रायः पानी पी पीकर कोसती रहती है। 'द्विगराज' उन्हें कसाई लगता है, बादल उनको जलाते हैं और मलय शरीर उनके शरीर को झुलस देती है। चाँदनी उन्हें नागिन बनकर डसती है। कभी वे पपीहा के 'पिउ-पिउ' बोलने पर चोंच उखारती है और कभी हरे-भरे वन को कोसती है। सूर की विरहिणी गोपियाँ कहती हैं-

"मधुवन तुम कत रहत हरे ?
विरह वियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े कत न जरे।"

किन्तु उर्मिला की स्थिति दूसरी है। वह प्रकृति के फूलने, हँसने ओर विकसित होने की अभिलाषा करती है। वह स्वयं ही रोदन के लिए पर्याप्त है। अपने अश्रुओं की वर्षा से वह प्रकृति को हरा-भरा करना चाहती है-

"हँसो हँसो हे शशि फूल फूलो,
हँसो हिंडोरे पर बैठ झूलो।
यथेष्ट मैं रोदन के लिए हूँ,
झड़ी लगा दूँ, इतना पिये हूँ।"

उर्मिला के लिए षटरस व्यंजनों की कमी नहीं है, किन्तु प्रिय के बिना उनका प्रयोग विष के समान हो गया है, उसके लिए भोग रोग बन गया है-

"रस हैं बहुत, परन्तु सखि,
विष हैं विषम प्रयोग।
बिना प्रयोक्ता के हुए,
यहाँ भोग भी रोग।"

यहाँ रस का अभिप्राय मधुर, तिक्त, अम्ल आदि भोजन के षटरस और रसौषध से है। इसी प्रकार 'प्रयोक्ता' शब्द का प्रयोग प्रिय और रस-वैद्य दोनों ही के लिए हुआ है। श्लेष ने भाव सौंदर्य को निखार दिया है। प्रिय के वियोग में उर्मिला को खान-पान आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह सखी से कहती है-

"अरी व्यर्थ है व्यंजनों की लड़ाई,
हटा चाल तू क्यों इसे आप लाई।

वह कभी स्वयं रसोई बनाकर सभी को खिलाती थी और त प्त होती थी, किन्तु आज तो उसके लिए रोना ही शेष रह गया है-

"रहा किन्तु मेरे लिए एक रोना।
खिलाऊँ किसे मैं अलोना सलोना।"

नवम् सर्ग में काव्य-शास्त्र में गिनाये गये समस्त संचारी भावों का प्रयोग हुआ है। साथ ही कुछ स्वतंत्र संचारियों की भी व्यंजना हुई है। कभी-कभी उर्मिला प्रिय-दर्शन की अभिलाषा के कारण सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाती है-

"फिर ला खाऊँ ला, सखी पहन लूँ ला, सब करूँ।
जिऊँ मैं जैसे ही, यह अवधि का अर्णव तरूँ।।"

उर्मिला हर्षोच्छवास लेकर चित्रकूट में आई थी। अब यह विश्वास देकर अयोध्या कैसे जाय ?

"आई थी सखि, मैं यहाँ लेकर हर्षोच्छ्वास।
जाऊँगी कैसे भला देकर यह निःश्वास।।"

चित्रकूट में उर्मिला क्षण भर के लिए प्रियतम से मिलती है, किंतु कुछ भी नहीं कह पाती। उर्मिला को कुछ कहना था, वही प्रिय ने कह डाला, क्योंकि विरह वेदना दोनों में समान थी-

"अपने को भूले वे मेरी ही कह उठे सह्रदय ह्रदय से।"

यहीं उर्मिला सम्बोधन शैली में "हे सिद्ध शिलाओं के आधार" से चित्रकूट का वर्णन करती है।

उर्मिला विरह में एकांत सेवन करती है, किंतु जब उसका मन बहुत ऊबने लगता है, तब सखी से सम दुःखिनी प्रेषित-पतिकाओं को बुला लाने को कहती हैं। उसे चिंता है कि वह वियोग-वेदना में कहीं ललित कलाएँ न भूल जाए, इसलिए उपवन में पुर-बालाओं के लिए शाला खुलवाने का प्रस्ताव रखती है। साथ ही चित्र-रचना के लिए उसका मन मचल उठता है वह कई चित्र बनाने की सोचती है। उसमें एक चित्र यह भी है। सीता घूमकर प्रभु के सहारे खड़ी हों और स्वामी कराह करके उनके तलवे से कंटक निकाल रहे हों-

"किंवा वे खड़ी हो घूम प्रभु के सहारे आह,
तलवे से कण्टक निकालते हों, ये कराह।"

उर्मिला अपने जीवन की विगत घटनाओं पर द ष्टि डालती है। जीवन के प्रभात के पश्चात् मध्याह्न और मध्याह्न के अन्तर में संध्या आती है। उर्मिला सखी से कहती है कि उसकी जीवन संध्या न जाने कौन सा द श्य सामने लाये। सखी कहती है चन्द्रोदय होगा और काली में उजियाली छा जायेगी। परन्तु उर्मिला को प्रभात हुए बिना सुख कहाँ ? सखी आश्वासन देती है कि रवि के पश्चात प्रभात का होना अनिवार्य है। उर्मिला कहती है कि ऐसा होने पर दासी अवश्य कृतार्थ होगी-

"आगे जीवन की संध्या है देख क्या हो आली,
तू कहती है 'चन्द्रोदय ही काली में उजियाली;
फिर आँखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी यह नवलाली ?
किन्तु करेंगे उनके शोक की तारे जो रखवाली।
फिर प्रभात होगा क्या सचमुच ? तो कृतार्थ यह चेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुले अब मेरी।।"

इस गीत में प्रेरक भाव प्रेम है। स्थाई भाव रति के कारण अनेक अन्तर्भावनाएं संचारी रूप में हैं। स्म ति संचारी तो स्पष्ट ही है। उर्मिला सखी को सभी पालतू पक्षियों को उड़ा देने को कहती है किंतु वे उड़ना भूल गए हैं। अतः उर्मिला उनसे आत्मीयता स्थापित कर लेती है। इसके पश्चात् उर्मिला के गाये हुए गीत आते हैं। इन गीतों में उसकी वेदना सजीव हो उठती है। उर्मिला की वेदना भली बन जाती है। वह तीर की अनी के समान कसकती हुई उर्मिला को सदैव सजग रखती है। उर्मिला दुःख के साथ सुख और वियोग के साथ अभिसार देखने लगती है-

"विरह संग अभिसार भी,
भार जहाँ आधार भी।"
मैं पिंजड़े में पड़ी हुई हूँ किन्तु खुला है द्वार भी,
काल कठिन क्यों न हो, किंतु है मेरे लिए उद्धार भी।
जहाँ विरह ने उद्गार दिया है किया न क्या आकार भी,
सुध-बुध हर ली, किन्तु दिया है काल ज्ञान विचार भी।

एक से एक मार्मिक उर्मिला के विरहोद्गार के चित्र सामने आते हैं। उर्मिला सुरभि को सम्बोधित करती हुई कहती है-

अरी, सुरभि जा लौट जा अपने अंग सहेज,
तू है फूलों में पली, यह काँटों की देह।"

उर्मिला के प्रिय के साथ जो आनन्द के दिन बीते थे वे स्वप्न हो गये। मिलन की सभी बातें पुरानी होती हुई भी उनके लिए नवीन भी हुई हैं-

"यथार्थ था सो सपना हुआ है,
अलीक था जो अपना हुआ है,
रही यही केवल है कहानी।
सुना वही एक नई पुरानी।"

प्रिय की प्रतीक्षा करती हुई थक जाती है और थककर प्रिय के विराट स्वप्न का आह्वान करती है-

"आओ, हो आओ तुम्हीं प्रिय के स्वप्न विराट।
अर्घ्य लिए आँखें खड़ी, हेर रही हैं बाट।।

इसके पश्चात् उर्मिला नींद का आह्वान करती है-

"आजा मेरी निंदिया गूँगी।
आ मैं सिर आँखों पर लेकर चन्द्र खिलौना दूँगी।।"

उर्मिला को स्वप्न भी नहीं आता और रात्रि व्यतीत हो जाती है। रात्रि तो वह किसी प्रकार तारे गिन-गिन कर व्यतीत करती है, किंतु दिन किस प्रकार व्यतीत करे-

हाय न आया स्वप्न भी, और गई वह रात।
सखी उडगन भी उड़ चले, अब क्या गिनूँ प्रभात।।

नभ रूपी नील सरोवर में सूर्य रूपी हंस तैरता-तैरता उतरता है। वह तारे रूपी मोतियों को चुग लेता है। प थ्वी पर जो मोतियों की तरह ओसकण बचे थे उनका भी सफाया कर देता है। प थ्वी के कंटकाकीर्ण होने के कारण वह उस पर डरता डरता हाथ डाल रहा है-

"सभी नील नभस्सर में उतरा,
यह हंस अहा तरता तरता।
अब तारक मोक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता-चरता।।
अपने हिम बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता-धरता।
गड़ जायं न कण्टक भू-तल के,
कर डाल रहा डरता-डरता।।"

यहाँ श्लेष-लाघव के रूपक सिद्ध हुआ है। 'चरता' और 'कर' शब्दों में दोष है। चरना शब्द गाय या बैल के लिए प्रयुक्त होता हैं हंस तो चुगता है। इस प्रकार हंस पंजे (कर) से मोती न चुगकर चंचु से ही चुगता है। वैसे नाद सौन्दय्र की द ष्टि से यह दुर्मिल सवैया सुन्दर है।

इसके अनतन्तर ऋतु-वर्णन प्रारम्भ होता है। प्रत्येक ऋतु का आकार उर्मिला के विरह को उद्दीप्त करके उसे और आनन्दमय बना देती है। वह ऋतुओं में प्रियत्तम की तपस्या का प्रभाव देखकर आश्वस्त होती है।

उर्मिला की चढ़ती बेला प्रिय विरह में बीत चली थी तभी तो प्रिय-मिलन होने पर उसने कहा था-

"स्वामी, स्वामी जन्म जन्म के स्वामी मेरे !
किंतु कहाँ वे अहोरात्र वे सांझ सवेरे !

खोई अपनी हाय ! वहाँ वह खिल खिल खेला।
प्रिय जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती बेला।।

उर्मिला को लगता है कि उसके जीवन के उपवन की कलियाँ बिखर गई हैं-

"सखी ! बिखर गई हैं कलियां।
कहाँ गया प्रिय झुका-झुकी में करके वे रंगरलियां।।
भुला सकेगी पुनः पवन को अब क्या इनकी गलियाँ।
यही बहुत ये पचें उन्हीं में जो थी रंगस्थलियाँ।।"

उर्मिला के मन में एक हूक-सी उठती है और वह सोचती है कि उसका वनचारी प्रिय क्या फिर कभी उसके जीवन के उपवन में लौटकर आयेगा। वे पहाड़ से 14 वर्ष तो बीतने से रहे, अब तो यही अच्छा है जिस स्थान पर प्रिय के साथ रंगरलियां की थीं, वही इस जीवन का अवसान हो जाये। प्रिय साथ न होंगे तो प्रिय की रंगरलियों में लिपटी हुई मधुर स्म तियाँ तो साथ रहेंगी ही।

उर्मिला स्वयं अवधि बनकर अपने को मिटाने के लिए तैयार है। उसके निम्न कथन में प्रिय-दर्शन का औरत्सुक्य व्यंजित हुआ है-

"अब जो प्रियतम को पाऊं।
तो इच्छा है उन चरणों की रज में आप समाऊँ।।
आप अवधि बन सकूँ, कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ।
मैं अपने को आप मिटाकर जाकर उनको पाऊँ।।"

निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यंजना का वैचित्र्य देखा जा सकता है-

"मेरा रोदन मचल रहा है कहता है कुछ गाऊँ।
उधर गान कहता है रोना आवे तो मैं आऊँ।।"

"मचल रहा है, लाक्षणिक प्रयोग है। यहाँ दुख का आवेग अभिव्यक्ति के लिए तड़प रहा है। 'रोदन' का मानवीकरण हुआ है। ऐसा लगता है मानो रोदन उर्मिला का कोई हठी शिशु हो। रोदन हठ करता है कि मुझे गान चाहिए। उधर 'गान' रोते हुए उत्तर देता है कि रोदन आये तो मैं गाऊँ। यहाँ पर गान का भी मानवीकरण हुआ है।

उर्मिला का ह्रदय वियोगाग्नि का स्थल है और आँखों में पानी भरा हुआ है। वाष्प के लिए आग और पानी दोनों उपकरण उपस्थित हैं। परन्तु उर्मिला को भय है कि कहीं भाप के जोर से उसका शरीर रूपी बर्तन फूट न जाए-

"उधर अनल है ओर इधर जल, हाय किधर मैं जाऊँ।
प्रबल वाष्प, फट जाए न यह घट कहतो हा हा खाऊँ।।"

उर्मिला को वियोग के दुख से छुटकारा मिलना कठिन है। बारह वर्ष व्यतीत हो गये, फिर भी स्वामी न लौटे। प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार 12 वर्षों में तो घूरे के दिन भी फिरते हैं-

"कूड़ से भी आगे पहुँचा अद ष्ट गिरते-गिरते।
बिन बारह वर्षों में घूरे के भी सुन गये हैं फिरते।।"

अब उर्मिल यदि पागल हो जाये तो अच्छा है इससे बिरह रूपी सर्प तो नहीं सताएगा-

"ह ह ह ! पागत हो यदि उर्मिला।
विरह सर्प स्वयं फिर तो किला।।"

उसका उन्माद विरह रूपी सर्प को कील देने में मन्त्रवत् काम करता है। मनोद ष्टि का सच्चा स्वरूस्प निम्नलिखित उक्ति में देखा जा सकता है-

सखी विचार उठता कभी-
अवधि पूर्ण हुई प्रिय आ गये।
तदपि मैं मिलते सकुचा रही,
वह वहीं पर आज नये-नये।।

उर्मिला जहाँ देखती है सर्वपिंय की कान्ति ही दिखाई देती है-

"निरखती सखी, आज मैं जहाँ।
विपति दिप्ति ही दीखती वहाँ।।"

उन्माद के वश उर्मिला समझ लेती है कि अपना धर्म छोड़कर प्रिय अवधि से पहले ही लौट आये हैं, इसलिए वह क्षुब्ध होती है किन्तु जब उसे विश्वास हो जाता है कि यह तो उसका उन्माद था, तब आत्मग्लानि से भर जाती है। उन्माद के वशीभूत होकर उसने अपने स्वामी की भर्त्सना की थी। अब वह इसका क्या प्रायश्चित करे ? वह वक्रोक्ति का आश्रय लेती हुई कहती है -

"पतितनाथ है ! तू सदा शया ?
उद्यम उर्मिले, हाय निर्दया।
नियम पालती एक मात्र तू,
सब अपात्र हैं और पात्र तू ?
मुँह दिखायेगी क्या उन्हें अरी ?
पर ससंशया, क्यों न तू मरी।"

उर्मिला सोचती है स्वामी तो दयालु हैं, अतः वे मुझे अवश्य ही क्षमा कर देंगे, किन्तु उनके द्वारा क्षमा किये जाने पर भी उसके हृदय में आत्म-ग्लानि ही बनी रहेगी-

'सदय तू बता, किन्तु चंचला,
वह क्षमा सही जायेगी भला?'

उर्मिला सोचती है प्रिय मुझे इस प्रकार कहेंगे-

स्वपति-पुण्य ही इष्ट या तुम्हें,
कटु मुझे तथा मिष्ट या तुम्हें।
प्रियतमे ! तपोभ्रष्ट मैं ? चला,
मत छुओ मुझे लौट मैं चला।"

यहाँ वक्रोक्ति का आश्रय लिया गया है। उर्मिला आगे कल्पना करती है-

'हट सुलक्षणे ! रोक तू न यों,
पतित मैं मुझे टोक तू न यों,
'विवश लक्'-नहीं उर्मिला हाय !'
'किधर उर्मिला ! अलि क्या कहा।'

यहाँ सुन्दर नाटकीयता है। 'विवशलक्' कहकर उर्मिला जिस समय रूकी उसी समय घबराकर सखी चिल्ला उठी-नहीं उर्मिला हाय ! उसे सुनकर उर्मिला ने भी चौंक कर कहा-'किधर उर्मिला ! अलि, क्या कहा ?' वह तो उस समय स्वयं को लक्ष्मण मान रही थी। कुछ समय के अनन्तर संभलकर उर्मिला ने अपनी सखी से कहा-

"फिर हुई अहा मत उर्मिला,
सखी प्रियतम था क्या मुझे मिला।

यह वियोग या योग, जो कहें-
प्रियमयी सदा उर्मिला रहे।"

सखी द्वारा समाधान करने पर उर्मिला होश में आती है और कहती है-

"उन्मादिनी कभी थी, विवेकनी उर्मिला हुई सखी अब है !
अज्ञान भला, जिसमें मोह तो क्या, स्वयं स्वयं भी तब हैं !"

साधना के द्वारा जब ज्ञानी आत्मा और परमात्मा में अभेद स्थापित कर लेता है, तब वह 'सो हं की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। उर्मिला की भी यही स्थिति है। उसे अपनी स्थिति का अनुभव करना भी कठिन था। 'सो हं' की स्थिति में पहुँचा उर्मिला के नेत्रों में प्रिय की छवि झूलने लगती है। वह प्रिय का चित्र अंकित करने के लिए सखी से तूलिका लाने को कहती है जिससे वह प्रिय की छवि भूल न जाये-

"लाना, लाना सखी तूली !
आँखों में छवि झुली।
आ अंकित कर उसे दिखाऊँ,
इस चिन्ता से छुट्टी पाऊँ,
डरती हूँ फिर भूल न जाऊँ।
मैं हूँ भूली-भूली।"

ध्वनि यह है कि विरहिणी कितनी ही जल जाए, प्रिय के मिलन योग को पाकर वह फिर हरी-भरी हो जाती है 'मरमर' शब्द का बड़ा ही साभिप्राय प्रयोग हुआ है। लता के वियोग में झुलसा हुआ पेड़ 'मरमर' कर रहा है, यहाँ यही अर्थ व्यंजना होती है। 'गोधूलि' श्लिष्ट प्रयोग है।

अन्त में उर्मिला विरह को प्रभु के दान के रूप में स्वीकार कर लेती है। वह चाहती है कि ईश्वरीय विधान विधिपूर्वक चलता रहे और वह चाहती है कि वह प्रिय की प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करती रहे। जिस भगवान ने उसे वियोग की दारूण ज्वाला दी है, वही इसके सहने की शक्ति भी देगा। उसका रूदन संगीत बन विश्व का कल्याण करे, यही उसकी कामना है-

"सिर माथे तेरा यह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !"
अब क्या माँगू भला और मैं फैलाकर ये हाथ।
मुझे भूलकर ही विभु वन में विचरे मेरे नाथ।
तुझे न भूले उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान।

उर्मिला के हृदय पर अवधि रूपी शिला का भारी भार है। वह अपने नेत्रों से अविराम अश्रुधारा बहा-बहाकर तिल-तिल करके उसे काटती है। "शिला" और "जलधारा" का रूपक यहाँ भावाभिव्यक्ति में सहायक हो रहा। नियति के निष्ठुर विधान के सामने किसका वश चलता है। अजस्त्र अश्रुधारा बहाकर भी उर्मिला पहाड़ से भी भारी चौदह वर्ष की अवधि किस प्रकार काट सकेगी ? कवि की यह उक्ति पाठकों के हृदय पर संवेदना, करूणा, अवसाद और अनुभूति की गहरी छाप छोड़ देती है और इसी के साथ नवम् सर्ग समाप्त होता है।

"अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल-२ काट रही थी द ग जल-धार ।"

निष्कर्ष-इस समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि 'साकेत' के नवम् सर्ग में उर्मिला के विरह-वर्णन में करुणा ही रोती है। करूणा का लहराता हुआ अथाह सागर कथानक की गति को रोक देता है। परन्तु इसमें उर्मिला के चरित्र की गरिमा और उसके त्याग एवम् परोपकार की भावना का प्रकाश न हो जाता है। इस प्रकार वह विरह-वर्णन यांत्रिक एवं अस्वाभाविक लगता हुआ

भी कथा के विकास में साधक बन जाता है। यद्यपि नवम् सर्ग अभिधामूलक और वक्तव्यात्मक है परन्तु स्थान-स्थान पर उर्मिला के करुणासिक्त मार्मिक गीत भावानुभूति का सागर उडेल देते हैं। यथार्थ में नवम् सर्ग के कारण ही 'साकेत' महाकाव्य की गरिमा है।

2. 'साकेत' में चित्रित उर्मिला-विरह-

'साकेत' द्विवेदी जी की प्रेरणा से लिखा गया श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें उर्मिला के जीवन का आकर्षक चित्रण किया गया है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने एक स्थान पर लिखा है-"मेरे हृदय में एक विरहिणी नारी बैठी है। जो अपने दुःख का गीत सुनाया करती है।" रवीन्द्र का यह कथन अक्षरशः सत्य है। यह विरहिणी केवल रवि बाबू के हृदय में ही नहीं बैठी वरन् अन्य सभी कवियों की आत्मा में उसका निवास है। इसी नारी ने भवभूति के हृदय में सीता का रूप धारण किया, कालिदास के हृदय में शकुन्तला का, सूर के हृदय में राधा का तथा जायसी के हृदय में नागमती का रूप धारण किया। इसी भाँति गुप्त जी के हृदय में वही विरहिणी उर्मिला बन गई। सुमित्रानन्दन पन्त ने तो स्पष्ट कहा है-

"वियोगी होगा पहला कवि; आह से निकला होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, वही होगा कविता अनजान।।"

यही कारण है कि आदि काल से कवियों ने वेदना और विरह का आँचल पकड़ा तथा अपने भावों को विभिन्न स्वरूपों में प्रस्तुत करते रहे। हिन्दी के प्राचीन काल में विरह के प्रधान कवि जायसी, सूर तथा मीरा हुए हैं। इसके अतिरिक्त देव धनानन्द और ठाकुर भी इसी कोटि में आते हैं। रीतिकालीन कवियों में इतना विरह का प्राधान्य नहीं रहा। आधुनिक युग में वियोग की कसक, हरिऔध, प्रसाद, महादेवी तथा बच्चन आदि कवियों में पाई जाती है।

मैथिलीशरण गुप्त भी इस द ष्टि से पीछे नहीं ठहरते। उन्होंने भी अपना हृदय नायिका के कण्ठ में उड़ेल कर उसका सहारा लेकर विरह-गान किया है। उन्होंने भी अपना हृदय उनकी विरहिणी है उर्मिला। उर्मिला का विरह साकेत की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। उसकी परिस्थिति बड़ी करुणाजनक है। 'साकेत' में उर्मिला ही सबसे निराश्रित प्राणी है। सीता राम के साथ छाया की भाँति लगी रहती है। माण्डवी तथा श्रुति कीर्ति भी अपने-अपने पतियों के साथ बनी रहती हैं। केवल उर्मिला ही विवश है-उसके पास कोई साधन नहीं कि वह अपनी पीड़ा को शान्त कर सके। वियोग के समय उर्मिला के नेत्रों से जो अश्रु-प्रवाह हुआ है; उसमें केवल उर्मिला के ही नेत्र नहीं भीगे हैं वरन् साकेत के पढ़ने वाले पाठकों के नेत्र भी अश्रुपूरित हो जाते हैं। विरह के आधिक्य के कारण यदि साकेत को हम विरह काव्य की संज्ञा दें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

उर्मिला यद्यपि एक भाग्यहीन एवम् निराश्रित प्राणी है। परन्तु उसने ईर्ष्या का लेशमात्र भी नहीं है। बल्कि उसकी दयनीय दशा से अन्य सभी द्रवित हो उठते हैं। और इस भाँति उर्मिला की विवशता सबके दया के पात्र बन जाती है। सीता ने कहा है-

"आज भाग्य है जो मेरा,
वह भी हुआ न हा ! तेरा।"

इस प्रकार कवि दूसरों की आतुरता द्वारा उर्मिला के मन की व्यग्रता प्रदर्शित करता है। यदि ये ही वाक्य कवि उर्मिला के मुख से कहलाता तो संभवतः पाठक-हृदय इतना प्रभावित न होता। हृदय में इतनी व्याकुलता होने पर भी उर्मिला किसी से कुछ नहीं कहती बल्कि अपने मन को ही समझाती है-

'हे मन,
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।'

लक्ष्मण के वन चले जाने के उपरान्त उर्मिला की दशा दिन-दिन गिरती जाती है-उसका शरीर कृश हो जाता है। उसके मुख की कांति पीली पड़ जाती है। यौवन में ही उसे यति का वेश मिल गया अतः इन सब बातों को होना स्वाभाविक है। गुप्त जी ने उसकी वियोगजन्य पीड़ा का चित्र उपस्थित किया है-

"मुख-कांति पड़ी पीली-२,
आँखें अशान्त नीली-नीली।

क्या हाय यही वश कृश काया,

या उसकी शेष सूक्ष्म छाया।।"

चित्रकूट में एक बार उर्मिला का मिलन अपने प्रिय लक्ष्मण से होता है। यह सीता के द्वारा कराया जाता है क्योंकि एक स्त्री का हृदय ही स्त्री को पहचान सकता है। आजकल भी हिन्दू-परिवार में यह द श्य देखने को मिलता है। वहाँ भी मिलन माध्यम स्त्रियां ही विशेषकर भाभियाँ ही बना करती हैं। यद्यपि लक्ष्मण और उर्मिला का क्षणिक मिलन होता है परन्तु उस समय लक्ष्मण की दशा देखते ही बनती है। वे उर्मिला को अपने समक्ष देखकर कर्त्तव्यविमूढ़ से हो जाते हैं तथा वे निश्चय नहीं कर पाते हैं कि वह उर्मिला ही है। निराश होकर उर्मिला ही कहती है-

उर्मिला अपने मन में सोचती है कि आज उसके उपवन का हरिण वनचारी हो गया, इसीलिए वह डरता है कि पुनः न मैं बाँध लिया जाऊँ। लक्ष्मण की इस विषम परिस्थिति को देखकर उर्मिला विश्वास दिलाती है-"मैं अब तुमको अपने बन्धन में नहीं बाँधूगी क्योंकि मैंने स्वेच्छा से ही तुम्हें छोड़ा है इसलिए भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

वाह रे नारी हृदय ! लक्ष्मण का हृदय उर्मिला के आन्तरिक तूफान को नहीं सहन कर पाता। अतः

"गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया पद-तल में,

वह भीग उठी प्रिय-चरण धरे द ग जल में।"

उर्मिला की विरही जीवन नित्य-प्रति के ग हस्थ जीवन की वस्तु है। इस द ष्टि से उर्मिला की द ढ़ता प्रशंसनीय है। वह चाहती तो कुल-मर्यादा छोड़कर योगिनी बन सकती थी और घर छोड़कर जा सकती थी किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसका जीवन तो एक कारागार बन गया है। उसका तो एक-२ पल एक-२ वर्ष के समान व्यतीत हो रहा है और फिर उसे काटने हैं जीवन के लम्बे चौदह वर्ष। प्रातः काल होता है, संध्या होती है। उसी भाँति उर्मिला भी खाती है, पीती है, सोती और रोती है-

"खान-पान तो ठीक है, पर तदनन्तर हाय।

आवश्यक विश्राम जो, उसका कौन उपाय।।"

इतनी बड़ी अयोध्यापुरी में उसे कोई भी अपने समान दुःखिनी नहीं दिखाई देती। ऐसी स्थिति में समय को काटने के लिए वह चित्र-रचना में लग जाती है। पक्षियों ने भी अपना एकाकार उर्मिला के जीवन से कर रखा है। तोता उसे उदास देखकर कहता है-"हाय रूठो न रानी।"

उर्मिला ने जब तोते से पूछा-

"कह विहग, कहाँ है आज आचार्य तेरे ?"

तब तोता अपनी बोली में उत्तर देता है-"म गया में"। इस उत्तर को सुनकर उर्मिला का कोमल हृदय विह्वल हो उठता है -

"सचमुच म गया में ? तो अहेरी नये वे,

यह दूत हरिणी, क्यों छोड़ हो गये वे।"

वियोग एवं दुःख की दशा में आत्मीयता की भावना स्वतः बढ़ जाती है। वह नैसर्गिक नियम है कि सहानुभूति प्राप्त करने के लिए सहानुभूति प्रदान करना भी आवश्यक है। वैसे भी ममत्व मिलते ही दुःखी हृदय अनायास ही उमड़ पड़ता है। तभी उर्मिला का स्नेह अपने समीप रहने वाले सभी प्राणियों पर बिखर रहा है-

"कोक, शोक मत कर हे तात,

क्योंकि कष्ट में हूँ मैं भी तो सुन तू मेरी बात।"

पूर्व मिलन की स्म तियाँ विरह-व्यथा को तीव्र कर देती है। अपने प्राचीन जीवन के माधुर्य को याद करके उसकी व्यथा द्विगुणित हो जाती है। तभी तो जब कामदेव उस पर आक्रमण करता है तो वह दीन होकर प्रार्थना करती है-

"मुझे फूल मत मारो !

मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।"

रीतिकाल का प्रभाव-

रीतिकाल के विरह-वर्णन की प्रायः सभी विशेषताएं साकेत में व्याप्त हैं। यथा षट्ऋतु वर्णन, प्रचलित विरह दिशाओं का निरूपण, श्ंगारिक चित्रण तथा कलाप्रियता आदि। साकेत के उर्मिला विरह वर्णन का एक सूक्ष्म पर्यावलोकन यह सिद्ध करता है कि उसमें रीतिकालीन विरह वर्णन की ये विशेषताएं न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध है। साथ ही आधुनिक कवियों की अनुभूति-प्रवणता भी इसमें दर्शनीय है। परन्तु कवि ने इन्हें वहीं तक अपनाया है जहाँ तक उसकी स्वच्छन्द विचारधारा में व्याघात नहीं पड़ा है।

रीतिकालीन कवियों की भाँति साकेतकार ने भी उर्मिला विरह के अन्तर्गत षट्ऋतु वर्णन प्रस्तुत किया है। परन्तु इस दिशा में भी उसने अपनी स्वच्छन्दता का परित्याग नहीं किया है। परन्तु यह वर्णन अपनी एक मौलिक विशेषता भी रखता है। साकेत का ऋतु वर्णन उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न ऋतुओं का क्रमानुसार परिवर्तन विरहिणी उर्मिला को किस प्रकार प्रभावित करता है, केवल यही कवि ने वर्णित किया है। ऋतुओं के बदलने पर उर्मिला को उस ऋतु की विगत संयोगकालीन स्म तियाँ व्याकुल बना देती है। वर्षा ऋतु में उसे लक्ष्मण के साथ व्यतीत किए गए वर्षाकालीन क्रीड़ा-कौतक स्मरण आते हैं तो शिशिर में शीताधिक्य के समय तत्सम्बन्धी प्रसंग। इस प्रकार यह वर्णन गुप्त जी की विशेष्ता है। कवि ने ज्यों का त्यों प्राचीन पद्धति का अनुकरण नहीं किया है। विषय को अपनी इच्छानुसार मोड़ प्रदान किए हैं।

साकेत के उर्मिला-विरह में रीतिकाल के सद श अहात्मक वर्णन भी यत्र-तत्र द ष्टव्य है। उर्मिला अपनी सखी से कहती है-

> **"करती है तू शिशिर का बार बार उल्लेख।**
> **पर सखि ! मैं जल सी रही धुआधार यह देख।।"**

यह स्थल पर उर्मिला कुहरे को देखकर विरह-ताप में स्वयं के जलने का अनुमान करती है। कवि की इस रीतिबद्धता का लक्ष्य यहाँ पर शीत और विरह-ताप का वैचित्र्य प्रकट करना है। बिहारी ने अपनी इस प्रकार की रीतिबद्धता को बिल्कुल ही हास्यास्पद बना दिया है-

> **"आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की रीति।**
> **साहस ककै सनेह बस सखी सबै ढिंग जाति।।"**

गुप्त जी ने यद्यपि कहीं-कहीं रीति को अपनाया तो है परन्तु उसके लकीर के फकीर नहीं बने हैं। उनकी स्वच्छन्द मनोव त्ति ने रीति-युक्त द ष्टिकोण भी रखवा दिया है।

रीतिकाल के कवियों का विरह-वर्णन पर्याप्त श्ंगारिक भी था, गुप्त जी भी रस प्रभाव में अछूते नहीं हैं। विरहिणी उर्मिला को विगत संयोगकालीन स्म तियाँ प्रायः व्याकुल बना देती हैं। निम्न कविता में उसका एक संयोगचित्र देखिए जिसमें श्ंगार रस अपने समस्त अङ्गोपाङ्गों के साथ उपस्थित है-

> **"मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि एक रात,**
> **रिमझिम बूंदे पड़ती थी घटा छाई थी।**
> **गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर**
> **झिल्ली-झनकर यही मेरे मन भाई थी।**
> **करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,**
> **चंचला थी चमकी धनाली घहराई थी।**
> **चौक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,**
> **माई ! मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।।"**

इस कविता में उर्मिला और लक्ष्मण आलम्बन तथा आश्रय हैं। बूँदों का पड़ना, घटा का छाना, केतकी का गमकना, झिल्लियों का झनकारना, लक्ष्मण का अंधेरे में चुपचाप खड़े होकर उर्मिला का विलास देखना उद्दीपन है। उर्मिला का लज्जातिरेक से भरकर छाती में मुख छिपाना अनुभाव है। लज्जा, स्म ति, हर्ष, आवेग आदि संचारी भाव हैं। इन भावों से परिपुष्ट रति स्थायी

भाव श्ृंगार-रस में परिणत हुआ है।

रीतिकालीन कवियों की कलाप्रियता भी साकेत में द ष्टिगत होती है। तुकप्रियता और अनुप्रासप्रियता के ये उदाहरण देखिए-"दरसो परसो बरसो", "व्यग्र उदग्र", "स ष्टि द ष्टि", "जीण शीर्ण", "कन-कन छन-छन जन-जन के मन" आदि।

रीतियुगीन कवियों का शब्द क्रीड़ा के प्रति विशेष आग्रह था, वह भी साकेत के विरह वर्णन में विद्यमान है। एक उदाहरण देखिए-

"उसे बहुत थी विरह के, एक दण्ड की चोट।
धन्य सखी देती रही, निज यत्नों की ओट।।"

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने उर्मिला के विरह वर्णन में रीतिकालीन प्रभावों को ग्रहण किया है। परन्तु अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण उसमें नवीनता और मौलिकता का भी समावेश किया है। रीतिकालीन चमत्कारप्रियता के प्रभाव से कहीं-कहीं गंभीरता और मार्मिकता की हानि हुई है। इस संदर्भ में डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कथन उदहरणीय है-

"तभी तो इस विरह-वर्णन में कलात्मकता तो है परन्तु आकर्षण नहीं है, सरसता तो है परन्तु गम्भीरता नहीं है। इसलिए सम्पूर्ण सरस और रमणीक होकर भी कवि की असमर्थता का द्योतक है।

3. 'साकेत' में उर्मिला का चरित्र-चित्रण-

भारतीय संस्कृति में नारी को विशेष महत्त्व दिया गया है, क्योंकि हमारी संस्कृति मात प्रधान है। नारी को विनम्रता, ममता और कोमलता का प्रतीक मानते हैं। प्रत्येक श्रेष्ठ कवि के साहित्य में भी यह द ष्टिगोचर होता है। चाहे वह कालीदास हो या शेक्सपीयर, बाल्मीकि हो या मिल्टन अथवा तुलसी प्रत्येक की रचना में नारी की प्रधानता पाई जाती है। न्यूमैन ने तो यहाँ तक कहा है-

"If thy soul is to go into higher spiritual bless it must become a woman."

वस्तुतः नारी ही मूल प्रेरक शक्ति है, इसलिए पुरुष की अपेक्षा उसका स्थान ऊँचा होता है। गुप्त जी ने नारी को पुरुष के विकास में सहायक माना है। पंत जी की भाँति वे भी नारी को देवी, माँ, सहचरी तथा प्राण अनेक रूपों में देखते हैं।

वीरगाथा कला से 19वीं सदी तक नारी का उच्च एवं अनुकरणीय रूप देखने को नहीं मिलता। उस काल नारी का रति-क्रीड़ा रूप ही प्रधान रहा है। निर्गुण मार्गी संत परम्परा में नारी प्रधान न रह सकी। तुलसीदास जी ने अवश्य नारी के कामिनी रूप का खण्डन किया। परन्तु वे नारी के आदर्श रूप का उचित प्रतिपादन न कर सके। महाकाव्य की सीमाएं भी हुआ करती हैं सूर की गोपियां दार्शनिक पक्ष में पुष्ट जीवन का प्रतीक बन गई। जिनके लिए मर्यादा, त्याग, विधिवत् बताया गया। रीतिकाव्य में नारी का रूप निखरा परन्तु कविगण केवल ताँक-झाँक में ही लगे रहे।

परिवार अथवा क्षेत्र में नारी का कोई महत्त्व नहीं था। उनके लिए शिक्षा अथवा अन्य नारी सुलभ अधिकार वर्जित थे। वे तो आडम्बर एवं कुरीतियों में ही उलझी रहती थी। गुप्त जी ने इस प्रव त्ति को अच्छी प्रकार से समझा तथा युगों से चली जाने वाली उपेक्षित नारी को अपने काव्य में उचित स्थान दिया। उन्होंने नारी को इस योग्य बना दिया जिससे वह पुरुषों से कदम से कदम मिलाकर चल सके।

गुप्त जी ने नारी को भारतीय आदर्श के ढाँचे में ढालने की चेष्टा की है। भौतिक पक्ष में नारी 'रति' को प्रतिरूप है, वह विश्व की मधुर कल्पना है। अतः नारी पुरुष की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रकट हुई। साथ ही बौद्धिक क्षेत्र में वह उच्च है। हृदय की विशालता तथा सहानुभूति उसके आभूषण रहे हैं। मनुष्य नारी का उपकार नहीं भूल सकता-

"मेरी यही महामति है-पति ही पत्नी की गति है।"

साकेत में सीता, उर्मिला, कौशल्या, सुमित्रा का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उपेक्षित कैकयी के चरित्र को भी उठा दिया गया है। गुप्त जी ने सारा दोष दासी मंथरा के सिर पर नहीं मढ़ा है, बल्कि सारा दोष परिस्थिति का है। वह अपने पर स्वयं अधिकार खो बैठी, यही दशा उसे सहानुभूति का पात्र बना देती है। उर्मिला का आदर्श रूप साकेत में ही देखने को मिलता है। गुप्त जी ने उर्मिला तथा सीता का स्थिति-वैषम्य कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है-

"सीता ने अपना भाग लिया,
पर इसने वह भी त्याग दिया।।"

साकेत में उर्मिला का विरह वर्णन चरम सीमा पर पहुँच गया है। उर्मिला ने वियोग में इतने आँसू बहाये कि गाँधी जी को उत्तर देते हुए गुप्त जी ने एक पत्र में लिखा था-

"वह तो आपके लिए बकरी का दूध भी लाना चाहती है, परन्तु डरती है उसमें कभी पानी मिला देखकर आप यह न कह दें कि छोड़ा मैंने बकरी का दूध भी। पानी, हाँ आँखों का पानी। बहुत रोकने पर एकाध बार वह टपक पड़ा तो बापू दूध से भी गये। फिर चाहे उनके हाथ पैरों में श्रान्ति का संचार ही क्यों न होने लगे।"

प्रेम की कसौटी है विरह, इसलिए उर्मिला उसमें तपकर स्वर्ण के समान चमक उठती है। यहाँ तक कि साकेत में राम भी उर्मिला की प्रशंसा करते हैं-

"तू तो सहधर्मचारिणी के भी ऊपर,
धर्म स्थापना किया भाग्यशालिनी इस भू पर।"

प्रो० धर्मेन्द्र ने एक स्थान पर लिखा है-"गुप्त जी के कवि संसार की प्रायः सभी नारियों का अवतरण तो अबला के रूप में होता है, किन्तु पुरुषों के तिरस्कार की चोट खाकर वही अबला प्रबला में परिवर्तित हो जाती है।

अबला जीवन बिताती हुई ये नारियाँ अवसर पड़ने पर घोर सबला हो जाती हैं। उनका क्रोध चरम सीमा पर पहुँच जाता है। निरन्तर आँसू बहाने वाली नारी रौद्र रूप धारण कर लेती है। साकेत में भी यह रूप देखने को मिलता है-

"मानिनि कैकयी का कोप, बुद्धि का करने लगा विलोप।
एड़ियों तक आ छूटे केश, हुआ देवी का दुर्गा वेष।।"

नारी जिस तथ्य अथवा भाव को छिपाना चाहती है, छिपा भी लेती है। वनगमन के समय उर्मिला का अन्तर्द्वन्द्व देखते ही बनता है। वह कैकयी की भाँति रौद्र रूप न धारण कर नारी-सुलभ स्वभाव का ही परिचय देती है। उर्मिला की सहृदयता एवं विषाद एक साथ देखने को मिलता है-

"कहा उर्मिला ने हे मन,
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग भरा,
है अनुराग विराग भरा।
तू विकार से पूर्ण न हो,
शोक भार से चूर्ण न हो।"

प्रिय के वियोग में विरह के ताप पुंज में जलती हुई उर्मिला की सखियाँ आश्वासन देती है कि प्रभु शीघ्र ही लौटेंगे। अतः अधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं। सखियों की सहानुभूतिपूर्ण बातों को सुनकर उसके होठों पर मुस्कान की विषादमयी रेखा दौड़ पड़ती है और वह कहने लगती है-

"हाय सब कुछ गया ! आशा न गई।"

× × ×

"लौटेंगे क्या प्रभु और बहन।
उनके पीछे हा दुख दहन।।"

वेदना तो जैसे उर्मिला का जीवन बन गई है। वही प्रिय की पुण्य स्म ति का माध्यम बनकर उगती है। अब तो प्रिय की स्म ति मात्र ही उसके जीवन का आधार है-

"वेदने तू भी भली बनी।
पाई मैंने आज तुम्हीं में मैंने चाह घनी।।"

कुछ आलोचक उर्मिला के विरह में स्वार्थ की गन्ध बताते हैं। परन्तु वास्तवः ऐसी बात नहीं है उसमें विश्व-वेदना की तड़पन है। उर्मिला का दीपक तो सदैव जालीदार झरोखे में दीप्तिमान रहता है। उसमें विश्वप्रेम की व्याप्ति है। उर्मिला का अनुराग लोक-कल्याण में बाधक नहीं, वह तो सदैव यही चाहती है-

"भ्रात -स्नेह-सुधा बरसे,
भू पर स्वर्ग भाव सरसे।"

केवल दुख तो है इतना कि-

"यदि स्वामी संग मैं रह न सकी,
तो क्यों इतना भी कह न सकी।
यह भ्रात -स्नेह न ऊना हो,
लोगों के लिए नमूना हो।"

साकेत में उर्मिला का चरित्र सीता से भी ऊँचा उठ गया है। वही साकेत की कथा की केन्द्र-बिन्दु और आधार है। सारा कथानक उसके आँसुओं से गीला है।

साकेत की उर्मिला सौन्दर्य की साकार प्रतिमा, परिहासप्रिय, कला-निपुण, प्रेम-प्रगल्भा, आदर्श पत्नी, त्याग एवं बलिदान की भावना से युक्त, करूणा की प्रतिमा एवं देशाभिमानिनी, राष्ट्र सेविका आदि सब कुछ है।

निष्कर्ष :-

साकेत में वर्णित उर्मिला का चरित्र विविध गुणों से परिपूर्ण है। डॉ० कलमाकांत पाठक ने इस चरित्र-विकास को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है-प्रथम में वह आदर्श ग हणी है, त्यागमयी एवं विरह से दुःखी है। उसका प्रेम अभी लक्ष्मण से एकान्त रात्रि के अंधेरे में स्म ति की उपेक्षा करता है। द्वितीय स्थिति में यह भाव नष्ट हो जाता है। त तीय स्थिति में उसका प्रेम और सतीत्व अपनी धर्म-निष्ठा में वियोग साधना करता है। यथार्थ में उर्मिला गुप्त जी की अनुपम कृति है।

4. 'साकेत' के नवम् सर्ग की गीतात्मकता-

'साकेत' मधुर संगीत से परिपूर्ण एक काव्य है। उसमें गीतिकाव्य के लक्षणों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। उर्मिला का तो जीवन ही गीतमय हो जाता है। उसका जीवन वियोग से परिपूर्ण हैं। अतः अपने वियोग को प्रकट करने तथा उसकी व्यथा को हल्का करने के लिए वह गीतों का आश्रय लेती है। वह अपने प्रिय के विरह में बड़ी दुखी है, परन्तु उसे व्यथा ही श्रेयस्कर प्रतीत होती है। वे सभी वस्तुएं और स्थान उसे बड़े रूचिकर लगते हैं जो उसके प्रियतम से सम्बन्धित हैं। इसलिए चित्रकूट को देखकर वह कहती है-

"सिद्धि शिलाओं के आधार,
औ गौरव-गिरी, उच्च उदार।"

उर्मिला के अपने प्रिय लक्ष्मण के दर्शन जाग्रत अवस्था में होना तो दुर्लभ प्रतीत होता है। अतः वह स्वप्न का आश्रय लेती है। वह व्यथित अपने प्रलोभनों को देकर रात्रि का आह्वान करती है, जिससे कि वह निद्रा देवी की गोद में शान्ति से सो सके तथा अपने प्रिय का दर्शन कर सके। एक निराश्रित प्राणी इससे अधिक और कर भी क्या सकता है-

"आ जा मेरी निंदिया गूंगी।
आ, मैं सर आँखों पर लेकर, चंद खिलौना दूंगी।
प्रिय के आने पर आवेगी, अर्धचन्द्र ही तो पावेगी,
पर यदि आज उन्हें लावेगी, तो तुमसे ही लूंगी।।"

मानव ह्दय पर वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। वातावरण के उल्लास को देखकर उसका ह्दय तरंगरित हो उठता है। परन्तु वियोगी के लिए ऐसा वातावरण असह्य हो उठता है। एक विरहिणी के लिए बसन्त कैसा ? उसे तो बसन्त ऋतु में खिलने वाले लाल-फूल अंगारे के समान प्रतीत होते हैं। ठीक यही दशा लक्ष्मण के बिना उर्मिला की हो रही है। उसे संसार

का कोई राग रंग नहीं भता। अन्तोगत्वा है तो वह भी एक मानव वर्ग का प्राणी। परन्तु उर्मिला महान् नारी है। वह अन्य सांसारिक विरहणियों के समान नहीं है, जो केवल आत्मसुख तथा अपना स्वार्थ ही देखती है-जन कल्याण का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं। उर्मिला तो अपने मिले हुए प्रिय को भी लौटा देती है, उसे अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ रहने का आदेश देती है। धन्य है उसकी कर्त्तव्यपरायणता-

"सखे, आजो तुम हंसकर, भूली रहूं मैं सुध करके रोती।
तुम्हारे हँसने में है फूल, हमारे रोने में मोती।।
मानती हूँ तुम मेरे साध्य।
अहर्निशी एक मात्र आराध्य।।
साधिका मैं भी किन्तु अबाध्य, जगती होऊं या सोती।।"

कभी-कभी तो उर्मिला का स्वर प्रकृति के स्वर में मिल जाता है। दोनों में तादातम्य हो जाता है। उर्मिल के मुख से निःस त गान को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई निर्झर कल-कल स्वर से मुखरित हो तथा हम उसका आनन्द लेने के लिए तट वासी खग हो गये हों। यह पहले ही बताया जा चुका है कि प्रकृति जीवन से तादात्म्य स्थापित करना गुप्त जी की अपनी विशेषता है। शरद् ऋतु में चारों ओर निर्मल जल से युक्त नदियां बह रही हैं। उर्मिला का स्वर भी उनके कल-कल स्वर में मुखरित हो उठता है-

"सखी, निरख नदी की धारा !
ढ़लमल-ढ़लमल चंचल, अंचल, झलमल-झलमल तारा,
निर्मल जल अन्तस्थल भरके,
उछल-उछल कर छल-छल करके,
चल-चल तरके, कल-कल धरके,
बिखराता है पारा।।"

उन्माद विरही की अन्तिम दशा होती है। उर्मिला में भी हमें इसी उन्माद की झलक दिखाई देती है। उसे कभी-कभी ऐसा भास होता है, मानों उसके प्रिय उसके निकट हों। परन्तु जब उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है तो वह बड़ी दुःखी होती है तथा विभिन्न रूपों में गा-गाकर अपनी व्यथा को कम करने का प्रयत्न करती है। वह अपनी सखी से कहती है-

लाना, लाना सखी, तूली !
आँखों में छवि झूली !
जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला।
तब पहुँचा विरही मतवाला, सतीहीन ज्यूं शूली।

इस प्रकार 'साकेत' के गीत उर्मिला के हृदय की व्यथा को व्यक्त कर देते हैं। साथ ही पाठकों का हृदय भी उसके प्रति सहानुभूति से पूर्ण हो जाता है। यही आकर्षण होता है इन गीतों में।

नवम् सर्ग में जो गीत आते हैं, उनका महत्त्व गीति-कला की द ष्टि से बहुत अधिक है। इन गीतों में प्राचीन एवं नवीन भाव-धाराओं का अपूर्व संगम दिखाई देता है। उर्मिला को इनमें विरह विधुरा नायिका के रूप में अंकित किया गया है, जो कि रीतिकालीन कवियों की प्रमुख विशेषता है। किन्तु इसके साथ ही उर्मिला का वियोगिनी रूप रीतिकालीन नायिका से प थक् है। रीतियुगीन कवियों ने नायिका की विरह वेदना की ऊहात्मक व्यंजना की है किन्तु गुप्त जी ने उर्मिला की विरह व्यथा में अन्तर्व त्तियों का प्राधान्य दिखाया है। उर्मिला की विरहोक्तियों में कोरा चमत्कार नही है, अपितु अनुभूति एवं चमत्कार का कवि सॉंचन संयोग है। नवम् सर्ग में प्रायः सभी गीत अत्यन्त मार्मिक प्रभावपूर्ण एवं उत्कृष्ट बन पड़े हैं।

साकेत के कथानक का गठन प्रबन्धात्मक है, परन्तु सर्वत्र गीतों की भरमार है। प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति के कारण कथा-प्रवाह शिथिल पड़ जाता है। साकेत और उसमें विशेषकर नवम् सर्ग का महत्त्व उसकी प्रगीतात्मकता के कारण है।

5. गुप्त जी युग-प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि-

अपने देशकाल की प्रत्येक विचारधारा, संस्कृति एवं साहित्यिक चेतनाओं का समन्वय अपने काव्य में करने वाला कवि प्रतिनिधि-कवि के नाम से विख्यात होता है। वह अपनी अमर प्रेरणा से जन-जीवन में प्राण फूँककर युग को अमर सन्देश देता है। मैथिलीशरण गुप्त ऐसे ही युग-प्रतिनिधि कवि थे।

गुप्त जी विभिन्न काव्य युग की विभिन्न समस्याओं को उभार कर उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं। गुप्त जी प्राचीन मर्यादा, समन्वय, प्रेम, कर्मण्यता आदि आदर्श भावों की प ष्ठभूमि में आधुनिक समस्याओं का हल ढूँढ़ते हैं। 'नहुष का पतन' के बाद 'उत्थय' युग-युग को प्रेरणादायक सन्देश देता है। 'द्वापर' में पौराणिक पात्र क्रान्तिकारी नेता के रूप में उपस्थित होते हैं। 'विघ्रता' प्रसंग में यौन-मनोविज्ञान एवं काम-भाव का विश्लेषण है।

गुप्त जी की लगभग सभी रचनाओं में सन् 1900 से अब तक के भारत की गतिविधि का सजीव चित्रण है। वे युग की विभिन्न मान्यताओं रीति-नीतयों, राजनैतिक विचारों, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की झलक दिखाकर आदर्शों का संकेत करते हैं। उनकी प्राप्ति के साधनों पर प्रकाश भी डालते हैं। गुप्त जी की काव्यधारा सन् 1900 से लेकर अब तक के राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने में समेटे हुए है।

'रंग में भंग' तथा भारत-भारती (1911 ई०) में तत्कालीन राष्ट्रीयता का शंखनाद है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समस्त परिवर्तन गुप्त जी की रचनाओं में मिलते हैं। हिन्दू-मुस्लिम के झगड़ों का स्पष्ट प्रभाव गुप्त जी के 'हिन्दू' तथा गुरुकुल में मिलता है। इस प्रकार गाँधी, मार्क्स आदि की विचारधारा से भी गुप्त जी की काव्यधारा प्रभावित हुई है।

गुप्त जी अपनी भाव-रश्मियों से हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने वाले युग कवि थे। चालीस वर्ष तक निरन्तर उनकी रचनाओं में युग-स्वर गूंजता रहा। उन्होंनं गौरवपूर्ण अतीत को प्रस्तुत करने के साथ-साथ भविष्य का भव्य रूप प्रस्तुत किया-

"मैं अतीत ही नहीं भविष्यत् भी हूँ आज तुम्हारा।"

गुप्त जी मानवतावाद के पोषक एवं समर्थक थे। उनकी भागवत-भावना महान् थी। उनके काव्य में निर्गुण नारायण ही प थ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए भूतल पर आते हैं-

"भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भू-तल को ही स्वर्ग बनाने आया।।"

गुप्त जी काव्य मानव की प्रेरणा और प्रव त्ति का स्रोत हैं। वर्तमान युग के प्रति आस्था, राष्ट्रीयता, मानव की गरिमा, व्यष्टि का समष्टि में पर्यवसान का वह समन्वित रूप है। मानव चरित्र में जितनी भी सम्भावनाएं सम्भव हैं, उन सबकी समष्टि राम का चरित्र है।

अपने सहित्यिक गुरु पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से गुप्त जी ने 'भारत-भारती' की रचना की। 'भारत-भारती' के प्रकाशन से ही गुप्त जी प्रकाश में आये। उसी समय से आपको राष्ट्रकवि के नाम से अभिनन्दित किया गया। गुप्त जी की साहित्य-साधना सन् 1921 से सन् 1964 तक निरंतर आगे बढ़ती रही।

गुप्त जी युग-प्रतिनिधि कवि थे, इस अर्द्ध-शताब्दी की समस्त सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक साहित्यिक हलचलों का प्रतिनिधित्व उनकी रचनाओं में मिल जाता है। उनके काव्य में राष्ट्र की वाणी मुखर हो उठी है। देश के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या दासता से मुक्ति की थी। गुप्त जी ने 'भारत-भारती' तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से इस दिशा में प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने अतीत का गौरव भाव जगाकर वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा दी। वे अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

"मानस् भवन में आर्य जन,
जिसकी उतारें आरती।

भगवान भारतवर्ष में,

गूँज हमारी भारती।।"

इस युग की प्रमुख समस्या हिन्दू-मुसलमान की एकता थी। गुप्त जी ने अपनी अनेक रचनाओं में इन दोनों की एकता पर बल दिया। 'काबा और कर्बला' में उन्होंने मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने समस्त समस्याओं का राष्ट्रीय-द ष्टि से समाधान प्रस्तुत किया है।

गुप्त जी ने खड़ी बोली का रूप सुधार कर उसे काव्योचित रूप प्रदान किया। उनकी भाषा सीधी-सादी जनता की भाषा है। वह सहज गति से आगे को प्रवाहित होती है। 'साकेत', यशोधरा और 'सिद्धराज' की भाषा में अधिक प्रौढ़ता है। छायावादी कविता का प्रभाव भी गुप्त जी पर पड़ा। झंकार में उन्होंने प्रगीत, मुक्तक और लाक्षणिकता पदावली में रुचि दिखाई है। भाषा की तरह भी अलंकारों और छन्दों के क्षेत्र में भी गुप्त जी ने युग का प्रतिनिधित्व किया है। कहीं-कहीं पर तो अलंकारों का प्रयोग हुआ है। चौदह वर्ष की अवधि-शिला को तिल-तिल काटती हुई उर्मिला का एक आलंकारिक चित्र देखिये-

"अवधि-शिला का या उर पर गुरु भार।

तिल-तिल काट रही थी द गजल धार।।"

छन्दों के क्षेत्र में गुप्त जी ने अपने युग का पथ-प्रदर्शन किया है। मान्त्रिक छंद ही उन्हें विशेष प्रिय रहे। 'यशोधरा' और 'साकेत' में गीत तथा 'सिद्धराज' में अतुकान्ता छन्दों का प्रयोग है।

गुप्त जी निश्चय ही राष्ट्रकवि हैं। उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को प्रांजल और स्थिर बनाकर उसे काव्य-भाषा के पद पर सुशोभित किया। उनकी रचनाओं में अर्द्ध-शताब्दी का भारत बोलता है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति और भारतीयता के सफल कवि हैं। वे जीवन भर राम और मानवता की साधना करते हुए अन्त में अपने राम में ही लीन हो गये। उन्होंने अपने महाप्रयाण के समय निम्न पंक्तियाँ लिखीं-

"प्राण, न पागल हो तुम यों,

प थ्वी पर हो वह प्रेम कहाँ ?

मोहमयी छलना भर है,

भटको न अहो अब और यहाँ।

उपर को निरखो अब तो,

मिलता बस है चिर मेल वहाँ।

स्वर्ग वहीं, अपवर्ग वहीं, निज वर्ग जहाँ।"

6. 'रामभक्ति हिन्दी काव्यधारा और साकेत'-

मानव के हृदय में भक्ति भावना का प्रादुर्भाव आदिकाल से ही पाया जाता है। प्रत्येक देश व काल में मानव में ही यह प्रव त्ति किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है। भक्तिकाल के इतिहास का जब हम अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि उस युग में विष्णु की भक्ति की प्रधानता रही है। विष्णु ने स्वयं वैष्णव धर्म का उपदेश ब्रह्मा को दिया फिर ब्रह्मा ने वह ज्ञान नारद को प्रदान किया, नारद ने व्यासदेव जी को ज्ञान कराया और फिर धीरे-धीरे इसका सर्वत्र प्रचार होता गया।

जिन महात्माओं ने विष्णु-भक्ति का दार्शनिक विवेचन और प्रचार किया उसमें रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, रामानन्द, चैतन्य, बल्भाचार्य आदि उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये सभी प्रचारक विष्णु को एकमात्र ब्रह्म मानते थे परन्तु फिर भी इनके सिद्धान्तों में परस्पर भेद पाया जाता है। उत्तर भारत में राम भक्ति का प्रचार करने का श्रेय रामानन्द जी को है। वैष्णव धर्म के आचार्य बनकर उन्होंने सम्पूर्ण देश में भ्रमण किया तथा अपने आराध्य सीता-राम की भक्ति का प्रचार किया। इनकी विशेषता यह थी कि इन्होंने जन-साधारण की भाषा में ही वैष्णव धर्म का प्रचार किया।

कबीरदास जी ने सर्वप्रथम रामानन्द जी से रामत्व का मन्त्र ग्रहण किया। इन्होंने निर्गुण-सगुण से परे अपने राम की स ष्टि की। उनके राम का कोई रूप न था। वह निराकार था और वेदान्तवादियों के राम से मिलता-जुलता था। कबीर के राम तुलसी के राम नहीं। वे घट-घट वासी हैं और उन्हें ज्ञान मार्ग के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उनका कहना था-

'कस्तूरी कुण्डलि बसै, म ग ढूढै वन माँहि,
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं।"

उन्होंने मूर्ति पूजा का बड़ा विरोध किया तथा निराकार ब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया। जनता के लिए यह अत्यन्त कठिन था। इसी स्थिति में तो किसी साकार वस्तु की आवश्यकता थी जिससे जनता कुछ सन्तोष प्राप्त कर सके।

यह स्वाभाविक है कि व्यक्त वस्तु पर ही अनुराग टिक सकता है। जो व्यक्त नहीं है उससे अनुराग कैसा ? अतः इस अभाव की पूर्ति तुलसीदास जी ने की। इससे पूर्व बाल्मीकि रामायण में भी राम सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध होती है। उसमें राम के मानव रूप का ही वर्णन किया गया है। राम एक महापुरुष के रूप में द ष्टिगत होते हैं, अवतार रूप में नहीं। बाल्मीकि रामायण में विष्णु और राम का कोई सम्बन्ध नहीं बताया गया है।

राम-काव्य-धारा के प्रधान कवि तुलसीदास हैं। हिन्दी साहित्य में ही वे एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने दोहा और चौपाई में रामकथा को प्रस्तुत किया है। उन्होंने राम के चरित्र का आधार लेकर मानव जीवन को सर्वांगीण समीक्षा की है। तुलसीदास जी की भक्ति-भावना दास्य भावना से युक्त है। दास्य भाव में सेवक का अलग अस्तित्व नहीं रहता। प्रभु की इच्छा ही उसकी इच्छा हो जाती है। अतः उन्होंने सेवक सेव्य भाव की श्रेष्ठता को सिद्ध कर दिखाया है। तुलसी ने भगवान को लोक रक्षक के रूप में प्रधानता दी है। साधारण जन के हृदय की जिस निराशा तथा खिन्नता को कबीर और सूर दूर न कर सके, तुलनी ने अपने मानस की रचना करके निराश हृदयों में आशा का संचार किया। उन्होंने निराकार और साकार में कोई भेद नहीं माना-

"सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।
उभय हरहिं भव-संभव खेदा।।"

तुलसी के राम मनुष्य हैं, ईश्वर हैं और ब्रह्म के प्रतीक हैं। मुक्ति का साधन भक्ति भी है और ज्ञान भी। परन्तु ज्ञान मार्ग कठिन है, भक्ति उसका सरल साधन है। केवल मानस ही नहीं, उसके अन्य ग्रन्थ पत्रिका, गीतावली, कवितावली, वैराग्य-सन्दीपनी आदि भी राम की विमल गाथा से सुशोभित हैं। मानस में केवल एक ही रस नहीं वरन् सभी रसों का समावेश किया गया है। उसमें श ंगार रस की सुन्दर परिपाक हुआ है। परन्तु उनके श ंगार में अश्लीलता की छाया भी नहीं पाई जाती है।

कविवर तुलसीदास के बाद केशवदास जी ने रामकाव्य की विमल धारा को प्रवाहित किया। इन्होंने 'रामचन्द्रिका' की रचना करके राम के आदर्श रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इनकी राम कथा बाल्मीकि रामायण की कथा पर ही आधारित है। तुलसी ने अनेक घटनाओं में परिवर्तन किया है किन्तु केशव ने कोई परिवर्तन नहीं किया अगर किया भी है तो वे इसमें सफल नहीं हो पाये। 'रामचन्द्रिका' में न तो धार्मिक द ष्टिकोण है और न लोक शिक्षा का कोई रूप। मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उतना स्पष्ट नहीं है जितना 'मानस' में कैकयी के हृदय का स्पष्ट निरूपण हुआ है। जहाँ घटनाओं की विचित्रता है वहाँ कवि की वाणी मौन है। इन बातों से यह प्रकट होता है कि केशव ने केवल आचार्यत्व प्रदर्शन ही किया है तथा भक्ति-दर्शन आदि की उपेक्षा भी कर दी है।

तुलसी के समकालीन अन्य कवि भी हुए हैं जिन्होंने राम कथा के प्रति अपनी रूचि दिखाई। उनमें से नाभादास एवं अग्रदास की प्रव त्ति रामकथा की ओर अधिक थी इसलिए उन्होंने 'हितोपदेश उपरवाणां बावनी' की रचना की। हृदयराम ने 'हनुमन्चनाटक' की रचना की। सेनापति भी उच्चकोटि के कवि थे परन्तु उनकी रचनाओं में कवित्व और पाण्डित्य विशेष रूप से छलकता है। इनकी रचनाओं को पढ़ने से प्रतीत होता है कि इन पर केशव का प्रभाव अधिक था। 'कवित्त रत्नाकर' का प्रथम अध्याय तो श्लेष चमत्कार से ही अलंकृत है। यद्यपि इनकी जन्मभूमि व ंदावन थी तथापि इनके इष्टदेव राम ही रहे।

गोस्वामी जी के पश्चात् रामभक्ति की उपासना में क्षीणता आती गई। द्विवेदी युग में आकर फिर उसमें कुछ आशा की किरणें द ष्टिगोचर हुईं। एक नवीन धारा स्वच्छंद रूप से प्रवाहित होने लगी। तुलसी की भक्ति भावना रामचरित उपाध्याय के 'रामचरित चिन्तामणि' तथा मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में परिलक्षित हुई। गुप्त जी ने राम की कथा को एक नवीन रूप प्रदान किया। उनके राम विश्व में व्याप्त हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि राम से प्रेम करना समस्त समस्त विश्व से प्रेम करना है-

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए सभी कहीं हो क्यों ?

तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करें।
तुम न रमो तो ईश्वर तुममें रमा करे।।

गुप्त जी की एक विशेषता यह है कि उनमें विश्व बन्धुत्व की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। जन-साधारण की व्यथित दशा को देख उनका हृदय भी व्यथित हो उठता है। परन्तु गुप्त जी इससे विचलित न हुए। वे सदैव आशावादी बने रहे। उन्हें विश्वास था कि अतीत के अनुकूल वर्तमान तथा भविष्य को भी बनाया जा सकता है। उनकी यह भावना इन पंक्तियों में झलकती है-

"क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन धन भेंट दो।।"

वस्तुतः गुप्त जी भारतीय संस्कृति के कवि हैं। उनमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी है। साकेत में हिन्दू जीवन का आदर्श एवं राम का चरित्र-चित्रण करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहा है। गुप्त जी ने राम को मानव रूप में ग्रहण किया है। यही कारण है कि उन्होंने आदर्श जीवन का चित्र उपस्थित किया है। वस्तुतः साकेत एक जीवन-काव्य है। गुप्त जी के अनुसार तो कला जीवन के लिए है।

साकेत में करूण रस की ही प्रधानता है। गुप्त जी ने उर्मिला का जो विरह वर्णन किया है वह मानव के हृदय पटल पर अंकित हो जाता है। प्रबन्धन की द ष्टि से भी साकेत एक सफल काव्य है। गुप्त जी ने अपने काव्य में प्रकृति को भी पूर्ण स्थान दिया है तथा उसके विविध रूपों का वर्णन किया है। काव्य में गुप्त जी का अलंकार-प्रयोग भार-स्वरूप नहीं प्रतीत होता, वे केवल भावाभिव्यंजना के लिए ही प्रयुक्त किये गये हैं। उनके काव्य की कोमलकांत पदावली भी प्रसाद गुण से युक्त है। कहीं-कहीं उसमें परिचित व गम्भीरता अवश्य दिखाई देती है। गुप्त जी की भाषा भावानुकूल है। गुप्त जी ने अपने काव्य में विभिन्न प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है।

गुप्त जी के 'साकेत' का अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने राम के जीवन को विभिन्न द ष्टिकोणों से देखा। उनके चरित्र मानवता से परे नहीं हैं। वरन् आदर्श हैं। वे मानव को ही देव कोटि में रख देना चाहते हैं। इसके साथ-साथ यह भी देखना चाहते हैं कि गुप्त जी निराशावाद से कोसों दूर हैं। उनको निराशा भी आशा दिखाई देती है तथा यह आशा की ज्योति उनके जीवन को अनुप्रभावित करती रहती है।

7. 'साकेत' का नामकरण-

'साकेत' की कथावस्तु वही पुरानी कहानी है, जिसका वर्णन बाल्मीकि एवं तुलनी से किया है। 'हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता' के अनुसार यह कहानी हमारे जीवन में चिरन्तन काल से चली आ रही है। व्यक्ति समय के अनुरूप इस कहानी को गढ़ता रहा है। वर्तमान युग में इस कहानी में विचारानुकूल परिवर्तन किये हैं। इसका प्रारम्भ हमें इस युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में मिलता है। वैसे तो कथा का मूल आधार वही है परन्तु उसमें उन्होंने कई स्थानों पर मौलिकता का समावेश कर दिया है।

तुलसी की भांति गुप्त जी राम के साथ-साथ नहीं चलते वरन् वे तो उर्मिला के साथ-साथ चलते हैं तथा साकेत नगरी में ही आसन जमा देते हैं। यदि कहीं कभी जाने का अवसर मिलता है तो वे सम्पूर्ण 'साकेत' के साथ वहाँ पहुँचते हैं-

"सम्पत्ति साकेत समाज वही है सारा।"

इनकी सम्पूर्ण घटनाएं 'साकेत' के रंगमंच पर ही घटित होती हैं। कैकेयी मंथरा संवाद, निषाद-मिलन, दशरथ मरण, भरत आगमन, चित्रकूट मिलाप आदि तक की कथाएं कवि ने द श्य रूप में उपस्थित की हैं। सूपर्णखां-कथा, खरदूषण-वध, सूत्र रूप में उपकथाएं शत्रुघ्न द्वारा बताई गई हैं। फिर लक्ष्मण शक्ति की कथा हनुमान जी स्वयं साकेत में ही जाकर कह आते हैं। ताड़का-वध तथा धनुष-यज्ञ आदि का वर्णन उर्मिला स्वयं कर देती है। राम-रावण युद्ध की झांकी स्वयं वशिष्ट जी अपनी योग-द ष्टि से सम्पूर्ण अयोध्या वासियों को करा देते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा का रंगमंच साकेत ही रहता है। साकेत की घटनाओं की लड़ी ही इस महाकाव्य में पिरोई गई है अतः साकेत की कथावस्तु में जो स्थान ऐक्य होने के कारण हम यह कह सकते हैं कि गुप्त जी ने उपयुक्त शीर्षक का चयन किया है।

प्रथम सर्ग में हमें उर्मिला तथा लक्ष्मण के सुख दाम्पत्य जीवन के दर्शन होते हैं। उनके हास्य-विनोद में कवि की

कलात्मक प्रकृति का परिचय मिलता है। इसी विनोद में राम के राज्याभिषेक की तेयारी का संकेत मिलता है। साकेत नगरी का सौन्दर्य अनुपम है। सम्पूर्ण नगर निवासी व्यग्रता से उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब उनके प्रिय राम सिंहासन-आरूढ़ होंगे परन्तु विधि की विडम्बना - अचानक साकेत नगरी पर वज्रपात कैसा ? एक दासी की कलुषित विचारधारा ने सम्पूर्ण वातावरण ही बदल दिया-

"भरत से सुत पर भी सन्देह,
बुलाया तक न उसे जो गेह।"

वाह रे नारी दौबल्य - कितनी शीघ्रता से राक्षस-व त्ति विजय प्राप्त कर लेती है और 'साकेत' में खड़ा कर देती है। एक झंझावत ! उस समय नगरवासियों की दशा-

"जहाँ अभिषेक अम्बुद छा रहे थे,
मयूरों से सभी सुख पा रहे थे।
वहीं परिणाम में पत्थर पड़े यों।
खड़े ही रह गये सब थे खड़े ज्यों।"

गुप्त जी अपनी रचनाओं में उपयोगितावाद पर अधिक बल देते हैं। गुप्त जी कला को जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं। वे 'कला-कला के लिए' सिद्धान्त के समर्थक नहीं हैं। उनका कहना है-"जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है।" केवल इतना ही नहीं वह सुन्दरता में प्राणों का संचार करती है तथा भीष्णता को निष्प्राण कर देती है-

"कहा माण्डवी ने 'उलूक' भी लगता है चित्रस्थ्य भला।
सुन्दर को सजीव करती है भीषण को निर्जीव कला।।"

एक नारी ही नारी के हृदय को समझ सकती है - उसकी वेदना का अनुभव कर सकती है। उर्मिला की दयनीय दशा देखकर सीता के हृदय में करुणा का सागर उमड़ आता है। उर्मिला की विरह वेदना साकेत में तीव्र से तीव्र हो उठती है। यही साकेत का सबसे मार्मिक स्थल है। कवि ने कौशल्या, सुमित्रा, भरत आदि की व्यथा का सूक्ष्म चित्रण किया है परन्तु उर्मिला की विरह दया का वर्णन करने के लिए उसके पास शब्द नहीं हैं-

"उर्मिला सभी सुध-बुध त्यागे,
जा गिरी कैकेयी के आगे !"

कितना निरीह प्राणी है वह - कितनी असहाय ! उसकी इस असहाय दशा को देखकर पाषाण हृदय कैकेयी का भी हृदय पसीज जाता है, तभी तो वह कहती है-

"आ मेरी सबसे अधिक दुःखनी आ जा,
जिस मुख से चन्दनलता मुसी पर छाजा।"

'साकेत' की कथावस्तु में अरस्तू के नियमों की छाप दिखाई देती है। जिस प्रकार अरस्तू ने आदि, मध्य, अवसान का संगठन किया है उसी प्रकार गुप्त जी का वस्तु विन्यास भी आदि, मध्य, अवसान के रूप में ढल गया है। साकेत की आदि कथा उर्मिला-लक्ष्मण के हास्य-विनोद से लेकर चित्रकूट मिलन तक है। उर्मिला का सम्पूर्ण विरह वर्णन मध्य कथा है तथा शत्रुघ्न द्वारा राम के कार्यों की प्रशंसा करना तदुपरान्त उनका मिलन होना, यही इस कथा का अवसान है। 'साकेत' की चरम घटना सूपर्णखा के अपमान का प्रसंग है, यही सं 'प्राप्त्याशा' प्रारम्भ हो जाती है। जहाँ लक्ष्मण की मूर्च्छा भंग होती है, वहाँ 'नियताप्ति' होती है। इसके पश्चात् राम-रावण युद्ध होता है तथा उर्मिला लक्ष्मण का मिलन होता है। इसमें 'कार्य' की सिद्धि होती है।

गुप्त जी का मुख्य उद्देश्य था उपेक्षित उर्मिला के प्रति उचित न्याय। अतः उसके लिए नवीन उद्भावनाओं का आश्रय लिया है। इसी भांति कैकेयी को भी अपनी सफाई देने के लिए गुप्त जी उचित अवसर प्रदान करते हैं। यद्यपि तुलसीदास जी ने तो उसके लिए केवल इतना ही कहा था कि "गरति गलानि कुटिल कैकेयी।" कैकयी-मंथरा संवाद में कवि ने मनोवैज्ञानिक द ष्टिकोण अपनाया है। अतः साकेत की मंथरा तो उसका परित्याग करके ही चली जाती है-

"गई दासी पर उसकी बात,
दे गई मानो कुछ आघात।।"

इस भाँति कवि ने नवीन तथा मौलिक उद्भावनाओं का साम जस्य 'साकेत' की कथा में स्थापित किया है। अनेक उपेक्षित घटनाओं और पात्रों को प्रकाश में लाकर अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय दे दिया। केवल इतना ही नहीं वरन् उनके साथ न्याय करने का प्रयत्न किया है। कवि की द ष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है इसका पता हमें 'साकेत' का अध्ययन करने के पश्चात् मिलता है। यथास्थान घटनाओं को वैज्ञानिकता का जामा पहनाकर कवि ने सम्पूर्ण काव्य के क्लेवर में परिवर्तन कर दिया है। साकेत की सभी घटनाएं मानव-जीवन के नित्य-प्रति क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखती हैं। क्योंकि वे उपयोगितावादी कवि हैं। इनकी वे पंक्तियां हम नहीं भूल सकते-

"हो रहा है जो जहाँ सो रहा है,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किन्तु होना चाहिए कब, क्या, कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।"

तभी तो 'साकेत' के आदर्श केवल आदर्श बन कर ही नहीं रह जाते बल्कि वे यथार्थ की ओर प्रेरित करते हैं। कवि मानव-जीवन को सुधारना चाहते हैं। वह इंगित करता है कि मानव को 'साकेत' के आदर्शों का अनुसरण करके अपने जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

8. 'साकेत' की प्रबन्धात्मकता-

'साकेत' एक प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध काव्य की द ष्टि से उसकी भाषा-शैली एवं अलंकार-योजना पर भी विचार कर लेना चाहिए। जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है, हमें मुख्यतः तीन प्रकार की शैलियां देखने को मिलती हैं-गीत शैली, नाट्य शैली, प्रबन्ध शैली। गीत शैली में कोमल भावनाओं का समावेश होता है। नाट्य शैली में परिस्थिति चित्रण की प्रमुखता रहती है तथा प्रबन्ध शैली में कथा वर्णन का प्राधान्य रहता है परन्तु कोई भी कवि इस प्रकार की विभाजन रेखा खींचने में समर्थ नहीं हो पाता। सभी का सम्मिश्रण प्रायः देखा जाता है। नाटक में भी गीत का पुट होता है तथा प्रबन्ध में नाटक तथा गीत दोनों का।

अंग्रेजी साहित्य के अनुसार दो प्रकार के प्रबन्धात्मक काव्य माने गये हैं - एक में घटनाओं के समय के क्रम से विकास, दूसरे में वस्तु का स्थान के क्रम से विकास। कथा वर्णन की सबसे प्रमुख विशेषता है प्रवाह जिस कथा में प्रवाह नहीं होता वह महाकाव्य के उपयुक्त नहीं समझी जाती है। साकेत में धारा प्रवाह अविच्छिन्न नहीं है। उसमें मुख्य द श्यों को ही चुन लिया है। प्रथम सर्ग में उर्मिला तथा लक्ष्मण का हास्य विनोद है तो दूसरे सर्ग में कैकेयी मंथरा संवाद। इन दोनों घटनाओं को कवि ने रानी के सुख-वैभव का वर्णन तीन-चार पंक्तियों से झट जोड़ देता है-

"मोद का आज न ओर न छोर,
आम्र वन सा फूला चहु ओर।
किन्तु हाफला न सुमन-क्षेत्र,
कीट बन गये मन्थरा नेत्र।"

यह सत्य है कि साकेत की कथा द श्स-प्रधान हैं। अतः कवि को घटनाओं को सम्बद्ध करने के लिए बार-बार प्रयत्न करना पड़ता है। एक ओर तो कैकेयी के वर को सुनकर राजा दशरथ मूर्छित पड़े हैं, दूसरी ओर राम शीघ्र ही उनसे आज्ञा लेने चल पड़ते हैं-

"चलो पित वन्दना करने चलो अब।"

और राम वन गमन के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। उन्हें किसी सूचना की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। साकेत के पात्रों का वाक् संयम भी प्रशंसनीय है। गम्भीर परिस्थितियों में कवि ने भावुकता से काम नहीं लिया है, ऐसे स्थलों पर कवि ने मौन से काम लिया है। यह शैली का एक विशेष प्रसाधन है। इसी के द्वारा पात्रों के चरित्र का महत्त्व भी बढ़ जाता है।

लक्ष्मण- **“विदा की बात किससे और किसकी,**
अपेक्षा कुछ नहीं है नाथ इसकी।”

सीता- **“कहती क्या वे प्रिय-जाया,**
जहाँ प्रकाश वही छाया।”

कथा वर्णन का सबसे बड़ा गुण है रोचकता। साकेत की सभी घटनाएं पूर्व परिचित हैं। अतः रोचकता का समावेश करने में कवि को कठिनाई अवश्य होती है। परन्तु गुप्त जी इस द ष्टि से भी पूर्ण सफल हुए हैं। उन्होंने ऐसा करते हुए मौलिकता का आश्रय लिया है तथा उसमें उत्सुकता लाने के लिए कथा में एकदम परिवर्तन भी लाना पड़ा है। उर्मिला लक्ष्मण का चित्रकूट में मिलन, कैकेयी की सफाई, राम-रावण युद्ध आदि ही स्थल हैं। चित्रकूट पर भरत और राम का संवाद हो रहा है। उस समय भरत अत्यधिक आत्म-ग्लानि से पूर्ण हो उठते हैं। ऐसा देखकर राम ने कहा-

“उसके आशय की थाह मिलेगी किसको।
जन कर जननी भी जान न पाई जिसको।।”

प्रायः कथा में रोचकता लाने के लिए नाटकीय विषमता का भी प्रयोग किया जाता है। इससे पाठकों के मन में कौतूहल की स ष्टि होती है। गुप्त जी इसका आश्रय भी यथास्थान पर लिया है। परिस्थिति की विषमता का चित्रण हमें प्रथम सर्ग में मिलता है जब लक्ष्मण ने राम के राज्याभिषेक का चित्र खींचा है। लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं कि वह उसका चित्र नहीं खींच सकते। दोनों में शर्त ठहरती है-

“चिबुक-रचना में उमंग नहीं रुकी,
रंग फैला लेखनी आगे झुकी।
एक मीत तरंग-रेखा सी बही,
और वह अभिषेक-छट पर जा रही।”

नाटकीय-विस्मय के साथ-साथ घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध भी देखने को मिलता है। कवि प्रत्येक बात का कारण उपस्थित करने का प्रयत्न करता है। गुरु वशिष्ट के साथ जाते समय राम उनसे यही प्रार्थना करते हैं-

“माँ मुझको फिर देख सके जैसे सही,
पिता, पुत्र की प्रथम याचना यही।”

राम के इन शब्दों का सम्बन्ध उस घटना से जाकर जुड़ता है जब दशरथ मरण के पश्चात् कौशल्या सती होने का प्रस्ताव करती है और गुरु वशिष्ट उनको ऐसा करने से रोकते हैं। ‘साकेत’ में द श्यों का भी उचित विधान किया गया है। उसमें परिस्थिति के अनुसार विभिन्न द श्य उपस्थित करने के लिए पूर्ण सफल हुआ है।

राजप्रसाद का वैभन वर्णन-

“ठौर-ठौर अनेक उहवर-यूप है,
जो सुसंवत के निदर्शन रूप हैं।
यत्र-तत्र विशाल कीर्ति-स्तम्भ हैं,
दूर करते दावनों का दम्भ हैं।।”

प्रकृति वर्णन-

“कहीं सहज तरु-तले कुसुम-शैया बनी,
ऊँघ रही है पड़ी जहाँ छाया घनी,
घुस धीरे से किरन लोल दल-पुंज में,
जगा रही उसे हिला कर कुंज में।”

मनुष्यों की मुद्रा का सूक्ष्म चित्रण-

"झुका कर सिर प्रथम, फिर तक लगा कर,
निरखते पार्श्व से ये भ त्य आकर।"

'साकेत' में बड़े ही सजीव तथा उद्दीप्त संवाद देखने को मिलते हैं। उ त्तर-प्रत्युत्तर द्वारा कवि ने उसमें सजीवता लाने का प्रयत्न किया है।

उर्मिला- "तोड़ना होगा धनुष उसके लिए।"

लक्ष्मण- "तोड़ डाला है उसे प्रभु ने प्रिये।

उर्मिला- "सुतक, टूटे का भला क्या तोड़ना ?"

उपर्युक्त संवाद में रसात्मकता का पूर्ण समावेश है।

'साकेत' में ध्वनिशीलता भी प्रशंसनीय है। कवि ने भानावुकूल शब्दों का प्रयोग करके अपने कौशल का परिचय दिया है -

"घनन-घनन बज उठी गरज तत्क्षण रण-भेरी।"

× × ×

"ओ निर्झर, झर-झर नाद सुनाकर सर तू।"

'साकेत' में हमें गुप्त जी की प्रौढ़ भाषा का रूप देखने को मिलता है। जहाँ उसमें शुद्ध संस्कृत के शब्द मिलते हैं वहाँ प्रान्तीय शब्दों का भी समावेश हो गया है-

"धाड़ मारकर वे बोलीं।"

× × ×

"वत्स अम्ब कह उठे डिगकर।"

भाषा की प्रौढ़ता एक अन्य महत्त्वपूर्ण अंग है। थोड़े में अधिक कहने की कला। इसको हम समास पद्धति भी कह सकते हैं। बिहारी आदि अनेक कवियों ने इसे अपनाया है। गुप्त जी ने भी इसका अनुसरण करके अपनी भाषा में चार चाँद लगा दिये हैं-

"प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार।"

साकेत एक सर्गबद्ध काव्य है। साहित्य शास्त्र के अनुसार उसके प्रत्येक सर्ग में नवीन छंद का प्रयोग किया गया है। कैकेयी की मनोदशा का वर्णन करने के लिए 16 मात्राओं का श ृंगार छन्द गुप्त जी ने चुना है-

"सामने से हट अधिक न बोल।
द्विजिह्वे रस में विष मत घोल।।"

चौदह मात्राओं का चपल छंद-

कभी आरती, धूप कभी,
सजनी था समान सभी।"

कवि ने स्वनिर्मित छंद का प्रयोग किया है जिसमें प्रत्येक दूसरी पंक्ति पर विराम लगता है-

"गोरे देवर स्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।
वैदेही यह सरल भाव से कह गई,
फिर भी वे कुछ सरल हँसी-हँस रह गई।"

उपर्युक्त विवेयन के आधार पर हम कह सकते हैं कि गुप्त के 'साकेत' में सभी काव्यगत गुणों का समावेश हुआ है। अतः वह सफल काव्य बन गया है।

कथा प्रवाह और प्रबन्ध कौशल-

प्रबन्धात्मक काव्य होने के नाते 'साकेत' में कथा वर्णन की प्रधानता है। अनेक विद्वानों का मत है कि जिस कथा में अविच्छिन्न धारा-प्रवाह नहीं है, वह कम से कम महाकाव्य के उपयुक्त नहीं हो सकती। 'साकेत' में इस बात का अभाव सा है। उसमें केवल मुक्त द श्यों का चयन किया गया है। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग में तो राम के राज्याभिषेक की सूचना मिलती है तथा द्वितीय सर्ग में मंथरा कैकेयी के संवाद सम्बन्धी द श्य उपस्थित किये गये हैं-

"मोद का आज न ओर न छोर,
आम्र वन-सा फूला सब ओर।
किन्तु हा ! फला न सुमन क्षेत्र,
कीट बन गए मन्थरा नेत्र।

बाद में कथा छोटे-छोटे द श्यों में आगे बढ़ती चलती है। कैकेयी की ईर्ष्या का चित्र प्रस्तुत किया गया है और कौशल्या के आह्लाद का। फिर उर्मिला और लक्ष्मण का वार्तालाप है। राम की अन्तर्दशा का चित्रण भी किया गया है। अन्त में दशरथ की चिंता का चित्रण। इस प्रकार साकेत की कथा प्रवाहमयी बन जाती है।

इसमें सन्देह नहीं कि गुप्त जी को काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्हें भाषा पर पूर्ण अधिकार है तथा भावानुकूल भाषा को मोड़ने की क्षमता भी। विषय चयन उनकी विशेषता है। उनकी प्रबन्धात्मक शैली बड़ी ही रोचक, मार्मिक एवं मर्मस्पर्शी बन पड़ी है। यदि गीतिकाव्य में कोमल भावना का प्राधान्य होता तो प्रबन्ध काव्य में कथा वर्णन की प्रधानता होती है। यही कारण है कि 'साकेत' कथा प्रधान काव्य है। गुप्त जी ने कथा का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है। सम्पर्ण व त्तियों का विश्लेषण करने पर हमें गुप्त जी की चार शैलियां मिलती हैं-(1) उपदेशात्मक शैली (2) गीत काव्य शैली (3) नाटकीय शैली (4) प्रबन्धात्मक शैली। अपने प्रबन्धात्मक काव्य 'साकेत' में गुप्त जी ने प्रबन्धात्मक शैली का पूर्ण निर्वाह किया है।

कथा प्रवाह की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी रोचकता और उत्सुकता। 'साकेत' में की घटना इतनी महत्त्वपूर्ण है कि सभी पाठक उससे पूर्व परिचित ही रहते हैं। अतः उसमें उत्सुकता का निर्वाह टेढ़ी खीर है। परन्तु गुप्त जी ने मौलिक उद्भावनाओं द्वारा इस कार्य को भी पूरा कर दिया है। कहीं-कहीं तो इतनी गम्भीरता आ गई है कि पाठकों के हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ता है। जैसे उर्मिला लक्ष्मण का मिलन, चित्रकूट में कैकेयी द्वारा अपने दोष की स्वीकृति। आवश्यकता पड़ने पर कवि ने संयम का भी सुन्दर विधान किया है। पात्रों द्वारा अपनी विवशता कुल गिने-चुने शब्दों में प्रकट करा देना गुप्त जी की अपनी विशेषता है। वन गमन के समय सीता की आन्तरिक दशा कहते नहीं बनती-

"कहती क्या वे प्रिय जाया।
जहाँ प्रकाश वहीं छाया।।"

संवाद कौशल भी गुप्त जी से अछूता नहीं रहा है प्रवाहत्मकता की द ष्टि से कथनोपकथन बड़े ही सार्थक बन पड़े हैं। अनेक स्थलों पर पात्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर देखते ही बनते हैं। एक तो कविता द्वारा उत्तर-प्रत्युत्तर जो वस्तुतः नाटक का तत्त्व है, दूसरे पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए वर्णनों में सजीवता लाना - वह भी सीमित छंद में, बहुत कठिन कार्य है, किन्तु गुप्त जी की कविता में जहाँ-जहाँ ऐसे प्रसंग आये उनकी भाषा उतनी ही जोरदार होती गई है। मंथरा-कैकेयी संवाद उनके चरित्रों पर कैसे प्रकाश डालता है-

"न समझी कैकेयी वह बात, कहा उसने -"यह क्या उत्पात ?
वचन क्यों कहती है तू वाम, नहीं क्या मेरा बेटा राम ?"
"और वे आरस भरत कुमार ?" कुदासी बोली कर फटकार।
कहा रानी ने पाकर खेद - "भला दोनों में है क्या भेद ?"
"भेद ?" दासी ने कहा सतर्क, "सवेरे दिखला देगा अर्क।
राजमाता होगी जब एक, दूसरी देखेगी अभिषेक?"

पात्रों के संवाद में स्वाभाविकता है, परिस्थिति की अनुरूपता एवं गतिशीलता पाई जाती है। प्रत्येक पात्र की वाणी

में उसके स्वभाव की झलक देखी जा सकती है। लक्ष्मण और उर्मिला के संवादों में परिस्थिति के अनुरूप समय-समय पर कोमल तथा उग्र वाणी का प्रयोग किया है। लक्ष्मण का उग्र स्वभाव उनके चरित्र की विशेषता है। द्वितीय सर्ग में कैकेयी से वार्ता करते समय उनका उग्र स्वभाव हमारे सामने परिलक्षित होता है। यही दशा भरत को चित्रकूट में ससैन्य आते देखकर भी होती है। परन्तु इस सबसे धारा प्रवाह में कोई कमी नहीं आने पाती। वाणी का स्वयं प्रवाह पात्रों के चरित्र में प्रकाश को लाता हुआ अग्रसर होता चलता है। एक स्थान पर उनकी वाणी स्वभाव के विरुद्ध कोमल भी हो उठती है-

"उर्मिला बोली-"अजी तुम जग गये,
स्वप्ननिधि से नयन कब से लगय गये।"
"मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"

'साकेत' पूर्णतः व्याकरण सम्मत है। उसमें किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं आने पाया है। गुप्त जी को खड़ी बोली की प्रकृति और शक्ति का पूर्ण ज्ञान है। गुप्त जी ने खड़ी बोली की पूर्ण सुरक्षा की है। यही उनकी भाषा की सर्वतोन्मुखी प्रधानता है। उनका अधिकार इतना व्याप्त है कि वे जिस प्रकार चाहें उसी प्रकार भाषा को मोड़ सकते हैं। यही कारण है कि वे अपनी भाषा को सुकांत बना सके हैं। 'साकेत' में उनकी भाषा का बड़ा ही सुसंस्कृत और शुद्ध रूप देखने को मिलता है। गुप्त जी की एक विशेषता यह भी है कि वे थोड़े में ही बहुत कुछ कह जाते हैं। गागर में सागर भरने वाले बिहारी की प्रव त्ति का पूर्ण समावेश हम गुप्त जी में भी पाते हैं-

"मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया"

उपर्युक्त पंक्ति में कवि की कल्पना कितनी साकार हो उठती है मानव हृदय की सम्पूर्ण अभिलाषा एक स्थान पर ही केन्द्रीयभूत हो जाती है। इसके आगे वह और कुछ कहने को असमर्थ पाता है।

महाकाव्य की परम्परा के अनुसार प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन भी होना आवश्यक है। गुप्त जी ने 'साकेत' में इसका पूर्णरूप से पालन किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द का रूप बदल जाता है तथा नवीन सर्ग प्रारम्भ होने पर प्रसंगानुसार नवीन छन्द में वर्णन प्रारम्भ होता है। डॉ० नगेन्द्र ने एक स्थान पर लिखा है-

"साकेत में कवि ने हिन्दी में साधारणतः प्रचलित लगभग सभी छन्दों को अपनाया है।" नवम सर्ग में तो एकदम नवीन छन्दों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष-

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग में महाकाव्य की जो विशेषताएं निर्धारित की गई हैं वे सभी साकेत में परिलक्षित होती हैं। फिर भी अनेक विद्वान इसके महाकाव्यत्व पर आपत्ति करते हैं जिनमें आचार्य शुक्ल व डॉ० शम्भूनाथ सिंह आदि प्रमुख हैं। डॉ० सिंह ने अनेक कारणों से साकेत को महाकाव्य मानना अस्वीकार किया है। उनका कहना है कि साकेत में रामकथा का क्रमबद्ध वर्णन न होकर रामायण के उपेक्षित व अव्यक्त प्रसंगों का ही विवेचन है। रामकथा में राम के विराट व्यक्तित्व के समक्ष अन्य पात्र इतने दबे हुए हैं कि उनमें से किसी को अपनाकर महाकाव्य लिखा ही नहीं जा सकता है फिर, उर्मिला, लक्ष्मण एवं भरत साकेत के तीनों पात्र समान स्तर पर प्रतिष्ठित है अतः महाकाव्य का नायकत्व भी विवादास्पद है। गुप्त जी ने रामायण की लम्बी कथा का एक छोटा-सा अंश आठ सर्गों में वर्णित किया है और शेष सम्पूर्ण दो सर्गों में सिनेमा रील की भाँति दिखाई दिया है। नवम् सर्ग भी काव्य की प्रबन्ध-धारा से संगति नहीं रखता। सम्पूर्ण राम कथा का गायन और उपेक्षित प्रसंगों का विस्त त चित्रण इन दोनों प्रयत्नों की पूर्ति ने चेष्टारत होने के कारण कवि ने कथा के वस्तु-विन्यास का संतुलन बिगाड़ दिया है। इन कारणों से साकेत का महाकाव्यत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता।

साकेत के महाकाव्य पर किए गए डॉ० शम्भूनाथ सिंह के उपर्युक्त प्रबल आक्षेप निःसन्देह बड़ी आकर्षक शैली में है, किन्तु उन्हें हम सत्य नहीं मान सकते। महाकाव्य के लक्षणों को एकदम जड़ बना देना उचित नहीं। साकेत के सम्बन्ध में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वह अधिकांश लक्षणों से समन्वित है और उसके सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत पूर्ण सत्य है-

"यो तो महाकाव्य के व्यापकता और महत्व के द्योतक कोई सुनिश्चित प्रतिमान नहीं हो सकते, किन्तु साकेत काव्य

का साहित्यिक जगत में जो सम्मान दे, हिन्दी के ऐतिहासिक विकास में उसकी जो देन है, युग-चेतना के नवोन्मेष उसमें जो अपनी सुन्दर आभा बिखेर रहे हैं, उन्हें देखते हुए साकेत को महाकाव्य न कहना अन्याय होगा। साकेत महाकाव्य ही नहीं आधुनिक हिन्दी का युग-प्रवर्तक महाकाव्य है। समस्त हिन्दी जगत को इसका गर्व और गौरव है।" वाजपेयी का मत स्वीकार करते हुए डॉ० कमलाकान्त पाठक के शब्दों में भी हम कह सकते हैं कि "साकेत नव-युग का महाकाव्य है।"

9. 'साकेत' का काव्य वैशिष्ट्य-

'साकेत' की कथावस्तु द्वादश सर्गों में विभाजित है। नवम्, एकादश तथा द्वादश सर्ग अपेक्षाकृत बड़े हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत है। प्रथम सर्ग के अन्त में कवि ने इसके आगे 'विदा विशेष हुए; दम्पत्ति फिर अनिमेष' कहा है। इस कथन के द्वारा लक्ष्मण उर्मिला की आनन्द एवं विनोद से परिपूर्ण रात्रि बीत जाने पर उनके बिछुड़ने का वर्णन किया गया है। इसमें आगे के सर्ग में कैकेयी के वरदान माँगने और दम्पत्ति के बिछुड़ने की तैयारी का संकेत मिलता है। इस प्रकार सभी सर्गों में कथा में पूर्वापर सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया गया है। 'साकेत' का नवम् सर्ग कथानक से सर्वथा प थक-सा है। इस सर्ग को निकाल देने पर भी कथा के प्रवाह तथा प्रबन्धात्मकता में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती।

कथानक का प्रारम्भ गणेश की वंदना के मंगलाचरण से होता है। स्थान-स्थान पर सज्जनों की प्रशंसा एवं खलों की निंदा भी होती है।

भाषा और शब्द विधान-

'साकेत' की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली हिन्दी है। 'साकेत' तक आते आते गुप्त जी की भाषा में निखार आ चुका था। वह भावाभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से समर्थ और सूक्ष्म हो चुकी थी। भावानुरूप शब्दों के प्रयोग में गुप्त जी कुशल शिल्पी हैं। इसलिए साकेत में सरसता, भाव-प्रेषणीयता और अभिव्यक्ति में सरलता आ गई है। चित्रकूट की सभा में भरत आत्मग्लानि प्रकट करते हैं। मार्मिक एवं सजीव शब्दावली उनके हृदय की करुणा, स्नेह, दीनता, आवेग, विषाद का चित्र उपस्थित कर देती है-

"ले आर्य, क्या रहा भरत अभीप्सित अब भी।
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब तब भी ?
पाया तुमने तरु तले, अरण्य बसेरा ?
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा।
तनु तड़प-तड़प कर तप्त तात ने त्यागा।
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा ! इसी अयश के हेतु जनम था मेरा ?
निज जननी के हाथ हनन था मेरा ?
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा।
हे आर्य बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा।"

लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोग-

भाषा में लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोग छायावादी शैली की अपनी विशेषता है। 'साकेत' में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के शब्द अभ्यन्तर प्रभाव-साम्य के आधार पर ग्रहण किये गये हैं। वे प्रस्तुत के न रहने पर भी प्रतीक रूप में आये हैं-

"जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।
हरी भूमि के पात-पात में मैंने हृदयगति फेरी।।"

यहाँ जीवन के पहले प्रभात का प्रयोग 'बचपन' और आँख खुली का प्रयोग 'होश सम्भालने', हरि भूमि के पात-पात का प्रयोग 'स ष्टि की वैभव सम्पन्नता' के लिए हुआ है-

"अरी सुरभि जा, लौट जा, अपने अंग सहेज।
तू है फूलों में पली, यह काँटों की सेज।।"

यहाँ काँटों की सेज का प्रयोग विरह जन्य संताप के लिए हुआ है। इस प्रकार के लाक्षणिक और प्रतीकात्मक प्रयोगों से साकेत में सरसता, सुन्दरता, सशक्ता और सजीवता आ गई है।

चित्रोपमता-

'साकेत' में कई स्थलों में शब्दों के माध्यम से ऐसे-ऐसे चित्र अंकित हुए हैं जो पाठकों के मस्तिष्क पर भावों को मूर्तिमान कर देते हैं। एक उदाहरण लीजिए। नवम् सर्ग के अन्त में कवि विरहिणी बाला को चिता में जलता हुआ दिखाकर उसके प्रेमी विरही का आगमन दिखाता है। विरहिणी की चिता की भस्म पर विरही प्रेमी के अश्रु गिरते हैं, जिससे अंकुर उठता है। उसमें पत्ते आ जाते हैं और एक फूल भी निकल आता है। उस फूल में विरही को अपनी प्रिया झांकती हुई दिखाई देती है। विरहिणी की चिता की भस्म से उगी हुई लता विरही से लिपट जाती है-

"जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला,
तब पहुंचा विरही मतवाला,
सती हीन ज्यों सूली।
लाना-लाना सखि तूली।
झुलसा तरू मरमर करता था,
झड़ निर्झर झर-झर करता था,
छत विरही हरहर करता था,
उड़ती थी गोधूली।
लाना-लाना सखि तूली।
ज्यों ही अश्रु चिता पर आया।
उग अंकुर पत्तों से छाया।
फूल वहीं बदनाकृति लाया।
लिपटी लतिका फूली।।
लाना-लाना सखि तूली।

'साकेत' में ऐसे अनेक अनुपम शब्द-चित्रों की भरमार हो गई है। कवि का शब्द भण्डार पर इतना व्यापक अधिकार है कि चित्रोपमता स्वभावतः ही आ गई है। कवि को कोई प्रयास नहीं करना पड़ा है।

लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग-

'साकेत' की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें लोकोक्तियों एवं मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इससे भाषा में सजीवता, लाक्षणिकता, मार्मिकता एवं भावाभिव्यक्ति आ गई है। कुछ उदाहरण लीजिए-

1. जंगल में भी मंगल है।
2. संकट में अब मुँह फेरूं।
3. क्यों काँटों में घसीटोगी मुझे।
4. लगे इस मेरे मुँह में आग।

5. मोद का आज न ओर न छोर।
6. नीच होते हैं बस नीच।
7. वज्र-सा पहाड़ अचानक टूटा।
8. भर आया सूखा हुआ गला।
9. आर्य, छाती फट रही है हाय !
10. भय खाऊँ, आँसू पियूँ, मन मारूँ झख मार।
11. फिर मरूँ न क्यूं, मूँड, फोड़ के।
12. साँच को किस ओर आँच है।
13. भक्षक से रक्षक बलवान।
14. किसने सोता हुआ यहाँ का सर्प जगाया।
15. ले, तेरे कंटक टले अभी।

स्वर मैत्री-

'साकेत' में स्थान-स्थान पर स्वरों की एकता, समता एवं वर्णन साम्य पर अधिक जोर दिया गया है। गुप्त जी शब्द-चयन इस प्रकार करते हैं कि उसमें सस्वरता स्वयं ही आ जाती है-

"काली कोयल बोली-
होली, होली, होली !
हँसकर लाल-लाल होठों पर हरियाली हिल डोली।
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली-पीली चोली।
होली होली होली।"

× × ×

"सखि नील नभस्सर में उतरा,
यह हंस अहा ! तरता-तरता।
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं,
निकला उनको चरता-चरता।
अपने हिम बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता-धरता।
गड़ जाएँ न कण्टक भूतल के,
कर डाल रहा डरता-डरता।।"

व्यंजन-मैत्री-

एक से व्यंजनों का विधान कविता को कर्ण-सुखद बना देता है। काव्यात्मक सौन्दर्य उसे प्रेषणीयता प्रदान करता है। 'साकेत' में स्थान-स्थान पर व्यंजन मैत्री के उदाहरण मिल जाते हैं। एक उदाहरण लीजिए-

"सखी निरख नदी की धारा।
ढ़लमल-ढ़लमल चंचल-अंचल झलमल-झलमल तारा।
निर्मल जल अन्तः स्थल भर के उछल-उछल पर छल-छल करके।

थल-थल करके, कल-कल करके बिखराता है पारा।।"

कहीं-कहीं ऐसे भी वर्ण प्रयुक्त हुए हैं, जो कठोर और कर्ण-कटु हैं। यथा-

"भर्त हैं भत , भ त्य हैं भ त्य।"

× × ×

"देख भाव प्रवर्णता, वर वर्णता,
बाध्य हुई सुनने को उत्कीर्णता।"

संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग-

'साकेत' में संस्कृत के दीर्घ-समास-बहुत्म शब्दों का प्रयोग हुआ है। गुप्त जी पर संस्कृत का बहुत प्रभाव है। निम्न शबद इस प्रकार के हैं, जिनका प्रयोग संस्कृत में भी होता है-

"मिथ्या लोक, रघुनन्दनानुज, श्रीमद्रामचन्द्र, आभरण-वरण, हा हतोस्मि, आनुगत्य, पितुराज्ञा, म न्मात्र, गात्र, रति मुखाम्बुज, प्रजाप्रज्ञ आदि।"

संस्कृत के कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो खड़ी बोली हिन्दी में अप्रचलित हैं जैसे- "त्वेष, साहित्य, विरूपाक्ष, कीर्ण, जिष्णु, निषादी, कौणय, उर्वी, आवरण, मीनक्रम, ब्रज्याव्रत आदि।"

साकेत में कुछ देशज शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इन शबदों का प्रयोग बहुल ब्रज भाषा, बुंदेलखण्डी अवधि आदि में होता है-"मचिया, घाते, घुरक, भरके, सहेजा, अवद्यक, दहके, चिहुँक, डिडकार, महुवा, दिठल्ली, लल्ली, निगोड़ी, सेंट-मेंट, टुकुर-टुकुर, अली-अली आदि।"

साकेत में कुछ अप्रचलित नवीन शब्दों के प्रयोग भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए आरून्य, प्रतिपात, उत्कर्णता, उत्क्रान्ति, प्रमाणी, अविचलता, अनगति, यशस्तता, रीतता, अपाप आदि शब्दों को लिया जा सकता है।

विदेशी शब्द-

'साकेत' में कहीं-कहीं पर उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण लीजिये-

"मूतिमय विवरण समेत, जुदे-खुदे।
ऐतिहासिक व त जिसमें हैं खुदे।।"

दीर्घ समासान्त पद-

1. प्रजा-वर्ग की धर्म-धान्य-धन व द्धियां।
2. तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया।
3. कविता-केश-कला-विभास की।
4. न प-भावाम्बु-तरंग-भूमि में।

शिथिल तुकबन्दी-

'साकेत' में कहीं-कहीं पर शिथिल तुकबंदी भी की है। इससे धारावाहिकता में व्यवधान उपस्थित हो गया है। परन्तु ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम ही हैं। कुछ उदाहरण लीजिए-

"अवसर न खो निठल्ली, बढ़जा बढ़जा विपट निकट बल्ली।
अब छोड़ना न लल्ली, कदम्ब अवलम्ब तू मल्ली।।"

× × ×

अहा ! समाई नहीं अयोध्या फूली-फली।
तब तो उसमें भीड़ अमाई अली अली।।

× × ×

तम फूट पड़ा, नहीं अटा।
यह ब्रह्मांड, फटा-फटा।।

शब्द-शक्तियाँ-

'साकेत में शब्द शक्तियों के सभी भेद प्रभेद का प्रयोग हुआ है। अभिधा शक्ति का प्रयोग कवि ने अधिक किया है। निम्न उदाहरण में प्रत्येक शब्द का प्रसिद्ध अर्थ ही ग्राह्य है-

"राम तुम मानव हो ! ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे।
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।।"

'साकेत' में लक्षणा शक्ति का भी सफल प्रयोग हुआ है। कुछ लक्षणाओं के भी उदाहरण देखिए-

रूढ़ि लक्षणा-

"यहाँ अभिषेक अम्बुद छा रहे थे,
मयूरों से सभी मुद पा रहे थे।
वहाँ परिणाम में पत्थर पड़े यों,
खड़े ही रह गये, सब थे खड़े ज्यों।।"

यहाँ रूढ़िगत लक्ष्यार्थ प्रसिद्ध मुहावरों 'पत्थर पड़े' का प्रयोग हुआ है।

लक्षण लक्षणा-

"जीवन के पहले प्रभात मे आँख खुली जब मेरी"

'प्रभात' और 'आँख खुली' शब्दों में मुख्यार्थ की बाधा है। इसका लक्ष्यार्थ क्रमशः 'बचपन' और 'समझ आई' है।

व्य जना-

उच्च कोटि के काव्यों में व्य जना शक्ति की ही प्रधानता रही है, मम्मटाचार्य ने उसी काव्य को श्रेष्ठ कहा जो ध्वनि अथवा व्यंजना प्रधान है। 'साकेत' में व्यंजना शक्ति का प्रयोूग हुआ है। अभिधामूलाव्यंजना का एक उदाहरण लीजिये-

"भ्रमरी इस मोहन मानस के सुन,
मादक हैं रस भाव सभी।
मधु पीकर और मदान्ध न हो,
उड़ जा बस है अब क्षेम तभी।
पड़ जाए न पंकज बंधन में,
निशि यद्यपि हे कुछ दूर नहीं।
दिन देख नहीं सकते सविशेष,
किसी जन का सुख भोग कभी।"

'भ्रमरों' और 'मधु' शब्द क्रमशः भ्रमण करने वाली कोई स्त्री तथा शराब के भी द्योतक हैं। परन्तु संयोग आदि के कारण ये शब्द क्रमशः भौरी एवंम करंद के बोधक हो गये हैं। फिर भी इस अर्थ का बोध होता है कि किसी भ्रमण करने वाली नारी को मधु पीकर मदान्ध नहीं हो जाना चाहिए नहीं तो उसे पर पुरुष के बन्धन में पड़ जाना पड़ेगा।

व त्तियाँ-

व त्तियाँ काव्य में शब्द और अर्थ का रसादि के अनुकूल समायोजन करती हैं। उपनागरिका व त्ति के अन्तर्गत मधुर व्यंजक वर्णों की योजना होती है। इससे कविता में लालित्य आ जाता है। यथा-

"किसलय कर स्वागत हेतु हिला करते हैं।
म दु मनोभाव सम सुमन खिला करते हैं।।
डाली में फल नित्य मिला करते हैं।
त ण-त ण पर मुक्ता भार झिला करते हैं।।
निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया।
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया।।"

कोमला व त्ति के अन्तर्गत पंचम वर्ण युक्त रचना होती है। इससे काव्य में सरसता आ जाती है। एक उदाहरण लीजिए-

"निरख सखी ये खंजन आये।
फेरे उन मेरे मन रंजन नयन इधर मन भाये।।"

परूषा व त्ति में ओज प्रकाशक पुरुष वर्णों की योजना रहती है। निम्न उदाहरण देखिए-

"प्रथम वेग से बचे शत्रु जो सजग खड़े थे।
करके अब हुँकार प्रेत से टूट पड़े थे।।"
दल बादल भिड़ गये, धरा धँस चली धमक से।
भड़क उठा क्षय कड़क तड़क से चमक दमक से।।"

रीतियाँ और गुण-

'वैदर्भी', 'गौड़ी' और 'पांचाली' तीन रीतियाँ होती हैं। रीति का सम्बन्ध दो से होता है। रीतियाँ काव्य में रस, भाव आदि की उपकारक होती है। 'साकेत' में रीतियों का प्रयोग हुआ है। व त्ति और रीति की भाँति काव्य में गुणों का भी बड़ा महत्त्व है। गुणों को रस का उत्कर्ष करने वाला माना गया है। गुण तीन होते हैं-1. माधुर्य 2. ओज 3. प्रसाद। 'साकेत' में तीन गुणों के स्थान-स्थान पर उदाहरण मिल जाते हैं। माधुर्य गुण का प्रयोग श ंगार, करूण आदि कोमल रसों में होता है। ओज गुण वीर, रौद्र और वीभत्स रसों में आता है। प्रसाद गुणवाली रचना अत्यन्त सरल, सुबोध एवं श्रवण मात्र से अर्थ प्रतीति कराने वाली होती है। 'साकेत' में प्रसाद गुण की ही प्रधानता है।

अलंकार-योजना-

'साकेत' में कवि ने सफल अलंकार-योजना की है। अलंकार प्रायः भावाभिव्यक्ति में सहायक होकर आये हैं। अधिकांश स्थलों पर प्रयुक्त अलंकारों को देखने से पता चलता है कि उनका प्रयोग प्रस्तुत अर्थ के सर्वथा अनुरूप किया गया है और वे प्रस्तुत रस के पोषक हैं। एक उदाहरण लीजिए-

"मेरे चपल यौवन-बाल !
अचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल !
बीतते फिर रात, होगा सुप्रभात विशाल।
खेलना या खेल मन के पहन के मणि-लाल।
पक रहे हैं भाग्य-फल तेरे सुरम्य रसाल।
डर न अवसर आ रहा है, जा रहा है काल।
मन पुजारी और इस तन दुःखिनी का थाल।
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल।।"

उपर्युक्त उदाहरण में विप्रलंभ श ंगार है। उर्मिला को प्रिय के अभाव में अपना यौवन एक बालक के समान मचलता हुआ जान पड़ता है। इसी कारण वह अपने इस यौवन-काल को सांत्वना दे रही है। पंक्तियों में सांगरूपक के द्वारा आवों को

उत्कृष्ट रूप प्रदान किया गया है। इस पद में सांगरूपक, रूपक, श्लेष, मानवीकरण आदि अलंकारों से विप्रलंभ श ंगार का निरूपण बहुत ही मार्मिक हो गया है।

'साकेत' में शब्दालंकारों का बहुत प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिए-

छेकानुप्रास-

लपट से झट रूखे जले, जले।
नदी, नद, घट सूख चले।।

व त्यानुप्रास-

ऐसे अगणित भाव उठे लघु-सगर नगर में।
बगर उठो बढ़ अगर तगट से डगर-डगर में।।

यमक-

चित्र भी था चित्र और विचित्र भी।
रह गये चित्र रूप से सौमित्र भी।।

श्लेष-

उस रूदन्ती विरहिनी के रूदन-रस के लेय से।
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से।।

मुद्रा-

करुणे वयों रोती हैं ? 'उत्तर' में ओर अधिक तू रोई।
मेरी विभूति है जो, उसकी भव-भूति क्यों कहे कोई।।

काव्युवक्रोक्ति-

वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के।
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के।।

वीप्सा-

हाय ! आर्य रहिये, रहिये,
मत कहिये, यह मत कहिये।

अर्थालंकार-

'साकेत' में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक अति साद श्यमूलक अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है।

उपमा-

उपमा में रूप साद श्य या प्रकृति साद श्य तथा गुण साद श्य का रहना आवश्यक होता है। आधुनिक काव्य में रंग साद श्य को भी अपनाया गया है। 'साकेत' में इन सभी प्रकार की उपमाओं के उदाहरण मिल जाते हैं। आधुनिक कविता से मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त का भी विधान किया गया है। साथ ही मूर्त की अमूर्त से भी उपमा दी जाती है। कुछ उदाहरण लीजिए-

रूप साद श्य-

1. इन्द्रधनुषाकार तोरण हैं तने।
2. उर्मिला के नेत्र खंजन से फँसे।

गुण साद श्य-

1. कमल जाति का भी कमल-सी कोमला,
   धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला।
2. देखती है जब जिधर यह सुन्दरी,
   दमकती है दामिनी-सी द्युति भरी।

रंग-साद श्य-

1. लपेटे ये घन जैसे बाल।
2. गोट जड़ाऊ घूंघट की,
   बिजली जलदोपम पट की।।

मूर्त के लिए मूर्त उपमान-

कंधे ढककर कंच छहर रहे थे उनके,
रक्षक-तक्षक-से लहर रहे थे इनके।
मुख धर्म-बिन्दुमय ओस भरा अम्बुज सा।
पर कहाँ कंटकित नाल मुखाकृति भुज-सा।।

मूर्त के लिए अमूर्त का उपमान-

1. म त्यु सी पड़ी कैकेयी जान।
2. चले पीछे लक्ष्मण ऐसे,
   भाद्र के पीछे आश्विन जैसे।।

अमूर्त के लिए मूर्त उपमान-

मोद का आज न ओर न छोर।
आम्रवन-सा फूला सब ओर।

अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान-

उदित से सब हास-विलास हैं
रूपित-से सब किन्तु उदास हैं।

पूर्वोपमा-

चूमता था भूमितल को अर्ध विधु-सा भाल
बिछ रहे प्रेम के द्रग-जाल बनकर बाल।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।।

स्मरण-

अलि, इसी वापी में हँस बने बार-बार हम विहरे।
सुधकर उन छींटों को मेरे अंग आज भी सिहरे।।

निरंग रूपक-

भाग्य भास्कर उदयगिरी पर चढ़ गया।

सांगरूपक-

सखि नील नभस्सर में उतरा
यह हंस अहा ! तरता-तरता
अब तारक मौक्तिक शेष नदी,
निकला जिनका चरता-चरता।।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी,
चला उनको धरता-धरता।
गड़ जायँ न कंटक भूतल के,
कर डाल रहा डरता-डरता।।

भ्रान्तिमान-

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है !

सन्देह-

खुल गया प्राची दिशा का द्वार है,
गगन-सागर में उठा क्या ज्वार है।
पूर्व के ही भाग्य का यह भाग है,
या नियति का राग पूठी सुहाग है ?

अतिशयोक्ति-

ठहर अरी इस हृदय में-
लगी विरह की आग।
तालव न्त से और भी,
धधक उठेगी आग।

रूपकातिशयोक्ति-

नैश-गगन के गाज में पड़े फफोले हाय।

वस्तूत्प्रहेता-

जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े
हीरको में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्मरागों से अधर मानों बने,
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।"

विरोधाभास-

हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेख ने अवतार है।

विभावना-

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चुके
रूप रत्नाभरण ढीले पड़ चुके।।

विषम-

"स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ
किन्तु सुर सरिता कहाँ, सरयू कहाँ।"

द ष्टांत-

एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ
राष्ट्र का बल निखर जाता है वहाँ।
बहुत तारे थे अंधेरा कब मिटा।।

अप्रस्तुत प्रशंसा-

री छावेगा फिर भी बसंत,
जैसे मेरे प्रिय प्रेमवन्त।
दुःखों का भी है एक अंत,
हो रहिये दुर्दिन देख मूक।

व्यतिरेक-

कहती मैं चातकि, फिर बोल।
ये खारी आँसू की बूँदें, दे सकती यदि मोल
कर सकते है क्या मोती भी उन बोलों की तोल।

समासोक्ति-

मान छोड़ दे मान अरी !
कली, अली आया; हँसकर ले, यह बेला कहाँ धरी।
सिर न हिला झाँकों में पड़कर, रख सहृदयता सदा हरी।
छिपा न उसको भी प्रिय त्तम से यदि है भीतर धूल भरी।।

मानवीकरण-

अरूण सन्ध्या को आगे ठेल।
देखने को कुछ नूतन खेल।।
सजे बिधु की बेंदी से भाल।
यामिनी आ पहुँची तत्काल।।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 'साकेत' में प्राचीन एवं नवीन सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया गया है। किन्तु कवि का झुकाव प्राचीन अलंकारों की ओर ही रहा है। अलंकारों का प्रयोग प्रायत भावाविभक्ति में सहायक बनकर ही हुआ है।

छन्द-योजना- 'साकेत' में मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। वर्णिक छंद जहाँ पूर्ण रूप

से शास्त्री हैं, वहाँ मात्रिक छन्दों में कवि ने दो छंदों को मिला कर नए छंद का भी निर्माण किया है। कुछ छंद आधुनिक प्रगति-शैली में भी लिखे गये हैं। 'साकेत' के प्रत्येक सर्ग में प्रायः एक ही छंद है, सर्ग के अन्त में छंद बदल दिया है। नवें सर्ग में विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है। साकेत में छन्द-योजना विषय और भाव-निरूपण में सफल हुई है।

प्रथम सर्ग के छन्द- मंगलाचरण में 'मनहरण' कवित्त छन्द है इसमें 8, 8, 7, 7 पर यति देकर 31 वर्ण हैं। प्रथम सर्ग में पीयूष वर्ष नामक छंद का प्रयोग हुआ है। इसमें 10 और 8 मात्राओं पर यति देकर 31 वर्ण हैं। प्रथम सर्ग में 'पीयाूषवर्ष' नामक छंद का प्रयोग हुआ है। इसमें 10 और 8 मात्राओं पर यति देकर 19 मात्राएं होती हैं। अन्त में लघु-मुख का प्रयोग होता है। हास-परिहास की बातें इस छंद में सरलता से कही जा सकती हैं। अतः यह छंद इस सर्ग के लिए उपयुक्त है-

रे सुभाषी बोल, = 10 मात्राएँ

चुप क्यों हो रहा ? = 9 मात्राएँ

सर्ग के अन्त में रूपमाला छंद का प्रयोग है।

द्वितीय सर्ग - सर्ग के 'श ंगार' छंद में तीव्र मनोभावों को बड़ी सजीवता के साथ वर्णन किया जाता है। कैकेयी और मन्थरा का संवाद इस छन्द में निखर आता है। इस छंद के प्रारम्भ में तीन और दो मात्राओं पर यति और फिर ग्यारह मात्राएं होती हैं। सर्ग के अन्त में पहले 'सिन्धु' 7, 7, 7 मात्राओं पर यति और उसके पश्चात मनमोहन छंद का प्रयोग किया है। इसमें 8 और 6 पर यति देकर 14 मात्राएँ होती हैं। तथा अन्त में तीन लघु होते हैं, किन्तु गुप्त जी ने 2 लघु और 1 गुरु का प्रयोग किया है।

त तीय-सर्ग- इस सर्ग में 'सुमेरू' छंद का प्रयोग हुआ है। इस छन्द में विरह-विलाप टीस और कराह का वर्णन बड़ी सफलता से किया जा सकता है। सर्ग के अन्त में पहले 'सरसी' छन्द और फिर 'राम' छन्द का प्रयोग हुआ है।

चतुर्थ-छंद- इस सर्ग में हाकलि छन्द का प्रयोग हुआ है। इस छन्द में नारी सौन्दर्य और सौम्य-व त्ति का निरूपण बड़ी सजीवता से किया जाता है। इस सर्ग में नारियों की मनोव त्ति का चित्रण अधिक होने के कारण यह सर्वथा उपयुक्त है। सर्ग के अन्त में पहले छार छन्द और उसके पश्चात् मराठी भाषा के 'सावठी' छन्द को अपनाया है। अन्त में तोमर छन्द का प्रयोग हुआ है।

प चम सर्ग- इस छन्द में त्रिलोकी छन्द प्रयुक्त हुआ है। यह छन्द चान्द्रायण और प्लवंगम के सम्मिश्रण से बनता है। मन्द-मन्थर गति के लिए यह छन्द प्रसिद्ध है। पंचम सर्ग में राम वन गमन का प्रथम है। अतएव इसके लिए यह छन्द सर्वथा उपयुक्त है। कवि ने छन्द परिवर्तन करते हुए पहले एक मनहर कवित्त और फिर दोहा छन्द रखा है।

षष्ट सर्ग- इस सर्ग में पदाकुलक छन्द का प्रयोग हुआ है। साकेत के प्रत्येग सर्ग में प्रायः ही छन्द है। इस सर्ग में दशरथ की म त्यु आदि का वर्णन बड़ी त्वरा के साथ हुआ है। अपनी गतिशीलता के कारण इसके लिए यह छन्द सर्वथा उपर्युक्त है। सर्गान्त के पहले हरिगीतिका और फिर मधुमालती छन्द है।

सप्तम् सर्ग- इस सर्ग में सर्वथा नवीन छन्द का प्रयोग हुआ है। यह 'पीयूष वर्ष' छन्द में से अन्त के दीर्घ वर्ण को निकालकर बनाया गया है। इसके चन्द्र छन्द का भी विस्तार कहा जा सकता है। सर्गान्त में पहले व्यक्ति और फिर शिव छन्द का प्रयोग किया गया है।

अष्टम् सर्ग- इस सर्ग में राधिका छन्द का प्रयोग हुआ है। भव्यता एवं विशालता के भव्य चित्र इस छन्द में सफलता से अंकित किये जा सकते हैं। यह छन्द गााने में बड़ा मधुर होता है-

"मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।"

सर्ग के अन्त में छन्द बदल गया है। पहली पंक्ति अखिल छन्द की तथा दूसरी पंक्ति 'पुनीत' छन्द को मिलाकर एक नया प्रयोग किया गया है। इसके पश्चात् 'चौपाई' छन्द का प्रयोग किया गया है।

नवम् सर्ग- इस सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। उर्मिला का चौदह वर्ष विरही जीवन अस्त-व्यस्त है और इस सर्ग की छन्द योजना भी अस्त-व्यस्त जीवन की अभिव्यक्ति के लिए विविधतामय है। इसमें कुछ वर्णिक, कुछ मात्रिक और कुछ नवीन शैली के प्रगीत-मुक्तक हैं, वर्णिक छंदों में मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शार्दूल विक्रीप्ति, भुजंग प्रभात, स्रन्धरा, शिखरिणी, मालिनी, प थ्वी, रूपज्ञा, उपेन्द्रवज्रा, वसन्तितलका छन्दों का प्रयोग हुआ है। मात्रिक शब्दों में राम, नीतिक, सार,

शक्ति, बखे प्रयुक्त हुए हैं। प्रगीत मुक्तकों की पंक्ति टेक के रूप में है। ये मुक्तक प्रगीत बड़े ही मधुर हैं-

1. सिद्धू-शिलाओं के आधार,
   ओ गौरव गिरि उच्च उदार।
2. वेदने, तू भी भली बनी,
   पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
3. दोनों ओर प्रेम पलता है,
   सखी, पतंग जलता है। दीपक भी जलता है।

दशम् सर्ग- इसमें 'वियोगिनी' नामक प्रसिद्ध छन्द का प्रयोग हुआ है। यह छन्द विलाप, शोक आदि की अभिव्यक्ति के लिए बड़ा ही उपयुक्त होता है। सर्ग के अन्त में मालिनी और उसके पश्चात् गीतिका छन्द का प्रयोग है।

एकादश सर्ग- इस सर्ग में वीर छन्द का प्रयोग हुआ है। यह छन्द वर्णात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। कहीं-कहीं पर लटक छन्द का भी प्रयोग हुआ है। सर्ग के अन्त में कवि त्त और दोहा आया है।

द्वादश सर्ग- इस सर्ग में रोला छन्द का प्रयोग हुआ है। सभी छन्द लय और गति से युक्त हैं। रोला छन्द वीरता, पराक्रम व तेज के लिए सर्वथा उपयुक्त है। सर्ग में क्रमशः उलाल, पदाकुलक, चन्द्र, जलहरण का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'साकेत' में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। सभी छन्छ गति व लय से युक्त हैं। कहीं-कहीं वर्णिक व त्तों में अवश्य दोष आ गया है। सभी छन्द गेय हैं और भावानुकूल प्रयुक्त हुए हैं।

10. 'साकेत' में चित्रित 'ग्राहस्थ्य-जीवन-

साकेत में गुप्त जी ने मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का जीता-जागता चित्रण किया है। इस द ष्टि से उसे जीवन काव्य की संज्ञा दे सकते हैं। यही कारण है कि हमें उसमें स्थान-स्थान पर राग-द्वेष आदि के साक्षात् दर्शन होते हैं। मानव-मन एक अथाह सागर के समान है। उसमें उठने वाली अगणित उर्मियों का अनुमान कोई व्यक्ति नहीं लगा सकता। किस समय मनुष्य के मन में कौन-सा विचार स्थान ग्रहण कर ले, कहा नहीं जा सकता। ये ही राग-द्वेष असंख्य स्पष्ट और अस्पष्ट भावनाओं में पल्लवित होते रहते हैं।

भारतीय-संस्कृति में पारिवारिक जीवन को विशेष महत्त्व दिया गया है। गुप्त जी के काव्यों का अध्ययन करने से हमें इस बात का पता चलता है। केवल इतना ही नहीं उनको गार्हस्थ्य-जीवन के वर्णन में अद्दितीय सफलता भी प्राप्त हुई है। प्रत्येक मानव परिवार में सुख-दुख का होना स्वाभाविक है। ठीक इसी भाँति 'साकेत' में भी एक परिवार के सुख-दुख का वर्णन किया गया है। यद्यपि वे सभी सदस्य राज-परिवार से सम्बन्धित हैं, परन्तु प्रकृति ने राजा और भिखारी के सुख-दुःख में अन्तर नहीं रखा है। सुख और दुख दोनों के लिए एक समान हैं। दोनों प्रकार के व्यक्तियों के हृदय में एक-सा स्पन्दन तथा दोनों की आह में एक-सा दर्द है। इस परिवार में पति-पत्नी, सास, ससुर, विमाता, भाई, देवर, भाभी आदि सभी सम्मिलित हैं। परन्तु वे एक समष्टि के रूप में ही रहते हैं-

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।
एक भी आंगन नहीं ऐसा यहाँ,
शिशु न करते हों कलित क्रीड़ा जहाँ।

दाम्पत्य-जीवन गार्हस्थ्य-जीवन का प्राण है। मानव पर उसके समीपस्थ का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। उसी का एक मात्र अधिकार भी उस पर रहता है। इस द ष्टि से जीवन में काम की प्रमुखता होने के कारण स्त्री-पुरुष का नैकट्य ही सर्वाधिक ठहरता है। एक स्थान पर उर्मिला एवं लक्ष्मण का हास-परिहास देखते ही बनता है। यथा-

लक्ष्मण- "किन्तु मैं भी तुम्हारा दास हूँ।"

उर्मिला- "दास बनने का बहाना किसलिए क्या मुझे दासी कहना, इसलिए ?"

उपर्युक्त अंश में कितनी मीठी चुटकी ली है। वह स्पष्ट कहती है कि आप चाहे कुछ भी बनें परन्तु, मैं दासी नहीं बनूँगी।

'साकेत' दशरथ परिवार में पाँच दम्पत्ति हैं-उर्मिला-लक्ष्मण, सीता-राम, भरत-माण्डवी, दश्रथ और उसकी तीनों रानियां, शत्रुघ्न, श्रुति-कीर्ति। मूल कथावस्तु 14 वर्ष बाद उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन है। अतः उसमें श ंगार रस होना स्वाभाविक है। श ंगार में भी विरह की विशेषता के कारण वियोग पक्ष की प्रधानता है। यही कारण है कि 'साकेत' इस प्रकार के मधुर चित्रों से परिपूर्ण है। एक स्थल पर कवि ने जीवन की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। उर्मिला तथा लक्ष्मण का पारस्परिक वार्तालाप हो रहा है। लक्ष्मण पत्नी के गौरव के विषय में कहते हैं-

"भूमि के कोटर, गुहा, गिरि गर्त भी,
शून्यता नभ की, सलिल आवर्त भी,
प्रेयसी किसके सहज संसर्ग से,
दीखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से।।"

स्त्री का सबसे बड़ा सौन्दर्य यही है कि उसके संसर्ग से जीवन में रस आ जाता है। उपर्युक्त रस में गुप्त जी ने नारी के चरम महत्त्व की व्याख्या कर दी है।

उधर वन में रहते हुए राम भी सीता जी के सौन्दर्य का रस-पान किये बिना नहीं रहते। राम-सीता के जीवन में संयोग की अधिकता रही है। यद्यपि राम गम्भीर प्रकृति के थे फिर भी वे सीता के साथ साधारण व्यक्ति बन जाते हैं। उनका परिहास भी प्यार से परिपूर्ण हो उठता है। एक स्थल पर सीता जी वन के व क्षों को सींचती फिर रही है तथा राम उनके इस प्रकृति-सौन्दर्य का पान करते हुए कहते हैं-

"हो जाना लता न आप लता संलग्ना,
करतल तक तो तुम हुई नवल दल माना,
ऐसा न हो कि मैं फिरूँ खोजता तुमको।।"

इस प्रकार का विनोद दाम्पत्य जीवन में जरूरी है या स्वाभाविक है। फिर भी विनोद केवल विनोद न रहकर सदैव मर्यादित हो रहा है। यही गुप्त जी की विशेषता है। "कामिनो पि रहस्याख्यानं व्याजश्चुम्बनैव प्रधानम्" के अनुसार दाम्पत्य के मूल में काम की प्रेरणा से स्त्री पुरुष की ओर, पुरुष स्त्री की ओर पागल होकर बढ़ता है। परन्तु यहाँ पागलपन संयत और मर्यादित होकर दाम्पत्य में विकसित होता है। इसलिए तो लक्ष्मण और राम के पुष्पवाटिका में देखकर सीता जी कह उठती हैं -

"नभ नील अनन्त है, अहा।"

केवल इतना ही नहीं सीता का मन उस नीलिमा में खो जाता है तथा वे विह्वल होकर कहने लगती हैः-

"उनकी पद-धूलि जो धरू।
न अहिल्या अपकीर्ति से डरू।"

यह स्त्री पुरुष का सम्बन्ध विपत्ति के समय जीवन में द ढ़ अवलम्ब बन जाता है। स्त्री ही ऐसा प्राणी है जो पुरुष की व्यथा को हल्का करने में सहायक हो सकती है। पिता की म त्यु और राम के वन गमन से भरत पर शोक का पहाड़ टूट पड़ता है। उनकी नस-नस में ग्लानि का विष व्यापने लगता है। उस समय उनकी स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। वे न संसार को छोड़ ही पाते हैं और न ही भोगने की इच्छा होती है। जीवन उनके लिए एक कारावास के समान बन जाता है। ऐसे समय में उनकी इस मनोदशा को समझने वाली एक माण्डवी ही है। माताओं तथा उर्मिला आदि की करुण कहानी सुनकर भरत के दुखी हृदय से एक आह निकल पड़ती है और वे कह उठते हैं-

"एक न मैं होता भव की कया असंख्यता घट जाती ?
छाती नहीं फटी यदि मेरी, तो धरती ही फट जाती।"

माण्डवी भी उस समय उनके स्वर में स्वर मिलाकर अपने विचार प्रकट करती है। उसके हृदय में वाक्य तीर की भाँति लगते हैं और वह कहने लगती है-

"हाय नाथ धरती फट जाती, हम तुम कहीं समा जाते।
तो हम दोनों किसी तिमिर में रहकर कितना सुख पाते।।
न तो देखता कोई हमको, न वह कभी ईर्ष्या करता।
न हम देखते आर्त किसी को, न वह शोक आँसू भरता।।"

दाम्पत्य के उपरान्त दूसरा स्थान है वात्सल्य का। यदि दाम्पत्य गार्हस्थ्य का प्राण है तो वात्सल्य उसकी उद्भूति है। वहाँ आत्माओं का एकीकरण और यहाँ आत्माओं का विसाजनः 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' 'साकेत' में एक पिता है और तीन रानियाँ हैं अर्थात् माताएं हैं जो माता होने के साथ विमाता और सास भी हैं। यही सम्मिलित परिवार एक आदर्श हिन्दू परिवार है। जिसमें स्वार्थ, ईर्ष्या स्पर्धा का सर्वथा त्याग मिलता है। कैकेयी भरत को ही नहीं राम को भी उतना ही प्यार करती है। इसलिए कौशल्या कहती है-

"लौ कुहुकिन, अपना कुहुक, राम यह जागा,
निज मंझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा।"

उपर्युक्त अंश पारिवारिक जीवन में कितना सुन्दर अनुभव है। मन्थरा द्वारा कान भरने पर कैकेयी सबसे प्रथम यही कहती है-

"वचन क्यों कहती है वाम ?
नहीं क्या मेरा बेटा राम ?"

इस प्रकार के सुखी परिवार के अनेक चित्र हमें 'साकेत' में देखने को मिलते हैं। उन स्थलों को पढ़कर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि गुप्त जी ने गार्हस्थ्य-जीवन का चित्रण अपूर्व सफलता के साथ किया है।

11. वात्सल्य-

आचार्य ने रसों का विवेचन करते समय वात्सल्य रस का विशेष महत्त्व बताया है। वात्सल्य का मूल्यांकन किसी भी द ष्टि से दाम्पत्य से कम नहीं है। ये दोनों एक तराजू के दो पलड़ों के समान हैं। साकेत में केवल एक परिवार नहीं अपितु कई परिवार हैं। अतः यह वात्सल्य विभिन्न रूपों में देखने को आता है। वहाँ माता-विमाता, पिता एवं सास आदि भी हैं। सामान्यतः इतने विशाल परिवार में स्वार्थ, ईर्ष्या, स्पर्द्धा आदि का होना स्वाभाविक है। परन्तु साकेत नगरी के इस राज परिवार में इन बातों का अभाव है। वहाँ पर मेरे तेरे की भावना का पूर्ण बहिष्कार है, जो संयुक्त परिवार की कु जी है।

राजा दशरथ की व द्धावस्था में तथा बड़ी तपस्या के उपरांत पुत्र की प्राप्ति हुई है। अतः उनको अधिक मोह होना स्वाभाविक है। 'साकेत' में तो उनका वात्सल्य प्रेम चरम सीमा पर पहुँच जाता है। व द्ध पिता का हृदय वनवास की बात नहीं सहन कर पाता और वे अपने पुत्र के वियोग में इस नश्वर शरीर से परित्याग ही कर देते हैं-

"हुए जीवन-मरण के मध्य हत से वे,
रहे बस अर्ध-जीवित अर्ध-मत से वे।"

कौशल्या का पुत्र-स्नेह 'साकेत' में देखते ही बनता है। वे तो सदैव दशरथ की भाँति ही अपने कुल की मंगल-कामना में ही रहती हैं। वे आजकल की सी चतुर एवं चालाक रमणी की भाँति नहीं है। उनके अन्दर भोलापन है तथा विचित्र प्रकार की निस्प हता। इसलिए राम के वन गमन तथा भरत के राज्याभिषेक की बात सुनकर वह न तो कैकेयी के भाग्य पर ईर्ष्या करती है, न ही रूष्ट होती है वरन् उसका भोला हृदय तो राम की ही भीख माँगता है-

"मेरा राम न वन जावे,
यहीं कहीं रहने पावे।"

उपर्युक्त कथन के द्वारा तो गुप्त जी ने कौशल्या के आदर्श का चरमोत्कर्ष ही प्रस्तुत कर दिया है। राजमाता होने पर भी वे अपने अधिकार का दुरुपयोग नहीं करती। 'यहीं कहीं रहने पाये' में कितनी दीनता है। वे राम को राज्यासीन नहीं देखना चाहतीं। वे तो चाहती हैं कि राम यहीं कहीं उनके पास बना रहे। इसके लिए भले ही उन्हें अपनी मर्यादा तोड़कर छोटी सपत्नी

के चरणों में नतमस्तक होकर भिक्षा ही क्यों न माँगनी पड़े।

दूसरी ओर कैकेयी का ममत्व और मोह भी देखने योग्य है। नारी की स्वाभाविक प्रकृति अपने पुत्र के प्रति ही होती है। परन्तु हमें कैकेयी में इसके विरुद्ध भाव देखने को मिलते हैं। जो कैकेयी मन्थरा द्वारा कान भरे जाने पर राम के विरुद्ध हो जाती है। उसी का एक द श्य देखिये-

"होने पर प्रायः अर्धरात्रि अंधेरी,
जीजी आकर पुकार करती थी मेरी-
जो कुहुकिन, अपना कुहुक, राम यह जागा,
निज मंझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा।।"

कवि ने इन शब्दों में ममत्व की कितनी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। राम तथा भरत में कैकेयी तथा कौशल्या के लिए कोई अन्तर नहीं। यह है एक सुखी पारिवारिक जीवन। प्रत्येक प्राणी में कुछ दुर्बलताएं भी होती हैं। कैकेयी की इस दुर्बलता का अनुचित लाभ मन्थरा उठाती है तथा उस सुखी परिवार में विष घोल देती है। उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट पता चलता है कि कैकेयी भरत को ही नहीं राम को भी उतना ही प्यार करती है। मानव की अन्तरात्मा उसका साक्षात् चित्र वाणी द्वारा प्रस्तुत कर देती है। तभी तो कैकेसी मंथरा से कहती है-

"द्विजिह्वे रस में विष मत घोल,
उड़ाती है तू घर में ˙ कीच,
नीच ही होते हैं बस नीच।"

परन्तु मानव-हृदय कहाँ तक अपने को सम्भालता-अन्त में राक्षसी व त्ति की विजय होती है तथा यही 'पुत्र-स्नेह' यही 'हृदयजन्य हठ' आगे भयंकर रूप धारण कर लेता है। मँझली माँ विमाता बन जाती है। पुत्र-स्नेह में कैकेयी इतनी अंधी हो जाती है कि पति के कटु वाक्य तथा लक्ष्मण, शत्रुघ्न के अपशब्द सभी कुछ सहती है। परन्तु भरत के द्वारा तिरस्कार होने पर उसका हृदय टूट जाता है-

"धन्य तेरा क्षुजित पुत्र-स्नेह,
खा गया जो भून कर पति-देह।"

कितनी ग्लानि है इन पंक्तियों में। यह सुनकर कैकेयी उन्मादिनी हो जाती है और पुत्र प्रेम के कारण कह उठती है-

"सब करें मेरा महा अपवाद,
किन्तु उठ, ओ भरत; मेरा प्यार,
चाहता है एक तेरा प्यार।
राज्य कर, उठ वत्स मेरे लाल,
मैं नरक भोगूँ चिर काल।"

यह है कैकेयी की ममता - उसका वात्सल्य-प्रेम। युवराज भरत के दण्ड ग्रहण करने में ही उसे सुख है। यह स्वयं नरक भोगने को तैयार है और अन्त में भरत की विमुखता ही कैकेयी के मोहान्धकार को दूर करती है।

वात्सल्य का जीता-जागता उदाहरण हमें सुमित्रा में भी मिलता है। वह एक वीर क्षत्राणी है और साथ में माँ भी। परन्तु असवर पड़ने पर वह क र्त्तव्य की वेदी पर पुत्र-स्नेह को बलिदान कर देती है। यही बलिदान सुमित्रा को महान् देवी की कोटि में लाकर रख देता है। यह एक साधारण नारी के लिए कठिन है। उसके मात त्व में मोह की दुबर्लता नहीं वरन् क र्त्तव्य की शक्ति है। वे लक्ष्मण को तो राम के साथ सहर्ष भेज ही देती हैं, परन्तु अवसर आने पर शत्रुघ्न को भी उसी ओर प्रेरित करती है-

"जैसा विधि ने सविशेष दिया दिया मुझको जैसा,
लौटाती हूँ आज उसे वैसे का वैसा।"

परन्तु नारी सुलभ मात त्व-

"पौंछ लिया नयनाम्बु मानिनि ने अंचल में।"

हिन्दू परिवार में कन्या के विदा का अवसर बड़ा सकरुणा होता है। मात हृदय की एक झलक हमें जनकपुर में उर्मिला-सीता आदि के विदा के समय मिलती है। मात हृदय उस समय कितना विवश हो जाता है। माता के उदर से जन्म लेने वाली कन्या पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता-

"मत रो - वह आप रो उठी।
तुम न यों माँ यह हृदय खो उठीं।
यह मैं जननी प्रपीड़िता।
पर तू है शिशु आज क्रीड़िता।
सुन, मैं यह एक दीन माँ,
तुम हैं अब प्राप्त दीन माँ।"

हिन्दू परिवार में सास-बहू का सम्बन्ध भी विशेष महत्त्व रखता है। यह भी मात त्व का एक पहलू है। 'साकेत' में सास-बहू के मधुर संबंध भी देखने को मिलते हैं। माँ कौशल्या देवार्चना में लगी हैं तथा जानकी जी-

"माँ क्या लाऊँ कह-कहकर
पूछ रही थी रह-रहकर।
कभी आरती, धूप कभी,
सजती थी सामान सभी।"

इसी प्रकार वात्सल्य-प्रेम के अनेक चित्र हमें 'साकेत' में देखने को मिलते हैं। मात हृदय का जीता-जागता वर्णन कहीं मिलता है तो 'साकेत' में है। गुप्त जी ने इस क्षेत्र में भी अपनी लेखनी द्वारा पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

भ्रात त्व-

आज के युग में भ्रात -प्रेम प्रायः लुप्त हो चुका है। कहाँ राम और लक्ष्मण आदर्श भ्रात -प्रेम का उच्च आदर्श यदि कहीं मिलता है तो 'रामायण' तथा 'साकेत' में मिलता है। एक भाई दूसरे भाई के लिए राज्य का परित्याग कर देता है। आज के मानव में यदि तनिक भी सहृदयता और मानवता है तो वह अपनी द ष्टि फेरे 'साकेत' की ओर। 'साकेत' में भ्रात त्व के एक दो उदाहरण की नहीं वरन् कई उदाहरण मिलते हैं। वह तो इस प्रकार के स्थलों से पूर्णतः ओत-प्रोत है।

गुप्त जी ने साकेत में भ्रात -प्रेम का उचित निर्वाह करके उसमें चार चाँद लगा दिये हैं। यदि उसमें भ्रात -प्रेम का अभाव होता तो 'साकेत' महाकाव्य की श्रेणी में न आता। गुप्त जी ने अनुपम शैली के द्वारा भ्रात -प्रेम की रक्षा की है। उससे हमारा हृदय गद्गद् हो उठता है। साकेत में जहाँ पारिवारिक जीवन की झाँकी मिलती है तथा मात हृदय की निर्मलधारा प्रवाहित होती है, वहाँ बन्धु-प्रेम का चरमोत्कर्ष भी द ष्टिगोचर होता है। साकेत में जहाँ देवर-भाभी के विनोद एवं व्यंग्य का चित्रण है, वहीं भाई-भाई के विनोद एवं व्यंग्य भी मिलते हैं।

'साकेत' के राम-लक्ष्मण का भ्रात -प्रेम मानव के भ्रात -प्रेम से भिन्न है। यह गुप्त जी की निजी विशेषता है। उन्होंने मानस के मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का अनुसरण नहीं किया। 'साकेत' के लक्ष्मण राम पर उतना ही ममत्व और उतनी ही श्रद्धा रखते हैं। उनकी कष्ट सहिष्णुता भी कम नहीं है। परन्तु यहाँ उनका व्यक्तित्व मानव की अपेक्षा अधिक व्यक्त है। 'साकेत' के लक्ष्मण मानस के लक्ष्मण से भिन्न है। वह तो बड़े भाई के लिए मरने-मारने के लिए तैयार है। जहाँ लक्ष्मण राम से अनुराग करते हैं तथा उनका अपार आदर करते हैं वहीं वह राम के एकाध तीखी बात सुनाये बिना नहीं रहते। वे भ्रात त्व-रस में आत्म-विभोर हो उठते हैं कि उन्हें अपने तेरे का ज्ञान नहीं रहता। उनके समक्ष तो केवल बन्धु हित की भावना ही रहती है। कितना निर्मल है उनका बन्धु-प्रेम जिसमें कोई खोट नहीं, जहाँ फिसलने का भय रहे। अधिक निकटवर्ती होने के कारण छोटे भाई का बड़े भाई पर विशेष अधिकार हो जाता है, जिसके सम्मुख बड़े भाई को झुकना पड़ता है। इस विशेषाधिकार के बारे में गुप्त जी ने एक स्थान पर लिखा है-"मेरे अनुज श्री शियारामशरण गुप्त मुझे अवकाश लेने देना नहीं चाहते वे हैं छोटे इसलिए

मुझ पर उनका बड़ा अधिकार है।" राम के छोटे भाई लक्ष्मण भी इस विशेषाधिकार का प्रयोग किये बिना नहीं रहते-

"प्रतिबन्ध आपका भी न सुनूँगा रण में।"

इस कथन में आजकल की सी उच्छङ्खलता नहीं, वरन् इसमें निहित है भाई के कल्याण की भावना। वाह रे बन्धु प्रेम -सम्मान के समय छोटा भाई बड़े भाई का उचित सम्मान भी करता है परन्तु भाई का अनिष्ट होते देखकर वह विषधर का रूप धारण कर लेता है-

"आशा अन्तपुर मध्यवासिनी कुलटा,
सीधे हैं आप परन्तु जगत है उल्टा।"

भ्रात त्व का एक रूप तो लक्ष्मण में देखने को मिलता है तथा दूसरा रूप भरत में है। इसका पूर्व चित्र चित्रकूट में मिलता है। चित्रकूट प्रसंग में सीता ने भरत के अटूट बन्धु-प्रेम को देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया है। वे चाहती हैं कि भरत अपने भाई राम से भी अधिक यशस्वी बने। भ्रात -प्रेम से गद्‌गद् होकर वे कहती हैं-

"निज अग्रज से भी अधिक सुयश तुम पाओ।"

भ्रात -प्रेम की भावना जहाँ पुरुषों में अधिक दिखाई देती है वहाँ स्त्रियाँ भी पीछे नहीं हैं। जनकपुर में सीता-उर्मिला आदि में यही भ्रात -भावना प्रस्फुटित होती है-

"नचतीं, श्रुतिकीर्ति माण्डवी, नाद, देती करतल माण्डवी,
भरती स्वर उर्मिला सजा, गढ़तीं गीत गम्भीर अग्रज।
"दिखलाकर द श्य हाथ से, कहती वे (माता) निजमग्न हाथ से,
यह लो अब तो बनी अली, घर की यह नाट्‌य मण्डली।"

'साकेत' में एक स्थान पर राम की बहिन शान्ता का भी उल्लेख है। यह प्रसंग उस समय आता है जब राम-लक्ष्मण-कौशिक के साथ राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने जा रहे हैं। छोटे अबोध राजकुमार आज पहली बार आज घर से विदा ले रहे हैं। वे अभी तक इतने लम्बे समय के लिए घर से नही निकले। राम-लक्ष्मण वीरता के अवतार थे तथा वे सद्‌कार्य के लिए जा रहे थे। उनकी विदा का चित्र कितना सुन्दर बन पड़ा है-उसमें उल्लास उत्साह और स्नेह के पीछे करुणा के भी दर्शन होते हैं-

"कसती कटि थी माँ असि देती मँझली धनिष्ट माँ,
कह 'क्यों न हमें किया प्रजा ? पहनाती वह ज्येष्ठ माँ सजा।
प्रभू ने चलते हुए कहा, 'अब शांते, भय-सोच क्या रहा,
भगिनी, जय-मूर्ति सी झुकी, यह राखी जब बाँध तू चुकी।।"

उपर्युक्त, उद्धरण में तो भ्रात -प्रेम तथा भगिनी-प्रेम एक साथ साकार हो उठा है। सम्मिलित परिवार की आनन्द की अनुभूति ऐसे अवसर पर ही होती है।

एक स्थल पर गुप्त जी ने बड़े सुन्दर ढंग से बताया है कि हिन्दू-आदर्श के अनुसार बहिन का परिवार में क्या स्थान होता है ? भगिनी का सम्बन्ध और भी अधिक द ढ़ हो जाता है जब वह ननद-भाभी के मधुर सम्बन्ध में बंध जाती है। उर्मिला इसी शान्ता बहिन को लेकर लक्ष्मण को मजाक में हरा देती है। अशोक को देखकर उर्मिला पर लक्ष्मण ने कटाक्ष किया था-

"प्रिय ने कहा था, 'प्रिये, पहले ही फूला यह,
भीति जो थी इसको तुम्हारे पदाघात की।"

इस पर उर्मिला ने शान्ता को लक्ष्य करके कहा-

"भूलते हो नाथ ! फूल फूलते ये कैसे, यदि,
ननद न देती प्रीति पद-जलजात की।"

इस प्रकार 'साकेत' भ्रात -प्रेम की भावनाओं से परिपूर्ण है। प्रत्येक स्थल को पढ़कर हृदय गद्‌गद् हो उठता है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जो गुप्त जी की सूक्ष्म द ष्टि से बचा हो। आज के युग में इस प्रकार के भावनापूर्ण ग्रन्थ जनसाधारण के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं।

विरह-वर्णन-

उर्मिला का विरह 'साकेत' की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। उसकी परिस्थिति बड़ी करुणाजनक है। 'साकेत' में उर्मिला ही सबसे बड़ी निराश्रित प्राणी है। सीता राम के साथ छाया की भाँति रहती है। माण्डवी तथा श्रुति कीर्ति अपने-अपने पतियों के साथ बनी रहती हैं। केवल उर्मिला ही विवश है - उसके पास कोई साधन नहीं कि वह अपनी पीड़ा को शान्त कर सके। वियोग के साथ उर्मिला के नेत्रों से जो अश्रु-प्रवाह हुआ है उससे केवल उर्मिला के नेत्र ही नहीं भीगे हैं, वरन् 'साकेत' के पढ़ने वाले पाठक भी अश्रु-पूरित हो जाते हैं। विरह के आधिक्य के कारण यदि 'साकेत' को हम विरह काव्य की संज्ञा दें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

उर्मिला यद्यपि भाग्यहीन एवं निराश्रित प्राणी है, परन्तु इसमें ईर्ष्या का लेशमात्र भी नहीं है। बल्कि उसकी दयनीय दशा से अन्य सभी द्रवित हो उठते हैं और इस भांति उर्मिला की विवशता सबके दया की पात्र बन जाती है। सीता ने कहा-

"आज भाग्य है जो मेरा,
वह भी हुआ न हाय ! तेरा।"

इस प्रकार कवि दूसरों की आतुरता द्वारा उर्मिला के मन की व्यग्रता प्रदर्शित करता है। यदि ये ही वाक्य कवि उर्मिला के मुख से कहाता तो इतना प्रभावित न होते। हृदय में इतनी व्याकुलता होने पर भी उर्मिला किसी से कुछ भी नहीं कहती, बल्कि अपने मन को ही समझाती है कि-

"हे मन,
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।"

लक्ष्मण के वन चले जाने के उपरान्त उर्मिला की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जाती है। उसका शरीर कृश होता जाता है। उसके मुख की कांति पीली पड़ जाती है। यौवन में ही उसे यही का वेश मिल जाता है। अतः इन सब बातों का होना स्वाभाविक है। गुप्त जी ने उसके वियोगजन्य पीड़ा का चित्र उपस्थित किया है-

"मुख कांति पड़ी पीली-पीली,
आँखें अशान्त नीली-नीली
क्या हाय ! यही वह कृश काया,
पर उसकी शेष सूक्ष्म छाया।"

चित्रकूट में एक बार उर्मिला का मिलन अपने प्रिय लक्ष्मण से होता है। यह सीता जी के द्वारा कराया जाता है। क्योंकि एक स्त्री का हृदय ही स्त्री के हृदय को पहचान सकता है। आजकल भी हिन्दू-परिवार में यह द श्य देखने को मिलता है। वहाँ भी मिलन का माध्य स्त्री ही विशेषकर भाभियाँ ही हुआ करती हैं। यद्यपि लक्ष्मण और उर्मिला का मिलन क्षणिक ही होता है परन्तु उस समय लक्ष्मण की दशा देखते ही बनती है। वे तो उर्मिला को अपने समक्ष देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं तथा वे निश्चय नहीं कर पाते कि वह उर्मिला ही है। निराश होकर उर्मिला ही कहती है-

"मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी,
मैं बांध न लूंगी तुम्हें तजो भय भारी।"

उर्मिला अपने मन में सोचती है कि आज उसके उपवन का हरिण वनचारी है अतः वह डरता है कि पुनः न बाँध लिया जाऊँ। लक्ष्मण की इस विषम परिस्थिति को देखकर विश्वास दिलाती है-"मैं अब तुमको अपने बंधन में नहीं बांधूगी क्योंकि मैंने स्वेच्छा से ही तुम्हें छोड़ा है इसलिए भयभीत होने की आवश्यकता नहीं।"

वाह रे नारी हृदय। लक्ष्मण का हृदय उर्मिला के आन्तरिक तूफान को नहीं सहन कर पाता। अतः

"गिर पड़े दौड़ सौमित्र पिया पद तल में,

वह भीग उठी प्रिय-चरण धरे द ग जल में।"

उर्मिला का विरह जीवन नित्य-प्रति के ग हस्थ-जीवन की ही वस्तु है। इस द ष्टि से उर्मिला की द ढ़ता प्रशंसनीय है। वह चाहती तो कुल की मर्यादा छोड़कर योगिनी बन सकती थी और घर छोड़कर जा सकती थी। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसका जीवन तो एक कारागार बन गया है। उसका तो एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान व्यतीत हो रहा है। उसे तो काटने हैं जीवन के लम्बे चौदह वर्ष। प्रातःकाल होता है, संध्या होती है और उसी भाँति उर्मिला भी खाती है, पीती है, सोती है तथा रोती है-

"खान-पान तो ठीक है, परन्तु तदनन्तर हाय।
आवश्यक विश्राम जो, उनका कौन उपाय।।"

इतनी बड़ी अयोध्यापुरी में उसे कोई भी अपने समान दुःखिनी नहीं दिखाई देती। ऐसी स्थिति में समय काटने के लिए वह चित्र-रचना में लग जाती हैं। पक्षियों ने भी अपना एकाकार उर्मिला के जीवन से कर रखा है। तोता उसे उदास देखकर कहता है-"हाय उठो न रानी, उर्मिला ने जब तोते से पूछा-

"कह विहग कहाँ है आज आचार्य तेरे ?"

तब तोता अपनी बोली में उत्तर देता 'म गया' में इस उत्तर को सुनकर उर्मिला का कोमल हृदय विह्वल हो उठता है-

"सचमुच म गया में ? तो अहेरी नये वे,
यह हट हरिणी, क्यों छोड़ ही गये वे।"

वियोग एवं दुख की दशा में आत्मीयता की भावना स्वतः ही बढ़ जाती है। यह नैर्सिक नियम है कि सहानुभूति प्रदान करना भी आवश्यक है। वैसे भी ममत्व मिलते ही दुखी हृदय अनायास ही उमड़ पड़ता है। तभी उर्मिला का स्नेह अपने-अपने समीप रहने वाले प्राणियों पर बिखर रहा है-

"कोक, शोक मत कर हे तात,
कोकी, कष्ट में हूँ मैं भी तो सुन तू मेरी बात।"

पूर्व मिलन की स्म तियां विरह-व्यथा को तीव्र कर देती है। अपने प्राचीन जीवन के माधुर्य को याद करके उसकी व्यथा द्विगुणित हो जाती है। तभी तो जब कामदेव उस पर आक्रमण करता है तो वह दीन होकर प्रार्थना करती है-

"मुझे फूल मत मारो !
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'साकेत' में उर्मिला विरह की तीव्र वेदना निहित है। उसके विरह में प्राचीन शास्त्रकारों की छाप तो है ही उसके साथ-साथ नूतनता का समावेश भी स्वतः हो गया है।

12. 'साकेत' में चरित्र-चित्रण-

'साकेत' एक चरित्र प्रधान काव्य है। उसमें उर्मिला का चरित्र कथा से सम्बन्धित अन्य पात्रों के मध्य विकसित होता है। यद्यपि यह बात अवश्य है कि गुप्त जी अनेक स्थलों पर कला में परिवर्तन करना पड़ा है जिससे उनके महाकाव्य में मौलिकता का समावेश हो गया है। वैसे मूलतः यह कथा 'बाल्मीकि रामायण' तथा 'रामचरित मानस' से सम्बन्धित है। ऐसे काव्य की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके सभी पात्र मुख पात्र के चरित्र पर घात-प्रतिघात द्वारा प्रभाव डालें। साथ ही कभी प्रकाश रूप में तथा कभी प ष्ठभूमि के रूप में उपस्थित होकर मुख्य पात्र को प्रकाश में लावें। इस द ष्टि से 'साकेत' एक सफल काव्य माना जाता है। उसके सभी पात्रों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उर्मिला के चरित्र से सम्बन्धित रहता है।

आचार्य शुक्ल ने दो प्रकार के पात्रों का वर्णन किया है - आदर्श पात्र तथा साधारण पात्र, इन्हीं को हम मानवीय तथा अमानवीय पात्र भी कह सकते हैं। साकेत में अमानवीय पात्र राम हैं। राम के अतिरिक्त अन्य पात्रों में देवत्व तथा मनुष्यत्व समान रूप से देखने को मिलता है। वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम हैं। तुलसी ने भी राम को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी भक्ति की है। परन्तु गुप्त जी के राम उनसे सर्वथा भिन्न हैं। उनको वे अवतार रूप में होते हुए भी लौकिक मानव के

समान प्रतीत होते हैं। उनके राम स्वर्ग या मुक्ति का संदेश लेकर इस संसार में नहीं आये वरन् वे तो इस प थ्वी को ही स्वर्ग बनाने आये हैं-

"संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को भी स्वर्ग बनाने आया।"

यही कारण है कि उसमें मानवोचित दुर्बलताएं भी समान्यतः प्रतिलक्षित होती हैं। उनके अन्दर भी मोह की प्रबलता हो उठती है-

"आता है जी ताप यही,
पीछे पहले व्यवधान यही
झट लोटूँ चरणों में आकर।"

साधारणतः अथवा मानव पात्रों में एक भेद और भी मिलता है, वह है संस्कार और परिस्थिति का। संस्कार-प्रधान जो पात्र है उन पर परिस्थिति का प्रभाव अधिक नहीं पड़ता। वे तो प्रारम्भ से ही बने बनाये होते हैं। 'साकेत' के भरत, सीता, माण्डवी, शत्रुघ्न आदि पात्र इसी कोटि में आते हैं। उनके चरित्रों में समानता रहती है। ऐसे पात्रों के चरित्र चित्रण में समानता कवि को बड़ा सतर्क रहना पड़ता है। इसीलिए कौशल्या प्रत्येक परिस्थिति में बड़ी उदार तथा भोली दिखाई देती है-

"मेरा राम न वन जावे, यहीं कहीं रहने पावे।"

उर्मिला त्याग और अनुराग मूर्ति के रूप में दिखाई गई है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'साकेत' का निर्माण ही उर्मिला के अश्रुओं से हुआ है। कैकेयी ने तो अपना वर माँग कर अपने हृदय की विदग्धता को शान्त कर लिया। परन्तु बेचारी उर्मिला को क्या मिला ? वह तो विवश होकर अयोध्या ही रही-लक्ष्मण के साथ वन में भी न जा सकी-

"सीता ने अपना भाग लिया,
पर इसने वह भी त्याग दिया।"

परन्तु उर्मिला का यह त्याग उसे आदर्श नारी का रूप प्रदान करता है। वह शाश्वत् है। वह जीवन पर्यन्त रोती ही रहती है। परन्तु उसका रूदन कभी-कभी उसके हृदय में क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। तभी तो हनुमान द्वारा लंका की कथा सुनाने पर वह कहती है-

"विरह रूदन में गया, मिलन में भी रोऊँ,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊँ।"

इसका अर्थ यह है कि गुप्त जी के पात्र प्रतिध्वनि मात्र ही हैं - उनका कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। प्रत्येक पात्र अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रखता है। जहाँ उर्मिला-लक्ष्मण आदि के व्यक्तित्व की छाप उनके चरित्र पर पड़ती है वहाँ हम शत्रुघ्न-माण्डवी आदि को भी नहीं भुला सकते। यही बात सुमित्रा, कौशल्या, कैकेयी का मात त्व भी भिन्न है। लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न। परन्तु उनकी भावनाओं में कितना अन्तर है। यद्यपि दोनों ने ये भावनायें माता से प्राप्त की हैं। लक्ष्मण और शत्रुघ्न में अन्तर है भावुकता का।

गुप्त जी के पात्रों में व्यक्तित्व विशेषताएं तो मिलती हैं साथ ही व्यक्तिगत विशेषताएं भी उनमें मिलती हैं। कैकेयी, माण्डवी, सीता, उर्मिला आदि सभी स्त्रियोचित भावना से पूर्ण हैं। उर्मिला अन्त तक नारी ही रहती है। लक्ष्मण शत्रुघ्न तथा सुमित्रा में उनका क्षत्तितत्व स्पष्ट झलकता है। भरत की साधुता तथा निस्द ढ़ता देखने योग्य है। इतना होते हुए भी समय पड़ने पर वे अपना क्षात्र-शौर्य दिखाये बिना नहीं रहते। कैकेयी का मात त्व स्वाभाविक है, तभी तो भरत द्वारा भर्त्सना किये जाने पर वह कहती है-

चुप अरे चुप, कैकेयी का स्नेह,
जान पाया तू न निस्संदेह।
पर वही यह वत्स, तुझमें व्याप्त,
छोड़ता है राज पद भी प्राप्त।।"

महाकाव्य के पात्रों में स्वाभाविकता का अभाव रहता है। वे सभी अलौकिक शक्ति से युक्त होते हैं। परन्तु वैज्ञानिक युग होने के कारण उन पात्रों में पूर्ण अलौकिकता नहीं दिखाई देती है। हाँ साधारण जीवन से वे जरूर ऊपर हैं। उर्मिला और भरत जैसे प्राणी हमारे लोक-जीवन में ही मिल सकते हैं। इस प्रकार के लौकिक चरित्र-चित्रण करने का कारण यह है कि कवि मानव जीवन की जटिलताओं तथा विषमताओं से पूर्णतः परिचित है। वह पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में पूर्णतः समर्थ है। इसका प्रत्यक्ष दर्शन हमें कैकेयी के इन शब्दों में मिलता है-

"सब करें मेरा महापवाद,
किन्तु न तो न कर हाय ! प्रमाद !
× × ×
किन्तु मेरा भी यही वात्सल्य।"

प्रबन्ध काव्यकार की एक विशेषता यह भी है कि उसे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से चरित्र-चित्रण करने की सुविधा रहती है। स्वयं भी अपनह ओर से पात्रों के विषय में कह सकता है। एक स्थान पर गुप्त जी ने भी इस प्रव त्ति का अनुसरण किया। उन्होंने कौशल्या को 'मूर्तिमयी ममता माया' और सुमित्रा को सिंहीस दश्य क्षत्राणी बताया है।

गुप्त जी ने अभिन्य शैली का भी आश्रय लिया है। लक्ष्मण का शौर्य अभिन्यात्मक ढंग से ही विकसित होता दिखाई देता है। इस प्रणाली की विशेषता यह होती है कि पात्र जो सोचे, जो कहे, जो करे उसमें पूर्ण सामंजस्य है। इसलिए कवि ने चरित्र-चित्रण के लिए कथनोपकथन, स्वगत-भाषण, गीत आदि उपकरणों का आश्रय लिया है। इस द ष्टि से गुप्त जी ने प्राचीन परिपाटी का अनुकरण किया है। उनके पात्र सदैव दो-दो करके सामने आते हैं। पहले सर्ग में उर्मिला और लक्ष्मण, दूसरे सर्ग में कैकेयी-मंथरा और तीसरे सर्ग में राम-लक्ष्मण, चौथे में कौशल्या और सीता तथा इसी भाँति अन्य सर्गों में। 'साकेत- तथा 'मानस' के चरित्र-चित्रण में विषमता होते हुए भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि गुप्त जी का चित्रांकन किसी भी रूप से मानस से कम नहीं है। वह पूर्णतः मनोवैज्ञानिक प ष्ठभूमि पर आधारित है। साकेत में पात्र अधिक सजीव और प ष्ट दिखाई देते हैं। असाधारण चरित्र होते हुए भी उनके पात्र मनुष्य ही हैं। यह व त्ति गुप्त जी के लोक-जीवन के निकट होने की परिचायक हैं। उर्मिला कैकेयी, माण्डवी ये ही तीन 'साकेत' में अमर स ष्टियां हैं तथा ये सदैव मानव के हृदय पटल पर अंकित रहेंगी।

उर्मिला-

गुप्त जी ने नारी को भारतीय आदर्श के ढाँचे में ढालने की कोशिश की है। भौतिक पक्ष में नारी पुरुष का प्रतिरूप है, वह विश्व की मधुर कल्पना है। अतः नारी पुरुष की अनिवार्यता के रूप में प्रकट हुई है। साथ ही बौद्धिक-क्षेत्र में वह उच्च है। हृदय की विशालता तथा सहानुभूति उसके आभूषण रहे मनुष्य नारी का उपकार नहीं भूल सकता।

"मेरी यह महामति है - पति ही पत्नी की गति है।"

'साकेत' में सीता, उर्मिला, कौशल्या, सुमित्रा का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उपेक्षित कैकेयी के चरित्र को भी उठा दिया गया है। गुप्त जी ने सारा दोष मंथरा दासी के सिर पर नहीं मंढ़ा है बल्कि सारा दोष परिस्थितियों का है। वह अपने पर स्वयं अधिकार खो बैठी। यही दशा उसे सहानुभूति का पात्र बना देती है। उर्मिला का आदर्श रूप 'साकेत' में ही मिलता है। गुप्त जी ने उर्मिला तथा सीता का स्थिति-वैषम्य कितना सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है-

"सीता ने अपना भाग लिया,
पर इसने वह भी त्याग दिया।"

साकेत में उर्मिला का विरह-वर्णन चरम सीमा पर पहुंच गया है। उर्मिला ने वियोग में इतने आंसू बहाये हैं कि गाँधी जी को उत्तर देते हुए गुप्त जी ने एक पत्र में लिखा था-

"वह तो आपके लिए बकरी का दूध भी लाना चाहती है, परन्तु डरती है कि उसमें कभी पानी मिला देखकर आप यह न कह दे कि मैंने बकरी का दूध भी छोड़ा। पानी, हाँ आँखों का पानी, बहुत रोकने पर एकाध बार वह टपक पड़ा तो बापू दूध से भी गये। फिर चाहे उनके हाथ-पैरों में श्रान्ति का संचार ही क्यों न होने लगे।"

प्रेम की कसौटी है विरह, इसीलिए उर्मिला उसमें तपकर स्वर्ण के समान चमक उठती है। यहाँ तक कि 'साकेत' में

स्वयं राम भी उर्मिला की प्रशंसा करते हैं-

"तूने तो यह धर्मचारिणी के भी ऊपर,
धर्मस्थापना किया, भाग्यशालिनी इस भू पर।"

प्रो० धर्मेन्द्र ने एक स्थान पर लिखा है, "गुप्त जी के कवि संसार की प्रायः सभी नारियों का अवतरण अबला के रूप में होता है, किन्तु पुरुषों के तिरस्कार की चोट खाकर वही अबला सबला में परिवर्तित हो जाती हैं।"

अबला जीवन बिताती हुई ये नारियां अवसर पड़ने पर घोर सबला हो हाती हैं। उनका क्रोध चरम सीमा पर पहुंच जाता है। निरन्तर आंसू बहाने वाली नारी रौद्र रूप धारण कर लेती है। साकेत में भी यह रूप देखने को मिलता है-

"माननी कैकेयी का कोप, बुद्धि का करने लगी विशेष।
एडियों तक आ घूटे केश, हुआ देवी दुर्गा का वेश।।"

नारी जिस तथ्य अथवा भाव को छिपाना चाहती है, छिपा भी लेती है। वन गमन के समय उर्मिला का अर्न्तद्वन्द्व देखते ही बनता है। वह कैकेयी की भाँति रौद्र रूप धारण नहीं करती, नारी सुलभ स्वभाव का ही परिचय देती है। उर्मिला की सहृदयता एवं विषाद एक साथ देखने को मिलता है-

"कहा उर्मिला ने हे मन,
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन !
आज स्वार्थ है त्याग भरा,
है अनुराग विराग भरा।
तू स्वार्थ से पूर्ण न हो
शोक भाव से चूर्ण न हो।"

प्रिय के वियोग में विरह के ताप पुंज में चलती हुई उर्मिला की सखियाँ आश्वासन देती हैं कि प्रभु शीघ्र ही लौटेंगे। अतः अधिक दुखी होने की आवश्यकता नहीं। सखियों की सहानुभूतिपूर्ण वाणी को सुनकर उसके होठों पर मुस्कान की विषादमयी रेखा दौड़ पड़ती है। वह कहने लगती है-

"हाय; सब कुछ गया ! आश न गई।"

× × ×

"लौटेंगे क्या प्रभु और बहन।
उनके पीछे ही दुख दहन।।"

वेदना तो उर्मिला का जीवन बन गई है। वही प्रिय की पुण्य स्म ति का माध्यम बनकर आती है। अब तो प्रिय की स्म ति मात्र ही उसके जीवन का आधार है-

"वेदने तू भी भली बनी।
पाई मैंने तुझी में अपनी चाह घनी।।"

कुछ आलोचक उर्मिला के विरह में स्वार्थ की गंध बताते हैं, परन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। उसमें विश्व-वेदना की तड़प है। उर्मिला का दीपक तो सदैव जालीदार झरोखे में दीप्तिमान रहता है। उसमें विश्व-प्रेम की व्याप्ति है। उर्मिला का अनुराग लोक-कल्याण में बाधक नहीं। वह तो सदैव यही चाहती है-

"भ्रात -स्नेह-सुधा बरसे,
भू पर स्वर्ग भाव सरसे।"

केवल दु:ख है तो इतना कि

"यदि स्वामी के संग रह न सकी,
तो क्यों इतना भी कह न सकी।"
"यह भ्रात स्नेह न ऊना हो,
लोगों के लिए नमूना हो।"

'साकेत' में उर्मिला का चरित्र सीता से भी ऊँचा उठ गया है। वही साकेत की कथा की केन्द्र-बिन्दु और आधार है। सारा कथानक उसकी आंसुओं से गीला है।

13. 'साकेत' में वैष्णव भक्ति-

गुप्त जी परम वैष्णव और राम के अनन्य उपासक थे। आपकी भक्ति वैधी भक्ति थी। विष्णु के सभी रूपों में आपने राम रूप को ही प्रमुखता प्रदान की है। वे कृष्ण को भी राम-रूप में देखते हुए कहते हैं-

"धनुर्बाण या वेणु लो, श्याम रूप के संग।
मुझ पर चढ़ने से रहा, राम दूसरा रंग।।"

इष्टदेव का नाम-स्मरण, वन्दना, अर्चना, अपनी दीनता एवं इष्टदेव की महत्ता, अपने पापों का पश्चाताप, भगवान से प्रेम करने के लिए जीव के सम्मुख भय का प्रदर्शन, अपने उद्धार की प्रार्थना, भगवान में द ढ़ विश्वास, अपने मन में भगवान सामीप्य लाभ की कल्पनाएं, साधु-सन्तों का समागम, सर्वभूत हित की कामना, परदुख कातरता, इष्टदेव की लीलाओं का गान, गुरुसेवा आदि वैष्णवीय भक्ति की प्रमुख विशेषताएं हैं।

'साकेत' में वैष्णवीय भक्ति-

गुप्त जी के पिता परम वैष्णव-भक्त थे। गुप्त जी पर अपने वैष्णवीय परिवार की छाप पूर्ण रूप से पड़ी। 'साकेत' में वैष्णव भक्ति की समस्त विशेषताएं मिलती हैं। उन्होंने राम के प्रति अनन्य प्रेम प्रकट किया है। उनके राम परात्पर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वत्र रमे हुए हैं। वे मानव रूप में अवतीर्ण होकर भी प्रभु और ईश्वर हैं। कवि 'साकेत' के प्रारम्भ में प्रश्न करता है-

"राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या,
विश्व में रमे हुए नहीं, सभी कहीं हो क्या।
तब मैं निरीकार हूँ, ईश्वर क्षमा करें,
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।"

कवि राम के पीछे निरीश्वरवादी तक बनने के लिए तैयार है क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास है कि राम पूर्ण ब्रह्म है, व सम्पूर्ण विश्व में रमे हुए हैं। लीला करने के लिए मानव रूप धारण करते हैं। भक्त कवियों ने भक्ति के सर्वोपरि महत्त्व दिया है। गुप्त जी ने भी भक्ति को भव-सागर पार कराने वाली बताया है। 'साकेत' में राम कहते हैं कि जो कोई व्यक्ति मेरे गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करता हुआ मेरा परम-भक्त बनेगा, वह दूसरों को तारता हुआ स्वयं भव-सागर से तर जायेगा-

"पर जो मेरा गुण, कर्म, स्वभाव धरेंगे।
वे औरों को तार, पार उतरेंगे।।"

गुप्त जी ने अन्य भक्त कवियों की तरह ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को महत्ता प्रदान की है। वैष्णव भक्ति में इष्टदेव की लीलाओं को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। गुप्त जी ने अपने इष्टदेव राम को आर्यों का आदर्श बताने वाला, सुख-शांति हेतु क्रान्ति मचाने वाला, विवश-विकल, हीन-दीन, शापित आदि का उद्धार करने वाला, समाज की मर्यादा स्थापित करने वाला, भव में नव वैभव व्याप्त करने वाला, समाज की मर्यादा स्थापित करने वाला, नर को ईश्वरता प्राप्त कराने वाला और भू-तल को स्वर्ग बनाने वाला आदि कहा है।

वैष्णव भक्ति-पद्धति में भगवान से भी बढ़कर भगवान का नाम माना गया है। गुप्त जी ने भी नाम-महात्म्य पर बल देते हुए स्वयं भगवान राम से कहलवाया है-

"जो नाम मात्र ही स्मरण यद्यपि करेंगे,
वे भी भव-सागर बिना प्रयास तरेंगे।"

सर्वस्व समर्पण की भावना वैष्णवीय भक्ति-पूर्वत में मुख्य रूप से मिलती है। 'साकेत' में भी सर्वस्व अर्पण की भावना मिलती है। गुहराज निषाद अपना सर्वस्व राम के चरणों में समर्पित करते हुए कहता है-

"जो प्रभु निज साकेत छोड़ वन को चला,
उसके सम्मुख श्ंगवेरपुर क्या भला।
पर उसको दूं और कौन उपहार मैं,
हूँगा कल कृतकृत्य आपको तार मैं।"

दूसरों की पीड़ा, वेदना एवं व्याधि को अपनी ही समझकर वैष्णव-भक्त उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। 'साकेत' में यह वैष्णवीय भावना कई स्थलों पर मुखर हो उठी है। राम कहते हैं-"सुख क्या है ? आगे बढ़कर दुख सहन करना ही।" वैष्णवीय-भक्ति में ऊँच-नीच की भावना को तनिक भी महत्त्व नहीं दिया गया है। 'साकेत में राम नीच गुहराज को अंक भर लेते हैं। वानर सुग्रीव को अपना सखा बनाते हैं। शरणागति की महत्ता का प्रतिपादन भी 'साकेत' में हुआ है। राम शरण में आने पर द्रवित हो जाते हैं और सारे कष्टों से मुक्त कर देते हैं-

"प्रभु के शरण हुए कुछ ऋषि मुनि कहकर कष्ट कथा सारी।
सफल समझ अपना वन आना द्रवित हुए वे भयहारी।।"

वैष्णवीय-भक्ति में धर्म का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। 'साकेत' में धनधाम की अपेक्षा धर्म को महान् बताया है। राम साधारण और व्यापक धर्म प्रकार करने के लिए 'साकेत' से वन जाते हैं। 'साकेत' में वैशणवीय-भक्ति के अंग गुरु की महत्ता का भी प्रतिपादन हुआ है। राम तथा उसका समस्त परिवार गुरु वशिष्ठ की आज्ञा का पालन करता है।

वैष्णवीय-भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता महत्त्व की भावना है। गीता में श्रीकृष्ण ने श्रेष्ठ भक्त के लक्षण बताते हुए कहा है-"जो व्यक्ति शत्रु और मित्र में, मान और अपमान में सम है तथा सर्दी, गर्मी, सुख-दुखादि द्वन्द्वों में सम है, आसक्ति से रहित है, निन्दा और स्तुति को समान मानता है, सदैव मननशील रहता है। सदैव स्नेही है, स्थिर बुद्धि वाला है, वह भक्त मुझे प्रिय है।" गुप्त जी ने राम को इस समन्वय भाव से पूर्ण दिखाया है-

"राम-भाव अभिषेक-समय जैसा रहा
वन जाते ही सहज सौम्य वैसा रहा
वर्षा हो या ग्रीष्म, सिन्धु बहता नहीं
मर्यादा की सदा साक्षिणी है यही।"

गुप्त जी की वैष्णवीय भक्ति में भक्ति और मुक्ति का समन्वय है। लक्ष्मण निषादराज को उपदेश देते हुए कहते हैं कि भगवत्प्रेम से परिपूर्ण भक्ति का मुक्ति से समन्वय करते हुए अपना ग हरथ-जीवन व्यतीत करो-

"साधो उसको और मनाओ मुक्ति से।
सखे समन्वय करो भक्ति का भुक्ति से।"

गुप्त जी पूर्णतः वैष्णव हैं। उनकी वैष्णवीय भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति 'साकेत' में स्थान-२ पर हुई है।

गुप्त जी की वैष्णव भक्ति में दार्शनिक सिद्धान्त-

शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए जो दार्शनिक सिद्धान्त आए, वे हैं विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद। गुप्त जी रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैतवाद के अनुयायी हैं। विशिष्टाद्वैतवाद में ब्रह्म को निर्गुण एवं निर्विशेष न कहकर सगुण एवं सविशेष माना है। साकेत में ब्रह्मरूप राम सगुण एवं साकार हैं-

"हो गया निर्गुण सगुण साकार है।
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।।"

'साकेत' के राम 'अखिलेश' और 'लोकेश लीलाधाम' हैं। अखिल स ष्टि के सारे कार्य राम के द्वारा ही हो रहे हैं-

"हमको लेकर ही अखिल स ष्टि की क्रीड़ा।

आनन्दमयी नित नई प्रसव की पीड़ा।।"

विशिष्टाद्वैतवाद का ईश्वर सगुण लीलाधारी ब्रह्म है, जो अप्राकृत बैकुण्ठ में रहता है। लक्ष्मी उसकी पत्नी है, मायारूप है-ईश्वर की स जन शक्ति।

'साकेत' में भी ब्रह्म को सगुणी लीलाधारी ब्रह्म माना है। उन्हें मायामय कहा है क्योंकि सीता उनकी पत्नी है, मायारूप है और जगत की स ष्टि करने वाली है-

"उन सीता को, निज मूर्तिमयी माया को।

प्रणयप्राण को और कान्ता काया को।।"

सीता राम की आह्लादनी शक्ति हैं। वे राम के ह्रदय में धन में विद्युत के समान विद्यमान रहती हैं-

"बैठी है सीता सदा राम के भीतर।

जैसे विद्युत घनश्याम के भीतर।।"

अतः गुप्त जी ने राम को ब्रह्म की साकार प्रतिमा मानते हुए विशिष्टाद्वैतवाद का समर्थन किया है।

जीवन का स्वरूप-

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ईश्वर स्वतन्त्र एवं सर्वत्र है। जीव परतन्त्र एवं अर है। ईश्वर सर्व सामर्थ एवं स्वामी है तथा जीव असमर्थ है। परन्तु दोनों ही अविनाशी हैं। साथ ही जीव ईश्वर का अंश है।

गुप्त जी भी ईश्वर का अंश हैं। गुप्त जी भी जीवात्मा का ईश्वर को अंश मानते हैं-

"परमात्मा के अंशरूप हैं आत्मा सभी समाना।"

साकेत में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का सीधा वर्णन कहीं नहीं आया। एक स्थान पर उर्मिला स्वयं को सागर की लहर कहती है-

"उर्मिला हूँ मैं इस भवार्णव की नई।।"

यह कथन जीवन को ईश्वर का अंश होने का संकेत करता है। गुप्त जी एक स्थान पर स्पष्ट करते हैं कि जीव परतन्त्र और अज्ञ है। वह अपर होकर भी निरन्तर म त्यु के चक्कर में पड़ा रहता है। वह काल के अधीन है। यथा-

"जीव, जीवन म त्यु का व्यवसाय।

हाँ ! अमर भी म त्यु-कर उस जीव,

मुक्त होकर भी अधीन अतीव।"

इतना होने पर भी जीव और ईश्वर का नित्य संबंध है-

"सोचो तुम संबंध हमारा नित्य का

जब से भव में उदय आदि आदित्य का।"

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जीव कर्त्ता भी है और वह भोक्ता भी है। वह कर्मानुसार फल पाता रहता है-

"माना पावें, सभी भागय का भोग है;

किन्तु भाग्य भी पूर्व कर्म का योग है।"

इस प्रकार गुप्त जी विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जीव की अजता, विकल, स्वल्पता, अशुद्धता, बंधन ग्रसित अवस्था, अचलता आदि का वर्णन किया है। उसकी मुक्ति का उपाय भक्ति को बताया है।

जगत का स्वरूप-

जगत को विशिष्टाद्वैतवाद में सत्य माना गया है। जगत् शरीर भी है और उसका धाम भी है। गुप्त जी ने जगत को

लीला या कार्य का क्षेत्र और सतत् रहने वाला कहा है-

"सतत् कर्म क्षेत्र तै नर-लोक।"

जीव ईश्वर की अभिन्नता के समान ही ईश्वर और जगत भी अभिन्न है। अभिन्न होकर भी कुछ और विशिष्ट व अलौकिक है। वह चित्, अमित् विशिष्ट गुणों वाला हैं सुमन्त इसी धारणा को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

"तुम भूतल से भिन्न नहीं, हम सबसे विछिन्न नहीं,
उर से किन्तु अलौकिक हो, निज कुल पतंग दीपक हो।,
अन्तःकरण अपार्थिव है, उदित वहाँ दिव ही दिव है।।"

इस प्रकार गुप्त जी ने विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जगत् की स्वरूप का निरूण करते हुए उसे ईश्वर से अभिन्न एवं सत्य माना है तथा अविद्या की उपाधि से अहित होने के कारण भय, आपदा, दुख, शोक आदि से परिपूर्ण कहा है। ईश्वर अपनी लीला या क्रीडा के लिए स्वेच्छा से स ष्टि की रचना करता है। 'साकेत' में भी सगुण एवं साकार रूप में अवतीर्ण होने वाले लीला-धाम प्रभू को स ष्टि में आता हुआ बताता है-

"किस लिए प्रभू ने खेल प्रभू ने है किया,
मनुज बनकर मानवी का पय पीया।।
भक्त वत्सलता इसी का नाम है,
और वह लोकेश लीला धाम है।
भय दिखाने के लिए संसार को
दूर करने के लिए भू-भार को,
सफल करने के लिए जन-द ष्टियां
क्यों न करता वह स्वयं निज स ष्टियाँ।"

माया का स्वरूप-

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार माया करे विधा तथा अविधा दो स्वरूप माने गये हैं। अविधा रूप में माया आत्मा और परमात्मा में भेद उत्पन्न करती है। विधा रूप में माया जगत की रचना करने वाली ब्रह्म की शक्ति है। वह जीव को संसार के भोगों से विरक्त करके ईश्वर की ओर उन्मुख करती है। 'साकेत' में माया के इन दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। लक्ष्मण निषाद राज को कहते हैं-

"जीव और प्रभु मध्य अड़ी माया खड़ी,
वह दुरात्मा और शक्तिशाली बड़ी
साधो उसको और मनाओ युक्ति से,
सखे समन्वय करो भक्ति का भुक्ति से।।"

'साकेत' में विद्या रूप माया को विशेष महत्त्व दिया गया है। राम-लक्ष्मण भरत तथा शुत्रघ्न ब्रह्म की चार मूर्तियाँ हैं और सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुति, कीर्ति ब्रह्म की शक्तिरूपणी चार माया मूतियाँ हैं-

"ब्रह्म की हैं चार जैसी मूर्तियाँ
ठीक वैसी चार-माया-मूर्तियाँ।।"

सीता राम की प्रणय प्राणा एवं कान्त काया मूर्तिमयी माया है-

"उन सीता को, निज मूर्तिमयी माया को
प्रणय प्राणा और कान्ति काया को।।"

राम मायापति भी कहाते हैं और विद्या रूपी माया अर्थात् सीता जी की कृपा से ही जीव जगत् के बन्धनों से मुक्त

होकर भगवद्-भक्ति में लीन होता है। विषाद्राज अपने उद्धार के लिए सीता जी कृपा की अभिलाषा करता है-

"गुह बोला कर जोड़ कि यह कैसी कृपा,
न हो दास पर देवि, कभी ऐसी कृपा।।"

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि साकेत में रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैतवाद-दर्शन को ग्रहण किया गया है। परन्तु रामानन्द की भाँति राम, लक्ष्मण, सीता के महत्त्व का प्रतिपादन नहीं किया गया है। साकेत की भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी देन अपना महत्त्पूर्ण स्थान रखती है। कवि ने प्राचीन के प्रति पूज्य-भाव और नवीन के प्रति उत्साह दिखाया है। अतः 'साकेत' में अतीत और वर्तमान का समन्वय हो गया है। 'साकेत' का दर्शन मध्यम मार्ग अपनाने के लिए प्रेरणा देता है। साकेत का कवि न तो संसार छोड़कर भागने को कहता है, न ही भोगों में लिप्त होने की सलाह देता है। कवि ने स्थान-स्थान पर आस्तिकता और ईश्वर में अपना विश्वास अभिव्यक्त किया है-

"ईश के इंगित के अनुसार,
हुआ करते हैं सब व्यापार।"

अस्तिकता के साथ ही साकेत में निष्काम कर्म का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। 'साकेत' में राम कर्म हेतु अवतार लेते हैं।

14. 'साकेत' में भारतीय संस्कृति-

संस्कृति का वास्तविक अर्थ क्या है ? इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। वस्तुतः संस्कृति की परिभाषा देना कठिन है। सामान्यतः इसका शब्दार्थ संस्कार से लगाया जाता है। यदि हम चाहें तो इसका विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं-"संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उनके प्राकृत राग द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है। यह परिमार्जन उसे अपनी स्वभावगत इच्छाओं द्वारा करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजिक जीवन की आन्तरिक मूल प्रव त्तियों का सम्मिलित रूप ही संस्कृति है। अतः इसको प्राप्त करने के लिए जीवन के अन्तराल में प्रवेश करना पड़ता है।

'साकेत' में शुद्ध भारतीय संस्कृति का दर्शन होता है। अब देखना यह है कि गुप्त जी ने किस प्रकार इसका निर्वाह किया है। हमें उसका अध्ययन धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक आदि द ष्टियों से करना होता है। साकेत के आदर्श चरित्र हैं-भरत, राम तथा प्रधान चरित्र हैं- उर्मिला। इस सभी में त्याग और अनुराग का योग है। उन्होंने स्वयं भी कहा है-"त्याग और अनुराग चाहिए बस।" इसके साथ-साथ हम यह भी देख सकते हैं कि गुप्त ने 'साकेत' की रचना करते समय गीता का विस्मरण नहीं किया है। वे कर्म में विश्वास करते हैं। उनके प्रत्येक पात्रक जीवन कर्म प्रधान हैं। यथा-

"माना पाप सभी भाग्य का भोग है,
किन्तु भाग्य भी पूर्व कर्म का योग है।"

उर्मिला की दुर्दैव और दुर्भाग्य पर विश्वास करती है-

"तूने यह क्या दूवैर्व किया,
आत्रास स्वप्न में भी न दिया,
कुछ शमन यत्न करते हम भी
है योग साध्य दुर्दम यम भी ?"

'साकेत' में व्रत, पूजा आदि का संकेत स्थान-स्थान पर मिलता है। यह भारतीय संस्कृति का आदर्श है। उर्मिला की माता भी स्वयं व्रत करती है और अपनी कन्याओं को गौरी पूजन के लिए भेजती है। शत्रुघ्न ने एक स्थान पर कहा है-

"होते हैं निर्विघ्न यज्ञ अब, जप समाधि तब पूजा पाठ
यश गाती है मुनि कन्याएं, कर व्रत सर्वोत्सव के ठाठ।"

साकेत में हमें सामाजिकता भी देखने को मिलती है। उस सामाजिक जीवन में भी भारतीय संस्कृति कूट-कूट कर

भरी है। उनके जीवन में सभी मर्यादित ही रहता है। मर्यादा का उल्लंघन कोई नहीं करता है। यही भारतीय आदर्श है-

"निज मर्यादा में किन्तु सर्दव रहे वे।।"

केवल इतना ही नहीं वे अपने हित के साथ-साथ दूसरों का हित भी अपेक्षित हो-

"केवल उनके लिए ही नहीं यह धरणी,
है औरों की भी भार-धरणी धारणी।।"

पारिवारिक जीवन के भी बड़े सुन्दर द श्य 'साकेत' में देखने को मिलते हैं। स्त्री-पुरुष का संबंध, भाई-भाई का सम्बन्ध, अपने आदर्श के रूप में यहाँ मिलते हैं। केवल रघु परिवार ही नहीं वरन् सम्पूर्ण साकेत समाज ऐसा ही है-

"एक तरफ के विविध सुमनों से खिले
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।"

प्रत्येक देश की अपनी नीतियां, प्राचीन प्रथाएं तथा अपने विश्वास होते हैं। इस सभी में उस देश की संस्कृति होती है। हमारे यहाँ धर्म के कई अंग माने गये हैं। वे प्रायः सर्वत्र मान्य हैं। क्योंकि प्रत्येक देश और काल में समान ही रहते हैं। 'साकेत' में उन सभी को उचित स्थान दिया गया है। राम में तो वे सभी मूर्तिमान हो उठे हैं। काम और लोभ का विग्रह भी पात्रों में मिलेगा। वे राज्य जैसी वस्तु को भी कुछ नहीं समझते हैं। यह है भारतीय आदर्श-

"और किस लिए राज्य मिले,
जो हो द्वारा-सा त्याज्य मिले।"

उर्मिला का आदर्श देखते ही बनता है-

"गरज उठी वह, नहीं नहीं पापी का सोना।
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना।।"

भारतीय संस्कृति के अनुसार पूज्य का श ंगार-वर्णन वर्जित है। इसी कारण सीता का जहाँ वर्णन किया गया है कवि का मस्तक स्वयं श्रद्धा और संकोच से झुक जाता है। उसके श ंकार का वर्णन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है। कवि ने कोमल तथा सूक्ष्म शब्दों का सीमित प्रयोग किया है-

"भाग सुहाग पक्ष में थे,
आँचल बद्ध कक्ष में थे।"

हमारे देश भारत में अनेक नदियों को पवित्र एवं महान् माना जाता है। भारतवासियों के हृदय में उनके प्रति अटूट श्रद्धा एवं प्रेम है। भारत वर्ष में जो कुछ महान् एवं सुन्दर है वह हमारे गौरव का प्रतीक है। गंगा, यमुना, सरयू, विंध्य हिमाचल सभी आदर योग्य हैं। इसका कारण है कि वे जड़ वस्तुएं नहीं हैं वरन् उनसे भारतीयों के हृदयों को प्रेरणा मिलती है। यथा-

"जय गंगे, आनन्द-तरंगे, कलरंगे
अमल अंचले, पुण्य जले, दिवसम्भवे।
सरस रहे यह भरत-भूमि तुमसे सदा,
हम सब की तुम एक चलाचल सम्पदा।"

संस्कारों के अतिरिक्त हमारे देश में कुछ प्रचलित परम्पराएँ भी हैं। 'साकेत' में इन प्रथाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। जैसें सती-प्रथा, स्वयंबर, अभिषेक आदि। पति की म त्यु के बाद भारतीय जीवन म त प्रायः हो जाता है। कौशल्या ने इसी भाव को प्रकट किया है। वे सती होने का प्रस्ताव भी करती हैं-

"धन्य वह राम निर्गत राग,
और सुचिता का अपूर्ण सुहाग।
अग्निमय है अब तुम्हारा नाम,
दग्ध हो जिसने स्वयं सब काम।"

'साकेत' में योग, शाप, सौगन्ध, शकुन आदि जैसी बातें भी देखने को मिलती हैं। सौगन्ध आदि से स्त्रियों की स्वाभाविक भीरूता का पता चलता है। कौशल्या कहती हैं-

"तो मुझे निज राम की सौगन्ध।"

× × ×

"तुम कहते हो पर मेरा दक्षिण नेत्र फड़कता है।"

'साकेत' में भी राजनैतिक आदर्श मिलता है। उसमें साम्यवाद, लोकतन्त्र आदि की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। उसमें बताया गया है कि लोकतन्त्र की स्थापना के लिए लोक सेवा की भावना का होना अनिवार्य है। राज्य राजा की सम्पत्ति नहीं वरन् प्रजा की धरोहर है। वहाँ वही होना चाहिए जो प्रजा चाहती है-

"वही हो जो कि समुचित हो सभा में।"

अपनी संस्कृति का प्रभाव तो सभी कवियों पर पड़ता है पर लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर जिन्होंने अपनी संस्कृति की रक्षा की है, वे गिने चुने कवि ही हैं। उनमें से मुख्य तुलसी, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त हैं।

15. हिन्दी काव्य में साकेत का स्थान-

गुप्त जी का जाति-प्रेम तथा देश-प्रेम किसी से छिपाया नहीं जा सकता। उन्होंने अपने देश के लिए अर्थात् देश स्वतन्त्र कराने के लिए अनेक बार जेल की यातनाएं सहन कीं। वे देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत थे। अतः उनको राष्ट्रीय कवि बनने का सम्मान भी प्राप्त हुआ। वे सही मायने में राष्ट्र के प्रतिनिधि थे। केवल इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। यह बात हम उनके सभी ग्रन्थों में पाते हैं, साकेत में तो विशेष रूप से। साकेत की रचना में उन्हें जिन बातों से प्रेरणा मिली थी-1. रामचरित 2.भारतीय जीवन के समग्र रूप से देखने की लालसा। इन्हीं दोनों को आधार भूमि बनाकर उन्होंने राष्ट्रीय जागरण का सन्देश दिया। उन्होंने निरन्तर उच्च आदर्शों का सन्देश देकर कुव त्तियों का तिरस्कार किया। इस भाँति उन्होंने साकेत में अपनी राष्ट्रीय भावना तथा राम भक्ति का समन्वय कर दिया।

"राम तुम्हें यह देश न भूले,
धाम धरातल जाय भले ही।
यह अपना उद्देश्य न भूले,
निज भाषा निज भाव न भूले।"

वस्तुतः 'साकेत' की कथा राम-भक्ति पर ही आधारित है। राम काव्य को गुप्त जी ने जीवन-काव्य का स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने भगवान राम के मर्यादित रूप की भी रक्षा की है जैसा कि आदि कवि बाल्मीकि तथा तुलसी ने किया। परन्तु उनके राम अवतार नहीं हैं। वे नर हैं और नरत्व में ही नारायणत्व का समावेश कर लेते हैं।

राम काव्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि बौद्धों के समय से अवतारवारवादी प्रथा का चलन हुआ। उसके पूर्व राम एक ऐतिहासिक वीर पुरुष ही थे। विष्णु पुराण में आकर राम के वैष्णव रूप की पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा हो गई। तत्पश्चात् रामानन्द ने भी राम के इसी स्वरूप का आलम्बन किया। हिन्दी काव्य क्षेत्र में तो तुलसी का काव्य ही एकमात्र रामकाव्य प्राप्त है। उनसे पूर्व एकाध कवि की ही रचना इस सम्बन्ध में मिलती हैं। अतः साकेत का स्थान निर्धारित करने के लिए उनकी तुलना मानस से करनी होगी।

तुलसी ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम का रूप प्रदान किया है। उनके राम अत्यन्त शील, अनन्त सौन्दर्य एवं शक्ति के सागर हैं, अर्थात् उन्होंने राम के विराट स्वरूप का दर्शन कराया है। तुलसी भक्ति के साधक थे। अतः वे मानस को एक धार्मिक काव्य की संज्ञा देते हैं। तुलसी का जीवन साधना के लिए था किन्तु गुप्त जी का जीवन स्वयं साधना था। अतः हम तुलसी जी व गुप्त जी की विचारधाराओं एवं भावनाओं में अन्तर पायेंगे। मानस के राम तो दुष्टों का नाश करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। उस युग की यही सबसे बड़ी मांग थी। उस समय केवल मात्र अध्यात्म से काम नहीं चल सकता था। मुसलमानों के समय यह बात भले ही ठीक समझी जाय। गुप्त जी का समय उनसे भिन्न था। उस समय की सबसे प्रमुख समस्या थी उचित ढंग से जीवन-यापन। अतः गुप्त जी में हमें मुक्ति और भुक्ति का ज्ञान काव्य दिखाई देता है।

केवल मानव-जीवन में ही नहीं राजनैतिक क्षेत्र में भी इसी शक्ति की साधना की गई है। उस समय जीवन एक बन्दी के समान था। बड़ी कठिनाईयाँ थीं-

"भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह बिलख रही व्याकुल मन में।।"

प्रत्येक भावना, भाषा शैली को आत्मसात् करने वाला गुप्त जी के समान कोई नहीं है। एक बात और विशेष रूप से गुप्त जी में देखने को मिलती है वह यह कि वे किसी सम्प्रदाय या वाद से बंधे नहीं हैं। जिस आदर्श को उन्होंने भारतीय संस्कृति अथवा परम्परा के अनुकूल समझा ओर उसी को अपना लिया। तुलसी ने जिस समन्यत्मक भावना को मानस में धार्मिक क्षेत्र में अपनाया, गुप्त जी ने साकेत में उसी भावना को भौतिक जीवन में प्रयुक्त किया है। उन्होंने जहाँ पारिवारिक एवं नैतिक आदर्श अपनी रचनाओं में प्रतिष्ठित किये हैं वहाँ त्यागियों, वैरागियों को बुरा-भला कहा है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है-

"त्याग-त्याग करते हैं हम सब,
क्या है किन्तु हमारे पास ?"

केवल इतना ही नहीं गुप्त जी ने काव्य की त्रुटियों को दूर करने का भी प्रयत्न किया है। द्विवेदी युग में कविता में कल्पना को कोई स्थान नहीं था। उस समय कविता वर्णन प्रधान थी। दूसरी ओर छायावादी कवि कल्पना की मुक्त उड़ान भर रहे थे, जिस पर कोई नियन्त्रण नहीं था। परन्तु गुप्त जी ने संयमित कल्पना का समावेश कर काव्य की प्राचीन धारा में एक मोड़ ला दिया। इस द ष्टि से भी गुप्त जी की बौद्धिक चेतना तुलसी से अधिक द ढ़ है-

तुलसी के राम विरोधियों से कोई सहानुभूति नहीं रखते जब कि गुप्त जी इनसे कोई द्वेष नहीं रखते। वे मानव को मानव समझते हैं तथा यही इस युग की विशेषता है। एक स्थान पर उन्होंने तुलसी की वन्दना करते हुए कहा है-

"तुलसी, यह दास कृतार्थ तभी-
मुँह में हो चाहे स्वर्ण न भी,
पर एक तुम्हारा पत्र रहे
जो निज-मानस-कवि-कथा कहे।"

जहाँ तक प्रतिनिधि कवि का प्रश्न है वे बहुत समय से ही हमारा प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें पुराना बहुत है। परन्तु नया भी कम नहीं है। ये एक विचित्र बात है कि वे पौराणिक बातों से प्रेम करते हुए भी उनको वैज्ञानिकता प्रदान करते हैं। आज के वैज्ञानिक युग की यही पुकार है। अतः हम कह सकते हैं कि गुप्त जी पिछले 40 वर्षों से कविता का प्रतिनिधित्व करते आ रहे हैं।

हिन्दी काव्यों में साकेत का स्थान-

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में जीवन-काव्यों की गणना न के बराबर है। हम इस द ष्टि से केवल 'कामायनी' व 'प्रियप्रवास' को ही 'साकेत' के समकक्ष रख सकते हैं। प्रिय-प्रवास की राधा और साकेत की उर्मिला में बहुत कुछ साम्य है। दोनों ही विरह व्यथा से पीड़ित हैं।

कामायनी की कथा परन्तु पौराणिक न होकर तटिषक है। उसके सम्मुख 'साकेत' में मानवत्व कहीं ऊँचा ही ठहरता है। इन द ष्टियों से साकेत कहीं ऊँचा ठहरता है और हमारे निकट है। साकेत आरम्भ से ही एक जीवन काव्य है। उनमें प्राचीन विश्वास और नवीन का समन्वय दोनों हैं। अतः हम कह सकते हैं कि साकेत का हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान है।

साकेत का कथानक त्रेता-युग का है। परन्तु राम, सीता, उर्मिला आदि पात्र अपने परम्परागत परिवेश को सुरक्षित रखते हुए भी आधुनिक भावों की व्यंजना करते हैं। साकेतकार आधुनिक भावों की अभिव्यंजना चित्रण करता है। परन्तु प्राचीन परम्परागत भावों को नहीं छोड़ता। इस प्रकार वह साकेत में प्रगति व परम्परा का स्वागत करता है। साकेत में आधुनिक युग की राष्ट्रीयता मुखरित होती है। राम-रावण के युद्ध का समाचार सुनकर अयोध्या वासियों की रण-सज्जा, वीर सिंहनी के रूप में उर्मिला का उत्साह, साकेत में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित करता है।

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा प्रणीत 'साकेत' में प्राचीन और नवीन भावधाराओं का संगम विद्यमान है। साकेतकार को भारत

के गौरवमय अतीत पर अभिमान है। अतः उसने कथावस्तु का चयन भी भक्तिकालीन काव्यधारा से किया है। परन्तु समय चक्र के सतत् प्रवाहयान होने के साथ-साथ हमारी परम्पराओं और मान्यताओं में परिवर्तन आ जाता है। युगानुकूल आकार-प्रकार ग्रहण कर लेती हैं। यह नूतनता भी साकेत में ग्राह्य रही है। इस प्रकार यह काव्य ग्रन्थ प्राचीनता और नवीनता का मणिकांचन संयोग लेकर उपस्थित हुआ है। कवि ने यह समन्वय भाव-पक्ष और कला पक्ष दोनों में ही किया है। डॉ० गोविन्द राम शर्मा का मत है-

"साकेत प्राचीन युग की देन अवश्य है पर साथ ही उसमें आधुनिक युग की नूतन भावनाएं भी स्थान-स्थान पर मुखरित हो उठती हैं।"

आचार्य रामचन्द्र ने लिखा है-

"प्राचीन के प्रति पूज्य भाव और नवीन के प्रति उत्साह दोनों इसमें हैं।"

गुप्त जी ने साकेत को भक्तिकालीन कवि तुलसी के विचारों की आधारशिला पर ही खड़ा किया है।' परन्तु इसके साथ ही यह भी निश्चित है कि आधुनिक युग की यत्र-तत्र अभिव्यंजना की है। डॉ० कमलकांत पाठक साकेत की आधुनिकता को अविकसित और नवीनता का प्रारम्भिक रूप मानते हैं। उनका कहना है-

"इसमें न तो आधुनिक छायावादी कवियों का कल्पना लोक है न अन्तश्चेतना वादियों की दुःखद प्रतीकात्मक शैली, न प्रयोग्रेवाकदयो से आहत व्यक्तित्व की अति यथार्थवादी उक्तियां हैं और न प्रगतिवादियों की सामाजिक चेतना प्रधानता।"

गुप्त जी ने साकेत में राम के जिस मर्यादावादी लोकनायकत्व का रूप प्रस्तुत किया है तथा उर्मिला की गौरव-गरिमा की रक्षा की है। वह आधुनिक विचारधारा का कोई भी कवि नहीं कर सकता था। डॉ० पाठक के शब्दों में-

"आधुनिक युग के विकास क्रम में एक ऐसी स्थिति आयी थी केवल जिसमें साकेत रचा जा सकता था। यह साहित्य के इतिहास में पुनरुत्थान के नाम से सुप्रसिद्ध है। कवि के संस्कार ने राम को मानवता का आदर्श माना, रविन्द्र के प्रभाव ने उर्मिला को नया जीवन दिया। गाँधी जी के व्यक्तित्व ने उसके जीवन-दर्शन को स्पष्टता प्रदान की। आचार्य द्विवेदी जी ने साकेत के अंग को सुन्दर बनाने में कुछ भी उठा न रखा।"

16. 'साकेत' का नायकत्व-

'साकेत' में नायकत्व का प्रश्न विवादग्रस्त है। कुछ राम को साकेत का नायक मानते हैं, कुछ लक्ष्मण को, कुछ भरत तो कुछ नायक को गौरव प्रदान करते हुए उर्मिला के पक्ष में अपना मत प्रकट करते हैं-

"मैं सोचता हूँ कि क्या यह आवश्यक है कि काव्य में एक पात्र को ही प्रधानता दी जाये ? अगर रसानुभूति में बाधा नहीं पड़ती, भावोद्रिक व भावों की आनन्दमूलक अन्विति में कमी नहीं आती तो अधिक पात्रों की प्रधानता में कोई हानि नहीं।"

अस्तु ऐसी परिस्थिति में 'साकेत' के नायकत्व विस्तार से विवेचन अपेक्षित है। किसी एक पात्र के पक्ष में अपना निर्णय देने से पूर्व नायक के लक्षणों पर विचार करना उचित होगा।

प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने नायक के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है। जिसके अनुसार महाकाव्य या नाटक का नायक शरीर, हृदय व मस्तिष्क के समस्त गुणों से सम्पन्न, चरित्रवान, तेजस्वी, पराक्रमी और वैभवशाली होना चाहिए। उपर्युक्त गुणों की कसौटी पर नायक पद के लिए पुरुष पात्रों में राम, भरत एवं लक्ष्मण तथा नारी पात्रों में उर्मिला सामने आते हैं।

क्या राम नायक हैं ? राम साकेत के एक प्रधान पुरुष पात्र हैं। अनेक विद्वानों ने उन्हें नायक पद पर प्रतिष्ठित किया है। डॉ० प्रतिपाल सिंह ने लिखा है, गुप्त जी अपने आराध्य राम को भुला न पाये और उन्हें अनायास ही प्रमुख आसन पर ला बैठाया।" श्री त्रिलोचन पाण्डेय ने भी स्पष्ट रूप से घोषित किया है कि राम साकेत के नायक हैं।"

नायक के समस्त गुणों से पूरित होते हुए भी राम साकेत के नायक नहीं हैं। नायक के लिए वांछनीय है कि वह कथा में प्रारम्भ से अन्त तक रहे। दूसरा फल का भोक्ता हो। साकेत में फलागम की स्थिति है-उर्मिला का अश्रु विमोचन करना। जो राम से सम्बन्धित नहीं है। साकेत का अन्त भी राम के राजनीतिक से न होकर उर्मिला-लक्ष्मण पुनर्मिलन से होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भिक भाग आठ सर्गों में राम का महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदर्शित किया गया है। शेष परवर्ती सर्गों में नहीं। इस सम्बन्ध में डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने लिखा है-"उर्मिला के साथ-साथ राम का नायकत्व भी पहले आठ सर्गों में दिखाई देता है। शेष चार

सर्गों में पुनः राम की अपेक्षा उर्मिला ही अधिक नेत त्व करती दिखाई देती है।"

निस्संदेह राम 'साकेत'` अत्यन्त गौरवपूर्ण चरित्र होते हुए भी नायक वही कही जा सकते हैं। राम-कथा तो गुप्त जी ने ही लिखी और राम के चरित्र में जीवनादर्श की चरम चरितार्थता दिखाई भी, पर इसी कारण राम कथा-नायक नहीं हैं। यदि राम नायक है तो रावण-वध और राज्यारोहन की घटनाएं भी होनी चाहिए। साकेत का आरम्भ और अन्त लक्ष्मण तथा उर्मिला के वार्तालाप से होती है। अतः वे साकेत के नायक नहीं हैं।

क्या भरत नायक हैं ? भरत भी साकेत का महत्त्वपूर्ण चरित्र है। वे नायक के गुणों से विभूषित हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भरत का नायकतत्व स्वीकार करते हुए लिखा है-"महाकाव्य की पद्धति के विरुद्ध साधु भरत को नायक और वियुक्ता उर्मिला को नायिका बनाया है। यह एक साहित्यिक मौलिकता ही नहीं इसमें सम्पूर्ण जीवन दर्शन क्रातिकारी झलक भी दिखाई देती है।"

भरत साकेत के नायक नहीं हैं। उनकी कथा महाकाव्य में प्रासंगिक है, अधिकाधिक नहीं। फल की प्राप्ति भी उन्हें नहीं मिलती। काव्य में उनका आगम सप्तम सर्ग से होता है।

क्या लक्ष्मण नायक हैं ? कुछ लोगों ने लक्ष्मण को नायक बताया है। लक्ष्मण का चरित्र गौरव-गरिमा से मण्डित है। विविध गुणों से वे आपूर्ण हैं। राम के ऊपर सर्वस्व न्यौछावर करना उनके चरित्र का गौरव है। उनके कर्त्तव्यपालन का आदर्श निःसंदेह अनूठा है। राम के लिए उनका कष्टों को झेलना तथा सुखोपभोगों से विमुख होना उन्हें धीर ललित की अपेक्षा धीरोदात्त प्रकट करता है। यत्र-तत्र लक्ष्मण के वीरतत्व की पुष्टि भी साकेत के विविध प्रसंगों के माध्यम से हुई है।

"प्रस्तुत काव्य में उर्मिला नायिका है और उसके हर्ष, विषाद, प्रेम और परिताप के एकमात्र आधार लक्ष्मण हैं। कथावस्तु के आरम्भ और अन्त में उन्होंने वस्तुबन्ध का श्रीगणेश और उपसंहार किया है। मध्य में उनकी अनुपस्थिति ही उनका महत्त्व व्यंगित करती है। वे प्रेमी, त्यागी और तपस्वी हैं, केवल वीर चरित्र नहीं। काव्य के प्रमुख कार्य मेघनाथ वध का सम्पादन उन्हीं ने किया। उन्हीं के कारण साकेत की ओर औषधि लेने हनुमान आये तथा वहाँ सेना सजाई गई। प्राधान्य की द ष्टि से वास्तविक नायकत्व उर्मिला का है औपचारिक नायकत्व लक्ष्मण का।" अस्तु स्पष्ट है कि साकेत के नायक राम हैं-डॉ० कमल कान्त वर्मा।

उर्मिला ही कथानक की नायिका है-'साकेत' में वास्तविक नायक बनने की क्षमता उर्मिला में है। साकेत एक नायिका प्रधान काव्य है। उर्मिला की महत्ता ग्रन्थ में सबसे अधिक है। उसका चरित्र ही सबसे प्रधान है। यद्यपि कई विद्वानों ने उर्मिला को नायिका स्वीकार करने में भी आपत्ति की है और कहा है कि उर्मिला तो नवम् सर्ग से ही नायिका प्रतिष्ठित होती है। किन्तु यह मत समीचीन नहीं है। उर्मिला का महत्त्व तो साकेत के प्रारम्भ से ही है। प्रथम सर्ग का आरम्भ उसी से होता है। द्वितीय सर्ग में कवि ने उर्मिला से लक्ष्मण के साथ भरत विषयक वार्तालाप की अवतारणा भी सम्भवतः इसीलिए की कि वह कथासूत्र से विच्छिन्न न हो जाये। त तीय सर्ग में राम वन गमन में सम्पूर्ण ध्यान रखने के कारण कवि उर्मिला पर ध्यान न दे सका, किन्तु चतुर्थ सर्ग में वन्य विरहिणी उर्मिला की विरह-व्यथा का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित करके उसने कमी पूरी कर दी। पंचम सर्ग में सम्पूर्ण रूप से राम के वन-गमन का चित्र अंकित है। अतः उर्मिला पर कवि ने ध्यान नहीं दिया। किन्तु छठे सर्ग के प्रारम्भ से ही उर्मिला की दयनीय दशा का चित्रण है। दशरथ के दिवंगत होने पर भी वह शोक विह्वल हो कैकेयी से प्रश्न करती है-"माँ कहां गये वे पूज्य पिता ?" सातवें सर्ग में वशिष्ठ द्वारा सूक्ष्म संकेत मात्र दिये गये हैं। आठवें सर्ग में भी उर्मिला का कवि ने स्मरण किया-

"देवर के शर की अनी बनाकर टांकी।
मैंने अनुजा की एक मूर्ति है आंकी।।"

चित्रकूट में उर्मिला-लक्ष्मण का क्षणिक मिलन भी साकेत में अनुपम भावपूर्ण स्थल है। तत्पश्चात् नवम् सर्ग के अन्त तक तो वह महाकाव्य पर छाई ही हुई है। अतः स्पष्ट है कि वह साकेत की नायिका है।

निष्कर्ष :-

साकेत के नायकत्व के सम्बन्ध में निम्न मत का निर्णय सत्य है-

"वास्तव में उर्मिला ही इस महाकाव्य की प्रधान स्त्री पात्र है। साकेत में होना भी ऐसा ही चाहिए था।" उर्मिला की प्रधानता को किसी प्रकार भी अस्वीकारा नहीं जा सकता। "उर्मिला ही साकेत का नायक पद विभूषित करती है और स्पष्ट

शब्दों में वह Lady Hero है।-महिला नायक (Heroin) या नायिका नहीं।" -डॉ० शिवबालक शुल्क।

प्रधान्य की द ष्टि से वास्तविक नायकत्व उर्मिला का है और औपचारिक नायकत्व लक्ष्मण का।" -डॉ० कमलकान्त वर्मा

17. साकेत में प्रकृति-चित्रण-

मानव को प्रकृति से मोह होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि प्रकृति-चित्रण की प्रव त्ति प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। विभिन्न कवियों ने अपनी रूचि के अनुसार प्रकृति-सौन्दर्य को अपनाया और उसे काव्य में स्थान दिया। केवल स्थान ही नहीं दिया वरन् कहीं-कहीं तो प्रकृति-चित्रण काव्य-सौन्दर्य का आधार बनकर रह गया। प्रकृति सौन्दर्य के पुजारी कवि पंत सम्पूर्ण स ष्टि को ही सौन्दर्यमयी मानते हैं। गुप्त जी उसके यथालक्ष्य रूप को ही देखते हैं।

गुप्त जी ने 'साकेत' में प्रकृति` पूर्ण स्थान दिया। यह बात अवश्य है कि गुप्त जी प्रकृति को उसके वास्तविक रूप में ही देखते हैं। 'पंचवटी' आदि अन्य काव्यों में भी प्रकृति-चित्रण विशेष रूप से देखने को आता है। 'पंचवटी' तो प्राकृतिक सौन्दर्य से अनुप्रमाणित ही उठी है। ठीक इसी भाँति 'साकेत' भी प्राकृतिक-सौरभ से ओत-प्रोत है। साकेत महाकाव्य में जहाँ मानव-जीवन साकार हो उठा है वहाँ प्रकृति भी अपने नवीन रूप को लेकर प्रस्फुटित हुई है। इस प्रकार के अनेक स्थल 'साकेत' में मिलते हैं-

"कुछ-कुछ अरुण सुन री कुछ-कुछ
प्राची की अब भूषा थी।
पंचवटी की कुटी खोलकर,
खड़ी स्वयं क्या उषा थी ?"

हिन्दी साहित्य में पूर्ण क्रांति होने के पश्चात् ही वर्तमान युग का सूत्रपात हुआ था। उसका प्रभाव वर्तमान साहित्य पर भी पड़े बिना न रहा। उस समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति अपनी रूचि दिखाई। परन्तु वे भी प्रकृति के सर्वांगीण रूप का चित्रण करने में असमर्थ रहे। उन्होंने मानव प्रकृति के अन्तः सौन्दर्य की ओर तो अपनी जागरूकता प्रदर्शित की परन्तु मानवेत्तर प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा के प्रति ये सदैव उदासीन रहे। उन्होंने गंगा-यमुना आदि के प्राकृतिक द श्यों का वर्णन किया है। परन्तु यह इतना आकर्षक व मधुर प्रतीत नहीं होता। गुप्त जी ने इस अभाव की पूर्ति की है। यद्यपि वे यथातथ्य रूप में प्रकृति को देखते हैं फिर भी वे सुषमा के प्रतीक बन जाती है।

मानव-जीवन को साकार बनाने में गुप्त जी ने समय-समय पर प्रकृति का आश्रय लिया है। उसके बिना ऐसा प्रतीत होता है मानो वह वर्णन अधूरा ही रह जाता है। साकेत में जिस समय उर्मिला के विरह का वर्णन किया है उस समय उन्होंने प्रकृति के चित्रों को उपस्थित किया है। उन्होंने शरद् ऋतु में दिखाई देने वाले खंजन पक्षी की बड़ी तुलना की है। उसको देखकर विरहिणी को अपने प्रियतम का आभास होने लगता है। वह सोचने लगती है कि उसके प्रियतम ने जब अपने नेत्र इधर फेरे हैं तो सम्भव है शीघ्र ही उनके दर्शन भी हों तथा इस भाव के उदय होने पर उसके हृदय को कुछ सांत्वना भी मिलती है-

"निरखि सखी ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।
फैला उनके मन का आतप, मन से सर सरसाये,
घूमे वे उस ओर वहाँ, ये हँस यहाँ उड़ आये।
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुस्काये।
फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बन्धूक सुहाये।
स्वागत, स्वागत, शरद् भाग्य से मैंने दर्शन पाये।
नभ ने मोटी वारे, लो ये अश्रु अर्ध्य भर लाये।।

केवल खंजन पक्षी ही नहीं इस प्रकार के अन्य बहुत से पक्षियों को लेकर कवि की कल्पना साकार हो उठी है। इस प्रकार के अनेक भाव साकेत में देखने को मिलते हैं। कभी वह कोयल की ढाढस बंधाती है तो कभी वह चक्रावाक पक्षी के, कभी वह लता को अवसर से लाभ उठाने के लिए प्रेरित करती है तो कभी कली को शिक्षा का पाठ पढ़ाती है। इतना ही नहीं

शिशिर ऋतु में मक्खी व मकड़ी भी उसकी सहानुभूति के पात्र बनते हैं।

"सखि न हटा मकड़ी को, आई हो वह सहानुभूति वशा,
जा लगता मैं भी तो, हम दोनों की यहाँ समान दशा।"

गुप्त जी की विरहिणी उर्मिला प्रकृति की सम्पूर्ण वस्तुओं से सहानुभूति प्रदर्शित करती है। जबकि अन्य कवियों की विरहणियां प्रकृति से कोई तादात्म्य नहीं रखती वरन् उन्हें कोसती हैं और हेय द ष्टि से देखती हैं। प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य के साथ तादात्म्य की स्थापना अभिनव युग की देन है तथा गुप्त जी इसमें पूर्ण रूप से खरे हैं। जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है।

प्रकृति का सामंजस्य गुप्त जी की अपनी विशेषता है। ऐसा करते समय वे निर्बाध रूप से अपने हृदय को पाठकों के सामने रख देते हैं। इसमें गुप्त जी के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। कभी वे छोटी वस्तु को बड़ा रूप प्रदान करते हैं तो कभी बड़ी को छोटा बनाने में नहीं हिचकिचाते। इस प्रकार के अनेक द श्य हमें साकेत में देखने को मिलते हैं। एक स्थान पर उन्होंने सम्पूर्ण अयोध्या नगरी को नीलकमल में सोने वाले भ्रमर के समान चित्रित किया है। इस स्थल को पढ़कर कवि की समयानुकूल भावनाओं का बोध होता है। अयोध्या नगरी को तमसाच्छन्न चित्रित करना तथा उसकी तुलना काले भ्रमर से करना इस बात का द्योतक है कि जो अयोध्या नगरी दीपमालिकाओं से दीप्तीमान रहा करती थी वह आज सदैव के लिए सुप्त हो गई है-

"तन में क्षिति-लोक गुप्त यों
अलि नीलोत्पल में सुप्त ज्यों।"

गुप्त जी का साकेत इस प्रकार के अनेक प्रकृति चित्रों से परिपूर्ण है। इनके द्वारा 'साकेत' और सुरम्य एवं आकर्षक बन गया है। प्रकृति से मानव जीवन का तादात्म्य स्थापित करके उन्होंने काव्य जगत में एक नवीन प्रेरणा का सूत्रपात किया है। प्रकृति-सुन्दरी जो पहले अपेक्षित समझी जाती थी, अब मानव उसे समवयस्का समझने लगा है। प्रकृति-चित्रण में गुप्त जी का अद्वितीय स्थान है।

गुप्त जी ने साकेत के नवम् सर्ग में जो षट्ऋतु का वर्णन किया है उसमें षट्ऋतु वर्णन रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव है।

परन्तु वह प्रचलित परम्परा का षिष्टपेषण मात्र नहीं है। विभिन्न ऋतुओं का क्रमानुसार परिवर्तन विरहिणी उर्मिला के अन्तरतम पर किस प्रकार अपना प्रभाव अंकित करता है, पाठकों को इसका दिग्दर्शन कराना कवि का अभीष्ट है। ऋतुओं के बदलने पर उस ऋतु विशेष की विगत संयोगकालीन स्म तियां उर्मिला को व्याकुल बना देती है। यहाँ कवि की ऋतुवर्णन सम्बन्धी मौलिकता है। विभिन्न ऋतुओं का वर्णन द्रष्टव्य है।

ग्रीष्म ऋतु-

"आकाश जाल सब ओर तना,
रवि तन्तुदाय है आज बना।
करता पद-प्रहार वही,
मक्खी-सी भिन्ना रही मरी।"

वर्षा ऋतु-

"कुलिश किसी पर कड़क रहे हैं,
आली, तोयद तड़क रहे हैं।
कुछ कहने के लिए लता के,
अरुण अधर वे फड़क रहे हैं।
मैं कहती हूँ-रहें किसी के,

हृदय वही जो धधक रहे है।
अटक-अटक कर, भटक भटक कर,
भाव वही जो भड़क रहे हैं।।"

शरद् ऋतु-

"निरख सखी से खंजल आये,
फेरे उन में मन रंजन नयन इधर मन भाये
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बधूक सहाये
स्वागत, स्वागत शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये।।"

हेमन्त ऋतु-

"कम्बल ही सम्बल है अब तो
ले आसन ही आज पुनीत,
आया वह हेमन्त दयाकर,
देख हमें संतप्त सभीत।"

शिशिर ऋतु-

शिशिर, न फिर गिरि-वन में,
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में।
कितना कम्पन्न तुझे चाहिये, ले मेरे इस तन में ?
सखी कह रही, पांडुरता का क्या अभाव आनन में?"

वसन्त ऋतु-

"देखूँ मैं तुमको सविलास,
खिल सहस्त्र दल, सरस, सुवास !"
अतुल अम्बुकुल-सा अमल भला कौन है धन्य ?
अम्बुज, जिसका जन्म तू धन्य, ध्रुव धन्य।"

निष्कर्ष :-

साकेत में प्रकृति-चित्रण के विविध रूपों का अंकन हुआ तो अवश्य है परन्तु कवि का मन बाह्य प्रकृति-चित्रण की अपेक्षा मानव प्रकृति के चित्रण में अधिक रमा है।

नवम् सर्ग में उर्मिला के विरह वर्णन में प्रकृति उद्दीपन रूप में उपस्थित हुई है। षट्ऋतु वर्णन रीतिकालीन परम्परा-युक्त होने पर भी मौलिकता व नवीनता से युक्त है।

कामायनी

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक—124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

व्याख्या खण्ड (क)

अध्याय 1 श्रद्धा 5

अध्याय 2 इड़ा 34

अध्याय 3 रहस्य 55

आलोचना खण्ड (ख)

अध्याय 4 ऐतिहासिकता एवं कल्पना 75

अध्याय 5 भाव पक्ष 80

अध्याय 6 कला पक्ष 85

अध्याय 7 महाकाव्यत्व 89

अध्याय 8 आधुनिक संदर्भ 94

अध्याय 9 सौन्दर्य बोध 106

अध्याय 10 समरसता 117

अध्याय 11 अंगीरस 127

अध्याय 12 दार्शनिकता 132

अध्याय 13 रूपक 141

अध्याय 14 प्रकृति-चित्रण 145

आधुनिक हिन्दी कविता

पूर्णांकः 100

समयः 3 घंटे

जयशंकर प्रसाद

व्याख्या खण्ड (क)

अध्याय 1 श्रद्धा

अध्याय 2 इड़ा

अध्याय 3 रहस्य

आलोचना खण्ड (ख)

अध्याय 4 ऐतिहासिकता एवं कल्पना

अध्याय 5 भाव पक्ष

अध्याय 6 कला पक्ष

अध्याय 7 महाकाव्यत्व

अध्याय 8 आधुनिक संदर्भ

अध्याय 9 सौन्दर्य बोध

अध्याय 10 समरसता

अध्याय 11 अंगीरस

अध्याय 12 दार्शनिकता

अध्याय 13 रूपक

अध्याय 14 प्रकृति-चित्रण

खण्ड क: व्याख्या

त तीय सर्ग

श्रद्धा

मनु एकांत जीवन की विरक्ति से क्लांत हैं, उसी समय उनके जीवन में अचानक नाटकीय ढंग से श्रद्धा प्रविष्ट होती है। गंधर्व देश निवासिनी, पिता की प्रिय पुत्री भ्रमण के लिए निकली हुई थी। प्रकृति की रमनीयता के दर्शन कर रही थी। अचानक जल प्लावन हुआ। उसके पश्चात् भटकते हुए वह मनु के पास पहुंची।

नाटकीय प्रवेश करने वाले के मनु से पूछे जाने वाले प्रश्न भी कम नाटकीय नहीं हैं जिसमें वह मनु का परिचय जानना चाहती है। मनु के ओजपूर्ण व्यक्तित्व से वह अत्यधिक प्रभावित है। मनु अपने असहाय जीवन की करुण कथा से उसको अवगत कराते हैं। मनु के स्वरों से निद्रा की खुमारी, थकावट का आलस्य जीवन के प्रति निराशा और विरक्ति के भाव व्यक्त होते हैं।

श्रद्धा मनु को उत्साहित करती है। मनु को प्रेरणा देते हुए कहती है - जीवन अमूल्य है, व्यर्थ गंवाने के लिए नहीं है, तुम में अपार शक्ति है, तुम्हारे समक्ष प्रकृति का अति रमणीय व्यापक विस्तार है। अपनी शक्ति को पहचानो, निराशा से मुक्ति पाओ, जीवन पथ पर निर्भयता एवं उत्साह से अग्रसर हो, स्वतंत्रता एवं सफलता तुम्हारी अनुगामी बनेगी।

श्रद्धा की सशक्त प्रेरणा मनु को अत्यधिक प्रभावित करती है, उनमें स्फूर्ति का संचार होने लगता है किन्तु वह स्फूर्ति भी मनु को निराशा से मुक्त कराने में असफल रहती है। उनका कहना है कि मैंने प्रलय के द श्यों से जीवन की क्षणभंगुरता का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया है। सफलता मात्र कल्पना का नाम है।

श्रद्धा को यह समझने में देर नहीं लगती कि मनु की इस विरक्ति में स्थायित्व नहीं है। प्रलय की प्रतिच्छाया उन्हें कर्म से भगाने में प्रयत्नशील है। इसलिए वह मनु को दुख-सुख के क्रमिक विकास की अवस्था से पूर्ण रूपेण परिचित कराती है। मनु के अकेले पन का अनुभव कर, अवसादित जीवन की विरक्ति से भली-भांति परिचित होकर श्रद्धा मनु की सहायिका बन जाती है तथा प्रेम और ममता का दान देती है। मनु की सहायिका बनने में वह किंचित मात्र संकोच नहीं करती। मनु का मन नवीन उत्साह से भर जाता है।

प्रसाद ने श्रद्धा के बाह्य तथा आंतरिक दोनों सौदंर्यों का वर्णन किसी विशिष्ट क्रम में नहीं अपितु प्राचीन परम्परा को आधुनिकता में समन्वित करके किया है। मानसिक सौंदर्य के अभाव में शारीरिक सौंदर्य का कोई महत्व नहीं है। इसी द ष्टि से प्रसाद ने बाह्य सौंदर्य निराशा मुक्त कराने हेतु श्रद्धा की कोमल वाणी में अदम्य विश्वास एवं अपूर्व शक्ति है। श्रद्धा मानवता की सदैव आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति की कामना करती हें श्रद्धा का यही संदेश है कि भयंकर बाधाएँ मानवता को नष्ट करने में कभी भी सफल न हों। मानव शक्तिशाली एवं विजयी बने।

विश्व में सुख-दुख की विषमता ही स ष्टि क्रम को अग्रसारित करती है। दार्शनिक भाषा में इसी को समरसता कहते हैं। आर्यो के भोग एवं कर्मवाद के सिद्धांत का श्रद्धा प्रतिपादन करती है। मनुष्य को दुख से उद्विग्न एवं सुख से आंदोलित नहीं होना चाहिए। सागर ऊपर से विषम तथा अन्दर शांत है।

श्रद्धा को पूरे सर्ग में पुल्लिंग रूप में प्रदर्शित किया गया है। कथोपकथन से कथा विकसित हुई है। श्रद्धा का दूसरा नाम कामायनी हैं कामगोत्रजा होने से कामायनी है।

नायिका श्रद्धा मनु के निराश एवं हताश जीवन में प्राण फूंक देती है। अवसाद के अंधकार को दूर कर जीवन के आलोक में अग्रसर करती है तथा अपनी ओर से पूर्ण सहयोग हेतु वचन बद्ध हो जाती है। मनु की सफलता का श्रेय श्रद्धा को है। श्रद्धा का व्यक्तित्व प्रसाद के व्यक्तित्व के अनुकूल है।

स ष्टि सुख-दुख के कारण ही विकास मान है इसलिए किसी को भी दुखों से घबराकर जीवन से भागना नहीं चाहिए। श्रद्धा कवि के व्यक्तित्व की प्रतीक एवं कवि-जीवन की प्रतिमूर्ति है। श्रद्धा केवल प्रेम की दुहाई देकर मनु की निराशा दूर नहीं करती

अपितु प्रबल तर्कों के आधार पर मनु को पुनः जीवन के प्रति प्रव त करती है। प्रकृति की परिवर्तनशीलता की बात कहती है इसलिए श्रद्धा ह्रदय एवं बुद्धि दोनों का प्रतीक है।

श्रद्धा की प्रेरणात्मक एवं उपदेशात्मक सभी बातें सुनने के बाद जब मनु को दुखों से मुक्ति नहीं मिलती तब श्रद्धा उन्हें अपना सहयोग देने को उद्यत हो जाती है। वह कहती है, "मुझे तुम्हारे सहचर बन उऋण होना चाहिए।" दया माया एवं ममता का दान सदैव हेतु मनु को देती है। क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास है कि उसके सहयोग से, मधुर उपचार से मनु का जीवन मंगलमय हो सकता है। उसकी यह कामना है कि मनु नवीन संस्कृति की नींव डालें तथा अमिट सभ्यता का प्रवर्तन करें। उसके संदेश में अदम्य साहस, अगाध विश्वास तथा अबोध प्रेरणा है।

श्रद्धा मानव-जाति की कल्याणमयी भावना है। मानव के मंगलमय उत्थान की यह कल्पना वास्तव में स्प हनीय एवं साहसपूर्ण है।

व्याख्या

"कौन तुम ! संस ति-जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक?
मधुर विश्रांत और एकांत
जगत का सुलझा हुआ रहस्य
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य !"

शब्दार्थः संस ति जलनिधि = संसार रूपी सागर। माण = मनु। निर्जन = सूनापन, एकांत। प्रभा = कांति। अभिषेक करना= तिलक करना, सुशोभित करना-लक्षणा, मधुर आकर्षक। विश्रान्त = थके हुए।

प्रसंगः हिंदी साहित्य के आधुनिक कालीन छायावादी युग के मूर्धन्य महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' महाकाव्य की रचना की जिसके लिए न भूतो न भविष्यत् कहा गया है। कामयानी समस्त मानव जीवन का विकास प्रस्तुत करती है। पंद्रह सर्गों में विभाजित यह अद्वितीय महाकाव्य है।

'श्रद्धा' कामयानी का त तीय सर्ग है। प्रस्तुत अंश उसकी की अवतारना है जिसमें श्रद्धा विरक्त मनु से प्रश्न करती है। श्रद्धा का अर्थ आत्म विश्वास, और इसी से मानव चरित्र का विकास संभव हुआ है। मनु समस्त कार्यों से विरक्त हैं। उनके समक्ष कोई लक्ष्य या उद्देश्य नहीं है। मनु स्वकार्य क्षेत्र में श्रद्धा के साथ प्रव ष्ट होते हैं। श्रद्धा प्रेरणा का प्रतीक है। कवि भारतीय नारी के चरित्र-चित्रण को सुरक्षित रखता है।

संदर्भः जल पलावन में एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए मनु अत्याधिक चिंतित एवं उदास हैं। कभी-कभी जीवन के प्रति धुंधली आशा का जन्म हो जाता है किन्तु उससे भी उन्हें शान्ति की प्राप्ति नहीं होती है। ऐसे समय में नाटकीय ढंग से श्रद्धा का प्रवेश होता है और वह विरक्त मनु से प्रश्न करती हुई कहती है-

व्याख्या

श्रद्धा मनु से प्रश्न करती है कि हे अज्ञात प्राणी तुम कौन हो? जैसे सागर की लहरों के द्वारा किनारे पर फेंकी गई मणि एकांत अथवा सूनेपन को अपनी जयोति से सुशोभित करती रहती है उसी प्रकार तुम भी इस संसार सागर के किनारे बैठे हुए साक्षात मणि ही हो जो इस एकांत और सूने स्थान में अकेले बैठे हुए अपनी शारीरिक क्रांति से सूनेपन को भी सुशोभित कर सकते हो। तुम्हारा मनमोहक रूप यह बतलाता है कि तुम कोई उच्च कुलोद्भव हो। कारणवशत एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। दुख एवं चिंता में भी तुम्हारा शारीरिक सौंदर्य क्षीण नहीं हुआ है सूनेपन में अपनी प्रभा विकीर्ण कर रहा है।

थकावट ने तुम्हें शिथिल करके सूने में बिठा दिया है किन्तु उसमें इतनी क्षमता कहां जो तुम्हारे रूप सौंदर्य को किसी प्रकार कम कर सके। थकावट में निखर कर सौंदर्य अत्याधिक मनमोहक हो गया है। तुम्हें देखने से ऐसा लगता है मानो तुमने संसार का कोई बहुत बड़ा उलझा हुआ रहस्य सुलझा लिया है। इसलिए निश्चित होकर यहाँ बैठ गए हो। तुम्हारे मुख की करुणा तुम्हारे भूत दुखों एवं पीड़ा का इतिहास बतला रही है जिससे तुम्हारी चुप्पी दुख व्यंजक होते हुए भी आकर्षक प्रतीत हो रही है। तुम्हारी यह शांति सदैव चंचल रहने वाले मन की शिथिलता के समान है यह शाँति झंझावत आँधी-तूफान के बाद आई हुई वर्षा की शांति है। चांचल्य मन की प्रमुख विशेषता है। जिस प्रकार मन सदैव चंचल रहता है और उसमें अपार वेग होता है, इसी प्रकार तुम में भी अपार शक्ति दिखलाई देती है। यह शांति तुम्हारी क्षणिक शांति है। सूने एकांत में विश्राम कर अपनी अपूर्व शक्ति एवं ऊर्जा का संचयन कर लो।

विशेष

1. श्रद्धा का प्रवेश सर्ग के आरम्भ में नाटकीय ढंग से हुआ।
2. भाषा सरल एवं तत्सम बाहुल्य है।

3. रूपक एवं उपमा अलंकार।
4. श्रद्धा के चरित्र में मानवतावादी विचारधारा है।
5. सहयोग एवं मधुर उपचार द्वारा मनु ही नहीं मानव जीवन को मंगलमय बनाने की भावना है।
6. नई संस्कृति एवं अमिट सभ्यता का प्रवर्त्तन करने में श्रद्धा अदम्य साहस, अगाध विश्वास एवं अबोध प्रेरणा से परिपूर्ण है।

सुना यह मनु ने मधु-गुंजार
मधुकरी का सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद;

शब्दार्थः मधु-गुंजार = मनोहर शब्द। मधुकरी = भंवरी। सानन्द = आनन्द सहित।

प्रसंगः श्रद्धा का मनु के समक्ष प्रस्तुत होकर अचानक प्रश्न पूछना। मनु को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे भ्रमरी मधुर गुंजार कर रही हो। श्रद्धा का रूप सौंदर्य ही अपूर्व नहीं है अपितु ध्वनि में भी अत्याधिक माधुर्य है। वह कोकिल कंठी है। भ्रमरी के समान गुंजार करने वाली है।

संदर्भः अचानक श्रद्धा की ध्वनि सुनकर मनु उसकी और तन्मय द ष्टि से देखते हुए ही मुख नीचा कर लिए।

व्याख्याः जिस प्रकार कमल का फूल खिलकर नीचे की ओर झुक जाता है उसी प्रकार श्रद्धा की मधु गुंजार को मनु मुख नीचा किए हुए बैठकर सुनते रहे। प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्होंने सिर नहीं उठाया। मुख नीचा किए बैठे रहे। भंवरी की गुंजार के समान श्रद्धा की मधुर वाणी मनु ने बड़े हर्ष के साथ सुनी। एकांत, एकाकी जीवन में किसी अन्य की मधुर वाणी सुनकर आनन्दित होना अति स्वाभाविक है। मनु के लिए ये शब्द आदि कवि वाल्मीकि के प्रथम सुन्दर छंद के समान थे। क्रौंच वध पर क्रौंची को बिलखती हुई देखकर वाल्मीकि कवि में करूणा का भाव लहराया था। श्रद्धा की वाणी में भी करूणा भाव है। जिस प्रकार करूणा ने बाल्मीकि से अचानक प्रथम छंद का स जन करवाकर रामायण की रचना करवाई थी उसी प्रकार श्रद्धा ने अपनी अपनी करुण भावना से मनु द्वारा मानव संस्कृति का विकास हुआ है। प्रथम रस करुणा ही है जिससे अन्य रसों का विकास करवाया। इन शब्दों के द्वारा श्रद्धा एवं मनु का परस्पर परिचय हुआ। प्रथम परिचय पल्लवित होकर मानव स ष्टि का जन्मदाता बना।

प्रथम कवि का अभिप्राय वाल्मीकि से है। बाल्मीकि स्नानोपरान्त लौट रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि एक बहेलिए ने मैथुनरत क्रौंच पक्षी के नर को मार दिया। मादा पक्षी का विलाप कवि को असहाय हो गया। यह असहाय द श्य देखकर उनका ह्रदय करुणा से आप्लावित हो गया और आकस्मात् ही उस बहेलिए को शाप देते हुए उन्होंने अनुष्टुप छंद कहा-

"मा निषाद! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः।

यत्क्रौंचमिथुंनोदकमवधीः काममोहि ताम्।।"

विशेषः

1. विशेषण विपर्यय।
2. भाषा सरल।
3. शब्दावली तत्सम प्रधान।
4. उपमा अत्यंत कलात्मक।
5. मनु के लिए ये शब्द सुन्दर छंद के समान थे।
6. 'मधुकरी सा', 'मुख नीचा कमल समान', 'प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद' आदि में उपमा को रूपायित किया गया है।
7. प्रथम कवि के प्रथम छंद का उल्लेख कर काव्य सौंदर्य बढ़ा दिया है।

और देखा वह सुन्दर द श्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया उन्मुक्त;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

शब्दार्थः इन्द्रजाल = जादू। अभिराम = सुन्दर। कुसुम-वैभव = फूलों का ऐश्वर्य, अनेक फूल। चांद्रिका = चांदनी। घनश्याम = काला बादल। अनुकृति = अनुरूपा। बाह्य = बाहरी, देखने में। उन्मुक्त = स्वच्छंद। मधुपवन = बसंत की वायु। शिशु साल = छोटा साल का व क्ष। सौरभ संयुक्त = सुगन्धितपूर्ण।

प्रसंगः श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन किया गया है। मनु ने मधुर वाणी सुनकर जब नीचा मुख ऊपर उठाया तो उन्हें अपूर्ण सौंदर्य का अनुभव हुआ। कवि ने श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन मनु के माध्यम से किया है।

संदर्भः गौर वर्णा श्रद्धा को काले बादलों से उपमित किया गया है। बाह्य सौंदर्य आन्तरिक सौंदर्य के अनुरूप है। बाहरी-भीतरी सौंदर्य में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। बाह्य सौंदर्य को ही कवि ने आन्तरिक सौंदर्य का प्रमाण मान लिया है क्योंकि आन्तरिक गुणों के अनुसार ही बाह्य सौंदर्य का विधान किया गया है।

व्याख्या

मनु ने श्रद्धा का जो प्रत्यक्ष सौंदर्य देखा उसने उनकी आँखों पर जादू कर दिया। वह विमोहित कर देने वाला सौंदर्य था। श्रद्धा का सौंदर्य फूलों से युक्त लता के समान था। लता स्वयमेव सुन्दर होती है। पुष्पित लता का सौंदर्य अत्याधिक बढ़ जाता है। बेला, चमेली तथा जुही आदि की लताएँ न केवल सुन्दर होती हैं अपितु सुगन्धि से भरपूर होकर वातावरण को सौरभमय बना देती हैं। श्रद्धा को फूलों से युक्त लता का रूप इसलिए दिया गया है क्योंकि उसके चारों ओर उसकी कांति जगमगा रही थी। श्रद्धा चाँदनी से घिरे हुए काले बादलों के समान द ष्टिगोचर हो रही थी। श्रद्धा ने मेध चर्मों की खाल का नीला वस्त्र पहन रखा था। इसलिए वह काले बादलों के सौंदर्य को फीका कर रही थी।

कुछ आलोचकों ने घनश्याम को आधार मानकर श्रद्धा को गौरवर्ण की न मानकर श्यामा सुन्दरी के रूप में स्वीकारा है किन्तु यह उनका भ्रम है क्योंकि आगे प्रसाद जी ने स्वयं लिखा है-

"मस ण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म।
ढक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म।
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा म दुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।"
(श्रद्धा सर्ग, कामायनी)

श्रद्धा की शारीरिक कांति उसके नीले परिधान के कारण ही चंद्रिका से लिपटा घनश्याम के रूप में वर्णित है।

आंतरिक भावों की प्रतिकृति बाह्य रूप में देखी जा सकती है। श्रद्धा के हृदय की उदारता का द्योतन उसका बाह्य सौंदर्य कर रहा था। वह तनवंगी अर्थात् दुबली-पतली, छरहरे एवं लंबे शरीर वाली युवती है। उसका शारीरिक विकास स्वच्छंद रूप से हुआ है विकास को किसी बाधा का सामना नहीं करना पड़ा है। अंग-प्रत्यंग का विकास स्वच्छंदता से कदली स्तंभ के समान

हुआ है। कद लंबा है जिससे स्वच्छदंता झलकती है। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वसंत वायु से खेलता हुआ साल का छोटा व क्ष हो जो सुगंध युक्त होकर शोभायमान है।

विशेषः

1. भाषा सरल।
2. शब्द तत्सम।
3. नारी सौंदर्य का वर्णन।
4. उत्प्रेक्षा अलंकार।
5. बाह्य उदारता ह्रदय की अनुकृति।
6. 'लता समान' एवं 'ज्यों शिशु साल' में सुन्दर उपमान की योजना।
7. नारी सुलभ आतंरिक एवं बाह्यय गुण।

मस ण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म।
ढंक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म।
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा म दुल अधखुला अंग;
खिल हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।

शब्दार्थः मस ण = चिकना, मुलायम। गांधार देश = कंधार देश। रोम = रोयें। मेष = मेढ़ा या भेड़। चर्म = खाल। वपु = शरीर। कांत = सुंदर। वर्म = आवरण, वस्त्र। परिधान = वस्त्र। म दुल = कोमल।

प्रसंगः श्रद्धा के सौंदर्य वर्णन के समय उसके वस्त्रों का विशेष उल्लेख किया गया है। उसकी बनावट तथा पहनने के ढंग भी निराला है जो सौंदर्य व द्धि में सहायक सिद्ध हो रहा है।

संदर्भः कोमल, चिकने रोयेंदार मेषों की खाल का वस्त्र इस प्रकार धारण कर रखा हे कि ढंका हुआ अंग भी उभार के कारण आकर्षक बन रहा तथा जो अंग पूरा नहीं ढंका है वह विशेष आकर्षण का केन्द्र बन रहा है।

व्याख्या

गांधार देश के नीले रोयें वाले मेढ़ों की कोमल खाल से उसका शरीर ढका हुआ था। यह खाल ही उसका सुंदर वस्त्र था जिससे उसने अपना अंग ढक रखा था फिर भी अच्छी प्रकार से ढक नहीं सकी थी। अधखुला अंग खुल रहा था। उस नीले आवरण के बीच से उसका कोमल अंग द ष्टिगोचर हो रहा था जिसे देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मेघ बन के बीच में गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिला हो। सायंकाल बादलों से घिरा आसमान बन का रूप धारण कर लेता है। सायंकालीन सूर्य की किरणें अपने सतरंगी रूप बादलों पर बिखेर कर इन्द्रधनुष को जन्म देती हैं। यही किरणें बर्फीले शिखरों पर पड़कर उन्हें स्वर्णिम आभा प्रदान करती हैं। इसी को कवि बिजली का फूल मानता है।

गौर वर्ण श्रद्धा का अधखुला अंग गुलाबी रंग का बिजली का फूल प्रतिभासित होता है। श्रद्धा का आवरण नीले बादलों के समान था और उसका लाल खुला रहा। अधुखला अंग बिजली के गुलाबी फूल की आभा बिखेर रहा था।

बिजली का कोई फूल नहीं होता है अपितु उसकी चमक स्वर्णिम होती है। यहाँ गौरवर्णा श्रद्धा के अधखुले गुलाबी अंग को कवि ने बिजली के फूल के रूप में कल्पित किया हे। जिस प्रकार कवि श्याम नील में विशेष अन्तर नहीं मानता उसी प्रकार गुलाबी-स्वर्णिम में साम्य के आधार पर इसकी कल्पना की गई है। इसे रंग विचलन की संज्ञा भी दी जा सकती है। इसे कवि का अज्ञान नहीं कहा जा सकता है।

विशेष:

1. भाषा सरल।
2. भाव गांभीर्य।
3. तत्सम शब्दावली।
4. अनुप्रास, रूपक उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार।
5. खुल रहा म दुल अधखुला अंग' में शब्द चमत्कार।
6. बिजली के फूल की नवीन कल्पना।
7. नारी का मर्यादित सौंदर्य वर्णन।

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास;
नील धन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
और मुख पर वह मुसक्यान!
रक्त किसलय पर लें विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम !

शब्दार्थ: अंस = कंधा। अवलम्बित = सहारे से। घन-शावक = बादल के बच्चे, छोटे बादल। सुधा = अम त। विधु = चन्द्रमा। रक्त किसलय = लाल कोपल। अरुण = सूर्य। अम्लान = कांतिमान। अभिराम = सुन्दर।

प्रसंग: सूर्यास्त के समय पश्चिमी आकाश में घिरे हुए बादलों को सूर्य मंडल की लाल-लाल किरणें भेदती हैं तो अपूर्व आभा द ष्टिगोचर होती है। अप्रस्तुत विधान के माध्यम से श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन किया गया है। कवि अन्य कल्पना करते हुए कहता है कि श्रद्धा का मुख बहुत ही सुन्दर था। जैसे इंद्र नील मणि की छोटी चोटी, वसन्त की मधुर रात्रि में एक छोटा सा अचेत ज्वालामुखी उसे फोड़कर धधक रहा हो। वैसी ही शोभा श्रद्धा के मुख की थी जो ज्वालामुखी के समान जाज्वल्यमान था।

संदर्भ: श्रद्धा के बालों, उसके मुख तथा मुख पर छाई हुई मुस्कान का वर्णन करते हुए कवि कहता है।

व्याख्या

श्रद्धा के बाल लम्बे, काले तथा घुंघराले थे जो उसके कंधे पर लटक रहे थे। बिखरे हुए बालों को देखकर कवि कहता है ऐसा प्रतीत होता था मानो बादलों के बच्चे चन्द्रमा के पास अम त भरने को आए हैं। बाल नीले मेघों के समान हैं और मुख चन्द्रमा के समान है जिसमें शोभा का अम त है।

श्रद्धा के मुख की मुस्कुराहट अपूर्व थी जो ऐसी शोभा देती थी मानो कोई सूर्य की कांतिमान किरण लाल कोंपलों पर विश्राम करके अलसा रही है। श्रद्धा के ओष्ठ लालाभ कोपल के समान हैं तथा उसकी मुस्कुराहट सूर्य की किरण के समान है।

विशेष:

1. भाषा सरल।
2. तत्सम शब्दावली।
3. उत्प्रेक्षा अलंकार।
4. किरण के अलसाने में मानवीकरण।
5. 'मुस्कान' के स्थान पर 'मुसक्यान' शब्द का प्रयोग कोमलता हेतु किया है। व्याकरणिक द ष्टि से इसे दोष माना गया हे जबकि यह विचलन है।

6. नारी सौंदर्य का मर्यादित वर्णन।
7. छायावादी शैली की नारी-महत्ता।
8. रीतिकालीन बिंबाविधान।
9. संश्लिष्ट चित्रण।

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
उषा की पहिली लेखा कांत
माधुरी से भींगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।

शब्दार्थः यौवन छवि = यौवन की शोभा। दीप्त = सुशोभित। करुण = दयावान। कामना मूर्ति = इच्छा की मूर्ति। स्पर्श पूर्ण श्रद्धा को देखकर उसमें स्पर्श करने की इच्छा होती थी। स्फूर्ति = चेतना। लेखाकांत = सुंदर किरण। माधुरी = सुषमा। मोद = हर्ष। मदभरी = मस्ती से भरी हुई। भोर = प्रातः काल। तारक द्युति की गोद = तारों की शोभा की छाया में।

प्रसंगः नारी के अनंत यौवन सौंदर्य का वर्णन उषाकालीन सौंदर्य के माध्यम से वर्णित है जिसमें विश्वमैत्री एवं विश्व कल्याण की भावना भरी होती है। सभी उसका स्पर्श करना चाहते हैं वह अपने स्पर्श से सबमें स्फूर्ति एवं चेतना जाग त करती है। रात्रि का आलस्य परिसमाप्त करती है।

संदर्भः श्रद्धा का सौंदर्य प्रातः कालीन सौंदर्य से परिपूर्ण है। उषा की पहली रेखा का सौंदर्य साक्षात श्रद्धा है जिसमें प्रातःकलीन रातवाली मस्ती की खुमारी तथा लज्जा विद्यमान है। प्रातःकालीन तारों की गोद से उठकर मानो अभी-अभी वह आई है।

व्याख्या

श्रद्धा नारी के अनंत यौवन सौंदर्य से परिपूर्ण है उसका अंग-प्रत्यंग उसी शोभा से दीप्त है। वह सम्पूर्ण विश्व के प्रति करुणा एवं दया की भावना से परिपूर्ण है। सदय इच्छा की प्रतिमूर्ति है। वह ह्दय से सम्पूर्ण विश्व के प्रति करुणा की कामना करती है जिसके परिणाम स्वरूप समस्त विश्व के लिए उसका रूप कमनीय बन गया है। उसे देखते ही देखने वाले के मन में उसे छूने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जड़-चेतन सभी को वह अपने स्पर्श से चेतना प्रदान करने वाली है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उसका सौंदर्य जड़ वस्तुओं को भी चैतन्य कर देता है।

श्रद्धा का सौंदर्य उषा की प्रथम किरण के समान दिव्य एवं रमणीय है। उषा की प्रथम किरण के समान वह माधुर्य से भ गी हुई है उसमें हर्षातिरेक है जिससे वह आन्दोलित है। जिस प्रकार उषा मस्ती में भरी हुई है, लज्जा में सिमटी हुई प्रातः काल तारों की छाया में उठती है या आती है उसी प्रकार श्रद्धा में माधुर्य है, आनन्द है, मस्ती है और लज्जा है जैसे उषा की प्रथम किरण के आगमन से स्वतः अंधकार विलीन होने लगता है उसी प्रकार श्रद्धा के आगमन एवं उसके दर्शन के परिणामस्वरूप मनु-मानव के ह्दय पर छाया निराश का अंधकार दूर होने लगता है। किन्तु जिस प्रकार उषा की प्रथम किरण संपूर्ण अंधकार को समाप्त करने की क्षमता नहीं रखती है उसी प्रकार मात्र श्रद्धा का दर्शन मनु-मानव मन का संपूर्ण अंधकार-निराशा विनष्ट करने में सक्षम नहीं है। मात्र यह ध्वनित है कि शनैः शनैः निराशा की परिसमाप्ति श्रद्धा के मिलन से ही होगी। प्रथम किरण का आश्रय लेने से सौंदर्य वर्णन में प्रभाव की तीव्रता आ गई है। कवि का उद्देश्य श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन करना है। श्रद्धा के बाह्य एवं आन्तरिक सौंदर्य का स्फुरण अति मोहित रूप में अंकित हुआ है।

विशेषः

1. भाषा सरलता।
2. तत्सम शब्द का बाहुल्य।

3. भाव गांभीर्य।
4. उपमा, उत्प्रेक्षा एवं मानवीकरण अलंकार।
5. उषा की प्रथम किरण का मानवीकरण।
6. सौंदर्य वर्णन का अनुपम रूप।
7. सौंदर्य वर्णन ऐसा है जो उषा की तरह आशा का संदेश लेकर आता है।
8. आध्यात्मिक संकेत।
9. विश्व कल्याण एवं विश्व बंधुत्व की भावना।
10. विश्व राष्ट्रीय करुण भावना।
11. श्रद्धा का सौंदर्य वर्णन पराग-कणों से निर्मित मूर्ति के समान है।
12. श्रद्धा अपार सौन्दर्य, सुगंधित एवं कोमलता का परिचायक है।
13. श्रद्धा पद्मिनी नायिका है।

पहेली-सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभिमान,
बताता है विस्म ति का मार्ग
चल रहा हूं बनकर अनजान।
भूलता ही जाता दिन रात
सजल अभिलाषा कलित अतीत;
बढ़ रहा तिमिर गर्भ में नित्य
दीन जीवन का यह संगीत

शब्दार्थः व्यस्त = उलझा हुआ। विस्म त = निराश। सजल अभिलाषा = मधुर इच्छा। कलित = युक्त। अतीत = भूतकाल। तिमिर गर्भ = अंधकार के भीतर। दीन = निस्सहाय।

प्रसंगः श्रद्धा के प्रश्न का उत्तर देते हुए मनु ने कहा कि आकाश एवं प थ्वी के बीच मेरा जीवन रहस्यमय एवं निरूपाय बन गया है। उल्का के समान भ्रांत, असहाय शून्य में विचरण कर रहा हूँ। मैं ऐसा पांखडी हूँ जो हतभाग्य पर्वत या झरना नहीं बन सका, बर्फ का ऐसा टुकड़ा हूँ जो गल नहीं सका तथा दौड़कर प्रवाहिनी सागर के गले नहीं मिल सका।

संदर्भः मनु अपना परिचय श्रद्धा को देते हुए अपने को अभिमानी बतलाते हैं जो पहेली को सुलझाने में लगा हुआ है जिसका कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है। अंधकार में किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना आगे चलता जा रहा है।

व्याख्या

मेरा जीवन एक उलझी हुई पहेली है उसको सुलझाने का मैं जितना प्रयास करता हूँ उतना ही उसमें उलझता जाता हूँ। यही मेरी व्यस्तता है। सुलझाने के उपाय सोचकर मन में आशा जागती है किन्तु सुलझाने में सफलता हाथ न लगने के परिणामस्वरूप घनी निराशा में डूब जाता हूँ। मेरी समझ में नहीं आता है कि मुझे कहाँ जाना है? मेरी कौन सी मंजिल है? क्या करना है? मुझे यह भी ज्ञात नहीं है। इसलिए मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना सा निरुद्देश्य चलता जा रहा हूँ।

मेरा अतीत मेरी अपनी सुंदर इच्छाओं से सुशोभित था जिसे अब निरंतर भूलता जा रहा हूँ। मेरा वह साहस मेरी वह स्फूर्ति कहाँ खो गई इसका मुझे ज्ञान नहीं है। मात्र इतना ध्यान है कि मैं अपूर्व साहसी, उद्यमी एवं स्फूर्तिमय जीवनयापन करने वाला प्राणी था। अब शनैः शनैः सब मिटता चला जा रहा है। मेरा जीवन दर्द भरा संगीत था जिसकी सुर लहरी अंधकार में विलीन होती जा रही है। क्योंकि अब मुझे सुनने वाला कोई नहीं है। संगीत की सफलता तभी है जब कोई उसे सुनने वाला हो। आज यह जीवन संगीत नहीं अपितु अरण्य रोदन है। जंगल में रोने वाले को कभी किसी की सहानुभूति नहीं मिलती है। मेरे जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है। जीवन संगीत अब दीन-हीन बन गया है।

विशेषः

1. भाषा सरल।
2. भाव गांभीर्य।
3. तत्सम शब्दावली।
4. उपमा, रूपक एवं मानवीकरण अलंकार।
5. संगीत का मानवीकरण किया गया है।
6. अतीत सदैव प्यारा एवं सुखदायी होता है।
7. वर्तमान सदैव दुखदायी होता है।
8. अतीत सदैव विस्म तिजन्य है।
9. जीवन संगीत में स्थायित्व नहीं है।
10. दुखी मानव निरूद्देश्य हो जाता है।

"कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार!
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मन्द बयार।
नखत की आशा किरण समान,
ह्रदय के कोमल कवि की कांत
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शांत।।"

शब्दार्थः वसंत के दूत = श्रद्धा। विरस = नीरस, शुष्क। पतझड़ = उदासी का वातावरण। घनतिमिर = घना अंधकार, निराशा। चपला = बिजली, आशा। तपन = दुख। बयार = वायु, शीतलता प्रदान करने वाली। नखत = नक्षत्र। कांत = सुंदर। लघु लहरी दिव्य = नन्हीं अलौकिक लहर। मानव = ह्रदय, तालाब।

प्रसंगः श्रद्धा के प्रश्न के उत्तर में मनु ने अपना अति संक्षिप्त दुखमय परिचय दिया। श्रद्धा को तुष्टि हुई या नहीं कौन जाने किन्तु मनु के मन में आगन्तुक का परिचय जानने की प्रबल अभिलाषा जग गई जिसका वरण वह नहीं कर सका।

संदर्भः मनु ने कहा कि मैं क्या कहूं। मैं उद्भ्रान्त हूँ। आज मैं नील गगन की खोखल में वायु की भटकी हुई तरंग, शून्यता का उजड़ा सा राज, विस्म ति का अचेत स्तूप, ज्योति का धुंधला-सा प्रतिबिंब, निराशा तथा सफलता का संकलित विलम्ब हूं। मेरा जीवन विफलता से परिपूर्ण है। मेरे मन में तुम्हारा परिचय प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जाग त हुई है।

व्याख्या

मनु श्रद्धा से पूछते हैं कि उदासी के इस नीरस पतझड़ में वसंत का दूत बनकर आने वाले, हर्ष का संचार करने वाले तुम कौन हो? शिशु को लघु वय में लिंग का ज्ञान नहीं होता है। शिशु रूप में मनु को भी आगन्तुक के लिंग का ज्ञान नहीं है। बाल मनोविज्ञान की इस प्रव ति का कवि को पूर्ण ज्ञान है। इसलिए 'आने वाली' न कहकर 'आने वाले' 'वसंत की दूतिका' के स्थान पर 'वसंत के दूत' का प्रयोग किया है। निराशा के घने अंधकार में तुम आशा की विद्युत्त चमक के समान हो। तुम दुख रूपी ग्रीष्म को शान्त करने वाले शीतल मंद पवन हो। शीतल, मंद एवं सुगंधित समीर के आगमन से ग्रीष्म की तपन समाप्त हो जाती है।

श्रद्धा मनु को सुख एवं शीतलता का संदेश देने वाली है।

नक्षत्र के उदित होने से आशा किरण जग जाती है। तुम नक्षत्र की आशा किरण के समान हो। तुम्हें देखते ही मुझमें यह आशा जाग त हो गई है कि मेरे जीवन में पुनः सुख, शांति एवं खुशहाली आयेगी। मैं अपना अतीत पुनः प्राप्त कर लूंगा। अपने को

उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकूंगा। कोमल हृदय कवि की कल्पना अतीत सुंदर नन्हीं एवं अलौकिक होती है। तुम कवि की कल्पना लहर के समान हो जो मानसिक सुख-शांति प्रदायिनी होती है। कल्पना की मधुरता दुःख के आवेग को नष्ट करने वाली होती है। मेरा मन में अनेक प्रकार की भावनाएँ हलचल मचाकर मुझे अशाँत किए हुए थीं। तुम्हारे दर्शन मात्र से मानस हलचल शांत हो रही है। नए युग के विकास की आशा किरण का उदय हो गया है। तुमने निराशा को आशा में परिवर्तित कर दिया है।

विशेषः

1. माधुर्य गुणमयी सरल भाषा।
2. भाव गांभीर्य।
3. तत्सम शब्दों का बाहुल्य।
4. मानव-हृदय/तालाब में श्लेष अलंकार।
5. उपमालंकार की सुन्दर योजना।
6. विरोधाभास अलंकार।
7. डूबते हुए को तिनके का सहारा होता है।
8. श्रद्धा नखत की आशा किरण है।
9. अपरिचित सदैव सुखदायी होता है।
10. प्रतीक योजना है।

भरा था मन में नव उत्साह
सीख लूँ ललित कला का ज्ञान,
इधर रह गंधर्वों के देश
पिता की हूँ प्यारी संतान।
घूमने का मेरा अभ्यास,
बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य;
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त
हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य।

शब्दार्थः मुक्त = स्वच्छंद। व्योम तल = आकाश के नीचे। हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य = भाव का मूल सत्य।

प्रसंगः मनु के प्रश्न में परिचय प्राप्त करने की प्रबल उत्कंठा को देखते हुए विशेष उत्कंठा को मिटाता हुआ आगंतुक व्यक्ति कहने लगा। प्रसाद ने श्रद्धा के लिए 'लगा कहने' पुल्लिंग का प्रयोग किया है। आगंतुक व्यक्ति अर्थात आने वाला व्यक्ति उभयलिंग का प्रयोग किया है। श्रद्धा मनु को ऐसा संदेश दे रही है मानो आनन्द सहित कोयल पुष्प को मधुमय संदेश दे रही हो।

संदर्भः श्रद्धा मनु को अपना परिचय देती हुई कहती है कि मेरे मन में ललित कला सीखने का नया-नया उत्साह भरा था। गंधर्व देश की कन्या हूँ। घूमने का मुझे अभ्यास है।

व्याख्याः

वहाँ आने वाली श्रद्धा ने मनु की उत्कंठा को पूर्णतया मिटाते हुए उत्तर दिया। उसके शब्द सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानो कोयल आनन्द में भरपूर फूल को वसंत का संदेश दे रही है। श्रद्धा की वाणी कोयल के संगीत के समान मधुर है और वसंत के समान नवीन और सरल जीवन का संदेश भी देने वाली है। मनु को कर्म में प्रव त्त करती है। मनु फूल के समान है जो श्रद्धा का संदेश सुनकर लहलहा उठते हैं।

श्रद्धा ने कहा कि मैं अपने पिता की प्यारी संतान हूँ। मेरे मन में यह नवीन उत्साह भरा हुआ था कि गंधर्व देश में रहते हुए ललित कला का ज्ञान प्राप्त कर लूं। श्रद्धा ने अपना परिचय गंधर्व देश निवासी के रूप में दिया जो साभिप्राय है। गंधर्व ललित कला प्रेमी होते हैं। उनका गंधर्व विवाह अर्थात् प्रेम विवाह में पूर्ण विश्वास है। श्रद्धा ने मनु से गंधर्व विवाह ही किया है।

आगे वह कहती है कि मुक्त आकाश के नीचे स्वच्छंद रूप से घूमने का मेरा अभ्यास नित्य ही बढ़ता जा रहा था। मेरा हृदय सत्ता के सुंदर सत्य अर्थात भाव का मूल सत्य या रहस्य खोजने में व्यस्त था। मैं यह सोचा करती थी कि हमारे इस हृदय सत्ता का मूल तत्व कौन-सा है। हृदय सत्ता का रहस्य का अभिप्राय हृदय का सत्ताधारी अर्थात पति कौन होगा?

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि श्रद्धा हृदय-सत्ता का सुंदर सत्य खोजने के लिए उत्कंठित है, बुद्धि सत्ता का नहीं। बुद्धि का प्रतीक इड़ा है। हृदय का प्रतीक श्रद्धा है। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी बुद्धि के तर्कजाल को सत्य की प्राप्ति में बाधा स्वीकारते हैं। उन्होंने जीवन में भाव और हृदय को ही प्रधान स्थान दिया है। बुद्धि गौण है जो हृदय की सहकारिणी है।

प्रसाद का ही नहीं, पंत एवं महादेवी का भी जीवन संबंधी द ष्टिकोण भावात्मक ही है। पंत ने भी जीवन में हृदय पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण स्वीकारा है और महादेवी ने भी ऐसा ही माना है। दोनों का विश्वास है कि शुष्क तर्क अपने उद्देश्य को ढँक लेता है तथा विभिन्न उलझनों को जन्म देता है। उन्होंने भी तर्क को भाव की अपेक्षा गौण स्थान दिया है।

प्रसाद की हृदय प्रधानता की आलोचना की गई है। शुक्ल ने उनके बुद्धि विरोधी विचार का खण्डन किया था। आधुनिक युग के लिए तर्कवादी की असफलता विचार करने की नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन की है। दार्शनिक परस्पर विरोधी मत के होते हैं। दार्शनिक विरोध ने समय-समय पर समाज में भीषण हलचल पैदा की है किन्तु यह प्रश्न भी हो सकता है- क्या कामायनी का दर्शन विचार या बुद्धि से शून्य है।

विशेषः

1. भाषा अति सरल है।
2. शब्दावली तत्सम है।
3. हृदय सत्ता का सुंदर सत्य में भाव गांभीर्य है।
4. बुद्धि की अपेक्षा हृदय पक्ष की प्रधानता है।
5. गंधर्वों के देश का साभिप्रायिक उल्लेख है।
6. गंधर्व या प्रेम विवाह का पूर्व संकेत है।
7. श्रद्धा की धुमन्तू प्रव त्ति का द्योतन है।
8. 'मुक्त व्योम तल' स्वच्छंदता का प्रतीक है।
9. पिता की प्यापरी संतान' वैचारिक स्वतंत्रता का प्रतीत है।

मधुरिमा में अपनी ही मौन,
एक सोया संदेश महान;
सजग हो करता था संकेत,
चेतना मचल उठी अनजान।
बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल मालाओं का श ंगार;
आंख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुन्दर सम्भार।

शब्दार्थः मधुरिमा = सौंदर्य। चेतना चमल उठी अनजान = मेरा हृदय स्वयमेव अधीर हो गया। शैल मालाओं = पवर्तश्रेणियों। सम्भार = साज सज्जा।

प्रसंग: श्रद्धा कहती है कि जब मैं हिमालय की ओर देखती हूँ तब मेरा मन दुखी होकर मुझसे प्रश्न करता है। जल प्लावन से प थ्वी का रूप लघु हो गया है लगता है प थ्वी डरकर सिकुड़ गई है। क्या यह भयभीत प थ्वी की सिकुड़न है? क्या धरती को कोई कष्ट विशेष हुआ है जिसके भय से वह सिकुड़ गई है। श्रद्धा का हृदय करुणा से आपूरित है। इसलिए उसने हिमालय को धरती की पीड़ा की सिकुड़न कहा है।

संदर्भ: सौंदर्य में एक महान मौन संदेश सोया है जो कभी-कभी संकेत मात्र करता है जिसके परिणामस्वरूप श्रद्धा के चरण आगे बढ़े साज-सज्जा को देखकर आंख की भूख मिट गई।

व्याख्या:

अपने सौंदर्य की मुझे अनुभूति थी। मेरे हृदय में अपने सौंदर्य में ही शांत एक महान संदेश सोया हुआ था। सोया हुआ संदेश जग गया तथा जाग तावस्था में वह संदेश संकेत में मुझसे कुछ कहने लगा। मुझे प्रेरित करने लगा। हृदय ने इस प्रेरणा का अनुभव किया जिसके परिणामस्वरूप मेरा हृदय स्वयमेव मचलने लगा। मचलन ने उत्साह का स्वरूप धारण किया। मेरा मन उत्साह से भर गया। पांव थिरकने लगें। प्राकृतिक द श्यों के दर्शन हेतु चरणों में स्वतः स्फूर्ति आ गई और वे प्राकृतिक द श्यों को देखने के लिए निकल पड़े। पर्वत श्रेणियों का अपूर्व सौंदर्य देखकर मेरी आंखों की दर्शन की भूख मिट गई। हृदय को अपार त प्ति एवं शान्ति की अनुभूति हुई। पर्वत की साज-सज्जा को देखकर यह अनुभव हुआ कि यह कितना सुंदर है। यहां 'आह' शब्द का प्रयोग मानसिक वेदना का प्रतीक है जो कुछ और देखने या प्राप्त करने को संकेतित करता है। वास्तव में यहां की साज सज्जा आह कितनी रमणीय एवं दिव्य है।

विशेष:

1. सरल भाषा में भावाभिव्यक्ति
2. तत्सम शब्दों का बाहुल्य।
3. 'सोया संदेश महान' में भाव-गंभीरता।
4. 'सोया संदेश महान' में मानवीकरण
5. 'बढ़ा मन, पाँव चल दिये', 'आंख की भूख मिटी' में विपर्यय।
6. अनुप्रास अलंकार।
7. 'सम्भार' शब्द का साज-सज्जा के लिए नवीन प्रयोग।

एक दिन सहसा सिंधु अपार
लगा टकराने नग तल क्षुब्ध;
अकेला यह जीवन निरुपाय
आज तक घूम रहा विश्रब्ध।
यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न
भूत-हित रत किसका यह दान!
इधर कोई है अभी सजीव
हुआ ऐसा मन में अनुमान

शब्दार्थ: सहसा = अकस्मात। सिंधु अपार = अनंत सागर। नग तल = पर्वत के नीचे। क्षुब्ध = आन्दोलित। विश्रब्ध = शांत निर्भय। बलि का अन्न = यज्ञ का बचा हुआ अन्न, जिसे मनु कहीं दूर रख आते थे। भूत-हित-रट = प्राणियों के कल्याण में लीन।

प्रसंग: जल प्लावन इतना बढ़ा कि सागर की उत्ताल तरंगें उत्तेजित होकर पर्वत की तलहटी से टकराने लगीं और पर्वत को चारों ओर घेर लिया। तब से मेरा जीवन अकेला बिना किसी उपाय के निर्भय घूम रहा है। 'अकेला' शब्द दुकेला होने को ध्वनित करता है।

संदर्भः जल प्लावन की भयंकरता से भी भयभीत न होकर श्रद्धा निर्भय मानो किसी साथी की तलाश में घूम रही है क्योंकि उसने स्वयं अपने जीवन को अकेला एवं निरुपाय कहा है।

व्याख्याः

घूमते-घूमते मैंने अचानक देखा कि सागर की लहरें पहाड़ों की तलहटी से टकराने लगीं और देखते-देखते पर्वत को चारों ओर से घेर लिया। जलांदोलन ने प्रलय का रूप धारण कर लिया। तभी से मैं अकेली हूँ। मेझे सहारा देने वाला कोई नहीं है। मेरा यह शांत जीवन एकांत एवं बेसहारा घूम रहा है। मुझे किसी प्रकार का भय नहीं निर्भय हूं। जीने के लिए कोई उपाय या सहारा मुझे अभी तक नहीं मिला है।

घूमते-घूमते जब में इधर पहुंची तो देखा कि पास ही एक स्थान पर यज्ञ का बचा हुआ अन्न रखा हुआ था। उसे देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि यह अन्न कहां से आया, कौन ऐसा प्राणी है जो सांसारिक कल्याण में लगा हुआ यज्ञ-कार्य कर रहा है। उसी ने यह दान किया होगा। मेरी मन में इस प्रकार अनेक प्रश्न उठे तथा यह विचार आया कि इधर जल-प्लावन में मेरे अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति भी जीवित है।

विशेषः

1. सरल भाषा में जल-प्लावन का संकेत है।
2. प्राणियों के कल्याण में रत व्यक्ति यज्ञ करता है।
3. बलि अन्न अन्य के हित दान कर देता है।
4. दान के अन्न से ही श्रद्धा ने अन्य के जीवित रहने का अनुमान लगाया।
5. अनुप्रास अलंकार।

तपस्वी, क्यों इतने हो क्लांत!
वेदना का कैसा यह वेग?
आह! तुम कितने अधिक हताश।
बताओ यह कैसा उद्वेग!
हृदय में क्या है नहीं अधीर,
लालसा जीवन की निश्शेष!
कर रहा वंचित कहीं न त्याग
तुम्हें, मन में धर सुन्दर वेश!

शब्दार्थः क्लांत = व्यग्र, व्याकुल। हताश = निराश। उद्वेग = व्याकुलता। लालसा = इच्छा। निश्शेष = पूर्ण। वंचित करना = धोखा देना। सुन्दर वेश = आकर्षक रूप।

प्रसंगः श्रद्धा मनु को 'तपस्वी' शब्द से संबोधित करके पूछती है कि तुम इतना आकुल-व्याकुल, दुखी एवं अशांत क्यों हो गये हो ?

संदर्भः मनु की व्याकुलता देखकर श्रद्धा मनु की तपस्या को सही नहीं मानती क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है कि नाश का द श्य देखने पर मन में निराशा की भावना का जन्म होता है तथा उस आवेश में त्याग ही आकर्षक एवं महत्वपूर्ण द ष्टिगोचर होता है। वास्तव में यह त्याग सच्चा नहीं, धोखा मात्र है क्योंकि उसका उदय शांत चिंतन में नहीं अपितु जीवन की अधीरता में होता है इसीलिए श्रद्धा मनु से पूछती है।

व्याख्याः

हे तपस्वी! तुम इतने व्याकुल हो रहे हो? तुम्हारी व्याकुलता का क्या कारण है? तुम्हारे मन में यह कैसी व्यथा उमड़ रही है? तुमको किसने दुख दिया है? तुम्हारी निराशा का क्या कारण है? जीवन आशामय है फिर निराशा का क्या अभिप्राय? मुझे बताओ कि तुम्हारी इस व्याकुलता का मूल कारण क्या है?

क्या तुम्हारे मन में जीवन को जीने की पूर्ण एवं उत्कृष्ट अभिलाषा शेष नहीं रह गई। ऐसा प्रतीत होता है कि दुखावेग में तुम्हें त्याग सुंदर एवं श्रेयस्कर लग रहा है। आवेग का त्याग सच्चा त्याग नहीं अपितु धोखा है क्योंकि उसका उदय जीवन की अधीरता

में होता है। वास्तविक त्याग की भावना का उदय शांत चिंतन में होता है। तुम्हें यदि विरक्त हो रही है तो उसमें भी सच्चाई नहीं है अपितु यह छल है। सुंदर आकर्षक वेश धारण कर यह त्याग ही कहीं तुम्हें छल तो नहीं रहा है? तुम्हारी व्यथा, वेदना, व्याकुलता एवं त्याग मेरी समझ में नहीं आ रहा है इसलिए मैं तुमसे ही इसका कारण जानना चाहती हूँ।

विशेष:

1. अति सरल भाषा में श्रद्धा का कारण जानने का यत्न करना।
2. संदेहालंकार एवं अनुप्रास।
3. सानिध्य हेतु सहानुभूति प्रदर्शन।
4. स्नेह के मार्ग में सरलता अपेक्षित है।

दुख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बनकर अनजान।
कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।

शब्दार्थ: अज्ञात = अनजान। जटिलताओं = कठिनाइयों। काम = इच्छा, जो जीवन में मूल प्रेरणा। काम यहां संकुचित अर्थ में मैथुन की इच्छा के लिए नहीं, इच्छा मात्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। महाचिति = विराट चेतना शक्ति। लीलामय आनन्द = अपने ही संसार की लीला में आनन्द कर रही है। उन्मीलन = स जन, खलना। अभिराम = सुंदर। अनुरक्त = लीन।

प्रसंग: श्रद्धा मनु को समझाती है कि अज्ञात दुख से तुम क्यों डर रहे हो? दुख के बाद ही सुख आता है। इच्छाओं से कभी मन नहीं मोड़ना चाहिए।

संदर्भ: जब विराट चेतना लीला में आनन्द ले रही है तो तुम अज्ञात दुख की जटिलताओं से डर कर इच्छाओं से क्यों मुख मोड़ रहे हो। कर्म पथ पर अग्रसर होने के लिए श्रद्धा मनु से कहती है।

व्याख्या:

तुम भविष्य में आने वाली कठिनाइयों का अनुमान कर अनजाने दुखों के डर से भयभीत होकर भविष्य के विषय में बिना चिंतन किए जीवन से इतनी विमुखता अच्छी नहीं यह तुम्हारा मात्र इच्छाओं से विमुख होकर दूर भाग रहे हो क्षणिक आवेग है जो विनाश लीला को देखकर उत्पन्न हुआ है। भविष्य के विषय में सोचे बिना तुम्हारी यह विरक्ति सच्ची नहीं है। यह तो मात्र छलावा है। अभी तुम निराशा की हलचल से प्रभावित हो। जब यह हलचल शांत या समाप्त हो जाएगी तब क्या होगा? यह तुम सोच नहीं पा रहे हो। सोचो! चिंतन पर जोर दो।

वास्तव में देखो विराट चेतन शक्ति जान-बूझकर अपने आपको इस संसार के रूप में व्यक्त कर अपनी लीला में आनंदित हो रही है। जब विराट चेतना शक्ति लीला का आनंद ले सकती है तो तुम उस आनंद से अपने को क्यों वंचित करते हो। इस आनंद की लीला के परिणामस्वरूप ही सुंदर स ष्टि का निर्माण होता है। विश्व के संपूर्ण मानव इसी संसार में लीन द ष्टिगोचर हो रहे हैं।

शक्ति दर्शन के अनुसार शक्ति ही सारी स ष्टि के मूल में है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का अस्तित्व उसी शक्ति के आधार हैं। शक्ति के बिना इन तीनों का कोई महत्व नहीं है, पूर्ण रूपेण असमर्थ हैं शक्ति के अभाव में उनमें कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं है। विश्व के संपूर्ण क्रिया कलाप शक्ति के संकेत पर ही संपन्न होते हैं। विश्व के संपूर्ण प्राणी इसी में अनुरक्त देखे जा सकते हैं।

विशेषः

1. नारी शक्ति स्वरूपा है।
2. स ष्टि का निर्माण कार्य शक्ति करती है।
3. शक्ति के अभाव में किसी का कोई महत्व नहीं।
4. दुःख से नहीं डरना चाहिए।
5. विराट चेतना लीला का आनंद ले रही है।

दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप।
जगत की ज्वालाओं का मूल;
ईश का यह रहस्य वरदान
कभी मत जाओ इसको भूल।

शब्दार्थः रजनी = रात्रि। नवल प्रभात = नवीन प्रातःकाल। झीना = पतला। ज्वालाएं = रजनी । विपत्तियां। ईश - ईश्वर।

प्रसंगः सुख-दुख का अन्योन्याश्रय संबंध है। ये परस्पर सहयोगी हैं। दिवस-रात्रि के समान ही सुख-दुख का अस्तित्व है। सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख का आना अवश्यंभावी है।

संदर्भः सुख का जन्मदाता दुख है। यदि दुख न हो तो सुख कहाँ से आए? दुख अभिशाप नहीं अपितु वरदान है।

व्याख्याः

प्रलय के दुख से दुखी होकर मनु व्याकुल हो गए हैं जिसके परिणामस्वरूप उनमें विरक्त आ गई है जीवन के प्रति अनुरक्त करने हेतु श्रद्धा मनु को समझाती हुई दर्शन एवं तर्कशास्त्र को अपना आधार बनाती है। वह कहती है कि जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् प्रभात का आना अनिवार्य है। उसी प्रकार दुख के बाद सुख का आना अनिवार्य है। दुख में ही सुख का जन्म एवं विकास होता है। यह प्रकृति का निश्चित नियम है। दुख-सुख का आवागमन क्रम दिन-रात के आवागमन क्रम के समान है। यह मात्र समान ही नहीं अपितु अनिवार्य एवं निश्चित है। आकाश के नीले, झीने एवं पतले परदे के भीतर ही उषा छिपी रहती है। उसी प्रकार दुख के पतले परदे के पीछे ही सुख छिपा रहता है। श्रद्धा ने भी रोम वाले नीले मेषों का झीना वस्त्र पहन रखा है जिमसें अपना सुख गात छिपा रखा है।

दुख के परदे को नीला कहा गया है क्योंकि अंधकार या कालिमा दुख का प्रतीक है। कवि नीले-काले में अन्तर नहीं समझता है। परदे को पतला इस लिए कहा गया है क्योंकि दुख के भीतर छिपा हुआ सुख अपने आप को छिपा नहीं पाता है। दुख के बाद सुख की प्राप्ति होगी, यह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

तुमने जिस दुख को संसार का शाप समझ लिया है और जिसे तुम संसार की विपत्तियों का मूल कारण मानते हो वह तो ईश्वर का रहस्यमय वरदान ही है। तुम्हें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए। दुख ईश्वर का रहस्यमय वरदान है, क्योंकि देखने में तो दुख शाप ही दिखाई देता है, किंतु गंभीर द ष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि बिना दुख के सुख बेकार हो जाता है।

विशेषः

1. भाषा सरल है।
2. भाव गांभीर्य।
3. सुख-दुख अवश्यंभावी हैं।
4. एक दूसरे के अभाव में किसी का अस्तित्व नहीं।

5. सांग रूपक अलंकार है।
6. सुमित्रा नन्दन पंत ने कहा है-

"जग पीड़ित रे अति सुख से,
जग पीड़ित रे अति दुख से।" - पंत
"मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख।
सुख दुख की खेल मिचौनी,
यह जीवन खोले अपना मुख।।" - पंत

7. सुख का जन्मदाता दुख है।
8. दुख की रजनी में सुख के नवल प्रभात का विकास होता है।
9. दुख अभिशाप नहीं ईश्वर का रहस्यमय वरदान है।
10. समरसता का सिद्धान्त प्रतिपादित है।
11. दुख के बिना सुख का अस्तित्व नहीं।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।
नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान।

शब्दार्थः विषमता = वह अवस्था जिसमें संसार का जन्म होता है, जब तक प्रकृति सम अवस्था में रहती है, तब तक निर्माण नहीं होता है। जब प्रकृति में विषमता आती है, उसके गुण परस्पर एक-दूसरे में गुंथ जाते हैं, तब स ष्टि का जन्म होता है। विषमता का अन्य स्पष्ट अर्थ है। सुख एवं दुख की विषमता। स्पंदित = कंपित, गतिमान। भूमा = अखंड सत्ता जिसमें सभी कुछ आ जाता है। मधुमय दान-सुंदर दान। समरसता = विषमता का अनुभव, शांत गंभीर, अवस्था। कारण = स ष्टि का कारण। जलधि = सागर। व्यथा = दुख। मणिगण = मणियों का समूह। द्युतिमान = कांतिमान।

प्रसंगः विषमता के माध्यम से प्रसाद ने श्रद्धा के द्वारा समरस्ता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करवाया है। यही सुख-दुख मधुमयी भूमिका पर पहुंचाता है। इसी को "तस्य भूभावै सुखम्" कहा गया है। विषमता में ही स ष्टि का निर्माण कार्य होता है।

संदर्भः सागर ऊपर से विषम अर्थात् अशांत एवं अंदर से शांत होता हे। संपूर्ण स ष्टि का यही नियम है। दुख में ही सुख का जन्म एवं विकास होता है।

व्याख्याः

सुख एवं दुख की विषमता को परिणाम स्वरूप संपूर्ण संसार गतिमान है। यदि कहीं सुख और कहीं दुख न हो यदि सर्वत्र सुख ही सुख हो या दुख ही दुख हो तो स ष्टि का विकास रूक जाए। सुख और दुख ही विकास के मूल कारण हैं। यह तो अखंड शक्ति का सुंदर दान है जो स ष्टि के विकास में सहायक है। मनुष्य सदैव दुखों से बचने का प्रयास करता है और सुख प्राप्ति के लिए साधन रत रहता है। दुख निवारण तथा सुख साधन के इसी प्रयास के फलस्वरूप सभ्यता का इतना विकास हो पाया है। मनुष्य ने जल विद्युत शक्ति तथा अणु शक्ति की खोज क्यों की? क्योंकि वह अपने को दुख से बचाकर अधिकाधिक सुख प्राप्त करना चाहता हैं देव जाति का विनाश क्यों हुआ? क्योंकि उन्होंने मात्र सुख की साधना की थी उन्हें दुख का अनुभव नहीं था। यह यथार्थ सत्य है जिसका प्रतिपादन करते हुए प्रसाद ने लिखा है-

सुख केवल सुख का वह संग्रह,
केन्द्रीभूत हुआ इतना,
छायापथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।

इससे भी यही सिद्ध होती है कि सुख और दुख वरदान हैं, शाप नहीं। ऊपरी द ष्टि से देखने पर संसार में सुख और दुख की विषमता दिखाई देती है किन्तु गंभीर द ष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि यहाँ नित्य की समरसता का अधिकार है। इसके मूल में गंभीरता और शांति है। इस संसार के निर्माण में इसका मूल कारण सागर के समान ही आन्दोलित हो उठता है जिस प्रकार सागर में नीली लहरें उठती हैं और उनके बीच-बीच में मणियों की कांति भी चमक उठती है, उसी प्रकार स ष्टि के कारण आंदोलन में दुख तथा सुख दोनों ही उत्पन्न होते हैं; किन्तु जिस प्रकार सागर ऊपर से विषम दिखाई देते हुए भी भीतर से समरस तथा शांत है, इसी प्रकार यह संसार ऊपर से विषम दिखाई देते हुए भी भीतर से शांत है।

विशेष

1. विषमता एवं समरसता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।
2. सुख-दुख मधुमयी भूमिका पर पहुंचाता है।
3. सागर ऊपर से अशांत एवं भीतर से शांत है।
4. दुख-सुख विकास का यही सत्य है।
5. नीली लहरों के बीच मणि बिखरती है।
6. स ष्टि का विकास विषमता में होता है।
7. सुख-दुख में स ष्टि का निर्माण कार्य चलता है।
8. मनुष्य सुखों के पीछे भागता है और दुखों से भागता है।
9. कबीर ने भी कहा है-

सुख में सुमिरन न करे, दुख में करे सब कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, दुख काहे को होय।।
- कबीर

लगे कहने मनु सहित विषादः
"मधुर मारुत से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध
उठाते मानस में सविलास।
किंतु जीवन कितना निरुपाय।
लिया है देख नहीं संदेह,
निराशा है जिसका परिणाम
सफलता का यह कल्पित गेह।"

शब्दार्थः सहित विषाद = दुख सहित। मधुर मारुत = सरस पवन। उच्छ्वास = सांस, भाव। अबाध = मुक्त। मानस - हृदय, मानसरोवर। सविलास = माधुर्य के साथ। निरुपाय = असहाय। कल्पित गेह = कल्पना का घर।

प्रसंगः श्रद्धा द्वारा कर्म हेतु प्रेरित मनु जब उसके उपदेशों को सुनते-सुनते थक गये तो दुखी होकर बोल उठे।

संदर्भः श्रद्धा के उपदेशों से दुखित मनु ने कहा कि मैंने जीवन को भली प्रकार देख लिया है यह कितना निरुपाय है मैं जानता हूँ।

व्याख्याः

श्रद्धा के वचन सुनकर मनु दुखी होकर बोले कि जिस प्रकार पवन की झकोरे सागर में आकर्षक एवं स्वच्छंद लहरों को जन्म देती हैं, उसी प्रकार तुम्हारे ये भाव मेरे हृदय में उत्साह की शक्तिशाली लहरों सा भाव उत्पन्न कर रहे है। तुम्हारी अनुपम सीखों ने मेरे हृदय को उत्साह से भर दिया है। फिर भी कर्मक्षेत्र में उतरने की क्षमता एवं सामर्थ्य अपने में नहीं जुटा पा रहा हूं।

क्योंकि मैंने यह निश्चित रूप से भली भांति देख लिया है कि जीवन अत्याधिक असहाय एवं निराश्रय है। विश्व में कोई किसी का सहायक नहीं है। सभी अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए बेचैन हैं। इसमें संदेह का प्रश्न ही नहीं उठता है कि मानव जीवन ही नहीं संपूर्ण प्राणी का जीवन असहाय है। यद्यपि स्वर्गीय राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त कहा है-

"आशा पर संसार टिका है,
आशा रखो आशा रखो भाई।" -गुप्त

किन्तु कितनी ही आशाएं लगाई जायें। अन्त में जीवन के हाथ निराशा ही आती है जीवन में सफलता या आशा की बातें करना मात्र कल्पना के कुछ और नहीं है। जीवन की सफलता एक कल्पित घरौंदे के समान है घर के समान भी नहीं जिसे बच्चा बचपन में अपनी कल्पना के आधार पर मात्र कुछ मिट्टी के ढेर एकत्र कर बना लेता है। बनाते देर नहीं होती कि उसे धराशायी कर दूसरा घरौंदा (घर) बनाने में तल्लीन हो जाता है। यही स्थिति मानव जीवन के आशा की है। जीवन सफलता कल्पित घर के समान कभी भी यथार्थ रूप ग्रहण नहीं कर सकती है।

विशेषः

1. तत्सम शब्दों का चयन।
2. भाषा सरल।
3. भाव गांभीर्य।
4. दार्शनिकता का पुट।
5. जीवन की क्षण भंगुरता।
6. आशा की अपेक्षा निराशा की प्रधानता।
7. मानस-समुद्र एवं हृदय दो अर्थ श्लेषालंकार।
8. उपमा, श्लेष तथा सांगरूपक अलंकार।
9. मनु की निराशा का वर्णन।

कहा आगंतुक ने सस्नेहः
"अरे तुम इतने हुए अधीर!
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मर कर जिसको वीर।
तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;
तरल आकांक्षा से है भरा।
सो रहा आशा का आह्लाद।

शब्दार्थः आगंतुक = आने वाली श्रद्धा। सस्नेह=प्रेम के साथ। जीवन का दाँव = जीवन की बाजी। करुण = दुखी करने वाला। क्षणिक = एक क्षण भर का, अस्थाई। दीन अवसाद = दीनतापूर्ण दुख। तरल=चंचल। आकांक्षा = सजीव इच्छा। आशा का आह्लाद = आशा का हर्ष, खुशी।

प्रसंगः श्रद्धा के प्रेरणामय उपदेश से दुखी होकर मनु ने कहा कि आशा कल्पना है। अंत में जीवन के हाथ निराशा ही आती है। मैंने अच्छी प्रकार देख लिया है। पुनः मनु को समझाने के लिए श्रद्धा बोल पड़ी। वह कहाँ हार मानने वाली थी, पुरुष जिसे चाहे वह उसे मिले या न मिले किन्तु नारी जिसे चाह ले उसे प्राप्त करके ही दम लेती है।

संदर्भः

श्रद्धा निराशा में नहीं आशा में विश्वास करती है। वह आर्य कन्या है। उसने आर्यों के कर्म तथा भोग के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए मनु को निराशा तथा त्यागमय जीवन बिताने को छोड़कर कर्मक्षेत्र में पदापर्णकर भोग की ओर प्रेरित करते हुए कहा हुए कहा।

व्याख्याः

श्रद्धा ने प्रेम लपेटे, अत्याधिक स्नेह के साथ मनु से कहा कि तुम इतने आकुल-व्याकुल क्यों हो गए हो? अरे तुम्हें क्या हो गया है? जीवन की जिस बाजी को वीर-बहादुर पुरुष न्यौछावर करके भी प्राप्त करने का आजीवन प्रयास करते रहते हैं, तुमने जीते जी उसे कैसे हार दिया ? सफलता ही जीवन का उद्देश्य है। उस सफलता से तुम कैसे विमुख हो गए। अन्य उत्साही वीर प्राणों की बाजी लगाकर म त्यु कीमत पर भी सफलता की प्राप्ति को सस्ता समझते हैं।

कबीर ने भी कहा है-

"प्राण दिए जौ हरि मिलें तो भी सस्ता जान।" - कबीर

कबीर के लिए हरि की प्राप्ति जीवन की अपूर्व सफलता थी। मनु तुम भी जीवन में सफल बनो।

विनाश की लीला से मुक्ति पाने का मार्ग तपस्या नहीं है। तपस्या मन एवं शरीर को मात्र कष्ट एवं पीड़ा पहुंचाने का नाम है। तपस्या में सत्यता नहीं है। जीवन सत्य है। जीवन मे सुख-दुख भोग यथार्थ है यही मानव जीवन का अपूर्व सत्य है। त्याग एवं विरक्ति जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं। उसे छोड़ दो। तुम्हें त्यागी एवं विरक्त बनकर नहीं रहना चाहिए अपितु जीवन में अनुरक्त रहकर विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। दुखद दीनता और वेदना का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि ये क्षणभंगुर हैं। कुछ समय पश्चात तुम इस विनाशलीला को भूल जाओगे। तुम्हें याद भी नहीं रहेगा कि कभी तुम्हें दुख मिला था। सुख आने पर दुख स्वतः विस्म त हो जाता है अन्यथा प्रसाद जी क्यों कहते-

विस्म ति आ, अवसाद घेर ले
नीखते! बस चुप कर दे;
चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे।" -प्रसाद-कामायनी चिंता सर्ग

विस्म ति सुखदायी है। इस समय तुम्हारे जीवन की सजीव इच्छाओं से उत्पन्न हुई आशा की प्रसन्नता चिर निद्रा में खर्राटे ले रही है उसे जगाने की आवश्यकता है। बिना जागे तुम्हारी जीवन इच्छाओं का विस्तार नहीं है। निराशा और दुख ने तुम्हारे जीवन की इच्छाओं को बलात् दबोच कर जीवन के हासिए पर डाल रखा है। तुम निश्चय जानो। शीघ्र ही तुम्हारी निराशा-निशा का अंत जीवन- प्रभात करेगा। तुम्हारी सारी निराशाएं तिरोहित होंगी और तुम में सजीव इच्छाओं का प्रबल संचार होगा।

विशेषः

1. प्रसाद के दर्शन का गत्यात्मक रूप।
2. आर्य सिद्धान्त त्याग का नहीं अपितु कर्म एवं भोग का हैं।
3. भाषा सरल।
4. तत्सम शब्दावली।
5. आशावादी भारतीय दर्शन का प्रतिपादन।
6. तप नहीं जीवन सत्य।
7. नवीन आकांक्षाओं से परिपूर्ण है।

प्रकृति के यौवन का श ंगार
करेंगे कभी न वासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र

आह उत्सुक है उनकी घूल।
पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक;
नित्य नूतनता का आनंद
किये है परिवर्तन में टेक।

शब्दार्थः पुरातन = प्राचीनता। निर्मोक = केंचुली। नूतनता = नवीनता। टेक = आश्रय

प्रसंगः पीले पत्ते झड़ते हैं, नवीन कोंपलें आती हैं पतझड़ के बाद बसंत आता है। रात्रि के बाद दिवस का आगमन होता है। दुख के बाद सुख आता है। प्रकृति को परिवर्तन में विश्वास है। पुरातनता को नवीनता सदैव किनारे पर लगाती है।

संदर्भः मनु के उदासी मन को सांत्वना देते हुए प्रकृति के अनेक उदाहरण देकर समझाती हुई श्रद्धा कहती है कि बासी पुष्पों और पुरानी केंचुलों की चिंता छोड़कर नित्य नूतनता का आनंद लो।

व्याख्याः अपने जीवन पर इतना केन्द्रित मत हो। सिर उठा कर प्रकृति को देखो। क्षण-क्षण कैसे रूप परिवर्तन कर रही है। तभी तो कहा गया है-

"क्षणे - क्षणे यत् नवतामुपेति तदैव रूप रमणीयतायाः"

अर्थात् जो क्षण-क्षण अपना रूप परिवर्तित करता रहता है उसी को सुंदरता की संज्ञा दी जाती है।

पंत ने भी लिखा है-

"कहां आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?"
रश्मिबंध-पंत-प ४६/१३६६
'अहे निष्ठुर परिवर्तन।"
आधुनिक-कवि पंत-प .. ३६
अंग्रेजी में कहा गया है-
"Change is the unchangeful law of nature"

अर्थात् परिवर्तन प्रकृति का अपरिवर्तनीय नियम है। श्रद्धा मनु का ध्यान प्रकृति के इन्हीं परिवर्तनों की ओर आकर्षित करते हुए कहती है कि मुरझाए हुए फूल कभी प्रकृति की साज-सज्जा में काम नहीं आते हैं। पौधे या व क्ष उनका त्याग कर देते हैं वे अपना कार्य समाप्त करके पुनः प थ्वी तत्व में विलीन हो जाते हैं। उनको अपने में समेटने हेतु घूल बड़ी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा करती रहती है। पूर्ण विकसित होकर पुष्प मुरझा जाते हैं और झड़ कर अपने पूर्व रूप अर्थात् पंच भौतिक तत्वों में विलीन हो जाते हैं। नवीन पुष्प ही प्रकृति की साज-सज्जा करते हैं। देवताओं का विनाश दुखदायी नहीं है क्योंकि वे तो बासी फूल थे उन्हें मुरझाकर धूल धूसरित होना ही था।

जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी केंचुल का परित्याग अतिशीघ्र कर देता है इसी प्रकार प्रकृति अपनी केंचुली के परिवर्तन में किंचित मात्र भी विलंब नहीं करती है क्योंकि प्रकृति पल भर के लिए भी प्राचीनता की केंचुली को सहन नहीं कर सकती है। उसे नित्य-प्रति नवीनता ही आनंद प्रदान करती है। नवीनता के इसी आनंद के परिणाम स्वरूप प्रकृति नित्य परिवर्तनशील रहती है। देव जाति अपनी प्राचीनता के कारण ही विनष्ट हुई है। प्रसाद ने मनु द्वारा उसे पुरातन 'अम त' के रूप में स्मरण कराया है। देव जाति का विनाश प्रकृति की स्वाभाविक गति के स्वरूप हुआ है। वह चिंता का विषय नहीं है। उसको सोच-सोचकर तुमको इतना चिंतित एवं दुखी नहीं होना चाहिए अपितु प्रकृति के परिवर्तन पर विचार कर उसके अनुसार ही जीवन में नवीनता से प्रवेश करने का प्रयास करना चाहिए।

विशेषः

1. शब्द तत्सम।
2. भाषा सरल।

3. भाव में गांभीरता।
4. पुरातनता का निषेध।
5. नूतनता का स्वागत।
6. देव जाति का विनाश चिंतनीय नहीं क्योंकि वह प्राचीन हो चुका था।
7. परिवर्तन प्रकृति का अकाट्य नियम।
8. उपमा अलंकार।
9. परिवर्तन में ही नवीनता है।
10. तुलना के लिए पंत की परिवर्तन 'एवं 'निष्ठुर परिवर्तन' कविताएँ देखिए।

एक तुम, यह विस्त त भू खंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनंद।
अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते? तुच्छ विचार?
तपस्वी! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म विस्तार।

शब्दार्थः विस्त त भुखण्ड = विशाल प थ्वी का भाग। अमद = प्रचुर। यजन = यज्ञ। आत्म विस्तार = अपना विस्तार।

प्रसंगः स ष्टि के विनाश एवं स जन-का क्रम युगों से चलता आया है जो युगों पर आधारित है। देव, गंधर्व एवं असुर उन्हीं के पद चिन्हों पर अधीर होकर चलते आये हैं। युग रूपी चट्टानारें पर उनके पैरों के निशान देखे जा सकते हैं। स ष्टि का क्रम निरंतर चलता आया है चलता रहेगा। इसलिए मनु तुम भी स ष्टि निर्माण में सहायक बनो।

संदर्भः मनु को अकेले तपस्या एवं यज्ञ करते हुए देख कर श्रद्धा उन्हें 'भोग का कर्म', 'कर्म का भोग' का संदेश देते हुए विशाल प थ्वी भाग पर स ष्टि निर्माण एवं विकास की प्रेरणा देती है। साथ ही कहती है कि यज्ञ कभी अकेले नहीं किया जाता है।

व्याख्याः प थ्वी का यह विशाल भाग तुम्हारे सामने है जहां पर तुम अकेले हो, तुम्हारा कोई सहयोगी, साथी नहीं है। प थ्वी का यह भाग प्राकृतिक सौंदर्य से आपूरित है। चारों ओर प्रकृति अपनी दिव्य छटा बिखेर रही है। प्रकृति अपने कर्मों का भरपूर आनंद उठा रही है। तुम भी कर्मरत हो। कर्म करने वाले को ही भोग का अधिकार होता है। भोगी को ही कर्म अर्थात् कर्तव्य करने की छूट मिलती है। भोग का व्यापक प्रभाव पड़ता है। कर्म के भोग तथा उसके व्यापक प्रभाव में ही हम जड़ प्रकृति से सजीव आनंद की प्राप्ति कर सकते हैं। कर्म से विमुखता में प्रकृति का अपार सौंदर्य व्यर्थ प्रतीत होता है। जड़ प्रकृति की सजीवता एवं सरसता विनष्ट हो जाती है जबकि कर्म पथ का अनुसरण करने से यही जड़ प्रकृति के सौंदर्य में दिन प्रतिदिन निखार की अभिव द्धि होती है। कांतिमय प्रकृति और अधिक आनंद प्रदायिनी बन जाती है। प्रकृति पुरुष का अन्योन्याश्रय संबंध है।

तुम्हें अकेला देखकर मुझे अत्यधिक चिंता हो रही है। तुम यज्ञ कर रहे हो। तुम्हें यह नहीं मालूम कि अकेले किए गए यज्ञ का फल नहीं मिलता है। यज्ञ सदा युग्म करते हैं। अकेले व्यक्ति द्वारा यज्ञ की संपन्नता का विचार अवांछनीय है। तुम अपने को तपस्वी समझते हो तपस्वी किसी आकांक्षा से प्रेरित हो तप करता है। उद्देश्य विहीन तप का क्या फल। तुममें किसी प्रकार की इच्छा, आकांक्षा या आकर्षण द ष्टिगोचर नहीं हो रहा है। आकर्षण विहीनता शक्तिहीनता का प्रतीत है। शक्ति से तुम्हें कोई लगाव, प्रेम या आसक्ति नहीं है। तुम्हारे विचार कितने तुच्छ हैं। तुम किसी से प्रेम नहीं करते हो। आकर्षण विहीनता में तुम आत्म विस्तार नहीं कर सके। आत्मा विस्तार मानव का परम कर्तव्य है। कर्म नहीं करोगे तो भोग का आनंद कैसे प्राप्त करोगे ? भोगी को कर्म करने एवं आत्म विस्तार का अधिकार होता है।

विशेष:

1. आत्म प्रसार का संकेत है।
2. स ष्टि क्रम में आत्म विकास सहयोगी है।
3. भाषा सरल एवं सुष्ठु है।
4. तत्सम शब्दों का बाहुल्य है।
5. कर्मवाद एवं भोगवाद का प्रतिपादन है।
6. जड़ प्रकृति भी चेतन आनंद दायिनी होती है।
7. एक व्यक्ति को यज्ञ करने का अधिकार नहीं।
8. आकर्षण एवं प्रेम मानव अनिवार्यता है।
9. कबीर ने भी कहा है-

   "है प्रेम जगत में सार और कुछ सार नहीं है।"

   "जा घट प्रेम न संचरे सो घट जान मसान।"
10. तुलसी दास ने भी कहा है-

"रामहिं केवल प्रेम पियारा।
जानि लेहूँ जेहिं जानन हारा।''
दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलंब;
तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊँ मैं बिना विलंब!
समर्पण लो सेवा का सार
सजल संस ति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।

शब्दार्थ: अवलंब = सहारा। सहचर = साथी। उऋण = मुक्त। बिना विलम्ब = बिना देर किए। सजल संस ति = संसार रूपी सागर। सत्सर्ग = बलिदान। पदतल = पांव के नीचे। विगत विकार = निश्छल रूप से।

प्रसंग: मनु को प्रेरणा एवं उपदेश देते देते जब मनु पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब श्रद्धा का निश्छल प्रेम मुखरित हो उठा और उसने मनु के समक्ष सहचर बनने का प्रस्ताव रख कर आत्म समर्पण कर दिया।

संदर्भ: प्रेमिका के समझने पर भी जब प्रेमी के मन में प्रेम का संचार नहीं होता है तब ऐसी अवस्था में प्रेमिका को स्वयंमेव सहचर बनने प्रस्ताव रखना पड़ता है। प्रस्ताव को स्वीकृत होता न देख प्रेम की पराकाष्ठा मुखरित होने तथा समर्पण में होती है। श्रद्धा द्वारा इसी पराकाष्ठा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई। श्रद्धा स्वीकृति की प्रतीक्षा किए बिना अपने मन्तव्य की ओर त्वरित गति से अग्रसर होती जाती है।

व्याख्या:

तुम्हारा अकेलापन तुम्हारे लिए भार बन गया है जिसके नीचे तुम दबते चले जा रहे हो। एक से दो होने की कामना विहीनता तुम्हें खोजी नहीं बना रही है। सहारे के लिए साथी की खोज कर अपना भार हल्का कर सकते हो। एक से दो भला। एकाकी जीवन तुम्हें दु:ख दे रहा है। तुम्हारा दुखी होना मुझसे देखा नहीं जाता है। तुम सहायक नहीं ढूंढ़ रहे हो जिसकी तुम्हें परमावश्यकता है। ऐसे में मैं अपना यह कर्तव्य समझती हूं कि मैं तुम्हारी जीवन संगिनी बनकर आजीवन तुम्हारा सहयोग करती रहूँ। इस प्रकार तुम्हें सहयोगी मिल जाएगा और मुझे अपने कर्तव्य के भार से मुक्ति मिल जाएगी। इसमें अब में किसी प्रकार की देरी नहीं करना चाहती। मुझे स्वीकृति की अपेक्षा भी नहीं है। इसलिए बिना प्रतीक्षा किए मैं आत्म समर्पण करती हूँ।

सेवा का सार समर्पण ही है संसार रूपी सागर को पार करने में समर्पण पतवार का कार्य करता है। समर्पण नारी का परम धर्म है। आज से मेरा यह जीवन बिना किसी छल कपट के तुम्हारे चरणों में ही बलिदान हो जाएगा। मेरी यही कामना है कि आजीवन जीवन संगिनी के रूप में मैं तुम्हारी सहयोगिनी बनी रहूँ। हम दोनों को कोई एक दूसरे से अलग न कर सके।

विशेषः

1. शब्दावली तत्सम।
2. भाषा सरल।
3. भाव की गंभीरता।
4. भारतीय नारी का स्वरूप।
5. समर्पण भावना।
6. अनुप्रास।
7. भाषा का माधुर्य गुण।

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ।
तुम्हारे लिए खुला है पास।
बनो संस ति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

शब्दार्थः मधुरिमा = माधुर्य। अगाध = अथाह। रत्ननिधि = रत्नों का भंडार, सुंदर भावों से भरा हुआ। स्वच्छ = निर्मल। संस ति = संसार। मूल रहस्य = मूल कारण। सौरभ = सुगन्धि, यश। सुमन = फूल, सुंदर मन से कर्म करो, सुंदर कर्म करो।

प्रसंगः नारी सुलभ गुणों का वर्णन करते हुए श्रद्धा अपना सर्वस्व समर्पण करती है तथा मनु को स ष्टिक्रम चलाने या आत्म विस्तर करने का सुझाव देती है।

संदर्भः श्रद्धा का मनु के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण करते हुए आत्म विस्तार के लिए प्रेरित किया गया है।

व्याख्याः श्रद्धा अपने गुणों का उल्लेख करते हुए मनु से कहती है आज मैं तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पित करती हूँ। दया, स्नेह, ममता, सौंदर्य और अथाह विश्वास देती हुँ स्वीकार करो। ये सभी नारी के आंतरिक गुण या विभूतियाँ हैं जिन्हें प्राप्त कर मनुष्य को जीवन में सफलता स्वाभाविक रूप से मिल जाती है। श्रद्धा के सहयोग से मनु के लिए ये सहजता से उपलब्ध गुण हैं। मेरा हृदय रत्न रूपी भावों से भरा अपूर्व भंडार है जिसका द्वार आज से सदैव तुम्हारे लिए खुला रहेगा। मेरा सानिध्य सदा तुम्हें प्राप्त रहेगा इसलिए यह निर्मल हृदय का रत्न भंडार सदैव तुम्हारे पास रहेगा। तुम्हारे आदेशों का मैं पूर्ण रूपेण पालन करूंगी।

तुम संसार के मूल कारण बनो। कारण से कार्य और कार्य से परिणाम सामने आता है। देव स ष्टि के विनाश के पश्चात् मानव स ष्टि का प्रारम्भ हुआ। जिसका श्रेय श्रद्धा एवं मनु को है इसलिए मनु स ष्टि क्रम में मानव स ष्टि के कारण बने। मनु के द्वारा ही मानवता रूपी बेल संपूर्ण संसार में फैली जिसने पल्लवित एवं पुष्पित होकर विश्व को सुगन्धि से भर दिया। इसीलिए श्रद्धा मनु से कहती है कि सुमन अर्थात् कामदेव के समान पंच पुष्प (पांच बाणों) का खेल खेलो अथवा सुंदर मन से सुंदर कर्म करो जिसमें संपूर्ण विश्व में मानवता का विकास हो। मानव रूपी पुष्प की सुगन्धि से सारा संसार भर जाय। अर्थात सुंदर मानव स ष्टि का विकास हो।

विशेषः

1. भाषा में सरलता।
2. भावों में तत्समता।
3. भावों में गंभीरता।
4. श्लेष, उपमा, रूपक अलंकार।
5. 'सुमन' में (अच्छे मन, पुष्प) श्लेष।
6. सौमनस्य की भावना पर बल।
7. नारी सुलभ गुणों का वर्णन।

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
"शक्तिशाली हो, विजयी बनो"
विश्व में गूंज रहा जय गान।
डरो मत अरे अम त संतान
अग्रसर है मंगलमय; व द्धि;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र
खिंची आवेगी सकल सम द्धि।

शब्दार्थः विधाता - ईश्वर। मंगल वरदान - शुभ वरदान। अम त संतान - देव पुत्र। अग्रसर - विकासमान। मंगलमय व द्धि - शुभ विकास। सम द्धि - संपत्ति।

प्रसंगः श्रद्धा के पूर्ण समर्पण के पश्चात् भी मनु कुछ नहीं बोलते हैं। ऐसी अवस्था में भी श्रद्धा निराश नहीं होती वह मनु का ध्यान विधाता के वरदान की ओर आकर्षित करती है।

संदर्भः मानो उस समय विधाता ने आकाशवाणी की कि "शक्तिशाली हो, विजयी बनो।" मनु का जयगान विश्व में गुंजार करने लगा। श्रद्धा ने सुना और उसकी ओर मनु का ध्यान दिलाते हुए पूछा-

व्याख्याः और क्या तुम्हें परमात्मा का कल्याणकारी वरदान नहीं सुनाई पड़ रहा है? संपूर्ण विश्व में तुम्हारे विजय का जय गान हो रहा है कि तुम शक्तिशाली हो और समस्त विपत्तियों का सामना करते हुए उन पर विजय प्राप्त कर विजयी बनो।

हे देव पुत्र। तुम किसी भी भय से भयभीत न हो। निश्चित ही तुम्हारी उन्नति होगी। जीवन पूर्ण आकर्षण का केन्द्र है जिससे खिंच कर विश्व की समस्त विभूतियां तुम्हारे पास चली आयेगी। तुम्हें स्वयमेव प्राप्त हो जायेंगी। तुम्हारी सज्जनता सर्वविदित है। सज्जनों के पास संपत्ति स्वयं चली आती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है-
"सिमिट सिमिट जल भरहिं तलावा।
जिमि सद्गुण सज्जन पहिं आवा।।"

- तुलसीदास मानस

सद्गुणों के आ जाने पर सम द्धि का अभाव नहीं रह जाता है। तालाब पानी एकत्र करने के लिए यत्न नहीं करता है। अपितु वर्षा ऋतु में पानी स्वयं तालाब में एकत्र हो जाता है। शक्ति संपन्न व्यक्ति न केवल विजय का अधिकारी बन जाता है अपितु ऋद्धियां-सिद्धियां अर्थात् सभी विभूतियां उसके पास चली आती है।

विशेषः

1. तत्सम शब्दावली।
2. सरल भाषा।

3. भाषा प्रसाद गुणमयी।
4. अनुप्रास अलंकार।
5. विधाता की आकाशवाणी।
6. ईश्वर का शक्तिशाली एवं विजयी बनने का वरदान।
7. विश्व कल्याण की श्रद्धा की मानसिक कामना।
8. जीवन आकर्षण का केन्द्र है।

देव असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटाकर आज;
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मग का चेतन राज।
चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य;
विश्व के ह दय पटल पर दिव्य
अक्षरों में अंकित हो नित्य।

शब्दार्थः ध्वंश-विनाश। प्रचुर उपकरण-बहुत अधिक सामान। पूर्ण हो मन का चेतन राज-मन का संसार पूर्ण रूप से निर्मित हो जाए। अखिल-संपूर्ण। ह्रदय पटल-ह्रदय रूपी आधार। दिव्य अक्षर-अलौकिक अक्षर, जो कभी न मिट सके। अंकित हो-लिखा जाय।

प्रसंगः देवता विभिन्न विभूतियों एवं सम द्धियों के भंडारण में पूर्ण सफल हुए थे। दुख का उन्हें आभास तक नहीं था जिसके परिणाम स्वरूप उनका विनाश हुआ। विनष्ट देवगण अपने पीछे अपार धन-संपत्ति छोड़कर गए हैं जो मानव के लिए कल्याणकारी होगी।

संदर्भः अपार संपत्ति मानव विकास का मार्ग प्रशस्त कर मानव सत्यों का इतिहास दिव्याक्षरों में अंकित करेगी। मानव विकास हेतु साधन की कमी नहीं होगी।

व्याख्याः देवताओं की असफलता का कारण दुख का ज्ञान न होना है। वे मात्र सुख से परिचित थे। इसीलिए उनका विनाश हुआ। सुख साधन स्वरूप उन्हें अपार संपदा एकत्रित कर रखी थी उन साधनों का उपयोग अब निर्माण कार्यो में होगा। आज वे सब सुख उपकरण मानव को संपत्ति के रूप में मिले हुए हैं। मानव को निर्माण कार्य में आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ेगा। उन्हीं के सहारे मानसिक भावानुसार नवीन संसार की पूर्ण प्रतिष्ठा होगी। मकान गिरने पर अपार मलवा नव निर्माण में अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। देव सभ्यता के ध्वंस से मानव सभ्यता के नव निर्माण में अपार साधन सहायक सिद्ध होंगे। देवताओं के गुणों से मानव जाति को गुणवान बनाया जायेगा। उनके अवगुणों से मानव को दूर रखकर पूर्णतः नवीन सभ्यता एवं संस्क ति को विकसित किया जा सकेगा।

चेतन स ष्टि का इतिहास मानव जाति के भावों का सत्य ही है। इतिहास मानव के समष्टिगत भावों का संकलन होता है। इतिहास उसके समस्त क्रियाकलापों का उल्लेख होता है। श्रद्धा मनु से कहती है कि तुम्हारे शुभ कर्मो एवं प्रयासों के परिणामस्वरूप स ष्टि का इतिहास नित्य-प्रति समस्त संसार के ह्रदय-फलक पर अलौकिक एवं अमिट अक्षरों में अंकित होता रहे-मानव जाति शनैः-शनैः विकास करती हुई जीवन पथ पर अग्रसर रहे। इस प्रकार मानव जाति का अपूर्व इतिहास लिखा जाए जिसमें घ णा एवं द्वेष का स्थान न हो। उसमें पवित्र भावों की अभिव्यक्ति की गई हो। प्रसाद ने मानव की भावशक्ति पर बल को केंद्रित किया है।

विशेषः

1. सरल भाषा में उच्च विचार।
2. तत्सम शब्दावली का प्रयोग।

3. रूपक अलंकार।
4. सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का समन्वय।
5. मानव में दैवी गुणों का समावेश।
6. देवताओं के अवगुणों से मुक्त मानव।
7. सर्वथा नवीन मानव सभ्यता एवं संस्क ति का निर्माण।
8. आदर्श स ष्टि का निर्माण जिसमें ईर्ष्या-द्वेष न हो।
9. मानव भावों का प्रधानता।

विधाता की कल्याणी स ष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण;
पटें सागर, बिखरे ग्रह पुंज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण
उन्हें चिनगारी सद श सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानंद;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बंद।

शब्दार्थः विधाता-ब्रह्मा। कल्याणी स ष्टि-कल्याणमय संसार। बिखरें ग्रह पुंज-नक्षत्रों के समूह छिन्न भिन्न हो जाएं। सदर्प-अभियान के साथ। अनिल-वायु।

प्रसंगः प्रलयंकारी जल प्लावन ने उथल-पुथल मचा दी थी अनेक ज्वालामुखियों को जन्म दिया था। ग्रह समूह नक्षत्र इकट्ठे हो गए थे। पर्वतों ने सागर का रूप धारण कर रखा था। संसार वायु, प थ्वी एवं जल में बंद हो गया था।

संदर्भः विनाशलीला का उल्लेख करते हुए श्रद्धा कामना करती है कि स ष्टि का स जन क्रम पुनः प्रारम्भ हो तथा वायु-जल का आधिपत्य समाप्त हो। विनाशकारी तत्व स जनकारी तत्व का रूप धारण करें।

व्याख्याः ब्रह्मा इस प थ्वी पर सफलतापूर्वक कल्याणी स ष्टि का निर्माण कार्य पूर्ण करे। जहां जल के आधिक्य ने प थ्वी को सागर रूप दे दिया है वे सागर पट जायं। जलप्लावन के समय ग्रह-समूहों का जो झुरमुट हो गया है वे बिखर जायं जिससे उनकी विनाशक शक्ति क्षीण हो जाए। अनेक स्थानों पर ज्वालामुखियों का जन्म हो गया है वे समाप्त हो चूर्ण-चूर्ण हो जाएं।

अन्य अर्थ भी लिया जा सकता है चाहे सागर पट जाएं, ग्रह पुंज बिखर कर विनाश लीला रचे या ज्वालामुखियां चूर्ण-चूर्ण होकर भयंकर ज्वाला फैंके। मानव इसकी रंचमात्र चिंता न करके अभिमान सहित उन्हें चिनगारी समझकर कुचलता रहे। प्रथम अर्थ के संदर्भ में मानव जाति आनंद पूर्वक स्वाभिमान के साथ विनाशक तत्वों को महत्ता न देकर उन्हें लघु चिनगारी समझकर उन्हें कुचल-कुचलकर नष्ट कर दे। उन्हें अग्नि का रूप अर्थात् विनाशक रूप धारण न करने दे। इस प्रकार आज से मानव-यश विश्व व्यापी बन जाये। वायु, प थ्वी या जल में यह शक्ति सीमित न रह सके। मानव सभ्यता कालजयी एवं देशजयी हो जाए।

विशेषः

1. भाषा सरल।
2. शब्द तत्सम।
3. भाव गंभीर।
4. अन्य देश मानव पुजारी, भारत मानवता का पुजारी।
5. विश्वव्यापी मानव कीर्ति की कामना।
6. विश्व कल्याण की भावना।

जलधि के फूटे कितने उत्स
द्वीप, कच्छप डूबे उतरायँ;
किन्तु वह खड़ी रहे द ढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बने
पराजय का बढ़ता व्यापार
हंसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

शब्दार्थः उत्स-झरने। कच्छप-कछुए। द ढ़ मूर्ति-अचंचल मूर्ति। अभ्युदर-सांसारिक उन्नति, भौतिक प्रगति। सविलास-आनंदपूर्वक। वह-मानवता।

प्रसंगः अर्द्ध जलप्लावन के बाद आंशिक जलप्लावन आ सकता है। चाहे पुनः उथल-पुथल मच जाए किंतु मानव उससे विचलित न होकर उन्नति के पथ पर द ढ़ता से अग्रसर रहे।

संदर्भः मानव सभ्यता इतनी सुद ढ़ एवं विकसित हो जाए कि प्राक तिक आपदाएँ उन्हें प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होते बाधित या अवरोधित न कर सके। इसका अभिप्राय यह नहीं कि मानव प्रक ति पर विजय प्राप्त कर ले अपितु प्रक ति के परस्पर सहयोग से जीवन पथ पर आगे बढ़ता जाए।

व्याख्याः संसार चाहे झरनों से भर जाए। प थ्वी जल से भर जाए। द्वीप कछुओं का रूप धारण कर डूबने-उतराने लगें। मानवता इससे प्रभावित न हो। मानव अचल मूर्ति का रूप धारण कर भौतिक उन्नति हेतु सदैव प्रयत्न करता रहे। भौतिक उन्नति आध्यात्मिक उन्नति में सहयोगी बने।

प्रसाद आध्यात्मिक थे उन पर आध्यात्मिकता का अत्याधिक प्रभाव था। भौतिकतावादियों के द ष्टिकोण से आध्यात्मिकता भौतिकता की उपेक्षा करती है किन्तु आध्यात्मिक होते हुए भी प्रसाद का द ष्टिकोण ऐसा नहीं है। संसार की भौतिक उन्नति पर उनकी विशेष आस्था है जिसका स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। इड़ा या सारस्वत प्रदेश भौतिक एवं वैज्ञानिक उन्नति के प्रतीक हैं।

सांसारिक दुर्बलताएं बल का रूप धारण कर मानव को शक्ति प्रदान करे। पराजय दुखदायी होती है। मानव जाति को कभी पराजय का मुख न देखना पड़े जिससे वह विषादग्रस्त न हो। विजय उसमें शक्ति का संचार करती रहे जिससे वह सदा आनंदित रहे। किसी भी कार्य क्षेत्र में यदि उसे पराजित होना पड़ जाए तो उसे वह विषाद का विषय न बनाकर प्रेरणा का विषय बनाए। संस्क त में भी इसी द ष्टिकोण को व्यक्त किया गया है।

"यत्ने कृते न साध्यते कः अत्र दोषः अर्थात् यत्न करने करने पर भी सिद्धि नहीं मिली इसमें मेरा क्या दोष है? यह अर्थ न लेकर ऐसा अर्थ करना श्रेयस्कर है।"

यत्न किया, सफलता नहीं, यत्न में कहां दोष या कमी रह गई जिसके कारण सफलता नहीं मिली। उसका निराकरण या दोष का परिहार करने पर निश्चित सफलता मिलेगी।

पराजय से यही प्रेरणा लेनी चाहिए कि कहाँ शक्ति के नियोजन में कमी रह गई जिसके कारण पराजय का मुख देखना पड़ा। इस कार्य के सफलता पूर्वक प्रतिपादन हेतु और अधिक शाक्ति तथा साधन की आवश्यकता है। आवश्यकतानुसार उसकी पूर्ति की जानी चाहिए। इसी द ष्टि से कहा गया है कि पराजय शक्ति संपन्नता का नाम है। पराजित व्यक्ति, समाज या राष्ट्र अत्याधिक शक्ति एवं साधन का संचय कर शक्ति संपन्न बन जाता है और कभी पराजित नहीं होता हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पराजय को प्रेरणा स्वरूप ही ग्रहण करना मानव का परम कर्त्तव्य है। यह प्रेरणा मानव को आध्यात्मिक एवं भौतिक शिखर पर पहुँचाने वाली है।

विशेषः

1. शब्दावली तत्सम्।
2. भाषा सरल।
3. भाव गंभीर।
4. विरोधाभास अलंकार-पराजय हंसाती रहे एवं शक्ति का क्रीड़ा मय संचार करे।
5. पराजय को प्रेरणा स्वरूप ग्रहण किया गया है।
6. श्रद्धा आदर्श एवं विवेक का प्रतीक।
7. बाधाओं से विचलित न हो कर द ढ़ता से उनका सामना करते हुए जीवन पथ पर अग्रसर रहें।

शक्ति के विद्युत्कन, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरूपायः
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाये।

शब्दार्थ : **विद्युत्कण-बिजली के कण, एलेक्ट्रांस।**
विकल - व्याकुल। निरूपाय-बेसहारा, बिना उपाय।

प्रसंग : भौतिक उन्नति ने जल विद्युत का विकास शक्ति के रूप में कर लिया है। अणु-परमाणु एवं ह्रास एलेक्ट्रांस को विकसित कर अपनी शक्ति में व द्धि की है ये सभी बेसहारा इधर-उधर बिखरे पड़े है।

संदर्भ : शक्तियों का आविष्कार या विकास उतना आवश्यक नहीं है जिनता उनका समन्वय आवश्यक है। बिखराव में उनकी शक्ति क्षीण होती है तथा घातक रूप अपना लेते हैं। उनको समन्वित करके जीवनोपयोगी बनाया जा सकता है।

व्याख्या : शक्ति तथा बिजली के कण अशक्त होकर इधर-उधर बिखरे पड़े है मानव-जाति उन सब का समन्वय कर अपार शक्ति प्राप्त कर सकती है। जिसके परिणाम स्वरूप सदैव विजयिनी बनी रहेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रद्धा अपने संदेश द्वारा मानव जाति को वरदान दे रही है। प्रसाद ने श्रद्धा को भाव, शक्ति, आदर्श एवं विवेक का प्रतीक माना है जो औचित्य पूर्ण है। श्रद्धा का संदेश यह प्रतिपादित करता है कि वह मात्र राग तत्व या ह्रदय तत्व का ही प्रतीक नहीं है। उसके विचार प्रौढ़ एवं प्रेरणा दायक हैं। श्रद्धा वास्तव में आस्था पूर्ण दर्शन या राग पूर्ण विचार का प्रतीक है जिसे अपनी कथनी पर पूर्ण विश्वास है। विचार तभी जीवन को विकसित करता है जब व्यक्ति के ह्रदय की संपूर्ण शक्ति उसके साथ होती है। श्रद्धा का चरित्र विश्वास पूर्ण और कर्मशील आदर्श विचार का प्रतीक है।

आज श्रद्धा के संदेश के विरोध में अणु शक्ति का भयानक खतरा द ष्टिगोचर हो रहा है जो मानव जाति का विनाश करने को तत्पर है। क्योंकि विद्धुत शक्ति का समन्वय नहीं अपितु विभाजन किया जा रहा है। अणु, परमाणु के टुकड़े टुकड़े किए जा रहे हैं जिससे उनमें विनाशक शक्ति आए।

विशेष :

1. व्यक्ति में समन्वयवादी द ष्टिकोण होना चाहिए।
2. समन्वय मानव को विजयी बनाता है।
3. श्रद्धा भाव, शक्ति आदर्श एवं विवेक का प्रतीक है।
4. भाषा सरल।
5. शब्दावली तत्सम।

नवम सर्ग

इड़ा

श्रद्धा को छोड़कर चले आने पर मनु का जीवन पुनः लक्ष्यहीन हो गया। पर्वतों, मैदानों एवं जंगलों में कहीं भी उनको शांति नहीं मिली। उन्होंने भ्रमण करते हुए, भटकते हुए हल्केपन का अनुभव नहीं किया।

घूमते-घूमते उजड़े सारस्वत प्रदेश में पहुँच गए। विश्राम करते हुए जीवन के प्रति चिंतन मग्न हो गए। जीवन संघर्षों का नाम है। जीवन में निरंतर संघर्षों की झड़ी लगी है। मनुष्य स्वयं भयभीत रहकर औरों को भयभीत करता रहता है। मानव स जन के साथ विनाश में भी तत्पर है। मानव कटुता के बीजवपन करता जा रहा है।

ऐसे चिंतन के समय उन्हें श्रद्धा का स्मरण हो जाता है तथा सोचते हैं क्या विडंबना है? अधिकार प्राप्ति हेतु सुंदर जीवन का सुख छोड़कर चला आया। कितना पागल हूँ मैं? मैंने किसी पर दया नहीं की, सभी से ममता का मधुर संबंध तोड़ लिया। मेरी बात सुनने वाला यहाँ कौन है? किसके प्रश्नों का उत्तर मैं दूँ? कौन मेरे प्रश्नों का उत्तर दे? मेरा जीवन लू है जो खिलाना नहीं झुलसाना ही जानता है। निराशा के अंधकार में चेतना तिरोभूत हो जाती है। मुझे क्या करना चाहिए? किंकर्तव्यविड़ बना सा सोच नहीं पाता हूँ।

मनु को देव-असुर संघर्ष याद आ जाता है। दोनों ही अपने को सत्यमार्गी समझते थे। अपने को संसार का स्वामी, पूज्य समझते थे। उन्हें किसी के आश्रय की आवश्यकता नहीं थी। अपने को अनंत आनंद एवं अचार शक्ति का भंडार समझते थे। जीवन को निरंतर विकासशील समझते थे।

देवता शारीरिक सुख को ही परम सुख मानते थे। शारीरिक उपासना में लीन थे। अपने विश्वासों को ही सत्य मानते थे जिसके परिणामस्वरूप देव-असुर तर्क-युद्ध का अंत शस्त्र-युद्ध में होता था। मनु के चिंतन में वही संघर्ष नवीन रूप धारण करने लगा था। स्वयं से प्रश्न करते हैं। क्या वास्तव में श्रद्धा रहित हो गया हूँ? ऐसी स्थिति में मनु को पुनः काम का संदेश सुनाई पड़ा। उनके चिंतन को झटका लगा। सोचने लगे, इसी काम की प्रेरणा से मैंने श्रद्धा को प्राप्त करने का प्रयास किया था। श्रद्धा को छोड़ आया। यह फिर कहाँ से आ गया? लगता है काम मेरे जीवन में नवीन उत्पात को जन्म देना चाहता है।

काम ने कहा, मनु तुमने श्रद्धा के हृदय एवं विश्वास का कोई मूल्य नहीं समझा, उसका परित्याग कर दिया। सुख में बीते क्षणों को तुमने स्वर्ग समझा। वासना की त प्ति को ही स्वर्ग जाना। स्त्री अधिकार पर ध्यान नहीं दिया। तुमने अपने एवं श्रद्धा के मध्य समरस संबंध की स्थापना नहीं की क्योंकि वह तुम्हारी सामर्थ्य से बाहर था।

काम की वाणी मनु के हृदय को भेदती चली गई। अपने को अपनी साधना को असफल समझने लगे। तुम्हारी प्रेरणा से ही मैंने श्रद्धा को प्राप्त किया था तथा उसने अपना स्वर्गिक हृदय मुझे अर्पित कर दिया। फिर भी मेरी कामना को तुष्टि क्यों नहीं मिली?

काम ने उत्तर दिया, हे मनु! श्रद्धा ने तुम्हें अपना हृदय अर्पित कर दिया था जो प्रेम से आलोकित था, श्रद्धासिक्त था, जीवन की स्फूर्ति से पूरित था। तुमने उसके हृदय को कहाँ प्राप्त किया? तुम उसके शरीर की प्राप्ति से तुष्ट हो गये। अधिकार प्राप्ति की धुन में अपूर्णता के कारण तुम श्रद्धा के निर्मल, निश्छल एवं पवित्र प्रेम का प्रतिपादन नहीं कर पाए।

तुम्हारी स्वतंत्रता की भूख ने सारा दोषारोपण श्रद्धा पर कर दिया। जीवन में सुख ही नहीं दुःख भी है, फूल ही नहीं कांटें भी हैं। तुमने सदैव सुख-पुष्पों का ही चयन किया क्योंकि तुम देव-पुत्र ठहरे। वासना को सर्वोच्च स्थान दिया। इसी कारण मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि अब तुम्हारे सारे प्रयत्न क्षोभ के जन्मदाता होंगे।

मानव की नवीन स ष्टि स्वयं सदा विरोध की जन्मदात्री होगी तथा स्वयं स्व विनाश करेगी। परस्पर संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा तथा अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होगी। संपन्नता में भी प्राणी असंतुष्ट होगा।

जीवन अश्रुपूरित एवं हाहाकारमय होगा। नित्य-प्रति नए-नए संदेह जन्मते रहेंगे। प्राकृतिक सौंदर्य में दरिद्रता आ जाएगी। चतुर्मखी वातावरण क्षोभयुक्त एवं अंधकारमय हो जाएगा।

विश्व प्रेम की पवित्रता से अनभिज्ञ हो जाएगा। संसार स्वार्थी हो जाएगा। विरह एवं करूणा का साम्राज्य होगा। हृदय एवं मस्तिष्क में परस्पर सहयोग की भावना के अभाव में समरसता नहीं होगी। हृदय एक ओर जाएगा, मस्तिष्क दूसरी ओर। दोनों में छत्तीस (36) का आंकड़ा होगा।

वर्तमान रोदन में व्यतीत होगा। जीवन युद्ध-क्षेत्र बन जाएगा। शुद्ध भावनाएँ विलुप्त हो जाएंगीं। जल के स्थान पर उपल, अग्नि एवं रक्त की वर्षा होगी। विश्व की कोई भी शक्ति सांसारिक बुराइयों को समाप्त करने में सफल नहीं होगी।

हृदय की विश्वासमयी शक्ति श्रद्धा ने तुम्हें सर्वस्व समर्पित कर दिया था किन्तु तुम उसको भी धोखा देने से बाज नहीं आए। गर्भवती को छोड़ आए। तुम्हें कभी शांति नहीं मिलेगी। तुम दुखमय चिंतन के प्रतीक हो। तुम्हारा अमरत्व नष्ट हो जाएगा। मानव सदैव थका मांदा तर्क जाल ग्रसित जीवन पथ पर रेंगता रहेगा।

विस्त त अभिशाप के पश्चात काम ध्वनि विलीन हो गई। वातावरण स्तब्ध था। मनु सोच रहे थे कि काम ने उन्हें अंतहीन यातना से अभिशपित किया है। इस यातना से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

सतत् प्रवाहिनी सरस्वती कल-कल, छल-छल करती हुई तीव्र गति से बह रही थी जिसका वेग निरंतर विकास का प्रतीक था। उसमें सुंदर लहरें किल्लोलित थीं। प्रातःकालीन किरणें अपूर्व सौंदर्य बिखेर रही थीं।

अचानक ऐसे मधुरिम वातावरण में मनु के समक्ष एक सुंदरी बाला प्रकट हुई जिसके केश तर्क-जाल के समान फैले हुए थे। आँखों में प्रेम एवं विरक्ति भरी थी। उसके वक्षस्थल के उभार को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो संसार का संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान उसी में संचित है। उसे देखते ही मनु बोल उठे कि चेतना की छाया के समान यह कौन है?

बाला ने कहा मेरा नाम इड़ा है, किंतु तुम कौन हो? उत्तर में मनु ने कहा मेरा नाम मनु है और मैं भ्रमण का विकट विषाद सहन कर रहा हूं।

इड़ा ने कहा, मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। सामने उजड़ा हुआ द ष्टिगोचर होने वाला सारस्वत प्रदेश, मेरा ही देश था जो उजड़ गया। मैं इस प्रतीक्षा में हूँ कि कोई आए मेरा सहयोगी बने, उसके सहयोग से पुनः अपने देश का नव निर्माण कर सकूँ।

मनु ने कहा कि मैं इसलिए भटक रहा हूँ कि कोई मुझे अपने जीवन का मूल्य बता दे। तुम्हीं बतलाओ कि मुझे अब क्या करना चाहिए? विश्व में जिसने नक्षत्रों का निर्माण किया है वह अपनी भीषणता का प्रतिपादन कर रहा है। क्या स ष्टि का निर्माण मनुष्यों को भयभीत करने के लिए किया गया है? मानव इस नश्वर द श्य को स ष्टि का नाम क्यों देता है? इसका स्वामी वही होगा जिसने कभी दुखमय वाणी नहीं सुनी होगी। कहते हैं शनि लोक के पीछे कोई प्रकाश लोक है। क्या प्रकाश लोक की रोशनी मानव जीवन की निराशा को दूर करने में समर्थ हो सकती है?

मनु के प्रश्न का उत्तर देते हुए इड़ा ने कहा कि चाहें वहाँ कोई भी हो, किंतु उसका या किसी का आश्रय लेना औचित्य नहीं है। मनुष्य को अपनी शक्ति एवं कमी का परीक्षण कर अपना मार्ग स्वयं निर्मित कर उसी पर चलना चाहिए। स्वयं विकास के द ढ़ निश्चयी के मार्ग में कोई बाधा नहीं डाल सकता अपितु सहायक ही होगा।

इसी प्रकार का भाव अंग्रेजी में भी व्यक्त है-

"God helps those who help themselves."

अर्थात् ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता अपने आप करता है। इड़ा ने कहा बुद्धि के कथनानुसार कार्य करो और इस उजड़े हुए नगर को फिर से बसाओ।

इड़ा का संदेश सुनकर मनु के जीवन में स्फूर्ति का संचरण होने लगा। उनके जीवन की निराशा तिरोभूत होने लगी तथा उन्होंने कर्मलीनता का द ढ़ निश्चय कर लिया। निरंतर परिश्रम के परिणामस्वरूप उजड़ा हुआ सारस्वत प्रदेश पुनः बस गया। नगर का

नव निर्माण होने लगा। बौद्धिकता ने भौतिक उन्नति प्रदान की। सारस्वत प्रदेश में मनु के आगमन से पुनः खुशहाली आ गई। इड़ा को लेकर प्रसाद-दर्शन विवाद का विषय बन गया। राग का उचित अनुपात समरसता में होना चाहिए। कथा का रूपक बुद्धि का तिरस्कार कर राग को प्रधानता देता है। राग एवं बुद्धि के उचित सामंजस्य में ही जीवन का स्वाभाविक सुख है जो केवल बुद्धि की साधना करता है वह मनु की भाँति अशांत रहता है। पाश्चात्य दर्शन की द ष्टि से राग गौण है और विज्ञान प्रमुख। कुछ लोगों के अनुसार प्रसाद बुद्धिवाद के विरोधी थे परन्तु यह बात नहीं है। उसी इड़ा के सहारे जो व्यक्ति की कष्टदायक है मनु के पुत्र मानव का विकास होता है। मनु को कष्ट था किन्तु इसमें इड़ा दोषी नहीं है।

मानव जाति का लक्ष्य आनंद है। प्रसाद ने विभिन्न लोगों के लिए विविध मार्गों का निर्माण किया है। मनुष्य जैसों के लिए श्रद्धा का मार्ग और मानव के लिए इड़ा का मार्ग। इड़ा मनु को पथ भ्रष्ट होने से बचाती रही। बुद्धि के सहारे नये नियम और शासन का सूत्रपात हुआ। संघर्ष बुद्धि के विरूद्ध ह्रदय का नहीं वरन शास्वत है। नियामक भी नियमों से परे नहीं। मनु उससे मुक्त रहना चाहते हैं। शासक एवं शासित का संघर्ष सदैव चलता रहा है।

इड़ा सर्ग सबसे अधिक दार्शनिक है। मनुष्य का बुद्धि से मिलन सारस्वत प्रदेश में होता है। व्यक्ति की वैयक्तिक चेतना कहां तक उठ सकती है इसका संकेत है। देवासुर संग्राम को शरीर और आत्मा के संघर्ष के रूप में देखा गया है। आज के विज्ञानवादी युग का अहं द ष्टिकोण रखा गया है। और उसके द्वारा हम कहां तक सम द्धि को पहुंच सके हैं। प्रेम के द्वारा शांति की स्थापना होती है। बीच-बीच में कवि शांति का संदेश अवश्य देता है। अहं अथवा महत्व की भावना वैषम्य पैदा करती है। प्रत्येक व्यक्ति आनंद की खोज में है। व्यक्तिवादी एवं बुद्धिवादी भावना की भर्त्सना होनी चाहिए। व्यक्ति को बुद्धि एवं ह्रदय में समन्वय स्थापित करना मानवता के लिए हितकारी एवं कल्याणकारी है।

व्याख्या

"किस गहन गुहा से अति अधीर झंझा प्रवाह-सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर ले साथ निकल परमाणु-पुंज नथ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता संघर्ष कर रहा-सा जब से, सबसे विराग सब पर ममता अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर।"

शब्दार्थः झंझा प्रवाह = तूफान के वेग जैसा। महासमीर = तूफान। क्षमता = शक्ति। विराग = घ णा। समता = प्रेम। विषम = भीषण। शून्य चीर = आकाश को चीर कर।

संदर्भः श्रद्धा को छोड़कर मनु पर्वतों, मैदानों एवं जंगलों में घूमते, भटकते रहे। थककर चूर हो वे सारस्वत प्रदेश पहुँचे और वहाँ विश्राम करते हुए उन्हें श्रद्धा का स्मरण हो आता है। वे अपने जीवन विषयक चिंतन में रत हो जाते हैं और सोचते हैं कि न मुझसे प्रश्न पूछने वाला, न मेरे उत्तर को सुनने वाला कोई रहा। मैं किससे प्रश्न पूछूँ एवं किसके उत्तर सुनू? मेरा जीवन संघर्षों से भरा है। मुझे शांति क्यों नहीं मिली।

व्याख्याः यह भीषण जीवन भयंकर तूफान के समान है। मुझे ज्ञात नहीं वायु का शक्तिशाली और अत्यन्त तीव्र वेग वाला यह तूफान किस गहरी गुफा से निकला है। इसके उद्गम का कुछ ज्ञान नहीं। जीवन का प्रारम्भ कहाँ से होता है इसका अंत कहाँ होगा? तूफानी हवा अपने साथ मात्र मिट्टी के कण और पानी लाती है किन्तु तूफानी जीवन अपने साथ आकाश, वायु, अग्नि, प थ्वी एवं जल पांचों तत्त्व लेकर आता है जिनसे शरीर की रचना होती है।

हवाई तूफान चलने से ऐसा लगता है कि मानो वायु भयभीत होकर भागी चली जा रही है। तूफान के कारण संपूर्ण जीव-जंतु भयभीत हो जाते हैं। मनुष्य देव शक्तियों से डरता रहता है तथा एक व्यक्ति दूसरे को डराता रहता है अन्यों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। जीवन संसार में विरोध को जन्म देता है तथा संपूर्ण विश्व को विवादित करता रहता है। परस्पर कटुता फैलाता हुआ संसार को अत्याधिक दीन-दुखी बनाता रहता है। मनुष्य स जन के साथ-साथ विनाश की लीला भी रचता रहता है उसी में अपनी क्षमता का प्रदर्शन करता रहता है। राग-द्वेष की भावना से ओतप्रोत मानव सदैव संघर्ष करता आया है। आवश्यकता पड़ने पर सभी से प्रेम करता है तथा उपयोगिता न रहने पर सभी से घ णा करता है। ऐसा स्वार्थी प्राणी संघर्षरत क्यों न रहे?

परम सत्ता रूपी शाश्वत धनुष है जिससे छूटे हुए तीर के समान यह जीवन है। यह जीवन-तीर कब छूटा है? जो आकाश को चीरता हुआ अपना लक्ष्य भेद करना चाहता है। मनु का जीवन सूना ही नहीं उद्देश्य विहीन भी है।

विशेषः

1. दार्शनिक शब्दावली तत्सम प्रधान है।
2. भाषा क्लिष्ट है।
3. तूफान एवं जीवन के वर्णन में उपमा एवं सांग रूपक अलंकार है।
4. व्यतिरेक अलंकार।
5. दार्शनिकता की प्रधानता।
6. मनु का विषादित जीवन।
7. मनु का जीवन चिंतन।
8. पांच भौतिक तत्त्वों का वर्णन।

देखे मैंने वे शैल श्र ंग जो अचल हिमानी से रंजित, उन्मुक्त, उपेक्षा भरे तुंग अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुध ा का कर अभिमान भंग अपनी समाधि में रहे सुखी बह जाती हैं नदियाँ अबोध कुछ स्वेदबिंदु उसके लेकर वह स्तिमित नयन गत शोक क्रोध स्थिर मुक्ति, प्रतिष्ठा मैं वैसी चाहता नहीं इस जीवन की मैं तो अबाध गति मरूत सद श, हूँ चाह रहा अपने मन की जो चूम चला जाता अग जग, प्रति पग में कम्पन की तरंग-वह ज्वलनशील गतिमय पतंग।

शब्दार्थः हिमानी = बर्फ। रंजित = रंगी हुई। उन्मत्त = स्वतंत्र। जड़ गौरव = पर्वत की चोटियाँ। स्तिमित = निश्चल। पतंग = सूर्य।

संदर्भः विश्राम करते हुए मनु का जीवन चिंतन अबाध गति से चलता रहता है। वे सोचते हैं कि मैंने जीवन की कितनी ऊँचाइयाँ देख ली हैं, जीवन में उपेक्षा एवं स्वच्छंदता भी खूब देखी है। अब जीवन उद्देश्य विहीन प्रतीत होता है। इसलिए जीवन के प्रति विरक्ति होती जा रही है।

व्याख्याः मैंने सदैव बर्फ से ढकी हुई ऊँची-ऊँची चोटियां देखी हैं जिनकी स्वच्छंदता का मुझे आभास है। वे चोटियाँ अपनी जड़ता तथा ऊंचाई का प्रतीक हैं। लगता है वे अपनी अचलता एवं उच्चता से प थ्वी को गौरव विहीन करती रहती हैं।

विश्व के योगी जन सांसारिक आकर्षणों की उपेक्षा करते हैं। पर्वत चोटियां योगियों के समान हैं। बर्फीली चोटियाँ मानो समाधिस्थ हैं उसी में सुख का अनुभव करती रहती हैं। बर्फ के पिघलने से अनजान नदियाँ बहती रहती हैं। सूर्य की गर्मी से गली हुई बर्फ का पानी उन पर्वतों के पसीने की बूदों के समान है उसी को लेकर शांत, आंखें नीची किए हुए मानो क्रोध एवं शोक से मुक्त हो गए हैं।

किन्तु मैं वैसी अचल मुक्ति एवं शांत प्रतिष्ठित जीवन की कामना नहीं करता हूँ। मैं अपने मन को वायु के समान वेगवान बनाना चाहता हूँ। जीवन में तीव्रता से अग्रसर हो सदैव नवीन सुखों की कामना करता हूँ।

मैं अपने जीवन को सूर्य के समान बनाना चाहता हूँ। जिस प्रकार प्रज्वलित सूर्य अपनी प्रत्येक किरण से जड़-चेतन का चुंबन करता हुआ चलता है उसी प्रकार मैं भी विश्व के संपूर्ण सौंदर्य का रसपान करता हुआ आगे बढ़ता जाऊँ। सूर्य निरंतर चलता रहता है उसी प्रकार मैं भी सदा आकांक्षा के ताप में अपना विकास करना चाहता हूँ।

विशेषः

1. भाषा सरल।
2. विशेषण विपर्यय।
3. गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।
4. मनु की विलासी आकांक्षा।

5. वायु एवं सूर्य का रूप ग्रहण करने की कामना।
6. पर्वत चोटी की तुलना योगी से-उपमा।

जीवन-निशीथ के अंधकार। तू नील तुहिन जलनिधि बनकर फैला है। कितना वार पार कितनी चेतना की किरणें हैं डूब रही ये निर्विकार कितना मादक तम निखिल भुवन भर रहा भूमिका में उमंग तू मूर्तिमान हो छिप जाता प्रतिफल के परिवर्तन अनंग ममता की क्षीण अरूण रेखा खिलती है तुझमें ज्योति कला जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुसुम-चूर्ण भला रे चिर निवास विश्राम प्राण के मोह-जलद छाया उदार माया-रानी के केश भार।

शब्दार्थः जीवन निशीथ = जीवन रूपी रात्रि। तुहिन = कुहरा। निर्विकार = उज्वल। ममता = प्रेम। ज्योति कला = प्रकाश-वैभव। कुंकुम चूर्ण = सिंदूर।

संदर्भः रात्रि के अंधकार में मनु की निराशा और अधिक बढ़ गई है। मनु रात्रि के अंधकार को गहन काला कुहरा कहते हैं जो सर्वत्र व्याप्त होकर सूर्य की उज्जवल किरणों को विलीन कर देता है।

व्याख्याः जिस प्रकार रात्रि अपने साथ धना अंधकार लाती है उसी प्रकार दुख जीवन में गहरी निराशा लाता है। रात के समय मनु की निराशा में व द्धि हुई है।

मनु कहते हैं कि हे रात्रि के अंधकार। तुम काले कुहरे के समान सभी जगह छा गए हो तथा संध्या के आगमन पर ही सूर्य की सुंदर उज्वल किरणों को अपने में विलीन कर लिया है। सावन के अंधे को सारा संसार हरा-हरा दीखता है। उसी प्रकार, दुखी, हताश एवं निराश मनु को संपूर्ण स ष्टि निराशा के अनंत सागर में डूबी हुई द ष्टिगोचर होती है। निराश मन को सारा संसार निराशामय दिखाई पड़ना स्वाभाविक है। जिस प्रकार अंधकार में सूर्य की किरणें विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार निराशा में चेतना का मंगल व्यापार रूक जाता है। जीवन में निराशा की सघनता के परिणामस्वरूप बुद्धि अपना कार्य करना बंद कर देती है। क्योंकि मनुष्य की चिंतन शक्ति समाप्त हो जाती है।

रात्रि का अंधकार निद्रा एवं आलस्य का विस्तार करता है इसलिए अंधकार मनु को मादक लगता है। अंधकार ने समस्त संसार को अपने में समेट लिया है। सारस्वत नगर उजड़ गया है इसलिए वहाँ किसी प्रकार की रोशनी नहीं है। अंधकार प्रकट होकर स्वयं उसी में अपने को छिपा लेता है। प्रतिक्षण परिवर्तनरत अंधकार में कोई साकार रूप व्यक्त नहीं होता है। निराशा रात में मनुष्य को बेसुध कर देती है। निराशा का अंधकार जीवन को आच्छदित कर लेता है। प्रलय के पश्चात् भी मनु का जीवन निराशामय हो गया था। श्रद्धा ने उन्हें निराशा से मुक्ति दिलाई थी। उसी निराशा ने पुनः मनु के जीवन को छा लिया है इसलिए मनु निराशा को परिवर्तनशील कहते हैं।

प्रातःकाल उषा की धुंधली स्वर्णिम किरणें प्रकट होकर अंधकार को नष्ट करने में जुट जाती हैं। प्रभात-बेला में, उस धुंधले अंधकार में उषा की लाल किरणों के विकास में वैसी ही अपूर्व शोभा होती है जैसी सुहागिनी नारी के केशों के बीच मांग के सिंदूर का वैभव होता है। सिंदूर लगाने से काले बालों में अभिनव एवं दिव्य सौंदर्य आ जाता है। उसी प्रकार प्रभात-बेला में सूर्य की किरणें अंधकार में भी सौंदर्य का संचार कर देती हैं।

जीवन में निराशा का अंधकार छा जाने या किसी की रंचमात्र प्रेम प्राप्ति भी डूबते को तिनके का सहारा हो जाती है क्योंकि धीरे-धीरे निराशा के बादल छटने लगते हैं। प्रेम प्राप्ति से मनुष्य को अपार संतुष्टि होती है। प्रेम प्राप्ति में रही-सही निराशा भी भारस्वरूप नहीं रह जाती है। अचानक मनु को श्रद्धा के साथ हुआ मधुर वार्तालाप स्मरण हो आता है।

अंधकार मात्र निराशा को बढ़ाने वाला ही नहीं अपितु जीवन का विश्रामदाता भी है। मनुष्य रात्रि में विश्राम करके दिन भर की थकावट से छुटकारा पा जाता है। अंधकार मोह रूपी उदार बादलों की छाया के समान सुख एवं संतोष देने वाला होता है। यह रात के केश जाल के समान है। निराशा में भी प्राणों को पूर्ण विश्राम मिलता है। क्योंकि निराश व्यक्ति शारीरिक या मानसिक कोई भी कार्य करने में सक्षम नहीं होता है। इसलिए निराशा विश्रामदायक है। किन्तु यह ज्ञान का संतोष नहीं है मोह की शिथिलता है। मोह रूपी बादल की छाया है। जिस प्रकार अज्ञानी अज्ञान में ही सुख मानता है, उसी प्रकार निराश व्यक्ति में भी प्रयत्न या क्रियाशीलता का अभाव हो जाता है। कर्म का अभाव ही विश्राम है। निराशा का रूप मायारानी के बालों के समान है जिसमें वह संसारी व्यक्तियों को फंसा लेती हैं। जैसे प्रेमी का मन प्रेमिका के केश जालों में उलझ जाता है, उसी प्रकार संसारी व्यक्ति का हृदय माया जनित निराशा में डूब जाता है।

विशेषः

1. जीवन को रात्रि का अंधकार कहा गया है।
2. भाषा प्रसाद गुणमयी है।
3. दार्शनिकता।
4. अंधकार निराशादायक एवं विश्रामदायक।
5. क्रियाशीलता का अभाव।
6. निराशा को माया का केश जाल कहना।
7. प्रेम प्राप्ति में निराशा की यदि समाप्ति या निराशा भाव का भार हल्का होना।
8. अर्थ गांभीर्य एवं चित्रोयमता का गुण विद्यमान है।

जीवन-निशीथ के अंधकार! तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन घूम-सा दुर्निवार जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक, चिनगारी-सी उठती पुकार यौवन मधुवन की कालिंदी बह रही चूम कर सब दिगंत मन-शिशु की क्रीड़ा-नौकाएँ बस दौड़ लगाती हैं अनंत कुहुकिनि द पलक हग के अंजन! हँसती तुझमें सुन्दर छलना धूमिल रेखाओं से सजीव चंचल चित्रों की नव कलना इस चिर-प्रवास श्यामल पथ में छाई पिक प्राणों की पुकार बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार।

शब्दार्थः कसक = जलन। मधुवन = व ंदावन, वसंत। चूमकर = छूकर। क्रीड़ाएँ-नौकाएँ = बच्चों के खेलने की नावें। कुहुकिनि = जादूगरनी। सुन्दर छलना = ऐसा धोखा, जो सुखमय है। सजीव = उत्साहित करने वाले।

संदर्भः मनु धोर निराशा रूपी धुंए के अंधकार में खो गए हैं जिसमें कोई आशा की चिंगारी भी द ष्टिगोचर नहीं हो रही है क्योंकि आग जलने से पूर्व उठने वाले धुंए में चिंगारी का कहीं नामोनिशान नहीं होता है। इसी प्रकार मनु घोर निराशा में डूबे हुए चिंतन मग्न है।

व्याख्याः जीवन की रात्रि का अंधकार मानते हुए मनु उसे संबोधित करते हुए कहते हैं, हे जीवन रूपी रात्रि के अंधकार! जिस प्रकार आग जलाते समय पहले अनिवार्य रूप से धुँआ फैलता है और चारों ओर फैलकर वातावरण को अंधकारमय कर देता है उसी प्रकार मेरे जीवन में भी निराशा का ऐसा अंधेरा छा गया है जो कि हटाया नहीं जा सकता है बिना हटाए इससे मुक्ति नहीं मिल सकती है। आग जलने से पूर्व निकलने वाले धुँए में कभी-कभी आग के प्रज्वलित होने पर चिंगारी भी द ष्टिगोचर होने लगती है। उसी प्रकार मेरे जीवन की निराशा में मेरी अत प्त इच्छाएँ और उसकी पीड़ा प्रकट होने लगती है।

यहाँ मनु के जीवन के अंधकार और आग जलने से पूर्व निकलने वाले धुंए की समानता से आने वाली घटनाओं का भी कलात्मक संकेत मिलता है। धुँआ निकलने के पश्चात् आग की लपटें उठने लगती हैं। निराशा बीत जाने पर मनु स्वस्थ होकर सारस्वत प्रदेश के नव निर्माण में जुट जाते हैं। अभी नवनिर्माण पूर्णरूपेण समाप्त भी नहीं हो पाया है कि वहां जनता में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठती है। जनता को यह एहसास होने लगा कि अन्य प्रदेश का निवासी मनु किस प्रकार आकर हमारे प्रदेश और हमारी रानी इड़ा पर अपना आधिपत्य जमाने लगा है।

मनु का कहना है कि जिस प्रकार व ंदावन में यमुना बहती है उसी प्रकार मेरे यौवन में भावों की नदी निरंतर प्रवाहित है। यमुना की एक सीमा है अपने किनारों के सीमाओं में बंधकर प्रवाहित होती है किन्तु मेरे भाव असीमित हैं इनकी कोई सीमा नहीं है। मेरे असीमित भावों की मंदाकिनी समस्त दिशाओं को छूती हुई उन पर अपना अमिट प्रभाव डालती हुई बह रही है। मुझे समस्त स ष्टि में अपने ही विवादित भावों का प्रतिबिंब द ष्टिगोचर हो रहा है। जिस प्रकार छोटे-छोटे बच्चे नदी में खेलते हुए कागज़ की नौकाएं डाल देते हैं उसी प्रकार मेरे मन की कल्पनाएँ मेरी भावनाओं की नदी में तैर रही हैं। मेरा मन अनेक कल्पनाएं करता है किंतु कागज़ की नौकाओं के समान हैं उनमें किनारे जाने की सामर्थ्य नहीं है।

मायाविनी नारी नेत्रों में काजल लगाकर अत्याधिक आकर्षण की शक्ति वाली हो जाती है। भोले-भोले मनुष्यों को अपने नेत्रों के आकर्षण में उलझाकर अन्त में उन्हें धोखा ही देती हैं। निराशा मायाविनी नारी की आंखों के काजल के समान है। इसमें मात्र धोखा ही धोखा है किन्तु इस धोखे में भी सरसता है। क्योंकि निराश व्यक्ति अपनी निराशा को दूर करने के लिए कल्पना के अनेक महलों का निर्माण करता है।

कबीर ने भी माया के इसी रूप का चित्रण किया है-

"माया महा ठगिनि मैं जानी,
त्रिगुण फांस लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।"

-कबीर

निराश व्यक्ति अनेक अस्पष्ट किंतु नवीन चित्रों का निर्माण करता है, भविष्य के मधुर स्वप्न देखता है, वे स्वप्न व्यक्ति के हृदय में क्षणिक उत्साह का संचार करते हैं किंतु वास्तव में यह निराशा के छलावा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कल्पना चित्रों का कोई उपयोग नहीं है। निराश व्यक्ति के चित्र निर्माण से स ष्टि अर्थात् कल्पना का अंत नहीं होता है।

मनु कहते हैं मुझे ऐसा लगता है कि मेरा जीवन आरम्भ से विरह या वियोग का जीवन है। यह प्रसाद का वैयक्तिक जीवन है। मेरे इस जीवन में प्राणों की कोकिल बहुत कूजती है और उसकी मधुर ध्वनि आकाश में विलीन हो जाती है। आकाश मेरे प्राणों की पुकार प्रतिध्वनि स्वरूप है। मेरी आहों का संचय आकाश रूप में हुआ है।

विशेषः

1. यौवन को यमुना से उपमित किया गया है।
2. आत्मा परमात्मा से अलग है।
3. 'धूमिल रेखाओं और 'सजीव' में विरोधाभास अलंकार।
4. उपमा का बाहुल्य।
5. भाषा सरल।
6. भाव गांभीर्य।
7. तत्सम शब्दावली का प्रयोग।
8. दार्शनिक पुट।
9. वैज्ञानिकता का प्रदर्शन।
10. मनु की अपार वेदना वर्णित है।

जीवन का लेकर नव विचार जब चला द्वंद्व था असुरों में प्राणों की पूजा का प्रचार उस ओर आत्म-विश्वास निरत सुर-वर्ग कह रहा था पुकार "मैं स्वयं सतत आराध्य आत्म-मंगल उपासना में विभोर उल्लासशील में शक्ति केंद्र, फिर किसकी खोजूँ शरण और आनंद उच्छलित शक्ति-स्रोत-जीवन विकास वैचि य भरा अपना नव-नवनिर्माण किये रखता यह विश्व सदैव हरा" प्राणों के सुख साधन में ही, संलग्न असुर करते सुधार नियमों में बँधते दुर्निवार।

शब्दार्थः नव विचार = नव सिद्धांत। प्राणों की पूजा = शारीरिक सुख की कामना। आत्म मंगल = आत्मा का कल्याण। विभोर = तल्लीन। वैचि य = विविधता।

संदर्भः देवताओं और दानवों में शक्ति प्रदर्शन एवं सत्ता हथियाने के लिए युद्ध एवं संघर्ष चलता रहा है। जीवन में नवीन सिद्धांत के आगमन या स ष्टि के विकास के समय युद्ध अनिवार्य हो जाता है। युद्ध की अनिवार्यता का वर्णन करते हुए मनु ने कहा है।

व्याख्याः जब-जब जीवन में नये सिद्धांतों का स जन हुआ है या स ष्टि ने विकास मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया है तभी-तभी संघर्ष ने सिर उठाया है। एक ओर असुरों में प्राण को ही आत्मा रूप में अपना लिया गया था और शारीरिक सुख साधना में तल्लीन थे। दूसरी ओर देव समाज आत्मा की सत्ता पर विश्वास करता था। वह चीख-चीखकर कह रहा था-

मैं स्वयं ही सब प्राणियों का पूज्य हूँ। मैं सदैव आत्मा की मंगल-साधना में लीन रहता हूँ, अपनी आत्मा की उन्नति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहता हूँ, मैं आनंदमय हूं, शक्ति का आधार हूँ। फिर मुझे क्या आवश्यकता है कि मैं किसी अन्य का आश्रय ढूंढूं। मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिए।

जीवन आनंद से भरे हुए शक्ति के तरंगित झरने के समान है। मेरा जीवन सदैव उन्नतिशील है और इसमें विविधता का प्रदर्शन

होता है। मैं अपने जीवन में सदैव नवीन सुखद वस्तुओं का निर्माण करता रहता हूं और समस्त विश्व को भी अपने लिए हरा-भरा रखता हूँ।

उधर असुर अपने शरीर को सुखी बनाने में व्यस्त थे और अपने जीवन का सुधार करने में दिन का अधिकांश समय व्यतीत कर रहे थे। स ष्टि का सुधार प्राणों के सुख-साधन हेतु ही करते थे। वे नये-नये नियमों का निर्माण कर रहे थे जो अत्यधिक कठोर थे। इस प्रकार स्वयमेव अपने कठिन से कठिन नियम बांधते जा रहे थे जिससे उनका जीवन दूभर बनता जा रहा था।

विशेषः

1. सुर-असुर संग्राम का संकेत।
2. भाषा प्रसाद गुणमयी।
3. शब्दावली तत्सम।
4. भाव की गंभीरता।
5. अनुप्रास अलंकार।
6. सुर-असुर दोनों को किसी के आश्रय की अपेक्षा नही।
7. सुर आत्मा के पुजारी थे।
8. असुर शरीर के पुजारी थे।
9. दोनों सुख की खोज में भाग रहे थे।

था एक पूजता वह दीन दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण दोनों का हठ था दुर्निवार, दोनों ही थे विश्वासहीन फिर क्यों न तर्क को शस्त्रों से वे सिद्ध करें क्यों न हो युद्ध उनका संघर्ष चला अशान्त वे भाव रहे अब तक विरूद्ध मुझमें ममत्वमय आत्म-मोह स्वातंल्यमयी उच्छ ंखलता हो प्रलय-भी तन-रक्षा में पूजन करने की व्याकुलता वह पूर्व द्वंद्व परिवर्तित हो मुझको बना रहा अधिक दीन सचमुच मैं हूँ श्रद्धा विहीन।

शब्दार्थः अहंता = घमंड। उच्छ ंखलता = नियमों का उल्लंघन करने की प्रव त्ति। पूर्व द्वंद्व = पुराना संघर्ष जो देव-असुर के बीच हुआ था।

संदर्भः मनु का चिंतन देवासुर संग्राम की ओर जाता है। वे सोचते हैं कि किस प्रकार दोनों युद्ध से भयभीत हो विभिन्न क्रियाकलापों में संलग्न हैं। दोनों में विश्वासहीनता है। स्वच्छंदता एवं उच्छ ंखता की भावना प्रधान हो गई है। ऐसे में मनु अपनी श्रद्धा विहीनता का अनुभव करते हैं।

व्याख्याः आत्मत्त्व को संकुचित अर्थ में ग्रहण करते हुए मनु कहते हैं कि असुर अपने नश्वर शरीर की आराधना करने में तत्पर थे। अपूर्ण देवतागण अभिमान से अपने आप को अति कुशल तथा दक्ष समझते थे। विश्वासहीनता ने दोनों को हठवादी बना दिया था।

दोनों अविश्वासी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा सिद्धांतों की प्रमाणिकता का प्रतिपादन करने में लगे हुए थे। वैचारिक सत्यता को स्वीकार कराने का एक मात्र उपाय परस्पर युद्ध की ललकार थी। जिसके परिणामस्वरूप दोनों निरंतर युद्धरत रहे जिसने संपूर्ण वातावरण को क्षुब्ध बना दिया था। युद्ध की परम्परा अनादि काल से चलती आई है। देवासुर संग्राम आज भी चल रहा है। भविष्य में भी चलता रहेगा। क्योंकि देव प्रव त्तियाँ और असुर प्रव त्तियों मे सदैव से विरोध रहा है। यह विरोध ही संघर्ष का कारण है।

अचानक मनु में वैयक्तिक चिंतन आता है। वे अपने विषय में सोचते हुए कहते हैं कि मैं ऐसा स्वार्थी हूं कि अपने स्वार्थ के अलावा मुझे परमार्थ दीखता ही नहीं। स्वार्थ आबद्ध मने को मात्र अपनी रक्षा की चिंता है। उनका कहना है कि मैं ऐसी स्वतंत्रता चाहता हूं जो किसी नियम में बंधकर परतंत्र नहीं होना चाहती है। प्रलय मुझे अभी भी भयभीत किए हुए हैं इसलिए अब भी मैं अपने को शरीर रक्षा की साधना में लगाए हुए हूं।

देवों और असुरों का पुराना भौतिक संघर्ष समाप्त हो गया है किंतु उसने मानसिक संघर्ष का रूप धारण कर लिया है। मनु कहते हैं कि मेरे हृदय में आसुरी एवं दैवी प्रव त्तियों का भयंकर संघर्ष चल रहा है जो मुझे आंदोलित किए हुए हैं, मेरी अवस्था

दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। इसका कारण मैं जानता हूं क्योंकि मैं श्रद्धाहीन हो गया हूं, आज तक मैंने किसी पर विश्वास नहीं किया।

विशेष:

1. शस्त्रास्त्र को श्रापादपि शसदपि स्वीकारा गया।
2. देव-दानव दोनों देवासुर संग्राम से भयभीत हैं।
3. यह भय ह्रदय में समा गया है।
4. दोनों प्राण रक्षा के उपाय ढूंढ़ने में लगे हैं।
5. भाषा सरल, प्रसाद गुणमयी है।
6. शब्द तत्सम।
7. प्रलय भीतवा का भाव गांभीर्य।
8. स्वच्छंदता एवं उच्छ ंखल भाव की प्रधानता।
9. अनुप्रास अलंकार।

"मनु! तुम श्रद्धा को गये भूल उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल तुमने तो समझा असत विश्व जीवन-धागे में रहा झूल जो क्षण बीतें सुख साधन में उनको ही वास्तव लिया मान वासना त प्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति का व्यर्थ ज्ञान तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की" जब गूँजी यह वाणी तीखी कम्पित करती अम्बर अकूल मनु को जैसा चुभ गया शूल।

शब्दार्थ: आत्म विश्वासमयी = आत्मा के अनुकूल आचरण करने वाली। समझ तूल = त ण के समान व्यर्थ समझकर। असत् विश्व = नाशवान संसार। जीवन धागे में रहा झूल = नाशवान, शीघ्र नष्ट होने वाला। समरसता = समानता।

संदर्भ: श्रद्धा विहीनता पर मनु को पश्चाताप होता है। श्रद्धा-त्याग की बात आकाश में गूंजती हुई उनके ह्रदय में शूल की तरह चुभने लगी। तभी आकाशवाणी होती है।

व्याख्या: मनु सारस्वत नगर में निराशा की स्थिति में पड़े हुए हैं विचार मग्नता में उन्हें ऐसा आभास हुआ मानो उनसे कोई कह रहा है। इस आभास को ही मनु के लिए आकाशवाणी कहा जा सकता है। वास्तव में यह आकाशवाणी नहीं अपितु मनु का पश्चाताप जन्य स्वचिंतन था जिसने मनु से कहा कि मनु! तुमने श्रद्धा को भुला दिया। श्रद्धा पूर्ण रूप से आत्मा में विश्वास करने वाली है। उसको तुमने तिनके के समान समझा तथा उसकी उपेक्षा की। वह विश्व को सतत् समझने वाली है जबकि तुम इस संसार को नाशवान समझते रहे हो। तुम्हें यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि यह जीवन उसी प्रकार क्षणभंगुर है, जिस प्रकार कच्चे धागे में बंधी लटकती हुई वस्तु का अस्तित्व कच्चे धागे पर आधारित होता है। धागा टूटते ही उस वस्तु की जीवन लीला किसी समय भी समाप्त हो सकती है। इसलिए तुम्हारे मन में कामवासना या कामोपभोग की लालसा प्रबल हो उठी और उस काम वासना से प्राप्त क्षणिक त प्ति को ही तुमने शाश्वत स्वर्गिक आनंद समझ लिया। यह मिथ्या ज्ञान तुम्हारी विपरीत बुद्धि में कैसे समा गया? इस विपरीत ज्ञान के कारण ही तुमने पुरुष को सत्ता संपन्न मान लिया। नारी की भी कुछ सत्ता है यह तुम भूल गये। तुम यह नहीं समझ पाए कि नारी के बिना नर का कोई महत्व नहीं है। नारी ही नर की जननी एवं माता है। स ष्टि क्रम का मूल उपादान है। तुम्हें यह बिल्कुल ध्यान नहीं रहा कि शासक एवं शासित दोनों समानता की भावना मे बंधे हुए हैं। अधिकारी का अधिकार समरसता के व्यवहार में ही सार्थक है। समरसता का अभिप्राय सुख-दुख, सम-विषम, शांत-अशांत, नर-नारी, जड़-चेतन, आत्मा-परमात्मा, प्रकृति-पुरुष, व्यक्ति-समाज के समन्वय में है। अनंत आकाश को गुंजायमान करती हुई वाणी मनु के ह्रदय में काँटे के समान चुभती चली गई।

विशेष:

1. सत-असत का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।
2. सत-असत में सत की श्रेष्ठता प्रतिपादित है।
3. श्रद्धा सत का प्रतीक है।

4. श्रद्धा आत्म विश्वासमयी है।
5. मनु असत के प्रतीक हैं।
6. संसार की क्षणभंगुता का प्रतिपादन।
7. नारी सत्ता या नारी भावना का प्रतिपादन।
8. नर-नारी की अभेदता।
9. समरसत्ता का प्रतिपादन।
10. शिव-शक्ति, ब्रह्म-जीव का अभेद।
11. नीर-क्षीर का मिश्रण नहीं अपितु क्षीर-धीर का मिश्रण समरसता का भाव व्यक्त करता है। अनेक नदियों के संगम गंगा में समरसता है।
12. मनु के मानसिक अवसाद एवं पश्चातापमय चिंतन का प्रतिपादन।

मनु! उसने तो कर दिया दान वह हृदय प्रणय से पूर्ण सरल जिसमें जीवन का भार मान जिसमें चेतना ही केवल निज शान्त प्रभा से ज्योतिमान पर तुमने तो पाया सदैव उसकी सुन्दर जड़ देह-मात्र सौंदर्य्य-जलधि से भर लाये केवल तुम अपना गरल पात्र तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके परिणाम जिसको पूरा करता उससे तुम अपने आप रूके 'कुछ मेरा हो' यह राग भाव संकुचित पूर्णता है अजान मानस जलनिधि का क्षुद्र यान।

शब्दार्थ: प्रणय = प्रेम। ज्योतिमान = प्रकाशित। जड़देह = पार्थिव शरीर। गरल-पात्र = विष का प्याला। राग भाव = स्वार्थमयी भावना। मानस जलनिधि = हृदय सागर। क्षुद्रयान = छोटी नौका।

संदर्भ: मनु के मन में अनेक शंकाएँ उठती हैं जिनका समाधान काम अति सहजता से करता हुआ कहता है कि तुम श्रद्धा के बाह्य रूप सौंदर्य मैं ही उलझे रहे। उसके हृदय अम त का पान तुम नहीं कर सके। उसने तो तुम्हें अपना हृदय प्रणय से पूर्व ही दान कर दिया जिसमें जीवन का मान भरा था।

व्याख्या: काम ने उत्तर दिया कि हे मनु! उसने प्रेम से भरा हुआ, भोला-भाला, जीवन की महिमा से पूर्ण अपना हृदय प्रेम से पहले ही तुम्हें दान कर दिया था। उसके हृदय में मात्र ज्ञान था जो कि शीतल प्रकाश से कांतिमान था उसके विचार सत्य, पवित्र एवं शांतिदायक थे।

किंतु तुम उसके हृदय का ग्रहण नहीं कर पाए। तुमने मात्र उसके सुंदर भौतिक, पार्थिक शरीर के सौंदर्य को ही प्राप्त किया था। उससे मात्र शारीरिक इच्छा की पूर्ति की है। अपनी वासना की पूर्ति में तुम लगे रहे। तुम्हें यह विस्म त हो गया कि नारी-सौंदर्य-सागर में शांति का अम त भी है और वासना का विष भी। किंतु मनु! तुम्हें केवल वासना रूपी विष की ही प्राप्ति हुई है।

तुम अज्ञानी अनजान हो, तुम स्वयमेव अपनी अपूर्णता का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाए। श्रद्धा ने अपना पवित्र हृदय तुम्हें दान कर दिया, तुम उसका प्रतिदान नहीं कर पाए। प्रतिदान के द्वारा तुम अपने और श्रद्धा के संबंध को पूर्णता प्रदान कर सकते थे जो तुमसे नहीं हो पाया।

तुम में अधिकार प्राप्त करने की स्वार्थ पूर्ण भावना है जिसमें मनुष्य अपने जीवन की पूर्णता का अनुभव करता है, वह संकुचित पूर्णता है जिसे मनुष्य अज्ञान में स्वीकार कर लेता है। सागर को कमजोर जहाज के द्वारा पार नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति इस अधिकार की संकुचित भावना के द्वारा किसी के हृदय पर अधिकार नहीं कर सकता है। तुम्हारी अपूर्णता को मात्र विवाह ही पूर्णता प्रदान कर सकता है। यदि तुमने श्रद्धा से विधिवत विवाह किया होता तो तुम्हारी यह अज्ञानता स्वयं समाप्त हो जाती। किन्तु तुम स्वार्थ में इतना रत हो गए थे कि परिणय से मुँह मोड़ लिया। अधिकार के चक्कर में पड़े रहे। तुम्हारा यह स्वार्थ संकीर्ण मनोव त्ति का प्रतीक है।

विशेष:

1. श्रद्धा का हृदय सागर का प्रतीक है।

2. 'सौंदर्य जलधि से भर लाए गरल पात्र' के द्वारा सागर मंथन संकेतित है।
3. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी।
4. शब्दावली तत्सम प्रधान।
5. भाव गंभीर।
6. सौंदय जलधि एवं मानस जलनिधि में निरंग यमक।
7. सौंदर्य जलधि एवं मानस जल निधि में रूपक अलंकार।
8. श्रद्धा की उदार हृदयता का वर्णन।
9. मनु की अज्ञानता एवं वासना प्रधान रूप।
10. नारी सौंदर्य में अम त एवं विष दोनों।
11. परिणय की जीवन में महत्ता।
12. 'पाई' के स्थान पर 'पाया' प्रयोग व्याकरण दोष।
13. शक्ति एवं शिव का योग ही विवाह है।
14. राग नामक यान मानव के मानस का संत्रण नहीं कर सकता है।
15. राग भाव से जीवन में शांति प्राप्ति असंभव।

हाँ अब तुम बनने को स्वतंत्र सब कलुष ढाल कर औरों पर रखते हो अपना अलग तंत्र द्वंद्वों का उद्‌गम तो सदैव शाश्वत रहता है वह एक मंत्र डाली में कंटक-संग कुसुम खिलते मिलते भी हैं नवीन अपनी रूचि से तुम बिंधे हुए जिसको चाहे ले रहे बीन तुमने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय-प्रकाश न ग्रहण किया हाँ जलन वासना को जीवन भ्रम तम में पहला स्थान दिया अब बिकल प्रवर्तन हो ऐसा जो नियति-चक्र का बने यंत्र हो शाप भरा तव प्रजा-तंत्र।

शब्दार्थः कलुष = दोष, बुराई। द्वन्द्व = पारस्परिक विरोधी भाव। प्राणमयी ज्वाला = जीवन समर्पण करने वाली ज्योति अर्थात् श्रद्‌धा। प्रणय प्रकाश = प्रेम की ज्योति। प्रवर्तन = प्रारम्भ।

संदर्भः काम मनु से कहता है कि दोष तुम्हारा है। स्वतंत्रता पाने के लिए दोष औरों के सिर पर डालते हो। डाल पर पुष्प और कांटे साथ-साथ रहते हैं। अपनी रूचि के अनुसार व्यक्ति उन दोनों में से किसी एक का चयन करता है। वासना चुनी। हृदय नहीं देखा।

व्याख्याः अब तुम अपने को स्वतंत्र बनाने के लिए दूसरे पर सारा दोषरोपण कर रहे हो तथा अपने को निर्दोष प्रमाणित कर रहे हो। सारा अपराध श्रद्‌धा पर आरोपित किए जा रहे हो। तुम्हारे अपने बनाए हुए नियम हैं जिनका स्वयं पालन न करके दूसरे पर अपना तंत्र चलाना चाहते हो। अपनी भूल स्वीकार न करने का मूल कारण तुम्हारी श्रद्‌धा से अलग रहने की कामना है। दूसरे को परतंत्र रखकर स्वयं स्वतंत्र रहना चाहते हो। वेद मंत्र सनातन सत्य हैं उसी प्रकार संघर्ष भी सनातन सत्य है। स ष्टि के आदि काल से ही संघर्ष होता आया है।

सभी व क्षों या पौधों में काँटे नहीं होते हैं। सभी में फूल नहीं होते हैं किन्तु जिनमें काँटे होते हैं क्या उनमें फूल नहीं होते? फूल और काँटे साथ-साथ उसी प्रकार होते हैं जैसे जीवन में सुख-दुख साथ-साथ होते हैं। जीवन के विकास में संघर्ष अनिवार्य है। युद्ध के बाद शांति आती है। शांति के लिए ही संघर्ष होता है। तुम अपने स्वभाव के दास हो जो चाहते हो उसी का चयन करते हो। तुमने कभी ऐसा चिंतन ही नहीं किया कि सुंदर विचारों का ही अनुगमन करना चाहिए। जीवन की अनुकूलता पर तुम्हारा विशेष ध्यान है जो तुम्हारे अनुकूल होता है उसी का सुविधापूर्वक ग्रहण कर लेते हो।

तुमने प्राणों की उत्तेजना का प्रेम रूपी प्रकाश का कभी ग्रहण नहीं किया। यदि तुम उसे ग्रहण कर लेते तो तुम्हारे जीवन का संपूर्ण अंधेरा मिट जाता। प्रकाश ही अंधकार को दूर भगाता है। निराशा अंधकार को और घना बनाती है। अंधकार को दूर भगाकर तुम सत्य मार्ग के गामी बन जाते। किंतु तुमने अपने जीवन के अज्ञान रूपी अंधकार में वासना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है जिसके परिणामस्वरूप अपार दुख झेल रहे हो।

अब मैं तुम्हें यह शाप देता हूँ कि अब एक ऐसा दुखमय आरम्भ हो जो भाग्य-चक्र का साधन बन जाए जिसकी सहायता से भाग्य अपने इशारे पर व्यक्ति को नचाता रहे। तुम्हारा प्रजातंत्र शापयुक्त हो, उसमें कभी आनंद की प्राप्ति न हो। आनंद की बेल ही विकसित न हो, क्योंकि तुमने श्रद्धा के सौंदर्य से वासना की जलन चुनी है प्रणय के प्रकाश की उपेक्षा की है। तुमने अपने जीवन में भ्रम या अंधकार को ही प्राथमिकता दी है।

विशेषः

1. भाषा का सारल्य रोचक।
2. शब्दों में तत्समता का आधिक्य।
3. लाक्षणिक एवं प्रतीमात्मक शैली।
4. 'प्राणमयी ज्वाला' में रूपकातिशयोक्ति।
5. 'प्रणय-प्रकाश' 'जलन वासना' में रूपक अलंकार।
6. श्रद्धा विहीनता असत का प्रतीक।
7. डाली में कंटक संग कुसुम खिलते मिलते भी हैं नवीन में लक्षण-लक्षणा है।
8. असत् व त्ति पुरुष काँटों का चयन करता है।
9. उससे सुमन संभव नहीं।
10. श्रद्धा विहीनता जीवन को वासनामय बनाती है।

> **यह प्रेम न रह जाये पुनीत अपने स्वार्थों से आव त हो मंगल रहस्य सकुचे सभीत सारी संस ति हो विरह भरी,**
> **गाते ही बीतें करूण गीत आकांक्षा-जलनिधि की सीमा हो क्षितिज निराशा सदा रक्त तुम राग विराग करो सबसे**
> **अपने को कर शतशः विभक्त मस्तिष्क हृदय के हो विरूद्ध दोनों में हो सद्भाव नहीं वह चलने को जब कहे कहीं**
> **तब हृदय निकल चल जाय कहीं रोकर बीतें सब वर्तमान क्षण सुन्दर सपना हो अतीत पेंगो मे झूले हार जीत।**

शब्दार्थः मंगल रहस्य = कल्याण की छिपी हुई भावना। सारी संस ति = समस्त प्रजा। आकांक्षा-जलनिधि = अभिलाषा रूपी सागर। राग-विराग = प्रेम-दोष। शतशः विभक्त = सैकड़ों भागों में बंटकर। पेंग = झूले के लंबे झोटे।

संदर्भः काम मनु एवं प्रजा को अनेक प्रकार से अभिशापित करता है जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में सभी प्राणी स्वार्थी होंगे एवं सात्विक प्रेम का अभाव हो जाएगा।

व्याख्याः मनु को शाप देता हुआ काम कहने लगा- मनु! तुम्हारी प्रजा में पवित्र एवं सात्विक प्रेम का अभाव रहे। स्वार्थमय प्रेम होने से प्रेम में निहित कल्याण की भावना का मनुष्यों में अभाव हो जाए तथा सभी लोग भयभीत रहें। समस्त प्रजा सदैव वियोग में आकुल व्याकुल रहे। करूणा की भावना का प्रसार हो। इष्ट की अनिष्ट एवं अभिष्ट की प्राप्ति हो जिससे लोग दुख भरे करूण गीत गाते रहें। जिस प्रकार सागर की सीमा क्षितिज तक द ष्टिगोचर होती है किन्तु सागर असीमित है उसी प्रकार तुम्हारी प्रजा की आकांक्षाएं असीमित हों। अर्थात् सागर के समान विस्त त एवं विशाल हों। संध्याकाल में सागर क्षितिज से रक्तिय वर्ण का द ष्टिगोचर हो क्योंकि अस्ताचल सूर्य की किरणें लाल या रक्त वर्ण की होती है। निराशा दुखदायी होगी।

संध्या के सागर को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे लाल क्षितिज पर समाप्त हो रहा हो किंतु समाप्त नहीं होता है। उसी प्रकार निराशाएँ अनंत हों। मनुष्य का अंत भी घातक एवं निराशा में हो। उसे जीवन में कभी सफलता न मिले। अपनी शक्ति को सैकड़ों भागों में विभक्त कर अर्थात् अनेक रूप धारण किसी से प्रेम किसी से ईर्ष्या-द्वेष करो। अभिप्राय यह है कि स्वार्थ वश आवश्यकता पड़ने पर किसी से प्रेम करने लगोगे। स्वार्थ सिद्धि हो जाने पर अर्थात् काम निकल जाने पर उससे द्वेष करने लगोगे। किसी से भी तुम सच्चा प्रेम नहीं करोगे। इसका यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि राग-द्वेष हेतु तुम अपने सैकड़ों टुकड़े करने में रंचमात्र भी चिंता नहीं करोगे। तुम टुकड़े-टुकड़े भी होकर दूसरे को तोड़ने में लगे रहोंगे।

मानव की दो बड़ी-बड़ी शक्तियाँ मस्तिष्क और हृदय हैं। दोनों के समन्वय से मानव की उन्नति होती है। ये दोनों परस्पर एक दूसरे के विरोधी हों। इनमें सद्भाव या समन्वय की भावना कभी न आए। नवीन स ष्टि में बुद्धि और हृदय का सदैव विरोध रहे। जब मस्तिष्क हृदय को एक ओर चलने को कहे तो चंचल मन या हृदय व्याकुल होकर कहीं और चला जाएगा। उसी प्रकार जब बुद्धि एक ओर चलेगी तो हृदय उसके विपरीत दिशा में चलेगा। दोनों परस्पर विपरीत दिशा के गामी हों।

व्यक्ति का वर्तमान जीवन दुखमय बीते। उसकी संपूर्ण सुंदर कल्पनाएँ विलीन हो जाएँ। सुखमय अतीत उसके लिए स्वप्न हो जाए। क्योंकि अतीत सदैव सुखदायी प्रतीत होता है। जिस प्रकार झूला तीव्र गति से ऊपर-नीचे जाता है वही स्थिति मानव के जय-पराजय की हो। अर्थात् क्षणभर के लिए विजयी दूसरे ही क्षण पराजित हो। पराजय का दुख भोगे। सुख क्षणिक एवं दुख स्थायी हो।

विशेषः

1. तुलना के लिए-

   "मुख चपला सा दुख घन सा"

   प्रसाद-कामायनी

2. भाषा सरल।
3. शब्दावली तत्सम।
4. 'आकांक्षा जलनिधि' रूपक अलंकार।
5. मस्तिष्क-हृदय के विरोध मार्मिक चित्रण।
6. मस्तिष्क बुद्धि या विवेक का प्रतीक।
7. हृदय श्रद्धा आस्था का प्रतीक है।
8. 'पेंगों में झूले हार जीत' मानवीकरण।
9. काम का थोक में अभिशाप।
10. काम का अभिशाप आधुनिक वैज्ञानिकता का शाप है।
11. मानवीय दुखों का कारण वैज्ञानिक एवं भौतिक उन्नति है।

संकुचित असीम अमोध शक्ति जीवन को बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति या कभी अपूर्ण अहंय में हो
रागमयी-सी महाशक्ति व्यापकता निर्यात प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बंद सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बनकर कुछ
रचे छंद कर्त त्व सकल बनकर आवे नश्वर छाया-सी ललित कला नित्यता विभाजित हो पल-पल में काल निरन्तर
चले ढला तुम समझ न सको, बुराई से शुभ इच्छा की है बड़ी शक्ति हो विकल तर्क से भरी युक्ति।

शब्दार्थः बाधामय = बिध्नों से पूर्ण। अपूर्ण अहंता = तुच्छ अहंकार। रागमयी = मोहमयी, ममता से पूर्ण। महाशक्ति = विराट शक्ति। व्यापकता = विशालता, मनुष्य की व्यापक शक्ति। क्षुद्र अंश = छोटा भाग। कर्त त्व = कार्य, रचना। नित्यता = अमरता, सनातनता। तर्क से भरी युक्ति = तर्क पूर्ण उक्ति।

संदर्भः काम मनु को शाप देते हुए कहता कि पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति न हो। तुम्हें यह ज्ञान न हो पाए कि शुभ इच्छा बुराई से बड़ी शक्ति है। तर्क से भी कभी सफलता न मिले।

व्याख्याः काम मनु को अभिशापित करता हुआ कहता है कि तुम्हारी प्रजा की असीम एवं अमोध शक्ति संकुचित हो जाएगी और भेदभावपूर्ण व्यक्ति के जीवन को बाधाओं से भरे हुए मार्गों पर ले जाएगी तथा मनुष्य अपने तुच्छ घमंड के कारण विराट शक्ति को मोहमयी तुच्छ शक्ति मानकर न केवल उसका निरादर करेगा अपितु मनुष्य के हृदय में स्थित व्यापक एवं असीम शक्ति भी उसे अपनी सीमाओं में घिरी तथा सीमित प्रतीत होगी। कहने का अभिप्राय यह है कि संकुचित भावनाओं के कारण व्यक्ति के हृदय में ईश्वर का प्रेम भी भेदभाव पूर्ण हो जाएगा और मनुष्य के मन में श्रद्धा होते हुए भी उसके मूल में ईर्ष्या और लाभ छिपा रहेगा तथा अपनी अपूर्णता से अहंकार के कारण अपने को सर्वशक्तिमान समझकर वह अपने सामने समस्त विश्व एवं ईश्वर को तुच्छ समझेगा। काम का कहना है कि भविष्य में मनुष्य थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त करके ही अपने को सर्वज्ञ समझने लगेगा तथा उसी सीमित ज्ञान के आधार पर वह काव्य रचना की ओर प्रव त्त होगा तथा ललित कलाओं को वह इस प्रकार चित्रित करेगा कि वे सभी छाया के समान नश्वर एवं क्षणभंगुर होंगी। कहने का तात्पर्य यह है कि भविष्य में व्यक्ति वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला तथा काव्य कला आदि ललित कलाओं के क्षेत्र में कोई भी ऐसी कृति प्रस्तुत नहीं करेगा जो अमर एवं स्थायी हो।

काम कहता है कि भविष्य में मनुष्य के हृदय से जीवन और जगत की व्यापकता एवं अखंडता विषयक भावनाएँ लुप्त हो जाएंगी। वह विकास की अपेक्षा ह्रास की ओर जाता द ष्टिगोचर होगा तथा उसका संपूर्ण समय पतनोन्मुख होगा। काम मनु से कहता है कि तुम्हारी भी यही स्थिति होगी। तुम यह समझ न सकोगे कि बुराई की अपेक्षा शुभ इच्छा की शक्ति बड़ी है। अर्थात् भलाई बुराई में भेद न कर पाने के कारण बुराई को ही ग्रहण करोगे। तर्कपूर्ण उक्ति को भी कभी सफलता नहीं मिलेगी। अर्थात् तुम्हारा तर्क किसी भी तथ्य को सिद्ध या प्रमाणित नहीं कर सकेगा।

विशेषः

1. रागमयी-सी, नश्वर छाया-सी उपमालंकार।
2. पल-पल, पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार।
3. अनुप्रास अलंकार।
4. पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग।
5. अखंड को खंडित करने वाली माया है।
6. माया के पांच कंचुक-राग, नियति, विद्या, कला और काल हैं।
7. आधुनिक मानव की स्वार्थ बद्ध संकुचित द ष्टि का सजीव चित्रण है।
8. स ष्टि के अस्थायी रूप का मार्मिक बिंब है।
9. भक्ति भावना भेद भरी होगी।
10. मानस में कलियुग के वर्णन में कुछ ऐसा ही वर्णन है।
11. माया के पांचों कंचुक विपरीत कार्यरत रहेंगे।

तुम जरा-मरण में चिर अशांत जिसको अब तक समझे थे सब जीवन में परिवर्तन अनंत अमरत्व वही अब भूलेगा तुम व्याकुल उसको कहो अंत दुखमय चिर चिंतन के प्रतीक! श्रद्धा वंचक बनकर अधीर मानव संतति ग्रह-रश्मि-रज्जु से भाग्य बाँध पीटे लकीर 'कल्याण-भूमि यह लोक' यही श्रद्धा रहस्य जाने न प्रजा अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक वंचना से भर जा आशाओं में अपने निराश निजी बुद्धि विभव से रहे भ्रांत वह चलता रहे सदैव श्रांत।

शब्दार्थः चिर अशान्त = हमेशा व्याकुल। जीवन में परिवर्तन अनन्त = जीवन में सदैव परिवर्तन होता रहेगा। वंचक = छली। ग्रह रश्मि रज्जु = नक्षत्रों की किरण रूपी रस्सी। पीट लकीर = अंधानुकरण करना। अतिचारी = अत्याचार करने वाला। परलोक वंचना = दूसरे लोक का धोखा। बुद्धि विभव = बौद्धिक उन्नति।

संदर्भः काम शाप देता हुआ कहता है कि तुम व द्धावस्था और म त्यु के भय से सदैव बेचैन रहोगे। तुम्हें अमरत्व भूल जाएगा। तुम अपने को श्रद्धा वंचक मानोगे।

व्याख्याः तुम सदैव व द्धावस्था और म त्यु के कारण अशांत रहोगे। अभी तो तुम यह समझते हो कि जीवन परिवर्तन अनंत है किंतु अब तुम अमरत्व की भावना को भूल जाओगे। तुम व्याकुल होकर अब जीवन के परिवर्तन को शांत कहोगे। पहले तो तुम्हें जीवन की अक्षय शक्ति पर विश्वास था और अमर जाति के गुणों से मुक्त थे किंतु अब तुम्हारा जीवन म त्यु से समाप्त हो जाएगा।

तुम सदैव दुख देने वाले चिंतन के प्रतीक के रूप में माने जाओगे। तुमने केवल चिंतन का सहारा लिया और इसी कारण उसका अब भयंकर परिणाम भी भोगना पड़ेगा। अब तुम्हारी संतान श्रद्धारहित होकर सदैव व्याकुल रहेगी। वह अपने भाग्य को ज्योतिष की ग्रह-दशाओं में बांधकर सदैव एक ही मार्ग का गमन करती रहेगी, सदैव दुख और विनाश के मार्ग पर चलती रहेगी।

श्रद्धा से ही यह रहस्य जानने योग्य है कि यही संसार मंगलमय है, यही सुख के सब साधन प्राप्त हैं। किंतु श्रद्धा-विहीन होने के परिणामस्वरूप तुम्हारी प्रजा इस रहस्य को नहीं जान पाएगी। वह इस संसार को दुखपूर्ण और असत मानकर सदैव परलोक की आशा किया करेगी। उसका इस लोक पर विश्वास नहीं होगा। उसकी आंखें सदा स्वर्ग से लगी रहेंगी। नव स ष्टि का मानव अपनी अनेक आशाओं के भार को वहन करते हुए भी निराश रहेगा। वह अपनी ही बुद्धि के तर्क जाल में फंसकर अज्ञान में पड़ जाएगा। जीवन भर थका होने पर भी अपने उसी मार्ग पर चलता जाएगा।

काम की इस शाप वाणी का कथा विकास, प्रसाद के चिंतन, और कवि की युग सचेष्ट प्रतिभा की द ष्टि से अन्यन्त महत्व है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि आधुनिक जीवन का चित्र खींच रहा हो। यह ध्यान देने योग्य है कि सारस्वत प्रदेश को बसाकर जब मनु सभ्यता की प्रतिष्ठा करते हैं तब उसकी भी वही स्थिति होती है जो काम की वाणी में व्यक्त है इसका मूल कारण है कि मनुष्य का मनुष्य से विश्वास उठ गया है। सभी तार्किक एवं स्वार्थी हो गए हैं कोई भी श्रद्धा की महिमा से पूर्ण रूपेण न परिचित है न परिचय प्राप्त करने की इच्छा रखता है।

विषयः

1. मनु को श्रद्धा वंचक कहा है।
2. जो चिंतन का प्रतीक है।
3. अमरत्व समाप्त होगा।
4. यह भूमि ही कल्याण लोक है यह रहस्य श्रद्धावान ही समझेगा।
5. अत्याचारी इसे मिथ्या मानेगा।
6. आशा के स्थान पर निराशा होगी।
7. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी है।
8. काम का अभिशाप मानो आधुनिकता का चित्रण।

करती सरस्वती मधुर नाद बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद सब उपल उपेक्षित पड़े रहे जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद वह थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान थी कर्म निरंतरता प्रतीक चलता स्ववश अनंत ज्ञान हिम-शीतल लहरों का रह-रह कूलों से टकराते जाना आलोक अरूण किरणों का उन पर अपनी छाया बिखराना अद्‌भुत था! निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद कहता जाता कुछ सु-संवाद।

शब्दार्थः निर्लिप्त = विकारहीन, तटस्थ। अप्रमाद = बिना आलस्य। उपल = पत्थर। कर्म निरन्तरता का प्रतीक = कर्म करने के लिए प्रेरणा देने वाली मूर्ति। निर्विवाद = बिना विघ्न के, अबाध गति से। सु-संवाद = सुखद संदेश।

संदर्भः कवि यहीं से बुद्धिवाद की भूमिका बाँधता है। नदी और वाद में ज्ञान के प्रतीक रूप में सरस्वती नदी का चित्रण किया गया है। अपने प्रवाह में वह निरंतरता का प्रतीक बन गई है। मानो मानव को कर्म का संदेश दे रही है। कवि कहता है।

व्याख्याः सवेरा होने वाला है। मनु अब सारस्वत प्रदेश के खंडहरों को छोड़कर आगे बढ़ रहे हैं। बढ़ते-बढ़ते सरस्वती के किनारे पहुंच गए। सरस्वती नदी कल-कल की मधुर ध्वनि करती हुई हिमालय की हरी-हरी घाटियों में विकारहीन शुद्ध भावों की तरह शांतिपूर्वक निर्विघ्न प्रवाहित हो रही है। उसी नदी के तट पर बहुत से तिरस्कृत पत्थर पड़े हुए थे जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सरस्वती नदी के मन में किसी प्रकार खिन्नता या चिंता नहीं है। इसलिए शोक-भाव निष्ठुर जड़वत रूप धारण कर इस नदी के हाशिए पर पड़े हैं। सरस्वती नदी की धारा कल-कल, छल-छल की ध्वनि से मधुर संगीत सुनाते हुए प्रसन्नता के साथ आगे बढ़ती चली जा रही है। यह निरंतर प्रवाहिता नदी सतत कर्मशीलता की प्रतिमा बनी हुई है तथा विश्व के प्राणियों को सदैव निरंतर कर्मरत रहने की प्रेरणा देते हुए ऐसी प्रतीति प्रदान कर रही है मानो वह अनंत ज्ञान का अपूर्व भंडार है। सरस्वती नदी की बर्फ के समान शीतल लहरें रह-रहकर किनारों से टकरा रही हैं। सरस्वती का सौंदर्य दिव्य रूप धारण किए हुए है। किसी पथिक के समान तीव्रगति से अपने निश्चित पथ पर अग्रसर सरस्वती नदी प्राणी की शुभ संदेशिका बनी हुई है।

विशेषः

1. सरल प्रसाद गुणमयी भाषा।
2. शब्दावली तत्सम।
3. भाव-सी, जैसे वाचक उपमा।
4. निज निर्मित पथ का पथिक-रूपकातिशयोक्ति।
5. रह-रह पुनरूक्ति प्रकाश।

6. सब उपल जड़ विषाद-उत्प्रेक्षा।
7. कर्म निरंतरता प्रतीक अलंकार।
8. सरस्वती नदी का सजीव एवं भावपूर्ण बिंब।
9. मानवीकरण।
10. ऐतिहासिक प्रमाण सम्मत नदी का वर्णन।
11. नदी के संदर्भ में प्रसाद का सूक्ष्म निरीक्षण।

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल वह विश्व मुकुट-सा उज्जवलतम शशिखंड सद श था स्पष्ट भाल दो पद्म पलाश चषक से द्दग देते अनुराग विराग ढाल गुंजरित मधुप से मुकुल-सद श वह आनन जिसमें भरा गान वक्षस्थल पर एकत्र धरे संस्कृति के सब विज्ञान-ज्ञान था एक हाथ में कर्म-कलश बसुधा जीवन-रस सार लिए दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये बिबली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा राल चरणों में थी गति भरी ताल।

शब्दार्थ: विश्व मुकुट = संसार का मुकुट। शशिखंड = अपूर्ण चंद्र, अपूर्ण कलाओं वाला चंद्रमा। पद्म पलाश = कमल के पत्ते। चषक = प्याला। विज्ञान = भौतिक ज्ञान। ज्ञान = आध्यात्मिक ज्ञान। त्रिगुण = सत, रज, तम। आलोक वसन = उज्जवल सफेद वस्त्र। त्रिवली = उदर पर पड़ने वाली तीन रेखाएं। अराल = घना।

संदर्भ: काम के अभिशाप एवं सरस्वती सौंदर्य तथा संदेश के पश्चात् कवि के समक्ष इड़ा का रूप प्रस्तुत होता है। प्रस्तुत पद्य में इड़ा का बाह्य सौंदर्य वर्णित है। जिसमें परम्परा या क्रम का निर्वाह नहीं किया गया है।

व्याख्या: सुंदरी युवती इड़ा के बाह्य सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके घुंघराले बाल तर्क समूह के समान बिखरे हुए हैं, उसका ललाट अतीव जाज्वल्यमान है जो विश्व के मुकुट के समान शोभादायक अर्द्ध चंद्र के समान प्रतीत होता है। उसकी दोनों आंखें कमल के पत्तों से बने हुए दो प्यालों के समान हैं। जिनसे प्रेम और वैराग्य छलक रहा है। अर्थात् इड़ा का सौंदर्य, तर्क, प्रेम एवं वैराग्य का प्रतीक है। एक शब्द में इड़ा बुद्धि का प्रतीक है। उसका मुख अधखिले पुष्प के समान है। कली खिलने वाली है अर्थात् उसकी कीशोरावस्था है जिसका युवावस्था में पदार्पण होने वाला है। उसकी मधुर ध्वनि भ्रमर गुंजार का प्रतिपादन करती है। उन्नत वक्षस्थल को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसने अपने हृदय में विश्व का संपूर्ण भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान एकत्र एवं समन्वित कर रखा है। श्रद्धा के वक्षस्थल के उभार का भी इन्हीं शब्दों में ऐसा ही वर्णन किया गया है। तुलना के लिए-'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल' 'घिर रहे थे घुंघराले बाल' नयन का 'इन्द्रजाल' तथा आलोक वसन में लिपटा 'चंद्रिका से लिपटा' घनश्याम' आदि में शब्द साम्य के साथ-साथ सौंदर्य साम्य भी है। अंतर इतना है कि श्रद्धा को युवती तथा इड़ा को किशोरी रूप में चित्रित किया गया है। इड़ा के एक हाथ में कर्म का पात्र है जिसमें प थ्वी निवासी सभी प्राणियों के जीवन को आनंद प्रदान करने वाला दिव्य रस भरा है। उसका दूसरा हाथ विचारों को आकाश को मधुरता एवं निर्भयता के साथ सहारा दे रहा है। अर्थात् इड़ा का दूसरा हाथ यह संकेतित कर रहा है कि गूढ़ से गूढ़ विचारों को भी मधुरता एवं निर्भीकता के साथ कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है। इड़ा के उदर पर नाभि के समीप तीन रेखाएँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो सतोगुण, तमोगुण एवं रजोगुण की लहरें समन्वित रूप धारण कर लहरा रही हैं। उसने अपने शरीर को उज्जवल तिरछे वस्त्रों से लपेट रखा है। श्रद्धा का वस्त्र नीला था। उसके चरणों में ऐसी गतिमयता भरी है मानो वह न त्य मुद्रा में ताल या थाप दे रही हो।

विशेष:

1. ज्यों तर्क जाल, शशिखंड सद श, चषक से तथा मुकुट-सा, मुकुल-सद श आदि में उपमा अलंकार।
2. कर्म-कलश तथा जीवन-रस में रूपक।
3. प्रकृति के सत, रज, तम तीन गुणों का वर्णन।
4. तिरछा प्रकाश भ्रांति उत्पन्न करता है।
5. तत्सम शब्दावली की प्रधानता।

6. तत्सम शब्द 'चषक' प्रयोग फारसी प्रभाव के कारण।
7. प्रसाद ने इड़ा के सौंदर्य वर्णन में अंग को उपमेय उपमान दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है।
8. तर्क-जाल में रूपक अलंकार।
9. आलोक वसन-लक्षण-लक्षणा।
10. प्राचीन काव्योक्तियों का प्रचुर प्रयोग है।
11. इड़ा का सौंदर्य वर्णन नवीन शैली पर है। बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ आभ्यंतर सौंदर्य भी वर्णित।
12. सौंदर्य वर्णन में बिंब विधान द्रष्टव्य है।

नीरव थी प्राणों की पुकार मूर्छित जीवन-सर निस्तंरग नीहार घिर रहा था अपार निस्तब्ध अलस बन कर सोई चलती न रही चंचल बयार पीता मन मुकुलित कंज आप अपनी मधु बूंदे मधुर मौन निस्वन दिगंत में रहे रूद्ध सहसा बोले मनु "अरे कौन आलोकमयी स्मित चेतनता आई यह हेमवती छाया" तंद्रा के स्वप्न तिरोहित थे बिखरी केवल उजली माया वह स्पर्श दुलार पुलक से भर बीते युग को उठता पुकार वीचियाँ नाचतीं बार-बार।

शब्दार्थः प्राणों की पुकार = ह्रदय की हलचल। जीवन सर = जीवन रूपी तालाब। नीहार = कुहरा। सोई = बंद हो गई। रूद्ध = चुपचाप। हेमवती = सुनहली। उजली माया = प्रकाश पूर्ण चेतना।

संदर्भः सारस्वत प्रदेश का वातावरण वर्णित है उसके माध्यम से मनु के ह्रदय की अवस्था का वर्णन किया गया है जो निराशा से परिपूर्ण है।

व्याख्याः किशोरी इड़ा को देखते ही मनु के ह्रदय की हलचल शांत होने लगी। जिस प्रकार कोई तालाब तरंग रहित होकर शांत हो जाता है उसी प्रकार मनु के मन में उठते हुए विभिन्न भाव शांत हो गए। जिस प्रकार शीत काल में तालाब कुहरे से घिरा रहता है उसी तरह मनु का मन निराशा रूपी कुहरे से अत्याधिक घिरा हुआ था। जैसे शांत तालाब से यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ चंचल हवा का चलना बंद हो गया है वह आलस्यवश कहीं जाकर गहरी नींद में खो गई है। वैसे ही मनु की सभी चंचल जाग त भावनाएँ भी सो गई हैं तथा इड़ा के उस दिव्य रूप को देखकर मनु का मन अपने ही विचारों में इस प्रकार विलीन हो गया जैसे तालाब में विकसित कोई अधखिला फूल स्वयं अपने पुष्प रस को पी रहा हो। इतना ही नहीं, उस प्राची दिशा में, जहाँ दिव्य किशोरी इड़ा अवतरित हुई थी अभी तक मधुर मौन छाया हुआ था और इड़ा को देखकर मनु भी कुछ क्षणों तक चुपचाप हो गए थे परंतु वे अचानक ही बोल उठे-"अरे, यह कौन है? क्या अपनी सुनहली कांति फैलाते हुए तथा प्रकाश के साथ हंसती हुई चेतना ही साकार रूप धारण करके यहाँ आ गई है?"

इड़ा को देखते ही मनु के मन का आलस्य दूर हो गया तथा उनके जीवन में उज्ज्वल प्रकाश युक्त चेतना का समावेश हो गया। उन्हें अपना अतीत याद आने लगा जब वे श्रद्धा के साथ आनंद से सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। जैसे शांत तालाब लहरों के अचानक उठने पर चंचल एवं सक्रिय हो जाता है उसी प्रकार विगत जीवन के क्षणों का सुख याद आते ही मनु का मन नाचने लगा क्योंकि अतीत की मधुर स्म तियाँ भी नाच-नाच कर उन्हें आंदोलित कर रही थी।

विशेषः

1. इड़ा के सौंदर्य वर्णन द्वारा मनु को आनंदित दिखलाया गया।
2. स्म ति संचारी भाव उसमें सहायक हुआ है।
3. शब्दावली तत्सम।
4. भाषा सरल एवं प्रसाद गुणमयी है।
5. जीवन सर, मन मुकुलित कंज में रूपक अलंकार।
6. बुद्धि उदय के पूर्व व्यक्ति गतिहीन था।
7. मनु के ह्रदय में पुनः अभिलाषाओं का उदय।
8. मधु बूंदें, वीचियां में रूपकातिशयोक्ति।

9. सांगरूपक का पूर्ण निर्वाह।
10. इड़ा का दिव्य सौंदर्य-वर्णित।
11. बिंब विधान द्रष्टव्य है।

    निस्तरंग सरोवर-जीवन का सजीव बिंब,
    नीहार-निराशा का भाव बिंब।
    पार-अभिलाषा का भाव बिंब।
    मुकुलित कंज-ऐन्द्रिय बिंब।
    उजली माया-चेतना का भाव बिंब।
    वीचियां-स्म तियों का भाव बिंब।
12. देव सुष्टि संबंधी विलासी जीवन की ओर संकेत-बीते युग को उठता पुकार।
13. काव्य सौंदर्य का सुंदर उदाहरण।

हाँ तुम ही हो अपने सहाय? जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता तुम ही इसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय यश अखिल लोक में रहे छाय।

शब्दार्थः संस्कार = परम्परागत प्रभाव। परिकर = फेंटा। नियमन = नियंत्रण। क्षमता = योग्यता, शक्ति। निर्णायक = फैसला करने वाला।

संदर्भः मनु इड़ा से प्रश्न करते हैं कि शोक से भरा शनि ग्रह का संसार अति दूर है उसके पीछे सुख का प्रकाश पुंज है। वहाँ निवास करने वाला ईश्वर सुख की एक किरण मुझे प्रदान करके से मेरे जीवन की स्वतंत्रता में सहायक सिद्ध हो सकता तथा संसारिक प्रपंचों से मुक्ति दिला सकता है। इड़ा कहती है कि ईश्वर कोई भी हो वह तुम्हारी सहायता क्यों करेगा? मनुष्य को किसी के आश्रित नहीं होना चाहिए अपितु अपनी दुर्बलता एवं बल की परीक्षा करके लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। किसी के सामने हाथ न फैलाओ, आत्मनिर्भर बनो, स्मरण रहे आगे बढ़ने वाले को कोई नहीं रोक सकता है तथा कहती है-

व्याख्याः निश्चित रूपेण समझ लो, भली भाँति जान लो, कोई किसी की सहायता नहीं करता है। तुम्हारी सहायता करने के लिए तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं आयेगा, तुम्हें स्वयमेव अपनी सहायता करनी होगी। मानव को सदैव अपनी बुद्धि का कहना मानना चाहिए। यदि मनुष्य बुद्धि के कथनानुसार कार्य नहीं करता है तो भला सोचो, विचारो संसार में ऐसा कौन है जो उसकी सहायता के लिए उद्यत होगा। हमारे जैसे भी शुभ या अशुभ परम्परागत प्रभाव या पूर्व कार्य हैं उनमें से किसको हम अपनाएँ? किसको त्यागें? इसका निर्णय बुद्धि करेगी। इसका निर्णय करने कोई और या किसी अन्य की बुद्धि नहीं आएगी।

हे मनु! यह अति रमणीय प्रकृति नाना लोगों के उपयोग हेतु अनेक साधनों से भरपूर है। उन साधनों को पहचानना तथा खोजना होगा। उनका खोजी तथा भोगी मुझे कोई द ष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

मैं नारी हूँ, तुम पुरुष हो, तुममें पौरुष की कमी नहीं है। कर्मशील बनो और अपने पौरुष से प्रकृति के रहस्य का उद्घाटन करने हेतु कमर कसकर उद्यत हो जाओ, सभी प्राकृतिक पदार्थों पर अपना नियंत्रण बनाओ, विश्व के शासक बनो, अपने अधिकार का पूर्ण उपयोग करते हुए विश्व में योग्यता एवं शक्ति को विकसित करने हेतु प्रयत्नशील बनो।

असमानता अथवा समानता दिखलाई पड़ने पर स्वयंमेव अपनी बुद्धि से उसका निर्णय करो कि क्या करणीय है क्या अकरणीय है? वैज्ञानिक सहज साधनों का उपयोग करते हुए वैज्ञानिक उपायों द्वारा विभिन्न पदार्थों में भी चेतना का संचार करो। इस प्रकार जड़ भी सजीव चेतन का स्वरूप धारण कर तुम्हारा सहयोगी बन जाएगा। शीघ्र ही तुम विश्वव्यापी यश के प्राणी हो जाओगे। दिग दिगंत में तुम्हारा यशोगान होने लगेगा।

विशेषः

1. जड़ता को चैतन्य करो- विरोधाभास अलंकार।

2. प्राकृतिक संसाधनों के दोहन।
3. विज्ञान के उपयोग द्वारा ही मानव प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकता है।
4. पर खोलने के द्वारा प्रकृति के रहस्योद्‌घाटन का मार्मिक बिंब विधान हुआ है।
5. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी।
6. तत्सम शब्दावली।
7. आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति का संकेत।
8. इड़ा बुद्‌धि का प्रतीक है।
9. बुद्‌धिवादी अपने को सर्वोपरि समझता है।
10. बुद्‌धिवादी ईश्वर में विश्वास नहीं करता। वह आस्तिक नहीं नास्तिक होता है।

हँस पड़ा गगन वह शून्य लोक जिसके भीतर बस कर उजड़े कितने ही जीवन-मरण-शोक कितने हृदयों के मधुर मिलन क्रंदन करते बन विरह-शोक ले लिया भार अपने सिर पर मनु ने यह अपना विषम आज हँस पड़ी उषा प्राची नभ में देखे नर अपना राज-काज चल पड़ी देखने वह कौतुक चंचल मलयाचल की बाला लख लाली प्रकृति कपोलों में गिरता तारा-दल मतवाला उन्निद्र कमल-कानन में होती थी मधुपों की नोक-झोंक वसुधा विस्म त थी सकता शोक।

शब्दार्थः विषम = भयंकर, कठोर। कौतुक = आश्चर्यजनक कार्य। मलयाचल = दक्षिण से आने वाला सुगन्धित पवन। प्रकृति कपोलों की लाली = उषा की लालिमा। तारादल गिरता = एक एक करके तारे छिपते जा रहे थे। उन्निद्र = विकसित। नोंक झोंक = छेड़-छाड़।

संदर्भः इड़ा की प्रेरणामयी वाणी सुनकर मनु सास्वत नगर की व्यवस्था संभालने के लिए तैयार हो गए। मनु ने इड़ा के आदेश को स्वीकार कर लिया। उस समय सर्वत्र मनोरम वातावरण द ष्टिगोचर हो रहा था। उसी वातावरण का चित्र प्रसाद जी ने अंकित किया है।

व्याख्याः प्रातःकालीन आसमान उस क्षण आलोकित, शान्त एवं सूनापन लिए हुए हँसता हुआ द ष्टिगोचर हो रहा था। अभी तक आकाश रात्रि के अंधकार के रूप में शोक एवं म त्यु भय से भयभीत था। नगिनत प्राणियों का आवागमन यह आकाश देख चुका है। कितने आए और चले गए। सारस्वत प्रदेश उजाड़ा है। इस शांत आकाश ने अपने नीचे असंख्या हृदयों का मधुर मिलन देखा है। रात्रि के घटाटोप अंधकार में वियोग जन्य चकी-चकवा का विरह गीत एवं करूण क्रंदन तथा हृदय विदारक चीत्कार सुनी है। सारस्वत प्रदेश की विषम व्यवस्था का भार मनु ने अपने कंधों पर ले लिया। प्रभात कालीन बेला में मनु ने सारस्वत नगर की व्यवस्था का असह्य एवं कठिन उत्तरदायित्व संभाल लिया। इस प्रकार मानव स ष्टि का आदि पुरुष मनु राजकार्य संभालने के लिए स्वयमेव तत्पर एवं अग्रसर हो गया। मनु की तत्परता एवं अग्रसरता को देखकर पूर्व दिशा में उषा भी अरूण आभा बिखेरती हुई हंसने लगी। स ष्टि के इस आश्चर्यजनक कार्य को देखने के लिए दक्षिण दिशा की चंचल एवं सुगंधित मलयानिल मंथर गति से प्रवाहमान हो गया। अर्थात् शीतल, मद, सुगंधित वायु चलने लगा।

उषा की अरूण आभा के रूप में प्रकृति देवी के कपोलों पर लज्जा की लाली देखकर मतवाले तारागण भी एक-एक करके प्रकृति के सौंदर्य पर आसक्त होकर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने लगे, प्रेम में प्राणों का उत्सर्ग करने लगे। अभिप्राय यह है कि प्रातःकाल में तारे क्रमशः एक-एक कर छिपने अर्थात् अस्त होने लगे। सूर्योदय ने तालाब में कमल खिला दिए। भ्रमर-भ्रमरियां मकरंद पान करने हेतु उन पर मंडराने लगे तथा परस्पर छेड़छाड़ एवं रंगरेलियां करने लगे। प्रभात कालीन वातावरण को देख कर प थ्वी अपने सभी शोकों को भुलाकर सर्वत्र उल्लास एवं आनंद के नव वातावरण का स जन करने में संलग्न हो गई।

विशेषः

1. गगन, उषा, मलयाचल की बाला, तारादल, मधुपों की नोंक-झोंक, वसुधा तथा विस्म त थी। सकल शोक में **मानवीकरण अलंकार** की छटा है।
2. प्रकृति कपोलों की लाली-**रूपकातिशयोक्ति।**

3. "चल पड़ी देखने वह कौतुक चंचल मलयाचल की बाला"-**उत्प्रेक्षा।**
4. प्रकृति चित्रण।
5. बिंब विधान।
6. छायावाद की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली।
7. उपचार वक्रता।
8. शैली विज्ञान की द ष्टि से प्रायः सभी स्थलों पर 'क्रिया विचलन' का सुंदर प्रयोग।

"जीवन-निशीथ का अंधकार भग रहा क्षितिज के अंचल में मुख आव त कर तुमको निहार तुम इड़े उषा-सी आज यहाँ आयी हो बन कितनी उदार कलरव कर जाग पड़े मेरे ये मनोभाव सोये विहंग हँसती प्रसन्नता चाव-भंरी बन कर कितनों की-सी तरंग अवलंब छोड़कर औरों का जब बुद्धिवाद को अपनाया मैं बढ़ा सहज, तो स्वयं बुद्धि को मानो आज यहाँ पाया मेरे विकल्प संकल्प बने, जीवन हो कर्मों की पुकार सुख-साधन का हो खुला द्वार।

शब्दार्थः निशीथ = आधी रात। आव त = छिपाकर, ढंककर। निहार = देखकर। मनोभाव = मन के भाव। विकल्प = भ्रम, अनिश्चय।

संदर्भः इड़ा के आदेशानुसार मनु ने सारस्वत प्रदेश की व्यवस्था का कठिन उत्तरदायित्व संभाल लिया। उनके भार संभालने से प्रकृति में भी नवीन वातावरण छा गया। ऐसी स्थिति में मनु इड़ा से कहते हैं-

व्याख्याः जिस प्रकार उषा के आने पर रात्रि का अंधकार अपना मुंह छिपाकर क्षितिज के पार भागता चला जाता है, उसी प्रकार तुम्हें देखते ही मेरे जीवन की संपूर्ण निराशा दूर हो गई। तुम आज उषा के समान ही उदारता तथा सहृदयता के साथ मेरे समक्ष उपस्थित हुई हो, मेरे जीवन में प्रवेश किया है। हे इड़ा! जिस प्रकार उषा के आगमन पर सोए हुए पक्षी उठ जाते और मधुर ध्वनि में चहचहाने लगते हैं तथा सर्वत्र प्रकाश की किरणें बिखर जाती हैं उसी प्रकार तुम्हारे आगमन से व जीवन में प्रवेश से मेरे सोये हुए भाव जाग उठे हैं। अर्थात् अकर्मण्यता छोड़कर कर्मठ एवं कर्मशील बन गया हूँ। मेरी भावनाएँ नवीन उत्साह से पूर्ण होकर लहरों के समान नाच रही हैं। अब मैंने अन्यों का सहारा छोड़कर बुद्धि का आश्रय लिया है अर्थात् बुद्धिवाद को अपनाया है। मैं स्वाभाविक रूप से अपने निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ रहा हूँ। तुम्हें पाकर मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम्हारे रूप में स्वयं बुद्धि मुझे प्राप्त हो गई है। अब मेरी यही कामना है कि मेरे अस्थिर विचार स्थिर हो जाएँ। तथा मेरा जीवन अकर्मण्यता को छोड़कर सदैव कार्य संलग्न रहे जिससे मुझे सभी प्रकार के सुख साधन सुगमता एवं सरलता से प्राप्त होते रहें।

विशेषः

1. जीवन निशीथ, मनोभाव विहंग, क्षितिज का अंचल तथा सुख-साधन में रूपक अलंकार।
2. अंधकार-रूपकातिशयोक्ति।
3. उषा-सी, किरणों की सी-वाचक उपमा।
4. सांग रूपक।
5. अंधकार, मनोभाव एवं प्रसन्नता-मानवीकरण।
6. विकल्प-संकल्प-पदमैत्री एवं सभंग पद यमक।
7. इड़ा बुद्धि का प्रतीक।
8. मनु की प्रसन्नता का प्राकृतिक वर्णन।
9. इड़ा का वर्णन ऋग्वेद के समान।
10. बिंब विधान-

    भागते हुए निशीथ के अंधकार-निराशा-भाव बिंब
    विहंग-मनोभावों का भाव बिंब।
    किरणें-प्रसन्नता का हृदय स्पर्शी भाव बिंब।

चतुर्दश सर्ग

रहस्य

श्रद्धा मनु को साथ लेकर उस उच्च प्रदेश पर चली गई थी, जहाँ नीले अँधकार का आवरण पड़ा हुआ था, श्रद्धा आगे-आगे चल रही थी मनु उसके पीछे-पीछे उसका अनुगमन कर रहे थे। चलते-चलते मनु थककर हार गए। श्रद्धा ने मनु को आश्वासन दिया कि अब नीचे जा नहीं सकते आते जाइए। इतनी ऊँचाई पर पहुँच चुके थे जहाँ से प्रत्यावर्तन संभव नहीं था। चलते-चलते वे एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां पर दिशाओं और काल का ज्ञान नहीं रह गया था। वहाँ पर मात्र आलोक पूर्ण चेतना का आभास था। मनु को यहाँ तीन दिशाओं में तीन गोलाकार प्रकाश केंद्र दिखलाई पड़ने लगे। ये तीनों मिले हुए नहीं अपितु अलग-अलग थे। उन गोलों को देखकर मनु का मन आश्चर्य से भर गया। वे श्रद्धा से पूछने लगे कि ये तीनों क्या हैं? श्रद्धा ने मनु के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा मनु! ये तीन बिंदुओं के रूप में तीन लोक दिखलाई पड़ रहे हैं। इन तीनों से घिरा हुआ एक त्रिकोण बन रहा है जिसके मध्य तुम स्थित हो। ये तीनों लोक क्रमशः इच्छा ज्ञान और क्रिया वाले हैं। जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि इन तीनों में तारतम्य नहीं है। श्रद्धा की मुस्कान रेखा में उन तीनों का तिरोभाव हो गया। तीनों का एक रूप हो गया। श्रं ग और डमरू की ध्वनि समस्त विश्व में व्याप्त हो गई। यहाँ विवेकमयी चिता निरंतर जलती रहती है। महाकाल का विषम न त्य होता रहता है। खाली स्थान ज्वाला से भर कर अपना विषम कार्य पूरा करता है। यहाँ पर स्वप्न, निद्रा एवं जागरण तीनों जलकर राख हो जाते हैं। इच्छा क्रिया और ज्ञान का एक दूसरे में विलय हो जाता है अलौकिक बिना चोट किए हुए ध्वनि में श्रद्धायुक्त मनु तन्मय थे।

व्याख्या

उर्ध्व देश उस नील तमस में
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी;
पथ थक कर है लीन, चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी।
दोनों पथिक चले हैं कब से
ऊँचे ऊँचे चढ़ते चढ़ते;
श्रद्धा आगे मनु पीछे थे
साहस उत्साही से बढ़ते।

शब्दार्थः उर्ध्व = ऊँचा, ब्रह्म। हिमानी = हिम से आच्छादित।

संदर्भः नाचते हुए नटराज को देखकर मनु मदहोश होकर पुकार उठे-हे श्रद्धा यह कितना अपूर्व द श्य है। अब तू मुझको अपना सहारा देकर नटराज के चरणों तक ले चल, जहाँ सारे, पाप-पुण्य जलकर पवित्र और उज्ज्वल हो जाते हैं। जहाँ आकर संपूर्ण तर्क भी मिथ्या के समान विलीन हो जाते हैं जहां समस्त श्र ष्टि ममत्व से अनुप्राणित है। जहाँ केवल आनंद ही आनंद है। मनु श्रद्धा का अनुगमन करते हुए रहस्यमय लोक की ओर चल पड़े। हिमालय पर शिव का निवास है।

व्याख्याः उस ऊँचे प्रदेश में हल्के अंधकार में जड़ बर्फ बिल्कुल शांत थी। सर्वत्र नीरवता का साम्राज्य छाया हुआ था। यहाँ तो मार्ग भी थककर छिप गया था। पर्वतों पर बहुत ऊँचे जाने पर पगडंडियाँ भी विलीन हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वत अपनी ऊँचाई के गर्व में भर कर चारों दिशाओं में देख रहा हो। अत्याधिक ऊँचाई पर पहुँच कर नीचे सब कुछ दिखलाई देता है। चारों ओर का द श्य स्पष्ट द ष्टिगोचर होता है।

श्रद्धा और मनु को चलते-चलते बहुत देर हो गई है। दोनों पथिक कब चले इसका कुछ ज्ञान नहीं है। उनका उद्देश्य मात्र उत्तरोत्तर ऊर्ध्व गमन करना है। इसलिए दोनों ऊँचाई पर चढ़ते ही जा रहे थे। श्रद्धा आगे-आगे चल रही थी मनु पीछे-पीछे

श्रद्धा के चरण चिह्नों पर चले जा रहे थे। दोनों साहसी और उत्साही की भाँति आगे बढ़ते चले जा रहे थे। जिस प्रकार साहस उत्साही व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहता है उसी प्रकार श्रद्धा भी मनु को आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रही थी।

विशेषः

1. भाषा अति सरल।
2. तत्सम शब्दावली में अर्थ सरलता।
3. दोनों पथिक उत्साही हैं।
4. श्रद्धा प्रेरणा का प्रतीक है।
5. श्रद्धा मार्ग दर्शक है।
6. हेतूत्प्रेक्षा, उपमा एवं मानवीकरण।
7. उपमेय स्थूल एवं उपमान सूक्ष्म।

"पवन-वेग प्रतिकूल उधर था
कहता, फिर जा अरे बटोही
किधर चला तू मुझे भेद कर?
प्राणों के प्रति क्यों निर्मोही?"
छूने को अम्बर मचली सी
बढ़ी जा रही सतत ऊँचाई;
विक्षत उसके अंग, प्रगट थे
भीषण खड्ड भयंकर खाँई।

शब्दार्थः बटोही = पथिक। भेदकर = चीर कर। निर्मोही = अनाशक्त। मचली-सी = व्याकुल सी। सतत = निरंतर। विक्षत = कटे-फटे, खाई खड्ड से युक्त।

संदर्भः मार्ग में श्रद्धा मनु के पीछे-पीछे कुछ अन्य पथिक भी पर्वत पर चढ़ते जा रहे थे उनके प्राणों की चिंता करते हुए वायु उनसे लौट जाने का आग्रह करती है। कहती है कि क्या तुम्हें अपने प्राणों की रक्षा करने की चिंता नहीं है? हवा इतनी तेज चल रही, कहीं खड्ड-खाई में गिरे तो प्राणान्त हो जाएगा।

व्याख्याः वायु के झोंके विपरीत दिशा से बड़ी तीव्र गति से इधर आ रहे थे जो पथिकों को आगे बढ़ने से रोकते थे। उनके मार्ग में बाधा खड़ी कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो पवन का झोंका पथिकों को संबोधित करता हुआ कह रहा हो- अरे! पथिक! तू वापस क्यों नहीं चला जाता है? तू हमें चीर कर कहाँ चला जा रहा है? तुम्हें अपने प्राणों की क्या रंचमात्र भी चिंता नहीं है? क्यों अपने प्राणों से इतना उदासीन हो रहा है? तुम्हारा कोई सगा संबंधी नहीं है क्या? ऊपर जाने में तेरे प्राणों का भय है।

पर्वत की ऊंचाई निरंतर बढ़ती ही जा रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो पर्वत आकाश को छू लेने के लिए व्याकुल-सा हो गया है। उसके अंग कटे-फटे हैं। पर्वत में भयंकर खड्ड और अगाध गहराई वाली, भय उत्पन्न करने वाली खाइयाँ दिखलाई दे रही थीं जो मानव को किसी समय भी निगल जाने के लिए अपना जबड़ा फैलाए हुई लेटी थीं।

विशेषः

1. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी।
2. शब्दावली तत्सम।
3. पर्वतों की भीषणता का वर्णन।
4. वायु की भी पथिकों के प्रति सहानुभूति।
5. पवन का कहना-मानवीकरण।
6. मचली-सी वाचक उपमा।

7. व्याकुल-सा वाचक उपमा।
8. उत्प्रेक्षा अलंकार-बढ़ी जा रही सतत ऊँचाई।
9. पर्वत का बिंब विधान।
10. भय का बिंब।

रविकर हिम खंडों पर पड़ कर
हिमकर कितने नये बनाता;
द्रुततर चक्कर काट पवन भी
फिर से वहीं लौट आ जाता।
नीचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहले;
कुंजर-कलभ सद श झठलाते
चमकाते चपला के गहने।

शब्दार्थः द्रुततर = जल्दी-जल्दी, अत्यन्त तेज। हिमकर = चंद्रमा। सुरधनु = इंद्रधनुष। कलभ = हाथी का बच्चा। चपला = बिजली।

संदर्भः पर्वत मालाएँ हिमाच्छादित हैं। आसमान बादलों से भरा है जिसमें बिजली भी चमक रही है। छोटे-छोटे बादल के टुकड़े हाथी के बच्चों के समान इधर-उधर इठला रहे थे।

व्याख्याः बर्फीली पर्वत श्रेणियों पर जब सूर्य चमकता था तो उस बर्फ पर असंख्य चंद्रमा चमकते हुए द ष्टिगोचर होने लगते थे। वायु अत्यंत तीव्र गति से चलती हुई इधर से उधर चक्कर काट रही थी। उसकी स्थिति जहाज के पंछी के समान थी। जैसे-

'उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै।"

-कबीर

जिस प्रकार जहाज पर से पक्षी उड़कर कहीं स्थल या व क्ष आश्रय न पाकर पुनः उड़कर जहाज पर आ जाता है। उसी प्रकार वायु चारों ओर चक्कर काट-काट कर वहीं वापस चली आती थी।

सूर्य के प्रतिबिंब चंद्रमा के समान थे, इससे पर्वत की भी शीतलता प्रकट होती है।

नीचे बादल इंद्रधनुष की सुंदर माला पहने दौड़ रहे थे। जैसे कोई हाथी का बच्चा गले में माला पहने गहनों से सुशोभित होकर इठलाता हुआ घूम रहा हो। हाथी के छोटे-छोटे बच्चे अपने माता से अलग होकर इधर-उधर इठलाते घूमते रहते हैं। उसी प्रकार बादल इधर-उधर घूम रहे थे। मेघ भी बिजली के गहने चमकाते हुए चल रहे थे। बादलों का स्वच्छंद भ्रमण वर्णित है।

विशेष :

1. अति सरल प्रसाद गुणमयी भाषा।
2. तत्सम् शब्दों का बाहुल्य।
3. पर्वतीय सौंदर्य का वर्णन।
4. हिमकर-परिकरांकुरं
5. दिन में भी असंख्य चंद्रमाओं के निर्माण में विरोधाभास।
6. अन्तिम दो पंक्तियों में मानवीकरण।
7. रूपक और उपमा अलंकार।
8. मनु और श्रद्धा अत्यधिक ऊँचाई पर पहुँच गए हैं।

प्रवहमान थे निम्न देश में
शीतल शत-शत निर्झर ऐसे,
महा श्वेत गजराज गण्ड से
बिखरी मधु-धारायें जैसे।
हरियाली जिनकी उभरी, वे
समतल चित्रपटी से लगते;
प्रतिकृतियों को बाह्य रेखसें
स्थिर नद जो प्रतिपल थे भगते।

व्याख्या : नीचे के भाग में सैकड़ों शीतल झरने ऐसे बह रहे थे जैसे विशाल हाथी के गंडस्थल से बहती हुई मद की धारा हो। मद की धार का रंग श्वेत होता है जो हाथी के गंडस्थल से प्रवाहित होती है। हाथी श्यामम वर्ण का होता है। पर्वत श्र ंखला का वर्ण भी श्याम होता है। इसलिए दोनों में पर्याप्त साम्य है। व समभूमियों के खंड, जिनकी हरियाली उभरी हुई थी, चित्र बनाने के फलक के समान दिखलाई देते थे। उनमें प्रतिक्षण बहने वाली नदियाँ द ष्टिगोचर होती थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे नदियाँ उस हरी चित्रपटी पर बनी हुई आकृतियों की गहरी रेखाएँ हों। दूर से देखने पर पर्वत की हरियाली सुंदर समतल तख्ते की भाँति द ष्टिगोचर होती थी उस पर प्रवाहित नदी गहरी रेखा के समान प्रतीत होती थी।

विशेष :

1. भाषा सरल माधुर्य गुणमयी।
2. सरल तत्सम् शब्दावली।
3. पर्वत सौंदर्य का वर्णन।
4. शत-शत में पुनरूक्ति प्रकाश।
5. उपमा अलंकार।
6. उत्प्रेक्षा अलंकार।

घबराओं मत! यह समतल है
देखो तो, हम कहाँ आ गये।"
मनु ने देखा आँख खोलकर
जैसे कुछ-कुछ त्राण पा गये।
ऊष्मा का अभिनव अनुभव था
ग्रह, तारा, नक्षत्र अस्त थे,
दिवा-रात्रि के संधि-काल में
ये सब कोई नहीं व्यस्त थे।

शब्दार्थ : समतल-समभूमि। त्राण-रक्षा, संतोष। ऊष्मा-गर्मी, उत्तेजना। अभिनय-नया। संधिकाल-मिलन का समय,संध्या। व्यस्त-कार्यरत।

संदर्भ : मनु एवं श्रद्धा थककर विश्राम कर रहे थे। जिस प्रकार पक्षी अपने पंखों का आधार बनाकर सोते हैं उसी प्रकार वे दोनों वायु रूपी पंख के सहारे विश्राम कर रहे थे। श्रद्धा मनु को विश्राम से जाग त करते हुए कहती है।

व्याख्या : श्रद्धा मनु को संबोधित करती हुई कहती है, घबराओं मत! जरा आँख खोलकर देखो तो सही हम कहाँ आ गए है? यह भूमि समतल है, चढ़ाई समाप्त हो गई है। मनु ने जब आँख खोलकर देखा तो उनकी व्याकुलता दूर हो गई और उन्हें कुछ संतोष हुआ।

वहाँ मनु को नवीन उत्तेजना की अनुभूति हुई। उस समय आकाश में कोई ग्रह तारा या नक्षत्र आदि दिखाई नहीं दे रहे थे। दिन और रात के मिलन की बेला थी। संध्या का समय था, इसलिए तारे आदि का प्रकाश नहीं था।

विशेष :

1. भाषा अति सरल प्रसाद गुणमयी है।
2. शब्दावली तत्सम है।
3. कुछ-कुछ में पुनरूक्ति प्रकाश।
4. अनुप्रास।
5. संधिकाल का प्राकृतिक सौंदर्य।
6. काल के कँचुक से मनु मुक्त हो गए थे।

ऋतुओं के स्तर हुए तिरोहित
भू-मंडल रेखा विलीन-सी,
निराधार उस महादेश में
उदित सचेतनता नवीन-सी।
त्रिदिक विश्व, आलोक बिंदु भी
तीन दिखाई पड़े अलग वे,
त्रिभुवन के प्रतिनिधि थे मानो
वे अनमिल थे किंतु सजग थे।

शब्दार्थ : ऋतुओं के स्तर-ऋतुओं की विभिन्नता। तिरोहित-छिप गए। सचेतनता-स्फूर्ति। त्रिदिक-तीन दिशाएँ। आलोक बिंदु -प्रकाश के बिंदु। अनमिल-भिन्न-भिन्न।

संदर्भ : विभिन्न दिशाओं में तीन प्रकाश बिंदु दिखलाई पड़े जो अलग-अलग थे उनमें कोई संपर्क या संबंध न था। वहाँ ऋतुओं में भिन्नता नहीं थी। एक जैसी ऋतु थी।

व्याख्या : वहाँ ऋतुओं में वैभिन्न नहीं थी। सदैव एक सी ही ऋतु रहती थी। ऋतु परिवर्तन नहीं होता था। वहाँ से प थ्वी रेखा छिप सी गई थी। पर्वत की ऊँचाई बढ़ जाने से प थ्वी ओझल हो गई थी रेखा मात्र भी नहीं दिखलाई पड़ती थी। उस निराधार विस्त त प्रदेश में एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता था। आलस्य किसी में नाममात्र को भी नहीं था। सभी चैतन्य थे। उस समय सामने की तीनों दिशाओं में विस्तार दिखलाई नही देता था। वहाँ मनु को तीन प्रकार के तीन बिंदु अलग-अलग दिखलाई पड़े। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे तीनों लोकों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। वे आपस में नहीं मिलते थे।

विशेष :

1. भाषा सरल प्रवाहमयी।
2. शब्द तत्सम।
3. संधि काल का वर्णन।
4. विलीन-सी, नवीन-सी-वाचक उपमा।
5. मानों वे अनमिल थे उत्प्रेक्षा-अलंकार।
6. ज्ञान लोक, कर्म लोक, इच्छा लोक।
7. सद्‌विद्‌या की स्थिति।
8. दिवलोक, अंतरिक्ष तथा प थ्वी।
9. सद्‌विद्‌धा की स्थिति।
10. त्रिपुर की कथा का वर्णन तंत्रालोक के आधार है।

इस त्रिकोण के मध्य बिंदु तुम
शक्ति विपुल क्षमता वाले थे,
एक-एक को स्थिर हो देखा
इच्छा, ज्ञान, क्रिया वाले थे।
वह देखो रागारूण हैं जो
ऊषा के कंदुक-सा सुंदर,
छायामय कर्मनीय कलेवर
भावमयी प्रतिमा का मन्दिर।

शब्दार्थ : त्रिकोण-तिकोन। विपुल-बहुत अधिक। रागारूण-लाल रंग का। ऊषा के कन्दुक-सा-प्रभात के सूर्य बिंब के समान। भावमयी प्रतिमा-भाव की मूर्ति।

संदर्भ : शैवागम, वैष्णवागम तथा साक्तागम। अर्थात् शिव, विष्णु एवं साक्त तीन आगम हैं। त्रिपुर रहस्य शैवागम में वर्णित है। इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान का प्रतीकात्मक वर्णन है। श्रद्धा इनका समन्वय करती है। इसीलिए श्रद्धा को त्रिपुर सुंदरी भी कहा गया है, मूल शक्ति कला भी कहा गया है उसकी हँसी से तीनों का समन्वय हो जाता है। उसी का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है।

व्याख्या : मनु के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रद्धा ने कहा-इस त्रिकोण मध्य में एक केंद्र बिंदु है। तुम वहीं हो। ये तीनों विपुल शक्ति एवं क्षमता वाले हैं। इन तीनों लोकों की सामर्थ्य का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है एक-एक को ध्यान से देखो तब तुम्हें पता लगेगा कि ये इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान के लक्षण हैं।

वह देखो, जो प्रभात कालीन सूर्य बिंब के समान लाल, धुंधला सा और आकर्षक है वह भावों की मूर्ति का मंदिर है। उसकी कोमल कांति अतीव रमणीय है।

इच्छा का संसार प्रेम पूर्ण है। प्रेम का रंग लाल माना गया है। इसलिए इच्छा लोक को लाल वर्ण का कहा गया है। इच्छाएँ अति आकर्षक होती हैं। भावों की जन्मदात्री इन्छाएँ ही है। यदि इच्छा न हो तो भावोदय नहीं हो सकता है। यह रागारूण लोक इच्छा लोक है।

विशेष :

1. इच्छा लोक का वर्णन।
2. इच्छा एवं प्रेम का प्रतीक लाल रंग है।
3. इच्छा आकर्षक है।
4. इच्छा, क्रिया और ज्ञान के त्रिकोण बिंदु पर मनु स्थित हैं।
5. इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान तीनों अपार शक्तिशाली हैं।
6. भावमयी प्रतिमा का मंदिर ही इच्छा लोक है।
7. तीनों में इच्छा प्रमुख है।

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की
पारदर्शिनी सुधड़, पुतलियाँ,
चारों ओर न त्य करती ज्यों,
रूपवती रंगीन तितलियाँ।
इस कुसुमाकर के कानन के
अरूण पराग पटल छाया में,
इठलाती सोती जगती वे
अपनी भाव भरी माया में।

शब्दार्थ : पारदर्शिनी - जिनके पार देखा जा सके, सूक्ष्म। सुघड़-सुदंर। कुसुमाकर-वसंत। कानन-वन।

संदर्भ : पांच तंमात्राओं का वर्णन किया गया है। वसंत का वर्णन प्रतीकात्मक रूप से किया गया है।

व्याख्या : इस लोक में शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की सुदंर एवं सूक्ष्म पुतलियाँ हैं। ये सुदंर तितलियाँ अपना रंगीला पन समस्त वातावरण में नाच-नाच कर फैलाती रहती हैं। रंगविरंगी तितलियों जैसी ये पांच तंमात्राएं इधर से उधर नाचा करती हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियां-श्रवण, त्वचा, जिहवा, चक्षु तथा नासिका हैं। कान-सुनने-श्रवण या शब्द-श्रवण, त्वचा-स्पर्श करने-छूकर ज्ञान प्राप्त करने-स्पर्श, जिहवा-चखने-खाकर आनन्द प्राप्त करने - रस, चक्षु - देखने - किसी को देखकर जानने-रूप, तथा नासिका-सूंघने-वस्तु को सूंघकर-गंध, की प्राप्ति का कार्य करने वाली ये पाँचों तंमात्राएं सदैव क्रियाशील रहती हैं। इनकी क्रियाशीलता ही इच्छाओं की पूर्ति करती है। इच्छाएँ बड़ी सुंदर होती है, इसलिए इन्हें रंगबिरंगी तितलियों का रूप दिया गया है। इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होती हैं एक के बाद दूसरी नवीन इच्छा उत्पन्न होती रहती है। इनका आगमन त्वरित गति से होता रहता है इसलिए इनके आने-जाने को नाचना कहा गया है। वसंत के जंगल में लाल वितान की छाया में ये तितलियाँ नाचती ही नहीं रहती हैं अपितु मस्ती मे घूमती हुई उसी में अर्थात भावों से भरपूर मायावी जगत में सोती जागती रहती हैं। इनके सोने जागने का ज्ञान नहीं होता है।

विशेष :

1. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी।
2. शब्द से तत्समता।
3. भावों में सरलता।
4. शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध पांच तंमात्राओं का वर्णन।
5. ये पांचों ही मनुष्य को अपने प्रति अनुरक्त करके उसके मन में इच्छाएँ उत्पन्न करती हैं।
6. रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार।
7. वसंत एवं भाव माया का रूप चित्रण

भाव चक्र यह चला रही है
इच्छा की रथ-नाभि घुमाती,
नव रस भरी अराएं अविरल
चक्रवाक को चकित चूमतीं।
यहाँ मनोमय विश्व कर रहा
रागारूण चेतन उपासना,
माया-राज्य! यही परिपाटी
पास बिछा कर जीव फाँसना।

शब्दार्थ : मनोमय-इंद्रियों और मन का संसार। भाव-चक्र-भावों का चक्र। रथ नाभि-रथ के पहिए की धुरी। अराएं-पहिए की तीलियां या छड़ें। चक्रवाल-पहिए का गोल भाग। रागात्मक-प्रेम से लाल। माया राज्य-मोहिनी शक्ति का राज्य। परिपाटी-पद्धति। पाश-जाल।

संदर्भ : शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध अपना-अपना रूप क्रमशः संगीतात्मकता, आलिंगन की मधुर प्रेरणा, आनंद, मनोहारिनी आकृति छायामय सुषमा में विह्वल तथा रसभीनी मधुर गंध चारों ओर फैला रहे हैं। पांच तत्वों के अलावा छठा माया तत्व भेदक तत्व उत्पन्न करता हुआ चारों दिशाओं में भ्रमण कर रहा है। सूक्ष्म अशरीरी प्राणी द ष्टिगोचर हो रहे हैं। तथा माया बैठी मुस्करा रही है।

व्याख्या : मोहिनी शक्ति ही भावा चक्र का परिचालन कर रही है। भाव चक्र मानों रथ का पहिया है जिसकी धुरी इच्छा है। धुरी के बल या सहारे पर पहिया नाचता है। इच्छा ही मनुष्य को क्रियाशील बनाती है। उसमें नौ रसों-करूण, वीर, श्रं गार, शांत, हास्य, रौद्र, वीभत्स, भयानक तथा अद्भुत की तीलियां लगी हैं। प्रसाद ने सूरदास के वात्सल्य, तुलसीदास के भक्ति एवं

प्रेम रस का ध्यान नहीं दिया है। उनकी द ष्टि नौ रसों पर ही टिकी रही है। ये तीलियां पहिए के गोल भाग को चूमती रहती हैं तथा आनंद स्वरूप बनी रहती हैं। इसीलिए तीलियों को रस की संज्ञा ही गई है। मोहिनी शक्ति निरंतर भाव चक्र को चलाय-मान किए रहती है। भावों का पहिया कभी रूकता नहीं है। सदैव गतिमान रहता है।

कबीरदास ने भी माया को मोहिनी कहा है जो मधुरी बानी बोलकर सभी को अपनी तिगुन फांस में फंसाती रहती है।

हृदय की मोहिनी शक्ति ही मुनष्य के भावों को जन्म देती है। इच्छाएँ भावों की मूल एवं जन्मदात्री हैं। इच्छा के परिणाम स्वरूप ही नौ या बारह रसों (आनंद) का जन्म हुआ है।

यहाँ इंद्रियों और मन का संसार प्रेम से लाल चेतना की उपासना किया करता है। यहाँ माया-मोहिनी का ही राज्य है। उसके अतिरिक्त यहाँ और किसी की नहीं चलती है वह मनमाना राज्य चला रही है। माया का यही व्यापार यहाँ चल रहा हैं। जाल बिछा कर जीव को फंसाया जाता है। माया के जाल से कोई भी नहीं बच पाया है।

इच्छाओं के वशीभूत होकर मनुष्य प्रेम की पूजा करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता है। प्रेम को जगत का सार मानता हैं। कबीर भी प्रेम को जगत का सार मानते हैं।

"है प्रेम जगत में सार, और कुछ सार नहीं है।"

- कबीर

"जा घट प्रेम न संचरे, तथा सो घट जान मसान।"

- कबीर

अथवा ऐसा कबीर क्यों कहते?

यहाँ आकर्षण का जाल चारों ओर बिछा पड़ा है। सौंदर्य दाना चारों ओर विखरा है। जिसको चुगने आया जीव-पक्षी तुरंत ही उसमें फंस जाता है। ये पक्षी और कोई नहीं अपितु युवक-युवतियां है। भाव लोक मनोमय कोष है।

विशेष :

1. भाव चक्र का वर्णन किया गया है।
2. नौ रसों का उल्लेख, तीन को छोड़ दिया गया है।
3. प्रेम पूजा की प्रधानता का प्रतिपादन।
4. माया एवं माया जाल।
5. मोहिनी राज्य।
6. रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास अलंकार तथा सांग रूपक।
7. वेदान्त के अनुसार पांच कोष।
8. शरीर अन्नमय कोष।
9. पंच प्राण प्राणमय कोष।
10. मन और इंद्रियां मनोमय कोष में।
11. बुद्धि विज्ञान मय कोष।
12. आत्मा आनंदमय कोष।
13. माया छठा तत्व।
14. माया तीन पासों की जन्मदात्री।
15. सूक्ष्म कोमल अशरीरी प्राणी का उल्लेख।

ये अशरीरी रूप, सुमन से
केवल वर्ण गंध में फूले,
इन अप्सरियों की तानों के
मचल रहे हैं सुन्दर झूले।
भाव-भूमिका इसी लोक की
जननी है सब पुण्य पाप की,
ढलते सब, स्वभाव प्रतिकृति बन
गल ज्वाला से मधुर ताप की।

शब्दार्थ : अशरीरी-सूक्ष्म। गंध-सुगंधि। भाव-भूमिका-सुख-दुख आदि भावों की प ष्ठभूमि प्रतिकृति-प्रतिमूर्ति।

संदर्भ : माया के मोहिनी राज्य में पुष्प, अप्सरा तथा पाप-पुण्य के स्वरूप तथा कार्यो का वर्णन किया गया है इनके इच्छालोक मे जाल बिछाने या प्राणियों को फंसाने में क्या क्रिया कलाप हैं?

व्याख्या : इच्छा लोक में सूक्ष्म सौंदर्य का दर्शन होता है। फूलों के सूखने पर वाष्प द ष्टि गोचर होते हैं किंतु गंध का कही ंदर्शन नहीं होता है। नासिका गंध का अनुभव मात्र करती है। प्राणी हैं किंतु अशरीरी। मन उनकों प्रज्ञा चक्षु से देखता है। सामान्य चक्षु उनके रूप का दर्शन नहीं कर पाते हैं। इस लोक का सौंदर्य पुष्प के समान है जो मात्र रंग और सुगंधि के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करने में समर्थ है। अर्थात् सौंदर्य एक ऐसे पुष्प के समान है, जिसमें केवल रंग एवं सुगंधि ही है। अप्सराएं यहाँ झले पर सवार होकर पेंग बढ़ाने तथा गीत गाने में व्यस्त हैं। अप्सराएं भी देखी नहीं जा सकती है। अप्सराएं वैसे भी सदैव द श्य मान नहीं होती हैं कभी-कभी उनका दर्शन होता है। ये अशरीरी कभी भी किसी को अपने रूप का आनंद नहीं देती हैं। मात्र अनुभूति देती हैं। आजकल तो दूरदर्शन पर चित्रहार मे गीतों की सुना, देखा तथा पढ़ा जा रहा है किंतु प्रसाद युग चक्षु का विषय नहीं, अपितु श्रवण तक ही सीमित था। इसीलिए सुना ही जा सकता था। इसलिए प्रसाद ने संगीत को सूक्ष्म सौंदर्य के अंतर्गत स्वीकारा हैं। अप्सराओं के संगीत का सर्वत्र प्रसार था। मानों जगह-जगह पर अप्सराएं झूला झूल रही हों और अपनी संगीत ध्वनि बिखेर रही हों।

इच्छा लोक में सुख-दुखात्मक भावों की प ष्ठभूमि में पाप-पुण्य का जन्म होता है। प्राणी सुख प्राप्ति हेतु व्याकुल है। दुख की छाया देखकर भी भागता है। सुख-दुख से प्रेरित हो ऐसे कार्य कर रहा है जो पापमय एवं पुण्यमय दोनों प्रकार के हैं। प्राणी यदि सुख-दुख का अनुभव न करता तो विश्व में पुण्य-पाप को स्थान न मिलता। इसलिए सुख-दुख को पुण्य-पाप को जन्मदाता कहा गया है क्योंकि इन्हीं भावों की प ष्ठभूमि में उनका जन्म होता है। मन को शांति प्रदान करने वाली क्रिया को पुण्य की संज्ञा दी जाती है जिससे मानसिक अशांति उत्पन्न होती है उसे पाप कहा जाता है। कोई भी पाप पुण्य हो सकता है, कोई भी पुण्य पाप हो सकता है। पुण्य-पाप की अवधारणा का निश्चय प्राणी की मानसिकता करती है। प्राणी मधुर दुःखों की आग में प्रज्वलित होकर स्व स्वभाव की प्रतिभूर्ति बन जाता है। जीवन की मधुर आग में तपकर प्राणी अपने स्वभावानुसार ही रूप धारण करता है। प्राणी का स्वभाव ही उसके भावों का प्रतिरूप है।

विशेष :

1. अशरीरी प्राणी अप्सरा।
2. सूक्ष्म सौंदर्य-गंध एवं संगीत।
3. प्राणी स्वभावों का प्रतिरूपा।
4. पुण्य-पाप का जन्मदाता प्राणी-भाव।
5. पुण्य-पाप का निर्धारण मानसिकता के आधार पर।

नियममयी उलझन लतिका का
भाव-विटप से आकर मिलना,
जीवन-वन की बनी समस्या

आशा नभ-कुसुमों का खिलना।
चिर-वसंत का यह उद्‌गम है,
पतझर होता एक ओर है,
अम त हलाहल यहाँ मिले हैं
सुख-दुख बँधते, एक डोर हैं।

शब्दार्थ : नियममयी-नियम की। भाव-विश्प-भाव रूपी व क्ष। नभकुसुम-आकाश का फूल, मिथ्या। चिरवसंत-शाश्वत वसंत, सौंदर्य। उद्‌गम-जन्म-स्थान।

संदर्भ : प्राणी भावों का भोग नहीं कर पाता है क्योंकि समाज और धर्म बंधन है। आशाओं की पूर्ति असंभव है। पग-पग पर सामाजिक धारणाएँ अवरोधक बनकर खड़ी हैं।

व्याख्या : जिस प्रकार लता एक बार व क्ष से लिपटकर आजीवन उससे चिपटी रहती है कभी चाहकर भी अलग नहीं हो पाती है उसी प्रकार इच्छा लोक में नियमों से उत्पन्न दुविधा भावों से टकरा जाती है। अलग नहीं हो पाती है। जिस प्रकार लता एवं व क्षों की उलझनों से जंगल में आवागमन दर्गम हो जाता है। धूप तथा प्रकाश भी धरातल तक नहीं आ पाते हैं उसी प्रकार भाव और नियमों की उलझन का संघर्ष जीवन को समस्यों से भर देता है जिसमें सत का प्रवेश अवरूद्ध हो जाता है। नियममयी उलझन रूपी लता भाव रूपी व क्ष से आकर लिपट जाती है जो जीवन रूपी वन की समस्या बन जाती है। आशा रूपी आकाशीय पुष्पों अर्थात् मिथ्या का आगमन अवरोधित हो जाता है।

इच्छा लोक ही शाश्वत वसंत जैसे सौंदर्य और ऐश्वर्य को जन्म देता है। बसंत के दूसरी ओर पतझड़ भी विद्‌यमान है। यदि पतझड़ न आये तो वसंत का आगमन कैसे हो पतझड़-दुख, वसंत-सुख का प्रतीक है। इच्छाएँ, सुख-दुखात्मक हैं। सुख-दुख साथ-साथ रहते हैं। सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख आता है। प्रसाद ने श्रद्‌धा सर्ग में कहा है।

"दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।"

- प्रसाद-कामायनी

उलझन का संघर्ष जीवन को समस्यामय कर देता है। इस संघर्ष के उत्तरदायी भाव और नियम हैं जिनमें सदैव रस्सा कसी की प्रतिस्पर्धा चलती रहती है। एक पक्ष ह्दय का हैं दूसरा पक्ष बुद्धि का। दोनों का संघर्ष सनातन है। मनुष्य का ह्दय एक ओर खींचता है और बुद्‌धि दूसरी ओर। ऐसी स्थिति में मनुष्य कुछ निश्चित नहीं कर पाता है वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। मनुष्य की आशाएँ आजीवन अपूर्ण रहती हैं। एक को पूर्ण करों दूसरी मुँह बाएं खड़ी रहती हैं आशा या इच्छा की अपूर्णता अर्थशास्त्र का शाश्वत नियम है।

विशेष :

1. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी है।
2. तत्सम शब्दावली।
3. सरल भाव।
4. वसंत पतझड़, सुख-दुख एवं अम त विष का साथ-साथ होना एक रस्सी के दो किनारे।
5. प्राणी-आशाएँ अपूर्ण।
6. उलझन-लतिका, भाव -विटप, जीवन-वन, नभ-कुसुम के द्‌वारा सांग रूपक।
7. अनुप्रास।
8. सामाजिक धारणाएँ भावों को कुमला देती हैं।

मनु यह श्यामल कर्म-लोक है
धुंधला कुछ-कुछ अंधकार सा
सघन हो रहा अविज्ञात यह
देश मलिन है धार-सा घूम रहा है
कर्म चक्र सा घूम रहा।
यह गोलक, बन नियति प्रेरणा,
सबके पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा।

शब्दार्थ : श्यामल-काला। सघन-घना, उलझन वाला। अविज्ञात-अज्ञात, जटिल। धूम धार-धुएँ की धारा। गोलक-गोला। व्याकुल-व्याकुल करने वाली। एषणा-इच्छा।

संदर्भ : मनु ने श्रद्धा से कहा-इच्छालोक तुमने दिखलाया अति सुदंर है किंतु यह बतलाओ कि यह काला-काला कौन सा लोक है? इसकी रहस्यमय क्या विशेषताएँ है? मनु के प्रश्न का उत्तर देते हुए, काले लोक का मनु को परिचय देते हुए श्रद्धा ने कहा।

व्याख्या : हे मनु ! यह काले रंग वाला ग्रह जो तुम्हें दिखलाई पड़ रहा है, कर्म लोक है जो कुछ-कुछ अंधकार के समान धुंधला है। यह अत्याधिक रहस्यमय है। इसके रहस्य का किसी को ज्ञान नहीं है। मात्र इसकी सघनता से व्यक्ति परिचित है।

मानव जीवन असंख्य कर्मो का भंडार है। जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त वह कर्म रत रहता है। मरणोपरान्त ही उसे कर्मो से छुटकारा मिलता है। जीवित रहते हुए उसे कर्म नहीं छोड़ता। इतना सब कुछ होते हुए भी मनुष्य अभी तक कर्म विषयक मत या सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं कर सका है। कर्म की गति मनुष्य के लिए अज्ञात है। इसी द ष्टि से कहा गया है।

"ऊधों करैमनि की गति न्यारी।"

- सूरदास

कर्म समस्या अत्यन्त जटिल समस्या है। कर्म का चक्र नियति की प्रेरणा से प्रेरित होकर निरंतर चलता रहता है क्योंकि सभी के पीछे व्याकुल अभिलाषा लगी हुई है।

एषणा तीन प्रकार की होती है।

पुत्र एषणा, वित्व एषणा एवं मान एषणा। इसीलिए एषणा, को त ष्णा कहा जाता है। प्रथम में पत्नी, पुत्र, परिवार हैं। द्वितीय मे रोटी, कपड़ा, मकान, धन, संपत्ति एवं ऐश्वर्य है। त तीय एषणा असीम है जो मान, यश और कीर्ति की है। ये एषणाएँ एक के बाद एक मनुष्य के पीछे लगी रहती हैं। एषणा विहीनता, कर्महीनता को जन्म देती है। कर्महीन मरण का नाम है। एषणा विहीन मानव की म त्यु हो जाती है। दूसरे शब्दों में म त्यु ही एषणा से मुक्ति दिलाती है। उससे पूर्व उन्नति-अवनति का क्रम चलता रहता है जिसके मूल में भाग्य होता है।

विशेष :

1. श्रद्धा द्वारा मनु को कर्मलोक का परिचय।
2. कर्म की अविज्ञता।
3. कर्मचक्र की संचालिका नियति।
4. सभी के पीछे एषणा।
5. पुत्र, वित्त एवं मान तीन प्रकार की त ष्णा।
6. भाषा सरल एवं प्रसाद गुणमयी।
7. शब्दावली तत्सम्।

8. भाव सारल्य।

9. अंधकार-सा, धूम-धार-सा, कर्म-चक्र-सा आदि में वाचक उपमा एवं रूपक।

10. छायावादी शैली की इतिव त्तात्मकता।

11. विशेषण विपर्यय-व्याकुल करने वाली।

भाव-राज्य के सकल मानसिक
सुख यों दुख में बदल रहे हैं,
हिंसा गर्वोन्नत हारों में
ये अकड़े अणु टहल रहे हैं।
ये भौतिक संदेह कुछ करके
जीवित रहना यहाँ चाहते,
भाव-राष्ट्र के नियम यहाँ पर
दण्ड बने हैं सब कराहते।

शब्दार्थ : भाव-राज्य- भावों का राज्य। मानसिक-ह्दय के। गर्वोन्नत-घंमड से अकड़े हुए। भौतिक-पंचभूतों से निर्मित। संदेह-देह सहित। भाव-राष्ट्र- भावों का संसार।

संदर्भ : इस कर्मलोक में परिश्रम युक्त शोर सुनाई देता है। मनुष्य को दुख और विपत्तियों में बाँधने वाले महायंत्र चल रहे है। यहाँ के मनुष्यों को क्षणभर के लिए भी आराम करने का समय नहीं है। सभी मनुष्य कर्म के शासन के अधीन हैं।

जीवन में कर्म के कारण ही मनुष्य की मेहनत का शोर सुन पड़ता है। मजदूरों के भारी काम करते समय जोर-जोर से चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ती है। विशाल यंत्रों के चलने से शोषण, जन्म, पीड़ा और विपत्तियाँ सबको निराश बनाती है। मनुष्य प्रतिक्षण कुछ न कुछ करता रहता है। क्षण भर भी विश्राम नहीं करता हैं। उसकी विश्रामदायिनी मात्र रात्रि होती है।

व्याख्या : भाव के शासन में ह्रदय के समस्त सुख दुख में परिवर्तित हो जाते हैं। मनुष्य की भावनाएँ सुख के स्थान पर दुख को जन्म दे रही हैं तथा कर्म लोक के अणु-परमाणु हिंसक प्रव त्ति में लीन होकर, पराजित होकर भी घमंड में चकनाचूर, अकड़े हुए द ष्टिगोचर हो रहे हैं। 'रस्सी जल गई पर ऐंठन न गई' की उक्ति चरितार्थ कर रहे हैं। मनुष्य कर्मो में अत्यधिक लीन होकर सुखमय भावों को भी दुखदायी बना देता है। इच्छा लोक समस्त सौंदर्य कर्म लोक मे आकर नष्ट हो जाता है। मनुष्य हिंसक बन जाता है। दूसरे से हार कर भी गर्व से सिर ऊँचा किए हुए घूमता रहता है। नित्य नवीन कर्म प्रारम्भ करने में जरा भी नहीं हिचकता है। पहला कार्य पूरा हो या न हो।

कर्म लोक के अणु जिनका निर्माण पंच भूतों से हुआ है उनकी यही कामना होती है कि संदेह कुछ कार्य करके अपने को अमरत्व प्रदान करें। भावों के संसार के नियम यहाँ इतने जटिल एवं कठोर है कि वे सबके लिए दंड का रूप धारण कर लिए हैं।

मनुष्य कर्म करके सशरीर अमरत्व की कामनारत है। वह अपने शरीर के साथ स्वर्ग जाने की अभिलाषा से कर्म में लगा हुआ हैं। कर्मलीन मनुष्य के लिए उसके द्वारा भावनाओं से निर्मित नियम उसे दंडित करते हैं। उसके भाव उसके कर्म से सदैवे संघर्ष करते है तथा उसे प्रतिदिन पीड़ा देते रहते हैं।

विशेष :

1. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी।

2. शब्दावली तत्सम।

3. कर्म लोक का सजीव चित्रण।

4. सुख का दुख में परिवर्तन।

5. पराजित का भी अकड़ा रहना।

6. कर्म करके सशरीर अमरत्व की कामना।

7. भाव निर्मित नियम दंडित करते हैं।

8. सभी दुखी।

9. अनुप्रास अलंकार।

यहाँ सतत् संघर्ष, विफलता,
कोलाहल का यहाँ राज है,
अंधकार मे दौड़ लग रही
मतवाला यह सब समाज है।
स्थूल हो रहे रूप बना कर
कर्मो की भीषण परिणति है,
आकांक्षा की तीव्र पिपासा।
ममता की यह निर्मम गति है।

शब्दार्थ : स्थूल-मूर्त। परिणति-अंत। पिपासा-तेज प्यास।

संदर्भ : भाग्य ही इस कर्म को चलाता है। मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार ही शुभ या अशुभ कर्मो में लीन रहता है। मनुष्यों के हृदय प्यासे हैं, वे आनंद और सुख प्राप्त करना चाहते हैं। आनंद की प्यास के कारण ही मनुष्य के मन में मोह और कामना तंरगित होते है। यहाँ पंच भौतिक शरीर की ही उपासना हो रही है। कर्म में डूबा हुआ मनुष्य सदैव अपने शारीरिक सुख साधन जुटाने में ही लगा रहता है। कर्म लोक की ऐसी स्थिति का वर्णन करते हुए श्रद्धा मनु से कहती है।

व्याख्या : इस लोक में निरंतर संघर्ष चल रहा है। यहाँ के सभी व्यक्ति अपनी साधना में असफल होते हैं, चारों ओर हलचल मची रहती हैं। सभी वास्तविक लक्ष्य से अनभिज्ञ होकर उद्यम करने मे संलग्न है। समाज पागल हो रहा है।

कर्मलीन मनुष्य निरंतर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न रत है। किंतु उसे सफलता के कहीं भी दर्शन नहीं होते हैं। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की विकृतियों और विसंगतियों के संकेत हैं।

यहाँ के लोग विविध वस्तुओं का निर्माण कर उनकी स्थूलता में ही लीन हैं। कोई जीवन के सूक्ष्म सत्य को समझने का प्रयास नहीं करता। द श्य वस्तुओं की उपयोगिता से ही इनका एकमात्र संबंध है। इसीलिए इनके कामों का परिणाम अति भयंकर हो जाता है। जीवन में सरलता तभी आ सकती है जब हम जीवन के रहस्यमय सूक्ष्म रूप को समझें और उनका अनुभव करें। यदि हम ऐसा नहीं करते तो निस्संदेह हमारे कार्यो का परिणाम भयंकर होगा।

सभी व्यक्ति लालसा की प्यास से व्याकुल हैं। उनके हृदय में बड़ी-बड़ी उच्च आकांक्षाएँ उठा करती हैं। और वे उनको पूर्ण करने के लिए अत्यंत व्यग्र रहते हैं। यहाँ प्रेम की अवस्था अत्यंत निष्करुण है। मुनष्य के प्रेम के पीछे भी उसकी स्वार्थ भावना ही काम करती द ष्टिगोचर होती है। प्रेम को साधन बनाकर मनुष्य अपनी इच्छाओं को त प्त करता है। प्रेम का स्वरूप विकृत हो गया है।

विशेष :

1. भाषा सारल्य।

2. शब्दावली तत्सम।

3. संघर्ष एवं विफलता का वर्णन।

4. प्रेम का विकृत स्वरूप।

5. सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल को प्रधानता।

6. आकांक्षा की प्रबलता।

7. अनुप्रास प्रधानता।

यहाँ राशिकृत विपुल विभव सब
मरीचिका से दीख पड़ रहे,
भाग्यवान गन क्षणिक भोग के
वे विलीन, ये पुनः गड़ रहे।
बड़ी लालसा यहाँ सुयश की
अपराधों की स्वीकृति बनती
अंध प्रेरणा से परिचालित
कर्त्ता करते निज गिनती।

शब्दार्थ : राशिकृत-संचित। विभव-वैभव। जड़ रहे-बना रहे। अंध प्रेरणा-मोह। परिचालित-प्रेरित।

संदर्भ : यहाँ के लोगों ने अपने ऊपर कर्म का भार ग्रहण कर रखा है। वे अपने को कर्म का अधिष्ठाता समझते हैं तथा सभी लोग उन्नति करने एवं बड़ा बनने के लिए बावले एवं दीवाने हो रहे हैं। किंतु यह नहीं देख रहे कि समाज के दोष बार-बार भयंकर छालों का रूप धारण कर फूट रहे हैं। जिस व्यक्ति के शरीर में छाले होंगे, घाव होंगे भला वह उन्नति कैसे कर सकता है? जब शरीर स्वस्थ्य एवं द ढ़ नहीं होगा उसमे विषमता एवं दोष भरे होंगे तब भला समाज किस प्रकार आगे बढ़ सकता है।

व्याख्या : यहाँ जो अपार ऐश्वर्य तथा धन-संपत्ति संचित है, वह सब म ग जल के समान मिथ्या है। क्षण भर के लिए उस वैभव का भोग किया जा सकता है और फिर वह नष्ट हो जाता है। धन संपत्ति की नश्वरता को देखकर भी मनुष्य नवीन संपत्ति का संचयन करने, सजाने तथा संवारने में लगा हुआ है। क्षणभर के लिए अपने को अति भाग्यवान समझता है। उसके विलीन होते ही पुनः धनार्जन में जुट जाता है।

मनुष्य जब कुछ संपत्ति का अर्जन कर लेता है तब उसके भोग में लग जाता हैं कुछ समय पश्चात ही उससे असंतुष्ट हो जाता है और अपनी संपत्ति बढ़ाने के लिए पुनः दुःखों से भिड़ जाता है और जब कुछ बढ़ा लेता है तो पुनः उससे अंसतुष्ट हो जाता है एवं उसे बढ़ाने की उसकी कामना प्रबल हो जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कर्म लोक के मनुष्य संपत्ति एवं भोग के पीछे पागल एवं दीवाने बनकर हाथ धोकर पड़े हैं। जिसका मात्र उद्देश्य भोग है। जहाँ वे अपने जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं वहाँ उनका जीवन अति दुखःमय बना है।

यहाँ लोगों में कीर्ति एवं यश प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा है जिसके लिए वे अपराध को भी स्वीकारने में किंचित मात्र भी हिचक नहीं दिखाते हैं। समाज का अन्तर्विरोध द ष्टिगोचर होता है। कीर्ति का विस्तार करने हेतु दुराचारी बन जाते हैं जबकि दुराचार कीर्ति नहीं अपकीर्ति बढाने वाला है।

मोह से प्रेरित होकर कर्मो में लीन हैं। मोह विवेकी नहीं अविवेकी है। अविवेकी प्रेरणा कभी शुभफलदायिनी नहीं होती हैं । फिर इनको शुभ फल की प्राप्ति कैसे हो? वह सिद्ध कैसे हो सकता है? किंतु मनुष्य अपने को अति परिश्रमी एवं अध्यवसायी मानने से नहीं चूकता है। स्वयं को कर्त्ता समझने के मिथ्या गर्व से कोई भी अपने को वंचित नहीं रख पाता है।

विशेष :

1. सरल भाषा में भावाभिव्यक्ति।

2. तत्सम् शब्दावली।

3. मनुष्य, स्वार्थी, भोगी, धन लोभी एवं कीर्ति का आकांक्षी।

4. वैभव नश्वर।

5. क्षणिक भाग्यवानता।

6. अपराध स्वीकृति।

7. अंधप्रेरणा से परिचालित।

8. कर्ता बनने की प्रबल कामना।

वर्षा के धन नाद कर रहे,
तट कूलों को सहज गिराती,
प्लावित करती वन कुजों को
लक्ष्य-प्राप्ति सरिता बह जाती।
"बस ! अब और न इसे दिखा तू
यह अति भीषण कर्म जगत है,
श्रद्धे ! वह उज्ज्वल कैसा है,
जैसे पु जीभूत रजत है।"

शब्दार्थ : घननाद- मेध का गर्जन, विपत्तियाँ। प्लावित करती-सींचती हुई। पुंजीभूत-एकत्रित।

सदंर्भ : मनुष्य नीली और लाल आग की लपटों में दग्ध होकर, अपने को गलाकर, मन को ऐसी धातु का रूप देने का प्रयास करता है जो चोट वहन-सहन कर स्वार्थी बनी रहे। बहुत तेज आग का रंग लाल न होकर नीला हो जाता है। लोहा गलाने में ऐसी ही आग की अपेक्षा होती है जो बहुत शक्तिशाली होती हैं। इस्पात निर्माण की यही प्रक्रिया है। मनुष्य अपने को इस्पात जैसा शक्तिशाली या फैलादी बनाना चाहता है। पुराने लौह स्तंभ इसके उदाहरण हैं। अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने को शक्तिशाली बनाने हेतु धातुओं और उनसे विभिन्न यंत्रों का अमर निर्माण करना चाहता है वही सरस्वती नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है।

व्याख्या : वर्षा ऋतु में बादल भंयकर गर्जना करते हैं गर्जनानुरूप भंयकर वर्षा भी होती है जिसके परिणाम स्वरूप नदियों में बाढ़ आ जाती है। बरसाती नदी उफनकर किनारों को स्वाभाविक रूप से गिराती हुई जंगलों झुरमुटों को सींचती हुई अपने उद्देश्य प्राप्ति अर्थात सागर की ओर तीव्र गति से बहती चली जाती है। यहाँ प्लावित का सामान्य अर्थ सींचना नहीं अपितु जंगलों, बगीचों, अवरोधों को बाढ़ के पानी से भरकर उन्हें सागर का रूप देती हुई सागर की ओर बढ़ जाती है। चारों ओर पानी-पानी ही दिखलाई पड़ता है। बाढ़ समस्या बनकर आती है जो सब कुछ अपने साथ बहा ले जाना चाहती है।

समाज पर इसी प्रकार अन्य विपत्तियों के बादल मंडराते रहते है। मनुष्यों की उद्देश्य प्राप्ति रूपी नदी जीवन के सभी मर्यादाओं एवं सीमाओं का उल्लंघन करती हुई समाज में विषमता फैलती हुई बह रही है। मनुष्य अपनी उद्देश्य प्राप्ति के लिए कटिबद्ध हो गया है। जिसके लिए अनेक पाप कृत्य कर रहा है। मनु श्रद्धा से कहते हैं। बसकर कर्मलोक और न दिखा। बहुत हो गया। कर्म लोक की भीषणता मुझसे अब और नहीं देखी जाती है। श्रद्धे यह बतलाओं कि सामने चांदी के पुंज के समान यह शुभ लोक कौन सा है? उसका परिचय दे।

विशेष :

1. कर्म लोक के वर्णन के माध्यम से यंत्र युग की विषमता वर्णित है।

2. आधुनिक युग को देखते हुए यथार्थ प्रतीत होता है।

3. शोषण एवं विषमता का गंभीर चित्रण।

4. भाषा सरल।

5. शब्द तत्सम।

6. ध्वनि बिंब-घन नाद।

7. रूप बिंब-तट कूलों को सहज गिराती। प्लावित करती कुंजों को।

8. लक्ष्य-प्राप्ति-सरिता-रूपक।

9. कर्म लोक की भीषणता वर्णित है।

यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
त प्ति नहीं, कर भेद बाँटती;
बुद्धि, विभूति सकल सिकता सी
प्यास लगी है ओस चाटती।
न्याय, तपस ऐश्वर्य में पगे
ये प्राणी चमकीले लगते,
इस निदाघ मरू में सूखे से
स्रोतों के तट जैसे लगते।

शब्दार्थ : प्राप्य-साध्य, कमनीय वस्तु, चाहा हुआ। सिकता-रेत। तपस-तपस्या। ऐश्वर्य- ज्ञान की विभूति। पगे-लीन। निदाध-गर्मी। जगते-चमकते।

संदर्भ : यहाँ के लोग साधन द्वारा अस्ति-नास्ति, सत्ता-शून्य का भेद कर लेते हैं। सारी कामनाएँ त्याग कर अपने को निष्काम कहने वाले भी किसी प्रकार की मुक्ति से अपना संबंध अवश्य जोड़ लेते हैं। यही ज्ञान लोक या ज्ञान क्षेत्र है।

व्याख्या : साध्य ज्ञान प्राप्ति से भी व्यक्ति को संतोष नहीं होता है। प्रापत्य की केवल प्राप्ति होती है संत प्ति नहीं मिलती है। ज्ञान प्राप्त कर लेना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है किंतु ये ज्ञान को ही अपना साध्य स्वीकारते है। इसलिए इन्हें नीरस ज्ञान संतुष्टि नहीं देता है। ज्ञान प्राप्त कर परस्पर वाद-विवाद एवं शास्त्रार्थ में लगे रहना इनका प्रमुख कार्य है।

बुद्धि में भेदकत्व शक्ति है वह भेद करके रेत के समान नीरस ज्ञान की विभूति को उल्टा कर देती है। वह भेद को जन्म देती है क्योंकि दर्शन के विभिन्न मत एवं अनेक रूप है जिनमें परस्पर भिन्नता है भिन्नता विरोध मूलक है। प्यासे व्यक्ति को प्यास मिटाने के लिए जल की अपेक्षा होती है। ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती है। बौद्धिक प्सास को नीरस ज्ञान मिटाने में सक्षम नहीं होता है। अनुभूति से ही बुद्धि की प्यास मिटती है। वास्तविक प्यास जलपान से ही दूर होती है। बुद्धि विवेक एवं विभूतियों की स्थिति रेत जैसी है।

न्याय, तपस्या एवं ऐश्वर्य में लीन ये मनुष्य दूर से देखने में अति आकर्षक प्रतीत होते हैं किंतु आकर्षण केवल दूर का होता है। ग्रीष्म ऋतु में रेगिस्तानी झरने सूख जाते हैं किन्तु उनके तट द ष्टिगोचर होते रहते हैं यही स्थित ऐश्वर्यवान मनुष्यों की है। शुष्क झरना तटों को देखकर दूरस्थ व्यक्ति अति प्रसन्न होता है वह समझता है कि वहाँ उसे जल की प्राप्ति होगी किंतु वहाँ पहुँचकर उसे पानी के स्थान रेत ही दिखलाई पड़ती है। जल का वहाँ पूर्ण अभाव होता है। उसी प्रकार इन ज्ञानियों में अनुभूति की गरिमा का अभाव है। निकट जाकर यह ज्ञात होता है कि ये भीतर से खोखले एवं असमर्थ हैं।

विशेष :

1. ज्ञान लोक का परिचय।
2. वास्तविक गरिमा वाले ज्ञानियों का अभाव।
3. सिकता-सी एवं सूखे-से में उपमा।
4. भाषा सारल्य।
5. शब्दों में तत्समता।
6. न्यायियों, तपस्वियों एवं ऐश्वर्यशालियों को ग्रीष्म ऋतु के रेगिस्तानी सूखे स्रोत कहा है।
7. ओस चाटना-मुहवारा।
8. ज्ञान प्राप्ति से संतुष्टि नहीं मिलती।

यहाँ विभाजन धर्म-तुला का
अधिकारों की व्याख्या करता,
यह निरीह, पर कुछ पाकर ही
अपनी ढीली साँसें भरता।
उत्तमता इनका निजस्व है
अम्बुज वाले सर-सा देखो,
जीवन-मधु एकत्र कर रहीं
उन ममाखियों सा बस लेखो।

शब्दार्थ : तुला - तराजू। निरीह-इच्छा हीन। ढीली-शिथिल। साँसे भरता-जीवन व्यतीत करना। निजस्व-संपत्ति। जीवन-मधु-जीवन का रस रूपी शहद। ममाखियाँ-मधुमक्खियाँ।

संदर्भ : ज्ञान लोक में ज्ञानियों का पात्र बड़ा होता है। बँद-बूँद कर बहने वाले झरने से ये जीवन का रस मांग रहे हैं। स्वयं अजर-अमर बनकर यहाँ बैठे हैं। इनकी स्थिति मधुमक्खियों जैसी होती है।

व्याख्या : यहाँ पर धर्म की तराजू पर तौलकर ही अधिकारों का निश्चय किया जाता है। धर्म के नियमों के अनुरूप ही व्यक्तियों की सीमाओं का निश्चय किया जाता है। सब ज्ञानी वैसे तो इच्छाओं से मुक्त हैं किंतु कुछ प्राप्त करके ही अपने नीरस एवं शिथिल जीवन को व्यतीत करते हैं। ज्ञान से अभिमान के सहारे ही ये थोड़ा-बहुत संतोष कर लेते हैं।

श्रेष्ठता इनकी संपत्ति है किंतु स्वयं ये उनका उपभोग नहीं कर सकते। जैसे कमल वाले तालाब का अपने कमलों का उपभोग करने का अधिकार नहीं होता है। वे कमल उसकी संपत्ति होते हैं, किंतु वह स्वयं उनका उपयोग नहीं कर पाता है। भर्त हरि ने नीति शतक में कहा है।

"पिबन्ति नद्याः स्वयं नोदकं
स्वयं न खादान्ति फलानि व क्षा
धाराधरो वर्षति नात्म हेतवे
परोकाराय सज्ञां विभूतया।"
भत हरि-नीति शतक

अर्थात नदी स्वयं अपने जल का पान नहीं करती, व क्ष अपना फल नहीं खाता, बादल अपना जल नहीं पीता तथा सज्जन परोकार के लिए जन्म लेते हैं।

कबीर ने भी लिखा है।

"व क्ष कबहुं न फल भखे, नदी न पीवे नीर।
परोपकार के कारणे, साधुन धरा शरीर।।"
कबीर-कबीर ग्रंथावली

कमलों पर मधुमक्खियाँ मंडराती रहती हैं और शहद संचित किया करती है किंतु उसका पान स्वयं नहीं करती है अन्य अर्थात् व्यक्ति, पशु-पक्षी ही उनका उपभोग करते हैं। ये ज्ञानी भी अपनी श्रेष्ठता से मधुमक्खियों के समान ही जीवन संबंधी द ष्टिकोण बनाते हैं, अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं किंतु वे स्वयं उन अनुभवों से लाभ नहीं उठा सकते हैं। अन्य व्यक्ति ही उनके अनुभवों का उपयोग करते हैं।

विशेष :

1. धर्म-तुला के विभाजन का ही अधिकारों की व्याख्या करना।
2. प्राणी निरीह।
3. उनकी स्थिति मधुमक्खियों जैसी या कमल वाले तालाब जैसी।

4. भाषा सरल।

5. शब्दावली तत्सम।

6. सर-सर, ममाखियों सा उपमा।

7. ज्ञान लोकीय ज्ञानियों का सजीव चित्रण।

यहाँ अछूत रहा जीवन रस
छूओं मत संचित होने दो,
बस इतना ही भाग तुम्हारा
त षा ! म षा, वंचित होने दो।
सामंजस्य चले करने ये
किंतु विषमता फैलाते हैं,
मूल स्वत्व कुछ और बताते
इच्छाओं को झुठलाते हैं।

शब्दार्थ : म षा-मिथ्या। वंचित होना- ठगना। विषमता-भेद बुद्धि। स्वत्व-अधिकार।

संदर्भ : देखो ज्ञानी कितने सीधे और सरल बनकर बैठे हैं। किंतु मन ही मन वे दोषों से संदिग्ध हैं। उन्हें भय है कि कहीं उनसे कोई अपराध न हो जाए। वे जो अपने इशारों से संतोष प्रकट कर रहे हैं, उसमें उनका अभिमान स्पष्ट झलक रहा हैं। उनके संतोष में भी अहंकार है।

व्याख्या : यहाँ के मनुष्य जीवन रूपी रस का पान नहीं करते। इनका सिद्धातं है कि जीवन के रस को छुओ मत, वरन् उसे संचित होने दो। वे कभी जीवन का उपभोग नहीं करते। बस उनके हिस्से मे प्यास और अत प्ति ही है। यह संसार मिथ्या है। इसलिए सांसारिकता से मुक्त रहो।

ज्ञानी वैसे सामंजस्य की स्थापना करने चले हैं। किंतु वास्तव में इनका कार्य विषमता फैलाना है, भेद बुदधि का प्रचार करते हैं किसी के प्रति आकर्षण एवं किसी के प्रति विकर्षण जगाते हैं। वे कहते हैं कि जीवन का वास्तविक अधिकार इच्छाओं पर निर्भर नहीं है, वरन् वह किसी अन्य सूक्ष्म तत्व पर निर्भर है। इच्छाओं को वे मिथ्या मानते हैं। वह करते कुछ है किंतु होता कुछ है। इसका प्रमुख कारण इनके द ष्टिकोण का दूषित होना है।

विशेष :

1. ज्ञानी जीवन रस का उपभोग नहीं संचय करते हैं।

2. प्यास एवं अत प्ति उनका प्राप्तव्य है।

3. संसार को मिथ्या माना है।

4. भेदन बुद्धि उत्पन्न करते हैं।

5. शास्त्र रक्षा को परम कर्त्तव्य समझते हैं।

6. इच्छाएँ मिथ्या हैं।

7. जीवन-रस-रूपक अलंकार।

8. त षा ! म षा, दो-दो अनुप्रास।

9. मूल स्वत्व-सूक्ष्म तत्व।

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है।
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके
यह बिडम्बना है जीवन की।
महाज्योति रेखा-सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें,
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा।
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।

शब्दार्थ : बिडम्बना-उपहास। महाज्योति -तीक्ष्ण प्रकाश। ज्वाला-प्रकाश, उत्तेजना।

संदर्भ : तुमने जो इन तीन प्रकाश पूर्ण लोकों को देखा है, इन्हीं के समूह का नाम त्रिपुर है। वे अपने ही सुख-दुख में केंद्रित है। ये तीनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। इनके समन्वय से ही मानव की इच्छा पूरी होती है।

व्याख्या : यदि ज्ञान कुछ कहता है और कार्य कर्म उससे भिन्न प्रकार का है, ऐसी स्थिति में मन की इच्छा की पूर्ति कैसे हो सकती है। यदि कर्म ज्ञान के अनुसार नहीं होगा तो सफलता नहीं मिल सकती है। इन दिनों के समन्वय में ही जीवन की समरसता सिद्ध हो सकती है। ज्ञान और कर्म का परस्पर मेल नहीं हो सकता है यही जीवन का उपहास या विषाद है। इसीलिए ये सारी विपत्तियां और दुख हैं। मुनष्य की इच्छा पूर्ति का एक मात्र साधन ज्ञान-कर्म का समन्वय है। समन्वय सुख दाता एवं असमन्वय दुखकारी है।

मनु से इतना कहते-कहते श्रद्धा अचानक मुस्कराई। उसकी मुस्कान तीव्र प्रकाश की किरण की भाँति उन तीनों लोकों-ज्ञान, कर्म एवं इच्छा में दौड़ गई। उसके प्रभाव से वे तुरंत समन्वित हो गए। श्रद्धा समन्वय का प्रतीक है। समन्वय से उनमें उत्तेजना की आग प्रज्वलित हो उठी। ज्ञान, कर्म एवं इच्छा की समन्वय कती श्रद्धा है। श्रद्धावान मनुष्य ही भेदक तत्व को समाप्त कर समन्वय करने मे समर्थ होता है।

विशेष :

1. ज्ञान और कर्म की भिन्नता का प्रतिपादन।
2. भिन्नता के कारण इच्छा पूर्ति नहीं, यही विडंम्बना है।
3. ज्ञान-कर्म का समन्वय श्रद्धा द्वारा।
4. रेखा-सी-वाचक उपमा।
5. भाषा सरल प्रसाद गुणमयी।
6. तत्सम शब्दावली।
7. स्मिति दौड़ी, सम्बद्ध हुए एवं ज्वाला जाग उठी-मानवीकरण अलंकार।
8. सारगर्मि तथ्य का निरूपण।
9. छायावादी सूक्ष्म निरूपण।

चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम न त्य था,
विश्व रंध्र ज्वाला से भर कर
करता अपना विषम कृत्य था।
स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिललय थे,

दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

शब्दार्थ : चितिमय-चेतना पूर्ण। विश्व रंध्र-अंतरिक्ष। विषम-कठोर। स्वाप-निद्रा। लय-लीन। दिव्य-स्वर्गिक। तन्मय-लीन।

संदर्भ : उस त्रिपुर में प्रचंड अग्नि की शक्तिशाली लहर मूर्तिमान हो उठी। उस अग्नि में संपूर्ण विषमता भस्म हो गई। उस समय शिव के सिंगी और डमरू की सी ध्वनि सारे विश्व मे व्याप्त हो गई। समन्वय की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है।

व्याख्या : उसमें चेतना की ज्वाला निरन्तर जल रही थी। महाकाल शिव प्रलयंकर न त्य कर रहे थे। भगवान शिव संपूर्ण अंतरिक्ष को आग में लपेटकर कठोर कर्म कर रहे थे। जब तक विषमता भस्मसात नहीं हो जाती तब तक सामंजस्य का प्रकाश नहीं फैल सकता। इसलिए यहाँ पर भी शिव के ताण्डव न त्य को दिखाने की आवश्यकता हुई।

उस समय स्वप्न, निद्रा और जागरण भस्म हो गए थे। इच्छा, क्रिया और ज्ञान परस्पर मिलकर लीन हो गए थे। उस समय स्वर्गिक संगीत सुनाई दे रहा था। उस अलौकिक गुंजार मे श्रद्धा सहित मनु लीन हो गए।

उपनिषदों मे जीवन की चार अवस्थाएँ जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था, सुष प्ति अवस्था तथा तुरीयावस्था मानी है। तुरीयावस्था ही समाधि की दशा है जिसमे समरसता की अनुभूति होती है। श्रद्धा और मनु दोनों को तुरीयावस्था की प्राप्ति हो गई। श्रद्धा का अर्थ निष्ठा भी लिया जा सकता है। निष्ठा को प्राप्त करके ही मनु इस आनंद का अनुभव करने में समर्थ हुए है।

विशेष :

1. भाषा सरल एवं प्रसाद गुणमयी।
2. शब्दावली तत्समता प्रधान।
3. श्रद्धा-निष्ठा की प्रतीक।
4. निष्ठा आनंददायक है।
5. विवेकमयी चेतना।
6. चितिमय चिता एवं विश्व रंध्र-रूपक।
7. शिव का तांडव न त्य।
8 स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म-वर्णन।

खण्ड ख: आलोचनात्मक

कामायनीः ऐतिहासिकता एवं कल्पना

'कामायनी' महाकवि जय शंकर प्रसाद की अद्‌वितीय रचना है जिसकी कथा में ऐतिहासिकता - कल्पना एवं प्राचीनता-नवीनता का अद्‌भुत समन्वय है। इसका कथानक वेदों, पुराणों तथा इतिहास से ग हीत है जिसमें कल्पना का सुंदर समावेश करके उसे सुसंबद्‌ध एवं सुगंठित रूप दिया गया है। 'कामायनी' की कथा की ऐतिहासिकता का प्रतिपादन करते हुए स्वयं कवि ने आमुख का श्रीगणेश किया हैः

''आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ हो जैसा कि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, किन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यो की अनुश्रुति में द ढ़ता से मानी गई है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है। प्रायः लोग गाथा और इतिहास में मिथ्या और सत्य का व्यवधान मानते हैं। किन्तु सत्य मिथ्या से अधि ाक विचित्र है।''

प्रसाद ने कामायनी में प्रसिद्ध एवं उत्पाद्‌य को स्वीकारते हुए आमुख में स्पष्ट रूप से इसे रेखांकित करते हुए लिखा हैः

''यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु-श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। ''श्रद्धा हृदय याकूत्या श्रद्धा विन्दते वसु।'' (ऋग्वेद १०-१५१-४) इन्हीं के आधार पर 'कामायनी' की कथा-स ष्टि हुई है। हाँ कामायनी की कथा-श्रंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।''

प्रसाद का यह कथन स्पष्ट कर देता है कि कामायनी की कथा में ऐतिहासिकता एवं कल्पना का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। केवल कथावस्तु ही नहीं कामायनी के पात्र भी ऐतिहासिक हैं जिनमें मनु, श्रद्धा, एवं इड़ा की ऐतिहासिकता पर किसी को संदेह नहीं हो सकता है। प्रसाद ने आमुख में लिखा हैः

''मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें 'श्रद्धादेव' कहा गया है, 'श्रद्धा देवो वै मनुः' (का० १ प्र० १)। भागवत में इन्हीं वैवस्वत मनु और श्रद्धा से मानवीय स ष्टि का प्रारम्भ माना गया है।

''ततो मनुः श्राद्‌ध देवः संज्ञायामास भारत
श्रद्‌धायां जनयामास दशपुत्रान स आत्मवान्।''

(६-१-११)

छांदोग्य उपनिषद् में मनु और श्रद्‌धा की भावमूलक व्याख्या भी मिलती है। ''यदावै श्रद्‌धधाति अथ मनुते ना श्रद्‌ध धन् मनुते।'' यह कुछ निरुक्त की-सी व्याख्या है। ऋग्वेद में श्रद्धा और मनु दोनों का नाम ऋषियों की तरह मिलता है। श्रद्धा वाले सूक्त में सायण ने श्रद्धा का परिचय देते हुए लिखा है, ''काम गोत्रना श्रद्धा नामर्षिका।'' श्रद्धा काम गोत्र की बालिका है, इसलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है। मनु प्रथम पथ-प्रदर्शक और अग्निहोत्र प्रज्वलित करने वाले तथा अन्य कई वैदिक कथाओं के नायक हैंः

''मनुर्हवा अग्रे यज्ञेनेजे; यदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते।''

(५-१ शतपथ)

इनके संबंध में वैदिक साहित्य में बहुत-सी बातें बिखरी हुई मिलती हैं किन्तु उनका क्रम स्पष्ट नहीं है।''

पात्रों की ऐतिहासिकता के साथ-साथ कामायनी में घटित घटनाएँ भी ऐतिहासिक हैं जिनके विषय में प्रसाद ने भी आमुख में कहा हैः

''जल-प्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कांड के आठवें अध्याय से आरम्भ होता है। जिसमें उनकी नाव के उत्तरगिरि हिमवान प्रदेश में पहुँचने का प्रसंग है। वहां ओध के जल का अवतरण होने पर मनु भी जिस स्थान पर उतरे, उसे मनोरव समर्पण कहते हैंः

''अपीपरं वै त्वा, व क्षे नावं प्रतिबध्नीष्व, तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद् यावद यावदुक्ष्कं समवायान् - तारत् तावदन्‍रसर्पासीति स ह तावत् तावदेवान्वव ससर्व तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरव सर्पणमिति।''

(अध्याय १ प्रपा ८-६)

उजड़ी स ष्टि को पुनः आरम्भ करने का प्रयत्न श्रद्धा-मनु के मिलनोपरान्त हुआ। असुर पुरोहित-किलात-आकुलि का मिलना ऐतिहासिक है जिन्होंने यज्ञ में पशुबलि का कार्य प्रारम्भ करवा दिया। प्रसाद ने कामायनी के आमुख में इसका उल्लेख किया हैः

''किलात्ताकुली-इतिहासुर ब्रह्मा वासतुः। तौ होचतुः - श्रद्धा देवो वै मनुः - आवं नु वेदा-वेति। तौ हागत्योचतुः - मनो। बाजयाव त्वेति।''

इस यज्ञ ने मनु में पूर्वपरिचित देव प्रव त्ति को जाग त किया। इड़ा के संपर्क में आने पर इस प्रव त्ति ने मनु को श्रद्धा के अतिरिक्त दूसरी ओर प्रेरित किया।

मनु-श्रद्धा के अतिरिकत इड़ा भी ऐतिहासिक पात्र है जिसका परिचय प्रसाद ने अनेक उद्धरण देते हुए कामायनी के आमुख में दिया हैः

''इड़ा के संबंध में शतपथ में कहा गया है कि उसकी उत्पत्ति या पुष्टि पाक यज्ञ से हुई और उस पूर्ण योषिता को देखकर मनु ने पूछा कि ''तुम कौन हो?'' इड़ा ने कहा, ''तुम्हारी दुहिता हूँ।'' मनु ने पूछा, ''मेरी दुहिता कैसे?'' उसने कहा, ''तुम्हारे दही, घी इत्यादि हवियों से ही मेरा पोषण हुआ है।'' ''तां हं''मनुरुवाच - ''का असि'' इति। ''तव दुहिता'' इति। ''कथं भगवति? मम दुहिता'' इति। (शतपथ ६ प्र॰ ३ ब्रा॰)

इड़ा का पुनः परिचय देते प्रसाद ने लिखा हैः

''ऋग्वेद में इड़ा का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। यह प्रजापति मनु की पथप्रदर्शिका, मनुष्यों का शासन करने वाली कही गई है।'' इड़ाम कृष्वन्मनुषस्य शासनीम्'' (१-३१-११ ऋग्वेद) इड़ा के संबंध में ऋग्वेद में कई मंत्र मिलते हैं - सरस्वती साधयन्तीधियं न इड़ा देवी भारती विश्वमूर्तिः तिस्त्रो देवीः स्वधयावर्हि रेदमच्छिद्रं परन्तु शरणं निषदय।'' (ऋग्वेद - २-३-८) आनो यज्ञं भारतीय तूय मोत्विड़ा मनुष्वदिह चेतयन्ती। तिस्तो देवीर्वर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु'' (ऋग्वेद - १०-११०-८) इन मंत्रों में मध्यमा, वैरवरी और पश्यन्ती की प्रतिनिधि भारती, सरस्वती के साथ इड़ा का नाम आया है। लौकिक संस्कृत में इड़ा शब्द प थ्वी अर्थात् बुद्धि, वाणी आदि का पर्यायवाची हैः ''गो भू वाचस्त्विड़ा इला'' - (अमर)। इस इड़ा या वाक् के साथ मनु या मन के एक और विवाद का भी शतपथ में उल्लेख मिलता है, जिसमें दोनों अपने महत्व के लिए झगड़ते हैंः ''अथतोमनसश्च'' इत्यादि (४ अध्याय ५ ब्राह्मण) ऋग्वेद में इड़ा को घी, बुद्धि का साधन करने वाली, मनुष्य को चेतना प्रदान करने वाली कहा है। पिछले काल में सम्भवतः इड़ा को प थ्वी आदि से सम्बद्ध कर दिया गया हो, किन्तु ऋग्वेद ५-५-८ में इड़ा और सरस्वती के साथ मही का अलग उल्लेख स्पष्ट है। ''इड़ा सरस्वती मही तिस्त्रोदेवी मयोभुवमः'' से मालूम पड़ता है कि मही से इड़ा भिन्न है। इड़ा को मेधस वाहिनी नाड़ी भी कहा गया है।''

जल प्लावन अथवा प्रलय काल के बाद प्रसाद ने मनु की चिन्तित, उद्विग्न एवं एकाकी स्थिति का वर्णन किया है। मनु देव जाति के विनाश तथा उसके कारणों के विषय में गहन चिन्तन करते हुए द ष्टिगोचर होते हैं। इन कारणों में देवों का भोगविलासी जीवन, अहंकार, दंभ, अकर्मण्यता एवं अमरता की भावना प्रधान है। कवि ने कामायनी के 'इड़ा' व 'संघर्ष' सर्ग में देवासुर संग्राम, इन्द्र तथा प्राकृतिक शक्तियों रुद्र आदि का वर्णन किया गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि देव जाति का निवास कहीं सारस्वत प्रदेश के निकट ही रहा होगा। देव जाति को प्राचीन आर्य तथा प्राकृतिक शक्तियों को पूजा के योग्य देवता स्वीकारा है जिसका आधार कोशोत्सव स्मारक - संग्रह में प्रकाशित प्रसाद का लेख हैः

'आर्यों के अग्रजन्मा देव थे, ऐसी ही अनेक विद्वानों और आर्य शास्त्रों की संगति है।'' आगे उन्होंने लिखा है - ''देवगण की प्रधान भूमि का पता आर्य साहित्य में मेरु नाम से लगता है x x x x x कहा जाता है कि मेरु पर देवताओं का स्वर्ग है। पाण्डवों के महाप्रस्थान की यात्रा में उत्तर कुरु के समीप ही मेरु और स्वर्ग का वर्णन मिलता है।''

प्रसाद ने कामायनी के प्रारम्भ में देव जाति की विलासिता, दंभ, ऐश्वर्य एवं अमरता का वर्णन किया है वह भी पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर किया गया है।

कामायनी के कथानक का मूलाधार जलप्लावन की घटना है। प्रसाद ने आमुख में लिखा हैः

'जलप्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी घटना है जिसने मनु को देवों विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है।''

जलप्लावन की घटना पूर्णरुपेण ऐतिहासिक है जिसमें विभिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। यथा - शतपथ ब्राह्मण-ओध, ब्रह्म एवं विष्णु पुराण-नैमित्तिक, अग्निपुराण-ब्राह्म तथा श्रीमद्भागवत-पुराण-नित्य आदि। इसके अतिरिक्त जलप्लावन का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण, व हदारण्यक उपनिषद, जैमिनीय ब्राह्मण, नारद पुराण, महाभारत मत्स्यपुराण, भविष्य पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु पुराण, जैन ग्रंथ, यहूदी धर्म ग्रंथ अन्दावस्ता, कालसप्तितिका, पारसी धर्म ग्रंथ अन्दावस्ता, बेबोलोनिया के साहित्य ग्रंथों अत्रहसिस' तथा 'गिलगमेश' आदि में मिलना, इसकी ऐतिहासिकता को प्रमाणित करता है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार किसी दिन प्रातःकाल मनु संध्या वंदन करते हुए जब आचमन करने के लिए टूटीदार लोटे से जल लेना चाहे तो नहीं निकला। सोचा कि कुछ फंस गया होगा। साफ करने के उद्देश्य से टूंटी में कुश डालने पर मछली ने कहा, मेरी प्राण रक्षा करो मैं तुम्हारी प्राण रक्षा करुँगी।'' मनु ने सोचा यह मेरी प्राण रक्षा क्या करेगी। उसकी प्राण रक्षा हेतु उसे जल में डाल दिया। समय बीता जल प्लावन हुआ। लहरों के थपेड़ों से मनु की नौका डूबने उतराने लगी। वही मछली आई और सराक अर्थात् लंबे-लंबे मूछों के बाल में बांध कर नौका को हिमालय तक पहुंचा दिया। इस प्रकार मनु की प्राण रक्षा की। कुछ परिवर्तन के साथ यही कथा भारतीय पुराण साहित्य में मिलती है इससे प्रमाणित हो जाता है कि जलप्लावन की घटना ऐतिहासिक है। जलप्लावन का मूल कारण प्रसाद ने देवों के भोग विलास को मानना उनकी कल्पना है। जलप्लावन में इतिहास एवं कल्पना दोनों का समन्वय है।

पुराणों में चौदह मन्वन्तरों की कल्पना की गई है प्रत्येक मन्वन्तर का प्रवर्तक मनु को माना है जिसने स ष्टि की संरचना की। कामायनी में वर्णित मनु सातवें मन्वन्तर के प्रवर्तक माने गए हैं। ऋग्वेद के दसवें मंडल में मनु को सूर्य पुत्र तथा स ष्टि का नियामक माना है। प्रसाद ने मनु की जन्म कथा का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है किन्तु उन्हें स ष्टि का प्रवर्तक तथा ऐतिहासिक पुरुष स्वीकारा है तथा लिखा हैः

''मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की जनश्रुति में द ढ़ता से मानी गई है इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक रूप में मानना उचित है'' तथा ''जलप्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी प्राचीन घटना है जिसने मनु को देवों से विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया।''

यजुर्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता कहकर श्रद्धा को सूर्यपुत्री माना है। पुराणों में श्रद्धा को दक्ष प्रजापति की पुत्री माना गया है। प्रसाद ने यजुर्वेद के श्रद्धा-सूक्त की अनुक्रमणिका के आधार पर श्रद्धा को काम की पुत्री माना है।

श्रीमद्भागवत पुराण में मनु और श्रद्धा के मिलन स्वरूप मानव स ष्टि का विकास माना गया है उनके दस पुत्र हुए। प्रसाद ने श्रीमद्भागवत पुराण के कथानक को ग्रहण करते हुए कल्पना के आधार पर पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है। दस पुत्रों के स्थान पर मात्र एक पुत्र मानव को स्वीकारा है। श्रद्धा-मनु मिलन में काम-सहयोग, श्रद्धा-लज्जाभाव का उदय, मनु-ईर्ष्यावश श्रद्धा त्याग, श्रद्धा-वात्सल्य तथा विरह भावना आदि की रोचक कल्पना के माध्यम से कथा-प्रसंगों का वर्णन कर मौलिकता का परिचय दिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कामायनी में इतिहास एवं कल्पना का सुंदर समन्वय है।

मनु श्रद्धा से विरक्त हो घूमते-घूमते सारस्वत प्रदेश पहुंच गए। वहाँ सारस्वत प्रदेश की स्वामिनी एवं नियामिका इड़ा से मिले। जिसने मनु को सारस्वत प्रदेश का प्रजापति एवं नियामक बना दिया। सारस्वत प्रदेश की सम द्धि में मनु ने वैज्ञानिक शक्तियों का सहयोग लिया। काम के वशीभूत हो इड़ा के साथ अनैतिक व्यवहार करने का यत्न करने के परिणामस्वरूप प्रकृति शक्तियाँ तथा प्रजा क्रोधित हो जाती है एवं संघर्ष पर उतर आती है। अनैतिक व्यवहार हेतु मनु को दंडित करने के लिए रुद्र से आग्रह करते हैं। पशुपति रुद्र प्रजापति मनु के शरीर का भेदन करते हैं। प्रसाद ने कामायनी में इसी कथा को आधार स्वरूप ग्रहण

किया है जिसमें कल्पना का भी सहारा लेकर कथा में परिवर्तन कर दिया है। आकुलिन केलात को विद्रोह का नेता बना दिया है जिसमें सारस्वत प्रदेश की प्रजा विजयिनी बन जाती है।

श्रद्धा एवं मनु की कैलाश यात्रा-प्रसंग, त्रिपुर दर्शन, शिव-तांडव न त्य, अखंड-आनंद-प्राप्ति आदि कथा-प्रसंग पूर्णरूपेण काल्पनिक हैं जिसके विषय में डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कथन रेखांकित है-

''कामायनी की कथा के अंतिम भाग में प्रसाद ने अपने दार्शनिक सिद्धांतों के आधार पर कथा को एक अप्रत्याशित मोड़ दिया है, जिससे उसमें ऐतिहासिक तत्वों का सर्वथा अभाव हो गया है और दार्शनिकता की प्रधानता हो गई है। इस कथा भाग में प्रसाद ने तीन बातें दिखलाई हैं - प्रथम तो मनु को तांडव न त्य करते हुए नटराज शिव के दर्शन होते हैं। दूसरे मनु को त्रिपुर या त्रिकोण की वास्तविकता का ज्ञान होता है और तीसरे कैलाश शिखर पर पहुँचकर वे समरसता को अपनाते हुए अखंड आनंद का अनुभव करते हैं। वहीं पर इड़ा-मानव तथा सरस्वती नगर की प्रजा आदि भी पहुँच जाते हैं जिससे एक संयुक्त परिवार बस जाता है और सभी सम्मिलित रूप में भौतिकता से परे आध्यात्मिता एवं भौतिकता से समन्वित रूप को अपनाते हुए अखंड आनंद को प्राप्त करते हैं।''

तीनों घटनाओं के संकेत मात्र पौराणिक ग्रंथों में मिलते हैं जिसमें शिव का तांडव न त्य प्रमुख है। ब्रह्म पुराण, लिंग पुराण, शिव तांडव स्रोत, शिव महिम्न स्रोत में तांडव न त्य को विश्व के लिए कल्याणकारी स्वीकारा है। उसी को आधार मानकर प्रसाद ने कामायनी में शिव के तांडव न त्य का वर्णन किया है तथा उसे मंगलमय माना है। दूसरी घटना त्रिपुर या त्रिलोक का उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, शिव पुराण, लिंग पुराण तथा श्रीमद्भागवत् पुराण आदि में हुआ है जिसमें अग्नि के तीन रूपों की कल्पना करते हुए उसे त्रिधातु कहा गया है वे तीन धातुएँः लोहा, चांदी तथा सोना हैं तीनों ग ह हैं किन्तु शैवागमों में त्रिपुर के तीन कोण माने गए हैंः इच्छा, ज्ञान और क्रिया। 'त्रिपुरारहस्य' में श्रद्धा को त्रिपुरा देवी स्वीकारते हुए इन त्रिपुरों को समन्वय कारिणी कहा गया है उसी को आधार मानते हुए प्रसाद ने 'कामायनी' में त्रिकोण या त्रिपुर वर्णन किया है। त तीय घटना कैलाश पर अखंड आनंद की प्राप्ति के संकेत मात्र यजुर्वेद, शिव सहस्त्र नाम स्रोत, तैतिरीयोपनिषद, त्रिपुर रहस्य एवं प्रन्यभिज्ञा दर्शन में मिलते हैं। इन घटनाओं में कल्पना-इतिहास का अपूर्ण समन्वय देखा जा सकता है।

डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने कामायनी की ऐतिहासिकता-कल्पना को रेखांकित करते हुए लिखा हैः

'प्रसाद ने वैदिक, लौकिक एवं तांत्रिक आदि ग्रंथों में बिखरी हुई कथा को लेकर अपनी उर्वर कल्पना द्वारा कामायनी की कथावस्तु रूपी भवन का निर्माण किया है, जिसमें अन्य ग्रंथों का आधार तो मिट्टी के रूप में ही है, उसे कल्पना के सांचे में ढालकर एक काव्य रूप देने का कार्य उनकी प्रतिभा ने किया है।''

संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रसाद ने कथावस्तु, पात्र, घटना एवं घटना स्थल आदि सभी द ष्टियों से इतिहास एवं कल्पना का अद्भुत समन्वय प्रतीकात्मक कामायनी महाकाव्य में द ष्टिगोचर कराया है जिसमें नवयुग का प्रतिपादन किया गया है।

प्रसाद-काव्यः भाव पक्ष

महानतम काव्य ग्रंथों के प्रणेता जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को अनेक असर कालजयी कृतियाँ प्रदान कीं। उनमें 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्व', 'कानन-कुसुम', 'लहर', 'आंसू' एवं 'कामायनी' उल्लेखनीय काव्य कृतियाँ हैं जिसमें कामायनी के लिए कहा जाता है कि न भूतो न भविष्यत् यह आधुनिक काल का, खड़ी बोली में लिखा गया अपूर्ण काल जयी एवं देश जयी अनूठा महा काव्य है।

भाव पक्ष की अनेक विशेषताएँ हैं जिनमें प्रसाद काव्य की भाव पक्षीय निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

प्रकृति चित्रण

मानवीय चित्रण के साथ-साथ जय शंकर प्रसाद प्राकृतिक सौंदर्य चित्रण के कुशल चितेरा हैं। 'लहर' का सूर्योदय चित्रण द्रष्टव्य है:

अंतरिक्ष में अभी सो रही है उषा बाला।
अरे खुली भी नहीं अभी तो प्राची की मधुशाला।।

'लहर' में प्रकृति का सुंदर मानवीकरण किया गया है:

''बीती विभावरी, जाग री'
अंबर पनघट में डूबो रही,
ताराघट ऊषा नागरी।
खग-कुल-कुल-सा बोल रहा;
किसलय का अंचल डोल रहा।
लो यह लतिका भी भर लाई,
मधु-मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राम अमंद पिए,
तू अब तक सोई है आली,
आंखों में भरे विहाग री।''

सौंदर्य निरूपण

सौंदर्यानुभूति प्रसाद काव्य की प्रमुख विशेषता है। उनके 'लहर', 'आंसू' एवं 'कामायनी' आदि काव्यों में सौंदर्य निरूपण भरा पड़ा है। प्रसाद मानव सौंदर्य के बहुत बड़े प्रशंसक हैं। कामायनी में श्रद्धा के सौंदर्य वर्णन का दिव्य द श्य श्रद्धा सर्ग में देखा जा सकता है। जहाँ श्रद्धा के गौर वर्ण का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया गया है:

''और देखा वह सुन्दर द श्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम-वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा धनश्याम।''

श्रद्धा ने नीला वस्त्र पहन रखा है गांधार देश के नील रोम वाले मेषों के कोमल चमड़े से बना है जिसमें शरीर का तीन रूप द ष्टिगोचर हो रहा है- ढका, खुला तथा अधखुला। उसमें अधखुले अंग का मनोरम चित्रण करते हुए प्रसाद ने लिखा है:

''नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा म दुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।''

काले-काले घुंघराले बालों का कंधों तक आकर मुख के पास आना ऐसा प्रतीत होता है मानो सुकुमार नील धन शावक अम त पान हेतु चंद्रमा रूपी मुख के पास घेरा लगाए हुए हैंः

''घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास;
नील धन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।''

श्रद्धा सौंदर्य ऐसा है जो उषा की भाँति आशा का संदेश लेकर आता है। जिस प्रकार उषा मनुष्य को जीवन-प्रगति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है उसी प्रकार श्रद्धा का सौंदर्य निराश, हताश, जीवन से उदास मनु को जीवन पथ पर चलकर, उन्नति एवं अपूर्व सफलता प्राप्ति की प्रेरणा देता हैः

''उषा की पहिली लेखा कांत,
माधुरी से भींगी भर मोद;
मद भरे जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक द्युति की गोद।

मनु के सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रसाद ने कामायनी में अंकित किया हैः

''उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है,
क्षितीज बीच अरुनोदय कांत।
लगे देखने लुब्ध नयन से,
प्रकृति विभूति मनोहर शान्त।।''

मनु ने श्रद्धा का आकर्षक रूप देखा जिसे देख कर विभोर हो उठे। श्रद्धा के मुख का सौंदर्य उन्हें बादलों में घिरे चंद्र के समान द ष्टिगोचर हो रहा था जिसको सूर्य की लाल किरणें भेद कर दिव्य छवि का रूप प्रस्तुत करती हैं। श्रद्धा के रूप का वर्णन करते मनु कहते हैंः

''आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि-मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।''

मनु को संदेह होता है क्योंकि श्रद्धा सौंदर्य क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। इससे उनको लगता है जैसे नवीन इंद्र-नील की छोटी पर्वत श्रेणी को तोड़कर सौंदर्य धधकती हुई जाज्वल्यमान ज्वाला का रूप धारण किए हो या कि एक सुषुसप्त छोटा ज्वाला मुखी जो वासंती रात्रि में अशांत मुद्रा में पड़ा होः

''या कि, नव इंद्र नील लघु श्र ंग
फोड़कर धधक रही हो कांत;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।''

गुलाब राय ने प्रसाद के सौंदर्य चित्रण के संदर्भ में लिखा है कि प्रसाद ने सौंदर्य के भौतिक आकर्षण की अवहेलना नहीं की है। यह एक वैज्ञानिक सत्यै । उसको स्वीकारते हुए भी वे उसे नीचे की ओर नहीं ले गए हैं। उसका स्वर्गिक

आनंद वर्णित करते हुए उन्होंने उसको ऐंद्रिकता के भार से ऐसा बोझिल नहीं किया है कि उसकी प्रात समीरण की सी परिमल सुखद स्वच्छता, सूक्ष्मता एवं तरलता में बाधित हो। उसका प्रभाव जीवन पर मंद एवं मधुर होता है वह कभी झंझावात या बवंडर का रूप धारण कर नहीं आता है। मधुर व्यंजना से भी काम लिया गया है:

''बिछल रही है चांदनी छवि मतवाली रात।
कहती कंपित अधर से बहकाने की बात।।''

शारीरिक सौंदर्य का अतीव सजीव आकर्षक वर्णन करना प्रसाद का प्रमुख उद्देश्य है। मानव सौंदर्य प्रेमी है उसके वर्णन में वह उपेक्षा कैसे कर सकता है। हंसती हुई नारी का सौंदर्य चित्रण द्रष्टव्य है:

''चपला-सी ग्रीवा हंसी से बढ़ी।
रूप जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं।।''

प्रसाद के प्रेम में विरह की करुण व्यथा का आधिक्य है। उसमें उत्कण्ठा की तीव्रता के साथ-साथ आशावादिता का कोमल माधुर्य भी विद्यमान है। वैयक्तिक जीवन की अनुभूति उनके काव्य में प्रस्फुटित हुई है:

कभी चहल-कदमी करने को कांटों का कुछ ध्यान न कर
अपना पावन बाग बना लोगे प्रिय इस मन को आकर।।

तुलना के लिए अन्य स्थल देखिए:

''क्रोध से, विषाद से, दया से पूर्व रीति से ही,
किसी भी बहाने से याद किया कीजिए।''

प्रेम में अत्यधिक पवित्रता है ऐसा प्रेम ईश्वर के समान है। प्रेम की द ढ़ता प्रेमी-प्रेमिका में देखी जा सकती है। प्रेम का मार्ग अति सीधा एवं सरल है जिसमें सयानेपन की अपेक्षा नहीं है। ऐसे सपाट मार्ग पर चलने वाले पथिक का अवरोध करने की क्षमता किसी भी बाधा में नहीं है। प्रसाद के निश्छल-द ढ़ प्रेम का वर्णन देखिए:

''तुम्हारा शीतल सुख परिरंभ,
मिलेगा और न मुझे कहीं।
विश्वभर का भी हो व्यवधान,
आज यह बाल बराबर नहीं।।''

मानवतावादी द ष्टिकोण

प्रसाद ने काव्य में मानवता को विजयी प्रतिपादित किया है क्योंकि विश्व मानव का पुजारी है भारत मानवता का पुजारी है। प्रसाद 'जियो और जीने दो' सिद्धांत के पोषक हैं। दूसरों के सुख में सुखी होने वाले, औरों की हंसी देखकर हंसने वाले हैं:

औरों का हँसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्त त कर लो,
जग को सुखी बनाओ।।

श्रद्धा मनु को ऐसा ही खेल खेलने के लिए प्रेरित करती है जिससे संपूर्ण विश्व सुगंधि से परिपूरित हो जाए:

''बनो संस ति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;
विश्व सौरभ से भर जाय,
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।''

आधुनिक आतंकवाद की भयंकरता का संकेत उन्होंने कामायनी में इड़ा सर्ग में किया है। मानव बुद्धिवादी बनकर अपने को सर्वोपरि समझने लगता है। ईश्वर में आस्था नहीं रह जाती। अस्तित्व की रक्षा एवं सुख-भोग का साधन जुटाने में अपराध कार्य भी करता है। अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए अन्य शक्तियों का विनाश करने में हिंसक रूप धारण कर लेता है। ऐसा

संघर्ष सनातन है, चलता रहा, चलता रहेगा। इसीलिए आतंकों को संबोधित करते हुए प्रसाद ने लिखा हैः

''क्यों इतना आतंक ठहर जा, ओ गर्वीले।
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले।।

काश। इस उद्देश्य का पालन आधुनिक थोरीपीय एवं अमेरिकी राष्ट्र अपना सकते तो मानव समाज का कितना कल्याण होता।

डॉ॰ रामेश्वर खंडेल वाल ने 'जयशंकर प्रसाद 'वस्तु और कला' में लिखा है कि प्रसाद का चिंतन हवाई नहीं है, गंभीर मनन से प्रारम्भ उनके विचारों के सुंदर चित्र विराट काल-फलक पर फैली उनकी सुदीर्घ ऐतिहासिक द ष्टि के तट पर बने हुए हैं। अतः वे यथार्थ एवं व्यवहारर्य हैं। उनका चिंतन समग्र मानव जीवन, मानव की सहज शारीरिक-मानसिक क्षमता और मानव की मूल आदर्श वादिता-तीनों के सामंजस्य से तैयार हुआ है। फिर इस चिंतन को उन्होंने अधिकांशतः साहित्य या कला की मांग के अनुसार भाव व रस में परिणत कर एक स्वस्थ त प्तिकारी संजीवनी के रूप में प्रस्तुत किया है। इस विचार का कुछ अंश राष्ट्रीय महत्व का, कुछ अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का और कुछ सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक महत्व का है। मानव जीवन के सभी क्षेत्रों पर समान द ष्टि रखकर मानव सुख के लिए प्रसाद ने जो चिंतन किया है, वह उनके साहित्य की एक महत्वपूर्ण विभूति है।

छायावाद के अधिष्ठाता

द्विवेदी युगीन इतिव त्तात्मक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जिस छायावादी शैली का जन्म हुआ, उसके प्रवर्तक एवं अधिष्ठाता जय शंकर प्रसाद हैं। उनकी कविता छायावाद के सांचे में ढली है। 'आंसू' छायावादी काव्य की सुंदर कृति है। छायावाद की प्रथम विशेषता हैः सौंदर्य दर्शन। छायावादी कवि सौंदर्य प्रेमी है उसे विश्व की प्रत्येक वस्तु में असीम सौंदर्य के दर्शन होते हैंः

तुम सत्य रहे चिर सुंदर, मेरे इस मिथ्या जग के।

प्रसाद ने प्रिय के सौंदर्य का चित्रण बड़ी तल्लीनता से किया हैः

''लावण्य-शैल राई-सा, जिस पर वारी बलिहारी।
उस कमनीय कला की, सुषमा थी प्यारी-प्यारी।।''

छायावादी काव्य की दूसरी विशेषता है - श ंगारिकता। कामायनी मर्यादित श ंगार वर्णन का अद्वतीय महाकाव्य हे। छायावादी वेदना एवं विषाद के कवि हैं जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपने काव्य में की है। दुख मानव को परमात्मा की ओर अग्रसर करता है जिससे आध्यात्मिकता का प्रादुर्भाव होता है। प्रसाद अध्यात्मिक कवि हैं। बुद्धि पक्ष की उपेक्षा न करते हुए हृदय पक्ष की प्रधानता का प्रतिपादन किया है। हृदय आस्थावान होकर आध्यात्मिक हो जाता है। ईश्वर की असीम सत्ता में प्रसाद को असीम विश्वास है। कवि की आंतरिक प्रेम साधना में सूक्ष्म, उदात्त, पावन एवं गंभीर की व्यंजना प्रसाद काव्य में हुई है।

प्रसाद ने नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया है। कामायनी में नारी महत्ता जैसा रूप प्रतिपादित किया है अन्यत्र दुर्लभ हैः

''नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में;
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।''

श्रद्धा के महत्व द्वारा प्रसाद ने नारी के महत्व की प्रतिष्ठा की है। अन्यत्र नारी के गौरवमय उज्ज्वल पक्ष को व्यंजित किया है। प्रेयसी के आलोक से संपूर्ण विश्व प्रकाशमान भासित होता है।

नियतिवाद

डॉ॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि प्रसाद का द ढ़ विश्वास है कि जीव के समस्त कार्यों की गतिविधि का संचालन एक ऐसी नियमिका शक्ति करती है, जो कर्त्तव्य मद से मत्त जीवों को कर्म शक्ति को अपनी अनुचरी बनाकर अपना कार्य करवाती है, दंभ एवं अहंकार पूर्ण जीवों को अपनी क्रीड़ा का कंदुक बनाती है, कृत्रिम स्वार्थ सिद्धि में रुकावट उत्पन्न करती है और जीवों के उत्थान का पतन एवं पतन का उत्थान किया करती है। इस नियामिका शक्ति को 'नियति' के नाम से संबोधित किया गया है।

पुरुषार्थवाद

नियतिवादी होते हुए भी प्रसाद ने जीव के भौतिक अभ्युदय एवं आध्यात्मिक विकास हेतु पुरुषार्थ की महत्ता का प्रतिपादन किया है। प्रसाद का स्पष्ट मत है कि जीव अपने पुरुषार्थ से ही महानता प्राप्त करता है। अनेक महान व्यक्ति निंदनीय सामाजिकता की प ष्ठभूमि में उत्पन्न होकर पुरुषार्थ के बल पर ही दैवी भाग्य विधान एवं रूढ़ियों को परिवर्तित करने में सफल हुए हैं। पुरुषार्थ से ही जीव अपने कलंक को चंद्रमा की कालिमा का रूप दे सकता है। पाप को पुण्य में बदल सकता है, जड़ता एवं आतंक का विनाश कर मानवता को विकसित कर सकता है, स ष्टि को सफल बना सकता है तथा आनंद का सर्वत्र प्रसार कर सकता है क्योंकि पुरुषार्थी के मार्ग से समस्त विघ्न-बाधाएं स्वतः हट जाती हैं। जीव का आलस्य एवं उसकी अकर्मण्यता नष्ट हो जाती है ऐसी स्थिति में निर्भयतापूर्वक कार्य करने के लिए उसका मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

नारी की महत्ता

प्रसाद काव्य में नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। नारी को साक्षात् श्रद्धा की प्रतिमा कहा गया है। कामायनी की नायिका श्रद्धा महिमा मंडित इसी कोटि की नारी है जिसमें अगाध विश्वास, त्याग, सौंदर्य, ममता, माया, विश्व-कल्याण, विश्व-बंधुत्व की प्रबल भावना भरी हे। वास्तव में श्रद्धा के रूप में प्रसाद ने अपने नारी विषयक द ष्टिकोण का विशद अंकन किया है।

प्रसाद नारी के मंगल रूप के उपासक हैं और उसे जीवन में इतना महत्व देते हैं कि न केवल भौतिक अपितु आध्यात्मिक मार्ग दिखाने का श्रेय नारी को देते हैं। कामायनी में रहस्य सर्ग की आख्याता श्रद्धा ही है।

नारी का अमांसल सौंदर्य

कामायनी में श्रद्धा को देखकर मनु के मन में जो प्रतिक्रिया हुई है वह शारीरिक उपभोग की इतनी नहीं है जितनी उसके दर्शन से उत्पन्न मानसिक कौतूहल तथा त प्ति से समन्वित थी। इसमें सौंदर्य के प्रति शारीरिक उपभोग का भाव न होकर मानसिक परितोष का भाव ही अधिक है। प्रसाद के श ंगार एवं प्रेम चिन्ह लौकिकता की पवित्र भूमि से दूर दिव्यता की पावनता से युक्त होते हैं।

रहस्यवादी भावना

कामायनी में रहस्यवाद की सफल अनुभूति के दर्शन होते हैं। इसका चतुर्दश सर्ग रहस्य है। ईश्वरोन्मुख प्रेम प्रकृति-प्रेम के साथ मिलकर रहस्यवाद का रूप धारण कर लेता है। परमात्मा की सत्ता प्रकृति के मनोरम द श्यों में मिलती है। कहीं तो वह कौतूहल जाग त कर एक खोज का विषय बनकर रह जाता है और कहीं उसमे ंउनके प्रियतम पहचाने से, कुछ लुके-छिपे द ष्टिगोचर होते हैं।

> **''प्रवहमान थे निम्न देश में**
> **शीतल शत-शत निर्झर ऐसे;**
> **महाश्वेत गजराज-गण्ड से**
> **बिखरीं मधु-धाराएँ जैसे।''**

रस योजना

कामायनी में रस परिपाक को प्रधानता नहीं दी गई है, परम्परा से हटकर लिखे हुए महाकाव्य कामायनी में रस को वह स्थान नहीं मिल सका है जो उसे महाकाव्य में प्राप्त है। प्रसाद का यह मानना है कि रस का अर्थ आनंद है। डॉ० नगेन्द्र कामायनी में महारस अर्थात् महानंद की स्थिति स्वीकारते हैं। किंचित कामायनी का आनंद सर्ग इसी का प्रतिपादन करता है।

भावों तथा कल्पनाओं के बुद्धिगम्य न होने के कारण रसपरिपाक में बाधा पड़ी है फिर रस परिपाक की द ष्टि से कामायनी का अंगीरस महा आनंद या महारस है जिसके प्रमुख रस श ंगार, करुण तथा शांत हैं।

कवि आंसू के अंत तक आते-आते निराशा और अवसाद से ऊपर उठकर अपनी वेदना को करुण अर्थात विश्व प्रेम के रूप में परिवर्तित कर देता है। इस द ष्टि से गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित प्रेम रस 'प्रसाद काव्य का अंगी रस बन जाता है। इसलिए छायावादी काव्य को निराशावादी काव्य नहीं कहा जा सकता तथा प्रसाद को पलायनवादी नहीं कहा जा सकता।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद काव्य मुख्य रूप से कामायनी में छायावादी काव्य के सभी तत्वों का भाव तत्व के रूप में सम्यक विकास हुआ है।

प्रसाद-काव्यः कला पक्ष

प्रसाद मूलतः कवि हैं। कवि के साथ दार्शनिक, मनीषी एवं चिंतक भी हैं। उनकी भावभूमि उदात्तता का स्पर्श करती है। उदात्त एवं उच्च भावाभिव्यक्ति हेतु उसी श्रेणी का कला पक्ष अपेक्षित है। प्रसाद की भाषा पर क्लिष्टता, दुरूहता, एवं अस्पष्टता का आरोप लगाना उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि भाव पक्ष के अनुरूप ही कला पक्ष होना चाहिए। अपने भावों की उदात्तता एवं शैव-दर्शन की प्रभावशीलता के कारण प्रसाद को भाषा की शालीनता का निर्वाह करना पड़ा है। इसके लिए तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं था। प्रसाद ने क्षुप (झाड़), आलवाल (प्याला), प्रालेयनीर (प्रलय का जल) जैसे अप्रचलित, किन्तु व्याकरण सम्मत तथा संस्क त के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। छंदों एवं अलंकारों के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि प्रसाद ने भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं का समन्वय किया है।

भाषा

प्रसाद की भाषा के व्यावहारिक एवं संस्क तनिष्ठ दो रूप हैं। प्रारम्भिक रचनाओं में व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया गया है। किन्तु जैसे-जैसे भावों की परिपक्वता एवं गंभीरता बढ़ती गई है प्रसाद की भाषा संस्क तनिष्ठ होती गई है। वस्तुतः उनकी भाषा संस्क त तत्सम शब्दों से युक्त है। फिर भी उसमें प्रवाह तथा ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुण की कमी नहीं है। मुहावरों तथा कहावतों का अभाव है। शब्द चयन श्रेष्ठ है। एक-एक शब्द नगीने की भाँति जड़े हुए हैं। वाक्य विन्यास भावानुकूल तथा विषयानुकूल है।

प्रसाद का शब्द निर्माण कार्य विशिष्ट है। शब्दों के संक्षिप्तीकरण में उनकी विशेष द ष्टि रही है। इस द ष्टि से गुलाली (गुलाल से रंगी जाने वाली)। विकास चली (विकास को प्राप्त हुई), दिपती (दीप्तिमती होती), अलगाता (अलग करता) आदि शब्दों का विशेष महत्व है।

लोकोक्तियां एवं मुहावरे प्रसाद की भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों को भी स्थान मिला है। इनके प्रयोग से भाषा को ठोस रूप में व्यक्त करने तथा उन्हें अत्यधिक संप्रेषणीय बनाने में सहायता मिली है। कामायनी में निम्नलिखित लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग हुए हैं-

1. प्यास बुझाने के लिए निरर्थक प्रयास करना (ओस चाटना)।
2. अंधेर मचना (मच जावेगा अंधेर)।
3. जीवन का दांव हारना (हार बैठे जीवन का दाँव)।
4. निरर्थक प्रयास करना (पीटे लकीर)।
5. प्रत्यक्ष का सपना जाना।
6. तिल का ताड़ बनाना।
7. सुख की बीन बजाना। आदि से भाषा में सरसता, स्पष्टता तथा सशक्ता आ गई है।

प्रसाद की काव्य भाषा के विकास के तीन स्तर प्राप्त होते हैं-

1. **ब्रज भाषा (प्रारम्भिक युग):** 'चित्राधार' की कविताओं में ब्रजभाषा का प्रधान रूप है।
2. **खड़ी बोली:** 'कानन कुसुम', 'लहर' और 'करूणालय' आदि क तियों में खड़ी बोली और नवीन वर्ण्य विषय को अपनाया गया है। प्रेम और सौंदर्य वर्णन के भी इनमें मुख्य स्थल है।
3. **प्रांजल खड़ी बोली:** खड़ी बोली के प्रौढ़ काल में आंसू सर्वश्रेष्ठ क ति है जिसमें खड़ी बोली की सरसता, प्रसादमयता एवं अभिव्यक्ति सामर्थ्य का पूर्ण परिचय मिलता है। इसके बाद 'मानस' जैसी ख्याति पाने वाली प्रौढ़-कालजयी क ति कामायनी का प्रणयन हुआ।

शैली

प्रसाद की काव्य शैली सर्वदा नवीनता लिए हुए हैं। उनकी शैली में वैयक्तिता है क्योंकि अपनी शैली के निर्माता वे स्वयं हैं। सरसता, स्वाभाविकता, प्रभावपूर्णता, संवेदनशीलता, क्लिष्टता, गुम्फितता, सांकेतिकता तथा आलंकारिता प्रसाद की शैलीगत

विशेषताएँ हैं।

अभिव्यंजना को सशक्त एवं सरल बनाने के लिए विशिष्ट शैली को अपनाना पड़ता है। इसका स्वरूप विषयानुकूल होना चाहिए। काव्य में ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुणों से समन्वित शैली को विशेष स्थान मिला है। प्रसाद काव्य में इनका पूर्ण उत्कर्ष मिलता है -

1. **सरस शैली:** इसमें न तो शब्द चमत्कार पर विशेष ध्यान होता है न वर्णन की वक्रता पर। सीधे-सादे शब्दों में वस्तु वर्णन होता है। कामायनी में श्रद्धा अति स्पष्ट एवं सरल शब्दों में कहती है-

मैं हँसती हूँ रो लेती हूँ, मैं पाती हूँ, खो देती हूँ।
इससे ले उसको देती हूँ, मैं दुख का सुख कर लेती हूँ।

2. **अलंक त शैली:** इसमें अलंकार की प्रधानता एवं चमत्कार तथा उक्ति वैचित्य पर विशेष बल होता है। कहीं-कहीं अलंकार बहुलता खटकने लगती है। कामायनी में इस शैली को विशेष स्थान मिला है-

"संध्या अरूण जलज केसर से, अब तक मन थी बहलाती,

मुरझाकर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहां पाती।

क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता, मलिन कालिमा के कर से,

काकिल की काकली व था ही, अब कलियों पर मँडराती।"

3. **गुफित या क्लिष्ट शैली:** इसमें वाक्य लंबे-लंबे और एक वाक्य के अंतर्गत अनेक वाक्य गुफित रहते हैं। इसे 'मानस' की प्रोक्ति शैली भी कहा जा सकता है। इसमें अर्थ समझने में क्लिष्टता आती है। इसीलिए इसे क्लिष्ट शैली भी कहा गया है। ऐसी शैली में संस्क त की सामासिक शैली का विशेष योगदान रहता है। गुंफित शैली का उत्क ष्ट उदाहरण कामायनी का लज्जा सर्ग है जिसमें चौंसठ पंक्तियों में एक ही वाक्य है। उदाहरणार्थ-

अम्बर चुंबी हिम श ंगों से,
कलरव कोलाहल साथ लिये।
x x x
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती।
x x x
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

आंसू में प्रोक्त शैली के यत्र-तत्र दर्शन किए जा सकते हैं।

4. **सांकेतिक शैली:** लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोगों के कारण इस शैली का कामायनी में अत्यधिक प्रयोग है। इसमें दूरारूढ़ कल्पना, प्रतीकों और शब्दशक्तियों का विशेष आश्रय लेने के कारण पर्याप्त दुरूहता आ जाती है। कामायनी में इसका आद्यात प्रयोग हुआ है।

अलंकार योजना

प्रसाद भाव शिल्पी हैं। इस कारण उनके काव्य में अलंकारों का गौण स्थान है। कामायनी में प्रयुक्त अधिकांश अलंकार, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विशेषण विपर्यय तथा मानवीकरण है। उनके उपमान बिल्कुल नवीन है जिससे अलंकार योजना में अनूठापन आ गया है।

1. **उपमा**

"सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरों का सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद।"

2. **विरोधाभासः** अमर मरेगा क्या? तू कितनी गहरी डाल रही है नींव?

3. **द ष्टांत**

> **"खेल रहा है शीतल दाह।**
> **सुख केवल सुख का वह संग्रह**
> **कें द्रीभूत हुआ इतना;**
> **छायापथ में नव तुषार का,**
> **सघन मिलन होता जितना।"**

4. **मानवीकरण**

> **"उच्च शैल शिखरों पर हँसती प्रक ति चंचला बाला**
> **प्रबल हँसी बिखराती अपनी, फैली मधुर उजाला।"**

5. **ध्वन्यार्थ व्यंजना, पुनरूक्ति प्रकाश एवं अनुप्रास**

> **धीरे-धीरे लहरों का दल, तट से टकरा होता ओझल।**
> **छप-छप होता शब्द, विरल, थर-थर छँप रहती दीप्ति तरल।**

प्रसाद ने कामायनी में पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का समन्वय किया है। प्रसाद की अलंकार योजना यत्नज नहीं अयत्नज है।

छंद विधान

प्रसाद ने अपनी आरम्भिक रचनाएँ घनाक्षरी छंद में लिखी है। बाद की खड़ी बोली की रचनाओं में अतुकान्त छंद का प्रयोग किया है। कामायनी में ताटंक तथा रोला आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

काव्य में छंदों की स्थिति नदी के किनारों जैसी है। ये भावों की भाषा में व्यक्त पर सरस एवं सरल प्रवाह प्रदान करते हैं। भावों को सजाने का कार्य छंदों में होता है। प्रसाद ने छंदों की महत्ता स्वीकारी है किन्तु परम्परागत छंदों का प्रयोग करते हुए भी उन्हींने नवीनता लाने के मोह का संवरण नहीं किया है। अतुकांत छंदों को अपनाकर उनमें भी छंद की शास्त्रीयता का निर्वाह किया है। प्रसाद ने पुराने, नवनिर्मित एवं मिश्रित छंदों का प्रयोग कामायनी में किया है। इस प्रकार उनके काव्य प्रयुक्त छंदों की तीन कोटियाँ हैं-

1. शास्त्रीय छंद।
2. मिश्रित छंद।
3. निर्मित छंद।

चित्राधार, कानन कुसुम, झरना एवं लहर में प्राचीन-नवीन, तुकांत-अतुकांत तथा पौर्वात्य-पाश्चात्य आदि अनेक प्रकार के छंदों को स्वीकारा गया है। कामायनी में भी उक्त सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग देखा जा सकता है।

प्रसाद सर्वतोमुखी, प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। वे हिन्दी के रवीन्द्र एवं शेक्सपियर हैं। काव्य के क्षेत्र में उन्होंने छायावाद का प्रवर्तन एवं प्रतिष्ठापन किया है। काव्य को एक नवीन द ष्टि एवं दिशा प्रदान करने का श्रेय जय शंकर प्रसाद को है। अतुकान्त छंद का सर्वप्रथम मान्यता प्रदान करने वाले कवि जय शंकर प्रसाद हैं। उनका महाकाव्य 'कामायनी' हिंदी साहित्य का अमर रत्न हैं। नाटक, कहानी उपन्यास तथा निबंध के क्षेत्र में भी उनका अद्वितीय स्थान है। प्रसाद को आधुनिक साहित्य का निर्माता कहना अत्युक्ति न होगी।

कामायनी में छायावाद का चरमोत्कर्ष विद्यमान है। रमणीय कल्पना, मनोरम लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक योजना, सुंदर बिंब विधान, श्रेष्ठ संगीत्मकता, दिव्य पात्र योजना, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक कथावस्तु, संस्क त की तत्सम शब्दावली, प्राक तिक चित्रमयता, द श्यों की सजीवता, भौतिकता, आध्यात्मिकता, वैज्ञानिकता, प्राचीनता नवीनता, पौर्वात्य-पाश्चात्य छंद, इच्छा-क्रिया ज्ञान का समन्वय, हृदय-बुद्धि का सामंजस्य आदि सभी दर्शनीय है। प्रसाद ने विभिन्न शैलियों का प्रतिपादन किया है। कामायनी में कवि ने अत्यन्त गुरू या गंभीरता से स्वानुभूति की अभिव्यंजना की है। मानव जीवन में व्याप्त अंतर्द्वद्व को चित्रित करके प्रसाद ने इसे मानवता एवं शांति का महाकाव्य बना दिया है। वास्तव में 'कामायनी' विश्व साहित्य की अभिनव और महानतम निधि है।

कामायनीः महाकाव्यत्व

जीवन के प्रति जागरूकता, यौवन का मदमस्त उल्लास तथा तद्गत अतीत के प्रेम की अमिट छापने ही महाकवि जयशंकर प्रसाद से हिंदी साहित्य को 'कामायनी' जैसा कालजयी महाकाव्य प्रदान कराया है। इस महाकाव्य का मंथन करने से आशा-निराशा, सुख-दुख, संध्या-प्रातः तथा प्रक ति के अत्यन्त रोमांचकारी, मुग्धहारी एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण देखने को मिलते हैं। यह महाकाव्य प्रसाद की अन्तिम एवं सर्वोत्क ष्ट रचना है। इसमें एक ओर प्रलयकालीन सागर की गर्जनाएं विद्‌यमान हैं तो दूसरी ओर उषा की अरूणिमा का कोमल द श्य भी स्पष्ट है। डॉ. शिव कुमार का कथन है-

"कामायनी' आज के युग के लिए उस अमर वरदान की भाँति है जिसे पाने के लिए भक्त अपने भगवान के चरणों में सदा के लिए तिरोहित हो जाता है।"

कामायनी की कथा वैदिक कालीन प्रलय की गाथा पर आधारित है। यह काव्य हिंदी सहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में अद्वितीय है। 'कामायनी' महाकाव्य पर विचार करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि यह महाकाव्य आधुनिक युग का महाकाव्य है। इसमें प्रसाद ने अतीत को आधार मानकर वर्तमान समस्याओं को सुलझाने का पूरा-पूरा प्रयास किया है। कामायनी पर विचार करते हुए डॉ. कन्हैया लाल सहल ने लिखा है-

"कामायनी के पहले हिंदी साहित्य में 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' नामक महाकाव्यों की स ष्टि हो चुकी थी, किंतु साकेत एवं प्रिय प्रवास में नवीनता होते हुए भी नवीन युग का वास्तविक रूप से पूर्ण स्फुरण नहीं है। केवल कामायनी ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसे नूतन युग का प्रतिनिधि माना जा सकता है।"

कामायनी में शैली की एक ऐसी नवीनता है जो प्रयत्न करने पर भी अन्य ग्रन्थों को अभी तक अप्राप्य रही है। डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने साहित्यिक निबंध में लिखा है-

"प्रसाद जी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'कामायनी' मानी जाती है। यह एक प्रबंध-काव्य है, जिसमें आदि पुरूष मनु की जीवन-गाथा वर्णित है। इसका कथानक अत्यन्त संक्षिप्त सा है, उसमें बहुत थोड़ी घटनाओं का समावेश है; मनु और श्रद्धा के मिलन और वियोग, पुनर्मिलन साधारण सी घटनाओं में कामायनी का सारा इतिव त सिमटा हुआ है।"

कामायनी विचारों की द ष्टि से प्रौढ़ एवं महान है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार महाकाव्य के अधिकांश लक्षण कामायनी में मिलते हैं। शेष लक्षणों के न मिलने का एक मात्र कारण यही है कि 'कामायनी' महाकाव्य के लक्षणों पर नहीं लिखा गया है। परम्परागत महाकाव्य का लक्षण लिखने वालों में - भामह ने सर्गबन्ध को महाकाव्य कहा है, (काव्यालंकार); दंडी-सर्ग बन्धता, चतुवर्ग प्राप्ति, चतुर उदात नायक; नगर, समुद्र, पर्वत, यहतु, चंद्रोदय का प्रक ति वर्णन - (काव्यादर्श); रूद्रह - (काव्यालंकार), हेमचंद्र (काव्यानुशासन), तथा अग्नि पुराण प्रमुख है। प्रायः सभी में एक विश्व नाथ (साहित्य दर्पण) ने महाकाव्य का विस्तार से विवेचन किया है-

सर्ग बन्धो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।
सद्‌वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः।।
एक वंश भवा भूपाः कुलजा बहवो पि वा।
श्ंगार वीर शान्ता नामेको अंगी रस इष्यते।।
अंगानि सर्व पि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः।
इतिहासोद्‌भवं व त्तमम्यद्‌वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वे क च फलंभवेत।
आदौ नमाष्क्रियाशीर्ष्वा वस्तु निदे्र्दश एव वा।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सता च गुणकीर्त्तनम्।
एक व त्तमयैः पद्‌यैर वसाने न्य व त्तकैः।।

नाति स्वलपा नाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नाना व त्त मयः क्वापि सर्गः कश्चन द श्यते।।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्या-सूर्य्येन्दु-रजनी-प्रदोष-ध्वान्त वासराः।।
प्रातर्मध्याह्न-म गया शैलर्त्तु-वन-सागराः।
सम्भोग-विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुरा ध्वराः।।
रणप्रयाणोपयम-मन्त्रा-पुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोंपाङ्गा अमी इह।।
कवेव र्त्तस्य वान्यम्ना नायकस्येतरस्यवा।
नामास्य सर्गोपादेय-कथया सर्गनाम तु।।

अर्थात् साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य सर्गबन्ध होना चाहिए। जिसमें देवता वंश, क्षत्रिय या धीरोदात्त गुण से परिपूर्ण **एक नायक** होना चाहिए अथवा एक वंशीय राज्य कुल में उत्पन्न **अनेक नायक** हो सकते हैं। श ंगार, वीर शान्त रसों में से एक **अंगीरस** होना चाहिए। अन्य सभी रसों का वर्णन अंगरूप रूप में हो, **नाटक संधियां** हो। **कथा इतिहास प्रसिद्ध अन्य सज्जन आश्रित हों, धर्म अर्थ काम, मोक्ष** चार वर्गों में किसी एक की प्राप्ति हो, आदि में मंगलाचरण अन्त में आशीर्वाद हो, **कहीं खल निन्दा, कहीं सज्जन प्रशंसा हो, एक सर्ग में एक छंद, सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन,** न बहुत छोटे न बहुत लंबे **आठ से अधिक सर्ग हो, किसी सर्ग में अनेक कथावस्तुएं हो, सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा सूचना हो,** संध्या, सूर्योदय, चंद्रोदय, **प्रातःकाल, मध्याह्न काल, सायंकाल, शिकार,** पर्वत, वन, सागर, संयोग, वियोग, स्वर्ग, म त्यु, जन्म, रणयात्रा, पुत्र प्राप्ति, आदि का **सांगोपांग वर्णन** हो। कवि, कथावस्तु, नायक के नाम पर महाकाव्य का नामकरण होना चाहिए। प्रत्येक सर्ग का नाम उसके वर्ण्य विषय के आधार पर किया जाना चाहिए।

कामायनी के कथानक की स ष्टि मनु को केंद्र में रखकर की गई है जो इतिहास प्रसिद्ध राजर्षि है, ये शांत एवं व्यवस्था के विधायक भी हैं। कामायनी का कथानक निश्चित रूप से ऐतिहासिक है। प्रसाद ने स्वयं आमुख में लिखा है-"आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरूष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में, चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ हो, जैसा कि सभी वैदिक इतिहास के साथ निरूक्त के द्वारा किया गया, किन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यो की अनुश्रूति में द ढ़ता से मानी गई है; इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरूष ही मानना उचित है।"

मनु और श्रद्धा की छान्दोग्य उपनिषद् में भावमूलक व्याख्या इस प्रकार मिलती है-

"यदा वै श्रद्दधाति अथ मनुते ना श्रद्दधन् मनुते।"

मनु भारतीय इतिहास के आमुख प्रठिट की है पुरूष हैं। राम, क ष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें श्रद्धादेव कहा गया है "श्रद्धादेवौ वै मनुः।"

जल प्लावन भारतीय इतिहास की अति प्रसिद्ध घटना है। यह घटना वेद पुराणों में ही नहीं अपितु यहूदी-यवनों के प्राचीन साहित्य में भी है। इस घटना के आधार पर मनु-श्रद्धा का मिलन हुआ जिसके फलस्वरूप मनु देवों से विलक्षण स ष्टि की रचना कर सके हैं। मानवे वै प्रातः शतपथ ब्राह्मण की पंक्ति स ष्टि रचना को प्रमाणित करती है।

श्रद्धा वाले सूक्त में सायण ने श्रद्धा का परिचय देते हुए लिखा है-

'कामगोत्रजा श्रद्धा नामार्षिका।'

अर्थात् श्रद्धा कामगोत्र की बालिका थी। इसीलिए उसे कामायनी भी कहा गया है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर 'इड़ा' उल्लेख मिलता है जो प्रजापति मनु की पथप्रदर्शिका तथा मनुष्यों पर शासन करने वाली कही गई है। इड़ा का उल्लेख शतपथ में भी मिलता है उसकी उत्पत्ति या पुष्टि पाक यज्ञ से हुई है।

इस विवेचन से कामायनी की कथावस्तु एवं पात्रों की ऐतिहासिकता असंदिग्ध हो जाती है।

कथानक को देखने से ज्ञात होता है कि संपूर्ण घटनाएँ हिमालय एवं सारस्वत प्रदेश में घटी है।

हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर बैठे एकाकी मनु चिंताकुल है। अतीत की स्म ति उनकी बेचैनी का कारण है। संवेदना रह-रहकर उनके हृदय को दोलायमान कर देती है उन्हें केवल एक वस्तु की चाह है वह है सहानुभूति। थोड़ी देर बाद प्रलय प्रवाह कुछ शांत होता है और सिंधु सेज पर धरा वधू सकुची द ष्टिगोचर होती है मनु प थ्वी पर उतरकर यज्ञ करते तथा यज्ञशेष किसी अन्य प्राणी के पोषण की आशा में दूर छोड़ आते हैं। अंत में काम की पुत्री श्रद्धा मनु के जीवन में शांति का प्रसार एवं संचार करती है तथा काम परिचय कराकर वह मनु पर आसक्त हो जाती है जिससे वासना जन्मती है। लज्जामयी श्रद्धा आत्म समर्पण कर देती है। शिकारी मनु की संतान की अनुत्सुकता है। श्रद्धा के प्रेम विभाजन की आशंका एवं ईर्ष्या वश श्रद्धा को छोड़कर मनु सारस्वत नगर वासिनी इड़ा से बंध जाते हैं। वहाँ का शासक बनकर इड़ा के साथ बलात्कार करना चाहते हैं जिसके परिणामस्वरूप उन्हें देवों से संघर्ष करना पड़ता है। श्रद्धा यह सारा द श्य स्वप्न में देखती है और अपने पुत्र मानव को साथ लेकर मनु को खोजती हुई मनु का घायलावस्था में देखकर क्षुब्ध हो जाती है। मनु श्रद्धा को देखकर निर्वेद से उठ कर भागते हैं। श्रद्धा मानव को इड़ा के पास छोड़कर मनु का पीछा करती है। अंत में मनु को पाकर वह उन्हें शिव का दर्शन कराती है। रहस्य समझने के बाद उनको आनंद की प्राप्ति होती है। इसी बीच इड़ा भी मानव को साथ लिए उनके पास जा पहुँचती है।

इस कथा का आधार मनोवैज्ञानिक है। इसमें मानस का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है।

नन्द दुलारे वाजपेयी ने लिखा है-"मानस का ऐसा वास्तविक विश्लेषण और काव्यमय निरूपण शायद शताब्दियों बाद हुआ है।"

मनु मन के प्रतीक हैं, श्रद्धा हृदयगत भावों का प्रतीक है तथा इड़ा व्यवसात्मिका बुद्धि का प्रतीक है। कामायनी की कथा प्रतीकात्मक है। प्रसाद ने महाकाव्य का नामकरण कामायनी (श्रद्धा) के नाम पर किया तथा सर्गो का नामकरण हृदय की भावनाओं के आधार पर किया गया है। सर्गो की संख्या पंद्रह है जो न अधिक छोटे न अधिक बड़े हैं।

कामायनी का नायक मनु है। यह स्पष्ट हो गया कि कामायनी की कथावस्तु ऐतिहासिक एवं व्यापक है। स्वयं प्रसाद ने लिखा है-

"चेतना का सुंदर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य;
विश्व के हृदय-पटल दिव्य अक्षरों में अंकित हो नित्य।"
(कामायनी)

चरित्र की द ष्टि से मनु का अत्यधिक महत्त्व है।

"कामायनी का नायक यद्यपि वैदिक और पौराणिक कथाओं से लिया गया है तथापि वह किसी विशिष्ट देश और काल में सीमित नहीं है। प्रसाद जी ने देवोत्सर स ष्टि के प्रथम उन्नायक मनु को विश्व महाकाव्य के नायक के रूप में सामने रखा है। मनु के भीतर हम वह विद्रोह, वह विस्फोट और वह ज्वाला पाते हैं जो तथाकथित भारतीय संस्क ति की सीमाओं में बंधी हुई नहीं पाई जाती। प्राचीन ग्रीक नाटककार इस्काइलस के 'प्रामेथियस बाउण्ड' शेली के 'प्रामेथियस अनबाउण्ड' मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' और गेटे के 'फाउस्ट' के नायकों के भीतर उठने वाली तूफानी भाव तरंगों की सी भावना हम काव्य के प्रारंभ से मनु के भीतर पाते हैं। इस तरह की भूकंपी हलचल किसी भी दूसरे भारतीय काव्य के नायक में देखने को नहीं मिलती।"

इतिहास प्रसिद्ध मनु के साथ हमारा रागात्मक संबंध पहले से ही है। जब हम उसे-'अन्नमय कोष' में फंसा प्राणी पाते हैं। जो जल माया के कारण अपनी देवविभूति को खो बैठता है तब उसके साथ हमारा तादात्मय अत्यधिक बढ़ जाता है। अमर संतान होने के कारण मनु नायक के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं उनमें नायकोचित समस्त गुणों का समावेश है। वे धीर और साहसी होने के साथ ही दयावान एवं कोमल हृदयी हैं। प्रलय से बचे किसी प्राणी के लिए किसी स्थान पर यज्ञशेष (अन्न) रख आना उनकी दया भावना का परिचय देता है। वे अपार तेजस्वी, वीर एवं वीर्यवान हैं। द ढ़ मांस पेशियों वाला मनु चिंताकुल होते हुए भी स्वस्थ एवं तेजवान है। वह मानव स ष्टि का तेजस्वी आदि पुरूष है।

कामायनी का पर्यवसान निर्वेद में हुआ है। इस पर भी इसका मुख्य रस शांत होकर श ंगार ही है। इस प्रकार कामायनी की कथावस्तु की केंद्रीय भावना को ध्यान में रखते हुए यह कहना होगा कि इसमें विप्रलंभ श ंगार की प्रधानता है तथापि अन्य रस-वीर, करुण आदि बेल-बूटों की भाँति सुंदर रूप से यथायोग्य समाविष्ट होकर इसके काव्य पट को मनोहर तथा अभिराम बनाने में सहायक हुए हैं।

कामायनी भारतीय काव्य शास्त्रीय परंपरा से हटकर लिखा गया महाकाव्य है। इसमें पाश्चात्य महाकाव्यों की विशेषताओं का समन्वय है। इस द ष्टि से इसमें पूर्ण रूपेण रस का परिपाक द ष्टिगोचर नहीं होता है। यदि रस ढूँढ़ना ही है तो कामायनी का अंगीरस 'महा आनंद' है, श ंगार, वीर, शांत एवं करूण आदि उसके अंग हैं। क्योंकि रस वास्तविक अर्थात् आनंद ही होता है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कहना है- "वीर रस संभूत जो गरिमा रामायण में है, कामायनी में नहीं।"

डॉ. प्रेम शंकर ने लिखा है, "आनंद और सुख का प्रतिपादन करते हुए भी काव्य छोटी सी सीमा में कार्य करता है। सुंदर उपमाएँ, सरस अभिव्यंजना के होते हुए विस्त त विवेचना में असमर्थ है। उसमें महाकाव्य का केवल उद्देश्य मात्र है, संपूर्ण स्वरूप नहीं।"

महाकाव्यों जैसा युद्ध का सजीव वर्णन मिलता है। उसका बहुत कुछ अभाव इसमें है किंतु नायक मनु के मन में चलने वाली आंतरिक युद्ध के वर्णन की द ष्टि से कामायनी अप्रतिम महाकाव्य है।

श ंगार का उदय प्रारंभ से मनु-श्रद्धा के मन में हो जाता है। उन दोनों के जीवन में यौवन के सहज मधुमय वसंत में काम के आगमन से श ंगार का पदार्पण हो जाता है। काम लुक-छिपकर रजनी के अंतिम क्षणों में संपूर्ण रहस्य को जब खोलकर रख देता है तब श्रद्धा हृदय में अनेकों भावों को लिए हुए लज्जापुलक, रोमांच, भ्रूविक्षेप एवं उल्लास के साथ श ंगारमयी बन जाती है-

"झुकचली सव्रीड वह सुकुमारता के भार
लद गई पाकर पुरूष का मर्ममय उपचार;
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कपोल,
खिला पुलक कदंब सा था भरा गद् गद बोल।"

इसमें श ंगार के सभी भाव, अनुभाव, संचारी एवं व्याभिचारियों का संयोग देखा जा सकता है।

गर्भिनी श्रद्धा में आर्कषण का अभाव मनु को व्याकुल बना देता है वह उससे नाता तोड़कर इड़ा के पास चले आते हैं। यहीं से विप्रलंभ श ंगार का श्रीगणेश होता है। यहीं श्रद्धा के व्यक्तित्व में वात्सल्य भी दिख पड़ता है। विप्रलंभ में श्रद्धा शंका, औत्सुक्य, स्म ति, चिन्ता से व्यथित दिखलाई देती है।

श ंगार-रस का उद्रेक सौंदर्य-दर्शन पर अवलंबित होता है। श्रद्धा के सौंदर्य से मनु में श ंगार का उद्रेक होना स्वाभाविक है।

"धिर रहे थे धुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास;
नील धन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।"

कामायनी के श ंगार में ऊहात्मक पद्धति नहीं और न उसमें विरह की रस दशाओं का यथावत वर्णन है। ऐसा न होते हुए भी 'कामायनी' का विरह वर्णन अपनी शैली का अनूठा चित्रण है। श ंगार के सभी हाव-भाव आदि उसमें अपने-अपने स्थान पर सतर्क खड़े द ष्टिगोचर होते हैं।

'कामायनी' की कथा प्रक ति की गोद से ही प्रारंभ होती है और उसकी की गोद में विलीन होती है। प्रथम सर्ग 'चिंता' में ही मनु को उत्तुंग शिला खंड पर बैठा देखकर किसका मन प्रक ति के मनोरम द श्यों को देखने के लिए उत्सुक नहीं हो उठता। समुद्र की उत्ताल तरंगें, उषासुंदरी, वर्षा, संध्या सुंदरी, गगन चुंबिनी शैल श्रेणियाँ, तुषार किरीट पहने पर्वत मालाएं, आदि का सुंदर वर्णन किया गया है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कामायनी हिंदी महाकाव्य का नवीनतम स्वरूप है। गीतात्मक शैली द्वारा महाकाव्य का निर्माण कवि का मौलिक प्रयास है। वर्णनात्मकता की द ष्टि से अपर्याप्त होकर भी 'कामायनी' कलात्मक सौंदर्य में बहुत आगे बढ़ जाती है। अरस्तू काव्य शास्त्र में महाकाव्य के जिस परिष्क त रूप की चर्चा करता है वह 'कामायनी' में प्राप्त है।

'कामायनी' का शब्द चयन अपनी संपूर्ण सुंदरता में प्रस्तुत हुआ है। सौंदर्याकन के समय प्रसाद की भाषा सजीव हो उठती है। प्रतीकात्मकता इसकी प्रमुख विशेषता है। प्रसाद ने एक सफल शब्द शिल्पी की भाँति 'कामायनी' में चित्रों की प्रस्तुति की है।

नाट्य संधियों का समावेश नहीं है। किन्तु कामायनी में नाटक की संवाद शैली का पर्याप्त समावेश हुआ है। महाकाव्य में सत्य

का आग्रह अधिक होता है, कामायनी में है। 'कामायनी' अपने कलात्मक सौष्ठव में इन स्वच्छंद प्रबंधों के निकट होकर भी व्यापार भूमि के कारण महाकाव्य की सीमा छू लेती है।

'कामायनी' आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। सुख, शांति और आनंद का प्रतिपादन ही इसका लक्ष्य है। कामायनी में आदि से अंत तक इसी का कार्यकलाप फैला द ष्टिगोचर होता है। कामायनी का उद्देश्य आनंद की प्राप्ति है। मनु और श्रद्धा की आनन्दोपलब्धि को कामायनी महाकाव्य का उद्देश्य स्वीकारना सर्वथा वैज्ञानिक एवं औचित्य पूर्ण है।

श्रद्धा मनु को वहाँ तक पहुँचा देती है-

"स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो इच्छा किया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धा युत मनु बस तन्मय थे।"

'कामायनी' में परंपरागत काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त महाकाव्य के अधिकांश लक्षण मिल जाते हैं। इसमें प्रसाद ने मानव के मानसिक भावों का अत्युत्तम चित्र उपस्थित किया है। डॉ. शिव कुमार मिश्र का कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है-

"अपनी मर्म ग्रहिणी प्रतिभा के द्वारा मानव प्रक ति का विश्लेषण कर प्रसाद जी ने इस सुन्दर महाकाव्य की रचना की है।"

कामायनी की काव्य गरिमा को लक्षित करते हुए डॉ. कन्हैया लाल सहल ने लिखा है-

"यह कहने की किसी को हिचकिचाहट नहीं है कि 'कामायनी' का कवि अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से बहुत कुछ ऊपर उठा है और उसने मानवता के एक ऐसे महाकाव्य की रचना की है जिसका दिव्य संदेश कभी पुराना नहीं पड़ेगा।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कामायनी सफल, सार्वभौमिक कालजयी मानवता का संदेश देने वाला अपूर्व महाकाव्य है।

अंत में डॉ. प्रेम शंकर के शब्दों में, कामायनी के महाकाव्यत्व का प्रतिपादन करते हुए कह सकते हैं-'कामायनी' का आनंद वाद मोक्ष अथवा विराग की भाँति नहीं है। वह कर्म, काम से प्राप्त जीवन के उपभोग का आनंद है। जीवन से भागकर मनु कहाँ सुखी रहता है। संपूर्ण जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति कामयानी पक्ष की प्रौढ़ता, स्वस्थ जीवन दर्शन, मानवीय भावनाओं का विश्लेषण 'कामायनी' को महाकाव्य का रूप देने के लिए पर्याप्त है। युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार महाकाव्य की रूपरेखा भी नवीन रूप धारण करती रही है। सभ्यता के विकास के साथ ही वर्णनात्मकता के स्थान पर कलात्मकता को प्राधान्य मिला। कालिदास के महाकाव्यों का काव्य सौंदर्य स्वर्णिम युग से अनुप्राणित है। आज की संघर्ष कालीन परिस्थिति में जीवन की समस्याओं का समावेश आवश्यक हो गया। 'कामायनी' प्रसाद के व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमें कलाकार अपनी समस्त साधना को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह उसके जीवन मंथन का परिणाम है। लक्षण ग्रंथों का अनुशरण न करती हुई भी कामायनी अपने जीवन-दर्शन, काव्य सौष्ठव, मानवीय व्यापार के आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है। 'कामायनी' महाकाव्य महाकवि की सर्वोत्तम क ति के रूप में हिंदी में आई और एक निधि बनकर रहेगी।"

डॉ. नन्द दुलारे वाजपेयी का महाकात्यत्व विषयक कथन द्रष्टव्य है-

"परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी 'कामायनी' को नए युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई हिचक नहीं होती।"

कामायनी : आधुनिक संदर्भ

आधुनिक युग की शुष्क बौद्धिकता के विपरीत प्रसाद ने तरल भावात्मकता का संदेश युगीन महाकाव्य कामायनी में दिया है तथा जीवन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय की आवश्यकता बतलाई है-

"ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।"

तीनों मिलकर एक न हो सके आधुनिक मानव जीवन का सबसे बड़ा विषाद है। इसका मात्र कारण श्रद्धा का अभाव है जो कि आधुनिक मनुष्य की पहली आवश्यकता है।

"शक्ति विपुल क्षमता वाले ये।"

तीनों ही अलग-अलग रहते हैं। इनमें समन्वय कराने वाली श्रद्धा है-

"महा ज्योति रेखा सी बनकर,
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें;
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।"

आधुनिक मनुष्य भी समन्वय का प्रयत्न करता है किंतु सफलता नहीं मिलती-

'सामंजस्य चले करने वे
किंतु विषमता फैलाते हैं;
मूल स्वत्व कुछ और बताते
इच्छाओं को झुठलाते हैं।"

कामायनी के आधुनिक संदर्भ को संकेतित करते आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने लिखा है-

"सारस्वत प्रदेश में बुद्धिवादी भौतिक विकास को जो आज की ही सामाजिक प्रगति का संकेतक है, प्रसाद जी ने पर्याप्त समारोह के साथ दिखाया है। प्रकृति और मनुष्य के बीच प्रकृति पर शासन करने की आज की बद्धमूल धारणा के औचित्य पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न लगाने में प्रसाद जी समर्थ हुए हैं।

वर्तमान जीवन की संपूर्ण प्रमुख एवं आधार भूत समस्याओं को प्रसाद ने 'कामायनी' महाकाव्य में सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान की है। नारी के आदर्श-संस्थापन द्वारा प्रसाद ने नवयुग की प्रतिनिधि प्रेरणा को सुंदर रूप में अभिव्यक्त किया है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने कामायनी में परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों के अभाव को स्वीकारते हुए भी इसे युग का प्रतिनिधि महाकाव्य बतलाते हुए लिखा है-

"परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नए युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई हिचक नहीं होती।"

आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्ति को इच्छा का केन्द्र मानता है। इच्छा के साथ ही भावना का उदय और अन्त हो जाता है। एक ओर मनु का चरित्र यदि आधुनिक मनोविज्ञान से प्रभावित है तो श्रद्धा आत्मा के अधिक समीप है।

कामायनी में चित्रित जीवन की समस्याएँ आधुनिक संदर्भ का द्योतन करती हैं। दार्शनिक क्षेत्र में कवि ने मानव मन को आध्यात्मिकता तक ले जाने का सफल प्रयास किया है किंतु भौतिक आवश्यकताओं की भी उपेक्षा नहीं की गई है। जीवन के यथार्थ को तिलांजलि नहीं दी गई है। मानवता के विकास के साथ-साथ उसकी समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। एकाकी मनु यज्ञ से ही निश्चिंत थे। परोपकार की भावना से प्रेरित हो यज्ञ शेष दूर रख आते थे। श्रद्धा के प्रवेश ने नारी-पुरुष के संयोग से होने वाली समस्याओं का स जन किया है। श्रद्धा के कुतूहल को द ष्टिगत रखते हुए मनु ने यज्ञ आरम्भ किया। इसके पश्चात् आने वाले शिशु हेतु कामायनी काले ऊन की पट्टियां और छोटा-सा कुटीर बना लेती है। तकली भी चलने लगती है। बढ़ती हुई आवश्यकताएँ उस समय असंख्य हो जाती हैं जब श्रद्धा-मनु द्वारा प्रतिपादित मानव सभ्यता नगर में पहुँच जाती है।

डॉ० प्रेम शंकर ने सारस्वत नगर की राज्य स्थापना को आधुनिकता के संदर्भ में देखते हुए लिखा है-

"सारस्वत प्रदेश आधुनिक राज्य कल्पना का चित्र है। बुद्धिवाद की प्रतिनिधि इड़ा को उसके निर्माण का श्रेय प्राप्त है। मनु केवल एक मंत्री के रूप में स्थान पाते हैं। नगर का वर्णन करते हुए कवि ने वैज्ञानिक उत्कर्ष को ही उसका श्रेय दिया है। वर्षा, धूप, शिशिर छाया सभी से मानव की रक्षा करने वाले मनु के नगर में द ढ़ प्राचीर एवं मंदिर श्रद्धा स्वप्न में देखती है। धातु गलाकर नए आभूषण बनते हैं। ज्ञान व्यवसाय की व द्धि हो रही है।"

कामायनी कालजयी एवं स्थानजयी महाकाव्य है। उसका विषय मानव एवं मानवता है। घटना स्थल हिमालय एवं सारस्वत प्रदेश है। इस कथानक को कवि ने कल्पना के द्वारा आधुनिकतम रूप से संदर्भित किया है। इतिहास एवं पुराण में बिखरी हुई कथावस्तु कल्पना से ही नवीन समस्याओं का भी ग्रहण कर लेती है। कामायनी जीवन के स्वाभाविक उत्थान पतन में बंदी मानव है जो सदा अपने लक्ष्य तक जाने के लिए व्यग्र है। कामायनी का आदि अंत मानवता से आबद्ध है। मानवता उसका रंगमंच है। मानव उसका पात्र है और मानवीय भावनाओं का ही उसमें निरूपण है। कामायनी के पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा प्रसाद ने आधुनिक मानव की स्वाभाविक मनोव त्तियों की अभिव्यक्ति की है। कामायनी के पात्र सार्वभौमिक हो गए हैं। यही नहीं मानवता के परिवर्तित रूपों में भी चिरंतन बने रहते हैं। सुख-दुख, आशा-निराशा के अतिरिक्त मन में उठने वाले सभी विचारों का आधुनिकता के संदर्भ में चित्रण किया गया है। आधुनिक मानवीय मनोभावों की मुखरता कामायनी में द ष्टिगोचर होती है। जीवन की भौतिक समस्याएँ भी आभासित हैं।

गाँधी युगीन कामायनी सत्य, अहिंसा और प्रेम को भी नहीं भुला सकी है। संघर्षशील मनु आधुनिक मानव का ही प्रतिनिधित्व करता है। सारस्वत प्रदेश की वैज्ञानिक प्रगति आधुनिकता का द्योतन करती है। प्रसाद ने अपने युग की चेतना को कामायनी में पूर्ण स्थान प्रदान किया है।

डॉ० प्रेम शंकर ने इलियड को उद्ध त करते हुए लिखा है-

"यदि इलियड में युनानी सभ्यता का सम्पूर्ण चित्र मिल जाता है, तो कामायनी भी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है उसके माध्यम से युग अत्यन्त कलात्मक रूप में अभिव्यंजित हो उठा है। समय के साथ चलने वाली यह कृति समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करती रहती है।"

आधुनिक संघर्षकालीन परिस्थिति में जीवन की समस्याओं का समावेश आवश्यक हो गया। कामायनी प्रसाद के जीवन मंथन का परिणाम है।

डॉ० गुलाब राय ने लिखा है-

"श्रद्धा को पुरोडास और सोमरस कराना अनावश्यक था। पशु बलि का विरोध प्रसाद जी के प्रकाम्य विषयों में से था, शायद इसलिए उसके वर्णन करने का मोह वे संवरण न कर सके हों। बलिरूई श्रद्धा के पालित पशु के प्रति मनु के ईर्षालु मन की प्रेरणा से हुआ हो या पूर्व संस्कारों की प्रबलता से, जो कुछ भी हो यह कुछ अप्रासंगिक सा लगता है।"

मनु हिंसक और आमिष भोगी बन गए हैं-
"मनु को अब म गया छोड़ नहीं,
रह गया और था अधिक काम;
लग गया रक्त था उस मुख में,
हिंसा मुख लाली से ललाम।"

यह आधुनिक हिंसक प्रव त्ति और आमिष भोगिता का द्योतक है। आधुनिक मनुष्य आमिषाहारी हो गया है।

'म ग डाल दिया, फिर धनु को भी
मनु बैठ गये शिथिलित शरीर;
बिखरे थे सब उपकरण वहीं
आयुध, प्रत्यंचा, श्रं ग, तीर!"

म गया में न अपने शरीर का ध्यान रहता है न घर का। श्रद्धा मनु का बाट जोहती रहती है मानो वह शिकार में भागते हुए मनु की पदचाप सुन रही हो। आधुनिक सभ्यता में पुरुष का यह शिकारी स्वभाव चाहे पशु का हो या मनुष्य का पतिव्रता नारी को विस्म त कर देता है-

"यह हिंसा इतनी है प्यारी
जो भुलवाती है देह गेह!
मैं यहाँ अकेली देख रही
पथ, सुनती-सी पद-ध्वनि नितांत;
कानन में जब तुम दौड़ रहे,
म ग के पीछे बन कर अशांत।"

स्त्रियां रक्षा का प्रतीक रही हैं। श्रद्धा के भावी वात्सल्य और मनु के दूसरे को न सहन करने वाले प्रेम में संघर्ष हो जाता है-

'यह जीवन का वरदान, मुझे
दे दो रानी अपना दुलार!
केवल मेरी ही चिन्ता का
तव चित्त वहन कर रहे भार।"

मनु का अहंकार इतना बढ़ गया है कि वह अपने सिवा श्रद्धा को कभी सुखी नहीं देख सकता है। पुत्र और पति की प्रतिद्वंद्विता का उल्लेख आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र में आता है। कामायनी में इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है-

"तुम फूल उठोगी लतिका सी
कम्पित कर सुख सौरभ तरंग;
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा
बन-बन बन कस्तूरी कुरगं।"

मनु का चरित्र नैतिक बंधनों से ही साधारण मनुष्य के रूप में दिखलाया गया है। मनु को पहले श्रद्धा-पालित पशु के प्रति ईर्ष्या हुई थी, अब अपने ही भावी पुत्र के प्रति ईर्ष्या होने लगी है, क्योंकि उनका संस्कार देव स ष्टि का है जो किसी प्रकार का अवरोध अपने प्रणय में नहीं स्वीकारता है। आधुनिक मानव की भी यही प्रव त्ति है जो पत्नी या प्रेमिका के लिए परिवार के निकटतम संबंधी का त्याग अथवा हनन करने में किंचित भी संकोच नहीं करता है।

शायद वे घर में बँधकर नहीं बैठना चाहते हैं उनकी इसी भ्रमर व त्ति की ओर संकेत करती हुई श्रद्धा मनु से कहती है-

"उनके घर में कोलाहल है
मेरा सूना है गुफा-द्वार;
तुमको क्या ऐसी कमी रही
जिसके हित जाते अन्य द्वार।"

मनु अपने को 'चिर मुक्त पुरुष' कहता है। जो अवरूद्ध होकर जीना नहीं जानता है।

कामायनी के आधुनिक संदर्भ को संकेतित करते हुए डॉ० गुलाब राय ने लिखा है-

"'कामायनी' हिंदी के एक प्रतिभाशाली कवि की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है और चिंता, आशा, प्रेम, ईर्ष्या, क्षमा, आनंद आदि सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक भावनाओं को समेटने के कारण प्रभात कालीन वायु की भाँति इसका रस नित्य नवीन रहेगा,"

'कामायनी' आधुनिक युग का महाकाव्य है इसमें प्रसाद जी ने अतीत को आधार मानकर वर्तमान आधुनिक समस्याओं को सुलझाने का पूर्ण प्रयास किया है। कामायनी के महाकाव्यत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ० कन्हैया लाल सहल ने लिखा है-

'कामायनी' के पूर्व 'प्रिय प्रवास' एवं 'साकेत' महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी किंतु दोनों काव्यों में नवीनता होते हुए भी नवीन युग का वास्तविक रूप से पूर्ण स्फुरण नहीं है। केवल 'कामायनी' ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसे नूतन युग एवं आधुनिकता का प्रतिनिधि माना जा सकता है।"

डॉ० कन्हैया लाल सहल का अन्य कथन रेखांकित है-

"यह कहने की किसी को हिचकिचाहट नहीं है कि 'कामायनी' का कवि अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से बहुत कुछ ऊपर उठा है और उसने मानवता के एक ऐसे महाकाव्य की रचना की है जिसका दिव्य संदेश कभी पुराना नहीं पड़ेगा।"

डॉ० नंद दुलारे वाजपेयी ने कामायनी के आधुनिक संदर्भ को द ष्टिगत रखते हुए लिखा है-

"'कामायनी' काव्य आधुनिक युग की कृति है। इसके निर्माता प्रसाद जी यद्यपि भारतीय अतीत और उसकी प्राचीन संस्कृति के प्रेमी थे, परन्तु कामायनी में उन्होंने नवीन वैज्ञानिक तथ्य का भी यथेष्ट उपयोग किया है। उनकी यह विशेषता उनके काव्य को आधुनिकता प्रदान करती है। ××××× कवि विज्ञान सम्मत चित्रण द्वारा जीवन के स्वरूप और उसकी प्रेरणा की परीक्षा करना और उसके तथ्यों पर प्रकाश डालना चाहता है। आज का मनुष्य और आज की नारी इतिहास की उपज हैं। उसमें कृत्रिम प्रव त्तियों और संस्कारों का मेल हो गया है; इसलिए समस्त ऐतिहासिक और कालगत आवरण के परे जाकर मूल मानव प्रव त्तियों के उद्घाटन में प्रसाद जी संलग्न हुए हैं। नवीन विज्ञान का कहना है कि मनुष्य की वास्तविक प्रकृति का परिचय; परिज्ञान तथा उक्त प्रकृति के आधार पर उसके जीवन-विधान का निरूपण मानव प्रगति के लिए आवश्यक है। प्रसाद जी 'कामायनी' काव्य में इस तथ्य को मानकर मूल मानव प्रकृति के उद्घाटन में प्रव त्त हुए हैं।"

प्रसाद ने स्वयं कामायनी के आमुख में इसकी कथा को नवयुग अर्थात् आधुनिकता के संदर्भ में कही गई कथा कहा है-

"मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की जनश्रुति में द ढ़ता से मानी गई है।"

डॉ० नामवर सिंह ने कामायनी को युगीन समस्याओं का स्पंदन स्वीकारते हुए लिखा है-

"कामायनी के प्रतीक एक हद तक छायावादी आवरण से ढके हुए हैं, लेकिन दूसरी ओर उनमें अपने युग की जीवंत समस्याओं का स्पन्दन भी है। प्रसाद ने अपने युग की वास्तविकता को इतने व्यापक सामाजिक परिवेश में तथा भावना के गहरे स्तरों के साथ चित्रित किया है कि इन प्रतीकों में युग-युग को रसमग्न और प्रेरित करने की क्षमता आ गई है।"

'कामायनी' के आधुनिक संदर्भ को प्रतिपादित करते हुए प्रसाद ने 'कामायनी' के आमुख में लिखा है-

"आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं। तब भी उसके तिथिक्रम मात्र से संतुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उसके मूल में क्या रहस्य है? आत्मा की अनुभूति! हाँ, उसी भाव के रूप ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाएँ स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती है किंतु सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरंतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की और पुरुषार्थ की अभिव्यक्ति होती रहती है।"

प्रसाद ने आमुख में आगे भी आधुनिकता के संदर्भ को रेखांकित करते हुए लिखा है-

"अनुमान किया जा सकता है कि बुद्धि का विकास, राज्य स्थापना इत्यादि इड़ा के प्रभाव से ही मनु ने किया। फिर तो इड़ा पर भी अधिकार करने की चेष्टा के कारण मनु को देवगण का कोपभाजन होना पड़ा। तद्वै देवानां आग आस' (७-४-शतपथ)। इस अपराध के कारण उन्हें दण्ड भोगना पड़ा-"तंरूद्रो भ्यावत्य वित्याध" (७-४-शतपथ)।

आधुनिक काल में बलात्कारियों को कठोर से कठोर दंड दिया जा रहा है। कुछ लोग म त्यु दंड देने के पक्षधारी हो गये हैं क्योंकि बलात्कार के पश्चात् नारी का जीवन एवं उसकी सामाजिकता समाप्त हो जाती है। कामायनी में बलात्कारी मनु दंडित हुए हैं।

बंदर को जिस प्रकार पानी देखकर प्यास लगती है उसी प्रकार मंदिरा या मद्यपान करने वाले को देखकर मद्यपान की इच्छा जाग त होना मनुष्य की स्वाभाविक प्रव त्ति है किंतु श्रद्धा की स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है, मनु की वही प्रव त्ति है-

"सोम पात्र भी भरा, धरा था
पुरोडास भी आगे,
श्रद्धा वहीं न थी मनु के तब
सुप्त भाव सब जागे।

अकेलापन एवं श्रद्धा की अनुपस्थिति में मनु को सोमपात्र अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है-

"पुरोडास के साथ सोम का
पान लगे मनु करने,
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने।

पाश्चात्य सभ्यता एवं आधुनिकता ने मनुष्य को इतना आच्छादित कर लिया कि पुरुष मद्यपान को जलपान का रूप दे चुका है किंतु आधुनिकता ने सीमा पार कर दी है। पुरुष अकेले मद्यपान से संतुष्ट नहीं होता है क्योंकि उसे हम प्याला चाहिए, जिसके लिए वह अपने मित्रों, पत्नी या प्रेमिकाओं को बाध्य करता है। कामायनी का मनु भी ऐसा पुरुष है जो श्रद्धा जैसी सात्विक नारी को भी पीने के लिए बाध्य करता है-

"देवों को अर्पित मधुमिश्रित
सोम अधर से छू लो;
मादकता ढोला पर प्रेयसि!
आओ मिलकर झूलें।"
तथा-उधर सोम का पात्र लिये मनु
समय देखकर बोले;
"श्रद्धे! पी लो इसे बुद्धि के
बुद्धि को जो खोले।"

नारी का मद्यपान भयानक आधुनिकता है। कामी पुरुष युवती को मद्यपान कराकर उसका सतीत्व हरण करता है।

मनुष्य के परस्पर संघर्ष का कारण आधुनिक द्वयता है जिसके परिणामस्वरूप एक दूसरे के निकट जाकर एक से अनेक होते हैं किंतु बचता वही है जो शक्तिशाली होता है। मनुष्य के अतिरिक्त आज यही स्थिति विश्व राष्ट्रों की है पहले तो मैत्री होती है अनेक संगठन बनते हैं बाद में अपना अस्तित्व बनाने के लिए अन्यों का विनाश किया जाता है। पहले यह कार्य चीन ही करता था आज यूरोपीय एवं अमेरिकी राष्ट्र इस द ष्टि से सर्वोपरि बन गए हैं। कामायनी में इसी विचारधारा का चित्रण किया गया है-

"यह मनुष्य आकार चेतना का है विकसित,
एक विश्व अपने आवरणों में है निर्मित।
चिति केन्द्रों में जो संघर्ष चला करता है,
द्वयता का जो भाव सदा मन में भरता है।-
वे विस्म त पहचान रहे से एक एक को,
होते सतत समीप मिलाते हैं अनेक को।
स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जाते,
संस्कृति का कल्याण करें शुभ मार्ग बतावें।।"

यह विचारधारा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' को पूर्ण रूपेण चरितार्थ कर रही है। यही मत्स्य न्याय है। बड़ी मछली छोटी मछली को अपना भोज्य पदार्थ बना रही है। पूंजीपति श्रमहारा का शोषण कर रहा है। प्रतिस्पर्धा में 'Survival of the fittest' या 'योग्यतमावशेष' का सिद्धांत सर्वत्र चल रहा है। परिवार से लेकर विश्व तक की यही स्थिति है।

व्यक्ति चेतना की परतंत्रता का यही कारण है। एक ओर राग है तो दूसरी ओर द्वेष एवं ईर्ष्या के कीचड़ में सनी हुई है। निश्चित

मार्ग पर चलते हुए कदम-कदम पर ठोकरें खानी पड़ रही हैं फिर भी शांति से अपने लक्ष्य की ओर मनुष्य भागा जा रहा है। इसी को जीवन उपयोग या बुद्धि की साधना कहा गया है। अपने श्रेय हेतु सुख की आराधना होती है। लोक कल्याण की भावना छाया बन गई है जिसे प्राण की तरह राष्ट्र की काया का निवासी बनना पड़ता है। विश्व की समस्त मानव जाति को चार- ब्राह्मन, क्षत्री, शूद्र, वैश्य-वर्णों में विभाजित कर दिया गया है। वर्तमान आरक्षण नीति की दुर्व्यवस्था की उत्तरदायी वर्ण व्यवस्था ही है जिसका गत वर्षो में कितना घातक परिणाम हुआ है भविष्य में क्या होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता है। 'कामायनी' की वर्ण व्यवस्था को संघर्ष का कारण तथा शक्ति का खेल नाम दिया गया है-

"चार वर्ण बन गये बँटा श्रम उनका अपना,
शस्त्र यंत्र बन चले, न देखा जिनका सपना।
आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर,
प्रकृति-संग संघर्ष निरंतर अब कैसा डर।"

मनुष्य-प्रकृति का निरंतर संघर्ष मानव स ष्टि का विनाश करने वाला है। अपेक्षा मनुष्य एवं प्रकृति के समन्वय की है।

"देखो पाप पुकार उठा अपने ही मुख से।
तुमने योग-क्षेम से अधिक संचय वाला,
लोभ सिखाकर इस विचार संकट में डाला।
हम संवेदनशील हो चले यही मिला सुख,
कष्ट समझने लगे बनाकर निज कृत्रिम दुख।
प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सब की छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।"

कवि का 'स्व' ही उदात्तीकरण के द्वारा 'पर' में परिवर्तित हो जाता है। 'स्वांतः सुखाय' लोक हिताय' या 'पर हिताय' हो जाता है। लोकहिताय भावना आधुनिकता का संकेत करती है। परहिताय को अभिव्यक्ति देते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा!
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा!
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ;
अपने सुख को विस्त त कर लो
सब को सुखी बनाओ।"

यहां प्रसाद की उक्त 'स्व' ही जब 'पर' की ओर अभिमुख होता है, तभी राष्ट्रीयता का उदय होता है। किसी भी राष्ट्र के लिए राष्ट्रीयता की महती अपेक्षा है। प्रसाद की राष्ट्रीयता अभिधेय न होकर लक्ष्य और व्यंग्य अधिक हो गई है। मधुरता हेतु उग्रता की अपेक्षा होती है 'कामायनी' मानव की अन्तश्चेतना में सुषुप्त राष्ट्रीय भावना को परिदीप्ति करती है। प्रसाद ने जिस राष्ट्रीयता की ओर उत्कंठ होने को इंगित किया है, उसमें मदिरा वाली क्षणस्थायी उत्तेजना नहीं अपितु रसायन की चिरस्थायी उद्दीप्ति का प्रकाश है, विष का उफान नहीं अपितु अम त की बलवद्र्धिनी शांति है, पुरुष भावना नहीं अपितु पौरूष का जागरण है। गांधीवादी विचारधारा एवं कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए कामायनी में, खद्दर, तकली चलाना, सूत कातना आदि को महत्व देकर स्वदेशी भावना की अभिव्यक्ति हुई है-

"चलती है तकली भरी गीत;"
"हाथों में तकली रही घूम;"
"आशा के कोमल तंतु-सद श
तुम तकली में हो रही झूल।"

"तुम दूर चले जाते हो जब
तब लेकर तकली यहाँ बैठ;
मैं उसे फिराती रहती हूँ
अपनी निर्जनता बीच पैठ।
मैं बैठी गाती हूँ तकली के
प्रतिवर्त्तन में स्वर विभोर-
चल री तकली धीरे-धीरे
प्रिय गये खेलने को अहेर।"

इससे गरीबों का उद्धार होता है। उन्हें घर बैठे कार्य मिल जाता है कितने वस्त्र विहीन लोगों के तन ढक जाते हैं-

"जीवन का कोमल तंतु बढ़े
तेरी ही मंजुलता समान।
चिर नग्न प्राण उनमें लिपटें
सुन्दरता का कुछ बढ़े मान।"

स्वदेशी भावना का उदय होता है। अपने देश के प्रति प्रेम भावना उत्पन्न होती है।

"कितनी मीठी अभिलाषाएँ
उसमें चुपके से रहीं घूम!
कितने मंगल के मधुर गान
उसके कोनों को रहे चूम।"

ग ह लक्ष्मी नवीन ग ह का विधान अपनी भावी संतान हेतु करती है-

"यह ग ह लक्ष्मी का ग ह-विधान!"

मात त्व बोझ से झुकी हुई नारी भावी संतान को शीत से बचाने के लिए उपकरण तैयार करती है-

"कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रूचिर साज।"

गर्भवती नारी सार्वभौमिक एवं सार्वदेशिक संदर्भ की महती अपेक्षा है जिसने अनादि काल से स ष्टि का निर्माण किया है, कर रही है और करती जायेगी। वह प्रसाद की आँखों से ओझल नहीं हो पाई। चाहे प्रसाद ने मनु से उसका (श्रद्धा का) परित्याग करवाया हो-

"भावना मयी वह स्फूर्ति नहीं
नव नव स्मित रेखा में विलीन
अनरोध न तो उल्लास, नहीं
कुसुमोद्गम-सा कुछ भी नवीन!
आती है वाणी में न कभी
वह चाव भरी लीला हिलोर,
जिसमें नूतनता न त्यमयी
इठलाती हो चंचल मरोर।"

भावी संतान की परिकल्पना सर्वदा मानव संदर्भ का विषय रही है, है और रहेगी। कामायनी में प्रसाद ने इसका सुंदर चित्र खींचा है-

"सूना न रहेगा यह मेरा
लघु विश्व कभी जब रहोगे न;
मैं उसके लिए बिछाऊँगी

फूलों के रस का म दुल फेन।
झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलरा कर लूँगी बदन चूम
मेरी छाती से लिपटा इस
घाटी में लेगा सहज घूम।"

श्रद्धा ने उसके जन्म से पूर्व पुआलों की छाजन से सुंदर कुंज का निर्माण कर लिया है जो वातायन, प्राचीर, पेड़-पौधे, झूला, सुरभि चूर्ण बिछी फर्श आदि से सुसज्जित है। आधुनिक काल में राजनीति, समाज, व्यक्ति से धर्म का बहिष्कार होता जा रहा है। मनुष्य की धार्मिक भावना का लोप होता जा रहा है। कामायनी के आनंद सर्ग में धर्म के प्रतिनिधि व षभ का उत्सर्ग किया गया है। आनंद प्राप्ति में आधुनिकता ने धर्म को बाधक समझ लिया है जबकि धर्म किसी भी क्षेत्र में बाधक नहीं अपितु साधक है। श्रद्धा मानव के प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती है-

"इस व षभ धर्म प्रतिनिधि को
उत्सर्ग करेंगे जाकर;
चिर मुक्त रहे यह निर्भय
स्वच्छंद सदा सुख पाकर।"

मनुष्य का जीवन जन्म से लेकर म त्यु पर्यन्त उत्सवों से आपूरित रहता है। ये उत्सव सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कारिक, ऋतुओं तथा फसलों से संबंधित होते हैं। कामायनी में इड़ा के नेत त्व में सारस्वत प्रदेश की प्रजा धर्म प्रतिनिधि व षभ के साथ कैलाश पर्वत की यात्रा पर श्रद्धा मनु के बाद यात्री दल का रूप धारण कर जा रही जिसमें बच्चे, बूढ़े, जवान सभी हैं मार्ग में उनके उत्सव स्वरूप का चित्रण करते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"उल्लास रहा युवकों का
शिशुगण का था म दु कलकल;
महिला मंगल गानों से
मुखरित था यह यात्री दल।"

परिवार ने समाज को जन्म दिया। समाज ने ग्राम, नगर, प्रांत तथा राष्ट्र का निर्माण किया। आज संपूर्ण विश्व एक परिवार हो गया। मनुष्य के रहते हुए परिवार का रूप बदलता रहेगा किंतु उसकी महत्ता समाप्त नहीं होगी।

कामायनी में परिवार का विस्त त विवेचन किया गया है।

श्रद्धा के लघु परिवार के विषय में प्रसाद ने लिखा है-

"आत्मीयता घुली उस घर में
छोटा-सा परिवार बना;
छाया एक मधुर स्वर उस पर
श्रद्धा का संगीत बना।"

आत्मीयता परिवार की प्रमुख विशेषता है। इड़ा के साथ आये यात्री दल का कहना है कि हम एक कुटुंब बनाकर यात्रा करने आये हैं। हमने सुना है कि इस तपोवन में समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है जहां श्रद्धा-मनु तपस्यालीन हैं। मनु ने उस कुटुंब को देखा और मुस्कराकर बोले-

"बोले देखो कि यहां पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुंबी
हम केवल एक हमीं हैं;
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।"

परिवार के मुखिया (मनु) अंगी हैं तथा उसके अन्य सदस्य अंग हैं जिनमें किसी प्रकार का दोष या अभाव नहीं है। संपूर्ण विश्व उदार चरित्र वालों के लिए एक परिवार है। इसी ओर संकेत करते हुए कहा गया है-

अयं निजः परावेति गणना लघु चेतसाम्
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

अर्थात् यह मेरा है यह पराया है ऐसा चिंतन छोटी बुद्धि वालों का होता है। उदार चरित्र वालों के लिए समस्त विश्व एक परिवार के समान है। 'कामायनी' में विश्व बंधुत्व या विश्व परिवार का रूप वर्णित है-

"सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को द श्य बनाता;
मानव कह रे! यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता।"

भेदभाव भुलवाकर विश्व को नीड़ या परिवार बनाया जा सकता है जिसके लिए विश्व के सभी राष्ट्र आज प्रयत्नशील हैं।

विश्वबंधुत्व की भावना से विश्व कल्याण संभव है। आतंकवाद की समाप्ति करके ही विश्व कल्याण संभव है। आतंकवाद आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन गया है। आणविक, रासायनिक अस्त्र-शस्त्रों के अलावा आत्मघाती बम किसी को भी जीवित नहीं छोड़ता है। हम भी नहीं बचेगे। विश्व शमशान बन जाएगा। आतंकवाद को रोकने की ताकत सर्व शक्तिशाली राष्ट्र में भी नहीं होगी-

श्रद्धा मनु को संबोधित करके कहती है-

"मनु! क्या यही तुम्हारी होगी
उज्जवल नव मानवता!
जिसमें सब कुछ ले लेना हो
हत! बची क्या शवता।"

आतंकवाद का एक मात्र कारण स्वार्थ है जो अन्यों को भयभीत करके अथवा उनका विनाश कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करना आधुनिकता की प्रव त्ति बन गई है। कामायनी में इसका चित्रण किया गया है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।"
× × × × ×
सुख को सीमित कर अपने में
केवल दुख छोड़ोगे;
इतर प्राणियों की पीड़ा लख,
अपना मुँह मोड़ोगे।"

आधुनिक काल में सुख साधन के रूप में धन एवं वस्तुओं के संग्रह की प्रव त्ति जोर पकड़ रही है जो मंहगाई और अभाव को जन्म दे रही है। कामायनी में संग्रह की विकृतियों का चित्रण किया गया है-

"सुख अपने संतोष के लिए
संग्रह मूल नहीं है
उसमें एक प्रदर्शन जिसको
देखें अन्य वही है।"

संग्रह निर्ममता को जन्म देती है। संग्रही मनुष्य में ममता नहीं होती है। आधुनिक काल में ममता ने निर्ममता का रूप धारण कर लिया है-

"यह विराग संबंध ह्दय का
कैसी यह मानवता;
प्राणी को प्राणी के प्रति बस
बची रही निर्ममता।"

निर्ममता दुर्व्यवहार को जन्म देती है। किसी का दुर्व्यवहार कोई सहन नहीं कर सकता है-

जीवन का संतोष अन्य का
रोदन बन हंसता क्यों?
एक-एक विश्राम प्रगति को,
परिकर-सा कसता क्यों?
"दुर्व्यवहार एक का कैसे
अन्य भूल जावेगा;
कौन उपाय! गरल को कैसे
अम त बना पायेगा।"

इन सबका निराकरण करके ही विश्व कल्याण की भावना को क्रियान्वित किया जा सकता है। कृष्ण की मुरली ध्वनि सबमें राग की भावना भर सकती है। इसी प्रकार की भावना प्रसाद ने कामायनी के आनंद सर्ग में अभिव्यंजित की है-

"जिस मुरली के निस्वन से
यह शून्य रागमय होता;
वह कामायनी विहँसती
अम जग था मुखरित होटा।
क्षण भर में सब परिवर्तित
अणु अणु थे विश्व कमल के;
पिंगल पराग से मचले
आनंद-सुधा-रस छलके।"

आनंद सुधा रस विश्व कल्याण का रूप दे सकने में समर्थ है।

प्रिय से मिलने के लिए परिवार जनों एवं सुरक्षा प्रहरियों को छलकर प्रियतमाएँ आजकल प्रिय के पास खूब पहुंच रही हैं। बाग-बगीचों एवं सार्वजनिक उद्यानों को मिलन स्थल बना लिया है जहाँ गल बहियां डाले पूर्व रति की सारी क्रियाएं होती है। प्रसाद ने कामायनी में ऐसे स्थल भी चित्रित किए हैं जहां श्रद्धा मनु से मिलने जाती है। यह सब स्वप्न में दिखलाया गया है -

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक में मलय बालिका सी चलती,
सिंह द्वार के भीतर पहुंची, खड़े प्रहरियों को छलती;
ऊँचे स्तम्भों पर बलभीयुत बने रम्य प्रासाद वहाँ,
धूप-धूम सुरभित ग ह, जिनमें थी आलोक शिखा जलती;
स्वर्ण-कलश शोभित भवनों से लगे हुए उद्यान बने।
व्रहनु प्रशस्त पथ बीच-बीच में, कहीं लता के कुंज घने;
जिनमें दम्पति समुद विहरते, प्यार भरे दे गलबहाहों,
गूँज रहे थे मधुप रसीले, मदिरा मोद पराग सने।"

अनेक आलोचकों का कहना कि कामायनी में बाह्य युद्ध का अभाव है आंतरिक संघर्ष है। ऐसा नहीं है। मनु के विरूद्ध सारस्वत प्रदेश की जनता प्रकृति और उसके पुटलों का भीषण युद्ध 'संघर्ष' सर्ग में लगभग एक प ष्ठ में वर्णित है विरोधियों का नेत त्व आकुलि एवं किलात कर रहे थे। ऐसे युद्धों की आज भी कमी नहीं। मनु का भीषण अस्त्र संभालना, आग की ज्वाला, नुकीले

तीक्ष्ण नाराच का छूटना, धूमकेतु का टूटना, युद्ध की आंधी, रण वर्षा, शस्त्रों सा, वारण-खड्ग, तांडव न त्य में परमाणु की विफलता, मनु का अलात चक्र उठाना, तुमुल रणनाद, मरण पर्व, उचास वात का चलना आदि का उल्लेख आधुनिक भयंकर भीषण युद्ध का द श्य प्रस्तुत करते हैं।

तभी मनु कहते हैं-

"और शत्रु सब, थे कृतघ्न फिर
इनका क्या विश्वास करूँ,
प्रतिहिंसा प्रतिशोध दबाकर
मन ही मन चुपचाप मरूं।"

किसी को भी शत्रु मान लेना आज की आधुनिकता है

"रोके फिर उनको भला कौन?
सबको ही वे कहते- 'शत्रु हो न'
अग्रसर हो रही यहां फूट,
सीमाएं कृत्रिम रहीं टूट;"

साकार भय की उपासना आधुनिक प्रव त्ति बन गई है जिससे सतत संघर्ष चल रहा है, सुयश की लालसा बढ़ रही है प्राण तत्व की उपासना हो रही है। भारत में मानवता की पूजा होती है। पाश्चात्य सभ्यता मानव उपासक बन गई है। शासना देश का पालन नहीं हो रहा है। ये सभी कामायनी के आधुनिक संदर्भ हैं।

शासक-शासित संघर्ष, मस्तिष्क हृदय में विरोध, स्वशक्ति में द ढ़ता, आंतरिक सौंदर्य के स्थान पर बाह्य सौंदर्य पर बल, त ष्णा व द्धि, मनुष्य की मरूत गति की कांक्षा, विरह, वात्सल्य, आभूषण-वस्त्र, कृषि, आखेट, पशुपालन आदि का आधुनिक संदर्भ कामायनी में प्रस्तुत है।

भविष्य वाणी श्रद्धा करती है-

"सूनो न रहेगा यह मेरा
लघु विश्व कभी जब रहोगे न;
मैं उसके लिए बिछाऊँगी
फूलों के रस का म दुल फेन।"

'आवेगा', 'बोलेगा', 'छिड़ेगा' आदि क्रियाएँ पुत्रोत्पत्ति की भविष्यवाणी करती हैं।

समीप-दूर, क्रोध-नाता आधुनिक ही नहीं अपितु सर्वथा के संदर्भ हैं।

"जिसके हृदय सदा समीप हैं
वही दूर जाता है;
और क्रोध होता उस पर ही
जिससे कुछ नाता है।"

विवाह हेतु आधुनिकाएं स्वयं प्रस्ताव करती हैं। श्रद्धा ने भी ऐसा किया है-

"तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊं मैं बिना विलम्ब!"

विवाह के समय आज भी भुने हुए धान का लावा या खील (लाजा) बिखेरा जाता है तथा उससे मांगलिक 'लाजा हवन' होता है -

"विभव मतवाली प्रकृति का आवरण वह नील,
शिथिल है, जिस पर बिखरता प्रचुर मंगल खील;"

आधुनिक काल में प्रतिवर्ष 'विश्व सुन्दरी' का चयन होता है। उसका किंशुक सा झीना वस्त्र, सौंदर्य प्रसाधन से अनुलेपित अंग, नग्न अंग प्रदर्शन आदि का चित्र कामायनी में देखा जा सकता है-

"सिकुड़न कौशेय वसन की
थी विश्व सुन्दरी तन पर;
या मादन म दुतम कंपन
छायी संपूर्ण स जन पर।"

विश्व सुन्दरी की मादकता, श्रंगारिकता, शरीर का नग्न प्रदर्शन विरोध का कारण बनता जा रहा है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि कामायनी की कथा, पात्र, घटनाएँ, घटना स्थल, वर्णित सभ्यता-संस्कृति, अर्थात् संपूर्ण कामायनी आधुनिकता का संदर्भ प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल है जो प्रसाद को भविष्य द्रष्टा बनाती है।

आधुनिकता में कामायनी की समरसता की आवश्यकता पग-पग पर पड़ती है। यहाँ संघर्ष दो विभिन्न विचारों में है- एक ओर लोकतंत्र है तो दूसरी ओर एक तंत्र है। एक ओर पूँजी है तो दूसरी ओर श्रम है। एक और वैभव के प्रासाद हैं तो दूसरी ओर दीन-हीन प्रजा का कंकाल है।

कामायनी : आधुनिक संदर्भ

आधुनिक युग की शुष्क बौद्धिकता के विपरीत प्रसाद ने तरल भावात्मकता का संदेश युगीन महाकाव्य कामायनी में दिया है तथा जीवन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय की आवश्यकता बतलाई है-

"ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।"

तीनों मिलकर एक न हो सके आधुनिक मानव जीवन का सबसे बड़ा विषाद है। इसका मात्र कारण श्रद्धा का अभाव है जो कि आधुनिक मनुष्य की पहली आवश्यकता है।

"शक्ति विपुल क्षमता वाले ये।"

तीनों ही अलग-अलग रहते हैं। इनमें समन्वय कराने वाली श्रद्धा है-

"महा ज्योति रेखा सी बनकर,
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें;
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।"

आधुनिक मनुष्य भी समन्वय का प्रयत्न करता है किंतु सफलता नहीं मिलती-

'सामंजस्य चले करने वे
किंतु विषमता फैलाते हैं;
मूल स्वत्व कुछ और बताते
इच्छाओं को झुठलाते हैं।"

कामायनी के आधुनिक संदर्भ को संकेतित करते आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने लिखा है-

"सारस्वत प्रदेश में बुद्धिवादी भौतिक विकास को जो आज की ही सामाजिक प्रगति का संकेतक है, प्रसाद जी ने पर्याप्त समारोह के साथ दिखाया है। प्रकृति और मनुष्य के बीच प्रकृति पर शासन करने की आज की बद्धमूल धारणा के औचित्य पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न लगाने में प्रसाद जी समर्थ हुए हैं।

वर्तमान जीवन की संपूर्ण प्रमुख एवं आधार भूत समस्याओं को प्रसाद ने 'कामायनी' महाकाव्य में सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान की है। नारी के आदर्श-संस्थापन द्वारा प्रसाद ने नवयुग की प्रतिनिधि प्रेरणा को सुंदर रूप में अभिव्यक्त किया है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने कामायनी में परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों के अभाव को स्वीकारते हुए भी इसे युग का प्रतिनिधि महाकाव्य बतलाते हुए लिखा है-

"परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नए युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई हिचक नहीं होती।"

आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्ति को इच्छा का केन्द्र मानता है। इच्छा के साथ ही भावना का उदय और अन्त हो जाता है। एक ओर मनु का चरित्र यदि आधुनिक मनोविज्ञान से प्रभावित है तो श्रद्धा आत्मा के अधिक समीप है।

कामायनी में चित्रित जीवन की समस्याएँ आधुनिक संदर्भ का द्योतन करती हैं। दार्शनिक क्षेत्र में कवि ने मानव मन को आध्यात्मिकता तक ले जाने का सफल प्रयास किया है किंतु भौतिक आवश्यकताओं की भी उपेक्षा नहीं की गई है। जीवन के यथार्थ को तिलांजलि नहीं दी गई है। मानवता के विकास के साथ-साथ उसकी समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। एकाकी मनु यज्ञ से ही निश्चिंत थे। परोपकार की भावना से प्रेरित हो यज्ञ शेष दूर रख आते थे। श्रद्धा के प्रवेश ने नारी-पुरुष के संयोग से होने वाली समस्याओं का स जन किया है। श्रद्धा के कुतूहल को द ष्टिगत रखते हुए मनु ने यज्ञ आरम्भ किया। इसके पश्चात् आने वाले शिशु हेतु कामायनी काले ऊन की पट्टियां और छोटा-सा कुटीर बना लेती है। तकली भी चलने लगती है। बढ़ती हुई आवश्यकताएँ उस समय असंख्य हो जाती हैं जब श्रद्धा-मनु द्वारा प्रतिपादित मानव सभ्यता नगर में पहुँच जाती है।

डॉ० प्रेम शंकर ने सारस्वत नगर की राज्य स्थापना को आधुनिकता के संदर्भ में देखते हुए लिखा है-

"सारस्वत प्रदेश आधुनिक राज्य कल्पना का चित्र है। बुद्धिवाद की प्रतिनिधि इड़ा को उसके निर्माण का श्रेय प्राप्त है। मनु केवल एक मंत्री के रूप में स्थान पाते हैं। नगर का वर्णन करते हुए कवि ने वैज्ञानिक उत्कर्ष को ही उसका श्रेय दिया है। वर्षा, धूप, शिशिर छाया सभी से मानव की रक्षा करने वाले मनु के नगर में द ढ़ प्राचीर एवं मंदिर श्रद्धा स्वप्न में देखती है। धातु गलाकर नए आभूषण बनते हैं। ज्ञान व्यवसाय की व द्धि हो रही है।"

कामायनी कालजयी एवं स्थानजयी महाकाव्य है। उसका विषय मानव एवं मानवता है। घटना स्थल हिमालय एवं सारस्वत प्रदेश है। इस कथानक को कवि ने कल्पना के द्वारा आधुनिकतम रूप से संदर्भित किया है। इतिहास एवं पुराण में बिखरी हुई कथावस्तु कल्पना से ही नवीन समस्याओं का भी ग्रहण कर लेती है। कामायनी जीवन के स्वाभाविक उत्थान पतन में बंदी मानव है जो सदा अपने लक्ष्य तक जाने के लिए व्यग्र है। कामायनी का आदि अंत मानवता से आबद्ध है। मानवता उसका रंगमंच है। मानव उसका पात्र है और मानवीय भावनाओं का ही उसमें निरूपण है। कामायनी के पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा प्रसाद ने आधुनिक मानव की स्वाभाविक मनोव त्तियों की अभिव्यक्ति की है। कामायनी के पात्र सार्वभौमिक हो गए हैं। यही नहीं मानवता के परिवर्तित रूपों में भी चिरंतन बने रहते हैं। सुख-दुख, आशा-निराशा के अतिरिक्त मन में उठने वाले सभी विचारों का आधुनिकता के संदर्भ में चित्रण किया गया है। आधुनिक मानवीय मनोभावों की मुखरता कामायनी में द ष्टिगोचर होती है। जीवन की भौतिक समस्याएँ भी आभासित हैं।

गाँधी युगीन कामायनी सत्य, अहिंसा और प्रेम को भी नहीं भुला सकी है। संघर्षशील मनु आधुनिक मानव का ही प्रतिनिधित्व करता है। सारस्वत प्रदेश की वैज्ञानिक प्रगति आधुनिकता का द्योतन करती है। प्रसाद ने अपने युग की चेतना को कामायनी में पूर्ण स्थान प्रदान किया है।

डॉ० प्रेम शंकर ने इलियड को उद्ध त करते हुए लिखा है-

"यदि इलियड में युनानी सभ्यता का सम्पूर्ण चित्र मिल जाता है, तो कामायनी भी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है उसके माध्यम से युग अत्यन्त कलात्मक रूप में अभिव्यंजित हो उठा है। समय के साथ चलने वाली यह कृति समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करती रहती है।"

आधुनिक संघर्षकालीन परिस्थिति में जीवन की समस्याओं का समावेश आवश्यक हो गया। कामायनी प्रसाद के जीवन मंथन का परिणाम है।

डॉ० गुलाब राय ने लिखा है-

"श्रद्धा को पुरोडास और सोमरस कराना अनावश्यक था। पशु बलि का विरोध प्रसाद जी के प्रकाम्य विषयों में से था, शायद इसलिए उसके वर्णन करने का मोह वे संवरण न कर सके हों। बलिरूई श्रद्धा के पालित पशु के प्रति मनु के ईर्षालु मन की प्रेरणा से हुआ हो या पूर्व संस्कारों की प्रबलता से, जो कुछ भी हो यह कुछ अप्रासंगिक सा लगता है।"

मनु हिंसक और आमिष भोगी बन गए हैं-
"मनु को अब म गया छोड़ नहीं,
रह गया और था अधिक काम;
लग गया रक्त था उस मुख में,
हिंसा मुख लाली से ललाम।"

यह आधुनिक हिंसक प्रव त्ति और आमिष भोगिता का द्योतक है। आधुनिक मनुष्य आमिषाहारी हो गया है।

'म ग डाल दिया, फिर धनु को भी
मनु बैठ गये शिथिलित शरीर;
बिखरे थे सब उपकरण वहीं
आयुध, प्रत्यंचा, श्रं ग, तीर!"

म गया में न अपने शरीर का ध्यान रहता है न घर का। श्रद्धा मनु का बाट जोहती रहती है मानो वह शिकार में भागते हुए मनु की पदचाप सुन रही हो। आधुनिक सभ्यता में पुरुष का यह शिकारी स्वभाव चाहे पशु का हो या मनुष्य का पतिव्रता नारी को विस्म त कर देता है-

"यह हिंसा इतनी है प्यारी
जो भुलवाती है देह गेह!
मैं यहाँ अकेली देख रही
पथ, सुनती-सी पद-ध्वनि नितांत;
कानन में जब तुम दौड़ रहे,
म ग के पीछे बन कर अशांत।"

स्त्रियां रक्षा का प्रतीक रही हैं। श्रद्धा के भावी वात्सल्य और मनु के दूसरे को न सहन करने वाले प्रेम में संघर्ष हो जाता है-

'यह जीवन का वरदान, मुझे
दे दो रानी अपना दुलार!
केवल मेरी ही चिन्ता का
तव चित्त वहन कर रहे भार।"

मनु का अहंकार इतना बढ़ गया है कि वह अपने सिवा श्रद्धा को कभी सुखी नहीं देख सकता है। पुत्र और पति की प्रतिद्वंद्विता का उल्लेख आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र में आता है। कामायनी में इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है-

"तुम फूल उठोगी लतिका सी
कम्पित कर सुख सौरभ तरंग;
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा
बन-बन बन कस्तूरी कुरगं।"

मनु का चरित्र नैतिक बंधनों से ही साधारण मनुष्य के रूप में दिखलाया गया है। मनु को पहले श्रद्धा-पालित पशु के प्रति ईर्ष्या हुई थी, अब अपने ही भावी पुत्र के प्रति ईर्ष्या होने लगी है, क्योंकि उनका संस्कार देव स ष्टि का है जो किसी प्रकार का अवरोध अपने प्रणय में नहीं स्वीकारता है। आधुनिक मानव की भी यही प्रव त्ति है जो पत्नी या प्रेमिका के लिए परिवार के निकटतम संबंधी का त्याग अथवा हनन करने में किंचित भी संकोच नहीं करता है।

शायद वे घर में बँधकर नहीं बैठना चाहते हैं उनकी इसी भ्रमर व त्ति की ओर संकेत करती हुई श्रद्धा मनु से कहती है-

"उनके घर में कोलाहल है
मेरा सूना है गुफा-द्वार;
तुमको क्या ऐसी कमी रही
जिसके हित जाते अन्य द्वार।"

मनु अपने को 'चिर मुक्त पुरुष' कहता है। जो अवरूद्ध होकर जीना नहीं जानता है।

कामायनी के आधुनिक संदर्भ को संकेतित करते हुए डॉ० गुलाब राय ने लिखा है-

"'कामायनी' हिंदी के एक प्रतिभाशाली कवि की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है और चिंता, आशा, प्रेम, ईर्ष्या, क्षमा, आनंद आदि सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक भावनाओं को समेटने के कारण प्रभात कालीन वायु की भाँति इसका रस नित्य नवीन रहेगा,"

'कामायनी' आधुनिक युग का महाकाव्य है इसमें प्रसाद जी ने अतीत को आधार मानकर वर्तमान आधुनिक समस्याओं को सुलझाने का पूर्ण प्रयास किया है। कामायनी के महाकाव्यत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ० कन्हैया लाल सहल ने लिखा है-

'कामायनी' के पूर्व 'प्रिय प्रवास' एवं 'साकेत' महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी किंतु दोनों काव्यों में नवीनता होते हुए भी नवीन युग का वास्तविक रूप से पूर्ण स्फुरण नहीं है। केवल 'कामायनी' ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसे नूतन युग एवं आधुनिकता का प्रतिनिधि माना जा सकता है।"

डॉ० कन्हैया लाल सहल का अन्य कथन रेखांकित है-

"यह कहने की किसी को हिचकिचाहट नहीं है कि 'कामायनी' का कवि अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से बहुत कुछ ऊपर उठा है और उसने मानवता के एक ऐसे महाकाव्य की रचना की है जिसका दिव्य संदेश कभी पुराना नहीं पड़ेगा।"

डॉ० नंद दुलारे वाजपेयी ने कामायनी के आधुनिक संदर्भ को द ष्टिगत रखते हुए लिखा है-

"'कामायनी' काव्य आधुनिक युग की कृति है। इसके निर्माता प्रसाद जी यद्यपि भारतीय अतीत और उसकी प्राचीन संस्कृति के प्रेमी थे, परन्तु कामायनी में उन्होंने नवीन वैज्ञानिक तथ्य का भी यथेष्ट उपयोग किया है। उनकी यह विशेषता उनके काव्य को आधुनिकता प्रदान करती है। ××××× कवि विज्ञान सम्मत चित्रण द्वारा जीवन के स्वरूप और उसकी प्रेरणा की परीक्षा करना और उसके तथ्यों पर प्रकाश डालना चाहता है। आज का मनुष्य और आज की नारी इतिहास की उपज हैं। उसमें कृत्रिम प्रव त्तियों और संस्कारों का मेल हो गया है; इसलिए समस्त ऐतिहासिक और कालगत आवरण के परे जाकर मूल मानव प्रव त्तियों के उद्घाटन में प्रसाद जी संलग्न हुए हैं। नवीन विज्ञान का कहना है कि मनुष्य की वास्तविक प्रकृति का परिचय; परिज्ञान तथा उक्त प्रकृति के आधार पर उसके जीवन-विधान का निरूपण मानव प्रगति के लिए आवश्यक है। प्रसाद जी 'कामायनी' काव्य में इस तथ्य को मानकर मूल मानव प्रकृति के उद्घाटन में प्रव त्त हुए हैं।"

प्रसाद ने स्वयं कामायनी के आमुख में इसकी कथा को नवयुग अर्थात् आधुनिकता के संदर्भ में कही गई कथा कहा है-

"मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की जनश्रुति में द ढ़ता से मानी गई है।"

डॉ० नामवर सिंह ने कामायनी को युगीन समस्याओं का स्पंदन स्वीकारते हुए लिखा है-

"कामायनी के प्रतीक एक हद तक छायावादी आवरण से ढके हुए हैं, लेकिन दूसरी ओर उनमें अपने युग की जीवंत समस्याओं का स्पन्दन भी है। प्रसाद ने अपने युग की वास्तविकता को इतने व्यापक सामाजिक परिवेश में तथा भावना के गहरे स्तरों के साथ चित्रित किया है कि इन प्रतीकों में युग-युग को रसमग्न और प्रेरित करने की क्षमता आ गई है।"

'कामायनी' के आधुनिक संदर्भ को प्रतिपादित करते हुए प्रसाद ने 'कामायनी' के आमुख में लिखा है-

"आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं। तब भी उसके तिथिक्रम मात्र से संतुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उसके मूल में क्या रहस्य है? आत्मा की अनुभूति! हाँ, उसी भाव के रूप ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाएँ स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती है किंतु सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरंतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की और पुरुषार्थ की अभिव्यक्ति होती रहती है।"

प्रसाद ने आमुख में आगे भी आधुनिकता के संदर्भ को रेखांकित करते हुए लिखा है-

"अनुमान किया जा सकता है कि बुद्धि का विकास, राज्य स्थापना इत्यादि इड़ा के प्रभाव से ही मनु ने किया। फिर तो इड़ा पर भी अधिकार करने की चेष्टा के कारण मनु को देवगण का कोपभाजन होना पड़ा। तद्वै देवानां आग आस' (७-४-शतपथ)। इस अपराध के कारण उन्हें दण्ड भोगना पड़ा-"तंरूद्रो भ्यावत्य वित्याध" (७-४-शतपथ)।

आधुनिक काल में बलात्कारियों को कठोर से कठोर दंड दिया जा रहा है। कुछ लोग म त्यु दंड देने के पक्षधारी हो गये हैं क्योंकि बलात्कार के पश्चात् नारी का जीवन एवं उसकी सामाजिकता समाप्त हो जाती है। कामायनी में बलात्कारी मनु दंडित हुए हैं।

बंदर को जिस प्रकार पानी देखकर प्यास लगती है उसी प्रकार मंदिरा या मद्यपान करने वाले को देखकर मद्यपान की इच्छा जाग त होना मनुष्य की स्वाभाविक प्रव त्ति है किंतु श्रद्धा की स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है, मनु की वही प्रव त्ति है-

"सोम पात्र भी भरा, धरा था
पुरोडास भी आगे,
श्रद्धा वहीं न थी मनु के तब
सुप्त भाव सब जागे।

अकेलापन एवं श्रद्धा की अनुपस्थिति में मनु को सोमपात्र अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है-

"पुरोडास के साथ सोम का
पान लगे मनु करने,
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने।

पाश्चात्य सभ्यता एवं आधुनिकता ने मनुष्य को इतना आच्छादित कर लिया कि पुरुष मद्यपान को जलपान का रूप दे चुका है किंतु आधुनिकता ने सीमा पार कर दी है। पुरुष अकेले मद्यपान से संतुष्ट नहीं होता है क्योंकि उसे हम प्याला चाहिए, जिसके लिए वह अपने मित्रों, पत्नी या प्रेमिकाओं को बाध्य करता है। कामायनी का मनु भी ऐसा पुरुष है जो श्रद्धा जैसी सात्विक नारी को भी पीने के लिए बाध्य करता है-

"देवों को अर्पित मधुमिश्रित
सोम अधर से छू लो;
मादकता ढोला पर प्रेयसि!
आओ मिलकर झूलें।"
तथा-उधर सोम का पात्र लिये मनु
समय देखकर बोले;
"श्रद्धे! पी लो इसे बुद्धि के
बुद्धि को जो खोले।"

नारी का मद्यपान भयानक आधुनिकता है। कामी पुरुष युवती को मद्यपान कराकर उसका सतीत्व हरण करता है।

मनुष्य के परस्पर संघर्ष का कारण आधुनिक द्वयता है जिसके परिणामस्वरूप एक दूसरे के निकट जाकर एक से अनेक होते हैं किंतु बचता वही है जो शक्तिशाली होता है। मनुष्य के अतिरिक्त आज यही स्थिति विश्व राष्ट्रों की है पहले तो मैत्री होती है अनेक संगठन बनते हैं बाद में अपना अस्तित्व बनाने के लिए अन्यों का विनाश किया जाता है। पहले यह कार्य चीन ही करता था आज यूरोपीय एवं अमेरिकी राष्ट्र इस द ष्टि से सर्वोपरि बन गए हैं। कामायनी में इसी विचारधारा का चित्रण किया गया है-

"यह मनुष्य आकार चेतना का है विकसित,
एक विश्व अपने आवरणों में है निर्मित।
चिति केन्द्रों में जो संघर्ष चला करता है,
द्वयता का जो भाव सदा मन में भरता है।-
वे विस्म त पहचान रहे से एक एक को,
होते सतत समीप मिलाते हैं अनेक को।
स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जाते,
संस्कृति का कल्याण करें शुभ मार्ग बतावें।।"

यह विचारधारा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' को पूर्ण रूपेण चरितार्थ कर रही है। यही मत्स्य न्याय है। बड़ी मछली छोटी मछली को अपना भोज्य पदार्थ बना रही है। पूंजीपति श्रमहारा का शोषण कर रहा है। प्रतिस्पर्धा में 'Survival of the fittest' या 'योग्यतमावशेष' का सिद्धांत सर्वत्र चल रहा है। परिवार से लेकर विश्व तक की यही स्थिति है।

व्यक्ति चेतना की परतंत्रता का यही कारण है। एक ओर राग है तो दूसरी ओर द्वेष एवं ईर्ष्या के कीचड़ में सनी हुई है। निश्चित

मार्ग पर चलते हुए कदम-कदम पर ठोकरें खानी पड़ रही हैं फिर भी शांति से अपने लक्ष्य की ओर मनुष्य भागा जा रहा है। इसी को जीवन उपयोग या बुद्धि की साधना कहा गया है। अपने श्रेय हेतु सुख की आराधना होती है। लोक कल्याण की भावना छाया बन गई है जिसे प्राण की तरह राष्ट्र की काया का निवासी बनना पड़ता है। विश्व की समस्त मानव जाति को चार- ब्राह्मन, क्षत्री, शूद्र, वैश्य-वर्णों में विभाजित कर दिया गया है। वर्तमान आरक्षण नीति की दुर्व्यवस्था की उत्तरदायी वर्ण व्यवस्था ही है जिसका गत वर्षों में कितना घातक परिणाम हुआ है भविष्य में क्या होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता है। 'कामायनी' की वर्ण व्यवस्था को संघर्ष का कारण तथा शक्ति का खेल नाम दिया गया है-

"चार वर्ण बन गये बँटा श्रम उनका अपना,
शस्त्र यंत्र बन चले, न देखा जिनका सपना।
आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर,
प्रकृति-संग संघर्ष निरंतर अब कैसा डर।"

मनुष्य-प्रकृति का निरंतर संघर्ष मानव स ष्टि का विनाश करने वाला है। अपेक्षा मनुष्य एवं प्रकृति के समन्वय की है।

"देखो पाप पुकार उठा अपने ही मुख से।
तुमने योग-क्षेम से अधिक संचय वाला,
लोभ सिखाकर इस विचार संकट में डाला।
हम संवेदनशील हो चले यही मिला सुख,
कष्ट समझने लगे बनाकर निज कृत्रिम दुख।
प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सब की छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।"

कवि का 'स्व' ही उदात्तीकरण के द्वारा 'पर' में परिवर्तित हो जाता है। 'स्वांतः सुखाय' लोक हिताय' या 'पर हिताय' हो जाता है। लोकहिताय भावना आधुनिकता का संकेत करती है। परहिताय को अभिव्यक्ति देते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा!
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा!
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ;
अपने सुख को विस्त त कर लो
सब को सुखी बनाओ।"

यहां प्रसाद की उक्त 'स्व' ही जब 'पर' की ओर अभिमुख होता है, तभी राष्ट्रीयता का उदय होता है। किसी भी राष्ट्र के लिए राष्ट्रीयता की महती अपेक्षा है। प्रसाद की राष्ट्रीयता अभिधेय न होकर लक्ष्य और व्यंग्य अधिक हो गई है। मधुरता हेतु उग्रता की अपेक्षा होती है 'कामायनी' मानव की अन्तश्चेतना में सुषुप्त राष्ट्रीय भावना को परिदीप्ति करती है। प्रसाद ने जिस राष्ट्रीयता की ओर उत्कंठ होने को इंगित किया है, उसमें मदिरा वाली क्षणस्थायी उत्तेजना नहीं अपितु रसायन की चिरस्थायी उद्दीप्ति का प्रकाश है, विष का उफान नहीं अपितु अम त की बलवर्द्धिनी शांति है, पुरुष भावना नहीं अपितु पौरूष का जागरण है।

गांधीवादी विचारधारा एवं कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए कामायनी में, खद्दर, तकली चलाना, सूत कातना आदि को महत्व देकर स्वदेशी भावना की अभिव्यक्ति हुई है-

"चलती है तकली भरी गीत;"
"हाथों में तकली रही घूम;"
"आशा के कोमल तंतु-सद श
तुम तकली में हो रही झूल।"

"तुम दूर चले जाते हो जब
तब लेकर तकली यहाँ बैठ;
मैं उसे फिराती रहती हूँ
अपनी निर्जनता बीच पैठ।
मैं बैठी गाती हूँ तकली के
प्रतिवर्त्तन में स्वर विभोर-
चल री तकली धीरे-धीरे
प्रिय गये खेलने को अहेर।"

इससे गरीबों का उद्धार होता है। उन्हें घर बैठे कार्य मिल जाता है कितने वस्त्र विहीन लोगों के तन ढक जाते हैं-

"जीवन का कोमल तंतु बढ़े
तेरी ही मंजुलता समान।
चिर नग्न प्राण उनमें लिपटें
सुन्दरता का कुछ बढ़े मान।"

स्वदेशी भावना का उदय होता है। अपने देश के प्रति प्रेम भावना उत्पन्न होती है।

"कितनी मीठी अभिलाषाएँ
उसमें चुपके से रहीं घूम!
कितने मंगल के मधुर गान
उसके कोनों को रहे चूम।"

ग ह लक्ष्मी नवीन ग ह का विधान अपनी भावी संतान हेतु करती है-

"यह ग ह लक्ष्मी का ग ह-विधान!"

मात त्व बोझ से झुकी हुई नारी भावी संतान को शीत से बचाने के लिए उपकरण तैयार करती है-

"कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रूचिर साज।"

गर्भवती नारी सार्वभौमिक एवं सार्वदेशिक संदर्भ की महती अपेक्षा है जिसने अनादि काल से स ष्टि का निर्माण किया है, कर रही है और करती जायेगी। वह प्रसाद की आँखों से ओझल नहीं हो पाई। चाहे प्रसाद ने मनु से उसका (श्रद्धा का) परित्याग करवाया हो-

"भावना मयी वह स्फूर्ति नहीं
नव नव स्मित रेखा में विलीन
अनरोध न तो उल्लास, नहीं
कुसुमोद्गम-सा कुछ भी नवीन!
आती है वाणी में न कभी
वह चाव भरी लीला हिलोर,
जिसमें नूतनता न त्यमयी
इठलाती हो चंचल मरोर।"

भावी संतान की परिकल्पना सर्वदा मानव संदर्भ का विषय रही है, है और रहेगी। कामायनी में प्रसाद ने इसका सुंदर चित्र खींचा है-

"सूना न रहेगा यह मेरा
लघु विश्व कभी जब रहोगे न;
मैं उसके लिए बिछाऊँगी

फूलों के रस का म दुल फेन।
झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलरा कर लूँगी बदन चूम
मेरी छाती से लिपटा इस
घाटी में लेगा सहज घूम।"

श्रद्धा ने उसके जन्म से पूर्व पुआलों की छाजन से सुंदर कुंज का निर्माण कर लिया है जो वातायन, प्राचीर, पेड़-पौधे, झूला, सुरभि चूर्ण बिछी फर्श आदि से सुसज्जित है। आधुनिक काल में राजनीति, समाज, व्यक्ति से धर्म का बहिष्कार होता जा रहा है। मनुष्य की धार्मिक भावना का लोप होता जा रहा है। कामायनी के आनंद सर्ग में धर्म के प्रतिनिधि व षभ का उत्सर्ग किया गया है। आनंद प्राप्ति में आधुनिकता ने धर्म को बाधक समझ लिया है जबकि धर्म किसी भी क्षेत्र में बाधक नहीं अपितु साधक है। श्रद्धा मानव के प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती है-

"इस व षभ धर्म प्रतिनिधि को
उत्सर्ग करेंगे जाकर;
चिर मुक्त रहे यह निर्भय
स्वच्छंद सदा सुख पाकर।"

मनुष्य का जीवन जन्म से लेकर म त्यु पर्यन्त उत्सवों से आपूरित रहता है। ये उत्सव सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कारिक, ऋतुओं तथा फसलों से संबंधित होते हैं। कामायनी में इड़ा के नेत त्व में सारस्वत प्रदेश की प्रजा धर्म प्रतिनिधि व षभ के साथ कैलाश पर्वत की यात्रा पर श्रद्धा मनु के बाद यात्री दल का रूप धारण कर जा रही जिसमें बच्चे, बूढ़े, जवान सभी हैं मार्ग में उनके उत्सव स्वरूप का चित्रण करते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"उल्लास रहा युवकों का
शिशुगण का था म दु कलकल;
महिला मंगल गानों से
मुखरित था यह यात्री दल।"

परिवार ने समाज को जन्म दिया। समाज ने ग्राम, नगर, प्रांत तथा राष्ट्र का निर्माण किया। आज संपूर्ण विश्व एक परिवार हो गया। मनुष्य के रहते हुए परिवार का रूप बदलता रहेगा किंतु उसकी महत्ता समाप्त नहीं होगी।

कामायनी में परिवार का विस्त त विवेचन किया गया है।

श्रद्धा के लघु परिवार के विषय में प्रसाद ने लिखा है-

"आत्मीयता घुली उस घर में
छोटा-सा परिवार बना;
छाया एक मधुर स्वर उस पर
श्रद्धा का संगीत बना।"

आत्मीयता परिवार की प्रमुख विशेषता है। इड़ा के साथ आये यात्री दल का कहना है कि हम एक कुटुंब बनाकर यात्रा करने आये हैं। हमने सुना है कि इस तपोवन में समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है जहां श्रद्धा-मनु तपस्यालीन हैं। मनु ने उस कुटुंब को देखा और मुस्कराकर बोले-

"बोले देखो कि यहां पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुंबी
हम केवल एक हमीं हैं;
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।"

परिवार के मुखिया (मनु) अंगी हैं तथा उसके अन्य सदस्य अंग हैं जिनमें किसी प्रकार का दोष या अभाव नहीं है। संपूर्ण विश्व उदार चरित्र वालों के लिए एक परिवार है। इसी ओर संकेत करते हुए कहा गया है-

अयं निजः परावेति गणना लघु चेतसाम्
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

अर्थात् यह मेरा है यह पराया है ऐसा चिंतन छोटी बुद्धि वालों का होता है। उदार चरित्र वालों के लिए समस्त विश्व एक परिवार के समान है। 'कामायनी' में विश्व बंधुत्व या विश्व परिवार का रूप वर्णित है-

"सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को द श्य बनाता;
मानव कह रे! यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता।"

भेदभाव भुलवाकर विश्व को नीड़ या परिवार बनाया जा सकता है जिसके लिए विश्व के सभी राष्ट्र आज प्रयत्नशील हैं।

विश्वबंधुत्व की भावना से विश्व कल्याण संभव है। आतंकवाद की समाप्ति करके ही विश्व कल्याण संभव है। आतंकवाद आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन गया है। आणविक, रासायनिक अस्त्र-शस्त्रों के अलावा आत्मघाती बम किसी को भी जीवित नहीं छोड़ता है। हम भी नहीं बचेगे। विश्व शमशान बन जाएगा। आतंकवाद को रोकने की ताकत सर्व शक्तिशाली राष्ट्र में भी नहीं होगी-

श्रद्धा मनु को संबोधित करके कहती है-

"मनु! क्या यही तुम्हारी होगी
उज्जवल नव मानवता!
जिसमें सब कुछ ले लेना हो
हत! बची क्या शवता।"

आतंकवाद का एक मात्र कारण स्वार्थ है जो अन्यों को भयभीत करके अथवा उनका विनाश कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करना आधुनिकता की प्रव त्ति बन गई है। कामायनी में इसका चित्रण किया गया है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।"

× × × × ×

सुख को सीमित कर अपने में
केवल दुख छोड़ोगे;
इतर प्राणियों की पीड़ा लख,
अपना मुँह मोड़ोगे।"

आधुनिक काल में सुख साधन के रूप में धन एवं वस्तुओं के संग्रह की प्रव त्ति जोर पकड़ रही है जो मंहगाई और अभाव को जन्म दे रही है। कामायनी में संग्रह की विकृतियों का चित्रण किया गया है-

"सुख अपने संतोष के लिए
संग्रह मूल नहीं है
उसमें एक प्रदर्शन जिसको
देखें अन्य वही है।"

संग्रह निर्ममता को जन्म देती है। संग्रही मनुष्य में ममता नहीं होती है। आधुनिक काल में ममता ने निर्ममता का रूप धारण कर लिया है-

"यह विराग संबंध हृदय का
कैसी यह मानवता;
प्राणी को प्राणी के प्रति बस
बची रही निर्ममता।"

निर्ममता दुर्व्यवहार को जन्म देती है। किसी का दुर्व्यवहार कोई सहन नहीं कर सकता है-

जीवन का संतोष अन्य का
रोदन बन हंसता क्यों?
एक-एक विश्राम प्रगति को,
परिकर-सा कसता क्यों?
"दुर्व्यवहार एक का कैसे
अन्य भूल जावेगा;
कौन उपाय! गरल को कैसे
अम त बना पायेगा।"

इन सबका निराकरण करके ही विश्व कल्याण की भावना को क्रियान्वित किया जा सकता है। कृष्ण की मुरली ध्वनि सबमें राग की भावना भर सकती है। इसी प्रकार की भावना प्रसाद ने कामायनी के आनंद सर्ग में अभिव्यंजित की है-

"जिस मुरली के निस्वन से
यह शून्य रागमय होता;
वह कामायनी विहँसती
अम जग था मुखरित होटा।
क्षण भर में सब परिवर्तित
अणु अणु थे विश्व कमल के;
पिंगल पराग से मचले
आनंद-सुधा-रस छलके।"

आनंद सुधा रस विश्व कल्याण का रूप दे सकने में समर्थ है।

प्रिय से मिलने के लिए परिवार जनों एवं सुरक्षा प्रहरियों को छलकर प्रियतमाएँ आजकल प्रिय के पास खूब पहुंच रही हैं। बाग-बगीचों एवं सार्वजनिक उद्यानों को मिलन स्थल बना लिया है जहाँ गल बहियां डाले पूर्व रति की सारी क्रियाएं होती है। प्रसाद ने कामायनी में ऐसे स्थल भी चित्रित किए हैं जहां श्रद्धा मनु से मिलने जाती है। यह सब स्वप्न में दिखलाया गया है -

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक में मलय बालिका सी चलती,
सिंह द्वार के भीतर पहुंची, खड़े प्रहरियों को छलती;
ऊँचे स्तम्भों पर बलभीयुत बने रम्य प्रासाद वहाँ,
धूप-धूम सुरभित ग ह, जिनमें थी आलोक शिखा जलती;
स्वर्ण-कलश शोभित भवनों से लगे हुए उद्यान बने।
व्रहनु प्रशस्त पथ बीच-बीच में, कहीं लता के कुंज घने;
जिनमें दम्पति समुद विहरते, प्यार भरे दे गलबहाहों,
गूँज रहे थे मधुप रसीले, मदिरा मोद पराग सने।"

अनेक आलोचकों का कहना कि कामायनी में बाह्य युद्ध का अभाव है आंतरिक संघर्ष है। ऐसा नहीं है। मनु के विरूद्ध सारस्वत प्रदेश की जनता प्रकृति और उसके पुटलों का भीषण युद्ध 'संघर्ष' सर्ग में लगभग एक प ष्ठ में वर्णित है विरोधियों का नेत त्व आकुलि एवं किलात कर रहे थे। ऐसे युद्धों की आज भी कमी नहीं। मनु का भीषण अस्त्र संभालना, आग की ज्वाला, नुकीले

तीक्ष्ण नाराच का छूटना, धूमकेतु का टूटना, युद्ध की आंधी, रण वर्षा, शस्त्रों सा, वारण-खड्ग, तांडव न त्य में परमाणु की विफलता, मनु का अलात चक्र उठाना, तुमुल रणनाद, मरण पर्व, उचास वात का चलना आदि का उल्लेख आधुनिक भयंकर भीषण युद्ध का द श्य प्रस्तुत करते हैं।

तभी मनु कहते हैं-

"और शत्रु सब, थे कृतघ्न फिर
इनका क्या विश्वास करूँ,
प्रतिहिंसा प्रतिशोध दबाकर
मन ही मन चुपचाप मरूं।"

किसी को भी शत्रु मान लेना आज की आधुनिकता है

"रोके फिर उनको भला कौन?
सबको ही वे कहते- 'शत्रु हो न'
अग्रसर हो रही यहां फूट,
सीमाएं कृत्रिम रहीं टूट;"

साकार भय की उपासना आधुनिक प्रव त्ति बन गई है जिससे सतत संघर्ष चल रहा है, सुयश की लालसा बढ़ रही है प्राण तत्व की उपासना हो रही है। भारत में मानवता की पूजा होती है। पाश्चात्य सभ्यता मानव उपासक बन गई है। शासना देश का पालन नहीं हो रहा है। ये सभी कामायनी के आधुनिक संदर्भ हैं।

शासक-शासित संघर्ष, मस्तिष्क हृदय में विरोध, स्वशक्ति में द ढ़ता, आंतरिक सौंदर्य के स्थान पर बाह्य सौंदर्य पर बल, त ष्णा व द्धि, मनुष्य की मरूत गति की कांक्षा, विरह, वात्सल्य, आभूषण-वस्त्र, कृषि, आखेट, पशुपालन आदि का आधुनिक संदर्भ कामायनी में प्रस्तुत है।

भविष्य वाणी श्रद्धा करती है-

"सूनो न रहेगा यह मेरा
लघु विश्व कभी जब रहोगे न;
मैं उसके लिए बिछाऊँगी
फूलों के रस का म दुल फेन।"

'आवेगा', 'बोलेगा', 'छिड़ेगा' आदि क्रियाएँ पुत्रोत्पत्ति की भविष्यवाणी करती हैं।

समीप-दूर, क्रोध-नाता आधुनिक ही नहीं अपितु सर्वथा के संदर्भ हैं।

"जिसके हृदय सदा समीप हैं
वही दूर जाता है;
और क्रोध होता उस पर ही
जिससे कुछ नाता है।"

विवाह हेतु आधुनिकाएं स्वयं प्रस्ताव करती हैं। श्रद्धा ने भी ऐसा किया है-

"तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊं मैं बिना विलम्ब!"

विवाह के समय आज भी भुने हुए धान का लावा या खील (लाजा) बिखेरा जाता है तथा उससे मांगलिक 'लाजा हवन' होता है -

"विभव मतवाली प्रकृति का आवरण वह नील,
शिथिल है, जिस पर बिखरता प्रचुर मंगल खील;"

आधुनिक काल में प्रतिवर्ष 'विश्व सुन्दरी' का चयन होता है। उसका किंशुक सा झीना वस्त्र, सौंदर्य प्रसाधन से अनुलेपित अंग, नग्न अंग प्रदर्शन आदि का चित्र कामायनी में देखा जा सकता है-

"सिकुड़न कौशेय वसन की
थी विश्व सुन्दरी तन पर;
या मादन म दुतम कंपन
छायी संपूर्ण स जन पर।"

विश्व सुन्दरी की मादकता, श्रंगारिकता, शरीर का नग्न प्रदर्शन विरोध का कारण बनता जा रहा है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि कामायनी की कथा, पात्र, घटनाएँ, घटना स्थल, वर्णित सभ्यता-संस्कृति, अर्थात् संपूर्ण कामायनी आधुनिकता का संदर्भ प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल है जो प्रसाद को भविष्य द्रष्टा बनाती है।

आधुनिकता में कामायनी की समरसता की आवश्यकता पग-पग पर पड़ती है। यहाँ संघर्ष दो विभिन्न विचारों में है- एक ओर लोकतंत्र है तो दूसरी ओर एक तंत्र है। एक ओर पूँजी है तो दूसरी ओर श्रम है। एक और वैभव के प्रासाद हैं तो दूसरी ओर दीन-हीन प्रजा का कंकाल है।

प्रसाद-(कामायनी) : सौंदर्य बोध

सौंदर्य का शाब्दिक अर्थ सुंदर होने की अवस्था, गुण या भाव, सुंदरता अथवा खूबसूरती होता है। किसी वस्तु का वह गुण या तत्व समूह जो उसके आकार या रूप को आकर्षक और नेत्रों के लिए सुखद बनता है। सुंदरता। सौंदर्य तत्व प्रायः व्यक्तिगत रूचि और विचार पर आश्रित रहता है और कला के क्षेत्र तक ही परिमित नहीं हैं।

प्राचीन काल से ही भारत में दो प्रकार की विभिन्न धाराएँ प्रचलित होती आई हैं। प्रथम को आत्मवाद, आनंदवाद अथवा सौंदर्यबोध की धारा कहते हैं के द्वारा आनंद और उल्लास को आत्मा का अंश माना जाता है। इसे शास्त्रों में श्रेय मार्ग भी कहा गया है क्यों सौंदर्य जीवन का श्रेय है।

किसी सुंदर वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनंददायिनी अनुभूति होती है उसके स्वभाव और स्वरूप का विवेचन तथा जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ समन्वय स्थापित करना इनका मुख्य उद्देश्य होता है।

सौंदर्य की विवेचना करने वाले शास्त्र को सौंदर्य शास्त्र कहते हैं। सौंदर्य शास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाले अथवा उनमें निहित रहने वाले सौंदर्य का तात्विक, दार्शनिक और मार्मिक विवेचन होता है।

सौंदर्यनुभूति प्रसाद की कामायनी) प्रमुख विशेषता है। प्रसाद के सौंदर्य बोध विषयक डॉ. गुलाब राय का कथन रेखांकित है-

"प्रसाद ने सौंदर्य के भौतिक आकर्षण की अवहेलना नहीं की है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। इस को स्वीकारते हुए भी वह नीचे की ओर नहीं ले गए हैं। उसका स्वर्गिक आनदं चित्रण करते हुए उन्होंने उसको ऐंद्रिकता के भार से ऐसा ग्रसित नहीं किया है कि उसकी प्राप्त समीरण की सी परितलमय सुखद स्वच्छता, सूक्ष्मता और तरलता में बाधा पड़े। उसका प्रभाव जीवन पर मंद और मुधर होता है।"

प्रसाद की कला में डॉ. गुलाब राय ने सौंदर्य के पक्ष का निर्धारण करते हुए लिखा है-

"सौंदर्य के विषयीप्रधान (Subjective) और विषय-प्रधान (Objective) दोनों ही पक्ष हैं। x x x x x वासना उसके विषयीप्रधान पक्ष को पुष्ट करती है और लज्जा उसके विषय प्रधान पक्ष पर बल देती है। लज्जा वासना की अतिशयता के ऊपर एक आवश्यक 'ब्रेक' का भी काम करती है।"

सौंदर्य को परिभाषित करते हुए प्रसाद ने 'कामायनी' के 'निर्वेद' सर्ग में लिखा है-

"भगवति! वह पावन मधु धारा!
देख अम त भी ललचाए;
वही रम्य सौंदर्य शैल से
जिसमें जीवन धुल जाए।"

प्रसाद मानव सौंदर्य के बहुत बड़े प्रशंसक हैं उनका सौंदर्य बोध अनुपम है जिसे देखकर उन्हें सौंदर्य शास्त्र का ज्ञाता कहना समीचीन होगा।

कामायनी में भाषिक, प्राकृतिक, मानवीय, भावात्मक, कल्पनात्मक, वास्तुक, काव्यात्मक, कार्मिक, प्रेमिक, विरह तथा राष्ट्रीय आदि सभी प्रकार के सौंदर्य बोध की सफलता द ष्टिगोचर होती है।

भाषा संबंधी सौंदर्य को भाषिक सौंदर्य की संज्ञा दी गई है।

कामायनी की कथावस्तु सौंदर्य का श्रेय इतिहास के साथ वर्तमान तथा पाश्चात्य-पार्वातय का समन्वय है। कामायनी में वस्तु चित्रण, मानसिक व त्तियों की अभिव्यंजन रूप वर्णन का आधिक्य है। वस्तु जगत के अनेक मुखी द श्यों और परिस्थितियों का इसमें विशद उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु सीमित द श्यों एवं परिस्थतियों का चित्रण सौंदर्यमय है। इसके साथ-साथ मनु का नाना उपकरणों, मानसिक स्थितियों और मनोभावों आदि का प्रत्यक्षीकरण सौंदर्य पूर्ण है-

मनु का भीगे नयनों अर्थात रोते हुए विवाद पूर्ण चित्रण उद्ध त है-

"हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह;
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।"

विवाद एवं चिंतातुर मनु जल प्लावन की विपुल धारा का अवलोकन कर रहे हैं। इनके हृदय में हिमानी स्तब्धता छाई थी। छायावादी शैली में मनु के हृदय की तुलना हिम, शिला की नीरवता तथ पवमान जैसे सूक्ष्म वस्तुओं से की गई है।

चिंता के विषय में गंभीर चिंतन करते हुए मनु बोल उठते हैं-

"मनन करावेगी तू कितना।
उस निश्चिंत जाति का जीव;
अमर मरेगा क्या? तू कितनी
गहरी डाल रही है नींव।"

चिंतित मनु चिंता से मुक्ति पाने के लिए विस्म ति, अवसाद, नीरवता, जड़ता की कामना करते हैं। यह भी सोचते हैं कि जब तक चेतना रहेगी इन सबकी प्राप्ति असंभव है-

"विस्म ति आ, अवसाद घेर ले
नीरवते! बस चुप कर दे;
चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे।"

इस प्रकार मनु के मन की विभिन्न स्थिति का सुंदर चित्रण प्रसाद ने कामायनी में किया है।

कामायनी जैसी वस्तु योजना का सौंदर्य अन्य कृतियों में उपलब्ध नहीं है।

डॉ. गपति चन्द्र गुप्त न प्रसाद के भाव सौंदर्य का उल्लेख करते हुए लिखा है-

"मान-हृदय की भावनाओं का जैसा सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण कामायनी में हुआ है वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।"

विचारों की द ष्टि से कामायनी की रचना प्रौढ़ एवं महान है। आधुनिक युग की शुष्क बौद्धिक भावों के विपरीत प्रसाद ने तरल भावात्मकता का संदेश दिया है तथा जीवन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।"

वस्तुतः भाव और विचार की द ष्टि से कामायनी का सौंदर्य अनुपम है।

प्रजा के साथ मनु का युद्ध वास्तविक युद्ध की अपेक्षा छायात्मक और प्रतीकात्मक है परंतु इस बाह्य संघर्ष के स्थान पर मन के अंतरंग संघर्ष का बुद्धि और श्रद्धा के बीच मन की भटकी हुई स्थिति का मार्मिक एवं गंभीर चित्रण कामायनी भाव सौंदर्य का विषय बन गया है। यह मनोवैज्ञानिक संघर्ष काव्योचित महत्व लिए हुए है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक द्वंद्व ओर समस्याएँ कामायनी का भाव सौंदर्य बढ़ा रही हैं।

पराजय की मनोव त्ति में चिंता के अतिरिक्त किसी को स्थान नहीं मिलता है। उत्साहित हृदय में चिंता का जन्म नहीं होता है। मनु में पुरुषत्व है। पुरुषत्व के अभिमान द्वारा ही वे चिंता को दूर करना चाहते हैं-

"अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!

हृदय गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य स ष्टि में सुन्दर पाप।"

x x x x x

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता
तेरे हैं कितने नाम।
अरी पाप है, तू, जा, चल, जा
यहाँ नहीं कुछ तेरा काम।"

बुद्धि-चिंता में ऐक्य न होते हुए भी साहचर्य है क्योंकि चिंतित व्यक्ति ऊहापोह में पड़कर बुद्धि के घोड़े दौड़ाता है चिंता को आचार्य शुक्ल ने बुद्धिवाद के विरोध का प्रथम संकेत माना है।

मनु पराजय व त्ति से आच्छदित हो संसार से पलायन करना चाहते हैं। अपनी चेतना को समाप्त करने के लिए उसे विस्म ति से ढकने के लिए आतुर, व्याकुल तथा उत्सुक हो जाते हैं। मनुष्य की ऐसी अवस्था बहुत देर तक नहीं रहती। पूर्ण शांति भयंकर तूफान के बाद ही आती है। विषाद और चिंता की विकराल रात्रि के बाद ही अरूणोदय आता है जो प्राकृतिक छटा को परिवर्तित कर देता है। भीषणता सौम्य रूप धारण कर लेती है। मनु के नास्तिक हृदय में आस्तिकता मूलक कौतूहल का जागरण हो जाता है। दुख-सुख के संधिकाल तक अस्तिकता, पश्चाताप और वैराग्य का आधिक्य रहता है।

भाव सौंदर्य के चित्रण में प्रसाद ने अति निपुणता तथा कलात्मकता का प्रतिपादन किया है। संपूर्ण कामायनी भाव सौंदर्य के चित्रों से भरपूर है। स्थान-स्थान पर अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान कर प्रसाद ने उन्हें जिस भाँति सजाया है वैसा भाव सौंदर्य अन्यत्र सुलभ नहीं है चिंता को विश्ववन की सर्पिणी, ज्वालामुखी पर्वत के भीषण विस्फोट के प्रथम कंप के समान मतवाली, अभाव की चंचल बालिका, मस्तक के दुर्भाग्य की रेखा, हरी भरी सी दौड़ धूप, समस्त ग्रहों की हलचल आदि का रूप धारण हृदय की लहलहाती हुई शस्य श्यामला कृषि के ऊपर करकापात करने वाली मेघ जैसी सदैव छाई रहती है। यह चित्र का पूर्ण स्वरूप उपस्थित कर देता है। चिंता का चित्र खींचने में प्रसाद ने उसी आभ्यांतरिक-बाह्य समस्त विशेषताओं के साथ-साथ उसके मूर्त रूप का भी सजीव सफल चित्रांकन किया है।

वासना उदय होकर समस्त वातावरण को प्रभावित कर देती है। चंद्रमा की सुकुमार किरणें सर्वत्र मधु की वर्षा करती हुई द ष्टिगोचर होती हैं पवन पुलकित होकर मधु का भार लिए हुए मंथर गति से चलता हुआ प्रतीत होता है प्राणों में अधीरता आ जाती है। ध्राण सौरभ सुगंध से संत प्त जान पड़ता है। अचानक अकारण प्रिया के रूठने का संदेह होने लगता है न जाने क्यों मन में प्रिया को मनाने की भावना जाग त हो उठती है। चाहकर भी प्रेमी प्रिया को मना नहीं पाता है। रक्त संचार धमनियों में वेदना भर देता है। लघुभार से बोझिल हृदय धड़कने लगता है। अमूर्त वासना का ऐसा क्रमशः सजीव चित्रण वासना का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत कर देता है।

काम सर्ग का वर्णन देखिए-

"भुज लता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए;
जलनिधि का अंचल व्यंजन बना,
धरणी का दो दो साथ हुए।"

काम के उदय होने पर जड़ चेतन, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों की ऐसी ही स्थिति का वर्णन गोस्वामी तुलसी दास ने राम चरित मानस में किया है-

"संगम करहिं तलाव तलैया।"
"जहं अस कथा जड़नि के बरनी।

'लज्जा' सर्ग इसी प्रकार के मनोभाव के सजीव चित्रण से परिपूर्ण है जो प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ भाव चित्रण है। प्रसाद ने लज्जा के अमूर्त भाव का मूर्तीकरण करते हुए लिखा है कि नारी में लज्जा भाव के उदय से वह अपने प्रिय को छूने में भी हिचकती है। देखते ही पलकें सहसा आंखों पर झुक जाती हैं। परिहासपूर्ण वाणी कंठावरोध से अधरों तक नहीं आ पाती है रोमांच हो

जाता है। रोमवती खड़ी होकर चुप्पी सधवा देती है। हृदय के भाव अशक्त वाणी से अभिव्यक्ति न प्राप्त कर सशक्त नयनों से व्यक्त हो जाते हैं। रति की प्रतिमूर्ति लज्जा शालीनता सिखलाती है। मतवाले सौंदर्य के पग में नूपुर के समान लिपटने वाली एवं चंचल किशोरी-सौंदर्य की रखवाली करने वाली कहकर उसे प्रसाद ने सरस कपोलों की लालिमा, आँखों को अंजन, कुंचित अलकों का घुंघरालापन, मन की मरोर तथा एक ऐसी हल्की सी मसलन कहा है जो कानों में लाली का रूप धारण कर लेती है।

भाव सौंदर्य की ऐसी सजीव योजना कोई भाव-सौंदर्य शिल्पी ही कर सकता है जिसे सौंदर्य का पूर्ण बोध हो। कामायनी के अतिरिक्त भाव सौंदर्य का ऐसा सजीव चित्रण अन्यत्र नहीं देखा जा सकता है। प्रसाद ने अपनी गहन अनुभूति से ही चिंता, वासना, लज्जा आदि अमूर्त भावों के भावगत सौंदर्य को मूर्त रूप देकर ऐसा चित्रण किया है कि उनके रूप के साथ साथ उनके समस्त मानसिक एवं शारीरिक व्यापार भी स्पष्ट हो गए हैं।

कामायनी के कल्पना सौंदर्य के विषय में कह सकते हैं कि वस्तुओं का समारोह पूर्ण विशद होने पर काव्य में एक औदात्य आ जाता है किंतु मानसिक कृत्तियों और वस्तुओं का स्वरूप अलेख भी कल्पना की उच्चतर शक्ति से ही संभव है।

कामायनी में इतिहास-उत्पाद्‌य अथवा ऐतिहासिकता एवं कल्पना का ऐसा अद्‌भुत समन्वय हुआ है जिसने इसे विश्व महाकाव्य का स्थान प्रदान किया है। कल्पना काव्य का मुख्य तत्व है जो प्रायः सभी कवियों में न्यूनाधिक रूप में होती है किंतु प्रसाद ने कल्पना सौंदर्य से कामायनी को अनूठा रूप प्रदान किया है। उनकी कल्पना यथार्थ या इतिहास के साथ ऐसी घुल-मिल जाती है जैसे दूध के साथ पानी अथवा आटे के साथ नमक।

प्रसाद की वस्तु कल्पना के महत्व को स्वीकार कर उक्त कल्पना को पूर्ण काव्यात्मक आच्छद में व्यक्त करने के उच्च काव्य कौशल को भी स्वीकार करना पड़ता, तभी परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नये युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में कोई हिचक नहीं होती है।

प्रसाद ने कल्पना सौंदर्य के द्वारा कामायनी की कथा को अपनी इच्छानुसार अधिक सरस तथा उपर्युक्त बनाने के लिए कुछ परिवर्तन किए हैं। कल्पना के विषय में डॉ. द्‌वारिका प्रसादस सक्सेना ने लिखा है-

"किसी ने भी मानव स ष्टि के इस धुंधले प्रभावित की ओर ध्यान नहीं दिया। भारतीय साहित्य स ष्टाओं में प्रसाद ही प्रथम कवि हैं जिन्होंने आधुनिक कविता के ब्रह्म मुहूर्त में उठकर मानव-सभ्यता के इस भव्य एवं दिव्य विद्वान के दर्शन किए और इस धुंधले प्रकाश में ही अपने आदि मानव की दिव्य झांकी देखी। साथ ही उसमें से एक ज्योतिमर्यी किरण लेकर उसे अपनी उर्वर कल्पना द्वारा ऐसा आलोकपूर्ण काव्य का रूप दिया है जो वर्तमान मानव के लिए ही नहीं, अपितु भविष्य में भूले भटकों के लिए भी प्रकाश स्तंभ की भांति पथ-प्रदर्शक बना रहेगा।"

प्रसाद ने कथा श ंखला मिलाने हेतु कल्पना सौंदर्य का सहारा लिया है। मनु-मत्स्य वार्तालाप तथा नौका के सटाक (मूछों) में बांधने की कथा को परित्याग वैज्ञानिकता लाने के लिए किया है मात्र संकेत दिया है-

"महा मत्स्य का एक चपेटा
 दी पोत का मरण रहा।
किंतु उसी ने ला टकराया,
 इस उत्तर-गिरि के शिर से;
देव स ष्टि का ध्वंस अचानक,
 श्वास लगा लेने फिर से।"

मनी की नौका को महामत्स्य के चपेटे में हिमालय की उन्नत चोटी पर पहुंचा दिया।

मनु-श्रद्धा की भेंट ने पहले करवायी है उसके बाद मनु-इड़ा संबंध हुआ है। इड़ा के मनु पुत्री न मानकर आत्मजा प्रजा रूप में स्वीकारा हे जिससे 'कामायनी' को अस्वाभाविकता से बचा लिया है। मनु इड़ा के साथ अनैतिक व्यवहार करते हैं।

मनु से मैत्रावरण यज्ञ न करवाकर प्रसाद की कल्पना ने पाक यज्ञकरवाया है। प्रसाद ने इसके द्वारा निष्काम कर्म की सफलता

प्रतिपादित की है। क्योंकि यज्ञ करने में कोई कामना नहीं थीं अवशेष अन्न दूर रख आने में भी प्राप्ति की भावना नहीं थी किंतु उसी से श्रद्धा का मिलन हुआ। प्रसाद ने अपनी कथा को मूल कथा से संबंद्ध कर दिया है। प्रसाद ने आकुल-किलात के नेत त्व द्वारा यह प्रतिपादित किया है जनक्रांति की कल्पना से शासक-शासित वर्ग के संघर्ष का प्रदर्शन किया है।

प्रसाद ने दस पुत्रों के स्थान पर मात्र एक पुत्र मानव की कल्पना की है। मनु को सातवें वैवस्वत मनु के रूप में न मानकर स्म तिकार वैवस्त मनु की कल्पना की है।

ये कल्पना सौंदर्य 'कामायनी' का सर्वोत्क्रिष्ट काव्य बना देता है।

कर्म सौंदर्य में नर-नारी दोनों का प्रमुख स्थान हे। नारी के कर्म सौंदर्य का सजीव चित्र च ह-लक्ष्मी की तरह गर्भवती होकर भावी संतान के लिए, आवास, भोजन एवं वस्त्र आदि की व्यवस्था में देखा जा सकता है। जिसमें प्रमुख कर्म, तकली चलाना, ऊन कातना, बीज संग्रह करना, सुंदर कुटीर का आधुनिक सुविधाओं सहित निर्माण करना आदि हैं।

श्रद्धा-आंसू का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

"मेरी आँखों का सब पानी
तब बन जायेगा अम त स्निग्ध;
उस निर्विकार नयनों में जब,
देखूँगी अपना चित्र मुग्ध।"

'अपन चित्र' कोई छाया चित्र नहीं अपितु पुत्र मानव या कुमार है।

नारी कर्म सौंदर्य का स्वरूप योगिकी श्रद्धा का मनु को खोजने के लिए निकलने में देखा जा सकता है। बेहोश पड़े मनु को श्रद्धा अपने मधुर स्पर्श के अनुलेप एवं अपनी स्वर लहरी के संजीवन रस से सचेत कर देती है। पतिव्रता नारी अपने कर्म सौंदर्य के अर्थ परिश्रम द्वारा जगती की ज्वाला से संतप्त एवं पथप्रष्ट पुरुष को उचित मार्ग पर लागर उसके जीवन में सरसता का संचार करती हुए उसे महापुरूष बना देती है।

प्रेम एवं विरह सौंदर्य का अप्रतिभ निरूपन कामायनी में हुआ है जिसके विषय में डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त का कथन उदघ त है-

"प्रेम और विरह से संबंधित प्रायः सभी संचारियों की व्यंजना इसमें सफलता पूर्वक हुई है।"

भाषा सौंदर्य से संबंधित महावीर प्रसाद दविदेदी का कथन अवलोकनीय है-

"काव्य की भाषा सरल, सुबोध होनी चाहिए। शब्दों का रूप व्याकरण सम्मत अर्थात शुद्ध होना चाहिए ओर रसानुरूप शब्दों का प्रयोग होना चाहिए।"

कामायनी का भाषिक सौंदर्य इस द ष्टि से पूर्ण सफल है। क्योंकि प्रसाद भावों के सम्राट ही नहीं अपितु भाषा के कुशल प्रोक्ता हैं। भाव एवं भाषा का पूर्ण उत्कप्र कामायनी में देखा जा सकता है। 'काव्य और कला' निबंध में प्रसादन ने स्वयं लिखा है।

"व्यंजना वस्तुतः अनुभूतिमयी प्रतिभा का स्वयं परिणाम है क्योंकि सुन्दर अनुभूति का विकास सौन्दर्यपूर्ण ही होगा।"

कामायनी एक महान कृति है जिसकी काव्य भाषा छायावादी गुणों से परिपूर्ण है। कामायनी की भाषा के संबंध में डॉ. शिव शंकर प्रसाद वर्मा का कथन उल्लेखनीय है-

"कामायनी में शब्द द्वारा निर्मित महान कृति की समस्त विशेषताएं हैं अर्थात् वह शब्द के नादात्मक अनुरंजन, अध्यात्मिक, सांस्कृतिक परम्पराओं की अनुगूंज एवं प्रयोक्ता के जीवन दर्शन और कलात्मक आकृतियों से पूर्ण है। कामायनी की भाषा पहली ही द ष्टि में छायावादी काव्य भाषा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। लाक्षणिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, त्रिगुंफन शैली एवं मानवीकरण आदि सारी विशेषताएं यहाँ मिलती हैं।"

डॉ. शयाम सुन्दर दास ने शब्द के विषय में लिखा है-

"काव्य को मुख्यता शब्द की साधना कहा गया है।"

अथवा

"शब्दों के आधार पर ही उलम काव्य रचना हो सकती है। अतः उत्तम काव्य के लिए शब्दों का उपयुक्त प्रयोग, शब्द संघटन, भाषा की प्रौढ़ता, समीकृत वाक्य रचना, अवधारणा का संस्थापन आदि बातें अपेक्षित हैं।"

इस द ष्टिकोण कामायनी के शब्द सौंदर्य में तत्सम, तद्भव, अज्ञात व्युत्पत्तिक, परराष्ट्रीय (विदेशी) अप्रचलित, तथा परिभाषिक शब्दों का अपूर्व सहयोग रहा है।

प्रसाद के भाषा प्रयोगों में पर्यात व्यंजकता और काव्यानुरूपता है। प्रथम बार काव्योपयुक्त पदावली का प्रयोग कामायनी में किया गया है।

नाद एवं स्वर लहरी का अद्‌वितीण्य स्थान है-

"छप-छप का होल शब्द विरल", धँसती धरा धधकती ज्वाला, "करका क्रन्दन करती गिरती", "धू-धू करता नाच रहा था।", थर-थर कॉंप रहती दीप्ति तरल" आदि।

मुहाबरों के प्रयोग से भाषा सौंदर्य को द्‌विगुणित किया है-

"बने ताड़ ये मिल के," "प्रसन्नता से नाच उठना", "लकीर पीटना", "हॉं में हॉं मिला", "ओस चाटना" आदि।

इस सौंदर्य में पाश्चातय सौंदर्य शास्त्रियों ने प्रसन्नता एवं आनन्दानुभूति का जैसा वर्णन किया है कामायनी उसका सुन्दर उदाहरण है। इसमें हास्य के अलावा सभी रसों का परिपाक हुआ है। कामायनी का अंगीर प्रसाद द्वारा प्रतिपादित आनंद है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य का उद्देश्य आनंद ही है। रस का अर्थ भी आनंद होता है। प्रसादन ने कामायनी में आनंद रस की स्थापना करे रस सौंदर्य में व द्धि की है। इस द ष्टि से कामायनी आनंद का आधुनिक महाकाव्य है।

डॉत्र द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है-

"पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्रियों ने सौंदर्य में प्रसन्नता एवं आनन्दानुभूति का जैसा वर्णन किया है वैसा ही वर्णन हमारे यहॉं रस के अन्तर्गत मिलता है ओर रस को यहॉं स्वयं आनन्द स्वरूप ही माना गया है। इसके साथ ही क्रोच ने सौंदर्य जन्म आनन्द को दो भागों में विभक्त किया है- शुद्ध आनंद और मिश्रित आनंद।"

अलंकार सौंदर्य को प्रसाद ने स्वीकारा है-

"जो अलंकार बाह्य साद्श्य की अपेक्षा आंतर साद श्य को प्रकट करने वाले होते हैं, वे ही काव्य में भावोत्कर्ष को बढ़ाने में सहायक होते हैं।"

शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अयत्नज अलंकार सौंदर्य में व द्धि करते हैं जिनमें अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, मानवीकरण आदि प्रमुख हैं जिनके भेद एवं उपभेदों का सुंदर स्वरूप कामायनी में मिलती है।

प्रसाी के सौंदर्य बोध में मानवीय सौंदर्य का प्रमुख स्थान है जिसके नर, नारी, अशरीरी तीन रूप कामायनी में चित्रित हैं।

डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने लिखा है-

"कामायनी में पात्रों की संख्या बहुत कम है इसके प्रमुख पास तीन ही हैं- मनु, श्रद्धा और इड़ा।"

मनु ही नर पात्र हैं उनके सौंदर्य निरूपण के विषय में गुप्त न लिखा है-

"मनु के व्यक्तित्व में पुरुष का सबल और स्वास्थ स्वरूप तो मूर्तिमान है ही, उसकी सूक्षम मननशीलता, व्यापक स्वार्थपरता और उच्द ंखल कामुकता भी विद्यमान है।"

डॉ. गुलाब राय ने मनु के मानीव सौंदर्य के विषय में लिखा है-

."मनु जिस रूप में हिमगिरि पर दिखाई देते हैं वह चिन्ताकुल हाने पर भी पूर्णतया स्वस्थ और पौरुष भय है। मनु का जैसा स्वस्थ पुरुष सौंदर्य प्रसाद जी ने अंकित किया है वैसा अत्यन्त बहुत कम देखने को मिलता है।"

'कामायनी' में पुरुष सौंदर्य की सजीवटा दर्शनीय है। उनके शरीर का प्रत्येक अवयव द ढ़ मांस पेशियों से निर्मित है जिसमें अपरिति वीर्य जाज्वलयमान है। शिरायें उभरी हुई हैं जिनमें शुद्ध रकत प्रवाहित हो रहा है। चिन्ता कातुर मुख पर भी अपार

पोरूष देदीप्यमान है। ह्रदय में अपेक्षामय यौवन का मधुमय स्रोत प्रवाहमान है-

"अवयव की द ढ़ मांस-पेशियाँ,
अर्जास्वित था वीरर्य अपार;
स्कीत शिराए, स्वस्थ रक्ता का
हो ताथा जिनमें संचार।"

सौंदर्य प्रेमी का प्रसाद ने 'कामायनी' में पुरुष की अपेक्षा नारी को श्रेष्ठ माना है। नारी के रूप सौंदर्य का चित्रण करने में उन्हों ने अपनी अद्‌भूत कला-कुशलता का परिचय दिया है। श्रद्धा के रूप-सौंदर्य की झांकी 'श्रद्धा' एवं 'इड़ा' सग्र में मिलती है। श्रद्धा का सौंदर्य द ष्टव्य है-

"ह्रदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लंबी काया, उन्मुक्त;
मधुपवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल,
सुशेभित हो सौरभ संयुक्ता।

x x x x x

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा म दुल अधखुला अंग;
खिला हो जयों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग"

देव नारियों का सौंदर्य वर्णन कुछ भिन्न है-

"सुरा सुराभिमय वदन अरुण वे
नयम भरे आस अनुराग;
कल कपोल था जहाँ बिछलता
कलप व क्ष का पीत पराग।"

श्रद्धा का अन्य रूप सौंदर्य उद्‌ध त है-

"घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास;
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।"

इड़ार का रूप सौंदर्य कुछ इसी प्रकार का है। इड़ा सारस्वत प्रदो जो बुद्धि का प्रतीक है और जिसमें देवताओं और दानवों का युद्ध हो चुका है। रानी है। वह कर्म और विचार की अधिष्काली देनी है। उसका रूप तर्कभय एवं ज्ञानमय है-

"बिखरीं अलकें ज्यों तर्क जाल"

वह विश्व मुकुट-सा उज्जवलतम शशि खंड-सद श था स्पष्ट भाल
दो पद्‌म पलाश चषक से द ग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजारेत मधु से मुकुल सद श वह आनरन जिसमें भए गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संस ति के सब विज्ञान-ज्ञान
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा जीवन एस सार लिए
दूसरी विचारों के नाम को था मुधर अभय अवलंब दिये
लिबली थी त्रिगुण तरंमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताला।"

गर्भवती नारी का सौंदर्य कम दर्शनीय नहीं होता है, नारी का अमर्यादित मांसल सौंदयर्स निरूपण देखिए जो रीतिकालीन श ंगार परंपरा की ओर संकेंतित करता है।

"खुले मस न भुज-मूलों से
वह आमंलण था मिलता;
उन्नत वक्षों में आलिंगन
सुख लहरों सा तिरता।"

जिसमें एक साथ श ंगार, करुणा, दया, वात्सल्य आदि अनेक भावों के दर्शन होते हैं। गर्भवती श्रद्धा का रूप सौंदर्य देखिए-

दग्ध श्वास से आहन निकले सजल कुहू में आज यहाँ।
कितना स्नेह जला कर जलता ऐसा है लघु दीप कहाँ?
बुझ न जाय वह साँझ किरन-सी दीप-शिखा इस कुटिया की
शलभ समीप नहीं तो अच्छा, सुखी अकेले जले यहाँ।"

गर्भवती नारी में स्फूर्ति विहीनता आ जाती है नई-नई स्मि तियां विलीन हो जाती हैं। अनुरोध एवं उल्लास न होने पर भी सौंदर्य का निखार द ष्टिगोचर होता है-

"भावना मयी वह स्फूर्ति नहीं
नव नव स्मित रेखा में विलीन
अनुरोध न तो उललास, नहीं
कुसुमोद गम-सा कुछ भी नवीन।"

गर्भावस्था में मुख पीला हो जाता है। स्नेह का सौंदर्य होता है-

"केतकी गर्भ-सा पीला मुंह
आँखों में आलस भरा स्नेह;
कुछ क शता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह।"

शरीरी मानवीय सौंदर्य के अतिरिक्त प्रसाद ने अशरीरी सौंदर्य अंकन की प्रतिभा का प्रदर्शन किया है-

जिसके तट पर विद्युत कण से
मनोहारिणी आकृति वाले;
छायाभय सुषमा में विह्वल
विचर रहे सुन्दर मतवाले।
x x x x x
ये अशरीरी रूप, सुमन से
केवल वर्ण गंध में फूले;
इन अप्सरियों की तानों के
मचल रहे हैं सुन्दर झूले।"

अपसराओं को कोई रूप आकार नहीं होता है। प्रसाद ने उन्हें अशरीरी स्वीकारते हुए भी उनके सैंदर्य का सफल अंकन किया हे जिसमें कल्पना का अधिक सहारा लिया गया है।

प्राकृतिक सौंदर्य ही मानव को सुंदर बनाता है। वस्तुओं के सौंदर्य का वर्णन भी वस्तु-रूप में मिलता है। वस्तुओं का समारोह पूर्ण विशय वर्णन होने पर काव्य में औदात्य आ जाता है, किंतु सूक्ष्म मानसिक व त्तियों और वस्तुओं का स्वरूप आलेख भी कल्पना की उच्चतर शक्ति से ही संभव है।

डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने प्राकृतिक सौंदर्य के संबंध में 'कामायनी' का विवेचन करते हुए लिखा है-

"कामायनी' प्रकृति के वैभवपूर्ण द श्यों एवं उसकी मादक चेष्टाओं के अंकन की द ष्टि से भी परिपूर्ण है।" मानवीय सौंदर्य के चित्रण के साथ-साथ प्रसाद प्रकृति सौंदर्य के चित्रण के धनी कुशल चितेरे हैं।

वर्तमान में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल, भू. पू. कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के भैया जी विष्णु कान्त शास्त्री ने कामायनी में अंकित प्रकृति सौंदर्य के विषय में लिखा है-

"कामायनी न केवल प्रकृति के परिवेश में लिखा गया महाकाव्य है बल्कि प्रकृति और मानव के अद्‌वय साधना की एक विशिष्ट काव्यात्मक उपलब्धि है। प्रकृत कामायनी के अन्तः बाह्य में व्याप्त, उसकी दार्शनिक निष्पन्ति रूप से युक्त, उसके काव्य सौंदर्य की साधिका, उसके चरित्रों की लीला भूमि, शिक्षिका, सहचरी उन चरित्रों के रूप, स्वभाव, विचारों एवं भावों के बोध के लिए अपरिहार्य तत्व है।"

प्रकृति सौंदर्य की यह सभी विशेषताएं कामायनी में विद्यमान हैं। डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने प्रकृति को 'कामायनी' का प्रमुख तत्व स्वीकारते हुए लिखा है-

"प्रकृति और सौंदर्य सौंदर्य की प्रकृति तथा प्रकृति का सौंदर्य कामायनी की कांतिमान चेतना है। महाकाव्य में पुरुषविहीना अकेली प्रकृति है, विश्व सुन्दरी प्रकृति है................ प्रकृति के माध्यम से प्रसाद ने सौंदर्य तत्व का अपना परम भागवत रूप सिद्ध कर लिया है............. यह प्रकृति प्रलय और संस ति दोनों का अभियान करती है।"

प्राकृतिक सौंदर्य आलंबन, उद्दीपन, रहस्यात्मक, मानवीकरण, उपदेशात्मक, आलंकरण, प्रतीकात्मक आदि कई रूपों में देखा जा सकता है। कामायनी के प्रकृति सौंदर्य के विषय में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है-

"प्रसाद ने प्रकृति के रम्य एवं भयानक सभी रूपों की आकर्षक एवं भव्य आंकी प्रस्तुत करते हुए 'कामायनी' में जो प्रकृति चित्रण की ही प्रधानता है। उनकी द ष्टि में प्रकृति के अन्तर्गत एक ऐसी चेतना सम्पन्न विराट सत्ता विराजमान है, जिसके उदर में वन, गिरि, नदी, निर्झर आदि सभी सभाए हुए हैं जो समयानुकूल परिवर्तनों द्वारा अद्‌भुत छटा विकीर्ण किया करती है, जो अपने अद्‌भूत द श्यों एवं आश्चर्यजनक लीलाओं द्वारा अलौकिक आनंद प्रदान करती है।"

प्रसाद ने प्रकृति के सौभ्य एवं भयानक अवयवों की झांकियां प्रस्तुत की हैं और उनमं प्रकृति में कहीं भी जड़ता एवं निर्जीवता नहीं दिखाई देती अपितु सर्वत्र एक चेतना एवं नीजींवता नहीं दिखाई देती अपितु सर्वत्र एक चेतना एवं सजीवता विलास करती हुई प्रतीत होती है। कामायनी में प्रसाद का झुकाव प्रकृति के अनिंदय रूप सौंदर्य की ओर अधिक है और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को प्रकृति के अतिरिक्त अन्य कहीं भी ऐसे अनुपम सौंदर्य की झलक नहीं दिखाई देतीं इसी कारण 'कामायनी' में प्रकृति के अत्यंत भव्य एवं विंबग्राह्य चित्रों का आधिक्य है। प्रलय कालीन समुद्र का रूप चित्रण, फन फैलाए हुए सर्पिणी स्वरूप हुआ है। इसमें प्रकृति की भयानकता का चित्रण हुआ जो विचित्रता के साथ-साथ अलौकिक सौंदर्य प्रस्तुत करता है-

"उधर करजर्ती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाए व्यालों सी।

x x x x

करका क्रंदन करती गिरती
और कुचलना था सबका;
पंचभूत का यह तांडव मय
न त्य हो रहा था कब का।"

प्रकृति के सौमय रूप का सौंदर्य अंकित करने में प्रसाद को अपूर्व सफलता मिली है-

उकसी तलहटी मनोहिर
श्यामल त ण वीरुध वाली;
नव कुंज गुहा-ग ह सुन्दर

हद से भर रही निराली।

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रसाद ने हरियाली को अरूण एवं पीत रस भी दे दिया है। सुमनों के पर्व में डालियों भी छिप गई थीं-

"वह मंजरियों का कानन
कुछ अरुण पीत हरियाली;
प्रतिपर्व सुमन संकुल थे
छिप गई उन्हीं में डाली।"

सांध्यकालीन प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन निराला है। अस्ताचल सूर्य पर्वतों के पीछे छिप गया है चन्द्रमा आसमान में चमक रहा है। ऐसा लगता है कि कैलाश प्रदेश में किसी लगन में बैठा है-

"दिनकर गिरि के पीछे अब
हिमकर था चढ़ा गगन में,
कैलास प्रदोष-प्रभा में
स्थिर बैठा किसी लगन में।"

बहते हुए झरनों के सौंदर्य को कवि ने शब्द-जाल में बन्दी बना लिया है-

"प्रवहमान ये निम्न देश में
शीतल शत शत निर्झर ऐसे,
महाश्वेत गजराज गण्ड से
बिखरीं मधु धाराएं जैसे।"

संध्या सुंदरी धन माला जैसे रंग बिरंगी साड़ी पहने प्रतिदिन आती हैं ओर चली जाती है। गगन-चुंबी शैली श्रेणियों ने तुषार-किरीट पहनामा प्रारम्भ कर दिया है-

"संध्या धन-माल की सुन्दर ओढ़े रंग बिरंगी छींट।
गगन चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ, पहने हुए तुषार किरीट।"

संधा सुंदरी का मानवीकरण कर उसके सौंदर्य को प्रसाद ने निखार दिया है। संध्या सुंदरी का अन्य आकर्षक रूप उद्ध त है-

"संध्या समीप आयी थी
उस सर के, वलकल-वसना;
तारों से अलक गुँथी थी
पहने कदंब की रसना।
रवग-कुल किलकार रहे थे।
कल हंस कर कलरव;
किन्नरिया बनी प्रतिध्वनि
लेती थीं तानें अभिनव।"

प्रकृति के ऐसे संश्लिष्ट सौंदर्य चित्रों की कामायनी में कमी नहीं है। ऐसा ही संशिष्ट चित्र हिमालय का है जिसमें उसे विश्व कल्पना के समान अत्यन्त उन्नत, सुख-शीतलता एवं संतोष से परिपूर्ण, डूबती हुई अचला का अवलंबन, माणि रत्नों का कोश आदि कहकर एक अति शोभनतन शरीर धारी पर्वतों के सम्राट के रूप में चित्रित किया गया है जो लताओं से घिरा से होने पर ऐसा प्रतिभासित होता है मानो सुख स्वप्न देख रहा हो-

"स्वर्ण शालियों की कलमें थीं
दूर दूर तक फैल रही;

शरद इंदिरा के मंदिर की
मानो कोई गैल रही।
विश्व कल्पना-सा ऊँचा वह
सुख शीतल संतोष निदान;
और डूबती सी अचला का
अवलंबन मणि रत्न निधान।
अचल हिमालय का शोभन तम
लता कलित शुचि सानु शरीर;
निद्रा में सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीरा।"

प्रसान ने मानवीय एवं प्राकृतिक रूप सौंदर्य के सजीव एवं सफल चित्रांकन में अपूर्ण प्रसिद्धि प्राप्त की है। इनके सौंदर्य बोध में क्रम व्यवस्था, माधुर्य, पूर्णता, तथा संक्षिप्तता द ष्टिगोचर होती है। चित्रांकन की संक्षिप्त शैली में मार्मिकता विद्यमान है। लघु विवरण ही सहृदय के हृदय-पटल पर सौंदर्य का रूप उपस्थिति करने में पूण्र सफल हो जाता है। सौंदर्य सुषमा का दर्शन कर अध्येता आनंद विभोर हो जाता है।

प्रसाद के काव्य सौंदर्य को वर्णित करते हुए मतादेवी वर्मा ने लिखा है-

"बुद्धि के आधिकय से पीड़ित हमारे युग को प्रसाद का सबसे महत्वपूर्ण दान कामायनी है अपने काव्य सौंदर्य के कारण भी और अपने समन्वयातमक जीवन दर्शन के कारण भी।''

तात्पर्य यह है कि 'कामायनी' में प्रसान दे सौंदर्य बोध की द ष्टि से कोई कोना अछूता नहीं छोड़ा है। वस्तु, भाव कल्पना, भाषा, रस, अलंकार मानवीय एवं प्राकृतिक समस्त सौंदर्य का सम्यक निरूपण कामायनी में किया है। कामायनी में सभी प्रकार के सौंदर्य का विधान किया गया है जो प्रसाद के सौंदर्य बोध की निपुणता एवं बारीकी का परिचायक है।

कामायनी : अंगीरस

रस, अलंकार, ध्वनि, रीति एवं वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा विभिन्न आचार्यो ने माना है। रस वास्तव में आनंद है। जय शंकर प्रसाद ने कामायनी में आनंद की प्रतिष्ठा की है।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' कहकर रस को काव्य की आत्मा माना है। वास्तव में रस भावना से ओत-प्रोत होकर ही कवि ह्रदय से कल-कल निनादित मधुर मंदाकिनी प्रवाहित होती है जिसमें अवगाहन करके उनका काव्य अमर हो जाता है। रस काव्य की आत्मा है। प्रत्येक काव्य रचना में रस की सहज अंतर्व्याप्ति होती है। महाकाव्य जीवन का सर्वांगीण चित्रण होता है उसमें विभिन्न रसों की विद्यमानता होती है जिनमें से एक रस अपनी प्रमुख विशेषताओं के कारण अंगीरस का स्वरूप धारण कर लेता है अन्य रस उसके अंग स्वरूप होते हैं। अंगीरस महाकाव्य के आदि से अंत तक अपना स्पष्ट रूप बनाए रहता है।

आचार्य भरत ने स्पष्ट रूप से स्वीकारा है कि महाकाव्य में एक रस प्रधान होता है तथा अन्य रस अंग संचारी स्वरूप उसका पोषण करते हैं-

"बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद्बहु।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणी मताः।"

अभिनव गुप्त ने आचार्य भागुरि मुनि का उल्लेख करते हुए इस तथ्य की पुष्टि में लिखा है-

"तथा च भागुरि रपि किं रसानामपि;
स्थायी संचारितास्तीति आक्षिप्यानुपगमेनैवोत्तरम वोचद् बाढ़मिति"।

अंगीरस मानने में सभी आचार्यो में मतैय हैं। श्र ंगार, शांत एवं वीर में से किसी एक रस को अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठापित किया जा सकता है।

डॉ० नगेंद्र ने काव्य शास्त्र के आधार पर अंगीरस के निर्धारण में तीन लक्षणों का होना आवश्यक माना है-

1. **बहुव्याप्ति** - महाकाव्य में विद्यमान विभिन्न रसों में से जो रस कथानक में सबसे अधिक व्याप्त हो वही अंगी रस है। अंगीरस के संबंध में ध्वन्यालोक में लिखा गया है-

   "प्रसिद्धे णि प्रबंधानां नानारसनिवंधने
   एको रसो गी कर्तव्यः . . . .।"

   अर्थात प्रबंध काव्यों में नाना रसों का समावेश प्रसिद्ध होने पर भी उनमें से एक रस का अंगी रूप में नियोजन करना चाहिए।

   "प्रबन्धेषु प्रथमतं प्रस्तुतः सन् पुनः पुनरनुसंधीय
   मानत्येन स्थायी यो रसः . . . .।"

   अर्थात प्रबंधों में प्रथम प्रस्तुत और बार-बार अनुसंहित होने से जो रस स्थायी है।

   बहुव्याप्ति अंगीरस का प्रमुख लक्षण है।

2. **प्रधान पात्र की मूल व त्ति से संबद्ध** - अंगीरस में कथानक को वहन करने वाले प्रधान पात्र की मूल व त्ति का प्रतिफलन रहता है। प्रधान पात्र (नायक अथवा नायिका) के चरित्र की मूल व त्ति कथानक के दोनों पक्षों - घटना और और भाव का संचालन करती है तथा यही मूल व त्ति अंगीरस से भी संबंधित होती है।

3. **फल का भोक्ता** - अंगीरस फलागम या उद्देश्य का आस्वाद रूप होता है। वस्तुतः फल का निर्णय फलायोग के आधार पर निर्भर होता है। प्रसाद का कथन है-

"फल का निर्णय अन्वय तथा व्यतिरेक दोनों पद्धतियों से फलयोग के आधार पर ही होता है।"

समग्र महाकाव्य के अध्ययनोपरांत जिस स्थायी मनः स्थिति का निर्माण होता है काव्यास्वाद की द ष्टि से वहीं प्रमुख रस है।

'कामायनी' महाकाव्य है जिसमें जीवन के विशद एवं विभिन्न रूपों तथा परिस्थितियों का चित्रण किया गया है जिसके परिणामस्वरूप 'कामायनी' में अनेक रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है।

श्र ंगार रस - श्र ंगार रस राज है। इसका स्थायी भाव 'रति' है। संयोग-वियोग इसके दो भेद हैं। वियोग को विप्रलंभ श्र ंगार भी कहा जाता है। 'कामायनी' में श्र ंगार के दोनों रूपों का सफल एवं सजीव चित्रण किया गया है। "ईर्ष्या" सर्ग तक संयोग तथा 'इड़ा' सर्ग में वियोग श्र ंगार द ष्टिगोचर होता है। 'स्वप्न' सर्ग में विप्रलंभ का मार्मिक चित्रण हुआ है।

"मनु निरखने लगे ज्यों-ज्यों यामिनी का रूप
वह अनंत प्रगाढ़ छाया फैलती अपरुप।
बरसता था मंदिर कण सा स्वच्छ सतत अनंत,
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमन्त,
छूटती चिनगारियां उत्तेजना उद्भ्रान्त,
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत,
वात चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश
धैर्य का कुछ भी न मनु के ह्रदय में था लेश।"

- वासना सर्ग

संयोग श्र ंगार में मर्यादित सद्य संभोग का जैसा अनुपम चित्र प्रसाद ने कामायनी में प्रस्तुत किया है वैसा विश्व साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है-

"दो काष्ठों की संधि बीच उस, निम त गुफा में अपने;
अग्नि शिखा बुझ गई, जागने, पर जैसे सुख सपने।"

श्रद्धा आलंबन है। उसका सौंदर्य उद्दीपन है। मनु के ह्रदय एवं श्रद्धा में मधुर अग्नि शिखा का जलना, विकलता, अशांतता एवं धैर्यहीनता अनुभाव हैं। स्थायी भाव रति है इन सबके संयोग से श्र ंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। जाग तावस्था में जो स्थिति स्वप्न की होती है, वासना की अग्नि शिखा के बुझने पर वहीं स्थिति काम की होती है। अमर्यादित श्र ंगार रस के संयोग का वर्णन 'संघर्ष' सर्ग में देखा जा सकता है, जहाँ मनु इड़ा का सद्यः संभोग श्र ंगार वर्णित है।

"अपनी दुर्बलता में मनु तब हाँफ रहे थे,

स्खलन विकंपित पद वे अब भी काँप रहे थे।"

वात्सल्य - बाल चेष्टाओं अथवा बाल सौंदर्य से आक ष्ट हो मानव ह्रदय में स्नेह भाव उदित होने से वर्णन में वात्सल्य रस की स ष्टि होती है। 'वत्सल' इसका स्थायी भाव है। कामायनी के 'ईर्ष्या' एवं 'स्वप्न' सर्गो में वात्सल्य रस का सुंदर परिपाक हुआ है। ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा का भावी संतान के लिए कुटीर निर्माण, झूलादि वर्णन स्थल वात्सल्य रस के परिचायक हैं। 'स्वप्न' सर्ग में श्रद्धा के वात्सत्य की मुखरता रेखांकित है-

"मां- फिर एक किलक दूरागत गूंज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे ह्रदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लुटरी खुली अलक, रज धूसर बाँहे आकर लिपट गई,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।"

वत्सल स्थायी भाव है। श्रद्धा पुत्र मानव आलंबन है। मानव की किलक, रजधूसर बाँहे, उद्दीपन, उत्कंठित माँ का मानव को गोद में लेने के लिए दौड़ना अनुभाव तथा आवेग, हर्ष, औत्सुक्य संचारी भाव हैं। इन सबके संयोग में परिपुष्ट होकर 'वत्सल' स्थायी भाव से वात्सल्य रस की निष्पत्ति हुई है।

वीभत्स - जहां सड़ांध, दूषित वातावरण अथवा 'कर्म' सर्ग में मनु द्वारा किए गए हिंसक कर्म एवं घ णास्प्रद वस्तुओं के वर्णन में वीभत्स रस द ष्टिगोचर होता है अर्थात् असह्य स्थिति होती है वहाँ वीभत्स रस होता है। यथा-

"यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला,
दारुण द श्य रुधिर के छींटे, अस्थि खंड की माला;
वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी,
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी।"

वीभत्स का स्थायी भाव 'जुगुप्सा' है। पशु यज्ञ आलंबन, रुधिर के छींटे तथा अस्थिरखंड की माला का दारुण द श्य उद्दीपन, पशु की कातर वाणी, वेदी पर पशुवध अनुभाव तथा ग्लानि आवेगादि संचारी भाव हैं जिनके संयोग से जुग प्सा नामक स्थायी भाव वीभत्स रस को निष्पन्न करता है।

अद्भुत - 'कामायनी' में 'चिंता' सर्ग अद्भुत के वर्णनों से भरपूर है। इससे अधिक अद्भुत वर्णन 'रहस्य' एवं 'दर्शन' सर्ग में है। त्रिलोक एवं त्रिपुर वर्णन तथा शिव के दिव्य ताडंव न त्य वर्णन में अद्भुत रस के दर्शन होते हैं।

करुण - कामायनी में 'चिंता' सर्ग में मनु की चिंतित एवं उद्विग्न स्थिति वर्णन में करुण रस की स ष्टि हुई है।

शांत - 'कामायनी' आदि से अंत तक शांत रस से परिपूर्ण है। 'चिंता' सर्ग में मनु की जीवन के प्रति विरक्ति इसी को संकेतिक करती है। यह विरक्ति 'निर्वेद' सर्ग में अति मुखर रूप धारण कर लेती है जहाँ मनु की अनित्य संसार के प्रति विरक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। 'दर्शन' सर्ग में शिव के दिव्य दर्शन, 'रहस्य' सर्ग में संसार एवं जीवन संबंधी तत्व ज्ञान, 'आनंद' सर्ग में ज्ञान-आनंद प्राप्ति के प्रसंगों में शांत रस का विशद वर्णन हुआ है-

"स्वप्न, स्वाय, जागरण भस्म हो, इच्छा, क्रिया ज्ञान मिललय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में, श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।"

'निर्वेद' स्थायी भाव विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव के संयोग से शांत रस में निष्पन्न हुआ है।

रौद्र - क्रोध नामक स्थायी भाव रौद्र रस का जन्म दाता है। 'कामायनी' के 'संघर्ष' सर्ग में सारस्वत नगर की क्षुब्ध एवं विद्रोही प्रजा के साथ मनु के युद्ध वर्णन में रौद्र का सुंदर प्रस्फुटन हुआ है-

"अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजा दल-सा झुंझलाता,
रण-वर्षा में शस्त्रों-सा, बिजली चमकाता।
किंतु क्रूर मनु वारण करते उन वाणों को,
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।"

'क्रोध' स्थायी भाव है। प्रजा आलंबन, प्रजा का झुंझलाना, शस्त्र चलाना उद्दीपन, मनु द्वारा खड्ग से जन-प्राणों को कुचलना, बाण वर्षा करना, अनुभाव तथा आवेग, उग्रता, मदादि संचारी भाव हैं। 'क्रोध' नामक स्थायी भाव सबके संयोग से 'रौद्र' रस से निष्पन्न हुआ है।

वीर - शत्रु की विपरीत चेष्टाओं के विरोध में मानव स्वभावतः उसे विनष्ट करने के भाव से प्रेरित हो उठता है। ऐसे समय उसका 'साहस' कर्म रूप में परिणत हो जाता है। ऐसा वर्णन 'वीररस' कहलाता है। चिंतन प्रधान महाकाव्य 'कामायनी' में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष वर्णित है। इसलिए वीररस का चित्रण अपेक्षाक त कम है। कुछ स्थलों पर वीररस की सजीव अभिव्यक्ति द ष्टिगोचर होती है। 'संघर्ष' सर्ग में सारस्वत नगर की क्षुब्ध प्रजा के साथ मनु के युद्ध का सजीव चित्रण देखा जा सकता है। आकुलि एवं किलात सारस्वत नगर की जनता का नेत त्व करते हुए विद्रोह करते हैं। उत्साहित मनु उन्हें चुनौती देते हुए कहते हैं-

"कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया,
अरे समझ कर जिनकों अपना था अपानाया;
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,
रण यह यज्ञ-पुरोहित। ओ किलात ओ आकुलि।"

किलात-आकुलि पुरोहित आलंबन हैं, उनका उत्पात मचाना आलंबन, मनु का युद्ध के लिए चुनौती देना अनुभाव है तथा गर्व, उत्सुकता, चपलता, अमर्ष आदि संचारी भाव हैं और इनसे परिपुष्ट 'उत्साह' नामक स्थायी भाव वीर रस के रूप में निष्पन्न हुआ है।

भयानक - 'कामायनी' में 'चिंता', 'स्वप्न' तथा 'संघर्ष' आदि सर्गों में कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ भयानक रस की अभिव्यक्ति हुई है। प्रथम सर्ग ही जल प्लावन से होने वाले विनाश को देखकर मनु आकुल-व्याकुल द ष्टि-गोचर होते हैं जो भयानक रस का उदाहरण प्रस्तुत करता है-

"उधर गरजती सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों सी
चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाए व्यालों सी;
धंसती धरा, धधकती ज्वाला ज्वालामुखियों के निश्वास,
और संकुचित क्रमशः उसके अवमय का होता था ह्रास।"

मनु आश्रय, सागर का भीषण रूप आलंबन, गरजती सिंधु लहरियाँ, धंसती धरा तथा ज्वाला फूटना उद्दीपन एवं चिंतित एवं भयभीत मनु अनुभाव हैं। विषाद स्म ति तथा व्याकुलता संचारी भाव हैं जिनसे परिपुष्ट होकर 'भय' स्थायी भाव, भयानक रस के रूप में निष्पन्न हुआ है।

अंगी रस - कामायनी महाकाव्य में हास्य रस के अतिरिक्त अन्य सभी रसों का परिपाक हुआ है। अंगी रस न केवल प्रमुख रस होता है अपितु उसी के अंतर्गत अन्य सभी रसों का समाहार होता है। शांत रस की बहु व्याप्ति है किंतु आदि से अंत यह प्रमुख नहीं है। प्रारंभ श्र ंगार रस से हुआ है। काव्य शास्त्रीय द ष्टि से शांत रस को कामायनी का अंगी रस बनने की क्षमता प्राप्त नहीं है। शांत रस के संबंध में आचार्य मम्मट का कथन है-

संसार की अनित्यता एवं दुखमयता से उत्पन्न निर्वेद ही इसका स्थायी भाव है। काव्य प्रदीप में कहा गया है-

शांत रस का स्थायी भाव शम है और निर्वेद स्थायी भाव है। 'शम' का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है-

"शमो निरीहावस्थायामानन्दः स्वात्म विश्राया दिति।"

अर्थात् निरीहावस्था में आत्मविश्रांति जन्म आनंद का नाम शम है। तथा श्र ंगार इसका विरोधी रस है। ये मान्यताएँ 'कामायनी' का अंगीरस शांत को मानने में बाधक सिद्ध होती हैं क्योंकि 'कामायनी' में संसार को नित्य एवं दुखमय न मानकर चिति का विराट वपु मंगल तथा सत्य सतत एवं चिर सुंदर स्वीकारा गया है। इसके अतिरिक्त 'श्र ंगार' 'कामायनी' का प्रमुख रस है क्योंकि कामायनी के पूर्वार्द्ध में श्र ंगार रस का ही परिपाक हुआ है।

वास्तव में जयशंकर प्रसाद की इस कल्पना पर शैव दर्शन का अत्यधिक प्रभाव है। शैव दर्शन में श्र ंगार एवं शांत से युक्त आनंद भाव को मान्यता प्रदान की गई है। स्वयं प्रसाद का कथन है-

"शैवागम के आनंद संप्रदाय के अनुगामी रस की दोनों सीमाओं श्र ंगार और शांत को स्पर्श करते थे। यह शांत रस निस्तरंग महोदधि कल्प समरसता ही है।"

कामायनी के अंत में महा आनंद एवं सामरस्य के ही दर्शन होते हैं। कामायनी के पात्र श्रद्धा एवं मनु भी निव त्तिमार्गो न होकर प्रव त्तिमार्गी हैं। यही आनंदवाद एवं सामरस्य कामायनी का चरम उद्देश्य एवं लक्ष्य भी है-

"समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।"

कामायनी के अंगीरस से संबंधित डॉ० नगेंद्र का मत रेखांकित है-

"कामायनी में अनेक रस हैं, किंतु वे शैवागम की सांप्रदायिक शब्दावली में आनंद रस अभिनव गुप्त की शास्त्र सम्मत शब्दावली में तात्विक अर्थ में 'शांत रस' के विकार मात्र हैं। अतः कामायनी का अंगी रस आनंद रस या व्यापक एवं मौलिक अर्थ में शांत रस है- जो अभिनव प्रतिपादित शांत शैवागम के आनंद रस का ही पर्याय है। . . . . आनंद रस या शांत रस को अंगी रस मान लेने पर सभी समस्याओं का समाधान सहज हो जाता है। इस रस का स्वरूप इतना व्यापक और

परिपूर्ण है कि इसमें शांत और श्रृंगार का विरोध नहीं है। वस्तुतः श्रृंगार और शांत इसकी दो कोटियाँ हैं . . . . 'कामायनी' के पूर्वाद्ध में श्रृंगार और उत्तराद्ध में शांत के प्राधान्य का यही रहस्य है . . . . अतः 'कामायनी' का अंगीरस भारतीय रस सिद्धांत का आधारभूत आनंद रस ही है जिसका दूसरा नाम मौलिक अर्थ में शांत भी है। यही 'कामायनी' के वस्तु विधान प्रतिपाद्य तथा रूपविधान के अनुकूल है। जिसके अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अभिव्यक्ति का नाम है- श्रृंगार शांत आदि काव्य शास्त्रीय रस विकल्पों की अपेक्षा संकल्पात्मक आनंद रस की ही संगति उपयुक्त काव्य लक्षण के साथ ठीक बैठती है।"

कामायनी का अंगीरस आनंद या महानंद रस है जिसके अंतर्गत अन्य सभी रसों का समावेश हो जाता है।

कामायनी : दार्शनिकता

दर्शन करने वाला साधन दर्शन कहलाता है, "द श्यते नेन इति दर्शनम्"। तत्वानिवेषी परमात्मा, आत्मा, जीवात्मा, माया, जीव, जगत, प्रक ति तथा संसार आदि सत्यों को तर्क द्वारा उद्घाटित करते हुए जिस द ष्टि से देखते है वही दर्शन कहलाता है। कवि अपने जीवन दर्शन एवं विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति हेतु किसी दार्शनिक तथ्य का आश्रय ग्रहण करता है क्योंकि उसके लिए दर्शन आवश्यक होता है। एस० टी० कालरिज ने कवि के लिए दर्शन की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है-

"महान दार्शनिक हुए बिना कोई महान कवि नहीं हो सकता।"

इसी प्रकार के विचार एस० एच० बूचर ने व्यक्त करते हुए लिखा है-

"वैश्विक अवधारणाओं एवं जीवन-जगत संबंधी सामान्य तथ्यों का उद्घाटन करने में कविता और दर्शन में प्रायः समानता है किंतु कविता ऐंद्रियिक एवं प्रतिभासिक माध्यमों के व्यवहार की विधि अपनाती है। इस अर्थ में कविता गोचर दर्शन हो उठती है। संसार की श्रेष्ठ काव्य रचनाएँ इस हेतु की दार्शनिक भी कहलाती हैं।"

इस द ष्टि से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि काव्य अंर्तदर्शन की ही अभिव्यक्ति है, इसके बिना काव्य का मूल्य नहीं है।

'कामायनी'- विश्व साहित्य की उत्क ष्ट क ति है जिसके आरंभ में देवताओं के जीवन दर्शन की तुलना में मानव-जीवन दर्शन का निरूपण किया गया है। देवताओं की अमरता प्रसाद की द ष्टि से सापेक्ष और स्वल्प स्थायी थी। इसीलिए प्रसाद ने देव स ष्टि का ध्वंस प्रदर्शित किया है। क्योंकि देव संस्क ति के निर्माण का आधार एकांगी था। वह मात्र सुख का आकांक्षी एवं विलासी था। प्रक ति पर भी आधिपत्य स्थापित कर उसका उपयोग अपनी सुख-सम द्धि के लिए करना मात्र ही उद्देश्य था। प्रक ति ने देवता की अनाचार प्रव त्ति का बदला लिया।

प्रसाद प्रक ति के सचेतन शक्ति के रूप में स्वीकारते हैं प्रक ति वह अनिवर्चनीय शक्ति है जो मनुष्य के बढ़ते हुए अहंकार का शमन करती है। इसी को प्रसाद ने 'नियति' की संज्ञा दी है। दो संस्क तियों के द्वंद्व में एकांगिता की प्रधानता है-

"जीवन को लेकर नव विचार;
जब चला द्वंद्व था असुरों में प्राणों की पूजा का प्रचार"।

देवताओं की प्रमुख विशेषता आत्मा की एकांगी पूजा थी। वह अपना मानसिक एवं शारीरिक उत्कर्ष मात्र चाहता था। दोनों में विश्वास और श्रद्धा का नामो निशान न था। वही संघर्ष का कारण था। जीवन में अखंड आनंद की प्रदायिनी श्रद्धा ही है।

प्रसाद के आनंदवाद सर्ववाद के सिद्धांत पर केंद्रित है जिसे वैदिक अद्वैत सिद्धांत की संज्ञा दी जा सकती है। शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित सर्ववाद में माया की सत्ता को स्वीकारा है जो प्रसाद के दर्शन से भिन्न है।

सर्ववाद प्रवत्ति और निव त्ति दोनों का आत्मसात करता है जबकि शंकर का मायावाद केवल निव त्ति पर आश्रित है। द श्य जगत को ब्रह्म से अभिन्न मानकर चलने वाली भारतीय दर्शन की वैदिक धारा का क्रमिक विकास शैवागम ग्रंथों में प्रतिष्ठित हुआ है। प्रसाद ने शैवागम से ही इस सर्ववाद मूलक आनंदवाद को ग्रहण किया है। 'काम' सर्ग में काम द्वारा मनु को दी जाने वाली शिक्षा में इसी दार्शनिकता का संकेत है-

"यह नीड़ मनोहर क तियों का, यह विश्व कर्म रंगस्थल है;
है परंपरा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है।"

सर्ववाद का लक्ष्य निव त्ति द्वारा उतनी नहीं सिद्ध होता है जितना विश्व को कर्मस्थल मानने से सिद्ध होता है। यह कोरा कर्म नहीं अपितु समन्वयात्मक कर्म है।

यह 'Survival of the fittest' या 'योग्यतमावशेष' अथवा मत्स्य न्याय सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। 'जिसका लाठी उसकी भैंस' के मुहावरे को चरितार्थ करता है।

'कामायनी' में मानव जीवन और जगत की जटिलताओं तथा विषमताओं के यथार्थ रूप और उद्घाटन दर्शन के आधार पर किया गया है तथा उसका निदान भारतीय दर्शन में खोजा गया है। डॉ० शिव शंकर प्रसाद शर्मा ने इस संबंध में लिखा है-

"काव्य के इतिहास में ऐसे भी युग-कवि हुए हैं, जिनकी किसी क ति में चिंतन-कण ज्वलित हो उठते प्रतीत होते हैं, और उनके चरित्र तथा द श्य के रेखांकन भावों और घटनाओं के प्रतीक ही नहीं होते अपितु जीवन जगत के निविड़ सत्य के मूर्त रूप होते हैं। ऐसी क तियों में दर्शन और काव्य एकमेक हो उठते हैं। वहां बिंब प्रत्यय रूप में अवस्थित होते हैं और प्रत्यय विश्व रूप में। 'कामायनी' ऐसी ही क तियों में परिगणित होती है। क्योंकि उसमें मनुष्य और उसकी नियति से संबंधित कर्म-स्वातंत्र्य की समस्या का, ब्रह्म, जीव और प्रक ति से संबंधित अध्यात्य और धर्म की समस्या का, नर-नारी, राजा-प्रजा तथा व्यक्ति-समूह आदि से संबंधित पारिवारिक, सामाजिक, आधि भौतिक समस्याओं का प्रायः सार्वजनिक रूप बड़े मनोयोग से उपस्थित किया गया है और उनका निदान खोजा गया है . . . . वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, मनुस्म ति, महाभारत, तंत्र साहित्य, शैवागम आदि समस्त स्त्रोतों से 'कामायनी' के दार्शनिक तत्व जुटाए गए हैं। यहीं नहीं, वह ऐसी अप्रतिम क ति है जिसमें ढूँढने पर अस्तित्ववाद, द्वंद्वात्मक भौतिक वाद, एकाकीपन और आतंकवाद, सर्जनात्मक विकासवाद आदि के भी अधुनात्तम, दार्शनिक चिंतन-कण झलके मारते मिलेंगे। किन्तु उपयुक्ततम उपनिबंधन और उपसंहार की द ष्टि से 'कामायनी' का दर्शन पूर्णतः भारतीय और निभ्रान्तितः आध्यात्मिक है। वस्तुतः 'कामायनी' में प्रसाद का उद्देश्य आनंदवाद है। जिसका आधार प्रतिभिज्ञा दर्शन है। साथ ही अन्य दार्शनिक मान्यताओं को भी अभिव्यक्ति मिली है।"

आनंदवाद 'कामायनी' का मूल प्रतिपाद्य है। कामायनी का नायक मनु समरसता के मार्ग से जिस अखंड आनंद की उपलब्धि करता है, उसका मूलाधार शैवागम है। शैवों के इस आनंदवाद का मूल रूप उपनिषदो में निहित है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है-

"आनंदो ब्रह्मेति। आनंदाद्धयेव खात्विमानि भूतानि जायंते।
आनंदेन जातानि जीवंति आनदं प्रत्यन्त्यभि संविश नीति।"

अर्थात आनंद ही ब्रह्म है। आनंद से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनंद से ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रस्थान करते हुए अंत में आनंद में प्रविष्ट हो जाते हैं।

प्रसाद भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के अध्येता एवं अनुयायी हैं। वे सुख-दुख को तात्विक वस्तु नहीं मानते हैं। सुख-दुखात्मक भावना के ऊपर प्रतिष्ठा पाने वाले आनंद तत्व का प्रसाद ने आदर्श निरुपण किया है। उन्होंने समस्त द्वैतों का परिहार इसी आनंद के अंतर्गत किया है।

समरसता और सामंजस्य लाने का प्रयास किया है। प्रसाद जीवन को नैसर्गिक एवं आडंबरहीन बनाना चाहते थे। क त्रिमता को जीवन का सबसे बड़ा शत्रु समझते थे। समरसता ही जीवन की सार्थकता है-

"समरस थे सब जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था;
चेतना एक विलसती, आनंद अखंड घना था।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कामायनी के दर्शन के विषय में लिखा है-

"किसी एक भावना को रूप देने की ओर भी अंत में प्रसाद जी ने ध्यान दिया, जिसका परिणाम है कामायनी। इसमें उन्होंने अपने प्रिय आनंदवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बनाकर की है।"

प्रसाद ने अद्वैत और आनंदवाद को भारत के दार्शनिक चिंतन का निचोड़ स्वीकारा है।

डॉ० विजयेंद्र स्नातक ने कामायनी-दर्शन में लिखा है-

> **"मनु अर्थात मनन शक्ति (मन) के साथ श्रद्धा अर्थात हृदय की भावनात्मक सत्ता, विश्वास-समन्वित रागात्मिका व त्ति तथा इड़ा अर्थात व्यवसायात्मिका बुद्धि के संघर्ष और समन्वय का विवेचन ही कामायनी का दार्शनिक आधार है।"**

योग की परमोत्क ष्ट अवस्था जिसमें कि 'सर्वखल्विंद ब्रह्म'; 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि आध्यात्मिक सूक्त प्रत्यक्ष जीवन में घटते हैं, उसी अवस्था का लक्षण -'समदर्शिता' अथवा 'समरसता' रूप में प्रकट होता है। यही समरसता का सिद्धांत 'कामायनी' का मूल दार्शनिक लक्ष्य है।

कोरा दर्शन बुद्धिवाद कहा जाता है। 'कामायनी' में प्रयुक्त दर्शन को 'कोरा दर्शन' नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें प्रसाद के कवि-हृदय ने सरसता सौंप उसे रोचक बना दिया है। प्रसाद का दर्शन जीवन के बीच खाई नहीं खोदता अपितु जीवन और जगत की उलझनों को क्रम से सुलझाकर अपने मूल लक्ष्य पर पहुँचाता है और वह लक्ष्य है-

"जीवन का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना,
किंतु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं;
अथवा उस आनंद भूमि पर जिसकी सीमा कहीं नहीं।"

यहीं आनंद भूमि- आनंदवाद- कामायनी कार का मूल लक्ष्य है। कामायनी की दार्शनिकता इसी के इतस्तः घूमती है। 'तैत्तिरीय उपनिषद' में भी 'अययात्मा परमानंद' कहकर आत्मा को आनंद स्वरूप घोषित किया गया है। मनु चिंता, आशा, वासना, काम आदि दुर्जेय व त्तियों से संघर्ष करते-करते अंत में आनंद की उस मधुमती भूमिका में जा पहुंचते हैं जहां चारो और शांति का साम्राज्य था, आनंद की किलकारियाँ थीं। इस लोक का वर्णन करते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।"

आनंदवाद की स ष्टि प्रसाद की नूतन स ष्टि है जिसके निर्माण में उन्होंने विशेषतः बौद्ध दर्शन, शैव दर्शन, वेदांत दर्शन तथा उपनिषद् दर्शनों से सहायता ली है। उन्होंने इस प्रकार दर्शन की परंपरागत परिपाटी का ग्रहण नहीं किया है अपितु अपना एक विशिष्ट दर्शन-मार्ग प्रस्तुत किया है। डॉ० विजयेंद्र स्नातक ने लिखा है-

"कामायनी की कथा का परिनिर्वाण मनु अर्थात मन की आनंदोपलब्धि के साथ होता है अतएव इसमें आनंवाद की प्रतिष्ठा सर्वत्र असंदिग्ध है।"

डॉ० दुर्गा दत्त मेनन ने कामायनी के दर्शन के विषय में लिखा है-

> **"उनकी अपने ही शिव की कल्पना है उनका आनंदवाद शास्त्रीय नहीं है। वे केवल उनके अपने ही मस्तिष्क की कल्पना है। वे उनके उत्तरोत्तर विकसित होने वाले मन की ही भावभूमि है। शास्त्रीय उपकरणों का उपयोग वे केवल परपंरा का पालना के लिए ही करते हैं। वे उनसे प्रेरणा अवश्य पाते हैं परंतु उनका चित्रण अपनी ही तूलिका से करते हैं।"**

सत्य कोई व्यक्तिगत ज्ञान नहीं वह तो एक शाश्वत चेतना है, उसे चिन्मयी ज्ञान धारा भी कहा जाता है। यह धारा काव्य में सूक्ष्म रूप से बहा करती है। आनंद और उल्लास ही इस धारा के ध्येय हैं। इस धारा का अंतिम सोपान अद्वैतवाद है।

प्रसाद काव्य को आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति मानते हैं। जिसका ज्ञान असाधारण अवस्था से होता है। जो प्रक ति और आत्मा की अद्वयता, अभिन्नता, तादात्म्यता एवं शाश्वत सत्ता का अनुभव कराती है।

दुख के बाद ही सुख आता है। जीवन में सुख-दुख दोनों आवश्यक हैं। इसके विषय में प्रसाद ने लिखा है-

"दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात,
एक परदा वह झीना नील छिपाए है जिसमें सुख गात;
नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान,
व्यथा से नीली लहरों बीच उमड़ते हुए मणिगण द्युतिमान।"

विश्व का मूल द्वंद्व वैषम्य है और इसके उपलक्षण सुख एवं दुख हैं। इनमें भी दुख व्यापक और सुख व्याप्य है। प्रसाद ने सुख का आधार समरसता माना है और दुख का आधार इसका वैषम्य ही है। समरसता के सिद्धांत को उन्होंने शैव दर्शन से ग्रहण किया है। समरसता का अर्थ है कि समस्त सुख-दुख के बीच एक रस रूप शिव विद्यमान है जिसकी प्रत्यभिज्ञा से समरसता आती है तथा सामरस्य की प्रतीति होने पर द्वैत भी आनंदमय हो जाता है-

जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यम तोपमम्।
मित्रयोरिव दम्पत्योःजीवात्म परमात्यनोः।

समरता के सिद्धांत का समर्थन उपनिषद् इस प्रकार करता है-

"आनंदाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
आनंदेनैव जातानि जीवन्ति, आनंद प्रत्यभिसंविशन्ति।"

इसी आनंद का संदेश प्रसाद का दार्शनिक देता है-

"नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान,
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणिमण युतिभान।"

शैवागमों के अनुसार समस्त स ष्टि आनंद से पूर्ण है। दुख और चिंता क्षणिक हैं। सुख ही शाश्वत है। आनंद ही ब्रह्म है।

आनंद से ही सबकी उत्पत्ति होती है। उसी में सभी लीन हो जाते हैं। आनंदवाद के सिद्धांत को प्रसाद ने अपने दर्शन का मूलाधार स्वीकारा है सारस्वत प्रदेश में मानव को उपदेश देती हुई श्रद्धा से प्रसाद का दार्शनिक कहता है-

"सबको समरसता का प्रचार मेरे सुत सुन माँ की पुकार।"

प्रसाद द्वारा निर्देशित आनंद सात्विक है, शाश्वत है। गीता में क ष्ण ने अर्जुन से कहा था-

अभ्यासाप्तमेअभयासाद्रमते यत्र दुखान्तं च निगच्छति।
यन्तदग्रे विषमिव परिणामे म तोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धि प्रसादनम्।"

'कामायनी' के 'रहस्य' सर्ग में 'त्रिपुर' की अवतारणा सामरस्य का विवेचन करती है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान इन तीनों की समरसता ही आनंदोपलब्धि है-

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडंबना है जीवन की।"

जैसे ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय की अभिन्नता में योगी आनंद की प्राप्ति करने लगता है और निर्विकाल्पिक समाधिस्थ हो जाता है उसी प्रकार इस त्रित्व-इच्छा, क्रिया और ज्ञान के अभिन्नत्व में शैवागमों के अनुसार चिदानंद की प्राप्ति होती है। मनु अंत में योगियों की इसी दशा में आकर आनंद प्राप्त करते हैं-

"स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो, इच्छा क्रिया ज्ञान मिललय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद के, श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।"

'कामायनी' में समरसता के तीन रूप द ष्टिगोचर होते हैं। व्यक्ति-समरसता, समाज-समरसता तथा प्रक ति-पुरुष समरसता-

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।

'कामायनी' में आनंदवाद की प्रतिष्ठा की गई है। दशम सर्ग 'स्वप्न' में शिव का तांडव इसका प्रतीक है। समरसता के सिद्धांत की अपूर्वता ही इसका लक्ष्य है। इसमें समरसता का प्रतीक श्रद्धा है। श्रद्धा को समझने पर ही मनु को आनंद की प्राप्ति होती है। तांडव न त्य को देखकर मनु श्रद्धा की शरणागत हो जाता है-

"देखा मनु ने नर्तित ने हतचेत पुकार उठे विशेष;
यह क्या ? श्रद्धे! बस तू ले चल उन चरणों तक दे निजस्वंल।
सब पाप-पुण्य जिसमें जल-जल, पावन बन जाते हैं निर्मल;
मिटते असत्य से ज्ञान लेश समरस अखंड आनंद वेश।"

इसी संबंध में डॉ० विजयेंद्र स्नातक ने लिखा है-

'कामायनी' का दर्शन आत्मवाद की सुद ढ़ भूमि पर प्रतिष्ठित है। 'कामायनी' में ज्ञान को प्रधानता न देकर श्रद्धा को प्रधानता दी गई हैं।

'कामायनी' से समरसता और आनंदवाद के मूल उपकरण शैवागमों से लेकर भी वे वेदांत और उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म और उसकी सर्वव्यापकता की उपेक्षा नहीं कर सके हैं। महाचिति का चैतन्य वर्णन शैवागमों के अनुसार इस प्रकार किया गया है -

"चिति का स्वरूप यह नित्य जगत, वह रूप बदलता है शत-शत;
कर विरह मिलनमय न त्य निरत, उल्लासपूर्ण आनंद सतत।"

शैवागमों में चैतन्य के अतिरिक्त कोई भी सत्ता नहीं। इस महाचिति के अनेक रूप हैं। महाचिति का लीलामय आनंद करना द्रष्टव्य है -

"कर रहीं लीलामय आनंद, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त;
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त।"

'अयं निजः परावेति' का विचार ही दुखमूलक संसार की स ष्टि करता है। अपने-पराये की भावना छोटे लोगों में होती है, इसका अभाव हमें इस दुखात्मक संसार से उठाकर उस लोक अर्थात परलोक में पहुँचा देता है जहाँ सर्वत्र आनंद का ही प्रसार है-

"मनु ने कुछ-कुछ मुसक्या कर, कैलाश ओर दिखलाया;
बोले देखो कि यहाँ पर, कोई भी नहीं पराया।"

वहाँ पर क्या है ? इसका उन्हें ज्ञान नहीं है। कुछ है अवश्य जिसे देखते ही वे अचानक बोल उठते हैं-

"सब पहचाने से लगते, अपनी ही एक कला से।"

'कामायनी' में मनु ने भी उसी परम सत्ता के चरणों में, जिसकी सत्ता जड़ चेतन सभी पर छायी हुई थी, लीन होने की प्रबल कामना व्यक्त करते हुए कहा-

"इस पंच भूत की सत्ता में मैं रमण करूं बन एक तत्व।"

'कामायनी' का दार्शनिक सामरस वाद या आनंद वाद का प्रेमी है। उसकी समरसता व्यष्टि का समष्टि में विलय ही है। उसका दर्शन बुद्धि से संभव नहीं, अपितु उसके लिए हृदय की भावात्मक सत्ता अपेक्षित है। यही श्रद्धा-मिश्रित दर्शन मनु को उस लोक में पहुँचा देता है जहाँ पर ताप, दैन्य, संघर्ष और वैषम्य की जड़ता तिरोहित हो जाती है और आनंद का प्रवाह अति तीव्र गति से प्रवाहित होता रहता है।

इस आनंद की प्राप्ति श्रद्धा के माध्यम से होती है किंतु वासना और तर्कमयी बुद्धि (इड़ा) इस आनंद की प्राप्ति में बाधक है-

"बुद्धि तर्क के छिद्र हुए थे, हृदय हमारा भर न सका,
कोलाहल कलह अनंत चले एकता नष्ट हो बढ़ें भेद,
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।
जो क्षण बीतें सुख साधन में उनको ही वास्तव लिया मान,
वासना त प्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति व्यर्थ ज्ञान।"

'कामायनी' की दार्शनिक चेतना शैव दर्शन पर आधारित है। इस संबंध में डॉ० नगेंद्र का कथन रेखांकित है-

> **"कामयानी का आधारभूत दर्शन शैवाद्वैत-काश्मीरी शैव दर्शन-प्रत्यभिज्ञा दर्शन ही है। कामायनी में प्रतिपादित आत्मा, जीव, जगत आदि के स्वरूप से उसमें प्रयुक्त प्रचुर पारिभाषिक शब्दावली से और बाह्य साक्ष्य के आधार पर इस स्थापना की सहज पुष्टि हो जाती है।"**

आत्मा - कामायनी में आत्मा को चिति, महाचिति, चेतना आदि कहा गया है। यह चर-अचर जगत इसी का रूप है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में 'चितिः स्वतंत्रा विश्व सिद्धि हेतुः' कहकर चिति शक्ति को विश्व स ष्टि का हेतु माना गया है। 'शिव पुराण' में शिव शक्ति की समष्टि को पराशक्ति कहा गया है और इस पराशक्ति का स जनात्मक रूप ही चिति शक्ति है। यह 'चिति' का ही शिव रूप है जिसकी आनंदमयी लीला से विश्व का उन्मीलन होता है। परम शिव की इच्छा से ही विश्व का लीलामय विस्तार होता है-

> **"काम मंगल से मंडित श्रेय;**
> **सर्ग इच्छा का है परिणाम।"**

यह लीला चिति का ही सुंदर रूप है अतः लीला के स्पंदित होने से प्राप्त आह्लाद प्रभापुंज चिति का ही प्रसाद है-

> **"लीला का स्पंदित आह्लाद, वह प्रभा पुंज चितिमय प्रसाद;**
> **आनंदपूर्ण ताण्डव सुंदर, झरते थे उज्ज्वल श्रम श्रीकर।**
> **बनते तारा, हिमकर, दिनकर, उड़ रहे धूलिकण से भूधर;**
> **संसार-स जन से युगल पाद, गतिशील, अनाहत हुआ नाद।"**

वस्तुतः स ष्टि का प्रवर्तन परम शिव की नित्य इच्छा व नित्य आनंद का प्रतिफलन है। 'कामायनी' में आरंभ से अंत तक सर्वव्यापक शक्ति के रूप में चिति का प्रतिपादन प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर ही हुआ है।

'कामायनी' में इसी शिव रूपा चिति के लिए चेतनता शब्द प्रयुक्त हुआ है-

> **"चेतना एक विलसती,**
> **आनंद अखंड घना था।"**

'शैव-दर्शन' में शिव और शक्ति की कल्पना आनंद सागर और तरंगावली रूप में की गई है। 'कामायनी' में मनु-श्रद्धा को शिव-शक्ति रूपा स्वीकारा गया है-

> **"चिर मिलित प्रक ति से पुलिकत, वह चेतन पुरुष पुरातन;**
> **निज शक्ति तरंगायित था, आनंद अंबु-निधि शोभन।"**

जीव - प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव को पुरुष कहा गया है तथा उसे आणव, कार्म तथा मायीय तीनों मलों से आव त से माना गया है। त्रिक दर्शन में जीव की पाँच- जाग त, स्वप्न, सुषुप्त, तुरीय तथा तुर्यातीत अवस्थाएँ मानी गई हैं। जीव की तुर्यातीत पूर्व अवस्था में जीव पूर्ण एवं अखंड आनंद प्राप्त करता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव को सकल, प्रलयाकल, विज्ञानाकल एवं शुद्ध आदि नाम दिए गए हैं। 'शुद्ध' रूप में जीव चैतन्य स्वरूप परम शिवत्व को प्राप्त कर लेता है।

'कामायनी' का नायक मनु पुरुष अथवा जीव का प्रतीक है। वह 'चिंता सर्ग' में 'रहस्य' सर्ग के अंत तक सकल, प्रलयाकल, विज्ञानाकल तथा शुद्ध चारों रूप धारण कर लेता है। इस विषय में डॉ० नगेंद्र का कथन उद्ध त है-

> **"कामायनी के पूर्वार्ध में मनु के इसी रूप को अंकित किया गया है। निर्वेद सर्ग तक 'आणव स्थिति' (भेद बुद्धि का प्राधान्य), निर्वेद से रहस्य सर्ग तक 'शक्त स्थिति' (भेदाभेद), और तदुपरांत 'शांभव स्थिति' (अभेद) को प्राप्त करते हैं जहाँ जीव की जाग त, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं को पारकर वे चतुर्थावस्था तुरीयावस्था में पहुँच जाते हैं। इसके उपरांत तुरीयातीत अवस्था है- पूर्ण शिवत्व की।"**

वस्तुतः कवि ने जीव के स्वरूप का वर्णन भी प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर ही किया है। प्रारंभ में मनु अर्थात जीव को प्रत्यभिज्ञा दर्शनानुसार 'पुरुष' की संज्ञा से अभिहित किया गया है-

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छांह;
एक पुरुष भीगे नयनो से, देख रहा था प्रलय प्रवाह"

सुषुप्तावस्था में जीव अथवा पुरुष मायाच्छादित होने के कारण दुखी होता है। मनु की इसी स्थिति का वर्णन करते हुए प्रसाद ने लिखा है-

"शापित-सा मैं जीव का यह, ले कंकाल भटकता हूँ;
उसी खोखलेपन में जैसे, कुछ खोजता अटकता हूँ।"

मनु जाग त, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को पारकर तुरीयावस्था में पहुँचकर श्रद्धा से कहते हैं-

"देखा मनु ने नर्तित नरेश, हतचेत पुकार उठे विशेष;
यह क्या ? श्रद्धे ! बस तू ले चल, उन चरणों तक दे निज संबल।
सब पाप-पुण्य जिसमें जल-जल पावन बन जाते है निर्मल;
मिटते असत्य से ज्ञान लेश, समरस, अखंड आनंद वेश।"

रहस्य सर्ग के अंत तक मनु 'तुरीयावस्था' को पारकर 'तुरीयातीत' अवस्था में पहुँचकर परमानंद अर्थात परम शिवत्व की प्राप्ति कर लेते हैं-

"स्वप्न,स्वाप, जागरण भस्म हो, इच्छा, क्रिया ज्ञान मिललय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में, श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।"

जगत - प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जगत, स ष्टि या विश्व को चिति का स्वरूप स्वीकारा है जो अपनी इच्छा से इसका उदय करती है। दार्शनिक भाषा में विश्व के उन्मेष को 'आभासन' या 'आभास' कहा गया है। ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी में लिखा गया हैं -

"चेतनो हि स्वात्मदर्पणे भावान् प्रतिबिंब वद् आभासयति, इति सिद्धांत।"

प्रसाद ने कामायनी में जगत, स ष्टि या विश्व को महाचिति की लीलामय अभिव्यक्ति स्वीकारा है तथा नित्य जगत को चिति का स्वरूप माना है-

"चिति का स्वरूप यह नित्य जगत।"

यह जगत चिति की लीलामय अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप अपने आनंदकारी एवं मंगलमय रूप का प्रदर्शन करती है। मनु को इस रहस्य से अवगत कराने वाली श्रद्धा है-

"अपने दुःख सुख से पुलकित, यह मूर्त विश्व चराचर;
'चिति' का विराट वपु मंगल, यह सत्य, सतत् चिर सुंदर।"

माया - वेदांत की तरह प्रत्यभिज्ञा दर्शन में भी माया को स ष्टि की निर्माण कर्त्री कहा गया है किंतु वेदांत में माया को 'सदसद्म्यामनिर्वचीय' कहा गया है तथा उसका निश्चित रूप नहीं बतलाया गया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शनकार अभिनव गुप्ताचार्य ने उसे 'तदवभास कारिणी च परमेश्वरस्य माया नाम शक्तिः' कहकर स्पष्ट ही परमेश्वर को एक शक्ति बताया है तथा "माया तत्वात् विश्व प्रसव" कहकर माया तत्व से संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति प्रमाणित की है। जीव एवं परमेश्वर की यह भेदक शक्ति है। माया को नियति भी कहा गया है।

तीन पदार्थ - पशु, पाश तथा पशुपति प्रत्यभिज्ञादर्शन के तीनों पदार्थो का वर्णन कामायानी में किया गया है। छत्तीस तत्वों का वर्णन भी किया गया है। 'कामायनी' में वर्णित शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, सद्विद्या, माया, कला आदि छत्तीस तत्वों के अंतर्गत ही वर्णित हैं।

संपूर्ण प्राणियों के प्राण और शरीर का नियमन करने वाले वे परमेश्वर मन में व्याप्त रहने के कारण मनोमय कहलाते हैं।

शून्यवाद - 'कामायनी' में जीवन को क्षण भंगुर माना गया है। देवता जो अपने को अमर कहते थे उनका भी विनाश हुआ। मानव तो नाशवान ही है। अभाव ही चिंता का कारण बनता है। अभाव शून्यता का द्योतक है।

बौद्ध दर्शन में जगत को क्षणभंगुर एवं शून्य माना गया है। इस विचारधारा के अनुसार संसार की सभी वस्तुएँ अस्थायी एवं नश्वर हैं प्रसाद ने कामायनी में शून्यवाद, क्षणभुंगरता अथवा क्षणवाद की अभिव्यंजना की है-

"नाश ध्वंश अंधेरा, शून्य बना जो प्रकट अभाव
वही सत्य है अरी अमरते, तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।"

क्षणवाद - बौद्ध दर्शन करुणा प्रधान है। प्रसाद ने बौद्ध दर्शन से करुणा का ग्रहण करके, सांसारिक प्राणियों की क्षणभंगुरता को देखते हुए उन्हें करुणामय बनने का संदेश दिया है।

"जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील धन-माला में;
सौदामिनी- संधि-सा सुंदर, क्षण भर रहा उजाला में।"

करुणा श्रद्धा की चारित्रिक विशेषता है। मनु को करुणा का पाठ पढ़ाती हुई श्रद्धा मनु से करुणामय होने का आग्रह करती हुई कहती है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा;
औरों को हँसते देखो मनु-हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्त त कर लो सब को सुखी बनाओ।"

तथा

"यह स्फुलिंग का न त्य एक पल आया बीता;
टिकने का कब मिला किसी को यहाँ सुभीता ?"

न्याय वैशेषिक दर्शन में व्याप्त परमाणु वाद का प्रभाव भी 'कामायनी' पर परिलक्षित होता है। इस दर्शन की यह मान्यता है कि परमाणु से समस्त भौतिक तत्वों का निर्माण हुआ है जिससे स ष्टि का विकास हुआ है-

"वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई, अपने आलस्य का त्याग किए;
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े, जिसका सुंदर अनुराग लिए।
कुंकुम का चूर्ण उड़ाते से, मिलने को गले ललकते से;
अंतरिक्ष के मधु उत्सव के, विद्युत्कण मिले झलकते से।
यह आकर्षण वह मिलन हुआ, प्रारंभ माधुरी छाया में,
जिसको कहते सब स ष्टि, बनी मतवाली अपनी माया में।"

'कामायनी' में मूलतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है किंतु यह दार्शनिकता मात्र सैद्धांतिक नहीं अपितु व्यावहारिक है जो मानवता को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाली है। इस विषय में डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कथन उद्धत है-

> **"कामायनी के दार्शनिक विचारों में व्यावहारिकता की प्रधानता है। प्रसाद ने उन्हें आधुनिक मानव का मार्ग-दर्शन करने के लिए ही 'कामयानी' में श्रद्धा एवं मनु की कथा के आश्रय से प्रस्तुत किया है तथा अपने दर्शन की मानव जीवन में अपरिहार्य सार्थकता सिद्ध की है। प्रसाद ने अपने दार्शनिक विचारों को इस प्रकार संगुंफित करके अपने दर्शन की श्रेयमयी धारा को प्रेममयी बना दिया है जिससे सर्व साधारण लाभ उठा सकते हैं और आधुनिक विषमतापूर्ण संघर्ष से बचकर अपने जीवन में अभीष्ट आनंद प्राप्त कर सकते हैं।"**

डॉ० नगेंद्र ने प्रसाद के दर्शन को आनंदमय माना है। उन्होंने कामायनी का अंगीरस भी आनंद को स्वीकारा है। अपने मत को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है-

'कामायनी' में फलयोग की सिद्धि श्रद्धा द्वारा होती है- अर्थात आत्म विश्वास पर आध त अभेदमयी आस्तिक भावना ही आनंद की साधिका है, भेदमयी बुद्धि- इड़ा बाधिका है। अतः बुद्धिवाद और उसके अनेक विकास रूप 'कामायनी' के पूर्व पक्ष के ही

अंतर्गत मानने चाहिए, जो निषेध के द्वारा व्यतिरेक पद्धति से सिद्धांत पक्ष अर्थात शैवाद्वैत पर आध त आनंदवाद की प्रतिष्ठा करते हैं।

इसी से व हत् जीवन के काव्य को पर्यवसान आनंद भैरवी में होता है।

डॉ० गुलाब राय ने प्रसाद के आनंदवाद को आधुनिक काल के लिए अति उपयोगी बतलाते हुए लिखा है-

> **इस आनंदवाद में तप द्वारा इंद्रियों को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं और न मन के निग्रह की क्योंकि शैवागमों के अनुयायी सारे विश्व को शिवमय मानते हैं फिर मन शिव को छोड़कर जाएगा कहाँ भीतर आनांदाघन के अतिरिक्त दूसरा कौन सा स्थान है।"**

कामायनी : रूपक

'कामयानी' को रूपक महाकाव्य कहा गया है क्योंकि उसमें सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति कराने वाले पात्रों एवं घटनाओं का वर्णन हुआ है।

रूपक शब्द - अलंकार एवं द श्य काव्य दो रूपों में भारतीय साहित्य का विषय रहा है। दशरूपक कार ने रूपक को परिभाषित करते हुए लिखा है-

'रूपं द श्य तयोच्यते'

अर्थात् जिससे रूप का द श्य उपस्थित होता है उसे रूपक कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार 'रूपक काव्य' के स्वरूप का निर्धारण करते हुए लिखा गया है-

> **"रूपक काव्य से तात्पर्य ऐसे काव्य से है, जिसमें प्रस्तुत पात्रों या प्रस्तुत कथा पर किन्हीं अप्रस्तुत बातों का निषेध रहित आरोप किया गया हो और एक अभिनेता की भांति वे पात्र या कथा अंत तक उसका निर्वाह करते हों।"**

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रूपक काव्य को 'अन्योक्ति काव्य' से अभिहित किया है।

डॉ० नगेंद्र ने रूपक को परिभाषित करते हुए लिखा है-

> **"रूपक ऐस द्विअर्थक कथा से अभिप्राय है जिसमें उससे ध्वनित किसी सैद्धांतिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्यार्थ का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है।"**

रूपक को अंग्रेजी पर्याय 'मेटाफर' तथा 'एलिगरी' हैं। रूपक अलंकार के अर्थ में मेटाफर का प्रयोग किया जाता है तथा 'एलिगरी' का प्रयोग प्रतीकात्मक या अन्योक्तिमूलक रूपक काव्य के अर्थ में किया जाता है। इस द ष्टि से प्रस्तुत अभिप्राय में अंग्रेजी पर्याय 'एलिगरी' ही सार्थक है।

एबरक्रोंबी ने रूपक को परिभाषित करते हुए लिखा है-

> **"महाकाव्यत्व के अभाव में रूपक काव्य की प्रमुख विशेषताएँ होती हैं। वे हमारा प्रवेश ऐसे क्षेत्र में करवाती हैं जहाँ घटनाओं का अभाव होता है जिसका गहन महत्व हो। विशेष रूप से अधिक त, ध्यान देने योग्य प्रतीकात्मक उद्देश्य प्रत्येक कविता का प्रतिनिधित्व करता है जो इसे विशेष अर्थ अन्य ओर प्रत्यावर्तित करके व्यापक रूप से संकेतिक करते हैं। इसमें सर्वत्र आध्यात्मिक तथ्य की प्रधानता होती है, सर्वत्र जिसका निर्देश किया जाता है। सांकेतिकता का निर्वाह अंत तक होता है। उसका कथानक रूपकत्व के परिणामस्वरूप पूर्णरूपेण कवि कल्पित होता है। जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर बल दिया जाता है।" उस तथ्य को समझाने हेतू आकर्षक वर्णन किया जाता है।**

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रूपक काव्य वह कथात्मक प्रबंध काव्य है जिसमें प्रस्तुत कथा में अन्य अप्रस्तुत कथा अथवा सांकेतिक कथा की सर्वदा विद्यमानता रहती है।

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधाराओं के आधार पर देखा जाए तो कामायनी रूपक महाकाव्य है क्योंकि इसके कथानक एवं पात्र चरित्र चित्रिण में संश्लिष्टता एवं प्रतीकात्मका सर्वत्र विद्यमान है। ऐतिहासिक कथानक उत्द्य अर्थात् कल्पना का पूरा सहारा लेकर प्रतिष्ठित हुआ है। कामायनी इतिहास एवं कल्पना का सफल समन्वय प्रस्तुत करने वाला महा काव्य है जिसके विषय में जयशंकर प्रसाद ने आमुख में स्वयं लिखा है-

"आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को, रूपक के आवरण में चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ हो, जैसा कि सभी वैदिक इतिहास के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, किंतु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यो की अनुश्रुति में द ढ़ता से मानी गई है।"

इतना ही नहीं प्रसाद कामायनी को रूपक काव्य कहते हुए आमुख में आगे लिखा है-

"यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाध्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं। तब भी उसके तिथिक्रम मात्र से संतुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उसके मूल के क्या रहस्य है ? आत्मा की अनुभूति ! हाँ, उसी भाव के रूप-ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाएँ स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती है।"

प्रसाद ने पुनः कामायनी को रूपक कहा है जो इस तथ्य को प्रतिपादन करता है कि कामायनी निश्चित रूप से रूपक महाकाव्य है -

"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"

जयशंकर प्रसाद के कथन इस तथ्य के परिचायक हैं कि 'कामायनी' महाकाव्य के कथानक का मूलाधार इतिहास है, जिसमें रूपक का भी मिश्रण है। प्रसाद ने 'कामायनी' में सांकेतिक अर्थो की भी अभिव्यक्ति की है। जो यह प्रमाणित करता है कि कामायनी रूपक महाकाव्य है।

विभिन्न विद्वानों ने कामायनी के रूपकत्व पर अपने विचार व्यक्त किए हैं जिनमें कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-

डॉ० नगेंद्र ने कामायनी को रूपक महाकाव्य स्वीकारते हुए लिखा है-

"कामायनी के पात्रों की प्रतीक भय सांकेतिक व्यक्तित्व तथा उसकी घटनाओं का श्लेष गर्भित गूढ़ार्थ दोनों ही इस मत की पुष्टि करते हैं। अतएव 'कामायनी' में रूपक तत्व की स्थिति के विषय में संदेह नहीं किया जा सकता। वह निश्चय ही है और काफी स्पष्ट भी है।"

डॉ० फतह सिंह का मानना है कि कामायनी में लौकिकता, अलौकिकता, भौतिकता, आध्यात्मिकता एवं बौद्धिकता का अपूर्व समन्वय है। बुद्धि पक्ष के साथ हृदय पक्ष की प्रधानता है। ऐतिहासिक कथानक में रूपक के मिश्रण को स्वीकारते हुए उन्होंने कहा है-

"कामायनी में भौतिक और आध्यात्मिक लौकिक तथा अलौकिक का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक कथानक में रूपक का सम्मिश्रण कर लिया गया है।"

कामायनी की संपूर्ण कथा वस्तु मानव विकास का रूपक है। बच्चा जन्म लेते ही चिंताग्रस्त रो-रोकर मानो कहाँ ? कहाँ ? (क्योहांव, क्वयोहांव) की ध्वनि करता है कि कहाँ सुखमय जीवन माता उदर में बिता रहे थे ? अब कहां आ गये ? मनु भी रो रहे हैं कि कहां देव लोक का सुखमय जीवन था कहाँ यहाँ आ गये ?

"हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह;
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।"

बच्चे को शहद, पानी एवं दूध चाटने-पीने को मिल जाता है तब उसे 'आशा' हो जाती है। मनु भी आशावान हो जाते हैं। 'श्रद्धा' आस्था विश्वास का प्रतीक है। विश्वास या साथी के मिलने से आशा बलवती हो जाती है।

‘आशा’ के बाद ‘काम’ करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। ‘काम’ सांसारिक प्राणियों के प्रति वासना भाव उत्पन्न करता है। वासना काम का संघर्षमय रूप है। ‘लज्जा’ अनुशासन का प्रतीक है। वासना में ‘लज्जा’ नारी को अनुशासित कर शालीन बनाती है -

"मैं रति की प्रतिक ति लज्जा हूँ, मैं शालीनता सिखलाती हूँ;
मतवाली सुंदरता पग में, नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।"

इसके पश्चात ही शिशु वास्तविक जीवन के ‘कर्म’ में लीन होता है। ‘कर्म’ के बाद श्रद्धा के गर्भवती होने पर मनु में ‘ईर्ष्या’ भाव का जगना मानवीय भावना का वास्तविक प्रतीक है।

‘इड़ा’ बौद्धिकता का प्रतीक है बुद्धिमान बालक एक को छोड़कर दूसरे के प्रति अग्रसर हो जाता है। ‘स्वप्न’ कल्पना का प्रतीक है। वियोगिनी श्रद्धा मनु के दुखों का स्वप्न देखती है। बुद्धि का संसर्ग प्राप्तकर मनु में वैज्ञानिकता आ जाती है जो ‘संघर्ष को जन्म देती है।

अत्यधिक संघर्ष मानव में विरक्ति उत्पन्न करता है। ‘निर्षेद’ उसी का प्रतीक है। निराशा आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करती है जिससे मनुष्य में ‘दर्शन’ की भावना का उदय होता है।

आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत, माया का ज्ञान हो जाने पर विश्व का ‘रहस्य’ सामने आता है।

‘रहस्य’ का ज्ञान प्राप्तकर ही शिवत्व अर्थात् ‘आनंद’ की प्राप्ति होती है। प्रसाद ने धर्म, अर्थ, काम के पश्चात मोक्ष की नहीं ‘आनंद’ की प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार ‘चिंता’ सर्ग से लेकर आनंद सर्ग तक की सारी कथा वस्तुतः मानव विकास का रूपक प्रस्तुत करती है।

कामायनी के प्रतीक के विषय में डॉ० शिवदान सिंह चौहान का कथन द्रष्टव्य है-

"कामायनी की कथा एक पौराणिक व ति पर आधारित है किंतु यह व त्त तो एक रूपक है जिसके माध्यम से प्रसाद जी ने मनुष्य के बौद्धिक और भावनात्मक विकास और आधुनिक जीवन के आंतरिक वैषम्य की वास्तविकता को ही चित्रमयी भाषा में प्रतिबिम्बित करने का विराट आयोजन किया गया है।"

‘कामायनी’ कथा के साथ-साथ इसमें वर्णित सभी ‘पात्र’ प्रतीकात्मक हैं। ‘श्रद्धा’, ‘हृदय’ एवं विश्वास, त्याग, माया, ममता, मोह, प्रेम आदि नारी गुणों का प्रतीक है। ‘मनु’, ‘मस्तिष्क’ अर्थात बुद्धि, तर्क, ईर्ष्या, संघर्ष, भ्रमर व ति पुरुष, वासना के प्रतीक हैं। ‘इड़ा’ ‘ज्ञान’, आधुनिक वैज्ञानिकता, भौतिकता एवं विकास शक्ति का प्रतीक है। मनु-श्रद्धा पुत्र ‘मानव’ आधुनिक मनुष्य एवं मानव विकास का प्रतीक है जिसमें हृदय, मस्तिष्क एवं ज्ञान-विज्ञान का समन्वय होता है।

डॉ० शम्भूनाथ सिंह कामायनी को भारतीय और पाश्चात्य रूपक शैली का समन्वय रूप स्वीकारते हुए कहते हैं-

"कामायनी की रूपक योजना ‘प्रबोध-चंद्रोदय’ वाली रूपक-कथा की शैली से भिन्न है। इसमें अंग्रेजी साहित्य की बीसवीं शताब्दी में रूपक शैली का जो विकास हुआ तथा वैदिक और पौराणिक साहित्य में जो रूपक पद्धति अपनाई गई है- का समन्वय हुआ है।"

कुछ विद्वान कामायनी को रूपक महाकाव्य न मानकर उसे रूपकाभास मात्र मानते हैं जिसमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा द्वारिका प्रसाद सक्सेना प्रमुख हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है-

"कामायनी में रूपक का निर्वाह रहस्यवाद की प्रक ति के कारण नहीं होने पाया है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कामायनी रूपक काव्य है जिसमें रहस्यवाद बाधक सिद्ध हुआ है।

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना कामायनी में रूपाकात्मकता की पूर्ण योजना का अभाव मानते हुए कहते हैं-

"यह महाकाव्य सांकेतिक अर्थो से मुक्त है। इसमें रूपक निर्वाह की संगति योजना का पूर्ण अभाव है।"

डॉ० सक्सेना का कामायनी को सांकेतिक अर्थो में युक्त स्वीकारना ही रूपकता को प्रमाणिकता कर देता है।

गजानन माधव मुक्तिबोध ने कामायनी के मार्क्सवादी दर्शन की विवेचना करते हुए कहा है कि मनु चरित्र सर्वथा नवीन अर्थ की अभिव्यक्ति करता है-

> **"प्रसाद जी के अंतःकरण में जो एक जीवित और जीवांत छटपटाती हुई, दुःखती हुई ग्रंथी है- वह अभ्यंतर ग्रंथी अपने पूरे दुःख, अपने संपूर्ण ज्ञान, अपने पूरे आवेग और अपने संपूर्ण मान और मान के उलझाव के साथ 'कामायनी' में प्रकट हुई है। इस आभ्यंतर ग्रंथ का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र है मनु। मनु मानव मात्र के मन का प्रतीक नहीं, वह केवल उस मन का प्रतीक है जो प्रसाद जी का अपना या उन जैसा मन है।"**

'कामायनी' में कथा तथा पात्रें के साथ-साथ घटनाएं तथा घटना स्थल भी प्रतीक हैं जो अपनी रूपकात्मकता का प्रतिपादन करते हैं। कामायनी महाकाव्य में वर्णित घटनाओं के प्रमुख स्थल-हिमालय, सारस्वत प्रदेश, लिपुर तथा कैलाश पर्वत हैं। सारस्वत प्रदेश प्राणमय कोश, त्रिपुर इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया रूपी कैलाश समरता तथा आनंद रूपी आनंदमय कोश का प्रतीक है। प्रसाद ने कैलाश का वर्णन करते हुए कहा है-

> **"शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है;**
> **जीवन बसुधा समतल है, समरस है जो कि यहाँ है।"**

'कामायनी' प्रमुख घटना 'जल प्लावन' है, जो एक ऐतिहासिक घटना है और सांकेतिक अर्थ में वासनामय अन्न कोश का प्रतीक है। भारतीय दर्शन के आधार पर कहा जा सकता है-

> **"जब मानव मन काम वासना से युक्त होकर इंद्रियों की निर्वाध उपासना में लीन हो जाता है अर्थात जब वह अन्नमय कोश में ही अत्यधिक रम जाता है तो उस समय उसकी चेतना पूर्ण रूप से माया या आच्छादित हो जाती है।"**

जल प्लावन का सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक यही अर्थ है। 'कामायनी' रूपक महाकाव्य है क्योंकि इसके कथानक से ऐतिहासिक कथा के साथ-साथ प्रतीकात्मक कथा भी चलती रहती है। मुख्य कथावस्तु मनु, श्रद्धा एवं इड़ा की है जो सभी ऐतिहासिक हैं। इन्हीं की कथा में मन, हृदय और बुद्धि की कथा है।

हिंदी महाकाव्यों का विवेचन करते हुए डॉ० गोविंद राम शर्मा ने लिखा है-

> **"कामायनी में ऐतिहासिक कथानक के साथ मानव-मन के क्रमिक विकास के रूपक की योजना भी सुंदर ढंग से की गई है।"**

'कामायनी' की रूपकात्मकता के समर्थकों में डॉ० नामवर सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रूपकात्मकता संबंधी उनका मत रेखांकित है-

> **"कामायनी के प्रतीक एक हद तक छायावादी आवरण से ढके हुए हैं, लेकिन दूसरी ओर उनमें अपने युग की जीवांत समस्याओं का सपंदन भी है। प्रसाद ने अपने जीवन की वास्तविकता को इतने व्यापक सामाजिक परिवेश में तथा भावना के गहरे स्तरों के साथ चित्रित किया है कि इन प्रतीकों में युग-युग का रसमग्न और प्रेरित करने की क्षमता आ गई है।"**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कथावस्तु, पात्र चरित्र चित्रण, घटना स्थल, मानव जीवन का विकास एवं घटनाओं की प्रतीकात्मकता ने कामायनी को सफल रूपक महाकाव्य बना दिया है।

प्रसाद-काव्य : प्रक ति चित्रण

कला एवं प्रक ति के संबंध को समझाते हुए डॉ० श्याम सुंदर दास ने साहित्यालोचन में लिखा है, "प्रक ति की ओर मनुष्य स्वभावतः आक ष्ट होता रहा है, क्योंकि उसमें उसकी वासनाओं की त प्ति होती है। इस नैसर्गिक आकर्षण का परिणाम होता है कि मनुष्य प्रक ति के उन चित्रों को अपने दुख के रस से सिक्त कर अभिव्यंजित करता है, और वे भिन्न कलाओं के रूप में प्रकट हो मानव हृदय को रसान्वित करते हैं।" इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के साथ प्रक ति का संसर्ग इतना घनिष्ठ है कि जीवन की समीक्षा करने वाली कला के अंतर्गत उसका समावेश स्वतः हो जाता है।

भारत प्राक तिक सौंदर्य का अनंत भंडार है। अनंत रमणीय प्रक ति की सौंदर्य शालिनी गोद में भारतीय कविता का जन्म हुआ है। यही कारण है कि कविता में प्रक ति आरंभ से ही अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है।

प्रसाद काव्य में प्रक ति का निम्नलिखित रूपों में चित्रण किया गया है-

1. **आलंबन**

   आलंबन रूप में प्रक ति चित्रण की दो परंपराएँ विद्यमान हैं-

   (i) ***बिंब ग्रहण*** - इस परंपरा में प्रक ति का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इसमे कवि अपनी कल्पना का पूरा-पूरा प्रयोग करता है। कवि अपने अनुभव एवं व्यापक ज्ञान के कारण रम्य तथा भयानक रूप का द श्य प्रस्तुत करता है।

   (ii) ***नाम परिगणन*** - इसमें केवल प्राक तिक उपादानों के नामों की गणना की जाती है। प्रसाद ने अपने स्वभावानुसार बिंब ग्रहण प्रणाली का ही अधिक प्रयोग किया है। प्रक ति के सुंदर एवं भयंकर रूपों के मिले-जुले चित्र प्रस्तुत किए हैं। कामायनी में 'चिंता' संर्ग का प्रलय वर्णन प्रकृति के भयानक रूप का उदाहरण है जिसमें प्राक तिक शक्तियों के भयानक रूपों के साथ-साथ हृदय को कंपित करने वाली ध्वनियों को भी स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है-

   "करका क्रंदन करतीं गिरती, और कुचलना था सबका;
   पंचभूत का यह ताण्डव मय, न त्य हो रहा था कब का"।

   प्रक ति के रमणीक चित्रों में कामायनी के 'आशा' सर्ग के अनंत प्राक तिक सौंदर्य का उदाहरण द्रष्टव्य है-

   "संध्या-घनमाला की सुंदर, ओढ़े रंग-बिरंगी छींट।
   गगन-चुंबिनी शैल श्रेणियाँ, पहने हुए तुषार किरीट।"

2. **उद्दीपन**

   प्रसाद-काव्य में प्रक ति के उद्दीपन रूप की झाँकी मिलती है। प्रक ति उनके सुख में आनंदित एवं दुख में शोकाकुल होती हुई प्रतीत होती है। कामायनी में मनु-श्रद्धा के मिलन अवसर पर चित्रित प्रक ति की संयोग रमणीयता अत्यंत मादक है, जिनमें ऊंचे-ऊंचे शिखरों का व्योम चुंबन, स ष्टि की मंद-मद मुस्कराहट, चंद्रिका का राग रंजित होना आदि वर्णन हैं। प्रक ति का राग रंजित रूप मनु-श्रद्धा के हृदय में असीम अनुराग एवं उल्लास को उद्दीप्त करता है।

   वही प्रक ति अपनी विरहावस्था में व्याकुल एवं व्याकुल एवं दुखी प्रतीत होती है। प्रकृति अपनी विरतावस्था में व्याकुल और टीस से भरकर विरह को व्यक्त करती हुई पूर्ण सहानुभूति प्रकट करती है-

   "व्याकुल उस सौरभ से मलयानिल धीरे-धीरे निश्वास छोड़ जाता है अब विरह तरंगिनी तीरे।"

3. **वातावरण निर्माण**

   प्रसाद ने वातावरण उपस्थित करने हेतु प्रक ति का चित्रण किया है। उसके द्वारा अनायास ही आने वाली गंभीरता का ज्ञान सहृदय को हो जाता है। कामायनी के 'चिंता' सर्ग से नीरस, शांत एवं गंभीर वातावरण का निर्माण करने के लिए

दूर-दूर तक विशाल हृदय का स्तब्ध होना, नीरवता के समान पवन का शिला चरण से टकराते रहना, प्रलय सिंधु की लहरों का अवसान होना, ठिठुरे हुए दो चार देवदार के व क्षों का शांत खड़े रहना आदि चित्रित किया गया है। इस चित्रण से सहज ही शांत, गंभीर एवं निर्जन प्रदेश चित्र उभर कर सामने आ जाता है। इसी प्रकार उल्लास एवं उमंग का वातावरण निर्मित करने के उद्देश्य से 'आशा सर्ग' प्रारंभ से ही ऊषा को सुनहले तीर बरसाती हुई विजय लक्ष्मी के समान उदित होते हुए, त्रस्त प्रक ति के हँसते हुए, नए कोमल प्रकाश को हिम संस्क ति पर बिखरते हुए, अलसाई वनस्पतियों को जगाते हुए और पवन को म दु सांस लेते हुए प्रदर्शित किया गया है-

"ऊषा सुनहले तीर बरसाती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई;
उधर पराजित काल रात्रि की, जल में अंतर्निहित हुई।"

4. रहस्यमयी सत्ता

प्रसाद ने रहस्यमयी सत्ता का वर्णन करने के लिए प्रक ति का चित्रण किया है। प्राक तिक पदार्थो के रहस्यात्मक चित्रण से उस रहस्यमयी सत्ता की ओर इंगित किया है जिसकी खोज में नील गगन को असंख्य ग्रह-नक्षत और विद्युत कण छिपते हुए चक्कर लगा रहे हैं जिनके रस से सिक्त होकर त ण अबाध गति से लहरा रहे हैं, जिनकी सत्ता को सभी सिर झुकाकर स्वीकार करते हैं और मौन होकर निरंतर वर्णन करते हैं। इस पर भी उनका ज्ञान आज तक नहीं हुआ, केवल इतना अनुमान है कि वह कुछ है। इस रहस्यात्मक शक्ति के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए प्रक ति को उसके आकर्षण में चित्रित किया गया है-

"महानील इस परम व्योम में, अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान;
ग्रह नक्षत्र और विद्युत कण, किसका करते हैं संधान"।

5. प्रतीकात्मक

कामायनी में स्थान-स्थान पर प्रक ति के प्रतीकात्मक रूप का भी चित्रिण किया गया है। इसमें ऐसे उपमानों को अंकित किया गया है, जो बाह्य साम्य की अपेक्षा आंतरिक साम्य को लेकर उपस्थित होते हैं। कामायनी में श्रद्धा के अलौकिक रूप सौंदर्य का वर्णन करने हेतु इन्हें कुसुम वैभव, सम्पन्न लता, चंद्रिका से लिपटा हुआ काले रंग का बादल, वसंत का दूत, चपला की रेखा, शीतल मंद बयार, नक्षत्र की आशा किरण ज्योत्सना निर्झर कहा गया है। इन सभी प्रतीकों के माध्यम से श्रद्धा के हृदय एवं मस्तिष्क की समस्त विशेषताएँ उभर आई हैं।

"आह वह पश्चिम के व्योम, बीच घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मंडल उसको भेद, दिखाई देता हो छविधाम"।

6. अलंकार हेतु

प्रायः और आक ति का साम्य प्रकट करने के लिए कविगण प्रक ति से ऐसे उपमानों का चयन करते चले आये हैं जिनसे उनके पात्रों के अंगों और उनकी आदतों का सम्यक रूप पाठकों के समक्ष उभरकर आ जाता है। उदाहरण के लिए श्रद्धा के सौंदर्य को लिया जा सकता है। उसके अंगों को बिजली का फूल, मुख को संध्या कालीन अरुण रविमंडल, घुंघराले बालों को सुकुमार नील घनश्याम, मुस्कान को कोमल किसलय पर विश्राम करती हुई अरुण अम्लान किरण, हंसी के तुल्य बतलाया है।

"नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा म दुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।"

श्रद्धा के सुकुमार अधखुले अंग का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

7. उपदेशिका

प्रक ति के उपदेशिका रूप वर्णन की परंपरा है। इस परंपरा द्वारा प्रक ति के ऐसे-ऐसे रहस्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जिनसे सर्व साधारण को अनेक शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं और वे उनसे लाभान्वित होते हैं कामायनी में प्रसाद ने कहीं-कहीं इस परंपरा का निर्वाह किया है। 'चिंता सर्ग' में उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार बादलों के मध्य बिजली का क्षणिक प्रकाश

होती है उसी प्रकार मानव जीवन भी क्षणभंगुर है-

"जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घन-माला में;
सौदामिनी-संधि-सा सुंदर, क्षण भर रहा उजाला में।"

संकट काल में जन साधारण का अधीर होना स्वाभाविक है परंतु प्रसाद ने दुख-सुख का अंतर स्पष्ट करते हुए यह उपदेश दिया है-

"दुख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक पर्दा यह झीना नील, छिपाये है जिसमें सुख गात।"

8. दूती

यद्यपि प्रसाद ने मेघदूत अथवा प्रिय प्रवास के दूती प्रसंग जैसी कल्पना नहीं की है परंतु आशा सर्ग में यौवनोन्मत रजनी को तीव्रता से जाते हुए देखकर मनु जब उससे यह कहते हैं कि मुझे सुख देने वाली मेरी प्रेम भावना, वेदना या भ्रांति यदि तुझे कहीं पड़ी मिल जाए तो उसे लुटाना मत, उसे भूल भी मत जाना। मैं तुझे भी तेरा भाग दूँगा। इस कथन में अपनी विस्म त प्रियतमा के लिए दूती रजनी के माध्यम से संदेश भेजने का आभास मिलता है।

"प्रेम वेदना भ्रांति या कि क्या ?, मन जिसमें सुख सोता था;
मिले कहीं वह पड़ा अचानक, उसको भी न लुटा देना।"

9. कोमल-कठोर

प्रसाद ने प्रक ति के कोमल-कठोर दोनों रूपों की अभिव्यक्ति की है। प्रक ति के सुकुमार, मधुर एवं कोमल रूप उनके काव्य मे सर्वत्र विद्यमान हैं, कठोरता की व्यंजना में भी कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

"उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाएँ व्यालों-सी।"

10. बिंब ग्रहण

प्रसाद ने प्रक ति के माध्यम से बिंब ग्रहण का कार्य किया है। लज्जा का सूक्ष्मता का आकार करने में कवि कौशल प्रशंसनीय है।

"हो चकित निकल आई सहसा, जो अपने प्राची के घर से;
उस नवल चंद्रिका सी बिछले, जो मानस की लहरों पर से।"

प्रसाद ने कामायनी में प्रक ति को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है। कामायनी संपूर्ण रूप से प्रक तिमय है। प्रक ति में उनका सहज अनुराग कभी आलंबन रूप में प्रकट होता है, कभी उद्दीपन रूप में। कवि कभी अलंकरण हेतु प्रक ति से उपमान चुनता है कभी प्रतीकों की खोज में प्रक ति के समीप जाता है। कभी प्रक ति को मानव संवेदना से मुक्त बनाकर झांकता है, कभी उसे मानवी रूप देता है। प्रसाद के प्रक ति चित्रण के विभिन्न रूपों का अवलोकन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रसाद को प्रक ति का सूक्ष्म ज्ञान था। उन्होंने प्रक ति के मनोरम द श्यों के चित्रण के साथ ही उसके भयानक रूप का भी वर्णन किया है। डॉ० रामेश्वर दयाल के शब्दों में, "प्रक ति के प्रति प्रसाद की परिष्क त मानवीय या रोमांटिक द ष्टि उन्हें कालिदास व अंग्रेजी कवियों के निकट लाती है। प्रक ति के माध्यम से रहस्य, आध्यात्म साधना की अभिव्यक्ति में वे जायसी, रवीन्द्र शैली व ब्राउनिंग के शुद्ध सौंदर्य-चेतना की अभिव्यक्ति में वे कीट्स, के परुष व प्रचंड प्रक ति के प्रेम में व भवभूति व वायस तथा सांस्क तिक व्याख्या में वे वर्डस्वर्थ के निकट हैं।"

खण्ड ख: आलोचना

4. निराला: युगबोध एवं मानवतावाद

सर-सरिता तट स्थित व क्षों का स्पष्ट प्रतिबिंब उनके स्वच्छ जल में देखा जा सकता है किंतु धूल धूसरित, राजकण युक्त, शैवाल आदि से आच्छादित मटमैला पानी प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में अक्षम होता है।

साहित्य समाज का दर्पण है। जिस प्रकार साफ दर्पण ही समक्ष खड़े हुए व्यक्ति का प्रतिरूप प्रस्तुत करने में सक्षम होता है। इसी प्रकार सजीव सत्साहित्य में ही किसी समाज की भावनाओं, कल्पनाओं, विचारों, आकांक्षाओं, सभ्यता और संस्कृति के दर्शन किए जा सकते हैं। इस द ष्टि से साहित्य की तुलना दर्पण या सर-सरिता से की जा सकती है। यदि साहित्य इनका वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं है तो वह सत्साहित्य की कोटि में नहीं आ सकता है क्योंकि वह वैयक्तिक हो सकता है जनता का प्रतिनिधि नहीं। उसमें समाज के दर्शन नहीं होते हैं तब उसे समाज का साहित्य कहलाने का अधिकार नहीं है। सत्साहित्य समाज का वास्तविक चित्रांकन कर युगबोध की प्रस्तुति करता है तथा मानवतावादी होता है क्योंकि साहित्य में जनहित की भावना होती है इसी द ष्टि से कहा गया है ''हितस्य भावः सहितेन यः सः साहित्यं''

अर्थात जो हित की भावना के साथ होता है वही साहित्य होता है। कल्याणकारिता साहित्य का मूल तत्व है। मानव का कल्याण करने वाला ही मानवतावादी कहलाता है।

कवि युग की देन होता है उसका साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसके साहित्य में तत्कालीन युग का पूर्ण बोध होता है। युगीन परिस्थितियां एवं घटनाएं संवेदनशील कवि को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। महाप्राण निराला युगीन परिस्थितियों से पूर्ण रूपेण प्रभावित थे।

सन् 1896, बंगाल के महिषा दल में जन्मे निराला ने उत्तरप्रदेश के उन्नाव, लखनऊ तथा प्रयाग में रहते हुए 15 अक्टूबर 1969 ई., प्रयोग में महाप्रस्थान करके हिंदी प्रेमियों को अत्यधिक विषादित किया।

निराला ने मुक्त छंद की प्रसिद्ध प्रथम रचना सन् 1916 में रची। तत्पश्चात सन् 1955 ई. तक वे निरन्तर काव्य स जन करते हुए लगभग 40 वर्षों तक साहित्य सेवा करते रहे।

इस प्रकार निराला सन् 1916-1955 ई॰ लगभग 40 वर्षो तक साहित्य स जन में जुटे रहे जिसमें लगभग 31 वर्ष परतंत्रता में काव्य स जन किया जिसके परिणामस्वरूप उनके काव्य में पराधीन भारत के प्रति एवं अंग्रेजी शासन व्यवस्था के प्रति भयानक आक्रोश है। लगभग 9 वर्ष स्वतंत्रता में स जन प्रक्रिया में लगे रहे। नौ वर्ष के अल्पकाल में आजादी का समय नहीं आया। बरबादी का समय बिन बुलाए आ गया। इसलिए उस स्वतंत्रता को तथाकथित स्वतंत्रता का नाम देना उचित ही होगा। क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी एक दशक तक घोर असंतोष एवं निराशा का वातावरण छाया रहा। जिसकी अभिव्यंजना निराला काव्य में हुई है।

प्रभाकर माचवे ने लिखा है-

"निराला की कविता में राष्ट्रीय भाव धारा प्रत्यक्ष माइक्रोफोनी या प्रचारात्मक ध्वजवादी या नारावादी कविता बनकर नहीं आई। भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन के, उसकी उथल-पुथल के बहुत सूक्ष्म और प्रत्यक्ष प्रभाव सूत्र निराला की रचना में विद्यमान हैं।" इसलिए निराला के युगबोध एवं मानववादी द ष्टिकोण का पूर्ण रूपेण प्रतिपादन उनके काव्य में स्वीकारा जा सकता है।

युगबोध अपनी धरती, अपनी प्रकृति, अपनी संस्कृति तथा अपने वर्तमान को भलीभांति जानना, उसकी सच्ची अनुभूति होना है। इसमें, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त आध्यात्मिकता एकता, प्रकृति चित्रण, उत्थान की कामना, प्राचीन गौरव का स्मरण वर्तमान अधःपतन की पीड़ा एवं उसकी अनुभूति, भविष्य की चिंता, नव सांस्कृतिक चेतना तथा जनजागरण आदि भी समाविष्ट होते हैं। इनको युगबोध का विभिन्न आयाम कहा जा सकता है।

निराला काव्य में परतंत्रता एवं स्वतंत्रता दोनों प्रकार की राष्ट्रीयता के स्वरूप देखे जा सकते हैं। निराला के बोध को प्रभावित करने वाले स्वामी विवेकानन्द तथा उनकी आध्यात्मिकता, रामकृष्ण उनका मिशन एवं उनकी अद्वैतवादी भावना, गांधी-तिलक और उनकी विद्रोही प्रव त्ति आदि प्रमुख हैं। सामाजिक-आर्थिक जीवन की विषमता, अतीत के उज्जवल वैभव की गरिमा तथा भविष्य की आशंका की परिकल्पना अदि युगबोध के अंग हैं। जाति, समाज और देश की सीमा लांघकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना अर्थात वसुधैव कुटुंबकम की धारणा भी युगबोध का अंग बन गई है।

निराला काव्य में राष्ट्रीयता के सभी आयाम समाहित हैं। जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पुत्र तथा गुरुगोबिंद सिंह आदि कविताओं में राष्ट्रीय जागरण का युगबोध चित्रित है। इसी कोटि की अन्य कविताएँ तुलसीदास, सरस्वती-वंदना तथा भिक्षुक आदि हैं। 'जागो फिर एक बार' कविता में आद्यान्त युगीन परिस्थितियां चित्रित हैं। इन कविताओं में स्वतंत्रता से पूर्व का राष्ट्रीय जागरण का स्वर सुनाई पड़ता है। औरंगजेब द्वारा बिछाए हुए जाल में जयसिंह फंस जाता है। जिससे शिवाजी में उत्तेजना आ जाती है वे ललकारते हुए अफसोस जाहिर करते हैं तथा जनता को उद्बोधित करते हैं-

निराला ने लिखा है-

शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम, मां का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे,
निर्जर हो जाओगे।
अमर कहलाओगे।

वह युग पुनर्जागरण का युग था। निराला ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'जागो फिर एक बार' में पुनर्जागरण का आह्वान किया है। अद्वैत दर्शन, मुगलकालीन इतिहास तथा पुनर्जागरण की मर्म बेधी प्रकार का यह कलात्मक रूप हिंदी में अन्यतम है। प्रथम खंड में निराला ने अद्वैत दर्शन द्वारा भारत की आत्मा को जाग त करने का प्रयास किया है। द्वितीय खंड में गुरु गोबिंद सिंह के लौह व्यक्तित्व एवं आग्नेय समर का स्मरण दिलाकर जगाया है-

समर अमर कर प्राण
गान गाए महासिंधु-से
सिंधु-नद-तीर वासी!
सैंधव तरंगों पर
चतुरंग चमूसंग,
सवा-सवा लाख
एक को चढ़ाऊंगा
गोविंद सिंह निज
नाम जब कहाऊंगा।

सन् 1946 का समय आया। उसी समय 'बेला' गीत संग्रह प्रकाशित हुआ। उस समय परतंत्र जनता में स्वतंत्रता की इतनी सुखद कल्पना थी कि मानो नरक से स्वर्ग में पहुंच जाएंगे। यह तो निश्चित है परतंत्रता नरक से भी बदत्तर है। इसलिए इससे मुक्ति को स्वर्ग समझना स्वाभाविक है। निराला की भारत की प्रजातंत्रिक कल्पना की सुखदता का उदाहरण द ष्टव्य है-

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी पासी चमार तेली

खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे टाट बिछाओ!

सन् 1857 में प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन का बवंडर उठा, जिसको अंग्रेजी शासकों ने अति क्रूरता से शांत कर दिया जिससे उनके प्रति भारतीयों में घोर असंतोष की भावना की लहर चारों ओर लहराने लगी। जिसके परिणामस्वरूप महारानी विक्टोरिया को उदार नीति अपनानी पड़ी किन्तु विक्टोरिया की मौत ने आशा की चिंगारी को बुझा दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस अभी जन-जागरण की तैयारी में ही लगी थी कि प्रथम विश्व महायुद्ध ने बिना पूर्व सूचना के बिगुल बजा दिया।

अंग्रेजी सरकार के पक्ष में भारतीय सैनिकों ने बलिदान की कतार लगा दी किंतु अंग्रेजों की बर्बरता एवं दमन नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया। विश्व को ज्ञान का पाठ पढ़ाने वाला भारत दुर्दशा में फंस गया। यह करुण स्थिति निराला से नहीं देखी गई। उन्होंने ने 'राम की शक्ति पूजा' काव्य में राम के द्वारा अपने युग की निराशा, पराजय, संघर्ष एवं विजय कामना का सजीव चित्रांकन किया है। रावण रूपी अंग्रेजों को परास्त करने के लिए राम शक्ति की आराधना करते हैं तभी सीता रूपी भारत माता को रावण पाश से मुक्त किया जा सकता है। राम अपने को नहीं धिक्कार रहे हैं अपितु भारतीय अपने को धिक्कारते हुए कह रहे हैं-

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।।

बार-बार युद्ध होने पर उसके अनियति बने रहने के कारण राम को शक्ति की अराधना करनी पड़ी। शक्ति प्रसन्न होकर राम को विजय होने का आशीर्वाद देकर उनके बदन में लीन हो गई-

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।'

अंग्रेजों का शासनकाल धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक विपन्नता एवं विषमता का युग था। जीवन पतनोन्मुख था। निराला ने देश की सामाजिक विभीषिका और आर्थिक शोषण की मनोव त्ति का कठोर व्यंग्यात्मक शैली में कंपा देने वाला, हृदय विदारक चित्रांकन किया है। सामाजिक रुढ़ि तथा शोषण को 'विधवा' के करूण क्रन्दनमय जीवन को देखा-

वह इष्ट देव के मंदिर की प्रतिमा-सी
वह दीप-शिखा सी शांत भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव की स्म ति रेखा-सी
वह टूटे तरू की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

आर्थिक विपन्नता इतनी बढ़ गई थी कि भिखारी के पेट-पीठ मिलकर अर्थात पिचक्कर एक हो गए थे उसके पास झोली भी अति पुरानी थी जिसका मुंह फटा हुआ था। आर्थिक दरिद्रता का चित्रण भिक्षुक में प्रस्तुत किया है-

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट और पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता।
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

निराला ने 'दान' में धार्मिक विकृति, मानव की उपेक्षा एवं पशु के आदर की रूढ़ मनोव त्ति पर करारा व्यंग्य किया है। ऐसे लोग बन्दरों को मालपुए खिला रहे हैं पास ही खड़े भूखे भिखारी को देखने का अवसर भी उनके पास नहीं है। मानव की उपेक्षा और पशु का आदर किया जा रहा है। निराला एक युगान्तरकारी कवि हैं। इसलिए उन्होंने अपने काव्य में सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया है। रूढ़ि-विरोध के कारण ही उन्होंने उन सभी रूढ़ियों को तोड़ फेंकना चाहा है जिसके चक्र

में फंसकर मानव शोषित होने को विवश है। 'दान' कविता में निराला ने लिखा है-

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए।
देखा भी नहीं उधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं- धन्य, श्रेष्ठ मानव।

निराला एक ऐसे विद्रोही कवि रहे हैं। जिन्होंने जीवन साहित्य और समाज में कहीं भी किसी प्रकार की रूढ़ियों को स्वीकारा नहीं। निराला का यह रूढ़ि-विरोध 'सरोज-स्म ति' में स्पष्ट द ष्टिगोचर होता है-

फिर सोचा मेरे पूर्वज गण
गुजरे जिस राह, वही शोभन
होगा मुझको यह लोक-रीति
कर दूं पूरी, गो नहीं भीति
कुछ मुझे तोड़ते गत विचार
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूं अक्षम, निश्चय
आएगी मुझमें नहीं विनय।

वह युग स्वामी विवेकानंद का युग था। निराला विवेकानंद के व्यक्तित्व तथा दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित एवं अनुप्राणित थे। निराला काव्य में जो दार्शनिकता तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना दिखलाई पड़ती है वह उन्नीसवीं सदी के पुनर्जागरण एवं युगबोध का परिणाम है। इसलिए राम कृष्ण मिशन के सेवा-कार्य के श्रीगणेश को निराला ने अपनी काव्य रचना में स्थान दिया जो आधुनिक भारत का गौरवमय इतिहास है। स्वामी विवेकानंद की दिग्विजय नए भारत की अंगड़ाई स्वरूप है। निराला ने लिखा है-

अमेरिका-धर्म महासभा का निनाद
विश्व ने सुना, कांपी संस ति की थी दरी
गरजा भारत का वेदांत केसरी।

निराला ने एक ओर युगबोध के अनुसार वर्तमान विभीषिका एवं दुर्दशा का चित्रण किया है। दूसरी ओर अतीत के गौरव ज्ञान एवं वैभव की जानकारी भी दी है। कवि को अपनी, संस्कृति की अध्यात्मवादी भावना पर अत्यधिक गर्व है। स्वामी शारदा नंद एवं स्वामी प्रेमानंद आदि को निराला ने भारतीय संस्कृति के अग्रदूत रूप में स्वीकारा है। 'तुलसीदास' में यह विशेषता स्पष्ट रूप से मुखरित हो उठी है। इस खंड काव्य में मुगल आक्रमण एवं मुगल राज्य के परिणामस्वरूप संस्कृति तथा स्वाधीनता के विध्वंस का चित्र प्रस्तुत करते हुए निराला ने तुलसी के मोह का चित्रांकन किया हैं तुलसी की मानसिकता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है जिसमें मोह एवं जाग ति का अंतर्द्वंद्व है। उस अंतर्द्वंद्व का शमन तुलसी-पत्नी रत्नावली ने शारदा रूप मोह निराकरण करके भारतीय संस्कृति के पुनर्जीवन हेतु आह्वान किया तुलसी ने पत्नी से विदा लेकर पुनरुत्थान की साधना हेतु प्रस्थान किया। तुलसी की लोक प्रसिद्ध कथा में परिवर्तन का श्रेय महाप्राण की राष्ट्रीय सांस्कृतिक द ष्टि को है।

देशकाल के शर से विंधकर
यह जागा कवि अशेष छवि धर।
इसका स्वर भर भारती मुखर होएगा।

निराला की सांस्कृतिक अभिरूचि उनके व्यक्तित्व का प्रमुख घटक है। उन्होंने ऐतिहासिक एवं पौराणिक काव्य-विषय भी ऐसे ही अपनाए हैं जो सांस्कृतिक गरिमा से ओत-प्रोत हैं। 'पंचवटी प्रसंग', 'सेवा प्रारम्भ', 'यमुना के प्रति', 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' ऐसी ही उदान्त काव्य-भूमियां हैं।

'यमुना के प्रति' कृष्ण काव्य की नवीन कल्पना है। क्योंकि इसमें पारस्परिक भक्ति और धर्म की अंतः प्रेरणा के स्थान पर सांस्कृतिक आशंसा एवं अनुमान का ही स्वर प्रधान है। भगवान कृष्ण भारतीय संस्कृति में विशिष्ट चरित्र हैं। युमना भी उनके लीला-विलासों में संप क्त होने के फलस्वरूप विशेष सांस्कृतिक गौरव की अधिकारिणी हो गई है।

'राम की शक्ति पूजा' में निराला ने अन्य सांस्कृतिक आयाम की प्रस्तुति की है। निराला की अभिरुचि राम के उस मन के प्रस्तुतीकरण में है जो कभी थकता नहीं, विपरीत परिस्थितियां जिसे झुका नहीं सकती, दैन्य जिसकी प्रकृति के विरुद्ध है। हठयोग की अंतर्साधना भी इस व्यंजना के साथ सहयोग करती है। निराला इसी सांस्कृतिक आदर्श चरित्र से प्रभावित होकर जीवन संघर्षो में आजीवन डटे रहे।

'पंचवटी प्रसंग' की रचना सेवा और भक्ति के सांस्कृतिक संदेश के निर्वचन हेतु ही की गई है।

'सेवा प्रारंभ' से करूणा के महान भारतीय आदर्श की व्यावहारिकता अंकित की गई है। रामकृष्ण मिशन के लोक सेवा भाव से निराला प्रभावित रहे हैं। इसीलिए इस रचना में वर्णित घटना इस मिशन के इतिहास में आधारभूत महत्त्व रखती है जो युग बोध की कड़ी है।

राष्ट्रीय एकता हेतु भाषायी एकता युग की मांग थी जो अब भी है। निराला हिंदी के सम्मान हेतु आजीवन संघर्षरत रहे। नारी की महत्ता युग की मांग थी और है। निराला ने भक्तिकालीन, रीतिकालीन एवं छायावादी लीक से हटकर नारी के शक्ति रूप की कल्पना की। 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' में नारी के उद्‌बोधिका रूप की अभिव्यंजना हुई है। नारी शक्ति एवं मात रूप है। सीता को भारत माता के रूप में चित्रित किया गया है तथा लक्ष्मण को राष्ट्रभक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सबल राष्ट्र निर्माण में नारी का सहयोग अनिवार्य है।

निराला की राष्ट्रीयता के विशाल परिवेश में संपूर्ण मानवता, उनकी कल्याण कामना, दलितों की आहत कुंठाओं के प्रति हृदय का हुंकार भरा ओजस्वी स्वर पुरुष एवं मुखर हो गया है। अखंड मानवता की कल्याण कामना में पर्यवसित निराला की चेतना मानवतावादी है।

प्रगतिवादी कवि निराला की यह धारणा है कि समाज के समस्त कष्टों का मूल कारण आर्थिक विषमता है और समाज के समस्त अनर्थों का एक ही उपचार है- साम्यवाद। जिसका अर्थ मानवतावाद है।

करुणा उपेक्षित, पीड़ित और प्रताड़ित जन-समूह के लिए और विद्रोह शोषक वर्ग के प्रति यह निराला की प्रगतिशील जनवादिता का आधार है। उन्होंने प्रारम्भ में ही क्रांति का सहारा लेकर मानवतावादी मूल्यों का अनुमोदन किया है।

सामाजिक यथार्थ के जितने पहलू निराला काव्य में उभर सके हैं उतने अन्यत्र नहीं। भिखारियों की हीन दशा हो, नारी श्रमिक की असह्य स्थिति हो, किसानों पर जमींदारों और अधिकारियों का अत्याचार हो, आजादी और आंदोलनों के भीतर चलने वाले राजनीतिक ढकोसलें हों, सांस्कृतिक दुर्अवस्था हो युग बोध के सभी पहलुओं पर निराला की तीक्ष्ण द ष्टि थी।

'कुकुरमुत्ता' निराला की सामाजिक चेतना, यथार्थ द ष्टि और प्रगतिशील विचारधारा का परिणाम है।

छायावादी शैली में नारी सौंदर्य एवं नारी माहात्म्य का विशेष महत्त्व था। नारी के आंतरिक सौंदर्य, मर्यादित सौंदर्य वर्णन के साथ-साथ मांसल सौंदर्य वर्णन भी युग की मांग थी।

महाप्राण निराला के सौंदर्य चित्रण में सूक्ष्म एवं वायवीयता के साथ-साथ कहीं-कहीं मांसलता के भी दर्शन होते हैं। 'स्फटिक शिला' कविता में मांसलता का निरूपण करते हुए निराला ने लिखा है-

आंख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर
गीली धोती सटी हुई भारी देह में, सुघर
उठे पुष्ट स्तन, चोंच जैसे जयन्त की
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर
मेरा मन कांप उठा याद आई जानकी

कहा, तुमने राम को
कैसे दिए हैं दर्शन।

प्रत्येक युग में प्रेम का प्रधान्य होता है अंतर इतना है कि कभी वह वासना का रूप धारण कर लेता है, कभी पूज्य बुद्धि के आ जाने से पूजनीय एवं श्रद्धेय रूप धारण कर लेता है। छायावादी काव्य में प्रेम के सूक्ष्म रूप का चित्रण हुआ है। निराला ने युगानुरूप प्रेम को उच्च स्थान देते हुए उसे पवित्र तथा बंधनहीन स्वीकारा है-

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीभ भू पर
प्रेम की महोर्मि - माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट,
जिसमें सांसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
त ण सम बह जाते हैं।

निराला काव्य में श ंगार के सूक्ष्म एवं मांसल दोनों ही रूप प्राप्त होते हैं। लेकिन वे मांसल प्रेम को तुच्छ एवं असार मानते हैं। इसीलिए उन्होंने लिखा है-

मन का जड़त्व था
दुर्बल वह धारण चेतन की
मूर्च्छित लिपटी थी जड़ों से बारंबार
सब कुछ तो था असार
अस्तु वह प्यार।

निराला ने नायक-नायिका के शुद्ध, सात्विक मर्यादित प्रेम का वर्णन 'राम की शक्ति पूजा' में राम-सीता के रूप में वर्णित किया है। राम-सीता का प्रथम मिलन दिव्य रूप है।

नायक-नायिका के मिलन द्वारा प्रेम भावना का भव्य चित्रण ही नहीं किया है अपितु प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से भी 'जुही की कली' में किया है। जो प्रथम मुक्त छंद, प्रेम भावना प्रधान कविता है। इसी प्रकार की प्रेम भावना प्रधान कविता 'वनबेला' है। जिसमें निराला ने सूर्य एवं प थ्वी की मिलन दशा का चित्र प्रस्तुत किया है-

प थ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरुपम
किसलयों बंधे
चूमता रसा को बार-बार चुंबित दिनकर
क्षोभ से, लोभ से, ममता से,
उत्कण्ठा से, सर्वस्व दान-
देकर लेकर सर्वस्व प्रिया का सुकृत मान।

इस प्रकार निराला ने प्रकृति पर चेतना का आरोप कर प्राकृतिक श ंगारिक चित्रों की भव्य योजना की है।

निराला काव्य में अन्य छायावादी कवियों की भांति मानवतावादी स्वर मुखरित होता है। उनकी अनेक कविताओं में जन-कल्याण की भावना पुष्ट द ष्टिगोचर होती है। निराला काव्य में दलित एवं शोषित वर्ग को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है। 'भिक्षुक', 'विधवा' कविताएं प्रमुख उदाहरण हैं। निराला ने अनेक स्थल पर वैषम्य की निंदा कर मानवीय एकता का प्रयास किया है-

मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्त
भेदकर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक
हो कोई सर।

भिक्षुक परिवार की स्थिति निराला के समय में भयावह थी। भिक्षुक की संतान भीख मांगती थी। उसकी संतान भी रोजी-रोटी के रूप में भीख मांगने के धंधे को ही अपनाती थी। छोटे-छोटे बच्चे बचपन से ही भीख मांगने लग जाते थे।

वर्तमान में भी यह स्थिति यथावत विद्यमान है। भूख से पीड़ित भिक्षुक बच्चों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण निराला ने किया है-

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बाएं से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-द ष्टि पाने की ओर बढ़ाए
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

निराला ने 'तुलसीदास' में शूद्रों की दयनीय स्थिति का मार्मिक एवं हृदय विदारक चित्रांकन किया है-

चलते-फिरते पर निःसहाय
वे दीन, क्षीण, कंकाल काय।

निराला काव्य में दलित एवं शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश युग बोध एवं मानवतावादी द ष्टिकोण के परिणामस्वरूप मुखर हो उठा है। सामाजिक वैषम्य को देखकर निराला का संतप्त हृदय सब कुछ विनष्ट करने को आतुर है। वह राष्ट्रीय विकास एवं सामाजिक नवनिर्माण का आकांक्षी है।

निराला के युगबोध एवं मानवतावादी द ष्टिकोण के विषय में श्री पाण्डेय ने लिखा है-

"जन साधारण के जिस सामान्य आदमी का कवि ने आत्मसाक्षात्कार किया है उसके रेखा चित्रों तक ही अपने को सीमित नहीं कर लिया, बल्कि उसकी प्रतिष्ठा के लिए निरंतर अभियान चलाया...........प्रचलित लीक से हटकर कवि की अभिव्यक्ति युगीन चेतना के भावबोध की चुनौती को स्वीकार करती है और सतत तिरस्कृत, पददलित, उपेक्षित एवं अप्रतिष्ठित के सभी खतरे झेलकर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करती है। रचना धर्मिता की निष्ठा और ईमानदारी चरम सत्य के श ंगों का स्पर्श करती है।"

निराला काव्य में युगबोध एवं मानवतावादी द ष्टिकोण का सफल चित्रांकन हुआ है।

5. निरालाः प्रगति चेतना

कवि सामाजिक प्राणी है। साहित्य समाज की मानवतावादी विचार-धारा का समर्थन करता है। कल्पना की उड़ान छोड़कर कवि प थ्वी के यथार्थ से सदैव जुड़ा रहता है। वह विचारों से प्रगतिशील होता है। कल्पना और सौंदर्य बोध उसे सौंदर्यमयी सत्ता की ओर आकर्षित करते हैं। उसका मस्तिष्क और वातावरण के प्रति उसकी सजगता उसे यथार्थ के धरातल पर ले आती है। इसी कारण परिवर्तित परिस्थितियां 'छायावाद' के पश्चात् 'प्रगतिवाद' लेकर आईं। निराला साहित्य उससे पूर्णरूपेण प्रभावित है।

सन् 1935 में प्रगतिशील आन्दोलन भारत में आरम्भ हुआ। हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी आंदोलन ने राष्ट्र को स्वस्थ सामाजिक चेतना प्रदान की। इस साहित्य में मानव को चलते-फिरते संघर्ष करते हुए यथार्थ रूप में प्रदर्शित किया गया है।

निराला प्रारम्भ से विद्रोही कवि रहे हैं उनकी द ष्टि प्रत्येक दिशा में नवीन आधारों की स ष्टि करती आई। स्वभावतः उनके काव्य में सामाजिक जीवन के वैषम्यों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है, उसे ही उनका प्रगतिशील काव्य कहा जा सकता है।

प्रगतिवाद की रूपरेखा

साहित्य जीवन के आत्म सत्य का उद्घाटन करता है। अतः इसमें मानवीय संस्कारों से लेकर सामाजिक वातावरण की अन्तःप्रक्रिया निहित रहती है। साहित्य जीवन के गतिशील तत्वों का गत्यात्मक चित्र होता है तभी प्रगतिशीलता साहित्य का प्रथमिक जीवन्त तत्व है। प्रगतिशीलता सामाजिक विकासवाद की स्वाभाविक प्रक्रिया और व्यक्तित्व निर्माण की आवश्यक दशा है।

निराला की प्रगतिशीलता का स्वरूप

निराला का काव्य उनके विकासशील व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है, जिसमें उनकी वैयक्तिकता और सामाजिकता का विद्रोह प्रबल रहा है। उनके प्रगतिशील काव्य का आरम्भ 'रूपाभ' के प्रकाशन से हुआ। 'रूपाभ' का संपादन सुमित्रानन्दन पंत करते थे, निराला जैसे श्रेष्ठ प्रगतिशील साहित्यिक का सहयोग प्राप्त हुआ।

निराला की प्रगतिशील कविताओं में समाज की विषम अवस्था का चित्रण किया गया है। उन्होंने जातीय मतभेदों, छोटे-बड़े की भावनाओं, अंधविश्वासों, छल-कपट, स्वार्थ, आर्थिक कष्टों, दरिद्रता, चारित्रिक दोष आदि को अपने काव्य का विषय बनाया है।

निराला के काव्य में प्रगतिवाद की निम्नलिखित विशेषताएं मिलती हैं-

1. **यथार्थवाद का स्वरः** निराला काव्य में कल्पना की ऊंची उड़ान के स्थान पर यथार्थवाद का व्यापक स्वर सुनाई देता है। उनकी 'दान' शीर्षक कविता में सामाजिक यथार्थ का चित्रण इस प्रकार किया गया है-

   द्विज राम-भक्त, भक्ति की आश
   भजते शिव को बारहों मास
   कर रामायण का पारायण
   जपते हैं श्रीमन्नारायण।

2. **सामाजिक समस्याओं के प्रति सचेष्टताः** निराला के काव्य में सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता और उन समस्याओं को दूर करने के प्रति चेष्टा के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत कविता में निराला शूद्रों की दयनीय स्थिति का चित्रण कर उसके परिणाम को बतलाते हुए कहते हैं-

   जारी रहेगी यदि
   इसी तरह आपस में
   उच्च जातियों की घ णा

द्वंद्व कलह वैमनस्य
स्वप्न-सा विलीन हो जाएगा अस्तित्व सब
दूसरी तरंग कोई फिर फैलेगी।

3. **सामाजिक प्रगतिशीलता का भावः** निराला ने नई समाज रचना का संकेत दिया है। वे कहते हैं कि मेरे मन में वह नक्शा है जिससे सामाजिक विषमता दूर हो सकती है और देश उन्नति के मार्ग पर चल सकता है। यदि मिलों में लगी हुई पूंजी देश को वापस मिल जाए और पूंजी का राष्ट्रीयकरण हो जाए तो देश का नक्शा ही बदल सकता है-

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय वो
पूंजी तुम्हारी मिल में है।

4. **साम्यवादी द ष्टिकोणः** निराला के काव्य में सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक समस्या को साम्यवादी क्रांति के आदर्श में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें दीन-हीनों और किसानों के महत्त्व की स्थापना, जाति-पांति, छुआछूत की समाप्ति तथा संपत्ति का राष्ट्रीयकरण आदि प्रश्नों को उठाया गया है। सामाजिक प्रगति से नई गति को मंत्र दिया गया है, जिस पर बढ़कर समानता का आदर्श स्थापित हो सके-

   'दीन' नामक कविता में वह एक दीन व्यक्ति की व्यथा को उजागर कर समाज में व्याप्त स्वार्थ की भावना को दूर करना चाहते हैं-

यहां कभी मत आना,
उत्पीड़न का राज्य दुख ही दुख
यहां है सदा उठाना,
क्रूर यहां पर कहलाते हैं शूर
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर,
स्वार्थ सदा रहता परार्थ से दूर।

5. **परिवर्तन की पुकार तथा क्रांति की भावनाः** निराला के काव्य में समाज के शोषण का अंत करने के लिए व्यक्ति मात्र से जागने का आग्रह किया है-

जागो, जागो आया प्रभात,
बीती बहु, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल,
बाँधों, बाँधो किरणें चेतन।

6. **नारी स्वातंत्र्य की पुकारः** निराला के काव्य में नारी के प्रति 'पावन करो नयन' वाली भावना है। इलाहाबाद जैसे शहर की भूमिका में पत्थर तोड़ती हुई गरीब स्त्री की हालत पर जिस वातावरण का निर्माण हुआ है वह समाज के आर्थिक अभाव को भी प्रस्तुत करता है-

वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर,
वह तोड़ती पत्थर।

   यहां 'वह तोड़ती पत्थर' वाक्य की पुनराव त्ति करके कवि ने अपने मन की करुणा भरी द ष्टि का परिचय दिया है।

   भारतीय विधवा के प्रति उन्हें बहुत सहानुभूति थी। उसका एक महत्वपूर्ण चित्र प्रस्तुत है-

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-तांडव की स्म ति रेखा सी

वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

7. **सांस्कृतिक समन्वय की भावना:** निराला के गीतों में सांस्कृतिक समन्वय की भावना मिलती है-

यही जग-जीवन के दिन-रात।
यही मेरा, इनका, उनका, सबका स्पन्दन,
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन।
यही मेरा, इनका, उनका, सबका जीवन।

8. **राष्ट्रीय भावना:** निराला का काव्य राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित है। उनकी 'जागो फिर एक बार' कविता में बड़ी तीव्र ललकार है। वे आपसी फूट दूर करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं-

व्यक्तिगत भेद ने
छीन ली हमारी शक्ति।

निराला ने देश के प्राकृतिक सौंदय्र और उसके सांस्कृतिक महत्त्व पर अनेक गीत लिखे हैं- 'भारति जय विजय करे' शीर्षक उनका राष्ट्र गीत अत्यधिक प्रसिद्ध है। 'वर दे वीणा वादिनी' में भी अपने देश के उत्थान के लिए 'शारदा' से प्रार्थना करते हैं-

काट अंध उर के बंधन स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलषु भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।

9. **मानवता की महत्ता का प्रकाशनः** प्रगतिशील भावना सामाजिक और राष्ट्रीय होते हुए भी अन्ततः मानवतावाद में परिणत होती है। सुखी विश्व का स्वरूप, जिसमें समस्त मनुष्य स्नेह और समानता के रेशमी पाश में बंधे हों, जहां ईर्ष्या, द्वेष, ऊंच-नीच आदि के भेदभाव समाप्त हो गए हों, वहीं मानव की प्रगतिशील भावना विराम लेती है।

निराला ने शोषित एवं दुखीजन के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। भिक्षुक चित्र द ष्टव्य है-

वह आता,
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता।

निराला मानव-समाज के उन्नयन के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं-

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आए
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।

10 **प्रेम का सुष्ठु सामाजिक रूपः** निराला की कविता में प्रेम का चित्रण सामाजिक रूप में हुआ है। भारतीय वधू का चित्रण करते हुए कवि ने कहा है-

यौवन-उपवन का पति वसंत।
है वही प्रेम उसका अनन्त।

उन्होंने नारी का मानसिक चित्रांकन करते हुए लिखा है-

उसमें कोई चाह नहीं है,
विषय-वासना तुच्छ, उसे कोई परवाह नहीं है।

11. **आर्थिक विषमता को दूर करना:** निराला ने अपनी परवर्ती काव्य-युग में आर्थिक विषमता पर मार्मिक व्यंग्यात्मक कविताएं लिखी हैं। उनका संवेदनशील मानस गरीबों की विपन्नता पर द्रवित हो उठा है। 'चूंकि यहां दाना है' कविता में पूंजीवादी सभ्यता पर करारा व्यंग्य करते हुए निराला ने कहा है कि पैसे पर ही धर्म पनपता है, प्रेम प्लावित होता है। कविता पुष्पित होती है।

वर्तमान वैषम्य के कारण मनुष्य के तन-मन में उसकी कथनी-करनी में महान अंतर आ गया है। जीवन में कृत्रिमता आ गई है, मनुष्य बर्बर हो गया है। धार्मिक भावना से भरकर मानव बन्दरों की भूख शांत करने को तत्पर है। किंतु भूखे भिखारी की नहीं। व्यंग्यात्मक उदाहरण देखिए-

झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं - "धन्य श्रेष्ठ मानव।"

12. **भाषा की प्रगतिशीलता:** निराला की अधिकांश प्रगतिशील कविताएं सामान्य चलाऊ भाषा में लिखी गई हैं। भावानुरूप भाषा के सिद्धांत-मर्म को जानने वाले निराला के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे हास्य-व्यंग्य-विनोद शैली को अपनाने के पश्चात् तदनुरूप भाषा का भी अनुसंधान करते और यही उन्होंने किया भी है। निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता अपनी भाषा की सफाई और बानगी के कारण ही इतनी लोकप्रिय हुई है-

अबे सुन बे गुलाब!
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा, कैपीटलिस्ट!

वास्तव में निराला भारतीय नवजागरण के जागरूक कवि हैं। इनमें राष्ट्रीय आंदोलन और पतनोन्मुख रूढ़िवादी परंपराओं का विकासात्मक गतिशील चित्रण द ष्टिगोचर होता है, जिसमें प्रथम की स्वीकृति तथा द्वित्तीय की अस्वीकृति दिखलाई पड़ती है। निराला को नव जागरणशील साहित्य में पूर्ण आस्था है, परन्तु वह आस्था संघर्षरत विकासवाद के सहारे अपनाई गई है। मनोवैज्ञानिक द ष्टि से निराला का प्रगतिवाद भारतीय समाज की असहाय आस्था के बल पर खड़ा हुआ है। निराला ने प्रगतिवाद को नव जागरण की समस्या के रूप में स्वीकारा है। उसको बंधन से बांधकर समाजवादी या मार्क्सवादी प्रचार नहीं किया है।

निराला का प्रगतिवाद सामाजिक विविधता का सजीव व्यंग्य रूप है। हिंदी के प्रगतिवादी कवियों में निराला का स्थान शीर्षस्थ है क्योंकि उनमें राष्ट्रोत्थान, नारी जागरण, जातीय गौरव तथा क्रांति के साथ-साथ यथा तथ्य स्थितियों का रूप-निर्देश किया गया है।

निराला के प्रगतिशील काव्य में सामाजिक विषमता को सविस्तार विवेचित किया गया है। यह हिंदी प्रदेश की जनता जनार्दन का यथार्थ रूप लक्षित करता है जो समानता एवं मानवता की द ष्टि से भ्रात त्वभाव का पूरक है।

निराला का काव्य उनके विकासशील व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है जिसमें उनकी वैयक्तिकता और सामाजिकता का विकास प्रबल रहा है।

निराला की प्रगतिशील कविताओं में समाज की विषम अवस्था का चित्रण किया गया है। उन्होंने जातीय मतभेदों, छोटे-बड़े की भावनाओं, अंधविश्वासों, छल-कपट, स्वार्थ, आर्थिक कष्टों, दरिद्रता, भुखमरी तथा चारित्रिक दोष आदि को अपने काव्य-विषय के रूप में चयनित किया है।

6. निरालाः क्रांतिकारी एवं विद्रोही कवि

निराला क्रांतिकारी एवं विद्रोही कवि हैं। जैसे- निराला अपने जीवन में अनेक प्रकार की विसंगतियों एवं द्वंद्वपूर्ण परिस्थितियों के परिणामस्वरूप विद्रोही प्रव त्ति के थे, उसी प्रकार उनके काव्य में अन्याय एवं विषमताओं के प्रति प्रलयंकारी क्रांति का उद्घोष सुनाई पड़ता है। निराला की प्रगतिवादी ओजस्वी कविताओं में ज्वालामुखी के समान भयंकर विस्फोट है। महाकवि मतवाला निराला ने क्रांति के संबंध में विचार करते हुए लिखा है-

"क्रांति साहित्य की जननी है। नवीनता तभी पैदा होती है और साहित्य का रथ कुछ कदम आगे बढ़ता है। इसे ही जीवन भी कहते हैं। ऋतु के बदलने पर जिस प्रकार प थ्वी एक नए रूप से सजती है, उसी तरह क्रांतिजन्य नवीनता से साहित्य।"

अन्यत्र अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए निराला ने लिखा है-

"समाज में क्रांतिकारी विस्फोट के लिए काफी सामग्री है, xxx साहित्यकार x x x क्रांति की लहर उठाए x x x जब तक समाज का नवीन रूप उनके अनुकूल न हो जाए।"

निराला काव्य क्रांतिकारी एवं विद्रोही चेतना से परिपूर्ण है। इसके संबंध में डॉ. राम विलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है-

"निराला क्रांति के कवि हैं, उस क्रांति के जिसका लक्ष्य भारत को विदेशी पराधीनता से मुक्त करना ही नहीं, जनता के सामाजिक जीवन में मौलिक परिवर्तन करना भी है। क्रांतिकारी परिवर्तन की यह आकांक्षा 29 दिसंबर, 1923 ई. के 'मतवाला' में प्रकाशित उनकी कविता 'धारा' से लेकर 'सांध्य काकली' में प्रकाशित अन्तिम दौर की 'शिवतांडव' वाली कविता तक अनेक रूपों में, भाव बोध के अनेक स्तरों पर व्यक्त हुई है।''

समाज में व्याप्त विषमता असमानता अछूत भावना दलितों पर होने वाले अत्याचार, श्रमिकों का शोषण तथा नारी स्वतंत्रता का हनन आदि ने निराला के हृदय में ऐसा आक्रोश एवं वेदना का संचार कर दिया था कि वे क्रांतिकारी एवं विद्रोही बन गए यह विद्रोह उन्हें सामाजिक विषमता को दूर करने, नारी स्वतंत्रता, दलितोद्धार एवं क्रांति का बिगुल बजाने के लिए करना पड़ा जिसके लिए उनका मन छटपटा उठा और विनाश हेतु श्यामा का आह्वान करने लगा-

"एक बार बस और नाच तू श्यामा
सामान सभी तैयार
कितने ही असुर चाहिए कितने तुम को हार?
कर मेखला मुण्ड मालाओं में बन मन-अभिरामा,
एक बार बस और नाच तू श्यामा।"

निराला काव्य में क्रांति का प्रथम स्वरूप विनाशात्मक है। क्रांति के लिए 'बादल' निराला का सर्वप्रिय प्रतीक है, जिसकी वज्र हुंकार सुनकर समस्त विश्व कांप जाता है। वज्रपात से बड़े-बड़े पर्वत क्षत-विक्षत हो जाते हैं और सम्पन्न वैभवशाली लोग अपनी अंगनाओं से लिपटे रहकर भी आतंकित हो जाते हैं मानो प्रिया की बांहों में नहीं अपितु आतंक की बांहों में लेटे हैं। गर्जना सुनकर भयभीत हो जाते हैं-

बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलाधार
हृदय धाम लेता संसार
सुन-सुन घोर वज्र हुंकार
अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर

x x x
अंगना अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर कांप रहे हैं
धनी, वज्र गर्जन से बादल।

मानव दुख की उत्तरदायी सारी जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों और जड़ संस्कारों को निराला आमूल नष्ट-भ्रष्ट करने के प्रबल आकांक्षी हैं जिसके लिए उन्हें शिव के विनाशक रूप रुद्र से आग्रह करनी पड़ती है। दुख के बाद सुख, युद्ध के बाद शांति आती है उसी प्रकार विनाश ही नव निर्माण की नींव रखता है-

नाचो हे रुद्रताल आंचो जाग ऋतु अराल।
झरे जीवन जीर्ण-शीर्ण उद्भव हो नव प्रकीर्ण
करने को पुनः तीर्ण हो गहरे अन्तराल।

वस्तुतः कवि की जीवन द ष्टि अत्यन्त व्यापक है। इसलिए वह जीर्ण-शीर्ण प्राचीन को जला देने के लिए प्रबल अभिलाषी है क्योंकि जब तक पतझड़ नहीं आयेगा वसंत को कौन आने देगा। पुराने सूखे पत्तों के सड़ने के बाद ही व क्षों की टहनियों पर नवीन लाल-लाल कोंपलें आती हैं। उसी नवनिर्माण हेतु प्राचीनता का जलना अनिवार्य है-

जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन
क्या करूँगा तन जीवन हीन?

निराला ने प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध करते हुए नवीनता का आह्वान किया है। सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक जीवन की विकृतियों को दूर करने के लिए ही उन्होंने नवीनता की शंखध्वनि का उद्घोष किया है। मां सरस्वती की वन्दना नवीनता प्रदान करने के लिए की है-

नव गति, नवलय, ताल-छंद नव,
नवल कंठ, नव जलद मन्द्र रथ,
नव नभ के नव विहग-व न्द को,
नव पर, नव स्वर दे।

श्रमिकों का शोषण कल कारखाने वाले पूंजीपति एवं दलितों का दमन अमीर जन कर रहे थे। निराला दुख-दग्ध एवं वैषम्य से आक्रांत दलित वर्ग के उन्नयन हेतु शोषक वर्ग का समूल उन्मूलन करना चाहते हैं-

तुझे बुलाता कृषक अधीर
हे विप्लव के वीर।

शोषित वर्ग की दीन-हीन दशा देखकर निराला को असह्य वेदना होती है इसीलिए वे वज्रघोष करने वाले जलधर का का आह्वान करते हैं-

वज्रघोष से ऐ प्रचण्ड।
आतंक जमाने वाले।
भय के मायामय आंगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर।

निराला ने जीवन, साहित्य अथवा समाज कहीं भी किसी प्रकार की रूढ़ियों को नहीं स्वीकारा है। रूढ़ियों के प्रति विद्रोह निराला के स्वभाव का अन्तरस्थ एवं चिर चैतन्य गुण है। विद्रोह कवि के स्वभाव का एक अंग बन गया है। निराला काव्य में आदि से अंत तक विद्रोही एवं क्रांतिकारी भावना का संश्लिष्ट रूप देखा जा सकता है। मुक्त छंद में काव्य रचना, युगानुरूप नवीन भावों का ग्रहण तथा उनके अनुसार भाषा तथा निरंतर प्रगतिशील तथा प्रयोगशील तत्वों में उनकी विद्रोही प्रव त्ति देखी जा सकती है।

निराला की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी जिसके कारण सरोज का उपचार नहीं करा सके। अर्थभाव ने उसे निगल लिया। भयंकर परिस्थितियों ने उन्हें विद्रोही बना दिया। 'सरोज स्म ति' में विद्रोही प्रव त्ति उभर कर आई है। कान्य कुब्जों का

विरोध उनकी रीति-नीति, सभ्यता-संस्कृति संबंधी बुराईयों के कारण था एक बार निश्चय कर लिया था कान्य कुब्ज-कुल कुलांगार, खाकर पत्तल में छेद करने वालों के साथ सरोज का विवाह नहीं कर सकता। किया भी तो रूढ़ियों को तोड़कर, महिला संगीत नहीं हुआ, बारात नहीं आई, सगे-संबंधी आमंत्रित नहीं किये गए, पंडित के न आने पर निराला स्वयं विवाह मंत्र पढ़ने को तैयार, सुहाग शय्या की सज्जा निराला ने की आदि तथ्य रूढ़िवादिता के विरोधी तथा नवीनता के प्रतिपादक हैं। एतद्विषयक महादेवी वर्मा का कथन रेखांकित है-

"अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने कभी ऐसी हार नहीं मानी जिसे सहज बनाने के लिए हम समझौता करते हैं, स्वभाव से उन्हें वह निश्च्छल वीरता मिली है, जो अपने बचाव के प्रयत्न को भी कायरता की संज्ञा देती है। उनकी वीरता राजनीतिक कुशलता नहीं, वह तो साहित्य की एक निष्ठा का पर्याय है। छल के व्यूह में छिपकर लक्ष्य तक पहुंचने को साहित्य लक्ष्य प्राप्ति नहीं मानता। उसे अपने पथ की सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देता हुआ, सभी आघातों को हृदय पर झेलता हुआ लक्ष्य तक पहुंचता है, उसी को युगस्रष्टा साहित्यकार कह सकते हैं। निराला जी ऐसे ही विद्रोही कलाकार हैं। जिन अनुभवों के दर्शन का विष साधारण मनुष्य की आत्मा को मूर्च्छित करके सारे जीवन को विषाक्त बना देता है, उसी से उन्होंने सतत जागरूकता और मानवता का अम त प्राप्त किया।"

विद्रोह भाव निराला के व्यक्तित्व का स्थायी अंश है। व्यक्तित्व की छाप शैली और विचारधारा दोनों को प्रभावित करती है। 'कुल्ली भाट' उपन्यास में उन्होंने स्वीकारा है-

"मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ फिर क्रांतिकारी।"

किसी भी स्थान पर इनके विचारों को देखकर इनकी क्रांतिकारिता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। समाज की जर्जर व्यवस्थाओं, राजनीतिक गुटबंदियों, धार्मिक रूढ़ियों पर निराला ने भीषण प्रहार किया है।

निराला बंधन प्रिय नहीं हैं प्रेम के क्षेत्र में भी वे स्वच्छन्द प्रेम के समर्थक हैं। इनका प्रेम जाति-धर्म की चहरदीवारी में बंधा हुआ नहीं है। निराला संपूर्ण काव्य स्वच्छन्दता एवं विद्रोह का काव्य है, उनकी ये संपूर्ण विशेषताएं प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति चित्रण एवं नारी चित्रण में देखी जा सकती हैं। जुही की कली की कुछ पंक्तियां उद्ध त हैं-

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झाड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल
चौंक पड़ी युवती-
चकित चितवन निज-चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज-पास,
नम्रमुख हँसी-खिली,
खेल रंग प्यारे संग

मुक्त छंद एवं स्वच्छन्द मौलिक भाव के कारण 'जुही की कली' हिंदी साहित्य में सर्वथा नवीन प्रयोग था। इसे द्विवेदी युगीन आचारपरक साहित्यकारों का कोपभाजन भी बनना पड़ा। किन्तु विद्रोही निराला ने अवरोधों की कभी चिंता नहीं की।

निराला का विद्रोह भाव उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं में भी देखा जाता है। बादल के माध्यम से जैसे उन्होंने अपने को ही संबोधित किया हे। निराला इस तथ्य से अवगत हैं कि विश्व में नव जीवन लाने हेतु विप्लव के निर्दय प्लावन की आवश्यकता ही नहीं अपितु नितांत अनिवार्यता है। संपूर्ण जीवन के नए-नए अंकुरों को प्रगतिशील प्रव त्तियों के विकास को संभव बनाने वाले बादल के साथ अपने विद्रोही स्वभाव का पूर्ण साम्य अनुभव करने के पश्चात निराला विप्लवी विद्रोही बादल का अभिवादन करते हैं। 'धारा' की पंक्तियों में सरिता की बाढ़ निराला के यौवनोन्मत्त विद्रोह का ही प्रतीक है जो किसी के समक्ष झुक नहीं सकता है-

बहने दो
रोक-ओक से कभी नहीं रूकती है

यौवन-मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है?

झुकना निराला ने जाना नहीं। 'सरोज स्म ति' में भी उनकी यही द ढ़ता द ष्टिगोचर होती है-

पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम, निश्चय
आयेगी मुझमें नहीं विनय
उतनी जो रेखा करे पार
सौहार्द्र-बंध की निराधार।

निराला व्यवस्थित परिधियों में कब बंध सकते थे। विद्रोही व्यक्ति समाज को तोड़ता है लेकिन स्वयं भी टूटता है। इसे वह नियति की संज्ञा देता है। निराला का संपूर्ण जीवन और साहित्य संघर्षपूर्ण परिवेश में संगुंफित करुण कहानी है। महादेवी वर्मा निराला की दयनीय स्थिति से दयार्द्र होकर उनको साहित्यकार संसद के भवन में ले गई किंतु निराला आजीवन बंधन मुक्त रहने वाले वहां कैसे रह सकते थे? परिणामतः दारागंज वाली जीर्ण शीर्ण अपनी कोठरी में वापस आ गए। यहां आने पर निराला की विक्षिप्रता उन्हें घेरने लगी।

निराला ने किसी पर भी अपने विद्रोह की चाबुक चलाने में जरा भी आना-कानी नहीं की पर उनका लक्ष्य सदैव व्यक्ति नहीं समष्टि की व्यवस्था था जिसमें विषम भीषण व त्तियों की जड़ता को प्रश्रय एवं पोषण मिलता है। पौरुष, ओज एवं विद्रोह के माध्यम से उन्होंने काव्य को जो शक्तिमयता प्रदान की अन्यत्र दुर्लभ है।

पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह निराला का वैयक्तिक था। निराला के काव्य में सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक समस्या को साम्यवादी क्रांति के आदर्श में प्रस्तुत किया है, जिसमें दीन-हीनों और किसानों के महत्त्व की स्थापना, जाति-पांति, छुआछूत की समाप्ति तथा सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण आदि प्रमुख समस्याएं हैं। सामाजिक प्रगति से नवीन गति का यंत्र फूंका गया है जिससे समानता का आदर्श स्थापित हो सके-

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ,
आज अमीरों की हवेली,
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली,
खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।

निराला की प्रबल कामना है कि संपत्ति का राष्ट्रीयकरण हो तथा आर्थिक विषमता की खाई पटे-

सारी सम्पत्ति देश की बने,
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय देश की हो,
काँटा काँटे से कढ़ाओ।

समाज में आमूलचूल परिवर्तन लाने के लिए क्रांति की भावना का उदय हुआ। बादल की वर्षा करना, गर्जना करवाना, श्यामा का तांडव न त्य करना आदि क्रांति के प्रतीक हैं।

नारी स्वतंत्रता हेतु निराला ने क्रांति को अनेक रूप दिये क्योंकि वह पुरुष की कारा से नारी को मुक्ति दिलाने के पक्षपाती हैं।

सांस्कृतिक समन्वय हेतु निराला की क्रांति सामने आती है। निराला के गीतों में सांस्कृतिक समन्वय की भावना क्रान्ति का ही प्रतीक है। इस द ष्टि से 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'तुलसी दास' के आरम्भ में निराला ने आर्य संस्कृति के_हास और मुगल या मुस्लिम संस्कृति के उदय का चित्रण क्रांति का परिचायक है-

भारत के नभ का प्रभा पूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे, तमस्तूर्य दिङ्मण्डल।

निराला क्रांतिकारी कवि के रूप में प्रकट हुए हैं। वे जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति के ह्रास के कारण की ओर संकेत करते हैं दूसरी ओर सांस्कृतिक जागरण के भाव जनमानस में उदय करना उनकी प्राथमिकता रही है। वे जनमानस में अगाध विश्वास और विजयोल्लास की प्रगाढ़ भावना उद्दीप्त करना चाहते हैं-

होगा फिर दुर्घर्ष समर
जड़ से चेतन का निशि वासर
× × ×
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल।
जय इधर ईश है उधर सबल माया कर।

निराला देश में बिखरे हुए समस्त तत्वों को प्रसाद की भांति समन्वित करना चाहते हैं। यह कार्य समन्वय की क्रांति द्वारा ही क्रियान्वित किया जा सकता है।

बहु सुमन, बहुरंग, निर्मित एक सुन्दर द्वार,
एक ही कर से गुंथा उर एक शोभा-भार।

प्रगतिशील भावना, सामाजिक और राष्ट्रीय होते हुए भी अन्ततः मानवतावाद में परिणत होती है। अनेक क्रांतियां आईं किंतु अभी तक विश्व में मानवतावाद की स्थापना नहीं हो सकी। निराला ने अपनी कविताओं के द्वारा इस प्रकार क्रांति की है जिससे विश्व को सुखी विश्व का रूप दिया जा सके जिसमें समस्त मनुष्य स्नेह और समानता के रेशमी धागे में बंधे हों, जहां ईर्ष्या द्वेष ऊँच-नीच आदि के भेद भाव समाप्त हो गए थे। निराला ने शोषित एवं दुखी जन के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्र्ध में सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता की तीव्र भावना लोगों के मन में घर कर चुकी थी। स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता का यह प्रकाश साहित्य में सर्वाधिक द ष्टिगोचर होता है। साहित्यकारों ने रूढ़ि के नाम पर परंपरा के बंधन को पूर्णरूपेण समाप्त करने की ठान ली। क्रांति की यह स्वच्छंदता रूप-शिल्प दो विधानों में दिखाई पड़ने लगी। परंपरागत विषयों का स्थान सर्वथा नवीन विषयों ने ले लिया जिनकी अभिव्यक्ति हेतु नये रूपों की आवश्यकता बलवती हो उठी जिसके परिणामस्वरूप नवीन अनुभूतियों, भावनाओं, कल्पना चित्रों तथा नवीन परिस्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए नए-नए माध्यमों भाषा, छंद तथा शैली के नये रूपों की खोज जारी हो गई।

मुक्ति में 'छंद मुक्ति' अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मुक्त छंद वह छंद है जिसके चरणों की संख्या, मात्रा, वर्ण, तथा विस्तार पूर्णरूपेण अनिश्चित एवं स्वतंत्र रहते हैं। मात्र स्वर, लय एवं ताल को आधार मानकर काव्य स जन किया जाता है। इसलिए आद्योपान्त एक रूपता द ष्टिगोचर होती है। अर्थात् मुक्त छंद का आधार मात्रा, वर्ण, चरण संख्या आदि के स्थान पर मात्र लय को आधार बनाया जाता है।

निराला के छंद विद्रोह या छांदिक क्रांति का हिंदी जगत में सर्वाधिक शोर था। निराला ने घनाक्षरी अथवा कवित्त को ही मुक्त छंद का आधार माना है। 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है-

"हिंदी में मुक्त काव्य कवित्त छंद की बुनियाद पर सफल हो सकता है।"

चिरकाल से छंद इसी जाति का कण्ठहार बना है। इस छंद में एक विशेष गुण यह भी है कि लोग इसे चौताल आदि बड़ी तालों तथा ठुमरी की तीन तालों में सफलतापूर्वक गा सकते हैं नाटक आदि के समय इसे पर्याप्त प्रवाह के साथ पढ़ा जा सकता है।

मुक्त छंद में काव्य स जन करने के परिणामस्वरूप ही निराला युग-प्रवर्तक कहलाए। कविताओं में छंद विहीनता होने पर भी प्रवाहमयता विद्यमान है। 'जुही की कली' मुक्त छंद काव्य का उत्क ष्ट आदर्श है-

विजन-वन-बल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल-कोमल-तनु-तरूणी-जुही की कली
द ग बंद किए, शिथिल-पत्रांक में,

निराला का कहना है कि 'सोती थी सुहाग भरी' आठ अक्षरों का छंद स्वयमेव बन जाता है। सभी लड़ियों की गति कवित्व छंद की भांति है।

आजकल निराला की छंद क्रांति को इतना महत्त्वपूर्ण माना गया है कि काव्य स जन का यह प्रमुख माध्यम बन गया है। प्रारम्भ में इस छंद का मजाक उड़ाते हुए इसे 'खबड़' या 'केंचुआ' छंद की संज्ञा दी गई थी।

'बादल राग', 'जागरण', 'जागो फिर एक बार' आदि कविताएं इसी छंद में लिखी गई है। निराला के मुक्त छंद में संगीत का अद्भुत सम्मिश्रण है। निराला का द ढ़ विश्वास है-

"मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है, मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।" इसी आधार पर निराला साहित्य के लिए मुक्ति आवश्यक समझते हैं। साहित्य की मुक्ति से ही एक जाति की मानसिक मुक्ति का ज्ञान होता है। निराला काव्य मात्र मुक्त छंद में नहीं है अपितु शास्त्रीय छंद एवं मुक्त छंद दोनों में ही उन्होंने काव्य स जन किया है तथा समान रूप से सफल रहे हैं।

भाव एवं भाषिक विद्रोह निराला की विशेषता है। भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। कवि की प्रतिभा मात्र नवीन वस्तुओं का उन्मेष ही नही करती है अपितु उसके अनुरूप भाषा का नवीन विन्यास भी करती है। भावानुसारिणी भाषा का विशेष महत्त्व होता है।

निराला की भाषा के अनेक स्रोत है। जहां भी काव्यानुरूप भाषा मिली उन्होंने उसको अपना लिया। अतः कबीर की भाषा के समान निराला की भाषा को खिचड़ी कहा जाये तो अनौचित्य न होगा। निराला की भाषायी क्रांति ने उन्हें भाषा के पवित्रतावादी सिद्धांत से अलग कर दिया है क्योंकि निराला की भाषा में विस्तार के साथ विविधता भी विद्यमान है। कहीं उनकी भाषा तत्सम् शब्दावली प्रधान संस्कृतनिष्ठ है, कहीं तद्भव प्रधानता ने उनकी भाषा को साधारण रूप दिया है, कहीं अंग्रेजी के शब्दों का बाहुल्य है तो कहीं अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी शब्दों की प्रधानता है। 'राम की शक्ति पूजा' तत्सम् प्रधान संस्कृतनिष्ठ भाषा है। 'कुकुरमुत्ता' आरम्भिक रूप में अरबी, फारसी, तुर्की शब्दावली प्रधान है तो अन्त में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की बहुलता देखी जा सकती है। 'हरामी' शब्द गाली है। 'खानदानी' 'हरामी' गुलाब को कुकुरमुत्ता ने कहा है यह देशगत प्रभाव है। 'बाड़ी' जैसे बंगला शब्द का भी प्रयोग किया गया है जो वर्तमान संदर्भ में बगीचे का अर्थ देता है, बंगला में 'घर' अर्थ देता है। जहां प्रायः प्रत्येक घर में 'बावड़ी' या तालाब होता हैं जिसमें मत्स्य पालन अवश्य होता है। मछली को जल तोरी कहते हैं। यहां बगीचे में तोरी उगती है वहां तालाब मे तोरी अर्थात् मछली पैदा होती है। बाड़ी शब्द-श्लेष अपने दोनों अर्थो की अभिव्यक्ति करता है। बावड़ी से बाड़ी विकास बड़ा सरल है।

निराला किसी भी शब्द को काव्य के लिए परित्याज्य नहीं मानते हैं। परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले शब्दों को विवेकपूर्वक अपनी कविता में संजोए जाते है। व्यापकता एवं विस्तार को लक्ष्य में रखने के कारण निराला की भाषा समरस नहीं है वह प्रयोगशील है। निराला ने अनेक भावों, अनेक रसों, अनेक स्तरों की जीवन भूमि को अपने काव्य का विषय बनाया है इसलिए भाषायी एकरूपता के स्थान पर इनके काव्य में भाषायी क्रांति ही द ष्टिगोचर होती है। महादेवी की भाषा में एक रसता है तो प्रसाद जैसे समरसता वाले कवि की भाषा समरस नहीं है। प्रसाद की समरसता के अनुसार निराला की भाषा मे विषमता एवं विभिन्नता हैं जिसमें उन्होंने समन्वय स्थापित कर समरसता का आनंद प्रदान किया है।

निराला की भाषा समास बहुल संस्कृत के प्रयोगों से लेकर बोलचाल की भाषा अथवा भरती की अशिष्ट भाषा के प्रयोगों तक संचरण करती है। पारिवारिक छवियों से लेकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय आदर्शों तक के गीत निराला ने लिखे हैं। इसलिए विषय, भाव एवं पात्रानुसार भाषा का प्रयोग किया है। 'कुकुरमत्ता' गुलाब को खानदानी 'हरामी' कहता है। विनय भावना, शांत रसीय गीत की भी संरचना निराला ने की है इसलिए उनकी भाषा में भाषायी प्रतिमान नहीं है। एक ही भाषा रूप का प्रयोग उनके लिए पर्याप्त नह था इसलिए भाषायी क्रांति का सहारा लेकर भाषा के विविध रूपों को अपने काव्य का माध्यम बनाया है।

अभिव्यक्ति के नए क्षेत्र के साथ-साथ नई भाषा की तलाश में भी रहते है। इसीलिए निराला अपने परवर्ती काव्य में भाव-भाषा का पूर्ण विद्रोह करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

निराला की भाषा के दो रूप उद्ध त हैं-

तीक्ष्ण शर-विध त क्षिप्र-कर वेग-प्रखर
शत शेल-संवरणशील, नील-नभ गर्जित स्वर

- राम की शक्ति पूजा निराला

रोज पड़ता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी।

- 'कुकुरमुत्ता' निराला

'राम की शक्ति पूजा' तथा 'कुकुरमुत्ता' की भाषा में जमीन आसमान का अंतर आ गया है। निराला छायावादी शिखर से उतर कर यथार्थ की धरती पर आ गए हैं। निराला जब जीवन के सीमित दायरे को तोड़कर नए सामाजिक यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति करते हैं तब वे कथ्य एवं शिल्प दोनों के प्रति विद्रोह करते हैं।

निराला ने जिस उदात्त भावभूमि और परिष्कृत भाषा से अपनी काव्य यात्रा प्रारम्भ की, उससे कोई यह अनुमान नहं लगा सकता है कि वे 'नए पत्ते' की ऊबड़-खाबड़ जमीन तोड़ने मे लगेंगे।

विवेकानंद के नव 'वेदांतवाद' का अनुयायी निराला कहता है

"जो कुछ पढ़ा, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न है।"

इसलिए 'कुकुरमुत्ता' पर आकर वह भाव-भाषा के प्रति विद्रोही हो जाता है। 'कुकुरमुत्ता' की भाषिक संरचना सर्वथा नवीन है। वास्तव में 'कुकुरमुत्ता' विषय वस्तु, शिल्प, दर्शन, जीवन-दर्शन, भाषा आदि सभी द ष्टियों से सर्वथा विद्रोही संरचना है जो निराला की विद्रोही प्रव त्ति का प्रतीक बन गई है अन्यथा वे 'कुकुरमुत्ता' को ब्रह्म का स्वरूप प्रदान कर उसे कालजयी एवं सार्वभौम न बना देते।

निराला आरम्भ से ही विद्रोही रहे है किंतु वे सहृदय विद्रोही हैं। इस द ष्टि से उन्हें जन्मजात विद्रोही कहा जा सकता है। उन्होंने व्यवहार जगत या काव्य जगत कहीं भी परंपरागत रूढ़ियों के बंधन को स्वीकार नहीं किया है। सरोज का विवाह व्यावहारिक विद्रोह का प्रतीक है। मुक्त छंद काव्यात्मक विद्रोह है।

सहृदय निराला को जो कुछ मिलता था तुरंत दोनों हाथों से लुटा देते थे। दीन-दुखियों की सहायता करना उनकी सहृदयता का प्रतीक है। इसके विषय में डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने लिखा है-

"निराला के आर्थिक संकट का प्रश्न कुछ तो वर्तमान प्रकाशन व्यवस्था पर है किंतु एक सीमा तक उनके निराले स्वभाव पर भी है। यह कवि किसी भूखे के मांगने पर अपना भोजन छोड़ सकता है, किसी नंगे के मांगने पर अपना वस्त्र उतार सकता है, पुस्तकों से प्राप्त धन का सबसे अधिक भाग दूसरों की सहायता में व्यय होता है। आज तक इस कवि ने मिले पुरस्कारों को निजी कार्यों में व्यय नहीं किया, भला ऐसे अवढर दानी को अर्थ का अभाव न खलेगा तो किसे खलेगा।"

ऐसा अवढर दानी अंध परंपराओं को नष्ट करने के लिए प्रतीकों के माध्यम से समाज मे आक्रोश एवं क्रांति भावना जाग त करना चाहता है-

उड़ा उड़ा कर पीले पल्लव, करे सुकोमल सह-
तरूण तरू भर प्रसून की प्यास
जीर्ण-शीर्ण जो दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।

इसी प्रकार 'बेला' में निराला भुखमरी के शिकार सर्वहारा वर्ग का चित्रण करते हुए कहते हैं-

वेश-रूखे, अधर सूखे
पेट भूखे, आज आये;

हीन जीवन, दीन चितवन,
क्षीण आलंबन बनाये।

निराला काव्य में सामाजिक वैषम्य से पीड़ित मानवता की छटपटाहट अंकित है और यही उनकी क्रांति एवं विद्रोह का मूल आधार है। डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कथन अवलोकनीय है-

"कवि सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं पराधीनता से व्यथित बेचैन होकर समाज में नई क्रांति मचाना चाहता है, जिससे सारे समाज में नव चेतना का उदय हो, सभी समान रूप से सुख-सम द्धि के अधिकारी हो, सबको स्वतंत्रता के साथ जीवन यापन करने की सुविधाएं प्राप्त हो और सभी समाज के अभिन्न अंग बनकर संगठित रूप में जीवित रहें।"

निराला ने अपनी अनेक कविताओं में क्रांति के रचनात्मक रूप का चित्रण किया है।'धारा' का अंश उद्ध त है-

आज हो गए ढीले सारे बंधन
मुक्त हो गए प्राण,
रूका है सारा करूणा क्रन्दन।

करूण क्रन्दन को अवरोधित करना ही वास्तविक क्रांति हैं। 'उद्बोधन' कविता में निराला ने कहा है कि आंधी आने पर पत्ते नष्ट हो जाते हैं और नवीन कोंपलों पीले द्वार खुल जाता है। प थ्वी-आकाश सभी सुगन्धि से भर जाएंगे। निराला ने इस कविता में क्रांति के दोनों रूपों का चित्रण किया है। 'बादल राग' कविता में जहां विप्लव-बादल की वज्र-हुंकार से धनी जन विकंपित हो जाते हैं वहीं बादल की गर्जना एवं वर्षा से पौधे लहलहा उठते हैं।

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार
शस्य अपार
हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
विप्लव रव से छोटे ही शोभा पाते।

क्रांति द्वारा श्रमिक वर्ग का विकसित होना ही, क्रांति का रचनात्मक पक्ष है।

निराला की क्रांति-चेतना सामंती व्यवस्था का पूर्णरूपेण बहिष्कार कर समाजवादी व्यवस्था अथवा साम्यवादी व्यवस्था का समर्थन करती है क्योंकि समाजवादी व्यवस्था में सबके जीवन यापन के साधन समान होते है। डॉ० राम विलास शर्मा का कथन है -

"निराला का क्रांतिकारी द ष्टिकोण उन राष्ट्रवादियों से भिन्न है तो भारत की उपासना करते हुए भारतीय जनता का दुख दर्द भूल जाते हैं। जिन्हें सामंती पूंजीवादी उत्पीड़न दिखलाई नहीं देता, जो देश के विकास के लिए समाजवाद को अनावश्यक समझते हैं। निराला जिस क्रांति का स्वप्न देखते हैं, उसकी परिणति वर्ग उत्पीड़न को समाप्त करके समाजवादी व्यवस्था की रचना में है।"

वास्तव में निराला संकीर्ण राष्ट्रवादी न होकर रंग, जाति, भाषा से अलग मनुष्य मात्र से बंधुत्व की घोषणा करते हैं-

मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न;
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक हो कोई सर।

निराला की सहृदयता अपनी हानि की सीमा तक इस वक्तव्य से ज्ञात होती है। निराला की सहृदयता का वर्णन करते हुए आचार्य शिव पूजन सहाय ने लिखा है-

"जहाँ कहीं रहें, आस-पास के दुकानदारों को मुंह-मांगा देकर निहाल कर दिया। इक्के तांगे वाले भी उनकी दरिया दिली से परिचित थे और अब उन्हें देखते ही दूसरे के साथ किया हुआ भाड़ा छोडकर उन्हें साग्रह बिठा लेते थे।"

निराला की सहृदयता कहीं युग चेतना बनकर प्रकट हुई हैं, कहीं सामाजिक एवं लोक चेतना बनकर और कहीं मानवतावादी चेतना और क्रांतिकारी चेतना बनकर। निराला की सहृदयता का उत्स है करूणा। करूणा ही क्रांति है। एक बाद करूणा उत्पन्न हो जाए तो हम वे नहीं हो सकते, जो हम कल थे और न हम जिंदगी को वही रहने दे सकते हैं जो वह कल थी। करूणा आए तो क्रांति अपने आप आ जाती है। निराला इसका अपवाद नहीं है। उनकी सहृदयता विद्रोह से क्रांति तक अपने पैर पसार लेती है।

निराला क्रांति के अग्रदूत है। उनका हृदय सामाजिक विषमता व मानव की विवशता तथा दीनता को देखकर इतना क्षुब्ध है कि उनके प्रत्येक स्वर में विद्रोह का ज्वालामुखी धधकता द ष्टिगोचर होता है। निराला के काव्य में विनाशात्मक-रचनात्मक दोनों द ष्टिकोण दिखलाई पड़ते हैं। उनकी क्रांति की चेतना का मूल आधार एवं बीज मानवीय करूणा है। क्रांति विनाश-निर्माण के सोपानों से गुजरती हुई मानवता का स्वर गुंजित करती है।

7. निराला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक द ष्टि

'सामाजिक' शब्द की व्युत्पत्ति 'समाज' से हुई है। 'समाज' शब्द संस्कृत तत्सम् है जिसका अर्थ किसी प्रदेश या भूखंड में रहने वाले लोग जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है। संस्कृति समाज का अनिवार्य तत्व है।

'सामाजिक' शब्द 'समाज' शब्द से व्युत्पन्न विशेषण है। [सं० समाज + ठक्-इक प्रत्यय] लगाकर बना है जिसका अर्थ आज-कल समाज विशेष जन-समाज से संबंध रखने वाला। सामाजिक संबंधों के फलस्वरूप होने वाला होता है। 'सामाजिक' से सामाजिकता स्त्री॰ [सं० सामाजिक+तल्-यप् प्रत्यय] व्युत्पन्न होता है जिसका अर्थ सामाजिक होने की अवस्था या भाव अथवा मनुष्य में समाजशील बनने की या होने वाली व त्ति होता है।

समाज का निर्माण व्यक्तियों का समूह अपनी संस्कृति से करता है। कवि के काव्य में मानव मात्र की मंगल भावना और समाज की एकजुटता एवं विकास हेतु जिन अनुभूतियों या व त्तियों का चित्रण होता है वह उसकी सामाजिक द ष्टि कहलाती है।

महाप्राण निराला प्रगतिशील एवं विद्रोही कवि हैं। अतः उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक द ष्टि अति व्यापक है। निराला की सामाजिकता के विषय में विचार करते हुए डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है-

"निराला हिंदी साहित्य के ऐसे युगान्तकारी कवि हैं जिनकी रचनाओं में तत्कालीन मानव की पीड़ा, परतंत्रता एवं परवशता के प्रति उत्पन्न तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनाई देती है, अन्याय एवं असमानता के प्रति प्रलयंकारी विद्रोही की घोषणा सुनाई पड़ती है और विषमताओं, विभेदों एवं विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करने की तीव्र गर्जना सुनाई पड़ती है।"

विद्रोही प्रव त्ति के परिणामस्वरूप निराला के काव्य में जहाँ सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता मिलती है वहां समाज के कमजोर और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं अन्याय के समूल नाश का विद्रोही स्वर भी मुखर होता है।

सामाजिक द ष्टि: निराला की सामाजिक द ष्टि अति उदात्त एवं व्यापक है। उन्होंने यथार्थ के सुद ढ़ धरातल पर खड़े होकर मानव जीवन के बहु आयामी चित्र अंकित किए हैं। उनके इन चित्रो में क्षोभ है, आक्रोश है, तीक्ष्ण व्यंग्य है, क्रांतिकारी स्वर है तथा विद्रोही तेवर है। वास्तव में निराला का काव्य समाज का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। निराला ने पूंजीवादी व्यवस्था से आक्रांत साधारण जीवन के अभावग्रस्त रूप को प्रस्तुत करते हुए लिखा है।

कच्चे घर ऊबड़ खाबड़ गंदे
गलियारे बंद पड़े कुल धंधे
लोग बैठे लेते हैं जमुहाई,
ठण्डी ठण्डी चलती है पुरवाई।

समाज की दारूण स्थिति का अवलोकन कर निराला करूणा विह्वल हो 'दीन' कविता में बोल पड़ते हैं-

सह जाते हो
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,
हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न,
और जगत की ओर ताक कर,
दुख, हृदय का क्षोभ त्यागकर,
सह जाते हो।

निराला का हृदय भिक्षुक की हृदय विदारक स्थिति को देखते ही टूक-टूक हो जाता है जो मुट्ठी भर दाना प्राप्त करने के लिए गरीबी में झोली के फटे हुए मुंह को फैलाए हुए लाठी के सहारे से चल रहा है। 'भिक्षुक' कविता समाज की विषमता का ज्वलंत एवं मार्मिक चित्र उपस्थित करती है।

वह आता
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता
पेट-पीठ दोनों मिलकर है एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता।

निराला समाज के शोषित वर्ग की पीड़ा से इतना दुखी हो गए है कि उन्हें इस समाज का अंग बनाने से नकार जाते हैं-

यहाँ कभी मत आना,
उत्पीड़न का राज्य, दुख ही दुख यहाँ है
सदा उठाना।

निराला समाज के सर्वहारा एवं श्रमिक वर्ग की वेदना का चित्रण नहीं करते हैं अपितु भारतीय समाज की विद्रूपता का चित्रण करते है, जहाँ विधवा नारी शोषित है, दलित है, पीड़ित है।

निराला ने भारतीय विधवा को 'टूटे तरू की छुटी लता सी दीन' कहकर उसके असीम दुख की अभिव्यक्ति की है-

वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
रोती है अस्फुट स्वर में
दुख सुनता है आकाश छीर

निराला ने 'बादल राग' कविता में कृषक वर्ग की बुरी हालत का अति यथार्थ चित्रांकन किया है-

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
हे विप्लव के वीर
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार।

निराला ने भारतीय समाज के दलित एवं शोषित वर्ग का चित्र उपस्थित नहीं किया है अपितु समाज में जड़ जमाए हुए रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का घोर विरोध किया है। 'दान' कविता में कवि ने धर्म के उन ठेकेदारों पर करारा व्यंग्य किया है जो बंदरों को मालपुए खिलाकर पुण्य का अर्जन करते हैं, साथ ही खड़े भिखारी को उपेक्षा भरी आंखों से देखने का भी उन्हें अवसर नहीं है।

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं- "धन्य, श्रेष्ठ मानव।"

निराला की सामाजिक द ष्टि केवल दलित की दयनीय स्थिति का ही चित्रण करने की ओर नहीं है बल्कि शोषक एवं पूंजीपति वर्ग के प्रति घ णा एवं आक्रोश व्यक्त करती है। 'कुकुरमुत्ता' कविता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है जहाँ कुकुरमुत्ता साधारण मनुष्य और गुलाब अभिजात्य, पूंजीपति एवं शोषक का प्रतीक है। निराला ने इन प्रतीकों के माध्यम से यथार्थ को चित्रित करने के साथ-साथ पूंजीपतियों पर तीखा व्यंग्य किया है।

वहीं गन्दे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठे सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता

"अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट!
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम,

समाज के शोषित वर्ग की दयनीय एवं विपन्न दशा के उत्तरदायी शोषक एवं पूंजीपति वर्ग हैं जिनके प्रति निराला का गहरा आक्रोश है-

अर्थ के गर्व में सर्प जैसे पड़े
धनिक जन सजग होकर हुए हैं खड़े।

निराला ने 'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता में सामन्तवादी सभ्यता पर करारा व्यंग्य किया है-

राजे ने अपनी रखवाली की;
किला बनाकर रहा
बड़ी-बड़ी फौजें रख ।
चापलूस कितने सामन्त आए।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।

ब्राह्मण तत्कालीन समाज में सर्वश्रेष्ठ वर्ण माना जाता था। ब्राह्मणों में कान्य कुब्ज अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। निराला स्वयं कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। कान्य कुब्जों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। उन पर तीखा प्रहार किया है-

ये कान्य-कुब्ज कुलांगार
खाकर पत्तल में करे छेद
इनके कर कन्या अर्थ खेद
इस विषय बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरूस्थल नह सुजल।"

तथा

मतलब की लकड़ी पकड़े हुए
कितने ब्राह्मण आए
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।

'झींगुर उट कर बोला' कविता में गांधीवादियों के मिथ्या आश्वासन, जमींदारों और अंग्रेजी शासन के अन्याय का चित्रण किया है -

गांधी वादी आए,
कांग्रेस मैन टेढ़े के;
देर तक, गांधीवाद क्या है, समझाते रहे।
देश की भक्ति से
निर्विरोध शक्ति से,
राज अपना होगा;
जमींदार, साहूकार अपने कहलाएंगे
शासन की सत्ता हिल जायेगी;
हिंदू और मुसलमान

वैरभाव भूलकर जल्द गले लगेंगे,
जितने उत्पात हैं,
नौकरों के लिए हुए;
जब तक इनका कोई
एक आदमी भी होगा
चूल नहीं बैठने की।

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने सामाजिक द ष्टि से निराला काव्य की विवेचना करते हुए लिखा है-

"निराला की द ष्टि से तत्कालीन जीवन का कोई अंग अछूता नहीं रहा है। निराला ने अपने तीव्र व्यंग्यों का प्रहार करते हुए तत्कालीन सामाजिक चेतना को ही नहीं झकझोरा है अपितु तथाकथित प्रगतिशील विचारधारा से ओत-प्रोत नेताओं एवं समाज सेवियों, पूंजीपतियों, बौद्धिक विकास में लीन अवसरवादियों, शोषक, जमींदारों एवं धनिकों आदि की भी खूब खबर ली है। कुकुरमुत्ता, नए पत्ते, बेला, अणिमा आदि काव्य-संग्रहों में कवि की यह व्यंग्यात्मक प्रव त्ति अधिक तीव्र एवं प्रखर हो उठती है।"

निराला की विद्रोही चेतना शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को नष्ट कर देना चाहती है। 'बादल राग' कविता में कवि वैषम्य युक्त सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करने एवं शोषित वर्ग की दशा सुधारने के लिए क्रांति रूपी बादल का आह्वान करता है -

यह तेरी रण-तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में प थ्वी के, आशाओं से
नव जीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल!
फिर फिर!
बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलाधार,
ह्रदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार।

निराला ऐसी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर हैं जो समानता पर आधारित हो। यही नहीं। निराला ने सामाजिक नव-निर्माण के लिए युवाओं को उद्बोधित किया है-

पशु नहीं वीर तुम, समर शूर क्रूर नहीं
काल चक्र में ही दबे आज तुम राज-कुँवर !
समर सरताज
× × ×
तुम हो महान, तुम सदा हो महान
हे नश्वर यह दीन भाव, कायरता, काम परता।
ब्रह्म हो तुम, पदरज भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार, जागो फिर एक बार !

महाप्राण निराला की सामाजिक द ष्टि विविध्ण आयामों को व्यक्त करती है जिससे तत्कालीन सामाजिकता का स्पष्ट चित्र उभर कर सामने आता है।

सांस्कृतिक द ष्टिः 'सांस्कृतिक' शब्द संस्कृति से व्युत्पन्न हुआ है। 'संस्कृति' संस्कृत तत्सम् शब्द है। स्त्री॰ [सं० सम् कृ(करना) + क्तिन्-सुट्] [वि० सांस्कृतिक] का अर्थ संस्कार करने अर्थात किसी वस्तु को संस्कृत रूप देने की क्रिया या भाव। परिमार्जित, शुद्ध या साफ करना। संस्कार। आज-कल किसी समाज की वे सब बाते जिनसे विदित होता है कि उसके आरम्भ से अब तक कुछ विशिष्ट क्षेत्र मे कितनी उन्नति की है।

आधुनिक विद्वानों के मत से संस्कृति भी सभ्यता का ही दूसरा अंग या पक्ष है। सभ्यता मुख्यतः आर्थिक, राजनीतिक, और सामाजिक सिद्धियों से संबद्ध है तथा संस्कृति आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा मानसिक सिद्धियों से संबंद्ध है संस्कृति कला-कौशल के क्षेत्र की उन्नति, सामाजिक रहन-सहन और परंपरागत योग्यताओं तथा विशिष्टताओं के आधार पर आंकी जाती है। सभ्यता मानव समाज की बाह्य और भौतिक सिद्धियों की मापक है, और संस्कृति लोगों के आंतरिक तथा मानसिक उन्नति की परिचायक होती है। इसीलिए सभ्यता समाज गत और संस्कृति मनोगत होती है।

संस्कृति शब्द का शाब्दिक अर्थ है - परिष्कार करने वाली शक्ति। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम् में संस्कृति शब्द को स्पष्ट करते लिखा है-

"संस्कृतिक शब्द संस्कार से बना है। संस्कार सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु में घज् प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका मूल अर्थ है-सुधारना अथवा परिष्कार करना।"

डॉ० रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है- "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है, और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज पर छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।"

इसलिए कहा जा सकता है कि परंपरा और समाज से प्राप्त जीवन का आचार विचार ही संस्कृति है।

सांस्कृतिक चेतना मानव के उदातीकरण एवं उत्कर्ष में सहायक होती है जिसके परिणामस्वरूप हिंदी काव्य में सांस्कृतिक तत्वों का विशद विवेचन हुआ है। महाप्राण निराला के काव्य में भी सांस्कृतिक मूल्यों का विस्त त चित्रण किया गया है क्योंकि निराला की सामाजिक द ष्टि की भांति ही सांस्कृतिक द ष्टि भी तीक्ष्ण रही है। संस्कृति का कोई कोना उनसे अछूता नहीं रहा है।

"कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"

गीता का यह कर्म सिद्धांत गीता के द्वितीय अध्याय के 46 वें श्लोक में वर्णित है जो भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है निराला की कर्मयोग की द ष्टि संस्कृति में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निराला ने अकर्मण्य मनुष्य को कार्य की ओर प्रव त्त होने हेतु प्रेरित करते हुए लिखा है।

क्यों अकर्मण्य सोचता बैठ
गिनता समर्थ हो व्यर्थ लहर
आए कितने ले गए अर्थ
बढ़ विषय बाड़वानल-जल-तर

मनुष्य को मनुष्यता अथवा मानवता सिखलाने के लिए, मनुष्य को मानव बनाने के लिए संस्कृति का अपूर्ण योगदान हैं। भारतीय संस्कृति का मूल आधार मानवता है। संस्कृति में मानव को मानव से प्रेम करना, मनुष्य वही है जो मनुष्य के लिए मरे आदि सिखलाने, मानव कल्याण की ओर प्रेरित करने तथा विश्व मानव में एकता की भावना का संचार करने आदि का प्रमुख स्थान है। भारतीय संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम् का संदेश देती है। निराला काव्य इससे अछूता कैसे रह सकता है। निराला की द ष्टि इधर गई हुई है उन्होंने लिखा है-

मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक
हो कोई सर।

निराली द ष्टि वही होती है जिसमें मानवतावादी द ष्टिकोण हो। निराला की सांस्कृतिक द ष्टि का आधार मानवतावाद है। इसीलिए वह मनुष्य की समता पर बल देती हुई साम्यवादी कहलाती है। निराला काव्य में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के समन्वय पर अत्यधिक बल दिया गया है। मानव को मानव से घ णा न करने, परस्पर भेदभाव समाप्त करने तथा मानव मात्र से प्रेम करने का संदेश देते हुए निराला ने लिखा है-

नहीं आज का यह हिंदू
आज का यह मुसलमान
आज का ईसाई-सिक्ख
आज का यह मनोभाव,
आज की यह रूपरेखा
सत्य है मनुष्य का
मनुष्य के लिए
बंद है जो दल अभी
किरण-संताप से
खुल गए वे सभी।

भारतीय संस्कृति में मानव कल्याण, करूणा, दया, परोपकार, त्याग, सेवाभाव आदि पर विशेष द ष्टि डाली है। निराला काव्य में संस्कृति के इन मूल्यों की पर्याप्त विवेचना हुई है। 'पंचवटी प्रसंग' में लक्ष्मण के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। उन गुणों को परिलक्षित करके राम की माता सुमित्रा की भूरिभूरि प्रशंसा करने का चित्रण करते हुए निराला ने लिखा है-

पाए हैं इसने गुण सारे मां सुमित्रा के
वैसा ही सेवाभाव, वैसा ही आत्म त्याग
वैसी ही सरलता, वैसी ही पवित्र कांति।

जीवन में त्याग का अत्यधिक महत्त्व है। त्याग द्वारा ही जीवन का उच्च लक्ष्य प्राप्त किया जाता है। त्याग की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए निराला ने लिखा है-

मरण को जिसने वरा है
उसी ने जीवन भरा है
परा भी उसकी, उसी के
अंक सत्य, यशोधय है।

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने निराला काव्य की सांस्कृतिक द ष्टि का विवेचन करते हुए लिखा है-

"निराला की काव्यानुभूति में तत्कालीन द्वंद्व ग्रस्त जीवन और जगत की विविधता भरी हुई है। उसमे प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों के विध्वंस का तीव्र स्वर भी सुनाई पड़ता है और नवीन समाज-रचना का मधुर राग भी गूँज रहा है। उसमें शोषकों, साम्राज्यवादियों एवं पूंजीपतियों द्वारा प्रताड़ित सर्वहारा वर्ग की चीख-पुकार सुनाई देती है तो दूसरी ओर अन्याय एवं असमानता को अपने सशक्त बाहुबल से पूर्णतया समाप्त कर देने की सिंह-गर्जना भी सुनाई पड़ती है। समता, एकता, संवेदना एवं सहानुभूति की मधुर स्वर लहरी भी प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। साथ ही उसमें मानव प्रेम है, विश्व प्रेम है, भगवद् भक्ति है तथा रक्त-क्रांति की प्ररेणा भी है और नव-निर्माण का शुभ संदेश भी है।"

वसंत ऋतु का सुंदर वर्णन करते हुए निराला ने लिखा है

सखि वसंत आया
भरा हर्ष वन के मन,
        नवोत्कर्ष छाया।
किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरू-वटिका
        मधुप-व ंद बंदी-
        पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता-मुकुल-हार-गंध-भार भर
वही पवन बंद मंद मंदतर
        जागी नयनों में वन
        यौवन की माया।

निराला का प्रकृति प्रेम उनकी सांस्कृतिक द ष्टि का प्रमाण है। कवि ने यामिनी का मानवीकरण प्रिय रूप में करके लिखा है-

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज-द ग अरूण-मुख
तरूण-अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभ भर रहे,
प ष्ठ ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर ऊपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, लड़ित -
दयुति से क्षमा मांगी।
हेर उर-पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मंद मराल,
गेह में प्रिय स्नेह की जय-माल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग में तागी।

आध्यात्मिकता संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष मानव के चार पुरूषार्थ है। मोक्ष को अध्यात्म फल के रूप में चित्रित करते हुए निराला ने लिखा है-

जब कड़ी मारें पड़ी, दिल हिल गया
पर न कर चूं भी कभी पाया यहां,
मुक्ति की तब युक्ति से मिल खिल गया
भाव जिसका चाव है छाया यहां।

लोक को म त्यु लोक, परलोक को स्वर्ग कहा गया है। भारतीय संस्कृति में लोक-म त्यु, स्वर्ग एवं पाताल तीन है। जिनमें सर्वाधिक महत्त्व स्वर्ग लोक का है। सबकी यही प्रबल कामना होती है कि मरणोपरांत उन्हें परलोक की प्राप्ति हो जिसके लिए जप-तप, दान, त्याग, तपस्या आदि के द्वारा मनुष्य अपना परिमार्जन एवं परिष्कार करता रहता है। निराला ने परलोक वर्णन करते हुए लिखा है-

नयन मुंदेंगे जब, क्या देंगे?
चिर-प्रिय-दर्शन?
शत-सहस्र-जीवन पुलकित, प्लुत
प्यालाकर्षण
अमरण-रणमय म दु-पद-रज?
विद्युत-घन-चुंबन?
निर्विरोध, प्रतिहत भी
अप्रतिहत आलिंगन?

रहस्यवादी कवि परमात्मा की तलाश एवं प्राप्ति में अनेक प्रतीकों का सहारा लेता है। कभी प्रश्नों द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करता है। निराला प्रश्न करते हैं-

कौन तम के पार? (रे, कह)
अखिल-पल के स्रोत, जल-जग,
गगन घन-घन-धार-(रे, कह)
गंध -व्याकुल-कूल-उर-सर
लहर-कच कर कमल-मुख-पर
हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर, सर
गूंज बारंबार। (रे, कह)

प्राण की नश्वरता, म त्यु की अवश्यंभाविता, अमरता की प्राप्ति आदि भारतीय संस्कृति के तत्वों का निराला ने सूक्ष्म द ष्टि से अवलोकन करते हुए कहा है-

म त्यु-निर्वाण प्राण-नश्वर
कौन देता प्याला भर-भर
म त्यु की बाधाएं, बहु द्वंद्व
पार कर कर जाते स्वच्छंद
तरंगों में भर अगणित रंग।
जंग जीते, मर हुए अमर।

शैशव, बाल कैशौर्य, युवा तथा व द्धा मानव जीवन की पांच अवस्थाएं हैं। प्रथम चार अवस्थाएं अगली अवस्था के पदार्पण को देखकर प्रस्थान कर जाती है। किंतु अंतिम अवस्था व द्धावस्था जाने के लिए नहीं अपितु मानव को ले जाने के लिए आती है। निराला अपनी व द्धावस्था का प्रतीकात्मक वर्णन करते हुए लिखते हैं-

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सांध्य बेला।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती आ रही है
हट रहा मेला।
जानता हूँ, नदी-झरने
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हंस रहा यह देख,
कोई नहीं मेला।

निराला रंगों की होली का वर्णन न करके खून की होली का चित्रण करते हैं। उत्सव भारतीय संस्कृति का प्राण है वह भला इनकी द ष्टि से कैसे ओझल होता?

निकले क्या कोंपल लाल,
फाग की आग लगी है
फागुन की टेढ़ी तान,
खून की होली जो खेली।

वास्तविक हो खेलने का वर्णन भी निराला काव्य में उपलब्ध है। जहाँ नायिका अपने को दूसरी टोली की सदस्या एवं हमजोली न होना बतलाती हुई, होली खेलने से इन्कार कर रही है-

खेलूंगी कभी न होली
उससे जो नहीं हमजोली।
यह आंख कहीं कुछ बोली,
यह हुई श्याम की तोली,
ऐसी भी रही ठिठोली,
गाढ़े रेशम की चोली-
अपने से अपनी धो लो,
अपना घूंघट तुम खोलो,
मैं बसी परायी टोली।

निराला मां से प्रार्थना करते हैं कि नरक के दुःख से बचाओ तथा धरा को स्वर्ग बनाओ। स्वर्ग और नरक का वर्णन करते हुए कवि लिखता है-

मां अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-रास से वारो।
× × ×
लाओ चाह-चयन चितवन में,
स्वर्ग धरा के कर तुम धारो।

दुःख से छुटकारा पाने के लिए मानव भगवान की शरण जाता है अर्थात् उसमें भक्ति भावना जाग त हो जाती है। भक्त-भगवान का पुराना नाता है जिसके प्रतीक मंदिर हैं। भारतीय संस्कृति में आस्था एवं आस्तिक का विशेष महत्त्व है। भक्ति-भावना का वर्णन करते हुए निराला ने लिखा है-

भजन कर हरि के चरण, मन !
पार कर मायावरण, मन !
× × ×
अन्यथ है वन्य कारा
प्रबल पावस, मध्य धारा
टूटते तन से पछड़कर
उखड़ जाएगा तरण, मन !

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि निराला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक द ष्टि उदात्त भाव भूमि पर प्रतिष्ठापित है।

8. काव्य-प्रयोग में विविध आयाम

हिंदी वांगमय के छायावादी युग ने पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसे महाप्राण, मतवाला, विद्रोही तथा क्रांतिकारी कवि का पदार्पण काव्यक्षेत्र में करवाया। उनकी नव-नव उन्मेष शालिनी एवं बहुमुखी प्रतिभा ने न केवल बहुविध-रचनाओं की स ष्टि की बल्कि अपनी प्रखर कल्पना शक्ति एवं जुझारू प्रव त्ति के माध्यम से नवीन प्रयोग भी किए। निराला की रचनाएं छायावाद के स्वप्निल परिवेश में जाग त हुई। साथ ही सामाजिक वैषम्य के विरूद्ध विद्रोही तेवर अपनाकर प्रगतिवादी स्वर ऊँचा किया। अपने काव्य में परम्परागत संस्क तनिष्ठ भाषा के प्रयोग के साथ-साथ मुक्त छंद का स जन में उपयोग कर परंपराओं से बंधन तोड़ा। स्वच्छंदतावादी प्रव त्ति के अनुसार काव्य स जन किया। साथ ही पारंपरिक, सांस्क तिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति उनकी अडिग आस्था भी द ष्टिगोचर होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निराला बहुमुखी प्रतिभा एवं प्रयोग के विविध आयामी कवि हैं।

वास्तव में निराला ऐसे अद्वितीय कवि हैं, जिनकी काव्य वस्तु का क्षेत्र अति व्यापक, बहुआयामी है। इसलिए उन्होंने काव्य वस्तु हो या काव्य शिल्प हो प्रगति एवं प्रयोग के नए-नए आयामों का स्पर्श किया है।

छायावाद युग को दो कालों में विभाजित किया गया है। पूर्वाद्र्ध (सन् 1918 - 1930 ई० तक)। इस काल को छायावाद का विकासोन्नमुख काल कहा जाता है। जिसमें व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं विद्रोही प्रव त्ति अत्यंत शक्तिशाली, तीव्र, आशामयी और संघटित थी।

उत्तराद्ध (सन् 1930 - 1942 ई० तक)। इस काल में छायावाद की शक्ति बिखरने लगी थी और वह आदर्श के स्वप्न को छोड़कर यथार्थ की कठोर भाव भूमि पर उतरता हुआ द ष्टिगोचर होता है। छायावादी कविता स्वप्न के शीश महल से निकलकर मानव जीवन की यथार्थ समस्याओं एवं जटिलताओं का सामना करने में संलग्न हो गई थी। इसे छायावाद का संक्रांति काल कहा गया है जिसमें वह प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के नए स्वरूप में रूपांतरित हो रहा था। इस परिवर्तन में रीतिकालीन परंपरागत श ंगारिकता का स्थान सूक्ष्म सौंदर्य ग्रहण कर रहा था। इस काल के कवियों में पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा केदारनाथ अग्रवाल आदि प्रमुख रहे हैं जिनकी कविताएँ परिवर्तन का प्रतीक बनी।

छायावादी कवियों में निराला में पुरूषोचित्त गुण सबसे अधिक था। वे आरंभ से ही मूर्ति भंजक, मूर्ति विरोधी रहे हैं। रूढ़ियों के प्रति विद्रोह निराला का जन्मजात स्वभाव एवं विशेष गुण था। आरम्भ से ही उनमें प्रगतिशीलता के गुण विद्यमान रहे हैं जबकि प्रगतिशील तत्वों का समावेश निराला काव्य में सन् 1940 - 50 ई० की रचनाओं में प्रमुख रूप से द ष्टिगोचर होता है। दोनों प्रव त्तियां निराला के स्वभाव का अंग बन गई है। निराला छायावादी कवि होकर भी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अग्रदूत रहे हैं

निराला ने सन् 1916 में ही 'जुही की कली' की रचना की थी। जो मुक्त छंद की विशिष्ट रचना मानी जाती है। निराला के मुक्त छंद एवं स्वच्छंद मौलिक भाव के कारण 'जुही की कली' हिंदी काव्य' में सर्वथा एक नवीन प्रयोग था जिसे द्विवेदी युगीन साहित्यकारों तथा आलोचकों ने आलोचना एवं विवाद का विषय बना दिया। निराला को सभी का कोपभाजन बनना पड़ा। 'जुही की कली' को लेकर निराला पर अनेक वाक्प्रहार एवं व्यंग्यबाण चलाए गए। रबड़ छंद एवं केंचुआ छंद कहकर निराला एवं 'जुही की कली' का उपहास किया गया किन्तु निराला ने वाक्प्रहार, व्यंग्यबाण, उपहास आदि की कोई चिंता नहीं की। ऐसे अवरोध निराला को प्रभावित नहीं कर सके।

यद्यपि निराला ने 'जुही की कली' की रचना बहुत पहले की थी जो प्रगतिवादी या प्रयोगवादी रचना है किंतु वास्तविक प्रयोगवाद एवं प्रगतिवाद का श्री गणेश 'कुकुरमुत्ता' एवं 'नए पत्ते' के रचना काल से माना जाना श्रेयस्कर है। यहां आकर निराला काव्य में एक नया सौंदर्य बोध तथा नई अभिव्यंजना प्रणाली और काव्य-भूमि मिलती है।

आलोक प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण कहते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में इसे साम्यवाद तथा साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद कहा गया है। जो शोषक का विरोध एवं शोषित का पक्षधर है। निराला काव्य में प्रगतिवादी चेतना एक स्वस्थ प्रव त्ति के रूप में उतरी है न कि वादात्मक चौखटे के भीतर फिट होकर। निराला ने प्रगतिवाद की आत्मा को तो स्वीकार किया किंतु उसकी वादात्मक पद्धति से अप्रभावित रहे हैं।

शोषक के प्रति घ णा की द ष्टि से 'कुकुरमुत्ता' कविता का अत्यधिक महत्व है। 'कुकुरमुत्ता' निम्न वर्ग का प्रतीक है तथा 'गुलाब' उच्च वर्ग का। गुलाब शोषक है, पूंजीपति है। वह मालियों, नौकरों के पसीने पर पलता है। श्रमिक एवं श्रमहारा के परिश्रम पर सुख भोगता है-

अबे, सुन बे 'गुलाब'
भूल मत जो पाई खुशबू 'रंगोआब'
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।
कितनों को तूने बनाया है गुलाब,

शोषितों के प्रति निराला की सहानुभूति है। जीवन में उन्होंने अनेक कष्ट झेले हैं। अल्प आयु में ही उनके ऊपर पारिवारिक विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। परिवार का भरण-पोषण करने के लिए दर-दर की खाक छाननी पड़ी। समाज के उपेक्षित, प्रताड़ित और जर्जर अंग को निकट से देखने का अवसर मिला। इसीलिए उन्होंने समाज के दीन-दुखियों के प्रति हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की है। उन्होंने विवशता और अभाव का जीवन जिया है। विवश, अभावग्रस्त, परंपरा के सीखचों में कैद, घुटन एवं सीलन भरी कोठरी में बंद भारतीय विधवा की व्यथा एवं पीड़ा का अनुभव किया है-

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीप शिखा-सी शांत भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव की स्म ति रेखा-सी
वह टूटे तरू की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की विधवा है।

ग्रीष्म की दुपहरी में झुलसती हुई लू से त्रस्त पत्थर तोड़ती हुई श्रमिक बालिका भी निराला की आंखों से ओझल नहीं हो पाई है। समाज की विषम अर्थव्यवस्था से वे भली भांति परिचित हैं, उसके दुष्परिणामों से पूर्णतया अवगत हैं। भिखारी का करूणामय चित्रांकन किया है-

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट और पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

निराला ने मात्र भिक्षुक का चित्र ही नहीं खींचा है अपितु उसके प्रति पूर्ण सहानुभूति एवं करूणा भी प्रदर्शित की है-

ठहरो अहा मेरे ह्रदय में है अम त, मैं सींच दूँगा
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम,
तुम्हारे दुख मैं अपने ह्रदय में खींच लूँगा।

विद्रोही एवं क्रांतिकारी कवि निराला ने प्राचीन मान्यताओं एवं रूढ़ियों का विरोध किया है। यह तथ्य उनके छंद, भाषा, भाव आदि में किए गए परिवर्तनों में परिलक्षित होता है-

फिर सोचा मेरे पूर्वज गण
गुजरे जिस राह, वही शोभन
होगा मुझको यह लोक रीति
कर दूँ पूरी, गो नहीं भीति
कुछ मुझे तोड़ने गत विचार
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम निश्चय
आएगी मुझमें नहीं विनय।

निराला की यह धारणा है कि समाज के समस्त कष्टों का मूल कारण आर्थिक विषमता है और समाज के समस्त अनर्थों का एक ही उपचार है-साम्यवाद। निराला ने 'वन-वेला' कविता में 'साम्यवाद' की प्रशंसा करते हुए लिखा है-

फिर पिता-संग
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग-करता प्रचार
मंच पर खड़ा हो साम्यवाद इतना उदार।

समाज के शोषण का अंत करने हेतु प्रगतिवादी कवि क्रांति का आह्वान करता है। 'बादल-राग' कविता में क्रांति की अभिव्यंजना हुई है-

जीर्ण बाहु, है शीर्ष शरीर
तुझे बुलाता क षक अधीर,
हे विप्लव के वीर!

निराला ने अपने जीवन एवं साहित्य दोनों में सदैव संकीर्णता का विरोध करते हुए अपनी महाप्राणता का परिचय दिया है जिसके लिए उन्होंने करूणा और विद्रोह का सहारा लिया है। करूणा उपेक्षित, पीड़ित और प्रताड़ित जन-समूह के लिए तथा विद्रोह शोषक वर्ग के प्रति - यह निराला की प्रगतिशील जनवादिता का आधार है। उन्होंने प्रारम्भ में ही क्रांति का सहारा लेकर मानवता वादी मूल्यों का अनुमोदन किया है।

सामाजिक यथार्थ के अनेक पहलू निराला काव्य में वर्णित है। भिखारियों की दीन-हीन दशा देखी। नारी-श्रमिक की असहाय स्थिति का साक्षात्कार किया-

चढ़ रही थी धूप
दिवा का तमतमाता हुआ रूप
उठी झुलसाती हुई लू, रूई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई
प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर

क षकों पर जमींदारों और अधिकारियों के अत्याचारों का अंकन कविता में किया। पूंजीवाद पर प्रहार किए। समाज की आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ सांस्क तिक दुरावस्था का भी चित्रण किया है। नेताओं पर करारा व्यंग्य किया-

मेरे समाज में
बड़े-बड़े आदमी हैं
एक-से-एक हैं मूर्ख
फांसना है उन्हें मुझे
कोई एक साला एक धेला नहीं देने का।

'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता में सामंती व्यवस्था के चाटुकारों का यथार्थ अंकन किया है-

राजे ने अपनी रखवाली की
किला बनाकर रहा
बड़ी-बड़ी फौजें रखी-चापलूस कितने सामंत आए
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए-कितने ब्राह्मण आए
पोथियों में जनता को बांधे हुए
कवियों ने उनकी बहादुरी के गीत गाए
लेखकों ने लेख लिखें।

'कुकुरमुत्ता' निराला की सामाजिक चेतना, यथार्थ द ष्टि और प्रगतिशील विचारधारा का परिणाम है।

भाषा के क्षेत्र में निराला ने विभिन्न नये-नये प्रयोग किए हैं। सन् 1940 के बाद की रचनाओं में व्यंग्य की प्रधानता है जिनमें भाषा का रूप एकदम सरल और बोलचाल का हो उठा है। 'कुकुरमुत्ता' तथा 'नए पत्ते' आदि संग्रहों की कविताएं दैनिक बोलचाल

की भाषा में लिखी गई हैं। छायावादी युग में निराला की भाषा संस्क त तत्सम शब्द प्रधान एवं सामासिक है। निराला की छायावादी युगीन भाषा तथा प्रगतिवादी युग की भाषा में जमीन-आसमान का अंतर है।

रानी कानी-मात हृदय का मनोविज्ञान, मास्को डायलाग्स-समाजवादी नेता, दगा-आधुनिक सभ्यता, कुत्ता भौंकने लगा-किसानों की कातर दशा तथा झींगुर डट कर बोला-जमींदार और शासन के अत्याचार आदि वर्णनों में विषय आयाम के साथ-साथ भाषा आयाम में वैविध्य है।

निराला की भाषा में भाव-भंगिमाएं, संवेदना, सादगी, सरलता तथा सफाई आदि के विभिन्न आयाम प्रयोग में आए हैं।

काव्य-भूमियों की द ष्टि से निराला की संपूर्ण सर्जनावधि को तीन सोपानों में वर्गीक त किया जा सकता है प्रथम सोपान (सन् 1916 से 1938 ई० तक)। इस काल में छायावादी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'राम की शक्ति पूजा' इस काल की प्रसिद्ध रचना है। इसके अतिरिक्त अनामिका, परिमल, गीतिका, अनामिका द्वितीय तथा तुलसीदास आदि रचनाएं हैं। इस सोपान की रचनाओं में छायावादी सभी विशेषताएं-वैयक्तिकता, प्रक ति चित्रण, सौंदर्य चित्रण, प्रेम भावना, रहस्यवाद, गेयता, मानवतावाद, राष्ट्रीयता तथा नारी स्वातंत्र्य आदि मिलती है।

वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष-परोक्ष दोनों रूपों में हुई है। 'स्नेह निर्झर बह गया है' कविता में व द्धावस्था के आगमन और सांसारिक उपेक्षा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की गई है-

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है-"अब यहां पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ जीवन बह गया है।"
दिए हैं मैंने जगत को फूल-फल
किया है अपनी प्रतिभा से चकित चल
पर अनश्वर का सकल पल्लव पल
ठाठ जीवन का वही जो ढह गया है।

निराला काव्य में प्रक ति-चित्रण वैविध्य पूर्ण है। प्रक ति के आलंबन उद्दीपन, मानवीकरण, प ष्ठभूमि तथा प्रतीकात्मक आदि अनेक रूप चित्रित है। जुही की कली, संध्या सुंदरी प्रक ति चित्रण का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करने वाली कविताएं हैं। संध्या का मानवीकरण करते हुए, उसे मेघमय आकाश से एक सुंदरी सद श मंथर गति से धीरे-धीरे उतरते हुए चित्रित किया गया है -

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सान्ध्य सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।

निराला ने मानवीय नारी-पुरूष सौंदर्य के विविध चित्र अंकित किए हैं। उन्होंने सौंदर्य कल्पना को ललित कला का आधार मानते हुए नारी सौंदर्य का उदात्त एवं सूक्ष्म चित्रण किया है-

सौंदर्य सरोवर की एक तरंग
किंतु नहीं चंचल प्रवाह का उद्दाम वेग
संकुचित एक लज्जित गति है
प्रिय समीर के संग
उसमें कोई चाह नहीं
विषय वासना तुच्छ, उसे कोई परवाह नहीं है।

निराला काव्य में नारी सौंदर्य के मांसल चित्र भी उपलब्ध हैं। 'स्फटिक शिला' कविता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

प्रेम चित्रण छायावाद की प्रमुख विशेषता है और निराला काव्य में इसके सूक्ष्म रूप का चित्रण हुआ है। निराला प्रेम को उच्च

पवित्र एवं बंधनहीन मानते हुए कहते हैं-

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निस्सीम भू पर।
प्रेम की महोर्मिमाला तोड़ देती क्षुद्र ठाट,
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
त ण सम बह जाते हैं।

यद्यपि निराला मांसल प्रेम को तुच्छ मानते हैं, लेकिन उनके काव्य में कहीं-कहीं मांसल प्रेम का भी सजीव चित्रण हुआ है। मूलतः उनकी प्रेम चेतना सूक्ष्म एवं उदात्त धरातल पर विद्यमान है। 'राम की शक्ति पूजा' इसका उत्क ष्ट उदाहरण है। वास्तव में निराला ने प्रेम भावना के चित्रण के लिए प्राक तिक प्रतीकों का आलम्बन लिया है। 'जुही की कली' इसका सुंदर उदाहरण है -

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरूणी जुही की कली,
द ग बंद किए, शिथिल पत्रांक में
वासंती निशा थी;
विरह-मधुर प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।
× × ×
सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।
इस पर जागी नहीं
चूक-क्षमा माँगी नहीं,
× × ×
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल गोल;

निराला आजीवन विद्रोही रहे हैं। उनकी आरंभिक कविताओं में रहस्यवादी स्वर द ष्टिगोचर होता है उनकी रहस्यवादी दार्शनिक चेतना पर अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई देता है-

तुम तुंग-हिमालय-श ंग
और मैं चंचल गति सुर-सरिता
तुम विमल ह्रदय उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता
तुम प्रेम और मैं शान्ति
तुम सुरापान-घन अंधकार
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।

निराला काव्य जीवन की समग्रता का चित्रांकन करता है। वास्तव में निराला विराट उच्चता के कवि हैं। उनका काव्य आत्मा की गहराइयों से निकला है जिसमें व्यापकता एवं वैविध्य है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने निराला के वैविध्य को लक्षित करते हुए लिखा है-

''छायावादी कवियों में निराला की द ष्टि सर्वाधिक वस्तुमुखी और व्यापक है कवि एक ओर जीवन मूल्यों का स्वागत करता हुआ कहता है-

आँखों में नवजीवन का तू अंजन लगा पुनीत
बिंब झर जाने दे प्राचीन

तो दूसरी ओर अपनी सांस्क तिक परंपरा की राह दिखाते हुए उत्साह संवलित बानी में बोल उठता है-

योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं गीता है।

कहीं वे नारी सौंदर्य का चित्र उरेहते हुए दिख पड़ते है तो कहीं पौरुष, ओज, बल, वीर्य आदि को अभिव्यक्त करते हुए। कहीं वे दीन-दुखियों की प्रतारण को उद्घाटित करते हैं तो कहीं क्रांति के गीत गाते हैं, कहीं सामाजिक विषमताओं पर प्रबल आघात करते हैं। तो कहीं भगवान की करुणा के आकांक्षी दीख पड़ते हैं।''

आचार्य द्विवेदी के कथनानुसार निराला काव्य प्रयोग में विविध आयामों से परिपूर्ण है। इसमें प्रयुक्त विविधता असीमित है।

द्वितीय सोपान लगभग दस वर्षों (सन् 1939-1944 ई॰) का है। इसे प्रगतिवादी सोपान भी कहा जाता है। इस काल में निराला का विद्रोही स्वर प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रभावनुरूप व्यंगयात्मकता का आधार लेकर और भी अधिक मुखर हो गया है। इस काल में निराला ने छंद के बंधन तोड़ मुक्त छंद की प्रतिठा की। इस काल की प्रमुख रचनाएं कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नए पत्ते, आदि हैं। इनमें निराला की प्रगतिवादी न चेतना सर्वाधिक मुखर हुई है। शोषक, शोषित एवं दलित वर्ग की शोचनीय स्थिति के यथार्थ को ही निराला ने काव्य का विषय नहीं बनाया अपितु शोषक-पूंजीपति वर्ग पर कटारा व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। कुकुरमुत्ता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें गुलाब पूंजीपति का प्रतीक है तथा कुकुरमुत्ता। साधारण मनुष्य का प्रतीक है। निराला की नग्न यथार्थ की व्यंग्यपूर्ण परिणति को द ष्टि में रखते हुए डॉ॰ उपेन्द्रनाथ अश्क ने लिखा है-

''यहाँ अभिजात्य पर एक अप्रत्याशित व्यंग्य उभरता है और साधारण की सार्थकता प्रतिपादित हुई हैं। कुकुरमु त्ता उपेक्षित कर मूल्यवान जन साधारण है, वह बदरूप हो सकता है पर अपनी आंतरिक निर्मलता एवं विशिष्टता से संपन्न है।''

निराला यथार्थ चिंतन के साथ-साथ क्रांति का आह्वान भी करते हैं। कवि का विद्रोही व्यक्तित्व दलित वर्ग की दुर्दशा देखकर 'बादल एग' में बादल से क्रांति का आह्वान करता है जिससे शोषक वर्ग का नाश हो-

जीर्ण बाहु है जीर्ण शरीर
तुझे बुलाता क षक अधीर
हे विप्लव के वीर
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार।

शोषित वर्ग की स्थिति अति विपन्न एवं दयनीय हो गई है जिसका एक मात्र उत्तरदायी शोषक वर्ग है। उसके प्रति निराला के ह्रदय में अत्यधिक घ णा एवं आक्रोश घ णा एवं आक्रोश भरा है। वह उन्हें अर्थ के गर्व में पड़ा सर्प कहता है-

अर्थ के गर्व में सर्प जैसे पड़े
धनिक जन सजग होकर हुए हैं खड़े।

साम्यवादी रूप में निराला राष्ट्रीयकरण के समर्थक बन जाते हैं जिससे राष्ट्र का विकास हो सके। निरालाा युगान्तकारी एवं प्रगतिशील कवि हैं अतः उन्होंने काव्य वस्तु के स्तर पर ही नहीं अपितु शिल्प स्तर पर भी विशिष्ट प्रयोग किए हैं जिसमें मुक्त छंद विशेष उल्लेखनीय है। प्रारम्भिक रचनाएं छंदोबद्ध हैं इस सोपान में आकर छंद के वंधन को तोड़ दिया है।

मुक्त छंद का स जन कर काव्य क्षेत्र में विशिष्ट प्रयोग किए हैं। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है-

''मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती हे। मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।''

निराला के स्वच्छंद छंद का निर्माण कर काव्य को पूर्ण स्वच्छंदता प्रदान की हे।

त तीय सोपान (सन् 1950-1954 ई० तक) माना गया है जिसमें अर्चना, आराधना, तथा गीत कुंज आदि रचनाओं का प्रकाशन हुआ। निराला का विद्रोही एवं क्रांतिकारी रूप बना देता है। निराशा, अर्थाभाव एवं व द्धावस्था की मांग के अनुरूप ही उनका कवि परिवर्तित हो गया है। भक्ति एवं आत्म निवेदन का स्वर मुखरित हो उठा है। मध्यकालीन भक्त कवियों की भांति वे परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं-

दूरित दूर करो नाथ
अशरण हूँ गहो हाथ
हार गया जीवन रण
छोड़ गए साथ जन
एंकाकी नैश तब
कंटक पथ-विगत पाथ।

लेकिन कुछ रचनाओं में प्रारम्भिक काल के समान रहस्यवादी भावना ही मुखर रहती है जिस पर अद्‌वैतवादी दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है।

तात्पर्य यह हे कि निराला महा प्राण कवि हैं जो कभी विद्रोही, कभी क्रांतिकारी, कभी मतवाला, कभी रहस्यवादी, कभी भक्त कवि बन जाते हैं। काव्य प्रयोग में इन विविध आयामों के अतिरिक्त, शोषक, शोषित, सर्वहारा, दलित, पूंजीपति, क षक, राजनीतिक, शासक, शासित, मानवीय सौंदर्य, प्राक तिक सौंदर्य, आदि प्रयोग के विविध आयाम हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निराला का काव्य फलक अति व्यापक एवं विविधतापूर्ण है। उन्होंने अपनी नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा के द्वारा वस्तु एवं शिल्प दोनों स्तर पर विशिष्ट एवं नवीन प्रयोग किए हैं। शिल्प स्तर पर परंपरागत छंदोबद्ध रचना के स्थान पर मुक्त छंद में काव्य स जन किया है। अपने नामानुसार ही वे विलक्षण क तित्व के धनी हैं। उनके काव्य-पुरुष, गौरव, प्रेम, सौंदर्य, मानवतावाद, क्रांति, विद्रोह एवं स्वच्छंदतावादिता की सौरीा बिखेरते रहे हैं। अंततः कह सकते हैं कि निराला काव्य प्रयोग में बहु आयामी है।

9. मुक्त छंद-अवधारणा एवं प्रयोग

साहित्य को गद्य-पद्य दो भागों में विभक्त किया जाता है। गद्य में छंदबद्धता नहीं होती है। पद्य की रचना छंदोंबद्ध स्वीकारी गई है। भारतीय काव्य शास्त्रियों ने छंद को आधार बनाकर साहित्य के दो भाग किए हैं। पद्य के लिए छंद को अनिवार्य माना है। छंदमय रचना को काव्य की संज्ञा दी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि छंद काव्य का प्रमुख उपादान है जो काव्य-सौंदर्य में सहायक सिद्ध होता है। डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल ने छंद की विवेचना करते हुए लिखा है—

''छंद को वेद का चरण कहा गया है (छंदः पादौ तु वेदस्य)। चरणों से जिस प्रकार मनुष्य चलता है और समस्त संसार का भ्रमण कर सकता है, उसी प्रकार छंद के सहारे कवि की वाणी विश्व में प्रसारित होती है।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि राम प्रकाश अग्रवाल ने छंद को चरण स्वीकारते हुए इसके अभाव में भी काव्य की सत्ता स्वीकारी है जो पंगु होने से चलने में समर्थ नहीं होता है। अन्य आलोचक छंद विहीन रचना को मानते ही नहीं।

कविवर सुमित्रा नंदन पंत ने छंद के विषय में लिखा है—

''जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से नदी की धारा को सुरक्षित रखते हैं, जिनके बिना वह अपनी ही बंधनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन, कंपन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर, उन्हें सजीव बना देते हैं।'' पंत के ही समकालीन निराला भाव एवं मनोविचार में ही नहीं बल्कि कला उपादानों की प्रयोग द ष्टि से विद्रोही एवं क्रांतिकारी कवि हैं। उन्होंने छंद संबंधी प्रचलित मान्यताओं में आमूल चूल परिवर्तन ही नहीं किया है अपितु प्राचीन परंपरा अपनाते हुए भी छंदों का परित्याग करके सर्वथा नवीन छंद में काव्य स जन किया है। नवीन छंद कोई छंद नहीं है बल्कि काव्य को छंद के बंधन से पूर्णरुपेण मुक्त कर दिया है।

पंत काव्य में छंद की अनिवार्यता पर बल देते हैं जबकि निराला ने काव्य को छंद से पूर्णतः मुक्त माना है। उनका कहना है कि मुक्त छंद का प्रयोग ऋषियों ने भी किया था—

भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी
मुक्त छंद,
सहज प्रकाशन वह मन का—
निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।

—'परिमल' निराला

महाप्राण निराला ने अपने मुक्त छंदों का संबंध वेदों से जोड़ा है इसके विषय में उन्होंने कहा है—

मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन बंध छंद ज्यों,
डूबे आनंद में सच्चिदानंद रूप।

जिस प्रकार मानव दासता नहीं स्वतंत्रता प्रेमी होता है उसी प्रकार सभी सजीव या निर्जीव सर्वथा बंधन विहीनता में आनंद या सुख की अनुभूति करते हैं। इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए निराला ने परिमल की भूमिका में लिखा है—

''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कार्यों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आवरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थ नहीं होता, किंतु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।''

महाप्राण निराला का छंद विषयक द ष्टिकोण स्वच्छंद है। उनकी द ष्टि में—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्ध विकल इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिय छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह।

—अनामिका-निराला

अर्थात् निराला को अपनी कविता कामिनी के छंदों की संकीर्ण राह से गुजारना स्वीकार्य नहीं है। छंद-मार्ग अति संकीर्ण एवं दुखदायी है। कवि कविता कामिनी को दुःख नहीं देना चाहता है। इसलिए वह कविता कामिनी हेतु मुक्त छंद रूपी स्वछंद और विस्त त मार्ग का निर्माण करता है। 'प्रबंध-प्रतिमा' में वह भाषा, भाव तथा छंद तीनों की मुक्ति का समर्थन करते हुए कहता है

''भावों की मुक्ति छंद की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छंद तीनों स्वतंत्र है।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि निराला भाव, भाषा एवं छंद की द ष्टि से काव्य को बिल्कुल मुक्त चाहते हैं वे विद्रोही कवि हैं। उन्होंने भाव के अतिरिक्त शिल्प के स्तर पर भी रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास किया है।

मुक्त छंद उनकी विद्रोही चेतना तथा क्रांतिकारी प्रव त्ति की कड़ी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छंद के विषय में लिखा है—

''निराला की पहली कविता 'जुही की कली' में ही छंद का बंधन टूट गया। छंद के बंधन को तोड़कर उन्होंने उस मध्य युगीन मनोव त्ति पर प्रहार किया, जो छंद और कविता को प्रायः समानार्थक समझने लगी थी।''

यद्यपि निराला ने छंद के नियमों तथा उनके बंधनों को अनुपयोगी बतलाया है तथा मुक्त छंद का समर्थन किया है किंतु उनका काव्य सर्वथा छंद मुक्त नहीं है। उन्होंने छंदोबद्ध रचनाएं भी की हैं। इस विषय में डॉ० कृष्ण देव का कहना है—

''निराला ने केवल नियम बंधन का विरोध किया था छंद का नहीं, अर्थात् उन्होंने कविता करते समय मात्राओं या अक्षरों की निश्चित गणना से युक्त नियमबद्ध छंदों के प्रतिबंध का विरोध किया था, भाषा के निश्चित प्रवाह का नहीं, जो अन्ततः छंद ही होता है।''

एतद विषयक निराला का मंतव्य द्रष्टव्य है—'मुक्त छंद वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त है। मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह है। वह उसे छंद सिद्ध करता है। यदि हिंदी जातीय छंद चुना जाए तो वह यही होगा।''

निराला ने मुक्त छंद की स ष्टि का आधार कवित्त को माना है उनका कहना है—

''कहीं-कहीं बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किए ही मुक्त काव्य में कवित्त छंद के बद्ध लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अवश्य इस तरह की लड़ी मैं जानबूझकर नहीं रखता।''

निराला की अनेक रचनाएँ कवित्त छंद से प्रभावित द ष्टिगोचर होती हैं—

फिर क्या? पवन
उपवन-सर-सरित गहन गिरि कानन
कुंज-लता-पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ।
सोती थी,
जाने कहां कैसे प्रिय आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।

निराला द्वारा मुक्त छंद का आधार कवित्त को बनाने के संदर्भ में डॉ० राम विलास शर्मा कहते हैं—

''निराला जिस तरह की नाटकीय कविताएँ लिख रहे थे, उनमें बोल-चाल की लय का होना आवश्यक था। इस लय में विविधता होती है, उतार-चढ़ाव होता है, कुछ शब्दों पर कम, कुछ पर अधिक जोर दिया जाता है। यह विविधता मात्रिक छंद में लिखी हुई कविताओं में न दिखाई देती थी, गणात्मक व त्तों में उसका अभाव और ज्यादा था, इसलिए निराला ने कवित्त छंद को आधार बनाया।''

वास्तव में निराला को संगीत, गति, लय, ताल आदि का सम्यक ज्ञान था। इसलिए छंदों को लेकर उन्होंने निरन्तर नए-नए प्रयोग किए। पुराने छंदों को अपने अनुसार परिष्कृत किया तथा मुक्त छंद की स ष्टि की। 'राम की शक्ति पूजा' का छांदस चरण निराला की छांदिक मौलिकता का परिचय देता है। इस विषय में डॉ० शिव गोपाल मिश्र ने लिखा है—

''वे जानते थे कि जिस मुक्त छंद के वे स्रष्टा हैं, वही परिणति नहीं है। वह सदैव नवीन प्रयोग करते रहे—कौतूहलवश नहीं वरन स्वानुभूति से प्रेरित होकर। यही कारण है कि उनके काव्य में विभिन्न शैलियों का समान रूप से निर्वाह हुआ है।''

हिंदी काव्य में मुक्त छंद का प्रयोग विद्रोह के रूप में हुआ है। इसके प्रवर्त्तक विद्रोही एवं क्रांतिकारी कवि महाप्राण निराला हैं। मुक्त छंद की विशेषताओं में अनियमित चरण, असमान स्वच्छंद गति, भावानुकूल गति विधान आदि प्रमुख हैं। जिन्हें प्राचीन शास्त्रीय द ष्टि नहीं स्वीकारती। इसीलिए मुक्त छंद के प्रयोक्ता कवियों को अनेक प्रकार के व्यंग्यों का सामना करना पड़ा। व्यंग्यात्मक द ष्टि से ही मुक्त छंद को स्वच्छंद छंद, रबड़ छंद, केंचुआ छंद, कंगारू छंद आदि अनेक नामों से उपहासित किया गया। किंतु छंद स्वातंत्र्य भावना के युगानुरूप होने के परिणामस्वरूप इसकी सत्ता अपना आधिपत्य बनाए रही किसी को इसके उन्मूलन या विखंडन में सफलता नहीं मिली।

बंगला साहित्य में मुक्त छंद का प्रारम्भ पहले हुआ जहाँ अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से मुक्त छंद वहाँ आया बंगला साहित्य में विकसित अंग्रेजी उन्मुक्त छंद प्रणाली ने हिंदी मुक्त छंद की उद्भावना एवं स्थिति में पर्याप्त प्रेरणा एवं सहयोग प्रदान किया। इसी तथ्य को द ष्टिगत रखते हुए आलोचकों ने कहा कि मुक्त छंद पश्चिमी बीज का पूर्वी अंकुर है। पाश्चात्य मुक्त छंद की कविताओं ने आधुनिक कविता को निश्चित रूपेण अत्यधिक प्रभावित किया है। इस द ष्टि से उपर्युक्त कथन की सत्यता प्रतिपादित होती है।

वाल्ट ह्विट मैन का 'घास की पत्तियाँ' पर किया गया अथक प्रयास जो परिवर्द्धन एवं परिमार्जन के लिए किया गया, वह उस काल में अंग्रेजी के प्रचलित छंद विधान के विरुद्ध एक क्रांतिकारी स्वरूप लेकर सामने आया। मुक्त छंद की लंबी-छोटी पंक्तियाँ घास की पत्तियों की भांति असमानता में भी सहज सौंदर्य संजोए रहती हैं। किंचित इसी द ष्टि से वाल्ट ह्विटमैन ने अपने संग्रह को उक्त नाम दिया होगा ऐसी कलपना की जा सकती है।

'दि म्युज़िक ऑफ पोइट्री' शीर्ष निबंध में टी०एस० इलियट ने लिखा है—

''मुक्त छंद के नाम से बहुत सा अपरिपक्व गद्य भी लिखा गया जो अनापेक्षित है। मुक्त छंद का स्वागत उस काव्य को पुनरुज्जीवित करने या नए रूप को विकसित करने की द ष्टि से अविर्भूत हुआ। बाह्य एकता के विरुद्ध कविता की आन्तरिक एकता पर मुक्त छंद अधिक बल देता है जो प्रत्येक काव्य रचना के लिए सत्य कहा जा सकता है। कविता का जन्म रूप ग्रहण से पूर्व ही हो जाता है इस अर्थ में कि 'रूप' कुछ कहने से उत्पन्न होता है।''

निराला ने मुक्त छंद की प्रेरणा बंगला साहित्य से ली। बंगाल में कहाँ से आई? इस का उत्तर रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में दिया है। उनका कथन द्रष्टव्य है—''चरणों के भिन्न प्रकार के मेल चाहे कितने किए जाएं, ठीक हैं, पर इधर कुछ दिनों से बिना छंद के पद्य भी बिना तुकांत के होगा तो बहुत ध्यान देने की बातें नहीं निराला जी ऐसे नई रंगत के कवियों में देखने में आते हैं। यह अमेरिका के एक कवि वाल्ट ह्विटमैन की नकल है जो पहले बंगला में थोड़ी बहुत आई।''

हिंदी काव्य में मुक्त छंद को संस्थापित करने का श्रेय सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एवं सुमित्रा नन्दन पंत को है। प्रसाद ने भी कुछ रचनाएं मुक्त छंद में स जी हैं। जैसे 'पेशोला की प्रतिध्वनि' परन्तु व्यापक रूप से वे मुक्त छंद को स्वीकार न कर सके। निराला ने 'परिमल' की भूमिका में इसका परिचय देते हुए लिखा है—

''मुक्त छंद तो वह है जो छंद की भूमिका में रहकर भी मुक्त है। इस पुस्तक के तीसरे खंड में जितनी कविताएं हैं सब इसी प्रकार की हैं। इनमें कोई नियम नहीं। केवल प्रवाह कविता छंद का सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप से आप आ जाते हैं। मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छंद सिद्ध करता है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति।''

पंत की सुप्रसिद्ध पंक्तियां स्वयं छंदोबद्ध होते हुए भी मुक्त छंद का उन्मुक्त उद्घोष करती हैं—

''खुल गए छंद के बंध
प्रास के रजत पास
अब गीत मुक्त और
युगवाणी बहती अयास''

पंत ने मुक्त छंद का आधार मात्रिक संगीत को भी माना परन्तु निराला का आग्रह रहा है कि मुक्त छंद केवल वर्णिक अथवा अक्षर छंद पर ही आधारित होना चाहिए क्योंकि उसकी प्रव त्ति स्त्री प्रव त्ति न होकर पुरुष प्रव त्ति है। दोनों में इस संबंध में पर्याप्त वाद-विवाद भी हुआ जिसका परिचय निराला की 'पंत और पल्लव' नामक रचना से मिलता है। निराला ने लिखा है—

''पंत जी की कविताओं में स्वच्छंद की एक लड़ी भी नहीं, परंतु वे कहते हैं 'पल्लव' में मेरी अधिकांश रचनाएं इसी छंद में हैं जिनमें 'उच्छ्वास', 'आँसू' तथा 'परिवर्तन' विशेष बड़ी हैं। यदि नीति काव्य और स्वच्छंद छंद का भेद, दोनों की विशेषताएँ पंत जी को मालूम होतीं तो वे ऐसा न लिखते।''

महाप्राण निराला ने आगे लिखा है—

''पंत जी ने लिखा है कि स्वच्छंद हस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है। यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। स्वच्छंद में 'आई ऑफ म्यूजिक' नहीं मिल सकता, वहां है—'आर्ट ऑफ रीडिंग'। वह स्वर प्रधान नहीं व्यंजन प्रधान है। वह कविता की स्त्री सुकुमारता नहीं कवित्व का पुरुष गर्व है।''

निराला की मान्यताएँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि वे हिंदी में मुक्त छंद के सबसे अधिक ओजस्वी प्रवक्ता रहे हैं और इस संबंध में उनकी धारणाएँ स्वतंत्र महत्त्व की हैं। निराला के व्यक्तित्त्व में मुक्त छंद ने अपनी सार्थकता उपलब्ध की इसमें संदेह नहीं। निराला ने मुक्त छंद की व्याख्या 'जागरण' शीर्षक कविता में की है—

अलंकार लेश रहित, श्लेषहीन
शून्य विशेषणों से
नग्न नीलिमा सी व्यक्त
भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी
मुक्त छंद, सहज प्रकाश वह मन का
निज भावों का अकृत्रिम चित्र

—'परिमल' निराला

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निराला की कविताओं में ही मुक्त छंद का सर्वप्रथम आविर्भाव स्वीकारा है। उन्होंने लिखा है—

''सबसे अधिक विशेषता आपके (निराला के) पदों में चरणों की विषमता है। कोई चरण बहुत लंबा, कोई बहुत छोटा, कोई मझोला देखकर ही बहुत से लोग 'रबर छंद', 'केंचुआ छंद' आदि कहने लगे थे। बेमेल चरणों की विलक्षण आजमाइश इन्होंने सबसे अधिक की है।''

मानव मुक्ति की भांति ही कविता की मुक्ति होती है। इसमें निराला का द ढ़ विश्वास था। कर्मों के बंधन से मुक्ति का अभिप्राय निष्क्रियता अथवा शिथिलता नहीं है उसका तात्पर्य है कि अवांछित एवं अनावश्यक बंधन जिससे कर्म द्वारा आनंद की नहीं वरन् उत्पीड़न की अनुभूति हो। स्वच्छंदता का अर्थ भी उच्छ ंखलता नहीं है। मुक्तिजन्य स्वच्छंद कर्म का उद्देश्य है—अन्यपरक सुख का उदय। यही उद्देश्य छंद मुक्त कविता का होना चाहिए। निराला का मंतव्य इसी स्वच्छंदता से है।

निराला ने कविता कामिनी के चरणों से पुरातन छंदों की पायल को उतार कर मुक्त गामिनी बनाने का प्रयास किया है। जुही की कली, बादल राग, जागो फिर एक बार, संध्या सुंदरी, भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, विधवा, पंचवटी, प्रेयसी, कोफ़ालिका, छत्रपति शिवाजी का पत्र, स्फटिक शिला, दिल्ली, कुकुरमुत्ता, रेखा, सम्राट एडवर्ड, अष्टम तथा उद्‌बोधन आदि अनेक कविताओं में निराला ने मुक्त छंद का ही प्रयोग किया है।

प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के कवियों ने मुक्त छंद में कविताओं का स जन किया है। उनका ऐसा करना निराला के प्रयोगों का ही परिणाम है।

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने निराला के मुक्त की विवेचना करते हुए लिखा है—

''अन्तःपुर के समस्त वैभव और उसको सारी स्वतंत्रता से मुक्त कर कविता देवी को खुली हवा में लाए। उन्होंने कविता नारी के बुरके या पर्दे को दूर कर दिया, पर्दा-प्रथा समर्थकों के लिए यह एक अनहोनी और असह्य बात थी। परन्तु कविता-कामिनी को खुली हवा में ले आने के बाद नए युगोपयोगी परिधान भी उसे पहनाए गए। नए कवियों के साथ निराला जी ने इस कार्य में पूरा योग दिया।''

निराला के काव्य कला की सबसे बड़ी देन मुक्त छंदों का प्रणयन है। यह एक ऐतिहासिक घटना है जिसका श्रेय निराला को है।

निराला की मुक्त छंद की कविताएं छंद बंधन एवं मात्रा बंधन से मुक्त है। इन कविताओं में कवि ने अपने भावों की सुंदर अभिव्यक्ति की है। परिमल, काव्य संग्रह के त तीय खंड की मुक्त छंद वाली कविताओं के अतिरिक्त अन्य काव्य-संग्रहों में भी मुक्त छंद वाली कविताएं अनेक हैं।

मुक्त-छंद में वर्णात्मक, नाटकीय वकत त्व कला प्रधान कविताएं अधिक हैं। कहीं-कहीं कविता गद्य के निकट जाती हुई प्रतीत होती है। 'नए पत्ते', काव्य-संग्रह का उदाहरण द्रष्टव्य है—

चेहरा पीला पड़ा
रीढ़ झुकी। हाथ जोड़े
आँख का अंधेरा बढ़ा
सैकड़ों सदियाँ गुजरीं।

किंतु ऐसे कुछ उदाहरण होने पर भी हिंदी छंद जगत में निराला का अत्यधिक महत्व है। उन्होंने मुक्त छंद की स ष्टि करके काव्य के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन किया। ऐसे समय में जब हिन्दी साहित्य के सभी कवि छंदोबद्ध काव्य-स जन में व्यस्त थे निराला ने उस प्रव त्ति का घोर विरोध एवं अवहेलना की। मुक्त छंद में सरस, गंभीर काव्य स जन का सफल प्रयास किया। निराला ने अपनी विद्रोही एवं क्रांतिकारी प्रव त्ति के परिणामस्वरूप विराट फलक पर चित्रांकन कार्य कर हिंदी काव्य जगत को अपूर्व योगदान किया।

परवर्ती कवियों के लिए मुक्त छंद का सरल मार्ग प्रशस्त कर दिया। वर्तमान काल में मुक्त छंद में काव्य स जन की प्रव त्ति बलवती होती जा रही है। निराला के मुक्त छंद की विवेचना करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने लिखा है—

''निराला अपने मुक्त छंद के द्वारा हिन्दी कविता की लय को, बोलचाल की भाषा, वाद्य की भाषा की लय के नजदीक ला रहे थे, कला के क्षेत्र में यह उनका क्रांतिकारी काम था। मुक्त छंद की महत्ता इस बात में नहीं है कि वह बंधनहीन है, पूर्ण ज्ञान या मुक्त भावों का वाहन है वरन इसमें है कि उसने मात्रिक छंदों की एक रस लय को भंग किया, वह हिंदी कविता में बोलचाल की लय में विविधता लाया, उसने भाषा की छिपी हुई शक्ति उद्घाटित की।''

तात्पर्य यह है कि निराला की मुक्त छंद संबंधी अवधारणा ने हिंदी काव्य क्षेत्र में अपूर्व सफल क्रांति करके कविता को छंद बंधन से सदा के लिए मुक्त कर दिया। आजकल यही छंद विधान निरंतर रूप से प्रवाहित हो रहा है।

10. राम की शक्ति पूजा : समीक्षात्मक द ष्टि

आद्य शक्ति रावण को गोद में लिए हुए थी इसलिए राम-रावण का युद्ध प्रतिदिन अपराजेय बना हुआ था। विजय हेतु राम ने शक्ति की आराधना की। उसी को 'राम की शक्ति पूजा' कहा गया है। निराला ने राम काव्य को आधार बनाकर उसमें पर्याप्त मौलिक कल्पना का सम्मिश्रण कर 'राम की शक्ति पूजा' काव्य का स जन किया है।

'राम की शक्ति पूजा' निराला की सबसे प्राणवान, ओज गुण प्रधान प्रौढ़ रचना है हिंदी साहित्य में यह अद्वितीय है। इसके समान अन्य कविता नहीं है। यह राम काव्य पाँच खंडों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम राम-रावण के अपराजेय समर का संकेत। युद्ध-स्थल से आया हुआ उदास सैन्य दल विचार विनिमय हेतु राम के पार्श्व में बैठकर उनके आदेश की प्रतीक्षा में रत है। द्वितीय खंड में अमावस्या की रात्रि में घना अंधकार उगलते गगन के भयंकर वातावरण में राम को पुनः संशय अस्थिर करता है। तभी कुमारी जानकी की छवि विद्युत के समान कौंध जाती है। विदेह का उपवन याद करते-करते राम क्षण भर को भूलकर पुनः धनुष तोड़ने के लिए उद्धत हो जाते हैं। शंकाकुल राम को रावण का अट्टहास सुनाई पड़ता है तथा आँखों से आँसु की दो बूंदें टपक पड़ती हैं। त तीय खंड में रावण के अ्टटहास का उत्तर देने हेतु एकादश रुद्र रूप हनुमान क्षुब्ध अट्टहास करते हुए महाकाश तक पहुंच जाते हैं। महानाश की आशंका से भयभीत शंकर शक्ति को सजग करते हैं वह आसमान में अंजना का रूप धारण कर उदय होती है तथा हनुमान को प्रबोध देती हुई झिड़कती है। अंजना रूप शक्ति की फटकार सुनते ही उद्धत हनुमान नम्र होकर प्रभु पद पकड़ से अवगत कराते हैं। चतुर्थ खण्ड में राम को विभीषण शक्ति से अवगत कराते हैं तभी जाम्बवान अचानक बोल उठते हैं यदि शक्ति रावण की मौलिक कल्पना कर उसकी आराधना करनी चाहिए। जाम्बवान का यह प्रस्ताव राम ने स्वीकार कर लिया। सभा मैं प्रसन्नता की लहर उछाल खाने लगती है। पंचम खंड में राम साधनारत हो जाते हैं ज्यों ही राम की साधना का नौवां दिन आता है कि रात के दूसरे पहर में दुर्गा कमल चुरा ले जाती है। पुष्प अर्पित करते समय स्थान खाली देख राम का मन निराशा से भर जाता है। उठना अनुष्ठान को खंडित करना था। अचानक राम को वह मन याद आया जो दैन्य नहीं जानता कभी किसी से पराजित नहीं हुआ। उन्हें माता की उक्ति याद आई वह उनको कमल नयन कहा करती थी। सोचा दो कमल अभी शेष हैं एक अर्पित कर अनुष्ठान पूरा करता हूँ। ऐसा द ढ़ निश्चय कर बायें हाथ में लक-लक करता हुआ बाण का फलक पकड़ा तथा दायें हाथ से दायीं आंख पकड़ कमल नयन अर्पित करने को उद्धत हो गए। अचानक देवी का उदय हुआ और राम का हाथ थाम लिया तथा उन्हें आशीर्वाद देते हुए उसने कहा 'होगी जय, होगी जय' शक्ति राम के बदन में लीन हो गई। शक्ति सिद्धि के साथ ही काव्य का कथानक समाप्त हो जाता है।

'राम की शक्ति पूजा' के कथा अंकुर अविकसित रूप में पौराणिक साहितय में उपलब्ध होते हैं जिनमें प्रेरणा ग्रंथ-'देवी भागवत', शिव महिम्न स्तोत्र' तथा बंगला के 'कृत्तिवास' प्रमुख हैं।

देवी भागवत के कथानकानुसार श्री रामचन्द्र ने युद्ध से पूर्व ही शक्ति की आराधना की थी। भक्त प्रवर नारद ने राम को नवरात्र व्रत करने के लिए उपदेश दिया था उसके अनुसार राम ने शक्ति को प्रसन्न करने के लिए उनकी आराधना की तथा विजयी होने का आशीर्वाद प्राप्त किया।

शिव महिम्न स्तोत्रानुसार विष्णु भगवान ने शिव की आराधना की और उन्हें एक सहस्त्र कमल अर्पित किए। एक कमल की कमी पड़ जाने पर उन्होंने अपना एक कमल नेत्र अर्पित करने का द ढ़ निश्चय किया

पं० कृत्तिवास ओझा ने 'बंगला रामायण' 15वीं शताब्दी में लिखी थी। इसमें रावण काली के कृपा पात्र के रूप में अंकित किया गया है जिसमें राम को चिंतित दिखाया गया है कि उनके द्वारा रावण का संहार नहीं हो सकेगा तथा जनक नंदिनी सीता उद्धार नहीं हो पाएगा। अतः विभीषण रामचन्द्र को चंडी की आराधना करने का सुझाव देते हैं। विभीषण ही हनुमान को देवीदह जाकर वहां से नील लाने की सलाह देते हैं। राम दुर्गा आराधना करते हैं उस समय दुर्गा छल करके एक कमल चुरा ले जाती हैं तभी राम निश्चय करते हैं कि जब माता उनको कमल नयन कहती थीं तब क्यों न वे अपना नीलोत्पल दुर्गा को अर्पित कर अपना संकल्प पूरा करें। ऐसा सोचकर राम ने तरकश से बाण निकाला। एक नेत्र देवी को अर्पित करना चाहा कि देवी का उदय

हुआ और उन्होंने राम का हाथ थाम लिया और बोली, ''होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।'' ऐसा कहकर महाशक्ति राम के बदन में लीन हो गई।

राम की शक्ति पूजा कृत्तिवास से सर्वाधिक प्रभावित एवं प्रेरित है। कृत्तिवास के अनेक वर्णन 'राम की शक्ति पूजा' से मिलते-जुलते हैं-

साधु साधु साधक धीर, धर्म धन जन्य राम!
कह लिया भगवती ने, राघव का हस्त थाम।
—राम की शक्ति पूजा
चक्षु उपाड़िते राम वसिला साक्षाते
हेन वाले कात्यायिनी धरि लेन हाते।
—कृत्तिवास

'देवी भागवत्' शक्ति पूजन का सुझाव नारद ने दिया है जबकि 'शिव महिम्न स्तोत्र' में राम द्वारा शक्ति पूजा नहीं बल्कि भगवान विष्णु द्वारा शिव की आराधना है और यहाँ कमलों की संख्या एक हजार है। निराला ने शक्ति की मौलिक कल्पना की है। राम अपने को शक्ति का वाहन सिंह मानकर उपासना करते हैं।

राम की शक्ति में औदात्य शैली का प्राधान्य है जिसके परिणामस्वरूप आलोक, लम्बी कविता को महाकाय की संज्ञा देना श्रेयस्कर समझते हैं। भाषा में ओज की प्रधानता है। भाव, भाषा, तथा प्रवाह सभी द ष्टियों से भाषा में ओज की विद्यमानता है। शैली में अखिल प्रवाह है। कथ्य, घटना एवं वर्णन सभी में अविरल प्रवाहमयता के दर्शन होते हैं। निराला आवेग में सहृदय को भी मानो अपने साथ वहां ले जाना चाहते हैं। छंद में शैली का प्रवाह गुण द ष्टव्य है।

'राम की शक्ति पूजा' की शैली वर्णनात्मक है पर उसमें नाटकीयता, अलंकारिता का भी समावेश है। यह अकाट्य सत्य है कि भाषा पर निराला का आधिपत्य है। शब्द चयन कहीं भी आस्वाभाविक नहीं है। घटना वर्णन में शब्द चयन सहायक होता है—

आज का, तीक्ष्ण-शर-विध त-क्षिप्र-कर वेग-प्रखर
शतशेल संवरण शील, नील-नभ-गर्जित स्वर
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह, भेद कौशल-समूह
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह, क्रुद्ध कपि विषम-हूह।

संस्कृत तत्सम शब्द गर्भित सामासिक भाषा में युद्ध के ओज, भीषण रव और प्रतिपल परिवर्तित तीव्र गति की अभिव्यंजना हुई है। रण क्षेत्र अपनी समस्त हलचल से मानो साकार हो उठा है।

कुछ आलोचक 'राम की शक्ति पूजा' के कतिपय स्थलों पर संस्कृतनिष्ठ भाषा का रूप देखकर उस पर क्लिष्टता का आरोप लगाते हैं। निराला को क्लिष्ट भाषा से राग-द्वेष नहीं है बल्कि वातावरण एवं भावानुसार भाषा अपने रूप में परिवर्तन कर लेती है। युद्ध के वातावरण में भाषा ओजमयी है। द श्य परिवर्तन के साथ-साथ वातावरणानुसार भाषा का रूप भी परिवर्तित हो जाता है—

है अमनिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन धार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल

वातावरण अपनी संपूर्ण भयंकरता के साथ सजीव हो उठा है। 'राम की शक्ति पूजा' की भाषा की प्रमुख विशेषता चित्रात्मकता है। भाषा की चित्रण शक्ति बिम्ब का सफल संप्रेषण करने के साथ-साथ कोमल-कठोर दोनों प्रकार के भावों को अपनी संपूर्ण ध्वनि और गति के साथ चित्रित करने की पूर्व क्षमता रखती है। मानवीकरण अलंकार का चित्रण सहज ही सजीव हो उठा है।

भाषा अलंकार बहुला है—

अनुप्रास — नयनों का नयनों से गोपन-प्रिय संभाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन।

रूपक — दशादिक समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर।

उपमा — ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत,
जागी प थ्वी-तनया-कुमारिका-छवि-अच्युत।

श्लेष — राघव-लाघव-रावण-वारण गत युग्म प्रहर।

यमक — तरु मलय-वलय।

लोकोक्ति — तुम फेर रहे हो पीठ, हो रहा जब जय रण
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय।

व्याघात — खिंच गये द गों में सीता के राम मय नयन
फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल खल

स्मरण — कहती थी माता मुझे सदा सजीव नयन।

अलंकार सौष्ठव, काव्य सौंदर्य में व द्धि करता है। छान्दिक नवीनता की द ष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' निराला की मौलिक देन है। रचना के नाम के आधार पर इस छंद का नाम शक्ति पूजा छंद पड़ गया है। इसमें चौबीस भाषाओं के तुकांत छंद का प्रयोग किया गया है जिसमें अद्‌भुत गयात्मक प्रवाह एवं संगीतात्मक है। निराला ने छंद सौष्ठव का विवेचन करते हुए श्री जानकी वल्लभ शास्त्री ने लिखा है—

''वह ओजस्वी छंद लिखते हैं, माइकेल और मिल्टन से भी आगे बढ़ते दिख पड़ते हैं, अपने अजस्र विद्युत प्रवाह और सजल मेघ मन्द्र ध्वनि के कारण। 'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति पूजा' उनकी शक्ति के उज्जवल उदाहरण हैं। माइकेल या मिल्टन में यदि उद्‌दाम वेग है तो निराला में आँधी-तूफान। उनमें अगर बिजली की कड़क है तो इसमें वज्र का निर्घोष।''

'राम की शक्ति पूजा' जैसी नाटकीयता निराला की और किसी भी कविता में नहीं। कविता का आरम्भ एवं अंत ऐसे नाटकीय ढंग से होता है कि पाठक के मन में कुतूहल, विषाद, हर्ष, उत्कंठा तथा औत्सुक्य आदि नाट्‌य-संचारियों का क्रम कभी टूटता ही नहीं है। भाषा और शैली में आदि से अंत तक महाकाव्य जैसी उदार गरिमा अनुस्यूत है।

निराला की काव्य भाषा का विवेचन करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने लिखा है—

''निराला काव्य का प्रमुख स्वर उदत्त और उसका सहज गुण ओज है। उसमें ऐसी शक्ति है जो सिद्ध संगीत की तरह मनुष्य की चेतना को ऊपर उठाती है। यह उदत्त तत्व काव्य की विषय-वस्तु, मूर्ति विधान, शब्दों की ध्वनि और छंद की लय में एक साथ व्याप्त रहता है। काव्य की ऐसी अखंड एकता बहुत कम कवियों में-चाहे वे देश के हों या विदेश के देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए 'राम की शक्ति पूजा' को ले सकते हैं।''

कुछ आलोचकों का कहना है कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' रचना महाकाव्य के स्तर की है। उन्हें इस कविता में प्रसिद्ध कथानक, महान चरित्र तथा भव्य शैली आदि महाकाव्य के समान ही मिलते हैं। जो किसी काव्य को महाकाव्य बना देने की सामर्थ्य रखता है। कुछ आलोचकों ने महाकाव्य न मानते हुए भी महाकाव्य की गरिमा वाला काव्य स्वीकारा है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी इसे महाकाव्योचित नहीं मानते। उनका कहना है—

''एक महाकाव्य के नायक में जिस उदात्त तथा उच्च कोटि की गरिमा का होना आवश्यक है वह इस रचना के नायक में नहीं मिलती। उन्होंने इसे 'गाथा काव्य' कहा है जिसे निराला ने गाथा की भूमि से उठाकर महाकाव्योचित गाम्भीर्य देना चाहा है। 'गाथा काव्य' में लोक विश्वासों की प्रचुरता, अतिरंजना के चमत्कार और अलौकिकता की योजना रहा करती है। ये सभी योजनाएँ 'राम की शक्ति पूजा' में हैं। परन्तु उसके साथ ही शक्ति-पूजा को असाधारण गाम्भीर्य देने की चेष्टा की गई है।''

कुछ आलोचक 'राम की शक्ति पूजा' को खंड काव्य मानते हैं। लघु आकार और शास्त्रीय द ष्टि से यह खंड काव्य के अधिक निकट हैं। 'राम की शक्ति पूजा' में वर्णित कथा जीवन के एक खंड से संबद्ध है अर्थात् रावण को जीने की सिद्धि हेतु राम द्वारा शक्ति की आराधना।

खंड काव्य के सभी लक्षणों से युक्त होने पर भी 'राम की शक्ति पूजा' को शुद्ध खंड काव्य नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह अति संक्षिप्त आकार वाला काव्य है। इसकी रचना कथा खंड न होकर खंडांश मात्र है। कुछ आलोचक इस काव्य में लंबी कविता के सभी गुण देखकर इसे लंबी कविता कहना चाहते हैं।

'राम की शक्ति पूजा' के काव्य रूप का विवेचन करते हुए डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने लिखा है—

''कवि श्री निराला की 'राम की शक्ति पूजा' एक ऐसी रचना है जिसे आज की भाषा में संश्लिष्ट कविता (Total poetry) कह सकते हैं।''

''श्री धनंजय वर्मा के अनुसार 'राम की शक्ति पूजा' महाकाव्यों की शैली पर किया गया एक नूतन प्रयोग है।''

डॉ० राम विलास शर्मा ने 'राम की शक्ति पूजा' को 'एपिक क्वालिटी से ओत-प्रोत रचना' कहा है।

निःसंदेह इस रचना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी महाकाव्यधर्मिता है। अपने सीमित रूप एवं आयाम में भी यह रचना महाकाव्य का महाप्राणत्व धारण किए हुए हैं। शक्ति पूजन में वीर रस को प्रधान रूप दिया गया है तथा श ंगार को उसका प्रमुख सहयोगी अंग माना है। इनके अतिरिक्त अन्यों को भी अनुबंणिक रूप में स्थान दिया गया है। लोक प्रसिद्ध राम का व्यक्तित्त्व स्वयं में एक सशक्त महाकाव्योचित आयाम है। द श्यों के वैविध्य की इसमें कमी नहीं है। प्राकृतिक वर्णन-समुद्र, पर्वत, अमावस्या और आकाश के विराट् चित्र इस द श्यमाला से संबंधित होकर कवि की वर्णन शक्ति का प्रभावी परिचय देते हैं। संपूर्ण कथाफलक मानसिक उतार-चढ़ाव और मनोबल के कमजोर क्षणों का एक इतिहास प्रस्तुत करता है। सम ति एवं दिशा स्वप्न की पद्धतियाँ इसी की एक कड़ी है। इसी भव्य शैली-भाषा का एक जीता-जागता उदाहरण हैं 'राम की शक्ति पूजा'।

'राम की शक्ति पूजा' का अंगी रस वीर है। श ंगार भयानक एवं शांत उसके अंग रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। 'राम की शक्ति पूजा' की प्रारम्भिक चरण में वीर रस मूर्त रूप धारण कर चुका है। राम आश्रय एवं रावण आलंबन है। रावण-अट्टहास और अनुमान का चीत्कार एवं भयंकर हुंकार आदि उद्दीपन रूप में राम के स्थायी भाव वीर रसोचित उत्साह को बढ़ा रहे हैं।

वीर भाव की अभिव्यंजना का स्वरूप राम-रावण युद्ध में देखा जा सकता है इसके अतिरिक्त वीर भाव की अभिव्यक्ति के माध्यम हनुमान हैं। वीर, रौद्र तथा भयानक रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। इन रसों के अतिरिक्त कोमल रसों की निष्पत्ति हुई है। श ंगार पूर्व स्म ति के स्वरूप में वर्णित है। वात्सल्य रस भी वर्णित विषय में उपस्थित है। भक्ति भावना तथा आराधना में शांत रस का परिपाक हुआ है। संपूर्ण काव्य में वीर रस की प्रधानता है। राम के माध्यम से करुण रस निष्पन्न हुआ है। राम की शक्ति पूजा के राम उदात्तता के परिणामस्वरूप अन्यों को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। राम में मानवीय दुर्बलताएँ हैं जो उनके चरित्र को मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी बना देती हैं। 'राम की शक्ति पूजा' राम के वैयक्तिक चित्रण के साथ-साथ निराला के व्यक्तित्त्व का भी परिचायक काव्य है।

निराला के जीवन का प्रतिबिंब है, जिसकी भूमिका सरोज स्म ति में बन चुकी थी। विकास शर्मा की शक्ति पूजा में हुआ है। सरोज स्म ति में निराला की वैयक्तिकता का तथ्य प्रत्यक्ष कथ्य में वर्णित है। राम की शक्ति में उसकी अभिव्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप में हुई है। सरोज स्म ति के अंत में राम की शक्ति पूजा का संकेत मिल जाता है जहां निराला ने कहा है—

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

इस विषय में डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने लिखा है—''जाहिर है कि सब चौंक पड़ेंगे यदि मैं बेसाखता यह कह दूँ कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' बेशक 'सरोज स्म ति' का रूपांतर तथा विस्तार है। बस, परिवेश (मिथकीय वातावरण बनाम कवि का वातावरण) और घटना (राम-रावण युद्ध बनाम युवा बेटी सरोज की म त्यु) में अदल-बदल हो गई है।''

'राम की शक्ति पूजा' वस्तुपरक काव्य है जिसमें निराला की आत्म-चेतना की भी अभिव्यक्ति हुई है। राम ने प्रतिज्ञा की थी कि रावण के पाशबद्ध सीता की मुक्ति कराएंगे। मानो वैसी ही प्रतिज्ञा निराला ने कविता को बंधनमुक्त करने की ली थी जिसके लिए उनका सतत् प्रयत्न आजीवन चलता रहा।

मुक्त छंद में लिखी गई कविताओं को प्रारम्भ में व्यवसायी वर्ग एवं आलोचकों ने महत्त्व नहीं दिया। प्रकाशनार्थ या आलोचनार्थ कविताओं का प्रेषण निराला निरंतर चलाते रहे। संपादक, प्रकाश तथा आलोचक भी ऐसे ढीठ हो गए थे कि एक-दो पंक्तियों

में—'प्रकाशन योग्य नहीं' या 'स्तरीय नहीं' लिखकर प्रत्यावर्तित कर देते थे। जिससे निराला अत्यधिक दुखी होते थे। कभी-कभी उन्होंने अपने विषाद की अभिव्यक्ति की है—

''धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।''

राम के यह कहने पर, ''धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध'' सहृदय भावविभोर हो वेदना और विषाद से भर जाता है तथा उसके समक्ष राम के संघर्ष के साथ-साथ निराला के जीवन का संघर्ष भी प्रस्तुत हो जाता है। राम की भांति निराला कभी हारे नहीं। संघर्ष की शिलाएं मानव को सबल एवं सशक्त बनाती हैं। अपराजित और सतत विश्वासी व्यक्तित्त्व ही विकसित होकर मानव को जीवंत बना देता है।

निराला का व्यक्तित्त्व राम की भांति ही अटूट तथा अपराजेय रहा है। तीन वर्ष की अवस्था में माँ चल बसी। पिता, पत्नी, भाभी, भाई एक-एक करके महाप्रस्थान करते गए। रह गई थी इकलौती बेटी सरोज जो इनका सहारा थी उसने भी अपने जीवन के मात्र अट्ठारह बसंत ही देखे। पारिवारिक सदस्यों की म त्यु, बीमारी तथा आर्थिक संकट से निराला जीवन के अंतिम क्षणों तक संघर्ष करते रहे हैं किंतु जीवन में कभी पराजय नहीं स्वीकारी। लगता है राम के समान उनके पास भी एक अपराजेय, दैन्य को कभी न स्वीकारने वाला दिल था।

''वह एक और मन रहा राम का जो न थका।''

कुछ आलोचकों का कहना है कि 'राम की शक्ति पूजा' के पात्र प्रतीक मात्र हैं। लक्ष्मण सुमित्रानन्दन पंत हैं, रावण विपक्षी आलोचक हैं, शक्ति महादेवी हैं। शिव जय शंकर प्रसाद सीता कविता तथा राम स्वयं निराला हैं। निराला का व्यक्तित्त्व राम के व्यक्तित्त्व के माध्यम से व्यक्त हुआ है। राम एवं निराला का जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। आन्तरिक एकता दोनों में है।

राम का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक है जिसका अति महत्त्व है। जिस प्रकार गुप्त ने साकेत में उर्मिला के चरित्र को महत्त्व दिया है उसी प्रकार निराला ने राम की शक्ति पूजा में राम के चरित्र को महत्ता प्रदान की है। काव्य के नायक राम हैं। वाल्मीकि, के राम पुरुषोत्तम हैं। तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम साक्षात परम ब्रह्म है। निराला के राम उन सबसे निराले हैं। 'राम की शक्ति पूजा' में निराला ने राम के चरित्र को उदात्त एवं अनुदात्त दोनों रूपों में चित्रित किया है। निराला के राम ब्रह्म की पूर्णता के बदले मनुष्य की अपूर्णता के परिचायक हैं जिनमें दुखों से अधीरता, सौंदर्य के प्रति मोह एवं दुःख में आंखों से आंसू आना राम की विशेषता है।

निराला ने आरम्भ में राम के जिस रूप का वर्णन किया है वह योद्धा रूप है। जो रावण के साथ युद्ध में द ष्टिगोचर होता है। कई दिनों तक युद्ध चलता रहा किंतु निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुंच सका। जो राम को चिंताग्रस्त रूप प्रदान करता है। शिविर की ओर लौटते हुए राम का ऐसा ही चित्र अंकित किया गया है जटाजूट का मुकुट ढीला हो गया है, खुलकर बिखर गया है, उदासी के क्षणों में प्रियजनों की याद सताती है। राम के साथ भी ऐसा ही हुआ है। अचानक जनक वाटिका की सीता का दिव्य रूप राम के सामने आ जाता है किन्तु दूसरे ही क्षण शक्ति की कल्पना करते ही उसी में विलीन हो जाते हैं। स्वप्न भंग हो जाता है। राम को याद आने लगता है कि आज मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि युद्ध में रावण की सहायतार्थ शक्ति प्रकट हुई थी। रावण विकराल अट्टहास करता है। ऐसे राम की आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़ते हैं। राम का ऐसा निरालामय रूप किसी अन्य कवि ने नहीं प्रस्तुत किया है। विभीषण राम की खिन्नता को लक्षित कर उन्हें युद्ध करने के लिए प्रेरणा देते हैं किंतु राम पर प्रेरणा का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है—

मित्रवर! विजय होगी न समर
यह नहीं रहा नर-वानर से राक्षस का रण
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण
अन्याय जिधर है उधर शक्ति करते छल-छल
हो गए नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके द ग जल,

राम की समस्या अन्याय से लड़ना है। शक्ति अन्याय का साथ दे रही है। इसलिए समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। जाम्बवान ने राम को शक्ति-पूजा करने की सलाह दी। राम शक्ति की पूजा में लग जाते हैं। अंतिम दिन एक कमल के चोरी हो जाने से उनकी साधना में विध्न पड़ जाता है, निराशा उन्हें घेर लेती है। किंतु राम का एक अन्य मन भी था जो कभी

थका नहीं, निराश नहीं हुआ, सदा अपराजेय रहा, कभी दीनता नहीं स्वीकारती। राम का यह रूप उस दुधर्ष, कर्मठ एवं प्रयत्नशील मानव का स्वरूप है जो विषम से विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं मानता तथा अन्ततः विजयी होता है।

'राम की शक्ति पूजा' के निराला के राम यदि रावण की शक्ति से कांप जाते हैं तो जाम्बवान की प्रेरणा उनको पुरुषोत्तम नवीन का स्वरूप प्रदान करती है। राम का मानवीय रूप अधिक आकर्षक बन गया है। राम को मानवीय रूप प्रदान करना निराला का प्रमुख लक्ष्य था जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने राम के चरित्र का सर्वथा नवीन संदर्भ दिया है।

'राम की शक्ति पूजा' का निश्चित संदेश मानव के लिए है जो कवि का परम उद्देश्य है। विदेशी दासता के साथ-साथ मानवता को बंधन मुक्त करना निराला का उद्देश्य है। निराशा और अंधकारग्रस्त मानव को आशा का संदेश देकर अंधकार से मुक्त कराना निराला का उद्देश्य है। राम की निराशा वैयक्तिक नहीं अपितु समस्त भारतीयों की निराशा का प्रतीक है जिसके प्रतिनिधि राम हैं। रावण विदेशी शक्ति का प्रतीक है। इसीलिए निराला को कहना पड़ा अन्याय जिधर है शक्ति भी उधर है। वर्तमान काल में भी यही स्थिति है। अमेरिका और ब्रिटेन आतंकवादी पाकिस्तान का सहयोग कर रहे हैं तथा भारत की ओर मित्रता का हाथ बढ़ा रहे हैं। ऐसी स्थिति में जाम्बवान का शक्ति की आराधना का उद्‌बोधन मानो देशवासियों के लिए संदेश है। युद्ध के द्वारा ही शांति की स्थापना की जा सकती है।

निराला ने परामर्श स्वीकार करने एवं शक्ति की उपासना करने का तथ्य प्रस्तुत कर यह बतलाना चाहा है कि शक्ति, पौरुष, पराक्रम तथा अस्त्र-शस्त्रों के अभाव में युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। शक्तियों में सबसे बड़ी शक्ति आत्मा की शक्ति या आत्मिक शक्ति महाशक्ति को राम के बदन में लीन करवा दिया है। मानव एकाग्रता, अनन्त निष्ठा तथा तपस्या के द्वारा ही जीवन में लक्ष्य को सिद्ध कर सकता है। राम की आराधना इसी तथ्य की अभिव्यंजना करती है।

आशावाद काव्य का संदेश है। अंतिम क्षणों तक आशा का पल्ला न छोड़ने वाले को ही अंततः सफलता प्राप्ति होती है। निराला जीवन संग्राम में म त्यु पर्यंत संघर्षरत रहे। इसीलिए अपने आदर्श नायक राम के द्वारा 'न दैन्यं न पलायनम्' को स्वस्थ एवं कर्म प्रधान मार्ग पर चलने का संदेश दिया है। घोर संकट में राम पराजय को स्वीकारते नहीं। काव्य का यही संदेश है।

काव्य स जन का निराला मूल उद्देश्य शक्ति के उस रूप का उद्‌घाटन करना था जो अन्याय, अधर्म तथा अत्याचार का शमन करने की सामर्थ्य रखती है।

''शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।''

राम के द्वारा मौलिक शक्ति की कल्पना करवाई गई है। जिसमें भूधर-पार्वती, सिंधु-सिंह, दिशाएँ-दश हस्त, अंबर दिगंबर शेखर तथा राम-पुरुष सिंह है—

''मैं सिंह इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित।''

राम की क्रांतिकारी पूजा का अवलोकन कर देवतागण भी स्तब्ध रह जाते हैं। संपूर्ण ब्रह्माण्ड विदित हो जाता है दुर्गा राम को वरदान देती है—

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!
वह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।''

निराला ने एक बार कहा भी था—

''इसका (राम की शक्ति पूजा) विषय तो पुराना है पर इसकी अदायगी और अनुबंध एक दम नया है। 'राम की शक्ति पूजा' की कथा वस्तु प्राक्तन है, संघटन उद्‌यतन है और प्रभाव नित्य नूतन है।''

'राम की शक्ति पूजा' का संदेश मानवता को सर्वांगीण विकास कर विजयी बनाना है।

11. सरोज स्म ति—विशेषताएँ

सरोज-स्म ति शोक गीत है जिसमें निराला ने सरोज के अट्ठारह वर्षीय जीवन चरित एवं म त्यु का विशद चित्रण किया है। 'निराला' का जीवन चिर कालिक क्रन्दन से भरा हुआ था। इसी कारण उन्होंने लिखा है कि ''दुःख ही जीवन की कथा रही।'' निराला की धैर्य शीलता महान थी उन्होंने अपने जीवन में अनेक भौतिक एवं दैवी आपदाएँ बड़े धैर्य से सहीं। माता, पत्नी, चचेरे भाई, भाभी, चाचा एवं पिता का क्रमशः स्वर्गवास होता चला गया। नानी की गोद में पत्नी सरोज का परंपरा तोड़कर नये ढंग से विवाह किया। उसकी सुहाग सेज अपने हाथों सजाई। दो वर्ष के अन्तराल में सरोज विधवा हो गई। बीमार पड़ गई। अर्थाभाव में उसका उपचार न हो सका और सवा अट्ठारह वर्ष की अवस्था में ही काल ने उसे अपना ग्रास बना लिया। सरोज की म त्यु ने निराला की कमर तोड़ दी। उनका सहारा छीन गया। उसकी जान लेवा विषाद ने निराला से 'सरोज स्म ति' शोक गीत लिखवा लिया। निराला ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकारते हुए लिखा है—

''कन्ये! गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण।''

शोक गीत 'सरोज-स्म ति' की अनेक विशेषताएँ हैं—'सरोज-स्म ति' अपने समय का सर्वश्रेष्ठ शोक गीत है। इसकी रचना निराला ने सन् 1935 ई० में उस समय की थी जब उनकी इकलौती बेटी सरोज ने विवाह के दो वर्ष पश्चात ही अट्ठारह वर्ष की अवस्था में असमय ही पिता से विदा ले ली थी। कवि स्वयं कह उठता है—

उनविंश पर जो प्रथम-चरण
तेरा यह जीवन सिन्धु-तरण
प्रणये, ली कर द क्पात तरुण

× × ×

पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय

डॉ० राम विलास शर्मा इस गीत की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

''शोक गीत हिंदी में तो कम लिखे गए हैं, यूरोप की भाषाओं में ऐसा शायद ही कोई प्रभावशाली गीत हो जिसे कवि पिता ने अपनी पुत्री के निधन पर लिखा है।

''सरोज स्म ति में अलंकरण का अभाव है। इसके विपरीत रूढ़िवादी समाज के चित्रण में निराला का एक क्षुब्ध अट्टहास है। वह रूढ़ि समाज कान्य कुब्ज ब्राह्मणों का है जिसे निराला ने 'कुल का कुलांगार' एवं 'जिस पत्तल में खाए उसी में छेद करने वाला' कहा है। शेक्सपियर के नाटकों की भांति इसका मुख्य रस करुण है। शेक्सपियर के नाटकों में गंभीर भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ हास्य एवं व्यंग्य का सफल मिश्रण है।''

डॉ० पाण्डेय ने इस शोक गीत के विष में लिखा है—''सरोज स्म ति' कविता एक शोक गीत है। इसमें भी संघर्ष-समर, हार-विवशता और संकल्प के भाव गुंजित हैं। वहीं आहत अंधकार ग्रस्त, अपशवेय व्यक्ति के सत्य-तथ्य कथन में प्रकट होता है। तिरस्कार, आक्षेप, विपन्नता से जूझते विद्रोही व्यक्ति की तड़पन और छटपटाहट, छलकते आंसू और फिर संकल्प अभिव्यक्ति को उच्चतम भूमि प्रदान करते हैं। म त्यु जनित असीम करुणा, अतीत की स्म ति, अवमानना, अस्वीकृति, तिरस्कार के फलस्वरूप नैराश्य का स्वर अत्यधिक प्रबल है। बड़े त्रासद भावों की अभिव्यक्ति कविता में होती है जो पाठक को अत्यधिक प्रमाणित करके झकझोर देती है।''

डॉ० देश राज सिंह भाटी ने 'सरोज-स्म ति' की विवेचना करते हुए लिखा है—

''अपनी पत्नी की म त्यु के पश्चात कवि का स्नेह और वात्सल्य अपनी फूल सी कोमल पुत्री सरोज पर आ टिका था। 'सरोज स्म ति' कवि के करुण हृदय की अपनी बेटी के निधन पर पढ़ी पवित्र ऋचा है। जिसका स्पर्श कर मन मौन से संघर्ष करने को उद्यत हो जाता है।''

वास्तव में 'सरोज स्म ति' एक शोक गीत है। जहाँ कवि अपनी पुत्री की शैशवावस्था की क्रीड़ाओं का स्मरण करता है। निराला के हृदय में तीव्र ग्लानि है कि वह अपनी बेटी सरोज का पालन-पोषण नहीं कर सका, अर्थाभाव में बढ़िया वस्त्र, विवाह, बीमारी में उचित इलाज नहीं अर्थात् कुछ नहीं कर सका।

डॉ० राम विलास शर्मा ने शोक गीत को रेखांकित करते हुए पुनः लिखा है—

''सरोज स्म ति हिन्दी की एक मात्र 'एलेगी' या शोक गीत है। जिसका अंत 'राम की शक्ति पूजा' के आशावाद से नहीं होता। निराला मस्तक झुकाकर अपने कर्म पर वज्रपात सहने के लिए तत्पर होते हैं। शीत से भ्रष्ट होते हुए, शतदल के समान वह अपने विफल कार्यों से कन्या का तर्पण करते हैं। यथार्थ जीवन की एक नई और कटु अनुभूति थी जो निराला हिंदी को दे रहे थे। यह एक ऐसा महानायक था जो पाठक के हृदय में अपार करुणा और सहानुभूति की स ष्टि करता है।''

जीवन के उन्नीसवें वर्ष में ही सरोज का देहावसान हो जाता है। भाव विह्वल पिता को ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके गीतों की प्रेरणा-शक्ति बेटी सरोज इसलिए ज्योतिस्वरूप ईश्वर की शरण में चली गई ताकि वह अपने पिता के जीवन सागर पार करने में अक्षम होने पर उनका हाथ पकड़ कर उन्हें सहारा देती हुई दुर्गम अंधकार से पार लगा सके। साथ ही कवि बेटी को उलाहना देता है कि तुम तो मेरी जीती जागती कविता थी, फिर सैंकड़ों के मध्य मुझे जर्जर अकेला छोड़कर क्यों चली गई?

सरोज स्म ति में कवि-ग्लानि अत्यन्त प्रबल रूप से उभर कर सामने आयी है कि मैं बेकार तुम्हारा पिता बना। जब तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सका। यद्यपि मुझे धनोपार्जन का उपाय भली भांति आता था तथापि इस मार्ग में होने वाले अनर्थों एवं अत्याचारों को देखकर मैं इस क्षेत्र में हारता ही चला गया। इसलिए हे चन्द्रमुखी सरोज मैं तुम्हारे सौंदर्य एवं पवित्रता के अनुसार तुम्हें रेशमी वस्त्र न पहना सका। अच्छे भोजन भी नहीं दे सका—

धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाथ,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दीर्घमुख।

शोक गीत पाश्चात्य साहित्य की देन है। पाश्चात्य साहित्य में 'ऐलिगी' विधा का आरम्भ अत्यंत प्राचीन युग में ही हो गया था। हिंदी में इसे करुण गीत, शोक गीत, विलासिका आदि शब्दों से संबंधित किया गया है। शोक गीत का वर्ण्य विषय वियोग, म त्यु, युद्ध कुछ भी हो सकता है। 'सरोज स्म ति' का पर्ण्य विषय सरोज की म त्यु है। इसमें शोक तथा करुणा की प्रधानता है। यह कविता ग्रे की ऐलिगी से भी अधिक मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी बन गई है।

'सरोज-स्म ति' यद्यपि शोक गीत होने के कारण करुण रस प्रधान है तथापि इसमें वात्सल्य की कमी नहीं है। पिता का पुत्री सरोज में अत्यधिक प्रेम है। यह एक लंबी कविता है। प्रारम्भ में ही निराला सरोज की नवयुवावस्था का संकेत देकर उसकी म त्यु की सूचना 'जीवन-सिंधु-तरण' कहकर दे देते हैं। म त्यु का यह विचार कवि मानस में पुत्री के प्रति पित -प्रेम को जाग्रत करता है। निराला का पित त्व जाग्रत हो जाता है। उनके मानस पटल पर सरोज की असामयिक म त्यु का ही नहीं अपितु उसके अबोध और अभाव भरे बाल द श्यों की स्म ति भी साकार हो उठती है। साथ ही उनकी अपनी विवशता, आर्थिक विपन्नता, स्वार्थ समर में मिलने वाली पराजय, पित धर्म का पालन न कर पाने का अवसाद और आत्म गौरव भरे 'स्वर' और हिंदी जगत से मिलने वाली उपेक्षाओं को भी वे स्मरण करते हैं। आहत अहम्, दया भाव, जीवन का दयनीय संघर्ष उनको व्यथित ही नहीं करते बल्कि अतीतोन्मुखी बना देते हैं। वे कह उठते हैं—

वा छित उस किस ला छित छवि पर
करती स्नेह की कूची भर
अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम
कर नहीं सका पोषण उत्तम

निराला अपनी पुत्री सरोज की बाल्यावस्था का स्मरण कर गद्‌गद्‌ हो जाते हैं जब वह सवा साल की थी। उस अवस्था में ही माँ को पहचान लेती थी और मां उस पर अपनी ममता लुटा देती थी मां तुम्हें चूमती थी तू भी मां को चूम-चूमकर मानो उसके जीवन में नया जीवन भर देती थी।

'सरोज-स्म ति' में जीवन का यथार्थ स्वरूप वर्णित है। एक कथा के साथ समानान्तर दूसरी कथा भी चल पड़ी है। दूसरी कथा निराला के वैयक्तिक जीवन की अपनी कथा है। निराला में दुःख एवं वेदना आत्म द ढ़ता उत्पन्न हो जाती है। पिता के रूप में उनकी विवशता उनमें भयंकर कारुण स्थिति को जन्म देती है। मानो फ्लैश बैक में संपूर्ण घटनाएँ, स्थितियाँ, स्म तियाँ एक-एक करके नहीं अपितु आपस में घुली-मिली अर्थात्‌ एक साथ मिलकर निराला के मस्तिष्क एवं हृदय को चकाचौंध कर देती है। इस चकाचौंध का वर्णन करते हुए मलयज ने कहा है—

''सरोज सिर्फ पुत्री नहीं अपितु कवि के रचना-सामर्थ्य को ललकारने वाला वह यथार्थ भी है जिससे कवि लड़ा है और हारा है। सरोज कवि का सबसे बड़ा दर्द और मन गड़ी हुई फांस है।''

'सरोज-स्म ति' का महत्त्वपूर्ण चरित्र निराला है फिर भी संपूर्ण स्म ति विश्व का मुख्य प्रवेश द्वार सरोज है। निराला ने सरोज की बाल्या, कैशोरा एवं युवावस्था का चित्र उपस्थित किया है। सवा साल की बालिका सरोज मां नवयुवती जीवन में नव जीवन का संचार उसके चुंबन का प्रति उत्तर पुनःपुनः चुंबन लेकर करती है। माता की म त्यु उसे नानी की गोद में पटक देती है वहीं ममेरे भाई साथ खेलना, मामा-मामी एवं नानी के प्यार भरे पालन-पोषण में जीवन लीला आगे बढ़ती है। कभी भाई से मार खाकर आंखों से गंगा-यमुना धारा प्रवाहित करती है। भाई दुःखी होकर चुप कराने की क्रिया करता पुचकारता, मनाता है। गंगा विहार के नाम पर चुप होकर भाई का हाथ पकड़ गंगा विहार के लिए जाकर रेतीले मैदान में टहलते हुए गंगा की लहरें देखती रहती है। ये सभी यथार्थ जीवन की घटनाएँ हैं। तनाव मुक्त सीधी सादी ग्रामीण बालिका का उत्तरोत्तर विकास चल रहा है। वह शनैःशनैः तारुण्य कुंज को पार करने वाली, रात्रि स्वप्न की भांति मंथर गति से नवयौवन की ओर अग्रसर होने वाली तथा जागरण के प्रातःकालीन छंद की उषा के समान फूटने वाली सरोज अपने नवयौवन के स्वाभाविक परिवर्तनों से निराला के मन में सुषुप्तावस्था में पड़े हुए पित त्व भाव को जाग त कर देती है जिसके परिणामस्वरूप कवि 'लावण्य भार से थर-थर कांपने वाली' सरोज के काव्यमय चित्रांकन में लग जाता है तथा सरोज का भावी जीवन समक्ष प्रस्तुत हो जाने पर उसके ग हस्थ धर्म अर्थात्‌ विवाह के भव्य भवन की नींव रखने की विचार धारा निराला को चिंतित कर देती है। चिंता अर्थाभाव एवं पुत्री के यौवन में पदार्पण से उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। योग्य सासू जी निराला को पित त्व धर्म से अवगत कराकर अपने घर ले जाकर सुयोग्य वर खोज कर सरोज का विवाह करने की प्रेरणा देती हैं। स्म ति के अन्दर स्म तियाँ ऐसे हैं जैसे केले के पत्ते में पत्ते या चतुरों की बात, बात में बात संकुकित होती है। इन स्म तियों में पूर्ण कसाव एवं आख्यानक प्रसार भरा हैं नवयौवना सरोज निराला को साक्षात काव्य की प्रतीति कराती है। मानो स्वर्गीय पितामह की अनुकृति है। अपने पितामह की प्रतिच्छाया है। यह विचार आते ही निराला खेद एवं विक्षोभ से भर जाते हैं। विक्षोभ की अभिव्यक्ति प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि अपनी जाति के भाई-लोग उन्हें प्रताड़ित करते हैं। संस्कार एवं स्वस्थिति की दुविधा से ग्रसित निराला उन लोगों को फटकारने लग जाते हैं साथ ही निर्णय कर लेते हैं—

इनके कर कन्या, अर्थ खेद
इस विषम बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल।

निराला ने प्राचीनता एवं रूढ़ियों का विरोध करते हुए नवीनता का सूत्रपात किया है। बेटी सरोज का वैवाहिक कार्यक्रम पूर्णरुपेण नवीन ढंग से किया है जिसमें, सगे-संबंधी नहीं बुलाए गए, बारात नहीं बुलाई। कान्य कुब्ज ब्राह्मणों से उन्हें पूर्ण निराशा है। प्राचीनता एवं रूढ़ियों में विश्वास न होने के कारण परम्पराओं को तोड़ने का द ढ़ निश्चय ही नहीं किया अपितु परंपरा से हटकर वैवाहिक कार्यक्रम किए। अचानक याद आए कान्य कुब्ज युवक शिव शंकर द्विवेदी को बुलाकर उससे स्पष्ट कहा—

बारात बुलाकर मिथ्या-व्यय,
मैं करूँ ऐसा नहीं सुसमय।
तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के; पढ़ूँगा स्वयं मन्त्र।

पिता निराला सरोज की म त्यु से टूट गए, उनका हृदय चूर-चूर हो गया। वे चीत्कार कर उठे। विवाह क्या हुआ मानो शिव शंकर एवं सरोज की म त्यु का संदेश था। सरोज ससुराल गई। अल्पकाल में विधवा होकर वहां से सदा-सदा के लिए चली आई। नानी की स्नेहित गोद ने उसे पुनः अपनी ओर आकर्षित कर लिया। चिंता ने बीमारी का रूप धारण कर लिया। अर्थाभाव से उपचार न हो सकने के कारण चिंता ने बीमारी से म त्यु का रूप धारण कर लिया और सरोज पुनः परमपिता परमात्मा की गोद में चली गई। 'लता' पुनः वही जा पहुंची जहां कि वह कली बनकर खिली थी और बस वहीं—

अन्त अंक भी उसी गोद में शरण
ली, मूँदे द ग वर महामरण

सरोज की म त्यु ने भाग्यहीन पिता का अंतिम संबल भी छीन लिया। निराला का धैर्य टूट गया। दो वर्ष बाद अपनी व्यथा की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं—

हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा साथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

निश्चित है निराला यह कथन पिता के हृदय का भयंकर चीत्कार है। इस चीत्कार या निराला की वेदना का विवेचन करते हुए डॉ० कमलेश ने ठीक ही कहा है—

''यह कवि की नहीं अपितु एक पिता के भीतर से फूट पड़ती हुई चीख है। इस चीख का यथार्थ कवि के बावजूद भी है सत्य की तरह गंगा और ठिठुरता, जैसे कि सरोज की अकाल और अकारण म त्यु।''

'सरोज स्म ति' में गीति काव्योचित करुणा का अगाध रूप उपस्थित है। भाषा भावानुसारिणी एव प्रसंगानुकूल है। कहीं अनेक अर्थों से अभिषिक्त है, कहीं बिल्कुल सरल, सपाट एवं सामान्य है। इसमें सूक्ष्म शिल्प का संयम और संतुलन विद्यमान है। शब्द लाघव है।

इसका अलंकार विधान सौंदर्यवर्द्धक है, अनुप्रास, उपमा, रूपक, श्लेष, उदाहरण तथा उत्प्रेक्षा अलंकार सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

बिंब प्रधान एवं प्रतीक योजना सुंदर है। शैली वर्णनात्मक एवं व्यग्यात्मक है। मुहावरों का प्रयोग है। शब्दावली बहुप्रचलित एवं सरल है।

काव्य रूप शोक गीत एवं छंद मुक्त है। 'सरोज-स्म ति' का ऐतिहासिक महत्व है। इसमें महाकवि निराला ने अपने जीवन की व्यथा, करुणा तथा संघर्षशीलता का मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। इसमें छायावादी काव्य के—वैयक्तिकता, प्रकृति प्रेम, अवसाद-प्रधानता, श ंगारिकता तथा मानवीकरण आदि सभी गुण विद्यमान हैं। प्रगतिवादी काव्य की व्यंग्यशीलता तथा प्रयोगवादी काव्य की अतिशय यथार्थ प्रियता आदि की विशेषताएँ एकत्र द ष्टिगोचर होती हैं।

तात्पर्य यह है कि 'सरोज-सम ति' महाकवि निराला की काव्य चेतना के विकास की बहुचर्चित एवं प्रतिनिधि रचना है जिसमें उनके वैयक्तिक जीवन के अनेक बिंब पूर्ण यथार्थता के साथ मुखरित हुए हैं।

डॉ० कुंवर बेचैन ने 'सरोज-स्म ति' की विवेचना करते हुए लिखा है—

हिन्दी में शोक गीत लिखे जाने की परंपरा बहुत क्षीण रही है, किन्तु बेटी सरोज की म त्यु पर 'सरोज-स्म ति' नामक शोक गीत में चौतरफा व्यंग्य-बाण चलाए हैं, जो सामाजिक रूढ़ियों की खबर ली है, वह देखने योग्य है।''

12. शोक गीत : सरोज स्म ति—काव्य सौंदर्य

‘सरोज-स्म ति’ शोक गीत है। निराला के काव्य में इसका प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका महत्त्व ‘शोक गीत’ के साथ-साथ अन्य द ष्टियों से भी है। इसमें महाकाव्यत्व का औदात्य है। ‘राम की शक्ति पूजा’, ‘सरोज-स्म ति’ का ही विस्त त रूप है। इसमें निराला की अंतर्वेदना का चीत्कार इतना कारुणिक रूप धारण कर मुखरित होता है कि वह पाठक को सहज ही अभिभूत कर प्रभावित कर देता है।

गीति काव्य में सस्पर अध्ययन एवं वाद्य-यंत्रों पर गाए जाने की विशेषता विद्यमान होती है। इसके अनेक भेद एवं उपभेद होते हैं। यथा गीत, गीति, भाव गीति, संबोध गीति, वर्ग गीति, राष्ट्रीय गीत, शोक गीत, विवाह गीत, प्रयाण गीत, संस्कार गीत आदि।

शोक गीत अंग्रेजी ‘ऐलिगी’ शब्द का पर्याय है। ‘ऐलिगी’ पाश्चात्य साहित्य की देन है। जहाँ ‘ऐलिगी’ विधा को अति प्राचीन काल से साहित्य में स्थान मिल चुका था। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से भारत में इसका श्री गणेश हुआ। हिंदी में ऐलिगी के लिए शोक गीत, करुण गीत तथा विलासिका आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। शोक गीत का वर्ण्य-विषय वियोग, युद्ध अथवा म त्यु कुछ भी हो सकता है। इसमें शोक अथवा करुणा की भावना की प्रधानता होती है। शोक गीत शैली में शोक या करुणा की प्रधानता होने पर भी कवि का विचारक स्वरूप, मानव जीवन-दर्शन संबंधी उसकी धारणा भी सहज में ध्वनित होती है।

इसी प्रकार का शोक गीत अंग्रेजी कवि ग्रे ने ‘‘कंट्री चर्च यार्ड में लिखा शोकगीत’’ लिखा है। कीट्स की म त्यु पर कविवर शैली द्वारा लिखी कविता ‘एडोनायस’ तथा ‘लेसाइड्स’ इसी प्रकार के प्रसिद्ध शोक गीत हैं।

‘सरोज-स्म ति’ की रचना निराला ने अपनी पुत्री सरोज की म त्यु पर सन् 1935 ई० में की। यह वर्ष निराला के संपूर्ण जीवन में सर्वाधिक वज्राघाती सिद्ध हुआ। उनकी इकलौती लाडली बेटी सरोज का स्वर्गवास इसी समय हुआ। अर्थाभाव में सरोज का उचित उपचार नहीं हो सका। वही उसकी मौत का प्रमुख कारण था। इस बात का निराला को आजीवन खेद रहा है। सरोज की स्म ति में उन्होंने महाकाव्यात्मक लंबी कविता की रचना ‘सरोज-स्म ति’ नाम से की। इस शोक-गीत का हिंदी के करुण रस प्रधान काव्य में सर्वोच्च स्थान है। निराला के इस शोक गीत का ग्रे की ऐलिगी से भी अधिक मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी स्थान बन गया है। यह उनके व्यक्तिगत जीवन का सबसे बड़ा दुखान्त था जिसने निराला के चट्टान जैसे अटूट हृदय को चूर-चूर कर दिया। उनका आदम्य व्यक्तित्त्व अंदर ही अंदर टुकड़े-टुकड़े हो गया। निराला के स्वभाव की मधुरता का स्थान तिक्ता एवं कठोरता ने ले लिया। परिणामतः वे लखनऊ छोड़ कर प्रयाग, इलाहाबाद चले गये।

सवा साल की सरोज को छोड़कर उसकी मां महाप्रस्थान कर गई। बाल्यावस्था से पालन-पोषण का भार नानी ने संभाला। कवि के साथ-साथ उनकी पुत्री भी दुःख झेलती रही। रूढ़िवादी कान्य कुब्जों में शिव शेखर द्विवेदी से निराला ने सरोज का विवाह कर दिया। दो वर्ष के अन्दर ही भयानक बीमारी ने शिव शेखर को उठाकर सरोज को विधवा बना दिया। उस समय निराला पर ही ‘सुधा’ के प्रूफ संशोधन से संपादन तक का कार्य भार था। वेतन मात्र पचास रुपये मासिक था। यह शोक गीत किस प्रकार लिखा गया इसका वर्णन करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने लिखा है—

‘‘निराला जी सरोज को गांव भेज चुके थे। जीवन के और सब कार्य करते हुए भी उनका चित्त उद्विग्न बना रहता था। एक दिन नीचे से पोस्टकार्ड उठाकर ऊपर वापस आये और इतना ही कहा, ‘‘सरोज नहीं रही’’, दुःख से उनका चेहरा स्याह पड़ गया था उसे सहन करने के प्रयास में वे कुछ देर तक कमरे में टहलते रहे, उसके बाद अचानक घर से निकलकर घूमने चले गए। दो दिन तक सरोज की कोई चर्चा नहीं हई। इस बीच उनका चित्त कुछ स्थिर हुआ।’’

सरोज-स्म ति में कथा के रूप में एक छोटा-सा व त्त है जो सरोज के बाल्यकाल से लेकर, विवाह एवं म त्यु तक की घटनाओं को समेटे हुए हैं—

उन्नीस वर्ष के प्रथम चरण में कदम रखते ही सरोज पिता से विदा लेकर जीवन पार कर गई। पिता अक्षम था, मानो यही सोचकर उसे मार्ग दिखाने के लिए महाप्रयाण किया था। पिता को उसकी स्म ति बार-बार दुख के सागर में डुबोती रही।

''कुछ भी तेरे हित कर न सका।'' इस कविता के प्रारम्भ में कवि को अपने पिता होने की निरर्थकता की अनुभूति होती है और निराला पुत्री के लिए कुछ भी न कर पाने पर आत्मग्लानि से कहते हैं—

''धन्य मैं निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।''

निराला को अर्थ संचय का उपाय आता था किंतु धनोपार्जन के मार्ग में होने वाले अत्याचार एवं अनर्थ से अवगत होकर वह बार-बार हार जाते थे। स्वार्थ समर में उनकी पराजय होती रही। न केवल एक बार अपितु जीवन-भर वह ऐसा ही बना रहा है। उन्होंने कभी किसी दीन-दुखिया का अन्न नहीं छीना और न किसी के द गों को विपन्न देखा। उन्होंने दूसरे की आंसुओं में अपनी व्यथा का संधान किया। ऐसे द्रवणशील कवि को कहां अवकाश मिलता कि वह अपनी पुत्री का उत्तम ढंग से पालन-पोषण कर पाता। केवल सवा साल की आयु तक ही उसे अपने माता-पिता का सान्निध्य प्राप्त था। मां की म त्यु ने नानी की गोद में डाल दिया। सरोज अपने ममेरे भाई के साथ ननिहाल में बाल लीलाएँ कर रात-दिन उनका घर खुशियों से भरती रही। भाई से मार खाकर रोती रही। उसे दुःखी देख कर भाई उसे पुचकारता, चुप कराता एवं मनाता रहता था। गंगा विहार के नाम पर ही चुप्पी साधती थी। गंगा किनारे जाकर रेतीली भूमि में घूमते हुए लहरों को देखा करती थी। कवि सरस्वती की आराधना में लीन था। दो वर्ष बाद कवि सरोज को देखने ससुराल गया। वहां उसका दूसरा विवाह करने के लिए प्रस्ताव लेकर अनेक व्यक्ति आये। उनको वापस किया। उस समय निराला की आयु छब्बीस वर्ष की थी। विवाह टालने के लिए अपने को मंगली बतलाते हैं। इस पर सासू जी आग्रह करती हैं तो कुण्डली फट जाती है जिसमें दो विवाह लिखे थे। सरोज को देखकर उसे विवाह एक बंधन ही लग रहा था। इसलिए निराला विवाह नहीं करना चाहते थे। सरोज के बड़े होने पर उन्हें उसके विवाह की चिंता घेर लेती है। विवाह करें तो कहां करें? कान्य कुब्जों में दहेज की कुप्रथा से दुखी हैं। दहेज और रूढ़ियों से घिरे कानय कुब्जों को घ णा की द ष्टि से देखते। रूढ़ि पालन न करने का निश्चय कर नवीन ढंग से विवाह करना चाहते थे।

सौभाग्य से एक कान्य कुब्ज साहित्यिक युवक शिव शेखर द्विवेदी मिल गया है। वे उसे अपनी स्थिति से पूर्ण परिचित करा दिये। दहेज-बारात बिना विवाह करना है। बारात का धन व्यय अनर्थ है। निराला वैवाहिक मंत्र पढ़ने को उद्धत युवक तैयार हो गया। सगे-संबंधियों को बुलाया नहीं गया, विवाह हो गया। कवि मनोदशा का अनुमान लगाया जा सकता है कि माता की सारी शिक्षा निराला ने सरोज को दी। उसकी सुहाग शय्या निराला ने स्वयं सजाई-

''मां की कुल शिक्षा मैंने दी
पुष्प सेज तेरी स्वयं रची
सोचा मन में, वह शकुन्तला,
पर पाठ अन्य यह अन्य कला।''

निराला ने अपनी पुत्री को शकुन्तला के समान समझा तथा 'पर पाठ अन्य वह अन्य कला' कहा। यह कहने में कवि के एकाकीपन की कसम निहित है। यदि निराला को यह सौभाग्य भी प्राप्त होता तो बहुत था किंतु जिस पुत्री के लिए उन्होंने विवाह नहीं किया, वह भी न रही। इसलिए कवि विवशता में कहता है—

मुझ भाग्यहीन की तू संबल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख हो जीवन की कथा रही
क्या कहूं आज जो नहीं कही।

भाग्यहीन पिता की बुढ़ापे की लाठी भी परमात्मा ने छीन ली उनके धैर्य का बांध टूट गया और दो वर्ष पश्चात् भी यह कहकर अपनी कसम एवं तड़प को अभिव्यक्ति प्रदान किया—

हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य एकल
हों भ्रष्ट शील के से शतदल

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

निराला ने सरोज के अल्पकालीन जीवन का सफल चित्रण किया है। 'सरोज-स्म ति' शोक गीत में निराला ने सरोज के व्यक्तित्त्व की अनेक सुंदर झांकियाँ प्रस्तुत की हैं जिन्हें देखकर सरोज के संपूर्ण व्यक्तित्त्व का एक स्पष्ट चित्र पाठक के सम्मुख उभर कर आता है। निराला ने सरोज को, गीते, कन्ये, शुचिते, जीवित कविते, परी चपल, चपला, चंचला, पुतली, गिरिजा आदि अनेक नामों से संबोधित किया है। शुचितर सपर्याय जीवन के अष्टादश अध्याय जैसे शब्दों की योजना यह प्रतिपादित करती है कि सरोज ने सभी प्रकार के पवित्र भावों से पूरित होकर जीवन के केवल अट्ठारह वर्ष ही जिए और वह म त्यु-तरणि पर आरोहित होकर संसार सागर के पार मुक्ति का आलोक वरण करने के लिए चली गई। इसी कारण निराला ने उसकी म त्यु को म त्यु न स्वीकारते हुए 'ज्योति शरण' गमन कहा है—

''करती हूँ मैं, यह नही मरण
सरोज की ज्योति : शरण-तरण।''

निराला ने सरोज को बुद्धिमती, विदुषी, दूरदर्शिनी, शुचिते आदि शब्दों से संबोधित किया है। सरोज अत्यधिक सहनशील थी तभी तो वह अपने मन की इच्छाएँ अपने पिता के समक्ष कभी भी नहीं रखती थी। कवि ने कहा है—

''आँसुओं सजल द ष्टि की फलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों में दबकर
कहती लघु-लघु उसांस में भर।''

शैशवावस्था में भी सरोज अति चुस्त एवं समझदार थी। व्यक्तिगत दुःख और प्रताड़ना को वह तत्काल भूल जाया करती थी। उसका व्यक्तित्त्व परी के समान चपल एवं आकर्षक था। वह पुतली के समान आकर्षक एवं खिल-खिलाकर हंसने वाली थी।

सरोज का बचपन अत्यधिक सरल एवं भोला था। कवि की कुण्डली के टुकड़े-टुकड़े करके उसे एकत्रित करके उस पर बैठ जाना उसके भोलेपन को प्रमाणित करता है। तरुणाई में प्रवेश करते ही सरोज के व्यक्तित्त्व में प्रखरता, मुखरता, तेजस्विता, आकर्षकता तथा गीत-संगीतमयता आ गई। इन विशेषताओं का वर्णन निराला ने अनेक स्थलों पर किया है। सरोज को संगीत की शिक्षा नहीं दी गई थी फिर भी उसका स्वर एवं स्वर संधान अत्यधिक मधुर एवं सुलझा हुआ था। निराला ने लिखा है—

शिक्षा बिना बना वह स्वर
है, सुना न अब तक प थ्वी पर

उसके केश रेशम से कोमल, शरीर अत्यंत सुकुमार, स्थिर द ष्टि आदि सभी कुछ सुघड़ता के सांचे में ढला हुआ था। आकर्षण था। उसकी हंसी में बिजली की सी उज्जवलता और गत्यात्मकता थी। 'सरोज-स्म ति' में सरोज का व्यक्तित्त्व अत्यधिक सबल रूप में अभिव्यक्त एवं रूपायित हुआ है।

'सरोज-स्म ति' में सरोज का संपूर्ण चरित्र विकसित रूप में चित्रित हुआ है। उसके साथ-साथ निराला की आत्म कथा की समानान्तर रूप से चलती रहती है। 'सरोज-स्म ति' में स्म ति की तीन तहें हैं—म त सरोज स्म ति, म त पत्नी की स्म ति प्रथा तथा निराला के वैयक्तिक जीवन की स्म तियां।

सरोज का उपचार न करा सकना निराला को आजीवन कचोटता रहा। प्रारम्भ में कवि को अपने पिता होने की निरर्थकता की अनुभूति होती है कि वे सरोज के लिए कुछ भी नहीं कर सके—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।

उन दिनों निराला का जीवन घोर अर्थाभाव के संकट में फंसा था। प्रकाशकों के पास निराला जाते थे उन्हें निराश होकर लौटना पड़ता था। कविताएं सम्पादक के पास से वापस लौटा दी जाती थीं सरोज स्म ति में इनके संकेत हैं—

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि-जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त

लिखता अबाध गति मुक्त छंद
पर संपादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़े सत्वर
दे एक-पंक्ति दो में उत्तर

निराला को आजीवन संघर्षों में होकर अपना स्वतंत्र मार्ग बनाना पड़ा। समाज एवं साहित्य में जब वे प्रत्येक व्यक्ति की चर्चा का विषय बने हुए थे तब उनकी इकलौती बेटी सरोज उचित उपचार के अभाव में जीवन से संघर्ष करती हुई अपनी अंतिम सांसें गिन रही थीं।

'सरोज-स्म ति' में निराजा की अपनी ही नहीं बलिक उनकी पत्नी की स्म ति सुरक्षित है। निराला पहले लावण्य भार से थर-थर कांपती हुई युवती सरोज के चित्रों की झांकी प्रस्तुत करते हैं, बाद में अपनी स्वर्गीया प्रिया के निराकार श ंगार सौंदर्य में तल्लीन हो जाते हैं। पुत्री सरोज और पत्नी प्रिया ''मानो आकाश ही बदलकर मही बन गया हो।'' 'सरोज-स्म ति' शोक गीत में सरोज की जीवनी और निराला की आत्म कथा आपस में अनुस्यूत हैं।

सामाजिक व्यंग्य का प्रतीक सरोज-स्म ति कान्य कुब्जों की परंपरा, रूढ़िवादिता तथा दहेज प्रियता पर करारा व्यंग्य करती हैं। 'सरोज-स्म ति' शोकगीत ही नहीं आत्म कथा भी है। इस आत्म परक शोकगीत में निराला की द ष्टि धुंधली नहीं पड़ती है जहां 'सरोज-स्म ति' में पारिवारिक और ग ह जीवन के अनेक सुंदर चित्र है वहीं सामाजिक रूढ़ियों, परंपराओं एवं प्राचीन मान्यताओ के प्रति विद्रोही प्रव त्ति की अभिव्यक्ति हुई है। सरोज के विवाह के अवसर पर कोई भी परिवार दहेज के बिना उसे अपनी कुल वधू बनाने के लिए तैयार नहीं हुआ। निराला के लिए यह बहुत बड़ा आघात था। निराला की अंतर्ज्वाला मुखरित हो उठी—

ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद
इस विषम बेलि में विष ही फल
है दग्ध मरुस्थल-नहीं सुजल।

दहेज और रूढ़िवादिता की दास कान्य कुब्ज ब्राह्मण जाति को निराला ने आक्रोश पूर्ण घ णा से देखा है। इस व्यथा वेदना को कवि ने व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

'सरोज-स्म ति' का स्रोत वैयक्तिक विषाद है। 'सरोज-स्म ति' में यह वैयक्तिक विषाद सामाजिक रूढ़ियों के प्रति क्षोभ में बदल जाता है।

डॉ० रमेश कुंतल मेघ का कथन इस कथ्य की पुष्टि करता है—

''इस रचना में कई आलोचनाशील (क्रिटिक्स) मिलते हैं जो सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर्विरोधों को प्रकट करते हैं पहला और सर्व प्रमुख आलोचनाशील आर्थिक हैं। कविसमर्थ कवि उन अनर्थ आर्थिक पक्षों को नहीं पकड़ता। अतः वह निरर्थक रह जाता है। दूसरा कलात्मक आलोचना-कला-कौशल-प्रबुद्ध प्रमाण दिये हैं किंतु उसे हिंदी का स्नेहोपहार उपेक्षा और निरानंद (रस से विहीन) संपादकों से उदासीनता ही मिलती है। तीसरा वर्गगत आलोचनाशील है जिसमें कान्य कुब्ज कुलांगारों के पाखंड और दंभ का भंडाभोड़ हुआ है। चौथा आलोचनाशील रूढ़ियों का है। कवि अपने पूर्वजगणों की राह चलना चाहता है किंतु प्राचीन भार को पूर्ण रुपेण नहीं ढो सकता।''

'सरोज-स्म ति' आधुनिक हिंदी भाषा की एक अन्यतम उपलब्धि है जिसमें सफल कलात्मकता और गहरी वैयक्तिक भावना का अन्योनयाश्रित मिश्रण द ष्टिगोचर होता है। सरोज स्म ति की शैली प्रांजल, संक्षिप्त तथा लयात्मक है। छंद की द ष्टि से इसकी तुलना वाई०पी० यीट्स की कविता 'द टावर' से की जा सकती है।

'सरोज-स्म ति' के प्रारम्भ में कविता की गतिमयता अमूर्त प्रतीकों से आरम्भ होकर अनन्त गतिशीलता के साथ लयात्मक सघनता ग्रहण करती है—

उनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा यह जीवन-सिन्धु-तरण;
तनये, ली कर द क्पात तरुण

जनक से जन्म विदा अरुण!
गीते, मेरी, तज रूप-नाम,
वर लिया अमर शाश्वत विराम,
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टदशाध्याय
चढ़ म त्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह- ''पितः, पूर्ण आलोक वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण;
'सरोज' का ज्योतिः शरण-तरण!''

'गीते' शब्द का अनायास प्रयोग नहीं है। आत्मा का रूपक 'गीते' शब्द में निहित है। यह 'तजरूप, नाम, अमर, शाश्वत' की उक्ति स्पष्ट है। इन शब्दों में दैहिकता को छोड़कर अनन्तता को वरण करने का भाव है। सरोज के जीवन और गीता में सहज साम्य है। सरोज के जीवन के अट्ठारह वर्ष और गीता के अट्ठारह अध्याय हैं।

'सरोज-स्म ति' में कलात्मकता सर्वत्र द ष्टिगोचर होती है—

धीरे धीरे फिर चढ़ा चरण,
वाल्य के कलियों का प्रांगण
कर पार, कु ज तारुण्य सुधर
आई, लावण्य भार थर-थर
कांपा कोमलता पर सस्वर,
ज्यों मालकौश नव वीणा पर
नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द-मन्द
फूटी ऊषा जागरण छंद
कांपी भी निज आलोक-भार
कांपा वन, कांपा दिक् प्रसार।

संपूर्ण विश्व साहित्य में संभवतः यह प्रथम रचना है जिसमें किसी पिता ने अपनी पुत्री का ऐसा सुंदर एकदम मर्मस्पर्शी श ंगार चित्र प्रस्तुत किया है पुत्री सरोज किस प्रकार बाल्यकाल से युवावस्था में पदापर्ण करती है। 'ज्यों मालकौश नव वीणा पर'। मालकौश ऋषम् पंचम वर्ग का भैरवी ठाठ का राग है जो रात्रि के तीसरे पहल में गाया जाता है। उच्च भावों की गंभीर प्रकृति के इस राग के स्वर म दु होते हैं। शोक गीत में रूपक, श्लेष, उपमा, सांगरूपक, अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा आदि अलंकार स्थान-स्‍ािन पर विद्यमान हैं। जिन्होंन गीत को सबलता प्रदान की है।

'सरोज-स्म ति' में काव्य के मर्म के साथ कवि का उज्ज्वल व्यक्तित्त्व भी अपनी सामाजिक प्रक्रियाओं के साथ व्यक्त हुआ है। व्यथा का इतना प्रकाशन सामान्यतः युगीन किसी कृति में नहीं देखा गया और यह व्यथा भी कवि की सामाजिक चेतना पर हावी नहीं होती।

'सरोज-स्म ति' में कवि की आत्मभिव्यक्ति और उसकी सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोही भावना की अभिव्यंजना हुई है। कविता की मूल प्रेरणा वैयाक्तिक है किंतु अपने स्वभावानुसार ही निराला उस वैयक्तिकता का अतिक्रमण कर सके हैं।

13. कुकुरमुत्ता : व्यंग्यात्मकता

सन् 1942 में प्रकाशित निराला के काव्य का अंतिम स्वरूप एवं काव्यानंद प्रदान करने वाली ऐतिहासिक महत्त्व की कविता कुकुरमुत्ता है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व लिखी यह रचना व्यंग्य काव्य है। इसे यथार्थवादी कविता कहें तो अनुचित न होगा। निराला के काव्य विकास में यथार्थ का आरम्भ करने वाली यही कविता है। यथार्थ चित्रण एवं व्यंग्यात्मक द ष्टि से यह उत्कृष्ट कृति है। इसकी विवेचना करते हुए डॉ० विलास शर्मा ने लिखा है-

"ऐसा शिष्ट व्यंग्य, सच्ची अंतर्व्यथा से निकला हुआ जो पढ़ते ही सहृदय को प्रभावित भी कर सके, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है।"

कुकुरमुत्ता का महत्त्व इस द ष्टि से भी है कि द्वितीय महायुद्ध के समय बंगाल में पड़े भीषण अकाल तथा अन्य संकटों ने भारत को इतना प्रभावित किया था कि साहित्य मे निराशावाद का स्वर प्रधान हो गया। ऐसे समय में निराला द्वारा प्रखर व्यंग्य प्रहार करने वाली कृति 'कुकुरमुत्ता' की रचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गई। कविवर निराला की स जनात्मक यात्रा में कुकुरमुत्ता महत्त्व पूर्ण पड़ता है। यद्यपि इससे पूर्व भी निराला अनेक व्यंग्यात्मक कविताओं की रचना कर चुके थे। लेकिन उनमें कुकुरमुत्ता जैसी त्वरा, पैनापन, मर्म स्पर्शिता, प्रखरता, यथार्थवादिता, प्रभावोत्पादकता आदि नहीं थी। कुकुरमुत्ता से पूर्व पंत, प्रसाद, महादेवी वर्मा तथा निराला आदि सभी छायावादी गुलाब को श्रेष्ठ पुष्प मानते हुए उसे सौंदर्य का मानदंड मानते थे। किंतु निराला ने कुकुरमुत्ता में इस मानदंड को तोड़ते हुए गुलाब को पूंजीवाद एवं शोषक वर्ग का प्रतीक बनाकर सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि कुकुरमुत्ता को मानकर उससे गुलाब की भर्त्सना करवाई है तथा उसके शिष्ट गालियां दिलवाते हुए लिखा है-

अबे, सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगों-आब
खून-चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है केपी टलिस्ट!
कितनों को तुने बनाया है गुलाम
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा घाम !

कुकुरमुत्ता विषमता पूर्ण समाज पर तीखां व्यंग्य है जिसकी कथा इस प्रकार है-

एक थे नव्वाब,
फारस से मँगाये थे गुलाब।
बड़ी बड़ी में लगाये
देशी पौधे भी उगाये
रखे माली कई नौकर
गजनवी का बाग मनहर
लग रहा था।

उस बाग में गुलाब के अतिरिक्त बेला, चमेली, जुही, नरगिस, राम की रानी, रजनी गंधा, चम्पा, गुलमेंहदी आदि अनेक प्रकार के सौंदर्य व द्धि करने वाले पुष्प के पौधे लगाये गये थे। फूल के पौधों की सिंचाई करने के लिए सौंदर्य प्रदर्शन के लिए अनेक फब्बारे लगे हुए थे।

अनेक रंग-सुर्ख, चम्पई, आसमानी, सफेद, बादामी वसंती आदि के पुष्प खिले हुए थे।

फूलों के साथ-साथ आम लीची, संतरे तथा फालसे आदि के फलदार व क्ष भी लगाए गए थे। बाग में आरामगाह, मार्ग तालाब आदि भी बड़प्पन के निशान तथा सौंदर्य के प्रतीक बनाए गए थे। कहीं कुकुरमुत्ता भी अन्यों के उगते समय उग आया-

आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब
बाग पर उसका पड़ा था रोबादाब;
वहीं गन्दे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठे सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता-

अबे गुलाब ! अपने सौंदर्य व सुगंध पर इतना इतरा रहा है तेरे कारण कितने लोगों को धूप धाम सहना पड़ता है वह जाड़ा गर्मी एवं बरसात तुम्हारी सेवा में लगे रहते हैं। माली एवं अनेक नौकर तुम्हारे लिए लगाए गए हैं जो तुम्हें खाद पानी देने के साथ गुड़ाई तथा तुम्हारी टहनियां काट-काट कर कलमे लगाते हैं। तू खाद का खून चूसने वाला है तुझे उगाने के लिए अनेक लोगों को कड़ी मेंहनत करनी पड़ती है। जबकि कुकुरमुत्ता स्वयं उगता है। उसे खाद-पानी या देखभाल करने वालों की आवश्यकता नहीं होती है। तू अमीरों का प्यारा, साधारण लोगों से न्यारा रहता है-

शाहों, राजों, अमीरों, का रहा प्यारा
तभी साधारणों से तू न्यारा
वरना, क्या तेरी हस्ती है, पोच तू
कली जो चटकी अभी
सूख कर काँटा हुई होती कभी
रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खान दानी

कुकुरमुत्ता गुलाब पूंजीपति पर व्यंग्य कर रहा है कि तुझे बादशाह, राजा, अमीर लोग प्यारे है। साधारण जनता से तू कभी मिलता नहीं उनसे सदा दूर या न्यारा रहता है। उनकों अपने पास तक नहीं आने देता है। तुम्हारी इन्हीं लोगों से मिलते रहने के कारण पूछ है अन्यथा तुम्हारा क्या महत्त्व है। कली रूपी तुम्हारे बच्चे जो पैदा हुए कब के मर गये होते यदि उन्हें रोज खाना पानी न मिलता। तू जो खानदानी हराम है अर्थात् जन्म जात हराम का खाने वाला है जो तुमसे अपने पूर्वजों से सीख रखा है। काम करना तुम्हें नहीं आता। बैठे-बैठे खाना मिलता रहे तो काम कौन करे?

कुकुरमुत्ते की धिक्कार व्यंग्य है। वह अपने को मौलिक तथा गुलाब पूंजीपति को नकली कहता है तुझे सुन्दर-सुन्दर युवतियां अर्थात् शाहजहां की बीबी मेहरून्नियां चाहिए। मुझे खाना नहीं मिलता तुझे इत्र आदि सौंदर्य प्रसाधन चाहिए। तुम्हारा कोई अपना या सहारा नहीं है। डूबते हुए को तिनके का सहारा भी नही है। लेकिन तू सपनों की दुनिया में खोया हुआ अपने को चमकता हुआ सितारा समझ रहा है। पेट मे तेरे चूहे डंड पेल रहे हैं अर्थात् तू भूखा है मगर तुम्हारी वाणी से सुन्दर-सुन्दर शब्दों की वर्षा होती रहती है।

कुकुरमुत्ता स्वयं को पैराशूट, सुदर्शन, चक्र, ब्रह्म, यशोदा की मयानी, बलराम का हल, रूपया, पार लगाने वाला, दर्शन शास्त्र, डमरू, वीणा, पुरुष सितार, तानपूरा, घड़ियाल, ढोल, घण्टी, न त्य ताल, टोपी, हैट, ताजमहल आगरा का फोर्ट आदि की संज्ञा देता है या उनसे अपने को संबंधित बतलाता है अथवा अपने से पूर्णरूपेण प्रभावित बतलाता है। ये सभी उपक्रम अपने को बड़ा बनाने तथा गुलाब को छोटा दिखलाने के लिए करता है।

नवाब ने अपने सेवकों के निवास की व्यवस्था बगीचे में ही की हुई थी जिसमें नौकर माली आदि रहते थे। उनकी बड़ी दुर्दशा थी रहने का स्थान भी स्वच्छ न था। हवा पानी की समुचित व्यवस्था नहीं थी। माली सपरिवार वहीं रहता था। माली की एक लड़की थी जिसका नाम गोली था। गोली नवाब की बेटी बहार की सहेली बन गई थी। एक दिन गोली कुकुरमुत्ता का कबाब अपने मां से बनवाकर नवाब की बेटी बहार को खिलाया। बहार को कुकुरमुत्ता का नवाब बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने उसकी तारीफ अपने अब्बा जान नवाब साहब से की। नवाब साहब ने माली को बुलवाया और बाग से कुकुरमुत्ता लाने को कहा। माली ने कहा बगीचे में कुकुरमुत्ता कहीं भी नहीं है। नवाब साहब ने माली को आदेश दिया कि बाग से सारे गुलाब उखाड़ कर फेंक दिए। कुकुरमुत्ते की न तो कलम लगती है न बीज से उगाया जाता है यह तो अपने मौसम अर्थात् बरसात में स्वयं उग जाता है। यह स्वयं जात या स्वयंभू पोध है। यह श्रमहारा वर्ग का पूंजीपति तथा पूंजीपति व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है कि पूंजीपति के बच्चे पाल पोस कर भी स्वस्थ नहीं रहते। श्रमिकों की संतान स्वयं पलती बढ़ती है। इसी विचारधारा को व्यक्त करता हुआ कुकुरमुत्ता कहता है-

देख मुझको, मैं बढ़ा
डेढ़ बालिश्त और ऊँचे पर चढ़ा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता

अल्प कथा में कवि ने विविध व्यंग्यों का प्रयोग किया है। कवि ने पूंजीवादी व्यवस्था पर व्यंग्य नहीं किया है अपितु स्वयं की मान्यताओं, प्राचीन रूढ़ियों तथा फिजूलाखर्ची पर भी व्यंग्य किया है। निराला के व्यंग्यों को विवेचित करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने लिखा है-

"कुकुरमुत्ता का स्थान अन्यतम है। छायावाद के विरोधियों, जनता को धोखा देने वाले राजनीतिज्ञों, देश की प्रगति रोकने वाले विभिन्न प्राकर के निहितों पर निराला व्यंग्य करते ही थे किंतु कुकुरमुत्ता जैसी रचनाओं में वह कुछ छायावादी मान्यताओं पर भी व्यंग्य करते है, यशोदा की मथानी है, सुबह का सूरज और शाम का चाँद है। भास कालिदास ने उसमे गोते लगाए है। और हाफ़िज रवीन्द्रनाथ किनारे खड़ देखते रहे है। कुकुरमुत्ता अगर ब्रह्म के समान व्यापक न होता तो उसमें कोई गोते कैसे लगाता उसके किनारे खड़े होकर टुकुर-टुकुर ताकता कैसे? कुकुरमुत्ता को प्रच्छन्न व्यंग्य स्वयं निराला की ब्रह्म संबंधी विचार धारा पर है''-

"उलट दे,मैं ही जसोदा की मथानी"
सुबह का सूरज हूँ मैं ही चाँद में ही शाम का।"
चाँद मै ही शाम का।"
दुनिया मे सबने मुझी से रस चुराया,
रस मैं डूबा उतराया।
मुझी में गोते लगाए वाल्मीकि व्यास ने
मुझी से पोथे निकाले भास-कालिदास ने।
टुकुर-टुकुर देखा किए मेरे ही किनारे खड़े
हाफिज-रवीन्द्र जैसे विश्व कवि बड़े-बड़े।

डॉ० उपेन्द्र नाथ शर्मा नाथ शर्मा ने उच्च वर्ग के अधिपत्य एवं निम्न वर्ग की उपेक्षा को विवेचति करते हुए लिखा है-

"कुकुरमुत्ता में उस समाज पर व्यंग्य किया गया है जहां उच्च वर्ग का आधिपत्य है, निम्न वर्ग उपेक्षित रहता है। कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का प्रतिनिधि है। गुलाब उच्च वर्ग का। कुकुरमुत्ता को कहीं पर साम्यवादी नेताओं का भी प्रतीक माना गया है। नवाब साहब का कुकुरमुत्ता के प्रति आकस्मिक प्रेम उच्च वर्ग के वौद्धिक विलास का प्रतीक है। कवि ने प्रयोग वादियों पर भी व्यंग्य किया है। प्रयोगवादी इलियट का अनुकरण करके प्रयोगों के संसार मे भटकते रहते हैं''-

कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर
टी० एस० एलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों के भी जिगर पर रखकर
हाथ, कहा, लिख दिया जहां सारा
× × × × ×
जैसे प्रोग्रे सीव का कलम लेते ही
रोके नहीं रूकता जोश का पारा।"

कुकुरमुत्ता के माध्यम से निराला ने देश की सांस्कृतिक विरासत एवं दर्शनशास्त्र का उपहास करते हुए करारा व्यंग्य किया है। कवि ने कुकुरमुत्ता को सुबह का सूरज और शाम का चाँद कह कर उसे प्रकृति में व्याग्र दिखना वेदांत पर व्यंग्य है। कवि ने कुकुरमुत्ता का संबंध दर्शन शास्त्र से जोड़कर भारतीय दर्शन का उपहास करते हुए उस पर व्यंग्य के छींटे कसे हैं।

सुमित्रानंदन पंत ने केवल ताज महल पर व्यंग्य किया है-

हाय रे म त्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन,
जब विष्पण पड़ा हो जग का जीवन।

निराला ने न केवल ताजमहल अपितु विश्व के प्रसिद्ध भवनों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। क्योंकि इन पर इतना धन व्यय किया गया है तथा इनकी देखभाल पर प्रतिवर्ष कितना खर्च किया जाता है। इनका उपयोग कुछ नहीं है। इतना खर्च करके कितने घर वालों को आवास की सुविधा प्रदान की जा सकती है-

हो कुतुबमीनार,
ताज, आगरा या फोर्ट, चुनार,
विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता
मस्जिद, बगदाद, जुम्माख अलबत्ता
सेन्ट पीटर्स, गिरजा हो या घण्टाघर,
गुबंदों में , गढ़ में मेरी मुहर।

इन प्रसिद्ध भवनों तथा इमारतों की गढ़न में कुकुरमुत्ता की मुहर कहकर निराला ने इन सब पर करारा व्यंग्य किया है।

बड़े-बड़े शासकों के युद्ध में कुकुरमुत्ता का पैंतरे बदलना, प्रोलेटेरियन के झगड़े, मियाँ बीबी के रगड़े तथा सूदखोरों की ब्याज वसूली के समय प्रसन्नता से नाचना, आदि मे ंकुकुरमुत्ता की नाच का कलाइमेक्स पर पहुँच जाना कहकर अपने व्यंग्य का विषय बनाया है। इनका कोई भी अस्तित्व नहीं है। लेकिन लोग लड़ने से बाज नहीं आते अपनी हानि उठाकर आनंद का अनुभव करते हैं। क्या वे किसी कुत्ते के सूखी हड्डी चूसने से कम हैं जो अपना ही खून चूसता हुआ इसलिए आनंदित होता है। कि मानों रक्त हड्डी से निकल रहा है। रक्त उसी का है। आधुनिक काल में लोगों के भोजन की उचित व्यवस्था नहीं है। पेट में चूहे कूदते रहते हैं मगर उछलने-कूदने अर्थात नाचने से बाज नहीं आते हैं सभी प्रकार के नाचों पर व्यंग्य करते हुए निराला ने उन्हें कुकुरमुत्ता से जोड़ दिया है-

नाच में यह मेरा ही जीवन खुला
पैरों से मैं ही तुला।
कत्थक हो या कथकली या बालडान्स
क्लियोपेट्रा, कमल-भौंरा, कोई रोमान्स
बहेलिया हो, मोर हो, मणिपुरी, गरबा
पैर, माझा, हाथ गरदन भौंहें मटका
नाच अफ्रीका हो या यूरोपियन,
सच में मेरी गढ़न।
किसी भी तरह का हावभाव,
मेरा ही रहता है, सब में ताव
मैंने बदले पैंतरे,
जहाँ भी शासक लड़े।

निराला ने सब को अपने व्यंग्य बाण का निशाना बनाने वाले कुकुरमुत्ता को भी नहीं बख्शा। उस पर अपना व्यंग्य बाण चलाकर ही दम लिया। कुकुरमुत्ता को अपने बड़प्पन भाव का अत्यधिक दंभ है उसी घमंड में वह किसी को भी व्यंग्य से अछूता नहीं छोड़ता है। कुकुरमुत्ता सबको तुच्छ बतलाकर अपने को स्वयं सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करता हुआ अपने मुंह मियां मिठ्ठू बनता है। ऐसा करने से कुकुरमुत्ता का व्यक्तित्व सबके हास्य का विषय बन जाता है।

लोगों को तन ढंकने के लिए समुचित वस्त्र की उपलब्धि नहीं है। पैरे नंगे रहते है। किंतु सिर अवश्य ढंका रहना चाहिए। जिससे दो नंगों का तन ढंक जाय उतना कपड़ा व्यर्थ में सिर पर लपेटे रहते है तथा गर्मी से मरते रहते है जिसे पगड़ी या साफा की संज्ञा दी गई है। अंग्रेजी ने हेट चला दी, गांधी न गांधी टोपी। इतना ही नहीं, टोपी के अनेक रूप विश्व सभ्यता में वस्त्र का

अंग बन चुके है। कुकुरमुत्ता सब मे अपना ही प्रतिरूप देखता है यह व्यंग्य नहीं तो और क्या है। टोपी का ग्रीष्म काल के अतिरिक्त अन्य कालों में कोई लाभ नही है। अपितु हानि ही है। निराला ने अपने व्यंग्य बापा से किसी को भी नहीं छोड़ा है-

सर सभी का फाँसने वाला हूँ ट्रेप
टर्की, पोपी, दुपलिया या किश्ती-कैप।
और जितने, लगा जिनमें स्ट्रा या मैट,
देख, मेरी नक्ल है अँगरेजी हैट।
घूमता हूँ सर चढ़ा,
तू नहीं, मैं ही बड़ा।"

निराला ने आध्यात्मिकता के शास्त्र, दर्शन शास्त्र को भी नहीं छोड़ा उस पर भी व्यंग्य किया हैं-

मैं कुकुरमुत्ता हूँ
पर बेन्ज़ाइन वैसे
बने दर्शन शास्त्र जैसे।

यह निराला के मोह भंग की स्थिति है। निराला की वेदान्त पर अगाध निष्ठा थी, लेकिन कुकुरमुत्ता में वेदान्त पर व्यंग्य उनकी विचारधार में महज परिवर्तन को दिखलाता है।

व्यंग्य प्रधानता की द ष्टि से कुकुरमुत्ता ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। निराला काव्य यात्रा में महान् परिवर्तन को दिखाने वाली हास्य व्यंग्यात्मक रचना है। इसमें एक साथ पूंजीवादी सभ्यता, दर्शन, अहबाद, प्रयोग वाद, परम्परा, छायावादी मान्यता व कवि की कुछ अपनी मान्यताओं पर भी तीखा एंव पैना व्यंग्य किया गया है तथा सर्वहारा वर्ग की उपयोगिता तथा श्रेष्ठता पर अधिक बल दिया गया है।

डॉ० उपेन्द्र कुमार शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं-

"कुकुरमुत्ता का व्यंग्य सीमित और एकोन्मुख न होकर अनेकोन्मुख है। कभी कवि औरों पर हंसता है, कभी स्वयं पर भी हंसता है। स्वयं की पुरानी मान्यताओं पर उपहास भी खूब किया है। ऐसा व्यंग्य और कहीं देखने को नहीं मिलता।"

`

आधुनिक हिन्दी कविता
(ब)

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन
गजानन माधव मुक्तिबोध
नागार्जुन

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)

प्रश्न पत्र-1
Paper-1

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

खण्ड 'क' - व्याख्या

अध्याय 1 नदी के द्वीप 6
अध्याय 2 असाध्य वीणा 10
अध्याय 3 बावरा अहेरी 25
अध्याय 4 मैंने देखा एक बूंद 28
अध्याय 5 सोन मछली 30
अध्याय 6 सत्य तो बहुत मिले 31
अध्याय 7 खुल गयी नाव 34
अध्याय 8 हिरोशिमा 35

खण्ड 'ख' - आलोचना

अध्याय 9 अज्ञेय : जीवन परिचय 38
अध्याय 10 अज्ञेय : प्रयोगवाद के पुरस्कर्त्ता 41
अध्याय 11 अज्ञेय और नई कविता 46
अध्याय 12 अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता 51
अध्याय 13 अज्ञेय के काव्य में समाज-संप क्ति का बोध 57
अध्याय 14 अज्ञेय का काव्य-विषयक चिंतन 62
अध्याय 15 अज्ञेय का काव्य वैशिष्ट्य 65
अध्याय 16 अज्ञेय की काव्य भाषा 69
अध्याय 17 नदी के द्वीप : प्रतिपाद्य 73
अध्याय 18 असाध्य वीणा : प्रतिपाद्य 77

खण्ड 'ग' - लघुत्तरीय 82

गजानन माधव मुक्तिबोध

खण्ड-क **व्याख्या** 92
खण्ड-ख **आलोचना** 125
खण्ड-ग **लघुत्तरी प्रश्न** 159

नागार्जुन

खण्ड 'क' - व्याख्या

अध्याय 1 चंदू, मैंने सपना देखा 176
अध्याय 2 बाकी बच गया अंडा 178
अध्याय 3 अकाल और उसके बाद 179
अध्याय 4 शासन की बंदूक 181
अध्याय 5 बादल को घिरते देखा है 183
अध्याय 6 तीन दिन तीन रात 188
अध्याय 7 मास्टर! 192
अध्याय 8 आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी 197
अध्याय 9 तीनों बंदर बापू के 201
अध्याय 10 सत्य 206

खण्ड 'ख' - आलोचना

अध्याय 1 नागार्जुनः व्यक्तित्व एवं कृतित्व 209
अध्याय 2 नागार्जुनः राजनीतिक द ष्टि 213
अध्याय 3 नागार्जुनः प्रकृति चित्रण 216
अध्याय 4 नागार्जुनः आर्थिक द ष्टि 220
अध्याय 5 नागार्जुनः काव्य वैशिष्ट्य 223
अध्याय 6 नागार्जुनः यथार्थ चेतना 228
अध्याय 7 नागार्जुन और कबीर में समानताएँ एवं विषमताएँ 232
अध्याय 8 नागार्जुनः व्यंग्य भावना 236
अध्याय 9 नागार्जुनः नारी भावना 240
अध्याय 10 नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना 244
अध्याय 11 नागार्जुन का काव्य सौष्ठव 249

खण्ड 'ग' - लघुत्तरी प्रश्न 254
खण्ड 'घ' - अतिलघुत्तरी प्रश्न 259

आधुनिक हिन्दी कविता

पूर्णांकः 100
समयः 3 **घंटे**

पाठ्य विषय

1.	**सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन**	"अज्ञेय" नदी के द्वीप, असाध्य वीणा, बावरा अहेरी, मैंने देखा - एक बूंद, सोन मछली, सत्य तो बहुत मिले, खुल गयी नाव।
2.	**गजानन माधव मुक्तिबोध**	"अंधेर में" मुक्तिबोध की प्रतिनिधि कविताएँ।
3.	**नागार्जुन**	चंदू, मैंने सपना देखा, बाकी बच गया अंडा, अकाल और उसके बाद, शासन की बंदूक, बादल को घिरते देखा है, तीन दिन तीन रात, मास्टर!, आओ रानी हम ढोएँगे पालकी, तीनों बंदर बापू के, सत्य।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

M.A. (Previous)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक—124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

व्याख्या खण्ड (क)

अध्याय 1 नदी के द्वीप 5

अध्याय 2 असाध्य वीणा 9

अध्याय 3 बावरा अहेरी 24

अध्याय 4 मैंने देखा एक बूंद 27

अध्याय 5 सोन मछली 29

अध्याय 6 सत्य तो बहुत मिले 30

अध्याय 7 खुल गयी नाव 33

अध्याय 8 हिरोशिमा 34

आलोचना खण्ड (ख)

अध्याय 9 जीवन परिचय 37

अध्याय 10 अज्ञेय : प्रयोगवाद के पुरस्कर्त्ता 40

अध्याय 11 अज्ञेय और नई कविता 45

अध्याय 12 अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता 50

अध्याय 13 अज्ञेय के काव्य में समाज-संप क्ति का बोध 56

अध्याय 14 अज्ञेय का काव्य-विषयक चिंतन 61

अध्याय 15 अज्ञेय का काव्य वैशिष्ट्य 64

अध्याय 16 अज्ञेय की काव्य भाषा 68

अध्याय 17 नदी के द्वीप : प्रतिपाद्य 72

अध्याय 18 असाध्य वीणा : प्रतिपाद्य 76

लघुत्तरीय प्रश्न खण्ड (ग) 82

आधुनिक हिन्दी कविता

पूर्णांकः 100

समयः 3 घंटे

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

खण्ड 'क' - व्याख्या

अध्याय 1 नदी के द्वीप

अध्याय 2 असाध्य वीणा

अध्याय 3 बावरा अहेरी

अध्याय 4 मैंने देखा एक बूंद

अध्याय 5 सोन मछली

अध्याय 6 सत्य तो बहुत मिले

अध्याय 7 खुल गयी नाव

अध्याय 8 हिरोशिमा

खण्ड 'ख' - आलोचना

अध्याय 9 जीवन परिचय

अध्याय 10 अज्ञेय : प्रयोगवाद के पुरस्कर्त्ता

अध्याय 11 अज्ञेय और नई कविता

अध्याय 12 अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता

अध्याय 13 अज्ञेय के काव्य में समाज-संप क्ति का बोध

अध्याय 14 अज्ञेय का काव्य-विषयक चिंतन

अध्याय 15 अज्ञेय का काव्य वैशिष्ट्य

अध्याय 16 अज्ञेय की काव्य भाषा

अध्याय 17 नदी के द्वीप : प्रतिपाद्य

अध्याय 18 असाध्य वीणा : प्रतिपाद्य

खण्ड 'ग' - लघुत्तरीय प्रश्न

खण्ड 'क' - व्याख्या

अध्याय-1

नदी के द्वीप

अज्ञेय की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में से 'नदी के द्वीप' एक है। इस कविता में कवि अज्ञेय नदी को समष्टि का और द्वीप को व्यष्टि का प्रतीक मानकर रेखांकित करता है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व एवं महत्त्व है, लघु का, क्षण का महत्त्व है। व्यक्ति समाज की मात्र इकाई नहीं है, अपितु विशिष्ट इकाई है। कवि नदी के बीच में उभरे छोटे-छोटे द्वीपों के माध्यम से अस्तित्ववादी व्यक्ति व्यक्तिनिष्ठ अहं एवं उनकी निजी अस्मिता के गर्व को व्याख्यायित करता हुआ कहता है कि यह द्वीपों का व्यक्तिनिष्ठ अहं ही है जो उन्हें रेत नहीं होने देता, मिट्टी कंकड़ बनकर जल में बहने नहीं देता क्योंकि बहना अपने अस्तित्व को भुलाना है। जबकि अस्तित्ववादी व्यक्ति टूट सकता है, पर अपने अस्तित्व को दूसरे में विलीन नहीं होने देता। वह अपनी रक्षा के लिए जल रूपी जीवन के थपेड़े खाकर भी स्थिर और अचल रहता है। यह स्थिर रहना ही उसकी घोर जिजीविषा का परिणाम है। प्रस्तुत कविता में कवि ने नदी, द्वीपों और व हद् भूखण्ड में माँ, पुत्र और पिता का सम्बन्ध स्थिर किया है।

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत-कूल,
सब गोलाइयाँ उस की गढ़ी हैं!

माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

शब्दार्थः द्वीप=टापू। स्रोतस्विनी=नदी। अन्तरीप=द्वीप के रूप में उभरा हुआ आकार जिसके तीन ओर जल होता है। सैकत कूल=रेतीला किनारा। गढ़ी है=निर्मित हुई है, बनी हुई है।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्यांश कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'हरी घास पर क्षण भर' में संकलित 'नदी के द्वीप' प्रतीकात्मक कविता से उद्ध त है। कवि प्रसिद्ध कामशास्त्री फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होकर इस कविता में व्यक्ति की इयत्ता को स्थापित करते हैं। इसमें नदी समष्टि एवं द्वीप व्यष्टि के प्रतीक रूप में उभरा है।

व्याख्याः हम नदी के जल में स्थित छोटे-छोटे द्वीप हैं। हमारा निवास स्थान नदी ही है। हम नहीं कहते, नहीं चाहते कि नदी की धारा हमें रीता छोड़कर बह जाए अर्थात् परम्परा हमें छोड़कर आगे निकल जाए। नदी के जल की यह धारा ही हमें आकार देती है, स्वरूप प्रदान करती है। यह परम्परा ही तो हमारे चरित्र का निर्माण करती है अर्थात् यह नदी (परम्परा) समष्टि रूपी माँ ही हमारा निर्माण करती है। हमारे किनारे, गलियाँ, भीतरी आकार-प्रकार की अवस्थिति, उभरा रूप, रेतीले किनारे और हमारे गोल घेरे इसी नदी ने निर्मित किये हैं। इसी ने हमें बनाया, सजाया, संवारा है। यह हमारी माँ है। इसी से हमारा निर्माण हुआ है। जैसे एक माँ अपने रक्त, हड्डियों, मज्जाओं आदि से गर्भस्थ शिशु का रूप निर्माण करती है वैसे ही यह नदी बहकर आ रहे मिट्टी, कंकड़ और बालू से हमारा निर्माण करती है। इसीलिए यह हमारी माँ है अर्थात् समाज ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है, उसी में रहकर व्यक्ति का अस्तित्व है। इसीलिए समाज रूपी नदी हमारी माँ है।

विशेष

1. यहाँ 'नदी' समष्टि का और 'द्वीप' व्यष्टि का प्रतीक है।

2. फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद के अस्तित्ववाद का संदर्भ निरूपित है।
3. प्रयोगवादी जीवन-दर्शन अस्तित्ववाद को आधार-भूमि मानता है, यह भी परिलक्षित है।
4. लघु के महत्त्व पर बल है।
5. समष्टि की नदी में व्यक्ति की स्थिति एक द्वीप-सी है; न कि धारा-सी, यह भी कवि बताता है।
6. आत्म-कथात्मक शैली है।
7. द्वीप एवं नदी के बीच पुत्र एवं माता का संदर्भ जुड़ने से मानवीकरण अलंकार छवि विद्यमान है।

किन्तु हम हैं द्वीप। हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।
और फिर हम चूर्ण हो कर भी कभी क्या धार बन सकते?
रेत बन कर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे-
अनुपयोगी ही बनायेंगे।

शब्दार्थः पलवन=बाढ़। चूर्ण होकर=रेत बनकर। सलिल=पानी। गंदला=गंदा, मैला।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्यांश कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'हरी घास पर क्षण भर' में संकलित 'नदी के द्वीप' प्रतीकात्मक कविता से उद्ध्‌ त है। कवि प्रसिद्ध कामशास्त्री फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होकर इस कविता में व्यक्ति की इयत्ता को स्थापित करते हैं। इसमें नदी समष्टि एवं द्वीप व्यष्टि के प्रतीक रूप में उभरा है।

व्याख्याः लेकिन हम द्वीप हैं, हम धारा नहीं हैं। अर्थात् हम बहने या बहती चली जाने वाली धारा नहीं है। हम तो स्थिर, सुद ढ़ द्वीप हैं। हम स्वयं में समाज या परम्परा नहीं हैं। हम तो समाज की इकाई हैं किन्तु हम विशिष्ट इकाई हैं क्योंकि समाज के प्रति, नदी के प्रति हमारा स्थिर समर्पण है और हमारे अस्तित्व का भी स्थिर समर्पण है। इसीलिए हम बहती जल धारा के, नदी के, परम्परा के द्वीप बने हुए हैं। किन्तु, हम नदी की जलधारा के साथ बहते नहीं है, क्योंकि बहना रेत होना है अपने अस्तित्व को विलीन करना है। अगर हम बह गए तो हमारा अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। हमारा अस्तित्व खत्म होते ही हमारे पैर उखड़ने लगेंगे, हम बह जाएगें, ढह जाएगें। अगर हम बह भी गए, हमारा अस्तित्व छिन्न-भिन्न भी हो गया तो क्या हम पानी की धार बन सकते हैं? नहीं क्योंकि हम चूर्ण होकर भी रेत होकर भी अपने अस्तित्व को बनाए रखेंगे। रेत बनकर हम पानी को गंदा ही करेंगे क्योंकि हम पानी नहीं बनेंगे, धार नहीं बनेंगे इसी कारण हम उस पानी को भी अनुपयोगी ही बनायेंगे उसे कोई भी प्रयोग नहीं करेगा।

विशेष

1. कवि का अस्तित्ववादी दर्शन कहता है कि हम द्वीप बेशक बाढ़ के प्रकोप से बह जाए, ढह जाए किन्तु अपने अस्तित्व को नदी के जल में विलीन नहीं होने देंगे बल्कि नदी के पानी को गन्दला कर अनुपयोगी ही बनायेंगे अर्थात् रेत के रूप में हम अपने अस्तित्व को विद्यमान रखेंगे।
2. नदी समष्टि का द्वीप व्यष्टि का तथा सलिल शब्द व्यक्ति की आन्तरिक चेतना का प्रतीक उभरा है। चेतना का गंदला होना, कलुषित होना उसे अनुपयोगी ही बनाता है।
3. 'रेत' अस्तित्वहीन या शून्य का प्रतीक है।
4. यहाँ अज्ञेय की 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' की खोज उनकी कला-साधना के मूल में कार्यरत है। उनकी यह खोज 'अरी ओ करूणा प्रभामय' में भी देखी जा सकती है-

‘भीड़ों में जब जब जिससे आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है मानव
अंगारे सा भगवान सा अकेला।’

द्वीप हैं हम। यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी की क्रोड़ में।
वह ब हद् भूखंड से हम को मिलाती है।
और वह भूखंड अपना पितर है।

शब्दार्थः शाप=श्राप। नियति=भाग्य द्वारा निर्धारित अन्तिम परिणति। क्रोड़=गोद। व हद्=बहुत बड़े। भूखण्ड=धरती। पितर=पूर्वज, पिता।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्यांश कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन ‘हरी घास पर क्षण भर’ में संकलित ‘नदी के द्वीप’ प्रतीकात्मक कविता से उद्ध त है। कवि प्रसिद्ध कामशास्त्री फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होकर इस कविता में व्यक्ति की इयत्ता को स्थापित करते हैं। इसमें नदी समष्टि एवं द्वीप व्यष्टि के प्रतीक रूप में उभरा है।

व्याख्याः हम द्वीप हैं। हम किसी के अभिशाप से द्वीप नहीं बने हैं यह तो हमारे भाग्य की अन्तिम परिणति है अर्थात् किसी के शाप से हम द्वीप बने हों ऐसी बात नहीं है। यह हमारे भाग्य में ही लिखा था कि हम नदी के बीच में जन्म लेंगे और नदी द्वारा रेत, मिट्टी एवं कंकड़ आदि से हमारा पालन-पोषण होगा। हम तो नदी के पुत्र हैं, नदी की गोद में बैठे हैं। जिस प्रकार माँ की गोद में शिशु बैठा किलकता है और माँ उसका भरण-पोषण करती है, उसे जन्म देने के बाद उसके पिता से मिलवाती है पिता-पुत्र का सम्बन्ध स्थापित करती है उसी प्रकार यह नदी हमारा भरण-पोषण करती है और हमारे पिता रूपी विशाल भूखण्ड से हमें मिलवाती है अर्थात् जैसे पिता और पुत्र में रक्तगत सम्बन्ध होता है वैसे ही हमारे और विशाल भूखण्ड में सम्बन्ध है। भूखण्ड में भी रेत, कंकड़, मिट्टी आदि होते हैं और हमारा निर्माण भी रेत, कंकड़, मिट्टी से ही होता है। अतः यह भूखण्ड हमारा पिता है। हम इसके पुत्र हैं अर्थात् यह विशाल भूखण्ड विशाल मानवता है और हम (द्वीप) एक भू-भाग, राष्ट्रीयता, देश एवं समूह के परिचायक हैं।

विशेष

1. कवि ने नदी, द्वीप, व हद् भूखण्ड में जो माँ-पुत्र-पिता का संबंध स्थिर किया है उससे काव्य में भावविह्वलता आ गई है।
2. प्रस्तुत सम्पूर्ण काव्यांश में रूपक एवं मानवीकरण अलंकार की छवि दर्शनीय है।
3. भाषा में तत्सम शब्दावली के प्रयोग से लालित्य एवं सौन्दर्य आ गया है।
4. विशाल मानवता से संस्कार ग्रहण करने की ओर संकेत किया है।
5. नदी को माँ का रूप मानते हुए संस्कारवाहिनी रूप में उभारा है।

नदी तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो। यदि ऐसा कभी हो-
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से, अतिचार से,
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे-
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल-प्रवाहिनी बन जाय-

तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत हो कर
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।

मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

शब्दार्थः भूखण्ड=भू-भाग। दाय=दान, दायित्व। देना=शुद्ध करना। मांजती=चमकाती, सुन्दर बनाती, संवारती। संस्कार=सुन्दर रूप। आह्लाद=आनन्द, प्रसन्नता। स्वैराचार=अनाचार, अभद्र आचरण, स्वेच्छाचार। अतिचार=अत्याचार, अत्यधिक उत्पीड़न। प्लावन=बाढ़। स्रोतस्विनी=नदी। कर्मनाशा=उथल-पुथल करने वाली, जन-धन की हानि करने वाली। कीर्तिनाशा=भयानक बाढ़ के कारण अपयश पाने वाली। काल-प्रवाहिनी=भयानक बाढ़वाली, म त्यु की भयानक धारा।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्यांश कविवर अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' से उद्ध त किया गया है।

नदी के द्वीपों का मानना है कि हम किसी के अभिशाप से द्वीप नहीं बने हैं अपितु यह हमारी नियति की अंतिम परिणति है। हम अपनी नदी रूपी माँ की गोद में बैठे है और यह नदी हमें भूखण्ड से मिलाती है जो हमारा पिता है। इसी प्रसंग में द्वीपों की आत्मस्वीक ति को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है-

व्याख्याः द्वीप नदी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे नदी रूपी माँ, हे जीवन की गतिशीलता, परम्परा की प्रतीक नदी की धारा, तुम निरन्तर बहती रहो। भूखण्ड से, पिता से, समाज से जो दान, दायित्व, कर्त्तव्य हमें मिला है, मिलता रहा है उसे तुम सुन्दर रूप प्रदान करती रहो, संवारती रहो, शुद्ध संस्कारित करती रहो; क्योंकि तुम हमारी माँ हो और माँ संस्कारवाहिनी होती है अर्थात् हमें अपने समाज से, पिता से जो संस्कार मिले हैं उनका तुम शुद्धिकरण करो, उन्हें परिष्क त, परिमार्जित करो। यदि कभी तुम्हारी अपनी ही प्रसन्नता, मादकता से या किसी के अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न से तुम अपने आकार को विस्त त करो, तुममें भयानक बाढ़ आ जाए और बाढ़ के घरघराते वेग से तुम इस विस्त त क्षेत्र में भयानक तबाही मचाने लगो और तुम्हारा जल-प्रवाह कीर्तिनाशा, कर्मनाशा का भयंकर प्रवाह बन जाए तो भी हम तुम्हारे इस प्रलयंकारी, भयंकर रूप को भी स्वीकार कर लेंगे अर्थात् तुम्हारा विनाशकारी, ध्वंसकारी बाढ़ रूप भी हमें स्वीकार है। इस बाढ़ में हम भी बह जाएंगे। हम रेत हो जाएंगे। किन्तु मौका मिलते ही हम पानी से छनकर अलग हो जाएंगे और तुम्हारी सतह पर जम जाएंगे, हम कहीं-न-कहीं फिर पैर टेकेंगे और उस अज्ञात स्थान पर हमारे व्यक्तित्व का आकार फिर से अस्तित्व में आने लगेगा, अर्थात् पुनः आकार लेगा। अतः हमारी मात स्वरूपा तुम हमें फिर संस्कार देना, हमारा भरण-पोषण करना, हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करना।

विशेष

1. कवि का घोर अस्तित्ववादी दर्शन कार्यरत है।
2. द्वीपों का स्थिर रहना अस्तित्ववादी घोर जिजीविषा का ही परिणाम है।
3. कर्मनाशा, कीर्तिनाशा, काल-प्रवाहिनी जैसे शब्दों ने कथ्य को जीवंत बना दिया है।
4. तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के एक साथ प्रयोग से भाषा प्रवाहमयी, प्रभावशाली और जीवंत हो उठी है।
5. सम्पूर्ण पद्य में मानवीकरण अलंकार की छवि विद्यमान है।
6. द्वीपों के कथन में अहंकारभाव विद्यमान है जो कवि की अस्तित्ववादी चेतना का ही परिणाम है।
7. 'शेखर एक जीवनी' की भांति कवि की यहाँ भी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की खोज है।

अध्याय-2
असाध्य वीणा

'असाध्य वीणा'? आँगन के पार द्वार' काव्य संकलन में संकलित है। इस संकलन में अज्ञेय की सन् 1959 से 1961 तक की कविताएँ संकलित हैं। 'आँगन के पार द्वार' काव्य संकलन पर अज्ञेय को 1964 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला।

वर्ण्य-वस्तु की द ष्टि से अज्ञेय ने इस कविता में एक आख्यान के द्वारा साधक के समर्पण तथा मौन का रहस्यवादी चित्रण करने का प्रयास किया है। एक राजा के पास वज्रकीर्ति द्वारा किरीटी-तरू से गढ़ी हुई वीणा थी। इस वीणा को बजाने के लिए राजा ने अनेक कलावन्तों को आमंत्रित किया किन्तु उसे कोई न बजा सका क्योंकि ये सभी उसके प्रति समर्पित नहीं हुए थे। इस वीणा को बजाने में प्रियंवद साधक सफल हुए। प्रियंवद साधक ने (जिसे केशकंबली और गुफा-गेह भी कहा गया है) वन, हिमशिखर, वीणा आदि के प्रति मौन समर्पण करते हुए अपनी उगलियाँ उठाई ही थी कि वीणा स्वयं बज उठी। कवि कहता है कि स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित करने से ही सत्य का उद्घाटन होता है। यह सत्य ही महाशून्य है जो महामौन है, अविभाज्य है, अनाप्त है, अद्रवित है और अप्रमेय है। इसी सत्य को व्यक्त करना कवि का उद्देश्य है। इसी कारण 'असाध्य वीणा' महामौन का शब्दहीन गान बन जाती है।

'आ गये प्रियंवद! केशकम्बली! गुफा-गेह!
राजा ने आसन दिया। कहा :
"क तक त्य हुआ मैं तात! पधारे आप।
भरोसा है अब मुझ को
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी!"

शब्दार्थः प्रियंवद=मधुर या मीठा बोलने वाला। केशकम्बली=एक साधक का नाम, केश ही है कम्बल जिसके, जटा-जूटधारी। गुफा-गेह=गुफा रूपी घर का वासी। क त्य-क त्य=क तार्थ। तात=आदरणीय। साध=इच्छा।

प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' काव्य संकलन में संकलित उनकी संभवतः सबसे लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' से उद्ध त की गई हैं।

'असाध्य वीणा' को बजाने के लिए प्रियंवद आता है। उन्हें देखकर राजा अत्यन्त हर्षित होता है और उनका नाटकीय ढंग से सम्मान एवं स्वागत करता है।

व्याख्याः राजा कहता है कि मधुर बोलने वाला! केशकम्बली! गुफा वासी! आ गया है। फिर राजा उसको बैठने के लिए आसन देता हुआ कहता है कि आपके आने से मेरा जीवन सफल हो गया। मैं क त्य-क त्य हो गया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे जीवन की सम्पूर्ण इच्छाएँ, आशाएँ, आकांक्षाएँ पूरी हो जाएंगी अर्थात् यह असाध्य वीणा अवश्य ही बज उठेगी।

विशेष

1. साधक के लिए कवि ने तीन नामों का प्रयोग किया है-प्रियंवद, केशकम्बली और गुफा-गेह।
2. 'केशकम्बली' शब्द से यह संकेत मिलता है कि साधक के लम्बे बाल ही कम्बल का कार्य पूरा करते थे अर्थात् वह नग्न रहता था।
3. कविता का प्रारंभ ही नाटकीय शैली से किया गया है।

4. राजा आस्थावादी है।
5. कवि ने भाषिक प्रयोग में तत्सम शब्दावली तथा बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया है।
6. छेकानुप्रास अलंकार है।

"यह वीणा उत्तराखण्ड के गिरि-प्रान्तर से
-घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी-
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीट-तरू से इसे गढ़ा था-
उस के कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे,
उसकी करि-शुण्डों-सी डालें

हिम-वर्षा से पूरे वन-यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उस के वल्कल से कन्धे खुजलाने आते थे।
और-सुना है-जड़ उस की जा पहुँची थी पाताल-लोक,
उसकी गन्ध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।

शब्दार्थः गिरि-प्रान्तर=पहाड़ी प्रदेश। व्रतचारी=तपस्वी। वज्रकीर्ति=एक प्राचीन साधक का नाम। मन्त्रपूत=मंत्रों से पवित्र की गई। किरीटी-तरू=एक व क्ष का नाम। गढ़ा=बनाया। करि-शुण्डों-सी=हाथी की सूण्ड के समान। वन-यूथों=जंगली झुण्डों। परित्राण=रक्षा। कोटर=खोह। केहरि=शेर। वतकल=व क्ष की छाल। गंध-प्रवण=सुगंधित।

प्रसंगः राजा साधक केशकम्बली को वीणा के निर्माण की सुनी-सुनाई कहानी सुनाता है।

व्याख्याः राजा कहता है कि बहुत समय पहले यह असाध्य वीणा उत्तराखण्ड के पर्वतीय प्रदेश से लाई गयी थी। वहाँ घने, गहरे जंगलों में अनेक साधु तपस्या एवं निवास करते हैं। हम इस वीणा का पूरा इतिहास, वर्णन तो नहीं जानते पर इतना अवश्य सुना है कि वज्रकीर्ति नामक साधक ने विशाल किरीटी के व क्ष की लकड़ी से मंत्रों द्वारा पवित्र करके इसका निर्माण किया है। जिस व क्ष के कानों में पर्वत की चोटियाँ अपना रहस्य सुनाया करती थी। वह इतना ऊँचा एवं विशाल था कि उसके कंधों पर बादल सोया करते थे। उसकी डालिया हाथी के शुण्ड के समान थी। इसकी डालियाँ हिम-वर्षा, गर्मी-सर्दी से जंगली झुण्डों की रक्षा करती थी अर्थात् पशु-पक्षी उसकी छाया में निवास करते थे। इसके कोटर में भालू रहते थे और उसकी छाल से शेर अपने कंधे खुजलाया करते थे। सुना है कि उसकी जड़ें भी पाताल तक जा पहुँची थी और उसकी उस सुगन्धित एवं सुशीतल जड़ से अपना फन टिकाकर वासुकि नाग सोया करता था।

विशेष

1. 'असाध्य वीणा' के निर्माण का वर्णन कौतूहल की स ष्टि करता है।
2. 'उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने' और 'कंधों पर बादल सोते थे' पंक्तियों में श्रव्य एवं द श्य बिम्ब उभरता है।
3. 'करि शुण्डों-सी डाले' में उपमा अलंकार है। 'जड़ उसकी पाताल लोक' में अतिश्योक्ति अलंकार है।
4. भाषिक प्रयोग में तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग किया गया है।

राजा रुके
साँस लम्बी ले कर फिर बोले:
"मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सब की विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
क च्छ-तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा-स्वरसिद्ध गोद में लेगा।
तात! प्रियंवद!
लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह :
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन-मात्र प्रतीक्षामाण।"

शब्दार्थः कलावन्त=कलाकार। अकारथ=व्यर्थ। दर्प=घमण्ड। चूर=भंग। साध सका=स्वर संधान कर सका। ख्यात=प्रसिद्ध। क च्छ्-तप=कठिन तपस्या। स्वर-सिद्ध=स्वरों का महान् साधक। उदग्र=गर्दन उठाये। पर्युत्सुक=अत्यधिक उत्सुक। जन-मात्र=सभी लोग। प्रतीक्षामान=प्रतीक्षा में रत। पलक=आँख। प्राण-खींच=साँस रोककर। अस्पर्श छुअन=बिना छुए छूकर। साक्षी=गवाह।

प्रसंगः राजा साधक केशकम्बली को वीणा के निर्माण की सुनी-सुनाई कहानी सुनाता है।

व्याख्याः राजा कुछ देर रूककर पुनः कहते हैं कि मेरे जितने भी कलाकार थे, वे सभी इस वीणा में स्वर संधान करने में असफल हो गये हैं। इसको बजाने की कोशिश में उनकी कला निष्फल हो गयी है। उनका घमण्ड भी चूर-चूर हो गया है। अतः इस वीणा को आज तक कोई भी ज्ञानी गुणी नहीं बजा सका है। इसी कारण यह वीणा 'असाध्य वीणा' के नाम से ही प्रसिद्ध हो गयी है। लेकिन मेरा अब भी विश्वास है कि इस वीणा को बनाने वाले वज्रकीर्ति का कठोर-तप बेकार नहीं जाएगा। यह वीणा जरूर बजेगी, संगीत जरूर फूटेगा, पर तभी जब सच्चा स्वर-साधक इसको गोद में लेकर बजाने की कोशिश करेगा। हे पूज्यवर प्रियंवद वज्रकीर्ति द्वारा बनाई गई यह वीणा आपके सामने प्रस्तुत है। आप इसे बजाने की कोशिश कीजिए। मैं, मेरी रानी और राज सभा के सभी सदस्य इस वीणा का संगीत सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप कब इसमें स्वर-संधान करते हैं।

विशेष

1. वीणा को असाध्य-वीणा क्यों कहा जाता था इसका कारण बताया है।
2. नाटकीयता का समावेश है।
3. कवि बताना चाहता है कि दंभ से सत्य का संधान नहीं हो सकता।
4. भाषा सहज, सरल कथ्य के अनुकूल है।

केशकम्बली गुफा-गेह ने खोला कम्बल
धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख, पलक-बंद कर, प्राण खींच,
करके प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार।
धीरे बोलाः "राजन्! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ-

जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।

शब्दार्थः पलक=आँख। प्राण-खींच=सांस खींचकर। अस्पर्श छुअन=बिना छुए छूकर। साक्षी=गवाह।

प्रसंगः राजा साधक केशकम्बली को वीणा के निर्माण की सुनी-सुनाई कहानी सुनाता है।

व्याख्याः राजा की बात सुनने के बाद केशकम्बली गुफावासी ने चुपचाप अपना कम्बल खोलकर धरती पर बिछा दिया। वीणा को कम्बल पर रखा। फिर आँखें बंद करके साँस खींचकर उस वीणा को प्रणाम किया। फिर उसके तारों को अस्पर्श-छुअन से स्पर्श किया अर्थात् हल्का-सा स्पर्श किया। राजा से कहने लगा कि राजन् मैं तो अपने को कलाकार नहीं समझता। बस मैं तो जीवन के अनकहे कथ्य का शिष्य और साधक हूँ।

विशेष

1. 'अनकहे सत्य' शब्द में कविता के मूल कथ्य की ओर संकेत है।
2. केशकम्बली का 'प्रणाम' करना कला के प्रति आदर भाव व्यक्त करना है।
3. सच्चे साधक दंभी नहीं विनम्र होते हैं इसीलिए केशकम्बली भी विनम्र है उसका धीरे बोलना ही इस बात का प्रमाण है।
4. 'अस्पर्श छूअन से छुए तार' में विरोधाभास अलंकार है।

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा-
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड में वह अपने को
सौप रहा था उसी किरीटी-तरू को।
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारूवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन-भर की साधना रही?
भूल गया था केशकम्बली राज-सभा कोः
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी-तरू
जिस की जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिस के कन्धों पर बादल सोते थे
और कान में जिस के हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरू को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।

शब्दार्थः स्पन्दित=धड़कनपूर्ण, उत्तेजित। साध=संधान करना। शोध=संस्कार खोजना। सघन-निविड=घना, गहरा। अभिमंत्रित= शोधित। कारूनवाद्य=लकड़ी की वीणा। नीरव=शांत। हिमगिरि=बर्फीले पर्वत, हिमालय। एकालाप=अकेले-अकेले गाना, आन्तरिक गान।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्यांश कवि अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'आँगन के पार द्वार' में संकलित उनकी सबसे लम्बी कविता 'असाध्य-वीणा' से उद्ध त की गई है।

केशकम्बली वीणा पर झुककर अपनी मनःप्रक्रिया में जिस मौन सत्य से साक्षात्कार करने, गायन करने के लिए निरत था, कवि उसी का वर्णन करता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि राजसभा में उत्तेजना-पूर्ण सन्नाटे में प्रियंवद मौन भाव से वीणा साधने की चेष्टा कर रहा था।

वह वीणा को साधने के साथ-साथ अपने को भी खोजने की कोशिश कर रहा था। उस गहरे निविड में अर्थात् अन्तर्मन में व्याप्त अंधकार में स्वयं को उस किरीटी तरू को समर्पित कर रहा था। कवि कहता है कि इस प्रियंवद के अतिरिक्त और कौन है जो उस मन्त्रपूत कारू से निर्मित वीणा को बजाने का साहस कर पाता अर्थात् वीणा के प्रति समर्पित होने की शक्ति और किसी में नहीं थी। इस वीणा को कौन बजा सकता था यह तो वज्रकीर्ति के पूरे जीवन की साधना का प्रतिफलन थी। कवि कहता है कि इस वीणा को बजाने की कोशिश में केशकम्बली यह भी भूल गया था कि वह राजसभा में बैठा है। वह तो कम्बल पर मन्त्रपूत बैठा अकेलेपन में निमग्न हो गया था। जिसमें उसकी मन की आँखों के सामने वही किरीटी-तरू जीवित हो उठा था जिससे वज्रकीर्ति ने इसको बनाया था। केशकम्बली को उस व क्ष की जड़ें नागराज वासुकि के कणों पर टिकी अनुभूत हो रही थी। उसके कंधों पर बादल सोते हुए दिखाई दे रहे थे। उस व क्ष के कानों में हिमगिरि ने जो रहस्य शब्द सुनाए थे वह कवि को सुनते से अनुभव हो रहे थे। उसी किरीटी तरू को सम्बोधित करते हुए प्रियंवद मौन एकालाप करने लगा।

विशेष

1. साधक की समर्पणता, तन्मयता का वर्णन किया गया है।
2. कला-स ष्टा का श्रद्धा-समर्पण भाव व्यंजित हुआ है।
3. छेकानुप्रास अलंकार है।
4. भाषिक संरचना में कवि ने तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग किया है।

"नहीं, नहीं!
वीणा यह मेरी गोद रही है, रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूँ,
ओ तरू-तात! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक में डूब जाय :
मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकूँ
तेरे अनुभव का एक-एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय-
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

शब्दार्थः मोद-भरा=प्रसन्न। तरू-तात=आदरणीय। किलक=किलकारी। पुलक=रोमांच, प्रसन्नता। गुनूँ=विचार करूँ। आँकूँ=अंकित करूँ। अन्तःस्वर=आन्तरिक रहस्य। दोलन=झूला। तन्मय=तल्लीन। रीते=खाली। विश्रान्ति=आराम।

प्रसंगः राजा साधक केशकम्बली को वीणा के निर्माण की सुनी-सुनाई कहानी सुनाता है।

व्याख्याः प्रियंवद गोद में वीणा को रखकर उसके तारों पर समर्पण-भाव से सिर रखता हुआ अन्तःसत्य को मौन मुखर करता हुआ कहता है कि हे पिता के समान आदरणीय किरीटी व क्ष मुझे संभाल ले। बेशक, यह वीणा मेरी गोद में रखी है, रखी रहे पर मैं स्वयं ही तेरी गोद में प्रसन्न शिशु-सा बैठा हूँ अर्थात् सत्य-शोध के क्षेत्र में मेरी या प्रत्येक कलाकार की स्थिति एक बालक के समान ही होती है। मेरी इच्छा है कि मेरे संगीत की प्रत्येक किलकारी तुझे प्रसन्नता से भर दे। मैं तेरे अन्तर्मन के एक-एक रहस्य को, तेरे एक-एक अनुभव को सुनकर उन पर चिन्तन मनन करूँ और आश्चर्यचकित होकर उन्हें अंकित करूँ। तेरे अन्तर्मन के झूले पर मैं पूरी तन्मयता से झूलता रहूँ और तेरी गाई जाने वाली प्रत्येक लोरियाँ पर प्रसन्न होता रहूँ। मेरी इच्छा है कि तेरी प्रत्येक लय पर मेरी साँसें भरती, पुरती, रिक्त होकर शान्ति पाती रहें अर्थात् मैं तेरी प्रत्येक लय के साथ

तादात्म्य कर लूँ।

विशेष

1. प्रियंवद किरीटी तरू के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहता है।
2. प्रियंवद ने अपने को शिशुवत कहकर सत्य-संधान के क्षेत्र में कलाकार के स्थान की ओर संकेत किया है।
3. अंतिम पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार है।
4. भाषा सहज, सरल, प्रवाहमयी एवं कथ्य के अनुकूल है।

"गा तू!
यह वीणा रखी है : तेरा अंग-अपंग!
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस-विद्,
तू गाः
तेरे अँधियारे अन्तस् में आलोक जगा
स्म ति का
श्रुति का-
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा!
"हाँ मुझे स्मरण हैः
बदली-कौंध-पत्तियों पर वर्षा-बूदों की पटपट।
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुँक।
शिलाओं को दुलारते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद।
कुहरे में छन कर आती
पर्वती गाँव के उत्सव ढोलक की थाप।
गड़रिये की अनमनी बाँसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुँघनी की आतुर फुरकनः
ओस-बूँद की ढरकर-इतनी कोमल, तरल,
कि झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गयी।

शब्दार्थः अपंग=चलने फिरने से लाचार। अंगी=मूल शरीर, आधार। अक्षत=क्षतिहीन, शाश्वत। आत्म-भरित=अपने आप में भरा-पूरा। रसविद्=रसज्ञ। अन्तस्=हृदय। आलोक=प्रकाश। श्रुति=वेद। कौंध=बिजली की चमक। खग-शावक=पक्षियों के बच्चे। द्रुत=तेज। लहरीले=लहराते। कल-निनाद=मधुर स्वर। कुहरा=धुन्ध। पर्वती=पहाड़ी। कठफोड़ा=लम्बी चोंच वाला एक पक्षी, जो काठ को भी छेद देता है। ठेका=तबले की थाप, ताल। फुलसुंघनी=तितली। आतुर=बैचेन। फुरकन=फुदकना।

प्रसंगः राजा साधक केशकम्बली को वीणा के निर्माण की सुनी-सुनाई कहानी सुनाता है।

व्याख्याः प्रियंवद किरीटी तरू से अनुरोध करता हुआ कहता है कि तू गा। यह वीणा तेरे ही सम्मुख रखी है। यह वीणा तेरा ही अंग है। इस वीणा की तरह तू महान् है क्योंकि यह वीणा ही तेरे शरीर का एक अंग मात्र ही है। तू शाश्वत है, अविनाशी है। अतः तू इसमें अपनी महान् आत्मा को भर दे। तू रस का ज्ञाता है। मेरे अंधकार ग्रस्त हृदय में प्रकाश की किरणें फैला दे। तू स्म ति के अर्थात् श्रुति सम्मत गीतों को गा-गाकर मेरे मन को प्रकाशित कर दे।

मुझे याद है कि जब बादलों में बिजली कौंधती थी। वर्षा होने पर तेरे पत्तों पर बूंदे टपाटप पड़ा करती थी। घनी अंधकार पूर्ण रात्रि में महुए के पेड़ से उसकी बूंदे टपाटप प थ्वी पर चुपचाप पड़ा करती थी जिससे उस पर रहने वाले पक्षियों के बच्चे

चिहुँककर चौंककर देखा करते थे। वन सघनता में तीव्र गति से प्रवाहित होते हुए प्रक ति-पुत्र कण-कण निनाद करते हुए प्रवाह में बाधक बनने वाले आसपास के शिला खण्डों को धारा करों से दुलरा देना आदि मुझे सब याद है अर्थात् जल कल-कल की ध्वनि निःस त करता हुआ बहा करता था। पर्वत पर स्थित गाँव में उत्सव होने पर जो ढोलक बजती थी उसकी ताल-लय याद है। जंगल में अनमाने ढंग से गड़रिया बाँसुरी बजाकर उसकी ध्वनि को वहाँ के वातावरण में फैला देता था। कठफोड़ की कठ-कठ की ध्वनि ऐसी लगती थी मानो उस संगीतमय वातावरण में ताल देता है। फुलचुही चिड़ियाँ फुदकती हुई ऐसी लगती थी मानो वह न त्य कर रही हों। पत्तों पर पड़ी ओस की बूंदे इतनी तरल है कि प्रातःकाल जब वे ढुलकती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वे झरते-झरते हरसिंगार का फूल ही बन गई हो। जैसे हरसिंगार का फूल झड़ते-झड़ते मन को मुग्ध कर लेता है वैसे ही पत्तों से गिरती ओस की बूंदे मन को मुग्ध कर लेती हैं।

विशेष

1. 'तू गा, तू गा, तू गा, तू गा' पंक्ति कवि के भावोन्माद के क्षणों को व्यक्त करती है।
2. बूंदों की टपटप, महुए का टपकना, झरने का कल-कल करते हुए बहना, ढोलक की थाप, गड़रिए की बाँसुरी की आवाज, कठफोड़े की ठक ठक की आवाज, आदि द श्य-चित्रों से संगीतमय एवं न त्यमय वातावरण का चित्रण किया है।
3. झरते-झरते में पुनरूक्ति; 'झरते-झरते मानो हरसिंगार का फूल बन गयी' में उत्प्रेक्षा, 'महुए का टपकना', 'ओस की बूंद की ढरकन' में मानवीकरण अलंकार है।
4. देशज शब्दों के प्रयोग से प्रक ति का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।
5. संगीतात्मकता है।
6. मुक्त छंद होते हुए भी लय नहीं है।

"हाँ, मुझे स्मरण है:
दूर पहाड़ों-से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानो चिंघाड़ रहा हो यूथ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की।
रेतीले कगार का गिरना छप्-छड़ाप।
झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूट कर गिरना।
ओले की कर्री चपत।
जमे पाले-से तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घाम में धीरे-धीरे रिसना।
हिम-तुषार के फाहे धरती के घावों को सहलाते चुपचाप।
घाटियों में भरती।
गिरती चट्टानों की गूँज-
काँपती मन्द गूँज-अनुगूँज-साँस खोयी-सी,
धीरे-धीरे नीरव!

शब्दार्थः यूथ=समूह, झुण्ड। बहिया=बाढ़। कगार=किनारा। झंझा=आंधी। तप्त=गर्म। कर्री चपत=करारी चपेट। कटारी-सी=छुरी के समान। ऐंठी=सूख कर अकड़ी। हिम-तुषार=बर्फीला-पाला। अनुगूँज=प्रतिध्वनि। नीरव=मौन-चुपचाप।

प्रसंगः राजा साधक केशकम्बली को वीणा के निर्माण की सुनी-सुनाई कहानी सुनाता है।

व्याख्याः प्रियंवद कहता है कि मुझे याद है दूरवर्ती पर्वतों पर हाथियों के चिंघाड़ते हुए झुण्ड के समान बादल। बाढ़ की क्रमशः बढ़ती जाने वाली घरघराहट, नदी के किनारों का छप-छड़ाप की ध्वनि करता हुआ जल में गिर पड़ना, आंधी के झोंको से पेड़ों का टूटकर गिरना, ओलों की मार आदि। सर्दी में पाला जम जाने के कारण सूखी घास का कटारी के समान तिड़क कर टूटना, घास के प्रभाव से सूख कर ऐंठी मिट्टी का धीरे-धीरे रिसना, बर्फ के गिरने के साथ ही बर्फ के फाहो का मानो धरती

के घावों को चुपचाप सहलाना, चट्टानों के गिरने की आवाज से घाटियाँ भर जाना, वह कांपती-सी आवाज धीमी गूँज और प्रतिगूँज के साथ ही साथ लुप्त हो जाती थी और अन्त में साँस में खोकर धीरे-धीरे बिल्कुल ही शांत हो जाना आदि सब याद है।

विशेष

1. प्रक ति के शुद्ध आलम्बन रूप का चित्रण है। इसीलिए प्रक ति के कोमल और कठोर दोनों ही रूपों का वर्णन है।
2. आँचलिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे-घरघराती, बहिया, छप-छड़ाप, अररा कर, कर्री, धम-धड़ाम।
3. 'हाथियों का मानो चिंघाड़ रहा हो यूथ' में उत्प्रेक्षा, 'कटारी-सी सूखी घासों' में उपमा, 'धीरे-धीरे' में वीप्सा 'हिम-तुषार की धारे' में रूपक और 'घावों को सहलाने' में मानवीकरण अलंकार है।
4. स्प श्य बिम्ब है।

"मैं नहीं, नहीं! मैं कहीं नहीं!
ओ रे तरू! ओ वन!
ओ स्वर-सँभार!
नाद-मय संस ति!
ओ रस-प्लावन!
मुझे क्षमा कर-भूल अकिंचनता को मेरी-
मुझे ओट दे-ढँक ले-छा ले-
ओ शरण्य!
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले!
आ, मुझे भुला,
तू उतर वीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा-
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले म गों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपने छायातप, व ष्टि-पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छन्दयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे!
तू गा, तू गा-
तू सन्निधि पा-तू खो
तू आ-तू हो-तू गा! तू गा!"

शब्दार्थः स्वर सम्भार=स्वरों को सम्बल देने वाला। नादमय=स्वरमय। संस ति=स ष्टि। रसप्लावन=रसिकता की बाढ़, रस का प्रवाह। अकिंचनता=तुच्छता। ओट=आश्रय। शरण्य=शरण प्रदान करने वाला। खग-कुल=पक्षी समाज। म गों की चौकड़ियों=हिरणों की छलाँगें। छायातप=छाया और धूप। व ष्टि=वर्षा। पल्लव-कुसुमन=फूल-पत्ते खिलना। छन्दयुक्त=गीतमय। प्रज्ञा=कला-प्रतिभा। सन्निधि=सामीप्य।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्यांश कवि अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' से उद्ध त है।

प्रियंवद विगत द श्यों की स्म ति से चकित और विजड़ित हो जाता है। वह कहता है कि मुझको प्रत्येक स्वर लहरी मुझसे सोख लेती है और मैं स्वर-युक्त होकर वायु-सा उड़ता रहता हूँ। मैं तो अपने को विस्म त कर शब्द में लीयमान हो गया हूँ। इससे आगे केशकम्बली क्या कहता है उसी का वर्णन कवि इस पद में कर रहा है।

व्याख्याः प्रियंवद स्वयं को किरीटी-तरू को समर्पित करता हुआ कहता है कि मैं कहीं नहीं हूँ। मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। हे तरू और हे जंगल यह स्पष्ट है मेरी स्थिति, मेरा अस्तित्व कहीं नहीं है। हे तरू तुम्हीं स्वरों को संभालने वाले हो। तुम्हीं

नादमय स ष्टि हो। तुम्हीं संगीत में रस की बाढ़ ला सकते हो। अतः हे तरू! मेरी तुच्छता को, अकिंचनता को भूल जाओ और मुझे क्षमा कर दो। मुझे अपनी ओट में ले लो, मुझे ढक लो, मुझ पर छा जाओ। तुम मुझे शरण देने में समर्थ हो अतः मुझे शरण में ले लो ताकि तुम मेरी मूक वाणी को अपने सुप्त-स्वर सागर में डुबा सको। साधक स्वर साधन का कोई भी गोप अपने ऊपर नहीं लेता इसीलिए वह विशाल व क्ष से कहता है कि मुझे तू भुला दे और इस असाध्य वीणा के तारों में तू स्वयं ही उतर आ अर्थात् इन तारों में स्वरों को भर दे। तू इस वीणा के तारों के माध्यम से अपने आप ही कुछ गा। तू अपने आपको स्वयं ही व्यक्त कर तेरे आस-पास या तेरे ऊपर जो पक्षियों का समूह रहता है उसके स्वरों को तू स्वयं ही मुखरित कर दे। तेरी छाया में जो म ग रहते थे उन म गों की चौंकड़ियों को तू ताल में बाँध दे। अपने छाया रूपी तप, वर्षा, पवन, पत्ते, फूलों की लय पर तू अपने जीवन की संचित निधि को छंदोबद्ध करके अपनी ही बुद्धि को वाणी के द्वारा व्यक्त कर दे। हे! विशाल व क्ष जब तुम इस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति करोगे तो तुम ही वास्तव में गाओगे अतः तुम गाओ। तुम उस वातावरण का सामीप्य पाकर उसमें ही लीन हो जाओ। तुम आ जाओ। यह वीणा तुम्हारा ही अंग है। अतः इस वीणा के रूप में तुम स्वयं ही हो अतः तुम गाओ, तुम गाओ।

विशेष

1. प्रियंवद अपने अस्तित्व को पूर्ण रूप से भुलाकर किरीट-तरू को सम्पर्ण कर देता है।
2. साधक ने अपनी भावनाओं का पूर्णतः साधारणीकरण किया है।
3. शरणार्थी पर सभी क पा करते हैं यही सोचकर प्रियंवद ने स्वयं को किरीट-तरू की शरण में सौंप दिया।
4. वीणा और किरीट-तरू का वर्णन अंग-अंगी के रूप में किया है।
5. मैं नहीं......... नहीं................ में व त्यानुप्रास तथा 'तू उतर कर' में मानवीकरण अलंकार है।

राजा जागे।
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था-
काँपी थीं उँगलियाँ।
अलस अँगड़ाई ले कर मानो जाग उठी थी वीणाः
किलक उठे थे स्वर-शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे धीरे धीरे
डाल रहा था जाल हेम-तारों का।

शब्दार्थः समाधिस्थ=समाधि में लीन। अलस=मस्ती या खुमारी भरी। किलक=किलकारी मार कर हंसना। स्वर-शिशु=धीमा स्वर। नीरव पद=दबे पाँव। जालिक=इन्द्रजालिक, जादूगर। मायावी=मायापूर्ण, रहस्यमय। सधे करो से=निपुण हाथों से। हेम-तारों=सुनहरी किरणों का।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः राजा जाग उठे अर्थात् राजा की एकाग्रता भंग हो गई क्योंकि उसने देखा था कि समाधि में लीन प्रियंवद का हाथ सहसा उठ गया था और उसकी उँगलियाँ वीणा को बजाने के लिए थिरकने लगी थी। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मानो वीणा अँगड़ाई लेती हुई जाग उठी। स्वर-रूपी शिशु किलकारी भर रहे हैं। शान्त भाव से कदम रखता हुआ जालिक मायावी प्रियंवद सधे हुए हाथों से धीरे-धीरे वीणा के तारों को झनझना रहा था।

विशेष

1. आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है।
2. 'मानो जाग उठी थी वीणा' में उत्प्रेक्षा और मानवीकरण अलंकार है।
3. स्वर-शिशु में रूपक अलंकार है।
4. धीरे-धीरे-धीरे में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।

सहसा वीणा झनझना उठी
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघलती ज्वाला-सी झलक गयी-
रोमांच एक बिजली-सा सब के तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिस में सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।
डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।
राजा ने अलग सुना :
जय देवी यशःकाय
वरमाला लिये
गाती थी मंगल-गीत,
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राजमुकुट सहसा हल्का हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का।
ईर्ष्या, महद्‌कांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े-से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन।
धर्म-भाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

शब्दार्थः स्वयम्भूः=स्वतः स्फूर्त, ईश्वरवत्, स्व-जन्मा। अशेष प्रभामय=सम्पूर्ण ज्योतिर्मय, कान्तिमय। तिरे=तेरे। यशः काम=यशस्विनी। महद्‌कांक्षा=महत्त्वाकांक्षा। चाटुता=चाटुकारिता, खुशामद। कांचन=सोना।

प्रसंगः प्रस्तुत अवतरण कवि अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' नामक कविता से उद्ध त है।

केशकम्बली ने तल्लीन होकर अपनी सधी हुई ऊँगलियों से असाध्य वीणा से स्वर-संधान कर राजा-प्रजा अर्थात् सभी उपस्थित गण को चकित कर दिया। सभी पर इस संगीत का प्रभाव पड़ा। कवि यहाँ इसी का वर्णन कर रहा है।

व्याख्याः अचानक वीणा के तार झनझना उठे। वीणा-वादन में तल्लीन प्रियंवद की आँखों में शीतल पिघली हुई ज्वाला-सी झलकने लगी। सभा में उपस्थित सभी सदस्य प्रसन्न हो गए और उनके शरीर में बिजली की धारा-सी दौड़ गयी। इस असाध्य-वीणा के तारों से स्वतः ही संगीत निःस त होने लगा जिसमें पूर्ण प्रकाशमय ब्रह्मा का अखण्ड मौन व्याप्त रहा करता है। संगीत की इन स्वर लहरियों में सभी सभासद डूबे हुए थे और सभी प थक्-प थक् अनुभव कर उसके पार जाने लगे। राजा ने भी इसको सुना और इसका प थक् अनुभव किया। उनकी अनुभूति है कि यशस्विनी विजय-देवी स्व कर में वरमाला लेकर मंगल गीत गा रही है और कहीं दूरी पर विजय-दुन्दुभि निनादित हो रही है। राजा को अनुभव हुआ कि उनके मस्तक पर विराजमान राजमुकुट का भार सहसा ही ऐसा हल्का हो गया जैसे वह शिरीज का फूल हो। कवि का अभिप्राय है कि संगीत के स्वरों के प्रभाव के सामने राजपाट महत्त्वहीन हो कर रह गया था। राजा के अन्दर राजत्त्व के कारण जो दंभ, ईर्ष्या-द्वेष, महत्त्वकांक्षा, चाटुकारिता के प्रभाव आदि जो कुछ भी थे, वह सब स्वर-संगीत के अखण्ड प्रभाव से रूई के पुराने लुगड़े के समान झड़ गए अर्थात् नष्ट हो गए थे। उसकी जीवन और चेतना में तपे सोने की भाँति निषार आ गया था। वह सोचने लगा कि वह अपने निखरे जीवन को ही मानवता के धार्मिक भावन पर कर्त्तव्य भावना से न्यौछावर कर देगा।

विशेष

1. संगीत के अलौकिक प्रभाव का वर्णन है।
2. 'सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे' में कवि कहना चाहता है कि कला से प्राप्त अनुभूतियाँ और प्रतिक्रियाएँ सब व्यक्तियों की अलग-अलग हुआ करती हैं।

3. 'पिघलती ज्वाला-सी झलक गई' - उपमा अलंकार।
4. 'बिजली-सा' - उपमा अलंकार।
5. 'जीवन-कांचन' - रूपक अलंकार।

रानी ने अलग सुनाः
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी-
तुम्हारे ये मणि-माणक, कंठहार, पट वस्त्र,
मेखला-किंकिणि-
सब अन्धकार के कण हैं ये। आलोक एक है
प्यार अनन्य! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को
थिरक उसी की छाती पर, उस में छिप कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।

शब्दार्थः कौंध=बिजली की चमक। मणि-माणिक=रत्न। पट-वस्त्र=रेशमी वस्त्र। मेखला-किंकिणि = तगड़ी की घुंघरिया। अनन्य=एकान्त, एक ही के प्रति समर्पित। विद्युल्लता=बिजली की रेखा रूपी लता। रस भार=सरसता से सम्पन्न। मेघ=बादल। आश्वस्त=निश्चिन्त। सहज=सरल, स्वाभाविक। साधेगी=साधना करेगी।

प्रसंगः प्रस्तुत अवतरण कवि अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' नामक कविता से उद्ध त है।

व्याख्याः उस असाध्य वीणा से मुखरित होने वाले महान स्वर संगीत की रानी को अलग अनुभूति हुई। उसे लगा कि मानो छँटती हुई बदली में कौंधती हुई बिजली उसे यह संदेश दे रही है कि तुम्हारे ये मणि-मणिक्य, ग्रीवाहार, रेशमी वस्त्र, कधेनी, पायजेब आदि सभी सौन्दर्य बढ़ाने के साधन अंधकार अर्थात् अज्ञान के कण मात्र हैं। जहाँ तक प्रकाश का प्रश्न है, वह मात्र एक ही है और वह है - उस अनन्त ब्रह्म के प्रति प्यार का अनन्य भाव। आनन्द रूपी बादलों में उस ब्रह्म की छटा ही कौंधनी वाली बिजली की लता बनकर खिलती रहा करती है। उसी के मेघवत् स्वरूप से समस्त रसों की स ष्टि एवं व ष्टि हुआ करती है। उस अनन्त के सीने पर थिरककर वह रस-आनन्द की विद्युत छटा अन्त में उसी में ही समा जाया करती है। संगीत की स्वर-लहरी से सहसा मिलने वाले इस सन्देश ने रानी को आश्वस्त किया। रानी ने अपने हृदय से यह निश्चय कर लिया कि मैं उस अनन्त ब्रह्म के इसी आनन्दमय प्रेम की साधना करने की चेष्टा करूँगी और अपने जीवन को उसके प्रति समर्पित करूँगी।

विशेष

1. कवि कहना चाहता है कि स्वतः स्फूर्त आनन्द जागतिक न होकर अलौकिक ही होता है।
2. 'विद्युल्लता' पद में रूपक अलंकार है।

सब ने भी अलग-अलग संगीत सुना।
इसको
वह क पा-वाक्य था प्रभुओं का-
उसको
आतंक-मुक्ति का आश्वासन :
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक-
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद।
किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।

किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल फँसी मछली की तड़पन-
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल, ग्राहकों की आस्पर्धा-भरी बोलियाँ
चौथे को मन्दिर की तालयुक्त घंटा-ध्वनि,
और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छठे को लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की अविराम थपक।
बटिया पर चमरौंधे की रूँधी चाप सातवें के लिए-
और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुलछुल।
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुँघरू की-
उसे युद्ध का ढोल :
इसे संझा गोधूली की लघु टुन-टुन-
उसे प्रलय का डमरू-नाद।
इसको जीवन की पहली अँगड़ाई
पर उसको महाज म्भ विकराल काल!

शब्दार्थः आतंक-मुक्ति=भय से छुटकारा। बटुली=भड़ौली। खुदबुद=खुशुब, स्वर। सौंधी=भटकती। पायल-ध्वनि=पायजेब का स्वर। अपर=अन्य, दूसरा। चहक=चहचहाने का स्वर। म त्यु=स्वच्छन्द। ठेलमठेल=भीड़-भाड़। अपर=दूसरा। आस्पर्धा=बहस। तालयुक्त=स्वर लय से भरी। अविराम=लगातार। बटिया=पगडण्डी। चमरौंधे=चमड़े के जूते। रूँधी चाप=रूखी आवाज। गमक=तान। नट्टिन=नटिनी। संझा-गोधुली=साँझ को लौटते, धूल उड़ाते पशु। नाद=स्वर। महाज म्भ=बहुत बड़ी जम्हाई। विकराल काल=भयानक काल।

प्रसंगः प्रस्तुत अवतरण कवि अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' नामक कविता से उद्‌ध त है।

व्याख्याः प्रियंवद ने असाध्य वीणा से जो संगीत मुखरित किया। उसे राजा-रानी के अतिरिक्त वहाँ उपस्थित जन-समुदाय ने भी सुना। सभी ने उसे प थक्-प थक् अनुभव किया। किसी को वह प्रभु का क पा वाक्य-सा प्रतीत हुआ, किसी को जीवन के सभी प्रकार के आतंकों से छुटकारा दिला पाने में समर्थ प्रतीत हुआ और धनलोभी को वह तिजोरी में भरे धन की खनक-सा सुनता प्रतीत हुआ, सामान्य किसान जन को वह भड़ोली में बहुत दिनों बाद भरे जा रहे अन्न के दानों के स्वर-सा मधुर, आतहादक प्रतीत हुआ और किसी को वह नवोढ़ा के पायजेबों के घुंघरूओं की आवाज के समान मधुर-आकर्षक प्रतीत हुआ तो किसी को वह नवजात शिशु की किलकारी के समान और किसी को जाल में फँसी मच्छली की सी तड़पन-सा प्रतीत हुआ अर्थात् एक नई जिजीविषा का अनुभव किया, किसी को वह मुक्त आकाश में मुक्त भाव से उड़कर चहचहाते पक्षियों के स्वर-संगीत का सा प्रतीत हुआ। किसी को वह मण्डियों की भीड़-भाड़ में ग्राहकों की बढ़-चढ़कर दी जा रही बोलियों के समान-सा प्रतीत हुआ तो किसी को मन्दिरों में आरती के समय बजने वाली घंटियों की ध्वनियों के समान प्रतीत हुआ और किसी को वह संगीत घन पर रखे लोहे पर हथौड़े की करारी चोट पड़ रही ध्वनि-सा प्रतीत हुआ, किसी को वह लंगर से बंध ी नौका पर पड़ने वाली लहरों की थाप के समान प्रतीत हुआ, किसी को वह संगीत नया चमड़े का जूता पहने पगडण्डी पर चल रहे व्यक्ति की पगचाप की ध्वनि-सा प्रतीत हुआ तो किसी को वह संगीत झोपड़ी को बरसात के पानी से बचाने के लिए बनाई गई मेड़ के कट-टूट जाने के बाद छलछलाकर भीतर आते पानी के स्वर के समान प्रतीत हुआ।

इस प्रकार किसी ने तो वह संगीत नटिनी के घुँघरूओं वाली ऐड़ियों की ध्वनि-सा ग्रहण किया तो किसी को युद्ध के लिए बज रहे ढोल जैसा सुनाई दिया। किसी को वह संगीत शाम के समय धूल उड़ाते गाँव की ओर लौट रहे पशुओं के गले में बंधी घण्टियों की टुनटुनाहट-सी प्रतीत हुआ। किसी को वह प्रलय के लिए ताण्डव न त्य कर रहे शिव के डमरू की आवाज के समान सुनाई दिया तो किसी को सुनकर यह अनुभव हुआ कि उसका जीवन सुख-संगीत की प्रथम मस्त अँगड़ाई ले रहा है अर्थात् नए जीवन का आरम्भ कर रहा है और किसी को वह महाकाल की भयानक जम्भाई अर्थात् जीवन के अन्त-सा अनुभव हुआ। कहने का तात्पर्य है कि जिसकी जैसी मनोव त्ति थी, उसको संगीत की वैसी ही अनुभूति हुई।

विशेष

1. कवि ने संगीत के प्रभाव से जो कहना चाहा है वह तुलसी पहले भी कह चुका था-

   'जाकी रही भावना जैसी, प्रभू मूरित देखी तिन तैसी।'

2. असाध्य वीणा का व्यक्ति की अपनी मनोव त्ति के अनुकूल अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।
3. मालोपमा और उल्लेख अलंकार है।
4. संगीत और कला के अकाट्य प्रभाव का चित्रण है।

सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे-
हो रहे वंशवद, स्तब्धः
इयत्ता सब की अलग-अलग जागी,
सन्धीत हुई,
पा गयी विलग।
वीणा फिर मूक हो गयी।
"साधु! साधु!"
राजा सिंहासन से उतरे-
रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
जनता विह्वल कह उठी, "धन्य!
हे स्वरजित्! धन्य! धन्य! धन्य!"

शब्दार्थः तिरे=तैरे। झिपे=झपकियाँ लीं; झिझके। वंशवद=वशीभूत, वश में होकर। स्तब्ध=शान्त, जड़वत्। इयत्ता=अस्तित्व। संधीत=समन्वित। मूक्=मौन। साधु! साधु!=धन्य-धन्य। सतलड़ी माल=रत्नों की सात लड़ियों वाली माला। विह्वल=विभोर। स्वरजित्=संगीत-स्वरों के विजेता।

प्रसंगः वीणा के संगीत के समन्वित प्रभाव, प्रतिक्रिया और अन्त में उसकी मुखरता के मौन हो जाने का वर्णन करते हुए कवि अज्ञेय कहते हैं-

व्याख्याः प्रस्तुत सभी सभासद महान-संगीत साधक प्रियंवद द्वारा असाध्य वीणा वादन की स्वर लहरी में सभी तल्लीन-विभोर हो गए। सभी अपनी भावनाओं के किनारे तक तैरकर पहुँच गए। सभी ने अपनी अनुभव क्षमता से जीवन सार को पा लिया। कुछ ने आत्म विभोर हो झपकियाँ ली तो कुछ इस संगीत-कला के प्रभाव से जाग उठे। सभी सभासद वीणा के मधुर एवं विराट संगीत के वशीभूत होकर शान्त जड़ हो गए। परन्तु सभी का अस्तित्व उनकी स्थिति के अनुरूप बना रहा लेकिन उस महान् संगीत ने सभी की चेतना को समन्वित प्रवाहित कर दिया था। समन्वित प्रभावित होते हुए भी सभी ने प थक्-प थक् अनुभव किया था।

सभी एक स्वर में धन्य-धन्य! वाह-वाह कह उठे। राजा अपना राज सिंहासन छोड़ संगीतकार के पास आ गए। रानी ने अपनी रत्न-विजड़ित सात लड़ियों वाली माला अपने गले से उतारकर संगीतकार को समर्पित कर दी। सभी सभासद भाव-विभोर हो धन्य-धन्य कह उठे। सभी ने कहा-हे स्वर को जीतने वाले, वीणा को साधने वाले तुम धन्य हो, तुम्हारी कला धन्य है, तुम महान् हो।

विशेष

1. कवि का अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन व्यक्त हुआ है।
2. 'साधु साधु' से निराला क त 'राम की शक्ति पूजा' कविता की याद आती है। वहाँ साधक राम है। यहाँ साधक संगीतकार हैं। वहाँ राम की जीत होती है। यहाँ संगीतकार केशकम्बली की जीत होती है। तुलना के लिए देखिए-

   "साधु, साधु साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम
   कह लिया भगवती ने राघव का हस्तथाम।"

संगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक-मानो
गोदी में सोये शिशु को पालने डाल कर मुग्धा माँ
हट जाये, दीठ से दुलराती-
उठ खड़ा हुआ।
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला :
"श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में-
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब-कुछ को सौंप दिया था।
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब-कुछ की तथता थी-
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय,
जो शब्दहीन
सब में गाता है।"

नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली। लेकर कम्बल
गेह-गुफा को चला गया।
उठ गयी सभा। सब अपने-अपने काम लगे।

युग पलट गया।

प्रिय पाठक! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई।

शब्दार्थः इयत्ता=अस्तित्व। मुग्धा=मोहित। आवर्जन=निषेध। श्रेय=यश। तथता=सत्यता, स्वरमयता। अविभाज्य=अखण्ड्य। अनाप्त=नाप हीन, अमाप। अद्रवित=द्रवणशीलता से विरहित। अप्रमेय=अनुमान विरहित। गेह-गुफा=गुफा के घर।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर अज्ञेय विरचित 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' से उद्ध त की गई है। कवि कविता का समापन करते हुए कहना चाहता है कि सब में व्याप्त स्वरित सत्य वीणा के स्वरों से मुखरित हो गया है।

व्याख्याः संगीतकार प्रियंवद केशकम्बली गुफा गेह ने अपनी गोद में रखी वीणा को एक ओर धीरे से रखकर, ढककर, उसे ऐसे देखा मानो कोई माँ गोदी में सोए बच्चे को पालने में सुलाकर उसकी ओर मुग्ध द ष्टि से देखती खड़ी रहती है। वह पुरस्कार देने हेतु, बढ़े राजा के हाथ को रोकते हुए कहने लगा कि हे राजा इसका मुझे कुछ भी यश नहीं मिलना चाहिए। मैं तो अपने को असमर्थ मानकर शून्य में डूब गया था और वीणा के माध्यम से मैंने अपना सर्वस्व शून्य को समर्पित कर दिया था। इस वीणा के माध्यम से आपने जो कुछ भी सुना है वह न मेरा था न वीणा का था वह तो महाशून्य, महामौन की देन थी जो स्वयं में अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवणशील और अनुमान से परे है, जो शब्दहीन होकर भी सभी में गाता है।

यह कहते हुए केशकम्बली ने अपना कम्बल उठाया और अपनी गुफा की ओर चल दिया। सभी सभासद उठकर चल पड़े। ऐसा प्रतीत होता था मानो युग परिवर्तन हो गया है।

इसके उपरान्त कवि कहता है कि प्रिय पाठकों मेरी सरस्वती वाणी मौन हो गई है अर्थात् मैंने इस कविता में जो कहना था वह कह दिया है।

विशेष

1. कवि का उद्देश्य स्पष्ट है कि एक ही अनन्त सत्य है उसी का संपूर्ण जीवन एवं प्रक ति में स्वर मुखर है, सभी उसका प थक्-प थक् अनुभव करते हैं और वह सभी को अपनी नितान्त निजी अनुभूति प्रदान कर जाता है।
2. कविता की उद्देश्यपरक पंक्तियाँ हैं-

   "वह तो वह सब की तथता थी-
   महाशून्य
   अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
   जो शब्दहीन
   सब में गाता है।"
3. अनुप्रास, उत्प्रेक्षा एवं उल्लेख अलंकार की नियोजना की गई है।
4. भाषिक संरचना में तत्सम, तद्भव शब्दों के सुन्दर नियोजना हुई है।

अध्याय-3
बावरा अहेरी

'बावरा अहेरी' कविता अज्ञेय के काव्य संकलन 'बावरा अहेरी' में संकलित है। जिसका प्रकाशन 1957 में हुआ था। इस संकलन की सभी कविताएँ प्रक ति समन्वयी हैं। कवि ने कहीं तो प्रक ति के रस और उल्लास को अपने भीतर भरना चाहा है तो कहीं प्रक ति कवि के संवेदनों का अंग बनकर आई है। 'बावरा अहेरी' कविता प्रातःकाल के सौन्दर्य के वर्णन से सम्बन्धित है। कवि ने उषाकाल को बावरा अहेरी अर्थात् पागल शिकारी बताया है।

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ
छोटी-छोटी चिड़ियाँ
मँझोले परेवे
बड़े-बड़े पंखी
डैनों वाले, डील वाले
डौल के बेडौल
उड़ने जहाज
कलस-तिसूल वाले मन्दिर-शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चपटी गोल घुस्सों वाली
उपयोग-सुन्दरी
बेपनाह काया को :
गोधूली की धूल की, मोटरों के धुएँ को भी
पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक-खची तन्वि
रूपरेखा को
और दूर कचरा जलाने वाली कल की उद्दंड चिमनियों को, जो
धुँआँ यों उगलती हैं, मानो उसी मात्र से अहेरी को हरा देंगी।

शब्दार्थः बावरा अहेरी=पागल शिकारी, यहाँ सूर्य को कहा गया है। कनियाँ=दाने। मँझोले परेवे=मध्यम आकार का तेज उड़ने वाला कबूतर। कलस-तिसूल=मन्दिर पर लगने वाला कलश और त्रिशूल। धूस्सो वाली=कम्बल धारण करने वाली। पुष्पिताग्र=जिसके अग्रभाग फूलों से लदे हों। कणिकार=कन्नेर। आलोक-खची=प्रकाश से युक्त। तन्वी=पतली। उद्दण्ड=उच्छ ंखल।

प्रसंगः प्रस्तुत अवतरण कविवर अज्ञेय विरचित 'बावरा अहेरी' काव्य संकलन में संकलित 'बावरा अहेरी' कविता से अवतरित है। इसमें कवि सूर्य के व्यापक प्रकाश का चित्रण करता है। उनका कहना है कि सूर्य जड़ एवं चेतन दोनों को ही आलोकित करता है।

व्याख्याः प्रातःकाल का पागल शिकारी सूर्य लाल-लाल किरणों रूपी दानों को बिखेरकर सभी को जाल में पहले तो फँसा लेता है। फिर शिकारी की ही तरह अपने जाल को खीचता है तो सभी को उसमें बाँध लेता है। वह छोटी-छोटी चिड़ियाँ, मध्यम

आकार के पक्षी, बड़े आकार के पक्षी, आकाश में उड़ने वाले वायुयान, कलश और त्रिशूल लगे मन्दिर डील, डौल आकार के पक्षी, तारघर में काम करने वाली ठिगने कद की मोटी, चपटी, गोल और ऊन के कम्बल धारण करने वाली सुन्दरी, आश्रयहीन शरीर, गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल गाड़ी, मोटरों से निकला हुआ धुआँ, पार्क के किनारे, अग्रभाग अर्थात् डालियों के सिरों में पुष्पित कन्नेर के प्रकाश से निर्मित कोमल एवं सुन्दर रेखा और दूर कूड़ा-करकट जलाने वाली चिमनियाँ जो इस प्रकार धुआँ उगलती हैं, मानो धुएँ से ही अहेरी अर्थात् सूर्य को हरा देंगी। इन सबको ही सूर्य अपनी किरणों के जाल में बाँध कर खींच लेता है अर्थात् प्रक ति और यन्त्र सभ्यता दोनों ही सूर्य के आलोक से आलोकित होते हैं।

विशेष

1. कवि कहना चाहता है कि सूर्य के प्रकाश से प्रक ति एवं यन्त्र सभ्यता दोनों ही प्रकाशित होते हैं।
2. डैनों-डील, धूली, धूल, धुएँ - अनुप्रास अलंकार

   बावरा अहेरी - रूपक अलंकार

   'लाल-लाल, बड़े-बड़े, छोटी-छोटी' - पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार।

बावरे अहेरी रे
कुछ भी अवध नहीं तुझे, सब आखेट हैं :
दुबकी की छोड़कर क्या तू चला जाएगा?
ले, मैं खोल देता हूँ कपाट सारे
मेरे इस खँडहर की शिरा-शिरा छेड़ दे
आलोक की अनी से अपनी,
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे :
विफल दिनों की तू कलौंस पर मांज जा
मेरी आँख आँज जा
कि तुझे देखूँ
देखूँ, और मन में क तज्ञता उमड़ आय
पहनूँ सिरोपे-से ये कनक-तार तेरे-
बावरे अहेरी रे!

शब्दार्थः अवध=जिसका वध न हो। विवर=गुफा। कलौंस=कालिमा। ढूह=ढेर। माँज जा=साफ कर दे। आँज जा=काजल लगा जा। सिरोफा=परिधान।

प्रसंगः प्रस्तुत अवतरण कविवर अज्ञेय विरचित 'बावरा अहेरी' काव्य संकलन में संकलित 'बावरा अहेरी' कविता से अवतरित है। इसमें कवि सूर्य के व्यापक प्रकाश का चित्रण करता है। उनका कहना है कि सूर्य जड़ एवं चेतन दोनों को ही आलोकित करता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि अरे पागल शिकारी सूर्य! विश्व में ऐसा कोई नहीं है जिसका तू वध न कर सके। सब तेरे शिकार हैं। अर्थात् तू इतना शक्तिशाली है कि तू संसार के हर प्राणी को नष्ट कर सकता है। जब तू इतना शक्तिशाली है तो मेरा भी एक काम कर दे, मेरे मन की अंधेरी गुफा में जो कालिमा छिपी है उसे धो दे, नष्ट कर दे। हे! प्रकाश-पुंज सूर्य क्या तू उसे छिपी ही छोड़कर चला जाएगा? अर्थात् हे सूर्य मेरे अन्दर जो अहंभाव है, उसे नष्ट कर दे। मैं अपने हृदय के सारे दरवाजे खोल देता हूँ जिससे कि तेरा प्रकाश वहाँ तक पहुँच जाए और इसे नष्ट कर दे। मेरे खण्डहर हृदय की एक-एक नस को अपने आलोक के रश्मि-बाणों से छेद दे। मेरे अहंकार को ढहाकर ढेर बना दे। मेरे असफल दिनों के कलंक को तू धो दे। मेरी आँखों में काजल डाल दे ताकि मैं तूझे, तेरे ज्ञान को पहचान सकूं। तेरे इस उपकार के प्रति मेरे हृदय में क तज्ञता के भाव उमड़ पड़े हैं। ऐ! पागल शिकारी सूर्य मेरी इच्छा है कि मैं तेरी प्रातःकालीन स्वर्णिम किरणों को परिधान (कपड़े) समझकर पहन सकूँ। अर्थात् मैं नख से शिख तक तेरे ज्ञान से मंडित हो सकूँ।

विशेष

1. कवि ने सूर्य को ज्ञान का प्रतीक मानकर उससे प्रार्थना की है कि मेरे मन में छिपे अहंकार को नष्ट कर दे और मुझे अपने आलोक से आलोकित कर दे।
2. सूर्य ज्ञान एवं अहेरी का प्रतीक है।
3. भाषा की द ष्टि से माँज जा, आँज जा, गढ़ सारा ढाह कर ढूह भरकर दे आदि प्रयोग भावपूर्ण, प्रवाहमयी और प्रभावपूर्ण है।
4. मन-विवर, आलोक की कली = रूपक अलंकार

   शिरा-शिरा - पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार

   सिरोपे-से - उपमा अलंकार

   कनकतार - उपमा अलंकार
5. अहेरी प्रतीक है - दर्शन का

   खंडहर प्रतीक है - अन्तस् का

   अनी प्रतीक है - सूर्य किरणों का

टिप्पणी: यहाँ अज्ञेय फिट्जेराल्ड से प्रभावित दिखाई देते हैं फिट्जेराल्ड ने 'रूबाइयट ऑफ उमर खय्याम' में सूर्य के लिए 'पूर्व के अहेरी' शब्द प्रयुक्त किया है। यहाँ अज्ञेय ने भी यही प्रतीक लिया है।

अध्याय-4
मैंने देखा एक बूंद

प्रस्तुत कविता में कवि क्षणवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर एक बूंद पर पड़ती सूर्य की स्वर्णिम किरणों को देखकर क्षण-अनुभूति को अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है।

मैंने देखा
एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से-
रँगी गयी क्षण-भर
ढलते सूरज की आग से।
-मुझे को दिख गयाः
सूने विराट के सम्मुख
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से।

शब्दार्थः सहसा=अचानक। आलोक=प्रकाश। उन्मोचन=मुक्ति। नश्वर=क्षणभंगुर। विराट=परम सत्ता।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'अरी ओ करूणा प्रभामय' में संकलित 'मैंने देखा एक बूँद' से उद्ध त की गई है।

यहाँ पर कवि क्षणवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर क्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि सांध्य-कालीन बेला में मैंने देखा कि समुद्र के झागों से उछलकर सहसा एक बूँद बाहर गिरी। वह बूँद अस्त होते सूर्य की अरूणिम किरणों के प्रकाश में स्वयं भी स्वर्ण की भांति झलमला रही है। सूर्य की संध्याकालीन किरणें सुनहरी होती हैं। इसीलिए क्षण भर के लिए वह बूंद भी सुनहरे रंग की दिखाई दे रही थी। कवि उस बूंद के क्षण भर के अस्तित्व को ही उसके जीवन की चरम सार्थकता मानता हुआ कहता है कि अरूणाभ (कवि ने 'आग' शब्द का प्रयोग सूर्य की लाल किरणों के लिए किया है, क्योंकि आग का रंग भी लाल ही होता है) किरणों में अरूण हो उठने वाली उस बूंद को देखकर मेरे ह्रदय में भाव उठे कि मानव जीवन में आने वाले स्वर्णिम विशेष क्षण ही हुआ करते हैं जो उन्हें विशेष त प्ति प्रदान किया करते हैं। ऐसे क्षण मानव को नश्वरता के दाग (लांछन या कलंक) से मुक्ति दिलाकर उसके अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।

विशेष

1. लघु क्षण के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया है।
2. कविता के केन्द्र में क्षणवादी विचारधारा कार्यरत है। कवि का मानना है कि जीवन का एक सुखद क्षण शेष सारे जीवन से श्रेयस्कर है।
3. 'आग' शब्द का प्रयोग आलोक के अर्थ में साभिप्राय रूप में हुआ है।

4. यहाँ सागर अनन्त जीवन और समाज का प्रतीक है। बूँद व्यक्ति का प्रतीक है जो उसका अंग होते हुए भी अपना अलग अस्तित्व रखती है।
5. 'मैंने देखा................ आग से।' में द श्य बिम्ब है।
6. 'आग', 'दाग' जैसे शब्दों के प्रयोग से कवि की प्रयोगधर्मिता स्पष्ट दिखाई देती है।

अध्याय-5
सोन मछली

प्रस्तुत कविता अज्ञेय विरचित 'अरी ओ करुणा प्रभामय' नामक काव्य संकलन से ली गई है। इसका प्रकाशन सन् 1959 में हुआ था। यहाँ मछली मानव की जिजीविषा अर्थात् जीने की प्रबल इच्छा का प्रतीक बन कर आई है। कवि का यह अभिनव प्रतीक है।

हम निहारते रूप,
काँच के पीछे
हाँप रही है मछली।
रूप-त षा भी
(और काँच के पीछे)
है जिजीविषा।

शब्दार्थ : निहारते = देखते। रूप = सौन्दर्य। काँच के पीछे = काँच की बोतल में बंद। रूप-त ष्णा = सुन्दरता की प्यास। जिजीविषा = जीने की प्रबल इच्छा।

प्रसंग : प्रस्तुत लघु कविता 'सोन मछली' अज्ञेय विचरित 'अरी ओ करुणा प्रभामय' से अवतरित है। यहाँ कवि मछली को जिजीविषा का प्रतीक मानकर मछली की विडम्बना और मानव की जीवनेच्छा पर प्रकाश डालता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि हम काँच के बने लघु सरोवर में बंद मछलियों को जल-क्रीड़ायें करते हुए देखते हैं। हम बन्द मछलियों की तैरती तड़पन को नहीं देखते बल्कि उनके रूप सौन्दर्य को देखकर आनंदित होते हैं। इससे तो हमारी सौन्दर्य दर्शन की प्यास ही पूर्ण होती है जबकि हम उसकी जीवनेच्छा को नहीं समझते। वास्तव में बन्द मछलियाँ जल क्रीड़ाएँ नहीं कर रही होतीं, वे तो पानी का बुलबुला पीने के लिए हाँफती फिरती हैं। उनका यह तैरना, तड़पना जीवन की तलाश एवं जीवन को सुरक्षित रखने का प्रयास है अर्थात् हम उनकी सुन्दर जल क्रीड़ाओं को देखकर ही आनंदित होते रहते हैं उनकी जिजीविषा को नहीं समझ पाते। कवि का कहने का तात्पर्य है कि मानव जीवन की दशा भी यही है, उसकी जिजीविषा भी यही है।

विशेष :

1. यहाँ काँच के पीछे (बोतल, जार या लघु सरोवर) बंधनों का प्रतीक है और तैरती, हाँफती मछली जीवनेच्छा का प्रतीक है।
2. यहाँ 'निहारते' 'हाँफना' शब्दों के प्रयोग से कवि की प्रयोगधर्मी बुद्धि परिलक्षित है।
3. कवि ने अपने को राही नहीं, राहों के अन्वेषी कहा है, सत्यान्वेषी कहा है। इसीलिए यहाँ मछली जीवनेच्छा का प्रतीक बनकर आई है।
4. भाषा सहज, सरल प्रभावपूर्ण है।

अध्याय-6
सत्य तो बहुत मिले

प्रस्तुत कविता कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'इन्द्र धनु रौंदे हुये ये' (1957 ई०) में संकलित हैं। इस संकलन में कवि की चिंतनपरक कविताएँ संकलित हैं। यह कविता एक आत्म-निवेदन कविता है। यहाँ कवि प्रकृति का उपयोग भी सत्यान्वेषण के लिए ही करता है।

खोज में जब निकल ही आया
सत्य तो बहुत मिले
कुछ नये कुछ पुराने मिले
कुछ अपने कुछ विराने मिले
कुछ दिखावे कुछ बहाने मिले
कुछ अकडू कुछ मुँह चुराने मिले
कुछ घुटे-मंजे, सफेदपोश मिले
कुछ ईमानदार खानाबदोश मिले।
कुछ ने लुभाया
कुछ ने डराया
कुछ ने परचाया—
कुछ ने भरमाया—
सत्य तो बहुत मिले
खोज में जब निकल ही आया।
कुछ पड़े मिले
कुछ खड़े मिले
कुछ सड़े मिले
कुछ निखरे कुछ बिखरे
कुछ धुँधले कुछ सुथरे
सब सत्य रहे
कहे, अनकहे।
खोज में जब निकल ही आया
सत्य तो बहुत मिले

शब्दार्थ : विराने = पराये, अन्य किसी के। घुटे-मंजे = परिष्कृत। खानाबदोश = मायावर, घुमक्कड़। परचाया = दुलारना, सहलाना। भरमाया = भ्रम में डाला, बहकाना। सुथरे = साफ। अनकहे = बिन कहे हुए।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश अज्ञेय विरचित काव्य संग्रह 'इन्द्र धनु रौंदे हुये ये' में संग्रहित 'सत्य तो बहुत मिले' नामक कविता से उद्ध त हैं। यहाँ पर कवि आत्मानुभूति, आत्मतत्त्व के गहन चिंतन के क्षणों को अभिव्यक्त करता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि मैं सत्य की खोज में निकल ही पड़ा। इस मार्ग पर मुझे अनेक सत्यों के दर्शन हुए। इनमें कुछ नए थे तो कुछ पुराने। कुछ जाने पहचाने थे तो कुछ अनजान थे। कुछ बाहरी दिखावा मात्र थे तो कुछ अहंकार ग्रस्त थे और कुछ मुँह छिपाने वाले थे।

इन सत्यों में कुछ परिष्कृत थे तो कुछ ईमानदार थे और कुछ घुमक्कड़ थे। इन सत्यों में से कुछ ने मुझे आकर्षित किया, कुछ ने डराया, कुछ ने सहलाया तो कुछ ने भ्रमित भी किया। अतः इस रास्ते पर मुझे अनेक प्रकार के सत्य मिले जिनमें कुछ पड़े, कुछ खड़े, कुछ झड़े और कुछ सड़े, कुछ उज्जवल तथा कुछ बिखरे हुए, कुछ धुंधले, कुछ साफ। ये सब सत्य ही थे। इनमें से कुछ को कहा जा सकता है तो कुछ को नहीं अर्थात् कवि कहता है कि सत्य की खोज में निकला सत्य की राह पर मुझे अनेक सत्य देखने को मिले जिनमें अच्छे, बुरे दोनों ही थे और कुछ ऐसे सत्य भी थे जिनको बताया नहीं जा सकता।

विशेष :

1. कवि सत्य की खोज में निकला है।
2. 'अनकहे' शब्द प्रयोग करके कवि समाज के उस कटु सत्य को उद्घाटित करता जिसे सीधे-सीधे अभिव्यक्त करने में सत्ता का बवाल खड़ा हो जाएगा।
3. लुभाया, डराया, कहे, अनकहे, शब्दों के प्रयोग से कवि की प्रयोगशील द ष्टि मुखरित है।

पर तुम
नभ के तुम कि गुहा-गह्वर के तुम
मोम के तुम, पत्थर के तुम
तुम किसी देवता से नहीं निकले
तुम मेरे साथ मेरे ही आँसू में गले
मेरे ही रक्त पर पले
अनुभव के दाह पर क्षण-क्षण उकसती
मेरी अशमित चिता पर
तुम मेरे ही साथ जले।
तुम—
तुम्हें तो
भस्म हो
मैंने फिर अपनी भभूत में पाया।
अंग रमाया।
तभी तो पाया।
खोज में जब निकल ही आया,
सत्य तो बहुत मिले—
एक ही पाया।

शब्दार्थ : गुहा = गुफा। गहर = निकुंज, गुप्त स्थान। अशमित = न बुझी हुई, अत प्त। भभूत = भस्म, राख जिसे शिव भक्त अपने शरीर पर लगाते हैं। रमाया = लगाना

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश अज्ञेय विरचित काव्य संग्रह 'इन्द्र धनु रौंदे हुये ये' में संग्रहित 'सत्य तो बहुत मिले' नामक कविता से उद्ध त हैं। यहाँ पर कवि आत्मानुभूति, आत्मतत्त्व के गहन चिंतन के क्षणों को अभिव्यक्त करता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि सत्य तो बहुत मिले, जिन्होंने मुझे डराया, लुभाया, भरमाया लेकिन वास्तविक सत्य तो मुझे तब मिला, जब वह मेरे अनुभव से निकला। यह सत्य किसी गुफा, आकाश, मोम, पत्थर से नहीं निकला था। वह किसी देवता से भी नहीं मिला, निकला था। वह मेरा अनुभूत सत्य था। वह मेरी आँसुओं से सिक्त रक्त से रंजित, मेरे आत्म अनुभव और अत प्त मन से उत्पन्न हुआ था। यह सत्य मेरे स्वयं के अनुभव से जन्मा था तभी तो मुझे पाया था। इसी में मेरा तन और मन रम गया था यह सत्य तो मेरे शरीर की राख से बनी भभूत में मिला था अर्थात् मेरा जीया, भोगा अनुभूत सत्य था।

विशेष :

1. कवि सत्य केवल उसी को स्वीकारता है जो आँसुओं के साथ अनुभूति में पला है और भभूत में पाया है।

तुम मेरे साथ मेरे ही आँसू में गले
मेरे ही रक्त पर पले
× × ×
तुम मेरे ही साथ जले
तुम—
तुम्हें तो
भस्म हो, मैंने फिर अपनी भभूत में पाया
अंग रमाया
तभी तो पाया।

उपर्युक्त पंक्तियाँ मिर्ज़ा गालिब की याद दिलाती हैं—

रंगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं कायल
जब आँख ही से न टपका हो फिर लहु क्या है।

2. यहाँ अज्ञेय की भाषा प्रयोगधर्मिता का निर्वाह करती दिखाई देती है। उनके द्वारा प्रयुक्त बिराने, मुँह चुराने, घुटे-मुँजे, परचाया, भरमाया, सुथरे, रमाया, आदि शब्द इसी प्रयोगशील द ष्टि के द्योतक हैं।

अध्याय-7
खुल गयी नाव

प्रस्तुत कविता कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'इन्द्रधनु रौंदे हुये ये' में संकलित हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 1957 है। इस कविता में कवि संध्याकालीन डूबते सूर्य के माध्यम से प्रिय से विदा की वेदना को व्यक्त करता है।

खुल गयी नाव
घिर आयी संझा, सूरज
डूबा सागर-तीरे।

धुँधले पड़ते से जल-पंछी
भर धीरज से
मूक लगे मंडराने
सूना तारा उगा
चमक कर
साथी लगा बुलाने।

तब फिर सिहरी हवा
लहरियाँ काँपी
तब फिर मूर्छित
व्यथा विदा की
जागी धीरे-धीरे।

शब्दार्थ : संझा = संध्या, शाम। व्यथा = वेदना, दुःख। धीरज = धैर्य।

प्रसंग : प्रस्तुत कविता अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' से उद्ध त है। इसमें कवि संध्याकालीन सूर्य के माध्यम से प्रिय की विदाई की पीड़ा को व्यक्त करता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि संध्याकाल में सागर के किनारे पर डूबते सूर्य की किरणों में (सूर्यास्त की किरणों में) जल पंछी जो दिन में स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, वे भी धुंधले दिखाई देने लगे हैं और धैर्य धारण कर मौन होकर विचरण करने लगे हैं। आकाश में सूना तारा निकल आया है और अपने प्रकाश से मानो दूसरे तारों को भी निमंत्रण देने लगा है। धीरे-धीरे वायु चलने लगी है, जिसमें सागर की लहरें कांपने लगी हैं और इन सबको देखकर हृदय में विदा की पीड़ा जाग उठी है और एक अजीब-सी मूर्छा ने अर्थात् अवसाद ने घेर लिया है।

विशेष :

1. एक ओर संध्याकालीन वातावरण का चित्रण है तो दूसरी ओर डूबते हुए सूर्य का दर्द भी है।
2. 'नाव' का प्रतीकात्मक प्रयोग है।
3. धुँधले, धीरज, काँपी जैसे शब्दों के प्रयोग से कवि की प्रयोगधर्मिता ही लक्षित होती है।
4. भाषा सहज, सरल, प्रभावपूर्ण है।
5. कवि की प्रयोगशील चेतना का प्रस्फुटन हुआ है।

अध्याय-8
हिरोशिमा

कविवर अज्ञेय विरचित 'हिरोशिमा' कविता अमेरिका द्वारा जापान के नगर हिरोशिमा पर परमाणु बम के गिराये जाने की घटना पर आधारित है। कवि कहता है कि परमाणु-बम के फटने से ऐसा प्रकाश हुआ मानो सूर्य आकाश की बजाए प थ्वी से निकल आया हो। पूर्व से निकलने की बजाए नगर के बीच से निकल आया हो, लेकिन यह सूर्य नहीं था अपितु यह परमाणु बम था।

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे, क्षितिज पर नहीं
नगर के चौक :
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नहीं
फटी मिट्टी से।

छायाएँ मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पड़ीं—वह सूरज
नहीं उगा था पूरब में, वह
बरसा सहसा
बीचों-बीच नगर के :
काल-सूर्य के रथ के
पहियों के ज्यों अरे टूट कर
बिखरे गये हों
दसों दिशा में।

शब्दार्थ : क्षितिज = प थ्वी और आकाश के बीच का स्थल। अन्तरिक्ष = आकाश। छायाएँ = प्रतिबिम्ब। काल-सूर्य = म त्यु रूपी सूर्य। अरे = पहिए के व त्त को जोड़ने वाली तीलियाँ।

प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश कविवर अज्ञेय विरचित काव्य-संकलन 'अरी ओ करुणा प्रभामय' में संकलित 'हिरोशिमा' नामक कविता से उद्ध त किया गया है। इसमें कवि द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान जापान के नगर हिरोशिमा पर परमाणु बम के गिराये जाने वाले प्रसंग को अंकित करता है और भीषण-नर-संहार का वर्णन भी करता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि अमेरिका द्वारा अचानक हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरा दिये जाने और उसके विस्फोट से ऐसा लगा कि जैसे सूर्य उस दिन पूर्व के क्षितिज की बजाए अचानक नगर के बीचों-बीच चौक पर निकल आया है। धूप भी अंतरिक्ष की बजाए फटी धरती से निकली है। मानव की रचनाएँ भी दिशाहीन हो सब ओर फैली दिखाई दीं। वह सूर्य पूर्व से नहीं उगा था। वह धरतीवासियों को जीवन, आलोकमयी खुशी देने वाला सूर्य नहीं था। ऐसा लगा था कि काल रूपी सूर्य के रथ पहियों को जोड़ने वाली अरे (धुरी) टूटकर दशों-दिशाओं में बिखर गए हों। अर्थात् परमाणु बम की प्राणघातक अग्नि-श्लाकाएँ दशों दिशाओं में फैलती हुई नर-संहार कर रही थीं।

`विशेष :

1. कवि ने 6, 7 अगस्त 1945 को अमेरिका द्वारा जापान के दो बड़े शहरों (हिरोशिमा और नागासाकी) पर परमाणु बम गिराये जाने की घटना को सांकेतिक रूप में अंकित किया है। इस बम के गिराये जाने से पौने दो लाख लोगों की जान गयी थी और एक लाख से अधिक लोग घायल, अपाहिज और अंधे हो गए थे।
2. सहसा सूरज, बीचों-बीच, दशों दिशाओं में अनुप्रास अलंकार है।
3. काल सूर्य में रूपक अलंकार है।
4. पहिये के ज्यों अरे टूटकर, बिखर गये हों, उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. सम्पूर्ण पद्य में बिम्बात्मकता है।
6. भाषा सहज, सरल, प्रभावपूर्ण और प्रयोगशील है।

2.

कुछ क्षण का वह उदय-अस्त!
केवल एक प्रज्वलित क्षण की
द श्य सोख लेने वाली दोपहरी :
फिर?
छायाएँ मानव-जन की
नहीं मिटीं लम्बी हो-हो कर :
मानव ही सब भाप हो गये।
छायाएँ तो अभी लिखी हैं
झुलसे हुए पत्थरों पर
उजड़ी सड़कों की गच पर।

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बना कर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है।

शब्दार्थ : उदय-अस्त = निकलना और छिपना। प्रज्जवलित = जलता हुआ। झुलसे = थोड़े जले हुये। गय = धरातल, फर्श। साखी = गवाह।

प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश कविवर अज्ञेय विरचित काव्य-संकलन 'अरी ओ करुणा प्रभामय' में संकलित 'हिरोशिमा' नामक कविता से उद्ध त किया गया है। इसमें कवि द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान जापान के नगर हिरोशिमा पर परमाणु बम के गिराये जाने वाले प्रसंग को अंकित करता है और भीषण-नर-संहार का वर्णन भी करता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि अणु बम के गिरने से ऐसा लगा कि थोड़ी देर के लिए वहाँ सूर्य निकला और अस्त हो गया है। दोपहरी के समय अणु बम गिराया गया, जिसने देखते-देखते ही सारे द श्य को नष्ट कर दिया अर्थात् हिरोशिमा नगर को नष्ट कर दिया गया।

मानव छाया में इधर-उधर नहीं बिखरे अपितु गर्मी की अधिकता से उन सबका वाष्पन हो गया अर्थात् मनुष्यों के शरीर भांप बन गए। भले ही मानव-शरीर नहीं बचे, उनके चिह्न भी नहीं बचे, लेकिन उनकी छायाएँ अभी भी शेष हैं अर्थात् उस भयंकर विनाश की याद आज भी है। झुलसे हुए पत्थरों और पक्के धरातलों पर विनाश की परछाइयाँ आज भी हैं। मनुष्य के द्वारा बनाए सूर्य (अणु बम) ने मनुष्य को ही भाँप बनाकर सोख लिया, उसे ही नष्ट कर दिया। पत्थरों पर यह परछाइयाँ, आज भी उस दिन की घटना की, भयंकर विनाशलीला की गवाह हैं।

विशेष :

1. प्रस्तुत कविता 'विज्ञान वरदान है या अभिशाप' पर गहराई से चिन्तन, मनन करने की ओर संकेत देती है।
2. जापान में परमाणु विस्फोट से बची एक मिसाओं नाम की औरत ने बताया कि मैं हिरोशिमा से दूर अपने छोटे से घर की खिड़की में खड़ी थी। मैंने आकाश में चाँदी की एक चमकदार खूबसूरत चिड़िया देखी और एक सैकेण्ड से भी कम समय में चारों ओर आग की दहकती हुई मिट्टी थी। 6 अगस्त, 1945 को प्रातः 8 बजकर 16 मिनट पर सब मुर्दा हो गए थे। आग चारों और फैल गई थी और भवन कागज़ की भांति जल रहे थे।
3. 'साखी' शब्द साक्षी का तद्भव है। इस शब्द प्रयोग से कवि की प्रयोगधर्मिता परिलक्षित होती है।
4. 'पत्थर पर' में 'अनुप्रास, मानव ही, सब भाप हो गए' में लुप्तोपमा एवं हो हो में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

खण्ड 'ख' - आलोचना

अध्याय-9

अज्ञेय : जीवन परिचय

सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म 7 मार्च 1911 ई० में कसया (कुशी नगर) में हुआ था। इनके पिता हीरानन्द वात्स्यायन पुरातत्त्व विभाग में उच्च पदाधिकारी थे। उनका बहुत-सा जीवन पुरातत्त्व खुदाई शिविरों में बीता था। इसी कारण अज्ञेय की शिक्षा ग्रहण करने की दशा अव्यवस्थित रही। इनका बाल्यकाल 1911 से 1915 तक का समय लखनऊ में तथा 1915 से 1919 तक का समय श्रीनगर और जम्मू में तथा 1919 से 1927 तक नालन्दा में तथा 1927 से 1935 तक ऊटकमंड में व्यतीत हुआ और साथ-साथ ही ये शिक्षा ग्रहण भी करते रहे। इन्होंने सन् 1929 में लाहौर के फॉरसन कॉलेज से बी०एस० सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त अज्ञेय जी क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट होकर उनकी योजनाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इन पर कई मुकद्दमे ठोके गए और ये कई बार जेल भी गए।

सन् 1936 में अज्ञेय जी पत्रकारिता के क्षेत्र में आ गए। इन्होंने 'सैनिक' (आगरा) के सम्पादक मण्डल में नौकरी की। फिर 1937 में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर आप डेढ वर्ष तक 'विशाल भारत' (कलकत्ता) से जुड़े रहे एवं वहीं रहे। कलकत्ता से लौटकर इन्होंने 1939 में रेडियो में नौकरी की। सन् 1943 में सेना में भर्ती हो गए और 1946 तक सैनिक जीवन व्यतीत किया। वहाँ से आने के बाद 1947 में 'प्रतीक' के प्रकाशन का भार संभाला जिसमें इन्हें बहुत अधिक क्षति हुई। कारणतः 1950 में फिर से रेडियो की नौकरी करनी पड़ी। लेकिन उन्होंने प्रतीक का प्रकाश बन्द नहीं किया। उनकी इस कर्मठता का विद्यानिवास मिश्र के साक्ष्य से पता चलता है—''मार्च 1947 में इन्होंने इस कार्य का विस्तार करने के लिए इलाहाबाद में अपना निवास स्थान बनाया और वहाँ रहकर प्रतीक के माध्यम से कला, संस्कृति और साहित्य के अन्तरावलम्बन का एक सर्वांगीण संदेश रखा। प्रतीक का दायरा बहुत ही विस्त त था और आज जो भी नयी पीढ़ी के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, उनमें से अधिकांश की प्रतिभा का उन्मीलन प्रतीक में हुआ। प्रतीक में अज्ञेय ने अपना सब कुछ लगाया और उसमें इतनी आर्थिक हानि सही कि उस हानि को पूरा करने के लिए उन्हें 1963 तक कठोर परिश्रम करना पड़ा है। 1950 में प्रतीक के लिए ही इन्होंने दिल्ली में रेडियों की नौकरी स्वीकार की और दो वर्ष तक इन्होंने अपने बूते पर ही चलाया।''

सन् 1955 में अज्ञेय जी पहली बार यूनेस्को गए। फिर जापान और फिलीपीन गए। सितम्बर 1961 में ये कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्राध्यापक नियुक्त होकर गए। फिर 1966 में उन्हें रूमानिया, यूगोस्लाविया, रूस तथा मंगोलिया की यात्रा का अवसर मिला।

सन् 1965 में कुछ दिनों के लिए 'दिनमान' के सम्पादक रहे। फिर जोधपुर विश्वविद्यालय में आचार्य पद को संभाला। इसे छोड़कर फिर ये 'नवभारत टाइम्स' दैनिक के सम्पादक बने।

अज्ञेय जी का पहला विवाह सन्तोष से हुआ। इन दोनों में विवाह के दिन से ही संबंध विच्छेद के प्रयास शुरू हो गए। अन्ततः तलाक हुआ। अज्ञेय ने फिर चौदह साल बाद प्रेयसी कपिला मलिक से माता-पिता के विरोध करने पर भी 1956 में विवाह कर लिया। ये दोनों विवाह के पहले और बाद के कुल मिलाकर 13 वर्ष साथ रहे फिर तलाक से ही अलग-अलग रहने लगे। कपिला अब भी अपने नाम के पीछे वात्स्यायन लगाती है और वे भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की प्रसिद्ध विदुषी हैं।

अज्ञेय जी कपिला से अलग होने पर इला डालमिया के साथ रहने लगे। इन दोनों में चौंतीस साल का अन्तर था। इनका खुला संबंध था। ये दोनों विवाह की औपचारिकता में भी नहीं पड़े थे। इस संबंध में 'जनसत्ता' की टिप्पणी देखी जा सकती हैं—''पाखण्ड वाले भारत में 'अज्ञेय' इला जी को बेटी या बेटी के समान कह सकते थे, लेकिन उन्होंने कभी इस संबंध को ऐसे पारम्परिक और औपचारिक रूप में प्रचारित नहीं किया। वे इस खुले हुए संबंध को ऐसी सहज गरिमा से जीते रहे कि वह कभी कांड नहीं बना। न 'अज्ञेय' जी किसी औपचारिकता में पड़े न इला डालमिया। इला जी ने अपनी पारम्परिक मारवाड़ी प ष्ठभूमि के बावजूद इस संबंध को एक खुली आधुनिकता से जिया (12-4-87 जनसत्ता)।

अज्ञेय का साहित्य संसार

काव्य यात्रा : यहां अज्ञेय की रचनाओं का संक्षिप्त वर्णन ही दिया जा रहा है।

भग्नदूत : यह सन् 1933 में प्रकाशित अज्ञेय का पहला काव्य संग्रह है। इसके प्रणयन के समय छायावाद अपनी चरमावस्था में था। इसी कारण छायावाद का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इसकी अनुभूति में रोमानीपन, भाषा में बनावटीपन और तुक का आग्रह अधिक है।

चिन्ता : इसका प्रकाशन वर्ष 1942 है। इसका मूल विषय स्त्री और पुरुष का आपसी आकर्षण है। यहां कवि यौन संबंधों को पति-पत्नी के सामाजिक संबंध तक सीमित न रहकर उसकी व्यापकता को देखता है। चिरंतन पुरुष और चिरंतन नारी में गतिशील संबंधों को स्वीकार करता है।

इत्यलम् : इस काव्य संकलन का प्रकाशन वर्ष 1946 है। यह पाँच खण्डों में विभक्त है—भग्नादूत, बन्दी, स्वप्न, हिय हारिल, वंचना में दुर्ग और मिट्टी की इहा।

हरी घास पर क्षण भर : इसका प्रकाशन वर्ष 1949 है। इसमें कवि की आत्मान्वेषण मूलक, प्रकृति संबंधी एवं प्रणयानुभूति संबंधी कविताएं संकलित हैं। यहां हरी घास 'मुक्त जीवन' के आमन्त्रण की प्रतीक है।

बावरा अहेरी : इसका प्रकाशन 1954 में हुआ। इसमें प्रेमानुभूति, प्रकृति संबंधी एवं व्यंग्यात्मक कविताएँ संकलित हैं। यहाँ कवि मौन के समीप जाता जा रहा प्रतीत होता है।

इन्द्रधनु रौंदे हुए ये : इसका प्रकाशन वर्ष 1957 है। इसमें कवि के समाज सम्प क्त का बोध अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ उनका व्यक्तित्व कवि के रूप में कम विचारक के रूप में अधिक व्यक्त हुआ है।

अरी ओ करुणा प्रभामय : सन् 1959 में प्रकाशित इस संकलन में कवि रहस्योन्मुख है।

आँगन के पार द्वार : इसका प्रकाशन वर्ष 1961 है। इस पर अज्ञेय को 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण एवं लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' है। इसमें कवि समष्टि के प्रति अहं का विलयन करता है।

कितनी नावों में कितनी बार : इसमें कवि की बाहरी यात्राओं के साथ-साथ अन्तर्मन की यात्राओं से संबंधित कविताएँ संकलित हैं। इसमें उनका मूल स्वर 'मम' से 'ममेतर' है।

क्योंकि मैं उसे जानता हूँ : इसमें कवि द्वारा रचित 1965 से 1968 तक की कविताएँ संकलित हैं। इसमें कवि की गहरी सामाजिक सम्प क्ति अभिव्यक्त हुई है।

सागर मुद्रा : इसमें कवि द्वारा रचित 1967 से 1969 तक की सभी कविताएँ संकलित हैं। यहाँ कवि की प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति के साथ उनका विशिष्ट रहस्यवाद भी व्यंजित हुआ है।

पहले मैं सन्नाटा बनता हूँ : इसमें कवि की 1970 से 1973 के मध्य रची सभी कविताएँ संकलित हैं। इसमें कवि अज्ञेय की विशेष रूप से दार्शनिकता एवं सत्यान्वेषण की प्रव त्ति अभिव्यक्त हुई है।

महाव क्ष के नीचे : इसका प्रकाशन 1977 में हुआ। इस संकलन की कविताओं का प्रमुख स्वर मनुष्य की सर्जन प्रेरणा के उत्सव का है।

नदी की बाँक पर छाया : इसका प्रकाशन 1982 में हुआ।

पूर्वा : इसका प्रकाशन 1965 में हुआ। इसमें अज्ञेय की आरम्भिक कविताओं से लेकर सन् 1950 तक की कविताएँ संकलित हैं।

अज्ञेय का कथा साहित्य

अज्ञेय न केवल कविता के क्षेत्र में ख्यात थे बल्कि कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में भी ख्यात थे। उनके सात कहानी संग्रह और तीन उपन्यास प्रकाशित हुए।

1. **विपथगा :** इसका प्रकाशन वर्ष 1937 ई० है। इसमें उनकी कारावास में लिखी 12 कहानियाँ संग हीत हैं, जो चरित्र-प्रधान हैं।
2. **परम्परा :** यह सामाजिकता की प्रधानता लिए 22 कहानियों का संग्रह 1944 में प्रकाशित हुआ।
3. **कोठरी की बात :** इसका प्रकाशन 1945 में हुआ। इसमें क्रान्तिकारियों के जीवन एवं चरित्र से संबंधित सात कहानियाँ संकलित हैं।
4. **अमरवल्लरी और अन्य कहानियाँ :** यह अज्ञेय की पुरानी कहानियों का ही संग्रह है। इसकी सभी आठ कहानियाँ पहले प्रकाशित हो चुकी हैं।
5. **जयदोल :** इसका प्रकाशन 1951 में हुआ। इसमें प्रेम और फौजी जीवन से संबंधित 12 कहानियाँ संकलित है।
6. **कड़ियाँ और अन्य कहानियाँ :** इसमें भी अज्ञेय की मात्र एक नई कहानी के साथ पुरानी कहानियाँ ही संग हीत है।
7. **ये तेरे प्रतिरूप :** इसका प्रकाशन वर्ष 1961 है। इसमें चौदह कहानियाँ संग हीत हैं लेकिन इसमें 11 कहानियाँ ही नई है।

कहानीकार के रूप में अज्ञेय की विशेषता बताते हुए डॉ० केदार शर्मा कहते हैं—''अज्ञेय चरित्र-प्रधान कहानीकार हैं, जिन्हें आत्मकथात्मक, स्म ति-चित्रण और स्वप्न-शैली सर्वाधिक प्रिय है। समस्त युग जीवन, इतिहास, धर्म, राजनीति आदि को लेखक व्यक्ति विशेष के माध्यम से ही आँकता है, लेकिन उसके पात्र वर्गवादी नहीं हो पाए हैं। उनका व्यक्तित्व अपना प थक् अस्तित्व रखता है।

उपन्यास साहित्य

1. **शेखर : एक जीवनी :** (दो भाग) प्रकाशन वर्ष क्रमशः सन् 1940, 1944 ई० है।
2. नदी के द्वीप
3. अपने-अपने अजनबी

निबन्ध साहित्य

अज्ञेय के छः निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

1. **त्रिशंकु :** अज्ञेय द्वारा रचित तेरह निबंधों का यह संग्रह सन् 1945 में प्रकाशित हुआ।
2. **आत्मनेपद :** इस संकलन में अज्ञेय द्वारा लिखित रेडियो-वार्ता, संस्मरण, पत्र-भाषण और इंटरव्यू शैली में लिखे 28 निबंध संग हीत हैं। इसका प्रकाशन 1950 में हुआ।
3. **अरे यायावर रहेगा याद :** इसका प्रकाशन 1953 ई० में हुआ। इस संग्रह में उनके भ्रमणशील जीवन से संबंधित संस्मरणात्मक निबंध संग हीत हैं।
4. **एक बूंद सहसा उछली :** इसमें अज्ञेय की यूरोप-यात्रा से संबंधित संस्मरणात्मक निबंध संग हीत हैं।
5. **हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिद श्य :** इसका प्रकाशन 1967 में हुआ। इस संग्रह में हिन्दी साहित्य के अनुशीलन से संबंधित अज्ञेय के अट्ठारह निबंध संग हीत हैं।
6. **आलवाल :** यह उनका 1972 में प्रकाशित निबंध संग्रह है।

इनके अतिरिक्त अज्ञेय के रूपाम्बारा और तारसप्तक आदि की भूमिकाओं में लिखे निबंध भी महत्त्वपूर्ण हैं। अतः अज्ञेय अपना सम्पूर्ण जीवन और जीवनी शक्ति को साहित्य की सेवा में लगाने वाले ऐसे कवि एवं लेखक हैं जिन्हें प्रयोगवाद के प्रवर्तक एवं पुरस्कर्ता के रूप में उनको एवं उनके साहित्य को स्मरण किया जाता रहेगा।

अध्याय-10

अज्ञेय : प्रयोगवाद के पुरस्कर्त्ता

छायावाद की दार्शनिक धूमिलता, सूक्ष्म कल्पना और वैयक्तिकता की प्रक्रिया ने साहित्य में जिस प्रगतिशील आंदोलन का सूत्रपात किया था उसकी वस्तुपरकता और राजनीतिक संकीर्णता ने व्यक्ति की भावनाओं की अस्वीकार कर दिया। राजनीतिक गुटबाजी के कारण प्रगतिवाद में मार्क्सवादी सिद्धान्तों को महत्त्व दिया जा रहा था तथा मानव की अनुभूतियों को हल कुदाली, हड़ताल, अनशन के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा रहा था अतः परिवर्तन आवश्यक हो गया था। द्वितीय विश्व युद्ध ने सामाजिक मूल्यों का स्खलन कर दिया था। बेकारी, भूख आदि की समस्या ने मानव जीवन में अनास्था की भावना का बीज बो दिया था। परिणामस्वरूप विक त और प्रक त सभी प्रकार की व्यक्तिवादी प्रव त्तियों ने अन्तर्मुखी होकर काव्य में वैयक्तिक कुन्ठाओं और आत्मविश्लेषण को महत्त्व देना प्रारम्भ किया। प्रयोगवाद इसी का परिणाम है तथा इसके प्रस्तुतकर्ता के रूप में अज्ञेय जी को जाना जाता है। अज्ञेय जी ने प्रथम 'तार सप्तक' (1943 ई.) की भूमिका में 'तार सप्तक' के कवियों को 'राहो के अन्वेषी' की संज्ञा से विभूषित करते हुए कहा है-

'तार सप्तक में सात कवि संग्रहीत हैं। वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं। अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी हैं।'

वास्तव में प्रयोगवाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने अपने निबन्ध 'प्रयोगवादी रचनाएँ' में किया है। उन्होंने अपने इस निबन्ध में तार-सप्तक की समीक्षा की है। उन्होंने लिखा है-

"पिछले कुछ समय से ही हिन्दी काव्य क्षेत्र में कुछ रचनाएं हो रही है, जिन्हें किसी सुलभ शब्द के अभाव में, प्रयोगवादी रचना कहा जा सकता है।"

परंतु अज्ञेय जी ने प्रयोगवाद नामकरण का विरोध करते हुए दूसरे तार सप्तक की भूमिका में लिखा है-

"प्रयोग सभी कालों में हुए हैं। यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रव त्ति स्वाभाविक है। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए, जिन्हें अभी नहीं छुआ गया था जिन्हें अभेद मान लिया गया है।"

अज्ञेय जी आगे लिखते हैं-"प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है। दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।"

1959 ई. में तीसरा सप्तक प्रकाशित हुआ और ठीक 20 वर्ष पश्चात् अज्ञेय के ही सम्पादन में 'चौथा सप्तक' भी प्रकाशित हुआ। इस सप्तक में अज्ञेय जी ने नन्द किशोर आचार्य, सुमन राजे, अवद्येश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वेदश भारती, श्री राम वर्मा और राजेन्द्र किशोर की कविताएँ सम्मिलित की हैं। अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित तीसरे एवं चौथे सप्तक के कवियों में यह विशेष अन्तर है कि तीसरे सप्तक के कवियों की स्वतंत्र इयता है और स्वयं अज्ञेय जी ने इन कवियों की स जनधर्मिता को पहचानने का सफल प्रयास किया है। परन्तु चौथा सप्तक के कवि अपनी रचनाओं और वक्तव्यों में अज्ञेय प्रतिध्वनियों को ही सुरक्षा कवच पहनाते दिख रहे हैं।

कुछ विद्वानों ने अज्ञेय द्वारा प्रचलित एवं संवर्धित प्रयोगवाद को छायावाद से मुक्ति का प्रयास माना है। इस विषय में बच्चन सिंह ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है-

"तार सप्तक की निषेधात्मक प्रव त्ति है छायावाद से मुक्ति का प्रयास और प्रयोगों द्वारा नए-नए सत्य की अभिव्यक्ति। यह प्रव त्ति तीनों सप्तकों में पायी जाती है। छायावाद से छुटकारा किसी सप्तक को नहीं मिल पाया है।"

अज्ञेय जी ने अपनी रचनाओं 'भग्नदूत' (1933 ई.), चिन्ता (1942 ई.), इत्यलम् (1946 ई.), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोएम्स (1946 ई.), शरणार्थी (1948 ई.), हरी घास पर क्षणभर (1949 ई.), बावरा अहेरी (1954 ई.), इन्द्रधनु रौंदे हुए ये (1957 ई.), अरी ओ करूणा प्रभामय (1959 ई.), आंगन के पार द्वार (1961 ई.), पूर्वा (1965 ई.), सुनहले शैवाल (1965 ई.), कितनी नावों में कितनी बार (1967 ई.), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1969 ई.), सागर मुद्रा (1970 ई.), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973 ई.), महाव क्ष के नीचे (1977 ई.), स जना के क्षण (1979 ई.), के माध्यम से प्रयोगवाद को सुशोभित किया है।

अज्ञेय में 'अहं' बोध की भावना बड़ी प्रबल थी क्योंकि वे समझते थे कि समाज व्यवस्था और परम्परा से टूटकर भी व्यक्ति अपने अस्तित्व का भली भान्ति निर्वाह कर सकता है। वह संसर्ग रहित होकर भी आत्म निर्भर हो सकता है। अपने अहं को कवि स्वयं स्वीकार करते हैं-

"अन्य मानवों की भान्ति अहम् मुझमें भी मुखर है और आत्माभिव्यक्ति का महत्त्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं है।"

प्रत्येक विषय को अज्ञेय ने अपनी अहं की आंखों से देखा है। उनका यह अहं इतना विकसित होता है कि वह अपने स जनकर्ता को ही ललकार उठता है-

"मैं मरूँगा सुखी
क्योंकि तुमने जो जीवन को दिया था
(पिता कहलाते हो तो
जीवन के तत्व पाँच
चाहे जैसे पुंज-बद्ध हुए हो
श्रेय तो तुम्हीं को होगा-)
उससे मैं निर्विकल्प खेला हूँ
खुले हाथों उसे मैंने वारा है
धज्जियाँ उड़ाई हैं।"

अन्त में कवि के अन्दर आदर पाने की लालसा इतनी बलवती हो जाती है कि 'अक्षय ज्योति' को अपनी 'क्षीण दीप शिखा' देकर अज्ञेय यह उम्मीद करने लगता है कि इस दान पर 'अक्षर ज्योति' धन्य हो उठे। अहं की इससे सशक्त अभिव्यक्ति और कहाँ मिलेगी-

"ज्योति तुम्हारी अज्ञय है पर
जला-जला कर नहीं बनी है-
और इधर यह शिखा कम्पमय
यह मेरी कितनी अपनी है।
मैं मिट्टी हूँ, पर तुम होओ धन्य इसे अपनाकर
यह तो मेरी ज्योति, दिवाकर?

अहं की समग्रता अज्ञेय में ही मिलती है। प्रेम के निवैयक्तिक क्षण में भी वह अपने अहं को नहीं भूल पाते-

"प्यार में अभिमान की पर कसक ही रोने नहीं देती।"

युग बोध प्रयोगवाद का एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। अज्ञेय के युग की धमनी अज्ञेय में ही स्पन्दित होती है। आज तेजी के साथ बदले हुए युग में कवि नवीन परिस्थितियों के मध्य कवि खुद को फिट करना चाहता है। युग और व्यक्ति के मध्य तनाव और

दबाव को अज्ञेय ने आत्मसात् किया और उसे अभिव्यक्ति दी। उन्होंने युग की गति को पहचाना और जीवन के वास्तविक रूप को अभिव्यक्ति देने के लिए नव्य जीवन्त और संकेतों को माध्यम बनाया-

"सुख मिलाः
उसे हम कह न सके।
दुःख हुआ
उसे हम सह न सके
संस्पर्श व हत का उतरा सुस्सरि-सा
हम बह न सके।
यो बीत गया सब : हम मरे नहीं पर हाय! कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके।"

अज्ञेय ने युगीन बोध की सच्ची अभिव्यक्ति की है, नव्य मानव जीवन मूल्यों का स जन किया है। अज्ञेय ने अन्तर तल में बहती तीव्र एवं अप्रतिहत युग-धारा को पहचाना है, किन्तु वे उस धारा में बहे नहीं, बल्कि टूटते हुए युग के विवेचन में उनकी द ष्टि तटस्थ रही। उन्होंने यान्त्रिक युग की खटर-पटर को भी सुना है-

"सूनी-सी सांझ एक
दबे पांव मेरे कमरे में आई थी

× × ×

पर उस सलोने के पीछे-पीछे
घुस आई बिजली की बत्तियाँ
बेहया धड़-धड़ गाड़ियों की
मानुषों की खड़ी-खड़ी बोलियाँ
वह रुकी तो नहीं, आयी तो आ गयी,
पर साथ-साथ मुरझा गई।
उसकी पहले ही मद्धिम अरूणाली पर
घुटन की एक स्याही-सी छा गई।"

अज्ञेय में अभिजात वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना अत्यन्त प्रबल है और प्रयोगवाद की यही विशिष्टता भी है। अज्ञेय के काव्य में अभिजात वर्ग के प्रति विद्रोह और निम्न वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति के दर्शन होते हैं। अज्ञेय अभिजात वर्ग को सुख भोगता देख उसे ललकारते हुए कहते हैं-

"ठहर, ठहर आततायी। जरा सुन ले
मेरे कुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले-
क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले-
मेरे द ढ़ पौरूष की एक चोट सह ले।"

डॉ. नामवर सिंह ने इस विषय में लिखा है कि-

"इस तरह इस विद्रोही कवि का उच्च मध्यवर्ग तथा उसकी समाज व्यवस्था के प्रति सारा असंतोष और युयुत्सु भाव अन्त में इस प्रस्ताव पर खत्म हुआ कि उसे संरक्षण प्राप्त हो। केवल इस टुकड़े पर उच्च मध्य वर्ग का सारा अत्याचार और अपनी सारी पीड़ा भुलाई जा सकती है।"

अज्ञेय ने अपनी क तियों के माध्यम से अनास्था एवं संशय के स्वर को अभिव्यक्ति दी है। अनास्था और संशय प्रयोग वाद का महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। उस समय पूंजीवादी संस्क ति की बाढ़ आयी हुई थी। आशा की चाँदनी भी विलुप्त हो गई थी। पूँजीवाद

ने मानवता की भावना को हजम कर लिया था। व्यक्ति छोटी-छोटी सीमाओं में आबद्ध होकर अपने अहं के कीचड़ में हाथ-पैर पटकता रह गया। उच्च वर्ग के प्रति किया गया विद्रोह असफल हो गया। इस असफलता ने व्यक्ति को निराश बना दिया। साहित्य में भी अनास्था और संशय का स्वर प्रबल हो गया। अज्ञेय से पूर्व कविता में इतनी निःशक्तता, इतनी बेवसी, इतनी घुटन और पुंस्त्वहीनता नहीं आयी थी कि कवि यह चिल्ला उठता है-

"मैं ही हूँ पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता-
या फिर"............... मैं हूँ।
किसी बीते साल के सीले कलेंडर की
एक बस तारीख जो हर साल आती है।"

अज्ञेय ने प्रयोगवाद को अस्तित्व बोध की भावना परिचित कराया है-

किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं
स्थिर समर्पण है हमारा
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं।
क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे नहीं।
पैर उखड़ेंगे, प्लवन होगा, ढहेंगे, सहेंगे, बह जायेंगे
और फिर हम चूर्ण हो कर भी कभी क्या धार बन सकते।

व्यक्ति में जीवन के प्रति अनास्था आ जाने के कारण उसके मन की निजता के ग्रसे जाने की कल्पना की आशंका भी घर कर गई। नियति की क्रूरता से सहमा व्यक्ति आत्मरक्षा की भावना से छटपटाने लगा। यह आत्मरक्षा की भावना ही अन्त में अस्तित्ववाद के नाम से पुकारी जाने लगी।

अज्ञेय ने प्रयोगवाद को वेदना की नवीन व्याख्या से लबरेज किया है। अज्ञेय के विषय में विशेष बात यह है कि दर्द को उन्होंने उतना भोगा नहीं है जितना कि सोचा। वे वह दर्द सहते हैं जो भविष्य में होने वाला है, और भविष्य का दर्द वर्तमान की अपेक्षा भयंकर होता है-

"वह अन्त समय विश्वास भरी
जग से फिर सन्यास भरी
अपनी पीड़ा की तड़पन में
भी भर पीड़ा से त्रास भरी।"

अज्ञेय जी ने साहित्य में पहली बार क्षण के महत्त्व को समझा और उसे अपने काल में स्थान दिया तथा उसी क्षण को उन्होंने मानव जीवन का प्रमुख हिस्सा माना। अज्ञेय की मान्यता है कि मानव जीवन में सुख का क्षण शेष सम्पूर्ण जीवन से श्रेष्ठ है। अज्ञेय जी मानव जीवन के प्रत्येक क्षण को शाश्वत सत्य मानते हैं और उसी क्षण को पूर्णता के साथ जीना चाहते हैं-

"झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा
वैसा सूर्यास्त फिर नहीं दिखा।"

आज का कवि विराट में सहज ही तल्लीन हो जाता है। विराट आज उसके लिए रहस्य नहीं रह गया है। वह उसमें चुपचाप डूब जाता है-

"चुपचाप-चुपचाप
हम पुलकित विराट में डूबे
पर विराट हममें घुल जाय-
चुपचाप चुपचा प..............।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयोगवाद का विशेष महत्त्व है क्योंकि इसने पूरी ईमानदारी एवं साहस के साथ मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ को अंकित किया दूसरे इसने व्यक्ति को समाज की एक विशिष्ट इकाई के रूप में अभिव्यक्त किया। तीसरे परम्परागत जड़ मान्यताओं को पहली बार नकार कर प्रयोगशील द ष्टि का अन्वेषण किया। और यह सारा श्रेय अज्ञेय को दिया जाता है क्योंकि इस राह के अन्वेषक वे ही हैं।

अध्याय-11
अज्ञेय और नई कविता

यद्यपि नई कविता के जनक के रूप मे जगदीश गुप्त को माना जाता रहा है, परन्तु जिस संग्रह से नव्य चेतना की नब्ज को पकड़ने का प्रयास किया गया था वह चेतना साहित्य में प्रथम बार अज्ञेय के 'तार सप्तक' से ही सामने आयी। इस सप्तक के कवियों को अज्ञेय जी ने 'राहों के अन्वेषी' की संज्ञा से विभूषित किया है जो आगे चलकर नई कविता के यशस्वी कवि हुए। इस कड़ी में मुक्ति बोध, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल आदि कवि आते हैं। नई कविता के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि यह प्रयोगवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप उठा हुआ कोई काव्यान्दोलन नहीं है, अपितु 1950 ई. के आसपास रची जाने वाली प्रयोगवादी काव्य क तियों को ही नई कविता की संज्ञा से विभूषित किया गया। नई कविता पर पश्चिम के New Poetry आन्दोलन का प्रभाव लक्षित होता है। वास्तव में नई कविता प्रयोगवाद का संस्कारी रूप है। इस सम्बन्ध में कान्तिकुमार की मान्यता है कि "प्रयोगवाद नई कविता का साइड रिहर्सल था।" अज्ञेय जी ने 1933 ई. में साहित्य स जन आरंभ किया, वह काल छायावाद के चरम उत्कर्ष का काल था। अतः इनकी आरम्भिक कविताओं पर छायावाद का गहरा प्रभाव पड़ा। भग्नदूत (1933 ई.), चिन्ता (1942 ई.), इत्यलम (1946 ई.) इसी प्रकार की कविताएं हैं। अज्ञेय की कविता का द्वितीय चरण 1949 ई. से लेकर 1967 ई. तक चलता है। इस चरण स जित कविताओं में जिजीविषा और सत्यान्वेषण प्रमुख विषय रहे हैं, जो मूलतः नई कविता के विषय हैं। उसके बाद अज्ञेय की कविता का तीसरा चरण आरंभ होता है जिसमें आत्मदान का सिद्धांत प्रमुख रूप से उभर कर सामने आता है। अतः 1949 से लेकर आज तक की कविताएं नई कविता के अन्तर्गत आती हैं। कुछ विद्वानों ने प्रयोगवाद और नई कविता को अलग-अलग माना है। परन्तु प्रयोगवादी कविता और नई कविता की सीमा रेखा इतनी क्षीण हैं कि दोनों को अलग-अलग धाराएं मानने के लिए अभी हिन्दी समालोचक विद्वान एकमत नहीं है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. नामवर सिंह आदि विद्वानों ने नई कविता और प्रयोगवाद को अभिन्न माना है।

अगर हम अज्ञेय को नई कविता के परिपेक्ष्य में मूल्यांकित करके देखें तो उनकी निम्न कविताएं नई कविता के ताने-बाने को मजबूत करती हैं-हरी घास पर क्षण भर (1949 ई.), बावरा अहेरी (1954 ई.), इन्द्रधनु रौंदे हुए ये (1957 ई.), अरी ओ करूणा प्रभामय (1959 ई.), आँगन के पार द्वार (1961 ई.), पूर्वा (1965 ई.), सुनहले शैवाल (1965 ई.), कितनी नावों में कितनी बार (1967 ई.), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1969 ई.), सागर मुद्रा (1970 ई.), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973 ई.), महाव क्ष के नीचे (1977 ई.) आदि।

अज्ञेय जी आरंभ से ही नई कविता आन्दोलन से जुड़े हुए हैं, अतः उनके काव्य को नई कविता की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में परखना अधिक समीचीन प्रतीत होता है-

1. युगबोध

युगबोध नई कविता की प्रमुख विशेषता है। अज्ञेय के युग की धमनी अज्ञेय में ही स्पन्दित होती है। वर्तमान युग तेजी से बदल रहा है। इस तेजी से बदलते हुए युग में कवि खुद को नव्य परिस्थितियों के मध्य फिट करना चाहता है। व्यक्ति के मध्य दबाव और तनाव को अज्ञेय जी ने भी महसूस किया और उसे अभिव्यक्ति दी। अज्ञेय जी ने युग की गति को पहचाना और जीवन के वास्तविक रूप को अभिव्यक्ति देने के लिए नव्य जीवन्त प्रतीकों और संकेतों का आकलन किया है-

"सुख मिलाः
उसे हम कह न सके
दुःख हुआः
उसे हम सह न सके
संस्पर्श व हत का उतरा सुरसरि-सा
हम बह न सके
यों बीत गया सब : हम भरे नहीं पर हाय! कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके।"

2. व्यक्तिगत एवं अहं की अभिव्यक्ति

व्यक्तिवादिता एवं अहं की अभिव्यक्ति नई कविता की प्रमुख विशेषता है। अज्ञेय के काव्य में व्यक्तित्व एवं अहं के दर्शन सर्वत्र होते हैं। एक स्थान पर अपने अहं को स्वीकार करते हुए अज्ञेय जी लिखते हैं-

"अन्य मानवों की भान्ति अहं मुझमें भी मुखर है और आत्माभिव्यक्ति का महत्त्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं है।"

अज्ञेय के काव्य में अधिकांशतः व्यक्ति ही बोलता नजर आता है। प्रत्येक विषय को अज्ञेय ने अपनी अहं की आँखों से देखा है उनका यह अहं इतना विकसित होता है कि वह अपने स जनकर्ता को ही ललकार उठता है-

"मैं मरूँगी सुखी
क्योंकि तुमने जो जीवन को दिया था
(पिता कहलाते हो तो
जीवन के तत्व पाँच
चाहे, जैसे पुँज-बद्ध हुए हो
श्रेय तो तुम्हीं को होगा-)
उससे मैं निर्विकल्प खेला हूँ
खुले हाथों उसे मैंने वारा है
धज्जियाँ उड़ाई है।"

अज्ञेय हर स्थिति में अपने अहं को बनाए रखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि सदा उसके अहं की विजय हो-

"जगा हूँ मैं
क्यों करूँ अराधना उस देव की
जो कि मुझको सिद्धि तो क्या दे सकेगा
जो कि मैं ही स्वयं हूँ।"

3. नवीनता का आग्रह

नूतन के प्रति आकर्षण नई कविता की प्रमुख विशेषता रही है। अज्ञेय में नव्य के प्रति मोह पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। हरी घास पर क्षण भर (1949 ई.) काव्य संग्रह में संकलित कविता 'कलगी बाजरे की' में किया है। उस समय परिस्थितियों में परिवर्तन हो चुका था। पूर्ववर्ती रचनाकारों द्वारा स्थापित उपमान काल-बाह्य हो चुके से प्रतीत होते थे। ऐसे में कवि को नये प्रतीक, नये उपमानों की तलाश थी जो उस समय की परिस्थितियों को उकेरने में सहायक हो सके। अज्ञेय जी ने 'कलगी बाजरे की' कविता में लिखा है-

"अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोर की नीहार-न्यायी कुँई
टटकी कली चम्पे की

वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा ह्रदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही :
ये उपमान हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"

अज्ञेय जी ने अपने युग को यथार्थ से जोड़ना चाहा है। कवि वर्तमान युग की अति यान्त्रिकता से क्षुब्ध होकर विद्रोह कर उठता है -

"यन्त्र हमें दलते हैं
और हम अपने को छलते हैं
थोड़ा और खट लो, थोड़ा और पिस लो।"

4. अभिजात वर्ग के प्रति विद्रोह

नई कविता की यह एक प्रमुख विशेषता है। अज्ञेय के काव्य में अभिजात्य वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति के दर्शन होते हैं। उनकी मान्यता है कि-

"दुःखी और सुखी की कोई आत्यांतिक श्रेणियाँ तो जीवन में हैं नहीं। दुःख अपूर्णता, पीड़ा ये सर्वव्यापी हैं। गरीबों ने इनका ठेका नहीं लिया है।"

परन्तु अभिजात वर्ग को केवल सुख ही सुख और निम्न वर्ग को दुःख ही दुःख भोगता देख अज्ञेय ने अभिजात वर्ग के विरूद्ध अपनी आवाज उठाई-

"तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन जीवन के चिर रिपु विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन तुम श्वशान के देव। सुनो यह रणभेरी की तान-आज तुम्हें ललकार रहा हूँ। सुना घ णा का गान।

अनास्था एवं संशय के स्वर

अनास्था एवं संशय की भावना नई कविता का केन्द्रीय तत्व है। पूंजीवादी संस्क ति की देश में बाढ़ आ गई थी, आशा का दीपक भी विलुप्त हो गया था। पूँजीवाद मानवता की भावना को निगल रहा था। व्यक्ति छोटी-छोटी सीमाओं में कैद हो गया था। उच्च वर्ग के प्रति किया गया विद्रोह असफल हो रहा था। इस असफलता ने व्यक्ति को निराश बना दिया था। साहित्य में भी अनास्था और संशय का स्वर प्रबल हो गया था। अज्ञेय से पूर्व कविता में इतनी निःशक्तता, इतनी बेबसी, इतनी घुटन पहले कभी नहीं आयी थी। कवि सत्य को दीपक लेकर खोज रहा है, किन्तु कवि की आस्था अत्यन्त जीर्ण है। व्यक्ति को जीवन में धोखा, आघात और उपेक्षा ही मिलती है-

"यह जो दिया लिए तुम चले खोजने सत्य बताओ
क्या प्रबन्ध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकम्पित, उज्जवल, एकरूप, निर्धूम।"

3. विराट तत्त्व की अभिव्यक्ति

विराट तत्व की अभिव्यक्ति नई कविता की प्रमुख विशेषता है। आज का कवि विराट में सहज ही डूब जाता है। विराट अब उसके लिए रहस्य नहीं रह गया है। विराट को छूकर ही नन्हीं सी बूंद नश्वरता के दागों से मुक्त हो जाती है और विराट की इस उदारता पर अज्ञेय जी जान से मुग्ध हो जाते हैं-

"मैंने देखा
एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंग गयी क्षण भर
ढलते सूरज की आग से
मुझको दिख गयाः
सूने विराट के सम्मुख
हर आलोक हुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से।"

6. क्षण का महत्त्व

नई कविता में क्षण को पर्याप्त महत्त्व मिला है। अज्ञेय ने हिन्दी साहित्य में पहली बार क्षण के महत्त्व को समझा और उसे अपने काव्य में स्थान दिया तथा उसे मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा माना। अज्ञेय की मान्यता है कि मानव जीवन में सुख का क्षण शेष सम्पूर्ण जीवन से श्रेष्ठ है। अज्ञेय जी मानव जीवन के प्रत्येक क्षण को शाश्वत सत्य मानते हैं और उसी क्षण को पूर्णता के साथ जीना चाहते हैं। अज्ञेय की मान्यता है कि क्षण को भविष्य में नहीं जिया जा सकता हमारे लिए उसकी उपादेयता केवल वर्तमान में उपभोग करने से है-

"शरद चाँदनी
बरसी
अंजुरी भर कर पी लो
ऊंघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।"

7. आस्था और भविष्य में विश्वास

नई कविता ने आस्था और भविष्य में विश्वास को पर्याप्त अभिव्यक्ति दी है। अज्ञेय के काव्य में यह दो रूपों में लक्षित होती है। प्रथम तो आस्था को कवि का अभिन्न अंग स्वीकार करने के रूप में, दूसरे आस्था के बल पर स जन के उद्घोष के रूप में-

प्रथम में

"मैं आस्था हूँ
तो मैं निरन्तर उठते रहने की शक्ति हूँ

× × × ×

जो मेरा कर्म है, उसमें मुझे संशय का नाम नहीं
वह मेरा अपनी सांझ-सा पहचाना है।"

दूसरी में लघु मानव को भी निर्माणोन्मुख करने की भावना है-

"मैंने कहा :
सखी मेरी, तुम भले मान लो मुझे अकिंचन

पर मेरी आस्था क्या नगण्य है

× × × ×

अभी न हारो अच्छी आत्मा
मैं हूँ, तुम हो
और अभी मेरी आस्था है।"

8. अस्तित्व बोध

नई कविता में अस्तित्व बोध को भी प्रमुखता के साथ उभारा गया है। व्यक्ति में जीवन के प्रति अनास्था आ जाने के कारण उसके मन की निजता के ग्रसे जाने की काल्पनिक आशंका भी घर कर गई। नियति की क्रूरता से सहमा व्यक्ति आत्मरक्षा की भावना से छटपटाने लगा। अतः यह आत्मरक्षा की भावना ही अन्त में अस्तित्व के नाम से पुकारी जाने लगी-

"होने और न होने की सीमा रेखा पर
सदा बने रहने का
अधिसार व्रत जिसने ठाना-सहज ठन गया जिससे
वही जिया। पा गया अर्थ।"

अतः अज्ञेय नई कविता के आधार स्तम्भ ठहरते हैं। नई कविता की अधिकांश प्रव त्तियाँ उन्हीं से प्रचलित हुई। अज्ञेय ने इस ओर समकालीन कवियों का रूख किया वो भी प्रभावित करके।

अध्याय-12
अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता

आज मैंने पर्वत को नयी आँखों से देखा।
आज मैंने नदी को नयी आँखों से देखा।
आज मैंने पेड़ को नयी आँखों से देखा। (अज्ञेय)

अज्ञेय की प्रयोगशील द ष्टि के मूल में नए शब्द की खोज और शब्द को नया संस्कार देना है। यह नयी आँख कवि की प्रयोगशील द ष्टिवाली ही आँख है जो परम्परा का रूढ़ प्रयोग स्वीकार नहीं करती बल्कि उसका नवीन एवं प्रासंगिक प्रयोग करती है। लेकिन इस प्रयोग की प्रक्रिया में शब्द धातु की अवहेलना उन्हें संगत नहीं लगती। यह दूसरी बात है कि वे शब्द धातु का स जनात्मक प्रयोग खूब करते हैं। असल में अज्ञेय की कविता में शब्दों का नवीन प्रयोग, नवीन प्रतीकों की तलाश, नये बिम्ब नये अर्थ ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं; कविता की भीतरी लय का आधुनिक स्वरूप भी दिखाई देता है। इस संदर्भ में डॉ. रघुवंश का कहना है-"अज्ञेय सजग कलाकार हैं। साक्षात्कृत अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए उचित शब्द, भाषा, प्रतीक, बिम्ब खोजने की उनमें सूक्ष्म-चेतना कार्यशील रही है।" यहाँ हम अज्ञेय की कविता में भाषा शब्द, प्रतीक, बिम्ब, छंद और लय के स्तर पर हुए प्रयोगों पर चर्चा करेंगे।

भाषागत प्रयोग

अज्ञेय के सामने यह समस्या थी कि उसका स जनात्मक प्रयोग कैसे किया जाए। उन्होंने भाषिक स्तर पर जो प्रयोग किए उसमें परम्परागत साहित्यिक संवेदना को तोड़ा। इसमें उन्होंने सबसे पहले कविता की भाषा को तोड़ा। इस संदर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है-"परम्परागत साहित्यिक संवेदना को तोड़ने के लिए अज्ञेय ने प्रथमतः कविता के माध्यम को तोड़ा। नवलेखन की स्थिति नयी कविता के माध्यम से ही सम्भव हो सकी। छायावाद का प्रभाव क्षेत्र भी कविता था। छायावादी काव्य-भाषा का तोड़ा जाना इस द ष्टि से सबसे अधिक आवश्यक था किसी भी नये भाव-संचरण के लिए। अज्ञेय ने इस स्थिति को समझा और भाषा को नया संस्कार दिया, ऐसा संस्कार जो बोलचाल की भाषा का था। पर इस मौलिक भाषा को जन-भाषा कह समझ कर ही वे संतुष्ट नहीं रहे, वरन् उसके माध्यम से उन्होंने समूची काव्य-संवेदना का परिष्कार किया।" आरंभ में तो अज्ञेय की भाषा बड़ी ही सादी, सरल, रंगहीन, अनाकर्षक और छायावादी कविता जैसी है लेकिन धीरे-धीरे अज्ञेय की भाषा क्षमता बढ़ी और उन्होंने कविता के मौलिक स जन के लिए शब्द का मौलिक अर्थ-प्रयोग की शुरूआत की। यहीं से उनकी सच्ची स जनशीलता की पहचान की जा सकती है।

अज्ञेय ने कविता में भाषा के स्तर पर जो प्रयोग किए हैं उनमें बोलचाल की भाषा को नए संदर्भ दिए हैं। जैसे-

सांप,
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया?

अज्ञेय प्रयोगों के द्वारा कविता में अपने परिवेश का निर्माण करना चाहते हैं और उसमें सफल भी होते हैं। वे बोल-चाल की भाषा का जो प्रयोग करते हैं उसमें व्यंग्य की मार भी दे देते हैं और कविता का शिल्प भी विकसित कर देते हैं। उदाहरणतः

'जियो, मेरे आजाद देश के शानदार शासकों
जिन की साहिबी भेजे वाली देसी खोपड़ियों पर
चिट्टी दूधिया टोपियाँ फब दिखाती हैं,
जिनके बाथरूम की संदली, अंगूरी, चम्पई, फाख्तई
रंग की बेसिनी, नहानी, चौकी, तक की हजीब
सब में दिखता है अंग्रेजी रईसी ठाठ

लेकिन सफाई का कागज रखने की कंजूस बनिये की तमीज अज्ञेय ने 'मौन' को भी अभिव्यक्ति माना है। कविता जगत में यह एक मौलिक अवधारणा और प्रयोग सामने आया है। वे कहते हैं-

मौन भी अभिव्यंजना है
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो।

अज्ञेय की प्रयोगशील द ष्टि भाषा और अनुभव दोनों ही को एक साथ जांचती हुई चलती है। इसी कारण भाषा उनकी कविता में केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है। वह उनकी बोधशक्ति और भाषा शक्ति दोनों को सिद्ध करती चलती है। उन्होंने इन प्रयोगों से भाषा के विकास की सम्भावनाओं को खोला है और संस्क ति के विकास को भी जोड़ा है क्योंकि भाषा भी संस्क ति का अंग है और भाषा का विकास संस्क ति के विकास से जुड़ा हुआ है।

शब्द का स जनात्मक प्रयोग

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में शब्दों को लेकर स जनात्मक प्रयोग किए हैं। उन्होंने भाषा का दोहन करते हुए नवीन शब्दों का निर्माण किया है। उनकी कविताओं में तद्भव शब्दावली पर अधिक बल है। उनकी शुरूआती कविताओं में बेशक तत्सम शब्दावली दिखाई देती हो लेकिन बाद की कविताओं में देशज, तद्भव शब्दावली की प्रचुरता है। जैसे उद्यान के स्थान पर सुनसान पार्क, पार्क में बैंचे, पर्दा, साबुन की चिकनाई जैसे शब्दों का प्रयोग कर छायावादी शब्दावली से अलग होने की कोशिश की है। उनके शब्दगत प्रयोग 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' में खूब दिखाई देते हैं। उन्होंने 'बावरा अहेरी' कविता में 'तारघर की नाटी-मोटी-चिपटी-गोल छुस्सेवाली बेपनाह काया' है लेकिन उसे उभारने वाले 'कलस त्रिसूल वाले मन्दिर-शिखर' हैं को अभिव्यक्त करते हुए बदलते परिवेश को उतारा है। देशज शब्दावली का प्रयोग देखना हो तो उनकी 'सत्य तो बहुत मिले' कविता देखी जा सकती है-

खोज में जब
निकल ही आया
सत्य तो बहुत मिले
कुछ नये कुछ पुराने मिले
कुछ अपने कुछ बिराने मिले
कुछ दिखावे कुछ बहाने मिले
कुछ अकडू कुछ मुंह चुराने मिले
कुछ घुटे-मजे सफेद पोश मिले
कुछ ईईमारे खानाबदोश मिले।
कुछ ने लुभाया
कुछ ने डराया
कुछ ने परचाया
कुछ ने भरमाया

यहां 'बिराने', अकड़ू, मुंह चुराने, घुटे मजे, दईमारे, खानाबदोश, परचाया, भरमाया, जैसे तद्भव शब्दों का प्रयोग कवि की प्रयोगधर्मिता को व्यक्त करता है।

सार्थक प्रतीकों की तलाश

अज्ञेय कवि प्रतीक को काव्य में सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। उलझी हुई, अस्पष्ट एवं रहस्यात्मक अनुभूति को प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट करते चलते हैं। वे सीधे अवचेतन से प्रतीक नहीं निकालते बल्कि जीवन और संस्क ति से जोड़कर उनका स जन सचेत होकर करते हैं।

इनके काव्य में जो प्रतीक योजना हमें मिलती है, वह पश्चिम के प्रतीकवाद से प्रभावित नहीं कही जा सकती क्योंकि उसकी जड़ें भारतीय जन-साहित्य की परम्परा में ही हैं। उनके लिए प्रतीक साध्य नहीं साधन है। वे प्रतीक के लिए कविता नहीं लिखते अपितु कविता के लिए प्रतीकों का चयन करते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों को हम तीन विभागों में बाँट सकते हैं-

1. परम्परागत प्रतीकों का नया प्रयोग
2. निजी प्रतीक
3. आधुनिक प्रतीक

परम्परागत प्रतीकों का नया प्रयोग

अज्ञेय ने परम्परागत प्रतीकों का प्रयोग रूढ़ अर्थ में नहीं किया बल्कि उनमें निहित अवधारणा एवं चिन्तन को आधुनिकता की कसौटी पर कसकर देखा है, इनमें निहित चिन्तन को प्रयोग के जरिये जाँचा परखा है। उन्होंने क्रौंच पक्षी के परम्परागत अर्थ पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उसका प्रयोग प्रेम एवं वियोग के लिए किया है। नदी का प्रयोग विशाल समाज के प्रतीक के रूप में किया है तो द्वीप का व्यक्ति की अस्मिता से परिपूर्ण प्रतीक रूप में किया है-

किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं है।
स्थिर समर्पण है हमारा।
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं।
क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे, प्लवन होंगे, ढहेंगे, सहेंगे, बह जाएंगे
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी धार बन सकते?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।

अज्ञेय ने पहली बार आकाश को आकाश मानने से मना कर दिया उसे उन्हें केवल रूपहीन आलोक ही माना। उन्होंने 'तारे' का प्रयोग भी व्यक्ति की संपूर्णता उसकी इयत्ता और अस्मिता के प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। इसी प्रकार 'असाध्य वीणा' में 'विशाल तरू' विशाल जातिगत अनुभव के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

निजी प्रतीक

सागर, बूँद और मछली अज्ञेय के निजी प्रतीक हैं। ये प्रतीक अज्ञेय से पूर्व हिन्दी कविता में खूब आए हैं लेकिन अज्ञेय ने इन प्रतीकों का प्रयोग जिस रूप में जिस हद तक किया है उससे ये प्रतीक उनके निजी प्रतीक लगने लगे हैं। उनके ये प्रतीक निजी होते हुए भी नितान्त वैयक्तिक नहीं है जिन्हें समझा ही न जा सके। इन प्रतीकों के सामने समाज है, वह समाज जिसने प्रतीकों को अर्थ दिया है। 'सागर' ऐसा प्रतीक है जो उनकी कविता में अनेक बार अलग-अलग ढंग से आया। कहीं व्यक्ति के अन्तर्मन का, कहीं मानव जीवन की जिजीविषा का, कहीं मनुष्य के चेतन, अचेतन, अवचेतन, अर्द्धचेतन को जानने की कोशिश में आया है। अज्ञेय की जिज्ञासा है-

कहां है
तुम्हारी पहचान,
सागर कहां है?

× × × ×

ओ सागर
ओ मेरी धमनियों की आग
मेरे लहू के स्पन्दित राज-रोग
सागर
ओ महाकाल
ओ जीवन।

इसी प्रकार अज्ञेय की कविता में मछली भी एक ऐसी जिजीविषा का प्रतीक बनकर उभरी है, जो जीवन की हलचल, दबाव और टूटन को झेलकर भी अपनी अस्मिता बचाए रखना चाहती है-

हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देह-बल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

इसी प्रकार मछली से कवि अज्ञेय जीवन के अनकहे सत्य का अन्वेषण करता हुआ कहता है-

'जब जब सागर में
मछली तड़पी
तब तब हमने उसकी
गहराई को जाना है।'

बूँद भी अज्ञेय की कविता में उनकी मूल चेतना को व्यक्त करने वाला प्रतीक है। बूँद उनकी कविता में लघु इकाई है जो सागर की विशाल राशि के सम्मुख भी अपनी अस्मिता की पहचान करा देती है-

मैंने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से-
रंग गई क्षण-भर
ढलते सूरज की आग से।
मुझे भी दीख गया
हर आलोक छुआ अपनापन
हे उन्मोचन
नश्वरता के दाग से
मैंने देखा, एक बूँद............. के दाग से?

अज्ञेय भली-भांति जानते हैं कि विशाल और विराट के निर्माण में लघु का अत्यन्त महत्त्व है। बिना लघु के विशाल नामुमकिन है। अज्ञेय लघुता के इस सत्य को स जन के लिए भी सत्य मानते हैं-

एक क्षण भर और :
लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते।

आधुनिक प्रतीक

अज्ञेय ने जहाँ परम्परागत प्रतीकों का नये संदर्भ में प्रयोग किया है वहीं उन्होंने आधुनिक जीवन से भी प्रतीक चुने हैं। जिनसे वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को व्यक्त किया है। आधुनिक चेतना के कवि होने के नाते अज्ञेय अपने परिवेश के प्रति सचेत हैं। उदाहरणतः

राष्ट्रीय राजमार्ग के बीचो-बीच बैठ
पछाही भैंस
जुगाली कर रही है,
तेज दौड़ती मोटरें, लारियाँ,
पास आते सकपका जाती हैं,
भैंस की आंखों की स्थिर चितवन के आगे
मानों इंजनों की बोलती बन्द हो जाती है।

यहाँ कवि अज्ञेय ने पछाही भैंस का प्रतीक पश्चिम से आयातित तकनीकी और द ष्टि के प्रतीक के रूप में लिया है। वह इस देश के लिए उपयोगी न होकर इसकी समस्याओं की जुगाली करती है।

मिथक प्रयोग

कवि अज्ञेय ने मिथकीय, चरित्रों, अवधारणाओं तथा घटनाओं का नये संदर्भ में प्रयोग किया है। उनकी चेतना पर कुछ ऐसे सवाल आते हैं जिनका समाधान ढूंढ़ने के लिए परम्परागत प्रतीक उन्हें सार्थक नहीं दिखाई देते। इसीलिए वे उन्हें आधुनिक संदर्भ में जांचते परखते हैं। एकलव्य और द्रोणाचार्य के मिथक का प्रयोग वे आज के नैतिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाने के लिए करते हैं-

एकलव्य एक है
और आज आस्था भी उसमें क्या जाने कहीं कम हो
क्या जाने वह अंगूठा भी दे, न दे

अज्ञेय आज के इस वातावरण के प्रति व्यक्ति को ही उत्तरदायी ठहराते हैं-

मैं, मैं क्या मैं भी उत्तरदायी नहीं हूँ?
इतिहास के प्रति
चेहरे के प्रति
परम्परा के प्रति
मुकुर के प्रति
बालकों के भवितव्य के भोले विश्वास के प्रति
क्या मैं उत्तरदायी नहीं हूँ?

इसी प्रकार वे क ष्ण (नारायण) इन्द्र, कर्मनाशा, हिरण्यनाभ, ऐल, मनु, प्रजापति, वासुकी, असाध्य वीणा, इदीपस आदि मिथकों का आधुनिक संदर्भो में प्रयोग करते हैं।

बिम्ब प्रयोग

अज्ञेय की बिम्ब निर्माण प्रक्रिया में भी उनकी प्रयोगधर्मिता झलकती है। उनकी कविता में बिम्ब जीवन के किसी गहरे सत्य अथवा मूल्य का मूर्त प्रस्तुतीकरण करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

उनके बिम्ब परम्परागत शब्दों से ही निर्मित हुए हैं पर वे नए जीवन सत्य का उद्घाटन करने में प्रयोगशील द ष्टि के परिचायक हैं। जैसे सूरज, क्षितिज, नगर, चौक जैसे परम्परागत शब्दों से अत्यन्त आधुनिक वैज्ञानिक विचारभाव वाले बिम्ब का निर्माण 'हिरोशिमा' कविता में देखा जा सकता है जो त्रासदी को स्पष्ट उभारती है-

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं,
नगर के चौंक :
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नहीं,
फटी मिट्टी से।
छायाएं मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पड़ी वह सूरज
नहीं उगा था पूरब में, वह
बरसा सहसा
बीचोंबीच नगर के :
पहिये के ज्यों अरे टूट कर
बिखर गये हों
दशों दिशा में।

यह बिम्ब पाठक को आज के वैज्ञानिक अनुभव एवं विचार से जोड़ने में सक्षम है।

लय का नया स्तर

अज्ञेय ने लय के स्तर पर प्रयोग किए हैं। उनकी कविता में हमें बातचीत की लय दिखाई देती है। जिसे वाक् लय कहा जा सकता है। उन्होंने कविता की लय को संगीतात्मकता से भी मुक्त करते हुए भाषा की अपनी अन्तर्निहित लय को महत्त्व दिया। जिससे कविता जीवन की लय को व्यक्त करने में समर्थ बनी। उनकी गम्भीर से गम्भीर विचार की कविता भी बोलचाल की लय में प्रवाहित होती चलती है। उदाहरणतः

वहाँ दूर शहर में
बड़ी भारी सरकार है।
कल की सम द्धि की योजना का
फैला कारोबार है।
और यहाँ
इस पर्वती गाँव में
छोटी-से छोटी चीज की भी दरकार है।
आज भी भूख-बेबसी की
बेमुरव्वत मार है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य में प्रयोगवादी के रूप में एक विशेष छाप छोड़ी है। उनकी कविताओं में भाषा, शब्द, बिम्ब, मिथक, लय को लेकर नवीन प्रयोग मिलते हैं। जो उनके गहन अध्ययन एवं अनुभव का परिणाम है।

अध्याय-13
अज्ञेय के काव्य में समाज-संप क्ति का बोध

अज्ञेय को लेकर आलोचकों के मन में एक बात जम गई है कि अज्ञेय नितांत अहंवादी ही नही, बल्कि घोर व्यक्तिवादी है। उनकी अन्तर्मुखी व त्ति भी इस पूर्वाग्रह का पोषण करती दिखाई देती है। अज्ञेय की समाज-संप क्ति के सम्बन्ध में भी अनेक मतवाद हैं कि यह कृत्रिम है, एक मुद्रा मात्र है, इसमें अंतरंग भावों का स्पर्श नहीं है, कि यह उच्च मध्यवर्गीय व्यक्ति का वातानुकूलित डिब्बे में बैठकर कोदई खाने वाले किसान की ओर देखने-जैसा कोरी सहानुभूति से उपजा है, यह मात्र बौद्धिक है, कि अपने को सामान्य पाठकों एवं परम्परा की द ष्टि में प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से आयास सिद्ध है इत्यादि। इन सब आरोपों से लगता है कि इनके मूल में अनेक पूर्वाग्रह काम कर रहे हैं- प्रगतिवादी आलोचकों की रंगीन पट्टी, प्रतिष्ठित आलोचकों की अद्‌भुत दुष्परिवर्तनशीलता, काव्य की अपेक्षा आलोचना पर निर्भर आलोचकों की झंडाबरदारी, काव्योचित सहानुभूति का अभाव, व्यक्तिगत ईर्ष्या आदि। अतः आवश्यकता है कि उनके काव्य का पुनः सहानुभूतिपूर्ण अवलोकन करे।

अज्ञेय ने अपने व्यक्तित्व के परिमार्जन एवं संस्कार का जो अथक परिश्रम किया है, उसके मूल में उनका समाज-संप क्ति का सतत प्रयत्न का समाविष्ट है। अज्ञेय की प्रारम्भिक कविताओं में व्यक्ति और समाज के अस्वस्थ संबंधों का संकेत मिलता हैं, व्यक्ति पर समाज के अनावश्यक बोझ या आरोपण का निषेध है। 'दीपावली का एक दीप' 'बत्ती और शिखा' आदि कविताओं में कवि की यह द ष्टि देखी जा सकती है। व्यक्तित्व वैशिष्टय का एक प्रबल स्वर 'दिवाकर के प्रति दीप' कविता में भी गूँजता सुनाई देता है। दिवाकर के सामने अपनी लघुता को स्वीकार करते हुए भी दीप कहने से नहीं चूकता-

ज्योति तुम्हारी अक्षय है पर
जला-जला कर नहीं बनी है-
और इधर यह शिक्षा कपमय-
यह मेरी कितनी अपनी है!
मैं मिट्टी हूँ, पर तुम होओ धन्य इसे अपना कर।
यह लो मेरी ज्योति दिवाकर!

दीप को प्रतीक बनाकर उस समय की लिखी गई कविताओं की लघुता और आत्माभिमान से युक्त समर्पण बहुत ही प्रभावपूर्ण और वैशिष्ट्‌य युक्त लगता है। यह व्यक्ति वैशिष्ट्‌य अज्ञेय की किसी भी कविता में घोर व्यक्तिवादी-स्तर पर प्रकट नहीं होता, बल्कि समाज की एक दायित्ववान, जागरूक, जीवन्त इकाई के रूप में ही उपस्थित होता है। अज्ञेय जी का मानना है कि व्यक्ति और समाज के संबंधों में व्यक्ति की सुरक्षा, कल्याण, स्वतंत्रता, आत्मविकास ही सामाजिक नियमों की अच्छाई-बुराई से हो। क्योंकि अन्यथा सारी सामाजिकता कुछ थोड़े से लोगों की ही स्वार्थ-सिद्धि का मायाजाल बनकर रह जाती है। कवि का यह आग्रह कि व्यक्ति स्वतंत्र, सम्पन्न एवं सम द्ध बने मूलतः समाज को अधिक चैतन्यपूर्ण, स्पन्दनशील और शक्तिमान बनाने का ही आग्रह है। यह 'दीप अकेला' में इस प्राणवान, समर्थ, सर्जनशील सशक्त व्यक्तित्व का एक उदाहरण देखिए-

"यह मधु है : स्वयम् काल की मौना का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन-कामधेनु का अम त-पूत पथ;
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,

इस स्नेह-भरे मदमात दीप की यह अपराजित आस्था और समाज की अंधा-धुंध टीका-टिप्पणियों के अंधकार में भक्त की भांति लौ का दिखाना-

"यह वह विश्वास नहीं, जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयम् उसी ने नापा,
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधआते कहुए तम में,
यह सदा-द्रवित, चिर जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्ब-बाहु, यह चिर अखण्ड अपनाया।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय।

वस्तुतः अज्ञेय की यह कविता समाज और व्यक्ति के संबंधों की सच्ची व्याख्या करती है।

शोषित समाज बोध

कवि अज्ञेय की आरम्भिक कविताओं में उनका शोषित समाज बोध एक विशिष्ट स्थिति में देखा जा सकता है। 'घ णा गान' में शोसक समाज के प्रति उनका द ष्टिकोण देखिए-

"तुम जो महलों में बैठे दे सकते हो आदेश
मरने दे बच्चे, ले आओ खींचे पकड़कर केश
नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान

सुना, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घ णा का गान।

यहाँ कवि छूत-अछूत का भेद मानने वाले, कलम की ताकत रखने वाले, पूँजीपति तथा पूजा-पाठ का ढोंग रचने वालों को ललकारता है। अज्ञेय की कविताओं में कचरा ढोने वाला, गारा सानने वाला, खटिया बुनने वाला, मश्क से सड़क सींचने वाला, रूई धुनने वाला, मिट्टी गोडता कृषक, मिट्टी फोड़ता, मड़िया में रहता, और महलों को बनाता मजदूर और श्रम, कामगार कचरा ढोने वाला, सतली लिए फिरने वाला, गधे हाकने वला, तंदूर झोकने वाला, रद्दी बटोरने वाला, रेड़ी उठाने वला, रिक्शा खींचने वाला आदि शोषकों के शिकार व्यक्ति उभरकर सामने आया है। यथा-

"यह जो मिट्टी गोडता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है।
उसी की मैं साधना हूँ
यह जो मिट्टी फोड़ता है।
मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है
उसी की मैं आस्था हूँ।

अहं और समष्टि की चेतनाः

अज्ञेय की आरम्भिक कविताओं में अहंवादिता से पीड़ित और उसमें कुंठा, घुटन और समाज के प्रति अनास्था ,अविश्वास और विद्रोह के स्वर का प्राधान्य है। यहाँ उनका 'अहं' और 'समष्टि' की चेतना के बीच गहरा द्वन्द्व है। लेकिन जल्दी ही वे अहंकार के दंभ को छोड़ते हुए कहते हैं-

मैं ही हूँ वह पदाक्रांत रिरियाता कुत्ता
मैं ही हूँ वह मीनार-शिर का प्रार्थी मुल्ला
मैं वह छप्पर मल का अहंलीन शिशु भिक्षुक
और, हां, निश्चय
मैं वह तारक युग्म
अपलक-द्युति अनथक-गति, बद्ध-नियति
जो पार किए जा रहा नील-मरु प्रांगण नभ का।

मैं हूँ ये सब, ये सब मुझमें जीवित-
मेरे कारण अवगत- मेरे चेतन में अस्तित्व प्राप्त!

(इत्यलम्)

अतः इत्यलम् के अंत तक आते-आते उनका कुंठा, घुटन, अनास्था, अविश्वास का स्वर धीमा हो जाता है और 'हरी घास पर क्षण भर' काल संग्रह तक आते-आते समाज रूपी आकाश की मांग करने लगते हैं-

"प्रत्येक स्वप्न दर्शी के आगे, गति से अलग नहीं पथ कोई
अपने से बाहर आने को छोड़, नहीं आकाश दूसरा।

महानगरीय समाज का बोधः

कवि ने महानगरीय सभ्यता में रह रहे मानव-विरोधी तत्वों के प्रति विरोध व्यक्त किया है। वे नगर की असंस्कृत, अविवेकपूर्ण, अबौद्धिक संस्कृति या सभ्यता पर व्यंग्य भी करते हैं। नगर संस्कृति पर तीखी चोट 'साँप' में है-

"साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ- (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डँसना-
विष कहाँ पाया?

'महानगरः रात' भी कवि के तीखे दर्द की परिचायिका है। कवि महानगर के मानव से झकझोरते हुए पूछता है- हाँ, पर मानव, तुम हो किसके लिए?' अज्ञेय का कहना है कि मनुष्य अपने मूल अर्थ में व्यर्थ बनता जा रहा है। कवि पश्चिम के 'समूह-जन' की वास्तविक विडम्बना को व्यक्त करते हुए वैज्ञानिक संस्कृति का परिणाम दर्शाते हैं-

एक म षा। जिसमें सब डूबे हुए हैं-
क्योंकि एक सत्य जिससे सब ऊबे हुए हैं।
एक त षा जो मिट नहीं सकती, इसलिए मरने नहीं देती।
स्वातंत्र्य के नाम पर मारते हैं, मरते हैं
क्योंकि स्वातंत्र्य से डरते हैं।

कवि का कहना है कि गाँव से लोग शहर में आते हैं, रहते हैं। महानगरीय सभ्यता इनका शोषण करती है। 'एक कली' के रूप में कवि एक ग्रामीण बाला पर शहर में होने वाले शोषण को दिखाता है-

"यह कली,
जो देहात की गली में छुट-पुट अंधेरे में पली थी,
जो भोली-भाली थी;
शहर के चमचमाते राजपथ के प्रकाश में छली गई।
वह झरी नहीं;
यदि कहीं बह गई तो फिर उस बहाव से निकल नहीं सकी।
वह लहर में नहीं, भँवर में फँस गई।
वह काल के द्वारा डस ली गई।"

कवि कहता है कि देश हरा-भरा दिखाई देता है, लेकिन जब भीतरी यथार्थ को देखते हैं तो वह कटु अनुभव कराता है-

"हरे भरे हैं खेत
मगर खलिहान नहीं
बहुत महलों का मान-

मगर दो मुट्ठी धान नहीं।
x x x
भर हैं आंखें
पेट नहीं
भरे हैं बनिये के कागज
टेंट नहीं'

समाज का निम्न मध्यवर्ग खाली, भूखे पेट जिंदगी गुजार देता है जबकि अमीर लोगों की एक अलग महानगरीय संस्कृति विकसित हो रही है। यह महानगरीय संस्कृति मानवता को कुचलने के लिए सदैव तत्पर रहती है।

मानवतावादी द ष्टिः

अज्ञेय केवल समाज ही नहीं बल्कि-सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के आकांक्षी है। उनका तादात्म्य सीधा-मानव-मात्र से है। उनके अनुसार दुःखी और सुखी की आत्यन्तिक श्रोणियाँ जीवन में नहीं हैं। दुःख अपूर्णता, पीड़ा से सर्वव्यापी है। गरीबों ने इसका ठेका नहीं लिया है। अज्ञेय दोनों वर्गों से उपर उठकर संपूर्ण मानवता के गान का निश्चय करता है और काव्य में इसी संकल्प को पूरा करता दिखाई भी देता है। पूर्वा संग्रह की 'मिट्टी की ईहा' कविता का अंश देखिए-

मैं मरूँगा सुखी क्योंकि तुमने जो जीवन दिया था
उससे मैं निर्विकल्प
खेला हूँ
खुले हाथों उसे मैंने वारा है
धज्जियाँ उड़ायी हैं।

उनके काव्य में मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाला सेतु देखा जा सकता है। 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये' संग्रह में 'मैं वहाँ हूँ' कविता में स्वयं कहते हैं- ऐसा सेतु-जो मानव से मानव का हाथ मिलाने से बनता है, जो मानव को एक करता है। उनकी यह पीड़ा कई स्थलों पर व्यक्त हुई है। उनकी चेतना में मनुष्य मात्र की वेदना धड़कती रहती है-

"मेरे हर सुख में
हर दर्द में, हर यत्न, हर हार में
हर साहस, हर आघात के हर प्रतिकार में
धड़के नारायण तेरी वेदना
जो गति है मनुष्य मात्र की।"

व्यक्तिवादिता और सामाजिकताः

कवि अज्ञेय बेशक सामाजिकता को महत्त्व देते है लेकिन व्यक्तिवादिता को भी कम महत्त्व नहीं देते। उनकी 'बावरा अहेरी' में संकलित 'यह दीप अकेला' की कविता देखी जा सकती है। जिसमें 'दीप व वैयक्तिक अहं और 'पंक्ति' समष्टि का प्रतीक है-

यह दीप, अकेला, स्नेह भर
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

इसी प्रकार उनकी 'नदी के द्वीप' कविता है जहाँ द्वीप व्यष्टि का और 'नदी' समष्टि का प्रतीक रूप में उभरे हैं। यहाँ अज्ञेय ने नदी को निर्मात्री कहा है, माँ कहा है उसे संस्कार वाहिनी कहा है, व्यक्ति समाज की मात्र इकाई नहीं बल्कि विशिष्ट इकाई है। कवि नदी को सामाजिकता के रूप में प्रकट करता हुआ कहता है-

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत कूल,

सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
मैं है वह। हैं, इसी से हम बने हैं।

कवि अज्ञेय ने एक अन्य स्थान पर भी कहा है-

'अपने उड़न खटोले की खिड़की खोलो
और पैर रखो मिट्टी पर : खड़ा मिलेगा
वहाँ सामने तुम को अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा
नर, जिसकी अनझिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी है।'

अतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय व्यक्तिवादी और समाजवादी एक साथ है। वे कभी भी समाज विमुख नही रहे और न ही वे अपनी व्यक्तिकता को आहत होने देते हैं। 'भवन्ती' में कवि अज्ञेय स्पष्ट कहते हैं- "मैं फिर कहता हूँ, मैं नागरिक भी हूँ। कवि भी हूँ, हर समय दोनों हूँ, दोनों में से कोई-सा अधिकार मैं छोड़ना नहीं चाहता हूँ। लेकिन आपसे मेरा निवेदन यह है कि दोनों में से जिसे भी जब भी आप खरीदना या बरगलाना नहीं चाहते हैं, वह मैं तब नहीं हूँ।" कवि अज्ञेय तो समाज और व्यक्ति की खाई के बीच सेतु का कार्य करते है-

मैं सेतु हूँ
वह सेतु
जो मानव से मानव का हाथ
मिलने से बनता है।
जो ह्रदय से ह्रदय को,
श्रम की शिखा से श्रम की शिखा को
अनुभव के स्तम्भ से अनुभव के स्तम्भ को
मिलाता है।
जो मानव को एक करता है
समूह के अनुभव जिसकी मेहराबे हैं।

कवि अज्ञेय अपनी भटकन को पहचान कर अपने व्यक्तित्व का समाज में विलय कर देते हैं। वह अपनी जिंदगी को सबकी जिंदगी मानकर जीता है। कवि 'कितनी नावों में कितनी बार' संकलन की एक कविता में कहता भी है-

मैं उन सब की जिन्दगी जीता हूँ
जिन्होंने दुश्मन के टैंक तोड़े
जिन्होंने बम मार विमान गिराये
जिन्होंने राहों में बिछाई गई विस्फोटक सुरंगें समेटी।

अतः कहा जा सकता है कि वे व्यक्तिकता और सामाजिकता की यात्रा एक साथ तय करते हैं। उनके काव्य में सामाजिक चेतना के अनेक स्तर देखे जा सकते हैं। बेशक कवि अहं में लीन दिखाई देता हो, अस्तित्ववादी हो लेकिन उनके काल का समग्र मूल्यांकन करने पर निष्कर्ष निकलता है कि उनकी चेतना पूर्ण रूप से समाज सापेक्ष है। कवि की सामाजिक अनुभूति मानवीय संदर्भों में विविध संदर्भों को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में अंकित करने में सक्षम है। उनकी कविता में युग-मूल्यों के विघटन, मर्यादाहीनता, नग्नता, ढोंग आदि पर व्यंग्य एवं प्रहार है। आज की अर्थ-आधारित संस्कृति के मूल दोषों का संकेत है, सामान्य मानव की पक्षधरता, व्यक्ति के मूल्य एवं महत्त्व का जय-गान, समष्टि के प्रति व्यष्टि का समर्पण है। उनकी यह समष्टि जीवन्त, प्राणवान और व्यक्ति के विकास की पोषक है, मनुष्य की बीजभूत संभावनाओं में आस्था है, राष्ट्र को जीवन-मूल्यों से सम्बद्ध कर देखने का प्रयास है।

अध्याय-14
अज्ञेय का काव्य-विषयक चिंतन

अज्ञेय युग की संचेतना का प्रतिनिधि कवि ही नहीं है, बल्कि वे युग की चेतना का निरीक्षण, परीक्षण और मूल्यांकन करने वाले सजग कवि आलोचक भी हैं। अज्ञेय ने कवि के लिए काव्य-स जन के लिए व्यक्तित्व के परिष्कार को पहली शर्त माना है और कहा है कि वह नितांत आत्मकेन्द्रित न होकर विराट् जीवन के प्रति उन्मुख और समर्पित हो। 'हरी घास पर क्षण भर में कवि यही कहता है-

भावनाएँ तभी फलती हैं कि उनसे लोक के
कल्याण का अंकुर कहीं फूटे।

विराट् जीवन के प्रति समर्पित व्यक्ति की साधना किसी भी तपस्वी की साधना से कम वेदनामय नहीं होती। क्योंकि वह सगे, सम्बन्धियों और बंधुओं के कष्ट भोगता है। उनकी वेदना के सलीब का वाहक होकर उनके प्रति करुणाशील होता है। वह दायित्व भार को वहन करता है। इसीलिए उसे अपूर्णता या अत प्ति नहीं सालती और इसी कारण वह साधक कहलाता है।

आज के संक्रान्ति युग में मूल्य बोध धुँधला पड़ता जा रहा है। विज्ञान ने मनुष्य की तार्किक बुद्धि को चुनौती दी है। अज्ञेय निराशावादी नहीं है। वे विवेक और श्रद्धा से मार्ग का अन्वेषण करते हैं। वे आज के तम-भ्रांति के पिता मनुष्य को मूलतः 'आलोक सुत' मानते हैं और विश्वास दिलाते हैं कि 'तुमसे तुम्हारी सम्भावनाएँ बड़ी हैं और वे आज भी तुम्हारा दीपस्तंभ बन खड़ी हैं।; इसीलिए वे 'इन्द्रधनु रौदे हुए ये' की 'जिस दिन तुम' कविता में कहते है-

"बीहड़ में अकेले भी निश्चिन्त रहो।
स्थिर जानो :
अरे यही तो सीधी क्या, एकमात्र राह है।

अज्ञेय जीवन के यथार्थ को व्यापकता में देखते हैं। उसमें दैनंदिन व्यावहारिक जीवन की ठोस भौतिकता के साथ-साथ रहस्यवाद का स्पर्श भी है। 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'बना दे, चितेरे' कविता में कवि यही कहना चाहता है कि कवि को चाहिए कि वह दोनों जीवनांगों का अनुभव करे। सागर नैतिक जीवन का प्रतीक है और प्राणों का बुलबुला भर पीने को उछली हुई मछली अनन्त नीलिमा की ओर उन्मुख है-

"हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली
जिस की मरोड़ी हुई देह-बतली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

कवि अज्ञेय का मानना है कि काव्य-सर्जन की प्रक्रिया में कवि के लिए काव्य-वस्तु के प्रति अद्वैत की अनुभूति या साधना आवश्यक है, 'चिड़िया ने कहा' में अज्ञेय इसी बात को प्रतीकात्मक ढंग से कहते हैं-

"वह चिड़िया थी
चिड़िया
चिड़िया नहीं रही, तब से
मैं भी नहीं रहा मैं,

कवि हूँ।
कहना सब सुनना है, स्वर केवल सन्नाटा।

अतः जब तक कवि चिड़िया को देखता रहा (द्वैत था) तब तक चिड़िया, चिड़िया ही रही। परन्तु यह अनुभव जब अन्तरतम में गया, तब कवि व्यक्तित्व से अद्वैत रूप में समन्वित होकर व्यक्त हुआ।

अज्ञेय कवि के लिए यह भी कहते हैं कि 'जितना तुम्हारा सच है, 'उतना ही कहो' जो काव्यानुभूति को हृदंयगम करने की द ष्टि से महत्वपूर्ण है। सागर अगर अपनी अबधता को सह लेता है तो छोटे व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी छोटी मर्यादा को ही सही, सहे। और अपने से महान अनुभूति अगर शब्दों की पकड़ में न आए तो-

"मौन भी अभिव्यंजना है-
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो।

कवि का आशय है कि कवि को अपना उपलब्ध, अनुभूत सत्य ही व्यक्त करना चाहिए। नकली सत्य बहुत मिलते हैं लेकिन वे कवि के सत्य नहीं होते। वह किसी देवता से नहीं मिलता। कवि कहता है कि सत्य..........

तुम मेरे साथ मेरे ही आँसू से गले
मेरे ही रक्त पर गले
अनुभव के दाह पर क्षण-क्षण उकसती
मेरी अशमित चिता पर
तुम मेरी ही साथ जले।
तुम्हें तो
भस्म हो
मैंने फिर अपनी भभूत में पाया।

कवि अज्ञेय ने सर्जना के क्षण का गहरा चिन्तन करते हुए कहा है कि सर्जना के क्षण लम्बे नहीं होते, लघु होते हैं। उसकी लघुता की भी सार्थकता है। जब कवि अनुभूति के क्षण से आलोकित होकर उसको व्यक्त करता है, तब कवि के जीवन की सार्थकता सिद्ध होती है। 'मैंने देखा एक बूँद' कविता में कवि कहता है-

"एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से
रँग गयी क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।
मुझको दीख गया
सूने विराट् के सम्मुख
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से!

कवि अज्ञेय जीवन के नए आयामों से परिचित होते हुए बिम्ब, प्रतीक, अलंकार आदि का भी चिन्तन करते हैं। शब्द समाज की थाती होते हैं। शब्दों से ही हमारी चिन्तना और अनुभूति विकसित होती है। लेकिन अनुभूति की अभिव्यक्ति में घिसे-पिटे शब्द बाधक भी होते हैं। इसी कारण अज्ञेय ने शब्दों को तोड़-मरोड़ देने की बाध्यता को भी स्वीकार करते हैं। वे 'बावरा अहेरी' संकलन की 'जो कहा ही नहीं गया' कविता में कहते हैं-

"शब्द यह सही है, सब व्यर्थ हैं
पर इसीलिए कि शब्दातीत कुछ अर्थ है।

शायद केवल इतना ही; जो दर्द है
वह बड़ा है, मुझी से
सहा नहीं गया।
तभी तो, जो अभी और रहा, वह
कहा नहीं गया।

अज्ञेय ने अनुभूति की ताजगी और नव्यता को स्वीकारने के साथ घिसे-पिटे प्रतीकों, बिम्बों और उपमानों के प्रति असंतोष व्यक्त किया है। वे बोलचाल की भाषा में नवीन प्रतीक प्रयोग करते हैं-

"सांप,
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ- (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डसना-
विष कहाँ पाया।

संक्षेप में अज्ञेय के काव्य-विषयक चिन्तन के बारे में कहा जा सकता है कि उसने भारतीय परिवेश में साहित्यिक परम्परा का सजग चिन्तन और साहित्य को नई दिशा देने का मूल्यवान कार्य किया है। अज्ञेय बेशक राही न हों पर राहों के अन्वेषक जरूर हैं।

अध्याय-15
अज्ञेय का काव्य वैशिष्ट्य

किसी भी स जनात्मक प्रतिभा के काव्य का सौष्ठव, उसके द्वारा प्रयुक्त भाव एवं कला पक्ष में निहित होता है। अज्ञेय भाव एवं शिल्प के कुशल चितेरे हैं। उन्होंने जहाँ अपने काव्य में भाव के स्तर पर नव्य प्रयोग किए हैं वहीं पर शिल्प के क्षेत्र में भी नव्य प्रतीक एवं उपमानों का अन्वेषण किया है। भाव के स्तर पर अज्ञेय जी ने साहित्य में प्रथम बार क्षण महत्व का प्रतिपादन किया और बताया कि मानव जीवन में सुख का क्षण सबसे महान है। व्यक्ति को उस क्षण का पूरी तन्मयता से आनन्द उठाना चाहिए-

"झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा
वैसा सूर्यास्त फिर नहीं दिखा।"

अज्ञेय जी ने साहित्य में अपने काव्य के माध्यम से वेदना की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। अज्ञेय के विषय में विशेष बात यह है कि दर्द को उन्होंने उतना भोगा नहीं है, जितना कि सोचा। वास्तव में अज्ञेय वह दर्द सहते हैं जो भविष्य में होने वाला है और यह वास्तविकता है कि भविष्य का दर्द वर्तमान की अपेक्षा भयंकर होता है-

"वह अन्त समय विश्वास भरी
जग से फिर संन्यास भरी
अपनी पीड़ा की तड़पन में
भी भर पीड़ा से त्रास भरी।"

अज्ञेय के काव्य में अहं की प्रधानता है। उनकी कविता का ताना बाना 'अहं' के चारों ओर बुना गया है। अज्ञेय ने अपने अहं को स्वयं स्वीकार करते हुए कहा है-

"अन्य मानवों की भान्ति अहं मुझमें भी मुखर है और आत्माभिव्यक्ति का महत्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं है।"

प्रत्येक विषय को अज्ञेय ने अपने अहं की आँखों से देखा है-

"यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो"

अज्ञेय ने अपने काव्य में नए-नए उपमानों एवं प्रतीकों का प्रयोग किया है। कवि ने ऐसे परम्परागत उपमानों एवं प्रतीकों को त्याग दिया है जो कि काल वाह्य हो चुके हैं और अपनी मानसिक संवेदना को नए उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है-

"ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए कूच
कभी बासन अधिक घिसने से
मुलम्मा छूट जाता है।"

अज्ञेय ने अपने काव्य के माध्यम से अपने युग की संवेदना को अभिव्यक्ति दी है। अज्ञेय ने युग और व्यक्ति के मध्य दबाव और तनाव को महसूस किया, युग की गति को पहचाना और जीवन के वास्तविक रूप को अभिव्यक्त किया है-

"दुख हुआ
उसे हम सह न सके।
सस्पर्श व हत का उतरा सुरसरि-सा
हम बह न सके
यो बीत गया सब : हम मरे नहीं पर हाय। कदाचित जीवित भी हम
रह न सके।"

अज्ञेय के काव्य में अभिजात वर्ग के प्रति विद्रोह और निम्न वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति के दर्शन होते हैं। अज्ञेय उच्च वर्ग को ललकारते हुए कहते हैं-

"ठहर, ठहर, आततायी। जरा सुन ले
मेरे कुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्दस्फीत, अतल, अतुलनीय
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले
क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले-
मेरे द ढ़ पौरुष की एक चोट सह ले।"

अनास्था एवं संशय अज्ञेय के काव्य का महत्त्वपूर्ण तत्व है। पूंजीवादी संस्कृति देश में आ गई थी जो कि मानवतावाद की भावना को निगल रही थी। व्यक्ति छोटी-छोटी सीमाओं में कैद हो गया था तथा उच्च वर्ग के प्रति किया गया विद्रोह असफल हो गया था। उस विद्रोह की असफलता ने व्यक्ति को निराश बना दिया था। अतः साहित्य में भी अनास्था और संशय को अभिव्यक्ति मिलने लगी-

"यह जो दिशा लिए तुम चले खोजने सत्य बताओ
क्या प्रबन्ध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वह जलेगी सदा
अकम्पित, उज्जवल, एक रूप, निर्धूम।"

अज्ञेय के काव्य में आगे चलकर आस्था और भविष्य में विश्वास की पर्याप्त अभिव्यक्ति हुई है-

"मैं आस्था हूँ
मैं तो निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ

× × × × × ×

जो मेरा कर्म है, उसमें मुझे सशंय कानामधारी
वह मेरा अपनी सांझ-सा पहचाना है।"

अज्ञेय के काव्य में अस्तित्व बोध की अभिव्यक्ति भी प्रमुखता से हुई है। नियति की क्रूरता से सहमा व्यक्ति जब आत्मरक्षा की भावना से छटपटाने लगा तब यह आत्म रक्षा की भावना ही अस्तित्व के नाम से पुकारी जाने लगी-

"होने और न होने की सीमा रेखा पर
सदा बने रहने का
अधिसार व्रत जिसने ठाना सहज ठन गया जिससे
वही जिया पा गया अर्थ।"

अज्ञेय के काव्य का शिल्प पक्ष भी और भाव पक्ष भी अत्यन्त सुन्दर है अज्ञेय ने शिल्प के स्तर पर भी अनेक नए प्रयोग किए हैं, जिनसे उनका काव्य अत्यन्त प्रभावी बन गया है। काव्य की भाषा के सम्बन्ध में अज्ञेय का विचार है कि-

"कविता की भाषा के लिए बोल-चाल की भाषा सर्वदा आदर्शरूप में रहती है और रहनी चाहिए।"

अज्ञेय ने अपने काव्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का बहुलता से रूचिर प्रयोग किया है-

"देखो देह-
बल्ली
भव्य बीज रूपांकरों का
निर्गधा उव किंशुका।
गन्ध के उपभोक्ता
किन्तु कहें तो
कब हम वसन्त के उन्मेष
x x x x
जीवन के चिरन्तन
स्वयम्भाव का प्रतीक?
देखो
क्रीडाहीनः इस कान्ति को
x x x x
एक ज्योति
अस्मिता इयता की
ज्वाला
अपराजिता अनाव ता।"

अज्ञेय ने अपने काव्य में मूँछ, खुरदरे, बलखाते, जाट, खाट आदि सामान्य बोल-चाल की भाषा के शब्दों का भी बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है-

"और इस मूछ के
हवाई बाल जब
बलखाते धरती पर लहराते
मँडराते चेहरों पर हमारे
तो उनके चुभते हुए खुरदरे परस में
खरोंच उभरती है लाल-ला।"

अज्ञेय ने उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी अपने काव्य में अत्यन्त कुशलता से किया है। मोटर, बैंच, पार्क, मुलम्मा, हाशिया आदि शब्दों के प्रयोग से अज्ञेय का काव्य सुन्दर बन बड़ा है-

मनोहर शक्तिशाली
दुर्जनों के भवन में
'प्रचण्ड शौर्यवान अंट-संट वरदान!
खूब रंगदारी है
विपरीत दोनों दूर छोरों द्वारा पुजकर
स्वर्ग के पुल पर
चुंगी के चौकदार
भ्रष्टाचारी मजिस्ट्रेट, रिश्वतखोर थानेदार।"

अज्ञेय की भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यथा-

"शरद चाँदनी
बरसी
अँजुरी भर कर पीली........
उठी ललक
हिय उमंग
अनकही
अलसानी
उठी लालसा
मीठी
खड़े रहो ठिंग
गहो हाथ
पाहुन मनमाने।"

अज्ञेय ने अपने काव्य में अनेक 'उन्नीत' जैसे नए शब्दों का प्रयोग भी किया है। उन्होंने वर्णागम, वर्णालोप, स्वरागम पर स्वर लोप भी अपने काव्य में प्रचुरता से किया है। यथा- तिरते (तैरते), कांक्षा (आकांक्षा, थिर (स्थिर) आदि।

अज्ञेय ने अपने काव्य में कहावतों एवं मुहावरों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उन्होंने, अपने काव्य में 'आँचल बाँचल', 'अंटी टटोलना', 'तन कर रहना', पल्ला छुड़ाना, दामन पाक रखना, फब़तियाँ कसना, मुलम्मा छूटना आदि मुहावरों का रूचिर प्रयोग किया है। कई बार अज्ञेय ने एक ही कविता में अनेक मुहावरों की झड़ी लगा की है-

"कवि (नभाचारी) मिट्टी की ओर मत देखना
गहरे न जाना कहीं
आँचल बनवाना सदा
दामन हमेशा पाक रखना
पंकज-सा पंक में
x x x
धाक रखना नाम रखना
नाक रखना।"

अपने काव्य में अज्ञेय ने कहीं-कहीं पुल्लिंग को स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग को पुल्लिंग के रूप में प्रयोग किया है-

(i) स्त्रीलिंग पुल्लिंग के रूप में-

"गीति

बोलाः

नहीं फिर आना होगा

(ii) पुल्लिंग से स्त्रीलिंग-

"जब विरह पहुँच सीमा पर
आत्यान्तिक हो जाती है
उसकी अबाधता ही तो
प्रियतम को पा जाती है।"

अतः अज्ञेय के काव्य में भाव एवं शिल्प दोनों ही स्तरों पर वैशिष्ट्य है। उनकी अपनी पहचान है। उन्होंने प्रयोगशील द ष्टि का अन्वेषण किया है जिसे समकालीन कवियों ने भी अपनाया है।

अध्याय-16
अज्ञेय की काव्य भाषा

भाषा किसी भी स जनात्मक प्रतिभा के भावों का सम्बल होती है। भाषा के माध्यम से ही कोई कवि या साहित्यकार अपनी वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अज्ञेय बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। अज्ञेय की कविता की वर्तमान में केवल इसी लिए हैं क्योंकि कवि ने अपनी मानसिक संकल्पना को अभिव्यक्त करने के लिए सटीक माध्यमों की खोज की है। अज्ञेय काव्य में सामान्य जन की भाषा के प्रयोग के जबर्दस्त पक्षधर रहे हैं। उनकी स्वाकारोक्ति है कि-

"कविता की भाषा के लिए बोलचाल की भाषा सवर्दा आदर्श के रूप में रहती है और रहनी चाहिए।"

डॉ. राम दरशमिश्र ने अज्ञेय की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है-

"अज्ञेय की भाषा के कई रूप हैं। एक रूप वह है जो जीवन की अनुभूतियों की सहजता के कारण सहज है, लोक शब्दों, लोक प्रतीकों से युक्त है तथा सहज प्रवाहमय है। दूसरा रूप वह है जो असहज प्रलम्बित वाक्यों और विशेषण मालाओं से गुम्फित तथा कलिष्ट पदों से बोझिल है।"

अज्ञेय की भाषा के बारे में डॉ. अवस्थी की मान्यता है कि अज्ञेय 'भाषा को भी निरन्तर भाँजते और चमकाते रहे हैं' अज्ञेय के काव्य में संस्क त की तत्सम शब्दावली का बड़ा रूचिर प्रयोग हुआ है यथा - जिजविषा, नारायण अप्रतिहत, अनाहूत, अतिन्द्रिय, अभिभूत, असम्प क्त, अभिसंचित आदि। अज्ञेय के काव्य में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग कुछ इस प्रकार से हुआ है-

"टूट गए सब क त्रिम बन्धन!
नदी लाँघ कूलों की सीमा,
अर्णव उर्मि हुई, गति भीमा
अनुल्लंध्य, यद्यपि अति धीमा
है तुझको मेरा आवाहन
टूट गए सब कृत्रिम बन्धन।"

अपने काव्य में कहीं-कहीं अज्ञेय जी ने संस्क त के शब्दों की भरमार ही कर दी है-

"देखो देह-
बल्ली
भव्य बीज रूपांकरों का
निर्गधा इव किंशुकाः
गंध के उपभोक्ता किंतु कहें तो
कब हम वसन्त के उन्मेष

जीवन के चिरन्तन
स्वयम्भाव का प्रतीक?
देखो
क्रीड़ाहीन इस कान्ति को

एक ज्योति
अस्मिता इयता की

ज्वाला
अपराजिता अनाव ता।"

अज्ञेय के काव्य में आम बोल-चाल की भाषा की शब्दावली का भी सटीक प्रयोग हुआ है। अज्ञेय भारतीय लोक में पले हुए कवि हैं, इसीलिए उनके काव्य पर लोक कथाओं और लोक में प्रचलित गीतों का प्रभाव लक्षित होता है तथा इसके साथ-साथ अज्ञेय जी ने बोलियों की शब्दावली का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है-

"खड़े रहो दिग
गहो हाथ
पाहुन मन-माने।"

अज्ञेय के काव्य में प्रयुक्त सामान्य बोल-चाल का एक उदाहरण देखिए-

"बाँगर में
राजा जी का बाग है
चारों ओर दीवार है
जिसमें एक द्वार है
बीच बाग में कुँआ है
बहुत-बहुत गहरा।"

अज्ञेय ने अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए देशज-तद्भव एवं आम-बोलचाल के शब्दों से कोई परहेज नहीं किया है -

"और उस मूंछ के
हवाई बाल जब
बरखाते, धरती पर लहराते
मँडराते चेहरों पर हमारे
तो उनके चुमते हुए खुरदरे परस से
खरोंज उभरती है लाल-लाल।"

अज्ञेय ने अपने काव्य में मिश्रित शब्दों का भी बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। उनके काव्य में अंग्रेजी फारसी एवं उर्दू के शब्दों का रूचिर प्रयोग हुआ है। यथा - बेंच, मोटर, थिएटर, फ्रेम, सलीब, दामन, दीवाना, मुलम्मा आदि। अज्ञेय की मिश्रित भाषा का एक अन्य उदाहरण देखिए-

"खोजते हैं जाने क्या?
बिछोर सिफर के अंधेरे में बिला-बत्ती सफर भी खूब है।
स जन के घर में तुम
मनोहर शक्तिशाली
दुर्जनों के भवन में
प्रचण्ड शौर्यवान् अंट-शंट वरदान।
खूब रंगदारी है,
विपरीत दोनों दूर छोर द्वारा पुजकर
स्वर्ग के पुज कर
चुंगी के चौकदार
भ्रष्टाचारी मजिस्ट्रेट, रिश्वतखोर थानेदार।"

अज्ञेय ने अपने काव्य में मुहावरों, कहावतों का प्रयोग करके उसे अधिक प्रभावी बना दिया है। उनके काव्य में मुहावरों की छटा देखते ही बनती है-

"कवि तुम (नभचारी) मिट्टी की ओर मत देखना
गहरे न जाना कहीं
आँचल बचाना सदा
दामन हमेशा पाक रखना
पंकज-सा पंक में
धाक रखना
लाज रखना नाम रखना
नाक रखना।"

इसके अतिरिक्त अज्ञेय जी ने मुँह चुराना, तनकर रहना, मुलम्मा छूटना, आँखें फूटना, साँचे में ढलना आदि मुहावरों का रूचिर प्रयोग किया है। अज्ञेय जी ने कुछ शब्दों को बिल्कुल नये अर्थ में प्रयुक्त कर दिया है-

"देह
बल्ली
एक पिंजरा है? पर मन इसी में से उपजा
जिसकी 'उन्नीत' शक्ति आत्मा है।"

अज्ञेय जी ने अपने काव्य पर कहीं-कहीं ब्रजभाषा का प्रभाव भी लक्षित होता है-

"शरद चाँदनी
बरसी
अँजुरी भर कर पी लो
उठी ललक
हिय उमंग
अनकहनी
उठी लालसा
मीठी
खड़ी रहो ठिग
गहों हाथ
पाहुन मान गए।"

लिंग विचार की द ष्टि के आधार पर अज्ञेय जी ने 'आत्मा' शब्द को संस्क त के आधार पर पुल्लिंग एवं हिन्दी के आधार पर स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है-

"मेरे ऊँघते आत्मा ने कहा
तथा
आत्मा बोली
मैंने कहा सखी मेरी,
अभी न हारो अच्छी आत्मा।"

अज्ञेय जी ने कहीं-कहीं पुल्लिंग को स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग को पुल्लिंग के रूप में भी प्रयुक्त किया है-

1. स्त्रीलिंग से पुल्लिंग-

"गीति
बोलाः
नहीं, फिर आना होगा।"

2. पुल्लिंग से स्त्रीलिंग-

"जब विरह पहुँच सीमा पर
आत्यान्तिक हो जाती है
उसकी अबाद्यता ही तो
प्रियतम को पा जाती है।"

स्वयं अज्ञेय ने अपनी भाषा के बारे में कहा-"मेरी खोज भाषा की नहीं है, केवल शब्दों की खोज है। भाषा का उपयोग मैं करता हूँ निस्संदेह, लेकिन कवि के नाते जो मैं कहता हूँ वह भाषा के द्वारा नहीं केवल शब्दों के द्वारा।"

उपर्युक्त कथनों एवं तथ्यों से लक्षित होता है कि अज्ञेय की भाषा के कई रूप है। उन्होंने कविता की शुरूआत छायावादी कविता से की थी। इसीलिए उनकी आरम्भिक क तियाँ 'भग्नदूत और चिन्ता' में नारी-पुरूष की भावप्रवणता को दिखाने के लिए छायावादी भाषा की अनुगूँज दिखाई देती है। उनकी भाषा का दूसरा रूप प्रयोगवादी 'तार सप्तक' 'इत्यलम्' 'हरी घास पर क्षणभर' की कविताओं में दिखाई पड़ता है। यहाँ छायावादी भाषा की कोमलता, प्राँजलता आकार लघुता नहीं है। हाँ संस्क त पदावली है। दुरूह वाक्य योजना, वाक्य के बीच में दूसरे वाक्य की घुसपैठ, क्योंकि, इसलिए जैसे तार्किक शब्द योजना है। उनकी भाषा का तीसरा रूप नयी कविता के दौर का है। जिसमें लोकभाषा के शब्दों की स्वीक ति है। यह रूप छोटी कविताएँ-'सत्य तो बहुत मिले', 'खुली नाव', हिरोशिमा, 'सोन मछली', आदि में देखा जा सकता है। इनमें बावरा, सूरज निहारते, बिराने, बहाने, दिखावे, लुभाया, डराया परचाया, भरमाया, बिखरे, सुथरे, भूभूत, पंछी, बरसी आदि शब्द देखे जा सकते हैं। इसलिए इनकी भाषा अधिक लोकोन्मुख और संवेदनशील हो गयी है। 'असाध्य वीणा' में उनकी भाषा के प्रायः कई स्तर देखने को मिलते हैं-एक ओर अतीत के संदर्भ में वजकीर्ति, प्रियंवद, केशकम्बली, गुफा-गेह, किरीटी तरू आदि शब्दों का प्रयोग करता है तो दूसरी ओर दार्शनिकता की ध्वनि व्यंजित करने के लिए संयत, निर्वाक, अशेष आदि शब्दों का प्रयोग करता है। अस्पर्श छुअन, स्पन्दित सन्नाटा जैसे विशेषणों का प्रयोग करता है। एक ओर संस्क त पदावली के अविभाज्य अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय आदि शब्दों का प्रयोग करता है तो दूसरी ओर तिजोरी, सहमी-सी पायल, बरसात, ओट आदि शब्दों का भी प्रयोग करता है।

अध्याय-17
नदी के द्वीप : प्रतिपाद्य

कविवर अज्ञेय विरचित काव्य संकलन 'हरी घास पर क्षण भर' में संकलित 'नदी के द्वीप' एक महत्त्वपूर्ण कविता हैं। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। इस काव्य संकलन के प्रकाशन से अज्ञेय कवि नयी कविता के योद्धा कवियों में गिने जाने लगे। 'तार सप्तक' को नये प्रयोगों का घोषणा पत्र कहा जाता है। तो 'हरी घास पर क्षण भर' को नयी कविता का प्रस्थान बिन्दु। यहाँ कवि अनुभूति को नए शिल्प के साथ अभिव्यक्त करता हैं। इसी संकलन के प्रकाशन के साथ अज्ञेय जी नये युग के काव्य-प्रवर्तक के रूप में उभरकर सामने आए। इस संकलन का अज्ञेय के कवित्व जीवन में विशेष महत्त्व देखते हुए प्रभाकर माचवे का कहना है-"इस संग्रह में आकर उनकी कविता 'हरी घास पर क्षण भर। रूक गई है, शबनम की तरह नही कि जो दूसरे क्षण में ढुलक जाएगी बल्कि अतीत के शरणार्थी की भाँति जीवन के अनुभव का प्रत्यावलोकन करने आत्म मंथनरत होकर।"

'नदी के द्वीप' कविता में अज्ञेय ने नदी को समष्टि का तथा द्वीप का व्यष्टि का प्रतीक माना हैं नदी को माँ, भूखण्ड को पिता, द्वीप को पुत्र के प्रतीक रूप में उभारा है। इस संदर्भ में डॉ० ओम प्रकाश अवस्थी का कहना है-"संस्कृति से व्यक्ति उसी प्रकार घिरा है जैसे नदी से कोई भूखण्ड घिर जाता है। नदी अपनी कई धाराओं में या कम से कम दो धाराओं में बहकर बीच में एक ऐसा भूखण्ड निकाल देती है। जिसमें द्वीप को आकृति का भूखण्ड निकल आता है। नदी, द्वीप को आकार प्रदान करती है। उसको पैंगुआ कहा जाता है। पैंगुआ (कोण, गलियाँ, अन्तरीय, उभार, सैकत, कूल गोलाइयाँ) नदी के बहाव से मिट्टी के आने और कटने से बनता है। द्वीपवासियों के लिए वह माँ है। क्योंकि द्वीपवासियों का वही निर्माण करती है।" अतः कहा जा सकता है कि समाज संस्कृति रूपी नदी से घिरा है। संस्कृति नदी के समान है। जैसे नदी बहती है, द्वीप का निर्माण करती है, उसकी गोलाई, गलियाँ किनारे आदि बनाती है। वैसे ही संस्कृति प्रवाहित होती रहती है, परम्परा रूप में संस्कारित करती रहती है। व्यक्ति का द ष्टिकोण आचरण, कलात्मक वैभव, अस्तित्व आदि का निर्माण करती रहती है। वह माँ है, क्योंकि वह हमारा निर्माण करती है। वह जीवनी शक्ति है, उसका अस्तित्व है तो हमारा भी अस्तित्व है। हमारा भी तो उसके प्रति स्थिर समर्पण है।

स्थिर समर्पणः

'नदी के द्वीप' कविता का गहराई से अध्ययन करे तो हम पायेंगे कि 'अज्ञेय' स्थिर समर्पण के हामी है। यानी समर्पण में भी स्थिरता को मानते हैं। वे कहते हैं-

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं है।
स्थिर समर्पण है हमारा
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के किन्तु हम बहते नहीं है
क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ठहेंगे।सहेंगे। वह जाएगें।
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते हैं?

अज्ञेय जानते है कि चूर्ण होकर भी कभी धारा नहीं बन पाएंगे। इसलिए विशाल प्रवाह में यदि हम अस्थिर हुए तो पैर उखड़ जाएंगे और ढक जाएंगे। अज्ञेय ढहना नहीं चाहते क्योंकि ढहकर या बहकर कभी भी व्यक्तिगत, जातिगत, सांस्कृतिक अनुभव

का विकास नहीं हो सकता है। सचेत और जागरूक होकर ही हम अपनी संस्कृति का परम्परा का विकास कर सकते हैं, उसके मूल्यवान तत्वों का उपभोग कर सकते हैं।

अज्ञेय परम्परा, संस्कृति, समष्टि के स्वरूप को विकसित करना चाहते हैं। उनका मानता है कि परम्परा एक समष्टि अनुभव है, कोई स्थिर या जड़पिंड नहीं। वह निरन्तर विकासशील है मानव का विवेक भी विकासशील है इसी कारण अज्ञेय अपने विवेक का समर्पण नहीं करते क्योंकि विवेक का समर्पण करने का अर्थ है अपनी पहचान को अस्तित्व को मिटा देना। इसी कारण द्वीप नदी में रह कर भी रेत होना नहीं चाहता। अगर रेत हो भी गया तो सलिल को गंदला ही करेगा। अर्थात् परम्परा को गंदला ही करेंगे। उसका विकास नहीं कर पाएंगे। अतः कवि समष्टि के प्रति स्थायी समर्पण करता हुआ भी अपने अस्तित्व की रक्षा करता है।

संस्कार प्रवाहिनी

कवि अज्ञेय ने नदी को माँ कहा है। जैसे माँ गर्भ से बाहर बच्चे को संस्कारित करती रहती है। वैसे ही संस्कृति, परम्परा, समष्टि हमें संस्कारित करती रहती है। यहाँ कवि नदी को संकार प्रवाहिनी कहता है। इसीलिए उससे कहता कि माता जो तुम हमे संस्कार देती हो देती रहो। तुम हमें परम्परा के विशाल अनुभव से मिलाती हो और वह हमारा पिता है-

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में
वह व हद भूखंड से हमको मिलाती है।
और वह भूखंड
अपना पितर है।
× × ×
नदी, तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाम हमको मिला है, मिलता रहा है,
मांजती, संस्कार देती चलो

कवि अज्ञेय का तो यहाँ तक मानना है कि यदि तुम कभी काल-प्रवाहिनी बन जाओं जिससे हमारा व्यक्तित्व, अस्तित्व खतरे में पड़ जाए, हम ढक जाए, बह जाए तो भी हम छनेंगे, फिर जमेंगे, फिर से हमारे नए व्यक्तित्व का आधार खड़ा होगा और तुम उसे फिर से संस्कार देना। अतः बार-बार हमें संस्कारित करना।

परम्परा अथाव अनुभव राशिः

कवि व हद भूखंड को परम्परा की अथाह अनुभव राशि मानता है। इसीलिए तो वह 'नदी के कोड़' में बैठकर भी द्वीप 'ब हद भूखंड' से जुड़ने की कामना करता हैं जिस प्रकार द्वीप नदी की जलराशि के बीच में स्थित होकर अपना आकार ग्रहण करता है उसी प्रकार कवि अपनी विशाल परम्परा में स्थित होकर सर्जना के लिए नए आकार ग्रहण करता हैं कवि संसार अपनी प्राचीन परम्परा की अथाह अनुभव राशि से ही प्राप्त करता है। जिस तरह नदी में स्थित द्वीप की गोलाइयाँ, उसके उभार, आकार, प्रकार, गलियों को नदी का प्रवाह निर्मित करता है। उसी प्रकार कवि अपनी पूर्ववर्ती अनुभव राशि के द्वारा अपना स्वरूप ग्रहण करता हैं। जिस प्रकार द्वीप की जननी एवं आदि स्रोत नदी है। उसी प्रकार कवि का आदि स्रोत परम्परा है। अज्ञेय कवि यही कहना चाहता है कि इस परम्परा के विशाल अनुभव को व्यापक बनाना कवि का दायित्व हैं अतः अपने से पूर्ववर्ती काव्य परम्परा को और व्यापक बनाना कवि का दायित्व है। इसीलिए कवि 'नदी के क्रोड़' में बैठकर भी 'व हद भूखंड' अर्थात विशाल अनुभव से जुड़ने की कामना करता है-

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में
वह ब हद भूखंड से हमको मिलाती है।
और वह भूखंड
हमारा पितर है।

परम्परा अंधानुकरण नहीं है

अज्ञेय कवि सदैव ही परम्परा को कवि के लिए आदि स्रोत मानते है जो उसे संस्कार प्रदान करती है। 'नदी के द्वीप' में भी कवि यही मानते हैं लेकिन परम्परा के अंधानुकरण को नहीं स्वीकारते क्योंकि वे अपनी इयत्ता के प्रति जागरूक हैं। और उनकी इयत्ता का निर्माण आधुनिक परिस्थितियों से हुआ है। यह इयत्ता परम्परा के उस रूप को तो स्वीकार करती है जिसने उस इयत्ता को आकार दिया है, संस्कार दिया है-

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोत स्विनी बहजाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीय, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह है, इसी से हम बने हैं।

लेकिन अज्ञेय कवि परम्परा के अंधानुकरण को स्वीकार नहीं करते क्योंकि ऐसा करना अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना है। रेत हो जाना है। अतः अज्ञेय की परम्परा वहीं तक स्वीकार है। जहाँ तक वह व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है। जहाँ पर रूढ़ि रूप में वह कवि के निजत्व का अस्तित्व का चेहरा छीनने का प्रयास करती है। वहाँ उसे अस्वीकार कर देते हैं। इसीलिए अज्ञेय कवि कहता है कि हम द्वीप है, धारा नहीं है, हमारा स्थिर समर्पण है, हम बहेंगे नहीं क्योंकि बहना रेत होना है अपने अस्तित्व को विलिन करना है। अगर हम बह जाए तो चूर्ण हो जाएंगे और चूर्ण होकर भी हम धारा नहीं बन सकते अर्थात्-परम्परा का अंधानुकरण नहीं कर सकते बल्कि

रेत बन कर हम सलिल को तनिक गंदला की करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे

अहं एवं अस्तित्व

'नदी के द्वीप' कविता नदी में द्वीप के अस्तित्व को लेकर लिखी गई है। अर्थात् समष्टि में व्यक्ति के अस्तित्व को लेकर लिखी गई है। इसके मूल में मनोविज्ञान की आधुनिक अवधारणा अहं काम कर रही है। अज्ञेय परम्परा की विशाल सत्ता को तो सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं लेकिन उसके सम्मुख व्यक्तित्वहीन, अस्तित्वहीन होने का अंदेशा उन्हें बना रहता हैं इसीलिए अज्ञेय का आधुनिक प्रयोगशील द ष्टिकोण अहं परम्परा के विशाल अनुभव से टकराता है। तो वह अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व की रक्षा के प्रति सचेत हो उठता है। यही अहं व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण करता है।

इस कविता में हम देखते है कि अज्ञेय का अहं परम्परा को एक वैज्ञानिक ढंग से जांचता परखता है। वह चाहते है" कि परम्परा का स्रोत प्रवाहित होता रहे लेकिन उसमें हमारा अस्तित्व बना रहे। तभी तो वे कहते हैं।

नदी तुम बहती चलो
भूखंड से जो दाम हमको मिला है, मिलता रहा है,
मांजती, संस्कार देती चलो।

अज्ञेय को यहाँ परम्परा पर श्रद्धा ही व्यक्त नहीं करते बल्कि साथ-साथ अपने अस्तित्व की रक्षा भी करते हैं। तभी तो वे कहते हैं-

यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर
काल-प्रवाहिनी बन जाये
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।
मातः उसे फिर संस्कार तुम देना।

यहाँ कवि यही कहना चाहता है कि हम बेशक रेत हो जाए, ढक जाए, बह जाए लेकिन अस्तित्वहीन, व्यक्तित्वहीन, आकारहीन नहीं होगे। हम फिर छनेंगे, जमेंगे। अतः फिर से नए अस्तित्व में आकार में निर्मित होंगे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'नदी के द्वीप' कविता में कवि अज्ञेय समष्टि में व्यक्ति मात्र इकाई नहीं है अपितु वह विशिष्ट इकाई है। उसका अपना आकार है, व्यक्तित्व है, अस्तित्व है। परम्परा, संस्कृति, समष्टि संस्कार प्रवाहिनी है वह हमें संस्कारित करती है। हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करती है, हमें विशाल अनुभव से मिलाती है लेकिन हम अपने अस्तित्व को, व्यक्तित्व को, आकार को उसमें विलिन नहीं होने देंगे क्योंकि उसमे विलीन होना अस्तित्वहीन, व्यक्तित्वहीन आकारहीन होना होगा और परम्परा का अंधानुकरण होगा जबकि नए कवि का दायित्व है परम्परा के विशाल अनुभव से संस्कारित निर्मित हो आधुनिक प्रयोगशील अस्तित्ववादी द ष्टिकोण से उसका विकास करना। इसीलिए कवि रेत होकर भी छनने की जमने की फिर से पैर टेकने को कहता हुआ नए व्यक्तित्व के आकार की बात करता है।

अध्याय-18
असाध्य वीणा : प्रतिपाद्‌य

असाध्य वीणा एक जापानी लोककथा पर आधारित कही जाती है। पर इसके प्रत्युत्तर में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि "सम्पूर्ण रचना-क्रम में यह उतना ही गौण तथ्य है जितना यह जानना कि 'राम की शक्ति पूजा' का मूल व त्त क त्तिवास से लिया गया है, जोकि रामचरितमानस का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है।"

अज्ञेय की असाध्य वीणा कई द ष्टियों से उनकी गतिविधि रचना कही जा सकती है। हिन्दी साहित्य में प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध की क्रमशः प्रलय की छाया, राम की शक्ति पूजा, अंधेरे में कविताओं का स्थान है वहीं अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' कविता का स्थान है। यह कविता लौकिक और अलौकिक दोनों स्तरों पर चलती है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का कहना है-"19वीं शदी के भारतीय पुनर्जागरण ने लौकिक-अलौकिक, भौतिक-आध्यात्मिक के द्वैत को जिस रूप में मिटाना आरम्भ किया था, प्रसाद और निराला के काव्य में उसका अनुभव सूक्ष्मतर स्तर पर किया जा सकता है। उनकी रचनाओं ने जीवन के द्वैत को डुबोया था; 'असाध्य वीणा' में यह द्वैत रचना-प्रक्रिया में कैसे डूबता है इसका आख्यापन है। अर्थ और अनुभव का अद्वैत यों इस लंबी कविता का साध्य है।"

अहं का विलयन

प्रस्तुत कविता में लौकिक स्तर पर किरी तरू समष्टि का प्रतीक है। अलौकिक स्तर पर वह व्रह्म है, महामौन है जिसमें संगीत सोता है, विराट है, जो सर्वव्याप्त है। उसी से वीणा बनी है। वीणा व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व का प्रतीक है। कवि अज्ञेय का मानना है कि कोई भी कवि, कलाकार तभी सर्जन कर सकता है। जब वह कला के प्रतिपूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है। कवि का मानना है कि परम्परा में समाज का विशाल अनुभव कोश होता है। उसका निर्माण दिन दो दिन में नहीं होता, उसे दो चार आदमी नहीं बनाते। वह तो अनन्तकाल से चले आ रहे समाज के अनुभव का संकलन होता है। अतः किसी भी कवि, कलाकार के सम्मुख उसकी एक विशाल परम्परा एवं विशाल अनुभव राशि होती है जो उसके व्यक्तित्व को आकार देती है, उसे संस्क त बनाती है। नया कलाकार उसका ऋणी होता है। नये कलाकार को उस विशाल अनुभव के पास जाने से पहले स जनात्मक प्रक्रिया में उससे कुछ ग्रहण करने के लिए अपने अहं को उसकी विशालता के प्रति समर्पित करना पड़ता है। वह न जाने कितने प्रयोगों, कितनी मनःस्थितियों को अपने अन्दर समाये हुए होती है। उसका साधना कोई सामान्य कार्य नहीं है। अगर कोई कलाकार अहं का समर्पण नहीं करता तो वह उससे कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। इसीलिए केशकम्बली से पहले जितने भी कलाकार वीणा को बजाने के लिए आए सारे-के-सारे असफल होकर लौटे। कविता में राजा प्रियंवद को बताता है-

'मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सब की विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।'

इस वीणा को कोई भी कलावन्त इसीलिए नहीं साध सका क्योंकि उन्होंने अपने दर्प को विशाल अनुभव के प्रति समर्पित नहीं किया था। जिस विशाल अनुभव को समेटे महावट, महामौन से उस वीणा का निर्माण किया था। जिस 'किरीट तरू-तात' से वीणा का निर्माण वज्रकीर्ति ने किया था। उसका स्मरण करता हुआ कलावंत केशकम्बली गुफा-गेह कहता है-

"ओ विशाल तरू!
शत-सहस्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितनी खद्योतों ने आरती उतारी

हाँ मुझे स्मरण है:
बदली क्रौंध-पत्तियों पर वर्षा-बूदों की पट पट।
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुँक।
शिलाओं के दुलराते पन झरनों के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद।
कुहरे में छनकर आती
पर्वती गाँव के उत्सव-ढोलक की थाप।
गड़रिए की अनमनी बाँसुरी
कठफोड़े का ठेका। फुलसुँघनी की आतुर फुरकन।
कमल-कुमुद पत्रों पर चोर-पैर द्रुत धावित
जल पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलांगों की।
पंथी के घोड़े की टाप अधीर।
अचंचल धीर थाप भैसों के भारी खुरकी।

प्रक ति जीवन का यह वैविध्य और उसकी विशालता किरीटी-तरू ने अपने में समाकर रक्खा है, और उसी में से वज्रकीति ने इस वीणा को गढ़ा था। जिसका सम्पर्क स ष्टि की विशालता से था, जिसका अनुभव गहन और व्यापक था। प्रियंवद इस बात को जानता था कि उस प्राचीन विशाल अनुभव राशि के प्रति अपने अहं का समर्पण करना होगा। विनम्र होकर ही वीणा को साधा जा सकता है। इसीलिए राजा के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर भी विनम्र और गंभीर हो प्राण खींचकर वीणा का स्पर्श करता हुआ कहता है-

'राजन! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ-
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।

प्रियंवद स्वयं को कलावन्त मानने का अहं नहीं पालता। वह तो साधक है। वह शिष्य, साधक प्राचीन अनुभव राशि से बनी वीणा को देखकर, उसके स ष्टा वज्रकीति के विषय में सोचकर, उस प्राचीन किरीटी तरू के बारे में सोचकर, रोमांचित हो उठता है। क्योंकि उसे विशाल अनुभव राशि के प्रति श्रद्धा भाव से नतमस्तक होता है। यहाँ भारतीय चिन्तन की 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्'। बिना श्रद्धा के साथ प्राप्त नहीं हो सकता की अवधारणा फलीभूत होती है। कलावन्त ज्ञान एवं जीवन द ष्टि प्राप्त करना चाहता है। वास्तव में इस कविता में कलावन्त कोई और नहीं बल्कि स्वयंकृति ही है। उसकी सोच कवि की ही सोच है। अज्ञेय कवि भी जीवन-द ष्टि प्राप्त करना चाहते हैं लेकिन अहं भाव से नहीं, अहं का विलयन करके। वह कविता की, वीणा बजाने की शुरूआत में ही कहता है-

'वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया
धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।'

यह शुरूआत ही संकेत देती है कि प्रियंवद वीणा को बजाने में सफल होंगे क्योंकि उसके अहं के समर्पण की शुरूआत है। वह अपने आपको किरीटी तरू को सौंपता हुआ कहता है-

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा-
नहीं, वह स्वयं अपने को शोध रहा था।
साधन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था, उसी किरीटी-तरू को।

कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभियन्त्रित कारूवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही?"

प्रियंवद का वीणा को साधना विशाल अनुभव से साक्षात्कार करना है, उसका साधना है। उसके साधने के लिए पहले अपने से शोधता है। बिना अपने को शोधे कोई भी कलावन्त परम्परा से नहीं जुड़ सकता और दम्भ, अहं, अभिमान के साथ परम्परा की साधना की ही नहीं जा सकती क्योंकि उसमं समूचे जीवनानुभव हैं। इसीलिए प्रियंवद विशाल तरू से संवाद स्थापित करता है। वह कहता है।

'ओ दीर्घकाय!
ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज,
तात, सखा, गुरू, आश्रय,
त्राता महच्छाय
ओ व्याकुल मुखरित वन-ध्वनियों के
व न्दगान के मूर्त रूप,
मैं तुझे सुनूं
देखूं, ध्याऊ,
अनिमेष, स्तब्ध, संभत, संयुक्त, निवार्कः
कहां साहस पाऊं
छू सकूं तुझे !
तेरी कामा को छेद, बांध कर रची गयी वीणा को
किस स्पर्धा से
हाथ करे आघात
छीनने को तारों से
एक चोट में वह संचित संगीत जिसे रचने में
स्वयं न जाने कितनों के सम्पन्दित प्राण रच गये।'

प्रियंवद विशाल तरू से आह्वान करता है क्योंकि उसने स ष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों को बहुत करीब से अनुभव किया है। इसीलिए प्रियंवद के लिए वह 'तात', 'सखा', 'गुरू', 'अग्रज' है। प्रियंवद उस तरू के नाद को सुनना चाहता है। न कि सुनाना चाहता। वह तो अपने को एक माध्यम मानता है। वह परम्परा से, विशाल तरू से इसीलिए संवाद करता है। ताकि वह विनम्र हो सके। विनम्र होने की प्रक्रिया में ही वह कहता है-

'नहीं, नहीं! वीणा यह मेरी गोद रखी हो,रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोद बैठा मोद-भरा बालक हूँ,
ओ तरू-तात! संभाल मुझे।'

प्रियंवद जानता है कि कलाकार और परम्परा का सम्बन्ध अंश और अंशी का होता है। कलाकार अपनी परम्परा से कटकर उच्चकोटि का स जन नहीं कर सकता। इसीलिए वह विशाल अनुभव राशि को सम्बोधित करता हुआ कहता है-

गा तू !
यह वीणा रखी हैः तेरा अंग-अपंग
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस विद्

तू गाः
मेरे अंधियारे अन्तस में आलोक जगा
स्म ति का
श्रुति का -

प्रियंवद सर्जना के स्रोत तक पहुँचना जाता है, जहाँ उसे स्पनात्मक संस्कार मिलते है। जहाँ उसके अन्तस में परम्परा का विशाल अनुभव आलोक जगा देता है और उस आलोक में ही कलाकार नया सर्जन करता है और यह सर्जन अहं से समर्पण से ही संभव हो पाता है। यहाँ कलावन्त उस सम्पूर्ण विशाल अनुभव के प्रति अपने अहं का समर्पण करता हुआ कहता है-

मैं नहीं, नहीं! मैं कहीं नहीं!
ओ रे तरू! ओ वन!
ओ स्वर-संभार!
नाद मय संस ति!
ओ रस प्लावन!
मुझे क्षमा कर-मूल अकिंचनता को मेरी-
मुझे ओट दे-ढक ले-छाले-
ओ शरण्य!
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले!
आ, मुझे भुला,
तू उतर वीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा-
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले म गों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपने छायातप, व ष्टि पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचम को कर छन्दयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे!
तू गा, तू गा-
तू सन्निधि पा-तू जो
तू आ-तू ही-तू गा। तू गा!

अतः अज्ञेय सर्जना के लिए अहं का समर्पण आवश्यक मानते है। अज्ञेय की यही अवधारणा हमें उनकी इस 'असाध्य वीणा' कविता में देखने को मिलती हैं प्रियंवद अहं को जो विलयन करता है वह अज्ञेय अहं का ही विलयन है।

अलग-अलग दूयत्ताः

कवि अज्ञेय इस कविता के द्वारा बताना चाहते हैं कि सब की अलग-अलग इयत्ता होती है। सबके अलग-अलग अनुभव होते हैं। इसीलिए जब अहं का सम्पूर्ण समर्पण होकर वीणा झंकृत हो उठती है तो उसके संगीत में-

डूब गये सब एक साथ
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।

यानी सभी ने अलग-अलग अनुभव किया। सबकी यत्ता अलग-अलग जागी-

इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी,
संधीत हुई,
पा गयी विलय।'

यह विलयन पाकर संगीत का अनुभव एवं उसकी प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न धरातलों पर होती है। प्रत्येक को अपने निजीपन का अनुभव होता है।

सबने की अलग-अलग संगीत सुना।
इसको
वह कृपा वाक्य था प्रभुओं का
उसको
आतंक-मुक्ति का आश्वासनः
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक
उसे
बटली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुद बुद।
किसी एक को नई वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।

अतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय कवि इस 'असाध्य वीणा' में कहना चाहते है कि स ष्टि की विशाल अनुभव राशि से कोई भी कवि कलाकार तभी कुछ ग्रहण कर सकता है जब वह उसके प्रति अहं का समर्पण कर दे और अहं के समर्पण से ही सर्जन संभव है। इस सर्जन की प्रक्रिया में प्रत्येक के अलग-अलग अनुभव होते हैं।

खण्ड 'ग'

लघुत्तरीय प्रश्न

प्रश्न : 'असाध्य वीणा' कविता के प्रतिपाद्य पर पचास शब्द लिखिए।

उत्तर : इस कविता में अज्ञेय ने एक आख्यापन के द्वारा सार्थक, स जनशील व्यक्ति के समर्पण तथा मौन का रहस्यवादी चित्रण करने का प्रयास किया हैं एक राजा के पास बज्रकीर्ति द्वारा विशाल अनुभव को समोपे हुए किरीटी-तरू से गढ़ी हुई वीण थी। इस वीणा को बजाने के लिए राजा ने अनेक कलावन्तों को आमंत्रित किया किन्तु उसे कोई न बजा सका क्योंकि ये सभी उसके प्रति समर्पित नहीं हुए थे। इस वीणा का बजाने में प्रियंवद केशवम्बली गुफा गेह साधक सफल हुए क्योंकि उन्होंने अपने अहँ का समर्पण कर दिया था। प्रियंवद ने हिमशिखर, विशाल अनुभव राशि, विशाल तरू वीणा आदि के प्रति मौन समर्पण करते हुए अपनी उंगलियाँ उठाई ही थी कि वीणा स्वयं बज उठी। कवि का उद्देश्य यही है कि स्वयं को प्रकृति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित करने से ही सत्य का उद्घाटन होता है, यह सत्य ही महाशून्य है जो महामौन है, अविभाज्य है, अनुपात है, अद्रवित है और अप्रमेय है। अतः इसी सत्य को व्यक्त करना कवि का उद्देश्य रहा है। इसी कारण 'असाध्य वीणा' महामौन का शब्दहीन गान बन जाती है।

प्रश्न : अहं के विलयन पर अज्ञेय के विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : कवि अज्ञेय का मानना है कि कोई भी कोष, कलाकार तभी सर्जन कर सकता है जब वह कला के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है। कवि का मानना है कि परम्परा में समाज का विशाल अनुभव कोष होता है, उसका निर्माण दिन दो दिन में नही होता, उसे दो-चार आदमी नहीं बनाते। वह तो अनन्त काल से चले आ रहे समाज के अनुभव का संकलन होता है। अतः किसी भी कवि, कलाकार के सम्मुख उसकी एक विशाल परम्परा एवं विशाल अनुभव राशि होती है जो उसके व्यक्तित्व को आकार देती है, उसे संस्कृत बनाती हैं। कलाकर उसका ऋणी होता है। कलाकार को उस विशाल अनुभव के पास जाने से पहले स जनात्मक प्रक्रिया में उससे कुछ ग्रहण करना पड़ता है। वह न जाने कितने प्रयोगों, कितनी मनः स्थितियों को अपने अन्दर समाये हुए होती है। उसकी साधना कोई सामान्य कार्य नहीं है। अगर कोई कलाकार अंह का समर्पण नहीं करता तो वह उससे कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। इसीलिए केशवम्बली से पहले जितने भी कलाकार वीणा को बजाने के लिए आए सभी असफल होकर लौटे। इसीलिए केशवम्बली विशाल व क्ष से कहता हैं

> **'मैं नहीं, नहीं। मै। कहीं, नहीं।**
> **ओ रे तरू! ओ वन!**
> **× × ×**
> **आ मुझे भुला**
> **तू उतर वीन के तारों में**
> **अपने से गा**
> **अपने को गा।**

प्रश्न : अज्ञेय ने परम्परा को विशाल अनुभव राशि माना है इस संदर्भ में पचास शब्द लिखिए।

उत्तर : कवि अज्ञेय ने विशालता के प्रतीक के रूप में किरीटी तरू को उभारा है। उनका मनना है कि जिस तरह किरीटी तय अपने में बदली की कौंध, वर्षा बूँदों की पट-पट, महुए का चुपचाप टपकना, खग-शावक की चिहुँक, द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद, गाँव के उत्सव-ढोलक की थाप, गड़रिए की अनमानी बाँसुरी की धुन, कठफोड़ें का ठेका,

फुलसुँधनी की आतुर फुरकन, पंछी की चाप, दादुर की थाप, हिरणों की छलांग की थाप, पंथी के घोड़े की टाप, भैंसों के भारी धुर की थाप आदि को समाये हुए है उसी प्रकार परम्परा न जाने कितने-कितने अनुभव समाये हुए है। उसी परम्परा से विशालता से ही हम कुछ ग्रहण कर सर्जन करता है और यह सर्जन तभी संभव है जब हम अपने अहं को उसके प्रति समर्पित कर दें।

प्रश्न : व्यक्ति की इयत्ता पर अज्ञेय के विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : कवि अज्ञेय का मानना है कि सभी की अलग-अलग इयत्ता होती है। सब के अलग-अलग अनुभव होते हैं। 'असाध्य वीणा' में जब साधक अपने अहं का समर्पण करके वीणा को झंकृत कर देता है। तो उस संगीत में 'डूब गए सब एक साथ। सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे' और इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी, संधीत हुई, पा गयी विलय। यह विलयन पाकर संगीत का अनुभव एवं उसकी प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न धरातलों पर होती है। प्रत्येक को अपने निजीपन का अनुभव होता है।

किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल-फँसी मडली की तड़पन
एक ऊपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल, ग्राहको की आस्पर्द्धा भी बोलिया
चौथे को मन्दिर की ताल युक्त घंटा ध्वनि।'

प्रश्न : 'नदी के द्वीप' कविता के प्रतिपाद्य पर पचास शब्द लिखिए।

उत्तर : 'नदी के द्वीप' कविता में कवि अज्ञेय नदी को समष्टि को और द्वीप को व्यक्ति को प्रतीक मानकर रेखांकित करता है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व एवं महत्त्व है, लघु का, क्षण का महत्त्व है। व्यक्ति समाज की मात्र इकाई नहीं है, अपितु विशिष्ट इकाई है। कवि नहीं के बीच में उभरे छोटे-छोटे होपों के माध्यम से अस्तित्वादी व्यक्ति व्यक्तिनिष्ठ अहं एवं उनकी निजी अस्मिता के गर्व को व्याख्यायित करता हुआ कहता है कि यह द्वीपों का व्यक्तिनिष्ठ अहं ही है जो उन्हें रेत नहीं होने देता, मिट्टी कंकड़ बनकर जल मे बहने नहीं देता क्योंकि बहना अपने अस्तित्व को भुलाना हैं। जबकि अस्तित्ववादी व्यक्ति टूट सकता है, पर अपने अस्तित्व को दूसरे मे विलीन नहीं होने देता। वह अपनी रक्षा के लिए जल-प्रवाह रूपी जीवन के थपेड़े खाकर भी स्थिर और अचल रहता है यह स्थिर रहना ही उसकी घोर जिजीविषा का परिणाम है। इस कविता में कवि नदी, द्वीप और ब हद् भूखण्ड में माँ, पुत्र और पिता का सम्बन्ध स्थिर कर यह दर्शाता है कि समाज में व्यक्ति का अस्तित्व है। वह समाज की विशिष्ट इकाई है।

प्रश्न : 'हिरोशिमा' नामक कविता के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : 'हिरोशिमा' कविता में कवि ने 6,7 अगस्त 1945 को अमेरिका द्वारा जापान के दो बड़े शहरों (हिरोशिमा और नागासाकी) पर परमाणु बम गिराये जाने की घटना को सांकेतिक रूप में अंकित किया हैं। इस बम के गिराये जाने से पौने दो लाख लोगों की जान गयी थी और एक लाख से अधिक लोग घायल, अपाहिज और अंधे हो गए थे। कवि कहता है कि अचानक परमाणु बम के फटने से ऐसा प्रकाश हुआ मानो सूर्य आकाश की बजाए प थ्वी से निकल आया हो। पूर्व से निकलने की बजाए नगर के बीच से निकल आया हो, लेकिन यह सूर्य नहीं था अपितु यह परमाणु बम था। मानव द्वारा ही बनाए हुए इस परमाणु बम ने मानव को ही खत्म कर दिया। अतः कवि वैज्ञानिकता के अभिशाप की ओर द ष्टिपात कराना चाहता है।

प्रश्न : 'खुल गयी नाव' कविता के प्रतिपाद्य पर विचार व्यक्त कीजिए

उत्तर : इस कविता में कवि कहता है कि संध्याकाल में सागर के किनारे पर डूबते सूर्य की किरणों मे जल पंछी जो दिन मे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, वे भी धुंधले दिखाई देने लगे हैं और धैर्य धारण कर मौन होकर विचरण करने लगे हैं। आकश में सूना तारा निकल आया है और अपने प्रकाश से मानो दूसरे तारों को भी निमंत्रण देने लगा है। धीरे-धीरे वायु चलने लगी है, जिसमे सागर की लहरे काँपने लगी है और इन सबको देखकर हृदय में विदा की पीड़ा जाग उठी है। अतः कवि का उद्देश्य संध्याकालीन डूबते सूर्य के माध्यम से प्रिय से विदा की वेदना को व्यक्त करना है।

सूना तारा उगा
चमक कर
साथी लगा बुलाने।
तब फिर सिहरी हवा
लहरियाँ काँपी
तब फिर मूर्छित
व्यथा विदा को
जागी धीरे-धीरे।

प्रश्न : 'सत्य तो बहुत मिल' कविता में कवि अज्ञेय क्या कहना चाहते हैं?

उत्तर : कवि कहना चाहता है कि सत्यण तो बहुत मिले, जिन्हे मुझे डाराया, लुभाया, भरमाया, लेकिन वास्तविक सत्य तो मुझे तब मिला, जब वह मेरे अनुभव से निकला। यह सत्य किसी गुफा, आकाश, मोम, पत्थर से नहीं निकला था। वह किसी देवता से भी नहीं मिला, निकला था। वह मेरा अनुभूत सत्य था। वह मेरी आसुँओं से सिक्त रक्त से रंजित, मेरे आत्म अनुभव और अत प्त मन से उत्पन्न हुआ था। यह सत्य मेरे स्वयं के अनुभव से जन्मा था। यह सत्य तो मेरे शरीर की शख से बनी भभूत से मिला था अर्थात्-मेरा जीया, भोगा अनुभूत सत्य था। कवि के शब्दों में-

तुम मेरे साथ मेरे ही आँसू में गले
मेरे ही रक्त पर पले
अनुभव के दाह पर क्षण-क्षण उकसती
मेरी अशमित चिता पर
तुम मेरे ही साथ जले।
तुम
तुम्हें तो
भस्म हो
मैंने फिर अपनी भभूत में पाया।
अंग रमाया।
तभी तो पाया।

प्रश्न : 'सोन मछली' कविता में कवि क्या कहना चाहता है?

उत्तर : यहाँ पर मछली मानव की जिजीविषा अर्थात् जीने की प्रबल इच्छा का प्रतीक अनकर आई हैं। कवि कहना चाहता है कि हम काँच के बने लघु सरोवर में बंद मछलियों को जल-क्रीडायें करते हुए देखते हैं। हम बन्द मछलियों की तैरती तडत्रपन को नहीं देखते बल्कि उनके रूप सौन्दर्य को देखकर आनंदित होते हैं। इससे तो हमारी सौन्दर्य दर्शन की प्यास ही पूर्ण होती है। जबकि हम उसकी जीवनेच्छा को नहीं समझते। वास्तव में बंद मछलियाँ जल क्रिड़ाए नहीं कर रही होती, वे तो पानी का बुलबुला पीने के लिए हाफती फिरती हैं। उनका यह तैरना, तड़पना जीवन की तलाश एवं जीवन को सुरक्षित रखने का प्रयास है। अर्थात् हम उनकी सुन्दर जल क्रिड़ाओं को देखकर ही आनंदित होते रहते हैं, उनकी जिजीविषा को नहीं समझ पाते। अतः कवि का कहने का तात्पर्य है कि मानव जीवन की दशा भी यही है। और उसकी जिजीविषा भी यही है।

प्रश्न : 'मैंने देखा एक बूँद' कविता में कवि क्या कहना चाहता है।

उत्तर : कवि कहता है कि सांध्य कालीन बेला में मैंने देखा कि समुद्र के झागों से उछलकर सहसा एक बूँद बाहर गिरीं वह बूँद अस्त होते सूर्य की अरूणिम किरणों के प्रकाश में स्वयं भी स्वर्ण की भाँति झलमला रही है। सूर्य की संध्याकालीन किरणें सुनहरी होती हैं। इसीलिए क्षण भर के लिए वह बूँद भी सुनहरे रंग की दिखाई दे रही थी। कवि उस बूँद के क्षण भर के अस्तित्व को ही उसके जीवन की चरम सार्थकता मानता हुआ कहता है कि अरूणाभ किरणों में अरूण हो उठने वाली उस बूँद को देखकर मेरे हृदय मे भाव उठे कि मानव जीवन में आने वाले स्वर्णिम विशेष क्षण ही हुआ

करते हैं, जो उन्हें विशेष त प्ति प्रदान किया करते हैं। ऐसे ऋण मानव को नखरता के दाग (लाँछन या कलंक) से मुक्ति दिलाकर उसके अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं। अतः कवि यहाँ लघु क्षण के महत्त्व को प्रतिपादित करता है।

प्रश्न : 'बावरा अहेरी' कविता में कवि क्या कहना चाहता है?

उत्तर : 'बावरा अहेरी' कविता प्रातः काल के सौन्दर्य के वर्णन से सम्बन्धित है। कवि ने उषाकाल के सूर्य को बावरा अहेरी अर्थात्-पागल शिकारी कहा हैं कवि कहता है कि अरे पागल शिकारी सूर्य! विश्व में ऐसा कोई नहीं है जिसका तू वध न कर सके। सब तेरे शिकार हैं। अर्थात् तू इतना शक्तिशाली है कि तू संसार के हर प्राणी को नष्टकर सकता है। जब तू इतना शक्तिशाली है तो मेरा भी एक काम कर दे, मेरे मनकी अँधेरी गुफा में जो कालिमा छिपी है उसक धो दे, नष्ट कर दे। अर्थात् हे सूर्य मेरे अन्दर जो अहंभाव है उसे नष्ट कर दे। मेरे खण्डहर ह्रदय की एक-एक नस को अपने आलोक को रशिम-बाणों से छेद दे। मेरे असफल दिनों के कलंक को मिटा दे। मेरी आँखों में काजल डाल दे ताकि मैं तेरे ज्ञान को पहचान सकूं। ऐ! पागल शिकारी सूर्य मेरी इच्छा है कि मै तेरी प्रातः कालीन स्वर्णिम किरणों को परिधान (कपड़े) समझकर पहन सकूं। अर्थात् मैं नख से लेकर शिष्य तक तेरे ज्ञान से मंडित हो सकूँ।

बावरा अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, आफेट हैं
दुनकी ही छोड़कर क्या तू चला जायेगा?
ले, मैं खोल देता हूँ कपाट सारे
मेरे इस खंडहर ही शिरा-शिरा छोड़ दे
आलोक की अनी से अपनी।

अतः कवि ने सूर्य को ज्ञान का प्रतीक मानकर उससे प्रार्थना की है कि मेरे मन में छिपे अहंकार को नष्अ कर दे और मुझे अपने आलोक से आलोकित कर दे। स्पष्टतः कवि कहना चाहता है कि सूर्य के प्रकाश से प्रकृति एवं यन्त्र सभ्यता दोनों ही प्रकाशित होते हैं।

प्रश्न : अज्ञेय की काव्य-भाषा पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : अज्ञेय की काव्य-भाषा के बारे में डॉ० रामदरश मिश्र का कहना है- "अज्ञेय की भाषा के कई रूप है। एक रूप वह है जो जीवन की अनुकृतियों की सहजता के कारण सहज है, लोकशब्दों, लोक-प्रताकों से युक्त है तथा सहज प्रवाहमय है। दूसरा रूप वह है जो असहज प्रलम्बित वाक्यों और विशेषण मालाओं से गुम्फित तथा क्लिष्ट पदों से बोझिल है।" अपनी भाषा के बारे में स्वयं अज्ञेय का कहना है-"मेरी खोज भाषा की नहीं है, केवल शब्दों की खोज है। भाषा का उपयोग मैं करता हूँ निस्संदेह, लेकिन कवि के नाते जो मैं कहता हूँ वह भाषा के द्वारा नहीं केवल शब्दों के द्वारा।"

उपर्युक्त कथनों से लक्षित होता है कि अज्ञेय की भाषा के कई रूप हैं। उन्होंने कविता की शुरूआत छायावादी कविता से की थी। इसीलिए उनकी आरम्भिक कृतियाँ 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' में नारी पुरूष को भावप्रवणता को छिपाने के लिए छायावादी भाषा की भावुकता की अनुगूँत दिखाई देती हैं उनकी भाषा का दूसरा रूप प्रयोगवादी 'तारसप्तक', 'इत्यलम्' हरी घास पर क्षण भर की कविताओं में दिखाई पड़ता है। यहाँ छायावादी भाषा की कोमलता, प्रांजलता, आकारधुता नहीं है। हाँ संस्कृत पदावली है। दुरूह वाक्य योजना, वाक्य के बीच में दूसर वाक्य की घुसपैठ, क्योंकि इसलिए जैसे तार्किक शब्द योजना है। उनकी भाषा का तीसरा रूप नयी कविता के दौर का है। जिसमें लोकभाषा के शब्दों की स्वीकृति हैं यह रूप छोटी कविताएं 'सत्य तो बहुत मिले, खुली नाव, हिरोशिमा, सोनमछली आदि में देखा जा सकता है। इनमें बावरा, सूरज, निहारते, बिराने, बहाने, दिखावे, लुभाया, डराया, परचाया, भरमाया, बिखरे, सुधरे, भभूत, पंछी, बरसी आदि शब्द देखें जा सकते है। इसलिए इनकी भाषा अधिक लोकोन्मुख और संवेदनाशसित हो गयी है। 'असाध्य वीणा' में उनकी भाषा के प्रायः कई स्तर देखने को मिलते हैं- एक ओर अतीत के संदर्भ में बज्रकीर्ति, प्रियंवद, केशकम्बली, गुफा-गेह, किरीटी तरू आदि शब्दों का प्रयो करता है तो दूसरी ओर दार्शनिकता की ध्वनि व्यंजित करने के लिए संमत, संयुत, निर्वाक, अशेष आदि शब्दों का प्रयोग करता है। अस्पर्श छुअन, स्पन्दित सन्नाटा

जैसे विशेषणों का प्रयोग करता है। एक ओर संस्कृत पदावली के अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रेमय आदि शब्दों का प्रयोग करता है तो दूसरी ओर तिजोरी, सहमी-सी, पायल, बरसात, ओट आदि शब्दोां का भी प्रयोग करता है।

प्रश्न : सत्य में अन्वेषक के रूप में कवि अज्ञेय के विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : कवि ने अपने को राही नहीं राहों का अन्वेषक कहा है। वह स्वयं को सत्यान्वेषी मानता हैं। वह सत्य की खोज में निकला हैं और सत्य के बहुरंगी रूप देखता है।

'सत्य तो बहुत मिले
कुछ नये कुछ पुराने मिले
कुछ अपने कुछ विराने
कुछ दिखावे कुछ बहाने मिले
कुछ अकड़ू कुछ मुँह चुराने मिले।'

इनमें कुछ घुटे-मजे, सफेद पोश, कुछ दर्द भरे खानाबदोश, कुछ पड़े-खड़े, झड़े-सड़े आदि किस्म के, कुछ धुंघले, कुछ सुधरे आदि भी थे। लेकिन ये सभी कवि के सत्य नहीं हो सके। सत्य तो उनके अनुभव के दाह पर क्षण-क्षण साथ जले वे ही हैं।

'तुम्हें तो
भस्म हो
मैंने फिर अपनी भभूत में पाया।
अंग रमाया।
तभी तो पाया।

अतः कवि सत्य की खोज में निकता है और सत्य को खोज भी लेता है और उसे अभिव्यक्त भी करता है। इसी कारण तो औरों को भी यही कहता है-'जितना तुम्हारा सत्य है, उनका ही कहो।'

प्रश्न : अज्ञेय की सामाजिक चेतना पर पचास शब्द लिखिए।

उत्तर : अज्ञेय ने अपने व्यक्तित्व के परिमार्जन एवं संस्कार का जो अथक परिश्रम किया है, उसके मूल मे उनका समाज संप क्ति का सतत् प्रयत्न भी समाविष्ट हैं अज्ञेय की प्रारम्भिक कविताओं में व्यक्ति और समाज के अस्वरूप संबंधों का संकेत मिलता हैं व्यक्ति पर समाज के अनावश्यक बोझ का आरोपण का निषेध है। 'दीपावली का एक दीप' बत्ती और शिखा आदि कविताओं में कवि की यह द ष्टि देखी जा सकती है। उनका मानता है कि व्यक्ति और समाज के संबंधों में व्यक्ति की सुरक्षा, कल्याण, स्वतंत्रता, आत्म विकास ही सामाजिक नियमों की अच्छाई-बुराई से हो। क्योंकि अन्यथा सारी सामाजिकता कुछ थोड़े से लोगों की ही स्वार्थ सिद्धि का मायाजाल बनकर रह जाती है। कवि का यह आग्रह है कि व्यक्ति स्वतन्त्र, सम्पन्न एवं सम द्ध बने। मूलतः उनका यह आग्रह समाज को अधिक चैतन्यपूर्ण, स्पन्दनशील और शक्तिमान बनाने का ही आग्रह है।

कवि अज्ञेय की आरम्भिक कविताओं में शोषित समाज बोध एक विशिष्टि स्थिति में देखा जा सकता है। कवि छूत-अछूत का भेद मानने वाले, कलम की ताकत रखने वाले, पूँजीपति तथा पूजा-पाठ का ढोंग रचने वाले ललकारता हैं अज्ञेय की कविताओं में कचरे ढोने वाला, गारा सानने वाला, खतिया बुनने वाला, मश्क से सड़क खींचने वाला, रूई धुनने वाला, मिट्टी खोदता कृषक, मिट्टी फोड़ता, मडिया में रहता और महलों को बनाता मजदूर और श्रम, कामगार कचरा ढोने वाला, सतली लिए फिरने वाला, गधे हाकने वाला, तंदूर झोंकनपे वाला, रद्दी बटोरने वाला, रेड़ी उठाने वाला, रिक्सा खींचने वाला आदि शोषकों के शिकार व्यक्ति चित्र उभरकर सामने आए हैं यथा-

यह जो मिट्टी गोड़ता है।
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसी की मैं साधना हूँ
यह जो मिट्टी फोड़ता है

मडिया में रहता है और महलों को बनता है
उसी की मैं आस्था हूँ।

प्रश्न : कवि अज्ञेय के मानवतावादी विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : अज्ञेय केवल समाज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के आकांक्षी हैं उनका तादात्म्य सीधा-मानव-मात्र से हैं। उनके अनुसार दुःखी और सुखी की आत्यन्तिक श्रेणियाँ जीवन में नहीं हैं। दुःख अपूर्णता, पीड़ा से सर्वव्यापी है। गरीबों ने इसका ठेका नहीं लिया है। अज्ञेय दोनों वर्गों से ऊपर उठकर संपूर्ण मानवता के गान का निश्चय करता है और काव्य में इसी संकल्प को पूरा करता दिखाई देता है। उनके काव्य में मानव को मानव से जोड़ने वाली पीड़ा देखी जा सकती है।

मेरे हर सुख में
हर दर्द में, हर यत्न, हर हार में
हर साहस, हर आघात के हर प्रतिकार में
घड़के नारायण तेरी वेदना
जो गति है मनुष्य मात्र की।'

अज्ञेय ने तो स्वयं को मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाला सेतु कहा है। 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे' संग्रह की 'मैं वहां हूँ' कविता में कहते हैं

मैं सेतु हूँ
वह सेतु
जो मानव से मानव का हाथ
मिलने से बनता है।
जो हृदय से हृदय को,
श्रम की शिखा से श्रम की शिखा को
अनुभव के स्तम्भ से अनुभव के स्तम्भ को
मिलाता है।
जो मानव को एक करता है।

प्रश्न : अज्ञेय की कविता में परम्परा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कवि अज्ञेय परम्परा को सदा ही कवि, कलाकार के लिए आदि स्रोत मानते हैं जो उसे संस्कार प्रदान करती है। लेकिन अज्ञेय अपनी इयत्ता के प्रति जागरूक रहते हैं क्योंकि कवि की इयत्ता का निम्राण आधुनिक परिस्थितियों से हुआ है। अज्ञेय परम्परा के उसी रूप को स्वीकार करते हैं जिसे इयत्ता को संस्कार, आकार, अस्तित्व मिलता है। वे परम्परा के अंधानुकरण को स्वीकार नहीं करते क्योंकि ऐसा करना अपने अस्तित्व को मिटा देना है, रेत हो जाना है इस 'नदी के द्वीप' कविता देखी जा सकती है।

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीय, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयां उस की गढ़ी हैं।
मां है वह है, इसी से हम बेन हैं।

प्रश्न : अज्ञेय में 'अहं और दायित्व बोध पर विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : अज्ञेय का 'मैं' 'स जन में जलकर' स्वयं को सफल मानता है। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'अज्ञेय अपने सीमित अहं की शक्ति को जोड़ देना चाहते हैं।' जो स जन का स्रोत है लेकिन परम्परा में निहित जो प्रतिगामी तत्व है। वहां

अज्ञेय का अहं तना हुआ विद्रोही मुद्रा में दिखाई देता है। परन्तु अज्ञेय का अहं अभिमान और अहंकार का रूप धारण नही करता। उनका कहना है कि कवि, कलाकार उस सुख का आविष्कार करता हैं जिसे विगत युगों में कहा जा चुका है। अर्थात् अपनी परम्परा का ही शोध करता है। कवि के अहं मे तो मानव एक सामाजिक अभिव्यक्ति पाता है। कवि अज्ञेय का कहना है।

"तुम जो कुछ कहना चाहोगे
विगत युगों में कहा जा चुका
सुख का आविष्कार तुम्हारा?
बार-बार वह सहा जा चुका!
रहने दो, वह नहीं तुम्हारा
केवल अपना हो सकता जो
मानव के प्रत्येक अहं में
सामाजिक अभिव्यक्ति पा चुका!"

प्रश्न : अज्ञेय की प्रेमानुभूति पर विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : अज्ञेय की कविता में प्रेम का स्वरूप भक्तिकालीन या छायावादी कविता जैसा नहीं है। स्वयं अज्ञेय का कहना है'"प्रेम एक थका-मांदा पक्षी, जो सांझ घिरती देखकर आशंका से भी मरता है और साहस संचित करके लड़ता भी जा रहा हैं। निराशा और कुण्ठा से धैर्यपूर्ण उड़ता हुआ, किन्तु विश्वास की निष्काम अवस्था से कुछ नीचे आज के प्रेम का सर्वोत्तम सम्भव रूप यही है। अन्धकार और आलोक का अनुक्रम, ध ति और गति का सामंजस्य, वासना और विवेक का संयोग, उदासी और खण्डन के बीच में विश्वास का मुक्त स्वर जो सबल कई बार हो उठता है पर निष्कपट कभी नहीं हो पाता।" उनका यह वक्तव्य प्रेम को नयी प्रयोगशील द ष्टि से देखने का ही परिणाम है।

अज्ञेय प्रेम को अमूर्त और वायवी न बनाकर उसका सीधा रिश्ता पूर्त जीवन से जोड़ते हैं लौकिक प्रेम में आशा भी हे, आशंवा भी है। निराशा भी है और कुण्ठा भी है। उसका संबंध केवल लौकिक जीवन से ही अलौकिक से नहीं। अज्ञेय की प्रयोगशील मानसिकता मानव जीवपन के अमूर्त आवेगों को भी जीवन की वास्तविकता से जोड़कर देखती है। अज्ञेय के लिए प्रेमिमा अलौकिक नहीं बल्कि लौकिक इसी जीवन की जीति-जागती स्त्री है इसीलिए वह कहता है।

इसी जमुना के किनारे एक दिन
मैंने सुनी थी दुःख की गाथा तुम्हारी
और सहसा कहा था बेबस
तुम्हें मैं प्यार करता हूँ।
गहे थे दो हाथ मौन समाधि में
स्वीकार की।

प्रश्न : अज्ञेय के 'यौन' सम्बंधी विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : अज्ञेय कवि का रूढिबद्ध समाज और रूढिबद्ध नैतिकता के विरूद्ध मानवीय स्तर पर स जनात्मक भूमिका तैयार करता हैं। वह सैरसी को नकारने वाली प्रेम की नैतिक, दार्शनिक धार्मिक धारणाओं को एक सीमा तक तोड़कर मौन अनुभूति और अनुभव को अधिक मूलभूत रूप में स्वीकार कर प्रेम संबंधो को नए सिरे से पहचानता ओर परिभाषित करता है। लौकिक अनुभूति को बुनियादी व ति मानता है। यथा-

'थोड़ी देर
खुली-खुली
आंखे मिली
बिजलियों से दौड़े संकेत
सदियों की, संस्कारों की

नीवें हिली
अभिप्रेत हुए प्रेत।
न देहें हिलीं-डुली,
न कोई बाला,
गुंथ गयी दो दुरन्त
जिजीविषाएं
सहजता पर
हम लौट आये।

प्रश्न : अज्ञेय की बिम्ब योजना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : अज्ञेय के काव्य मे विविध इंद्रिय-बोधों के प्रभावशाली चित्र हैं जिनकी रचना में कवि ने लघु-गुरू, पुरूष-कोमल, सुखात्मक-दुःखात्मक आदि परस्पर विरोधी भावों या बोधों को एक साथ संयोजित किया है जिससे परिवेश के संक्रानत स्वरूप का उद्‌घाटन हो सका है। उदाहरण के तौर पर 'असाध्य वीणा' में 'किरी तरू' के परिवेश का समग्र बिम्ब ले सकते हैं। उन बिम्बों में रूप, स्वर, स्पर्श, घ्राण, क्रिया आदि से संबंधित सभी तरह के बिम्ब हैं- जैसे रूप बिम्ब के रूप में पल्लवन, पतझर के अनंत रूप, खद्योटों का चमकना, भौरों का उड़ना, आदि अनेक बिम्ब इस विराट बिम्ब के भीतर समाहित है। भौरों का गुंजार, चिड़ियों की काकली और अन्य अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों के स्वर-श्र व्य बिम्ब हैं। इसी प्रकार अन्य इंद्रिय बोधों के भी अनेक सुदंर बिंब भरे पड़े हैं जैसे- शिलाओं पर बहते हुए झरने में स्वर बिम्ब के साथ स्पर्श बिम्ब भी है। ये इंद्रिय बोध संबंधी बिम्ब परस्पर गुंथे हुए हैं। अर्थात् एक ही बिम्ब में विराटता और गहराई, कठोरता और कोमलता आदि के छोटे-छोटे चित्र संग्रकृत है। उदाहरणतः

कौंद लम्बी टिटिटिभ की

या

झंझा की पुकार तप्त

इसमें टिटिटभ की कौंद श्रव्य, में द श्य बिम्ब हैं। पुरार-श्रव्यबिम्ब है, तप्त स्पर्शबिम्ब है। इसी प्रकार उदाहरण और देखिए

'घनी राम मे महुए का चुपचाप टपकाना,
बदली कौंध पत्तियों में वर्षा बूँदों की पट-पट।

इसमें घनी रात की गहनता, महुए के टप-टप पड़ने के स्वर और चारों और फैलती उसकी गंध-मे तीन बोध समाहित हैं।

प्रश्न : अज्ञेय की प्रतीक योजना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : कवि अज्ञेय प्रतीक को काव्य में सत्यान्वेषण का साधन मानतें हैं। उलझी हुई, अस्पष्ट एवं रहस्यात्मक अनुभूति को प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट करते चलते हैं। वे सीधें अवचेतन से प्रतीक नहीं निकालते बल्कि जीवन और संस्कृतिक ने जोड़कर उनका स जन सचेत होकर करते हैं उनके काव्य में जो प्रतीक योजना हमें मिलती है, वह परिश्म के प्रतीकवाद से प्रभावित नहीं कही जा सकती क्योंकि उसकी जड़े भारतीय जन-साहित्य की परम्परा में ही हैं उनके लिए प्रतीक साध्य नही साधन हैं। वे प्रतीक के लिए कविता नहीं लिखते अपितु कविता के लिए प्रतीकों का चयन करते हैं। उन्होंने परम्परागत प्रतीकों को रूढ़ अर्थ में प्रयोग नहीं किया अपितु उसमें निहित अवधारणा को आधुनिकता की कसौटी पर कसा है। जैसे क्रोंच का प्रतीक प्रयोग और द्वीप का। द्वीप का व्यक्ति की अस्मिता के रूप में किया है। इसी प्रकार उन्होंने 'सागर' 'बूँद' मछली, 'हारिल' आदि का प्रयोग तो इस रूप में किया है कि ये उनके निजी प्रतीक लगने लगे हैं। मछली उनका सर्वाधिक प्रिय प्रतीक है। जिसका वे मानव जीवन की जिजीविषा के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली

जिसकी मरोड़ी हुई देह-बतली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

उनके काव्य में प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों की संख्या सबसे अधिक है। नदी द्वीप, सागर, तट, आंगन, डगर, सूर्य, तारे, बादल, मोर, बूंद इन्द्रधनु आदि उनके प्रतीक है। यहीं नहीं उन्होंने कुछ आधुनिक प्रतीक भी चुने हैं। जैसे उन्होंने परिचमी आयतित तकनीक को पछाहीं भैंस काह है।

प्रश्न : अज्ञेय की उपमान योजना बताइए।

उत्तर : अज्ञेय की उपमान योजना नूतन है। उनके उपमान सजीव एवं सटीक हैं। उन्होंने नयेपन की धुन में हास्यास्पद उपमान योजना नहीं की है, वे नये सौन्दर्य बोध से अनुप्रेरित तथा जन-जीवन से चुने गये हैं, जैसे भूमि के कंपित उरोज, कच्ची वासना के धूम-सी, सीले के कलेण्डर की तारीख, कंठारहित, इकाई, काल की दुलहिन, देह-बल्ली, पति-सेवन रत सौम्य, मां की हंसी के प्रतिबिम्ब-सी धूप, तपती वासनाएं, लजाती हुई धाटी की पगडण्डी, अनबुझे सत्य, नंगे, अंधेरे भाषा में साबुन की चिकनाई आदि। उदाहरणतः

प्यार की हवाएं सौंधों
यों ही वह जायेगी
प्यार की कोंपल एक सरस ही जाए। - रूपक
तेरी थीं वे आँखे, आर्द्र, दीप्तियुक्त
मानों किसी दूरतम
तारे की चमक हो - उत्प्रेक्षा
बंधी लीक पर रेलें लादे माल
चिहुंकती और रंभाती अफसराएँ डाँगर-सी
ढिलती चलती जाती। - उपमा

प्रश्न : 'स जना के क्षण' पर कवि अज्ञेय के विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर : कवि का स्वयं कहना है कि लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते। कवि के जीवन में एक क्षण आता हैं। वह उससे अभिभूत होता हैं। अभिभूत रहने का समय एक क्षण से अधिक का नहीं होता। स्वाति की बूंदे भले ही निर्मल त्वरा से सीपी का मर्म बेध देती हैं, उसे मुक्ता रूप में पकते बरसों लग जाते हैं। इसी प्रकार अभिभूत होने का क्षण आत्मदान देते रहने पर बरसों में सिद्धियों को पहुँचाता है। व्यक्ति को इसी क्षण के प्रति सजग होना चाहिए। उनका कहना है।

'एक क्षण-क्षण में प्रवहमान
व्याप्त सम्पूर्णता
इससे कदापि बड़ा नहीं था महा बुद्धि जो
पिमा था अगस्त्य में........
........साक्षात के क्षण का
आज हम आचमन करते हैं।'

गजानन माधव मुक्तिबोध

एम.ए.

(Previous)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक—124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

खण्ड-क	**व्याख्या**	5
खण्ड-ख	**आलोचना**	37
खण्ड-ग	**लघूत्तरी प्रश्न**	71

गजानन माधव मुक्तिबोध

खण्ड-क **व्याख्या**

खण्ड-ख **आलोचना**

खण्ड-ग **लघुत्तरी प्रश्न**

खण्ड 'क'

व्याख्या

''अंधेरे में''

कविवर गजानन माधव मुक्तिबोध द्वारा रचित काव्य संकलन ''चाँद का मुँह टेढ़ा है'' में संकलित अंतिम एवं सबसे लम्बी कविता है। इस कविता का महाकाव्यात्मक महत्त्व है। कवि ने स जनकाल में ''आशंका के दीप : अंधेरे में'' नाम दिया था किन्तु बाद में कवि की इच्छा से ही इसका 'अंधेरे में' शीर्षक रहने दिया गया। वास्तव में कवि ने यहाँ अपने रचनाकालीन परिवेश की जटिलता, शंकाएँ, संदेह, आन्तरिकता की कौंध, अभिव्यक्ति के खतरे, अभिव्यक्ति की खोज को अभिव्यक्त किया है। इस विषय में श्री शमशेर बहादुर सिंह का कहना है—''मुक्तिबोध शुक्रवारी में तिलक की मूर्ति के पास ही गली में रहा करते थे। एक्सप्रेस मील के मजदूरों पर जब गोली चली तो रिपोर्टर की हैसियत से वे घटनास्थल पर थे। उन्होंने सिरों का फूटना और खून का बहना अपनी आँखों से देखा। 'अंधेरे में' शीर्षक उनकी सशक्त और मार्मिक कविता उनके नागपुर जीवन के बहुत सारे संदर्भ अपने अंदर समेटे हुए है। मुक्तिबोध का सारा समय साधारण श्रमशील लोगों के बीच पत्रकारिता और राजनैतिक साहित्यिक बहसों में बीतता था।'' इस कथन को देखते हुए कहा जा सकता है कि कवि जहाँ जीवन-यापन कर रहा था वहाँ चारों ओर अंधकार ही व्याप्त था और यह उनके मन को आशंक्ति करता रहता है, और उन्हें इस अंधकार में से ही जीवन तत्त्व खोज लाने के लिए प्रेरित करता रहता है। शमशेर बहादुर सिंह आगे फिर लिखते हैं—''यह कविता देश के आधुनिक जन-इतिहास का, स्वतन्त्रता पूर्व और पश्चात् का एक-एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है। इसमें अजब और अद्‌भुत रूप से व्यक्ति और जान का एकीकरण है। देश की धरती, हवा, आकाश, देश की सच्ची मुक्ति आकांक्षी नस-नस इसमें फड़क रही है...... और भावनाओं के अनेक गुम्फित् स्तरों पर'' इस कविता में कवि ने अंधेरे के माध्यम से अपने आत्म तत्त्व को खोज कर अपने को समूची मानवता से जोड़ने का प्रयास किया है।

इस कविता में कवि का दोहरा चिन्तन है। अंधेरा कवि के अवचेतन का भी है और बाह्य सामाजिक विसंगतियों का भी है। इसी तरह प्रकाश बिन्दु एक ओर कवि की रचनाधार्मिता को उजागर करता है तो दूसरी ओर जीवन, समाज के अनवरत परिवर्तमान मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता दिखाता है। इस प्रकार यह लम्बी कविता काव्य संसार में मील का पत्थर है।

व्याख्या

1.

ज़िन्दगी के..............
कमरों में अँधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार;
आवाज पैरों की देती है सुनायी
बार-बार..........बार-बार,
वह नहीं दीखता..........नहीं ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक;
भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार-ध्वनि-सा
अस्तित्व जनाता

अनिवार कोई एक,
और, मेरे ह्रदय की धक-धक
पूछती है—वह कौन
सुनायी जो देता, पर नहीं देता दिखायी!
इतने में अकस्मात् गिरते हैं भीत से
फूले हुए पलस्तर,
खिरती है चूनेभरी रेत
खिसकती हैं पपड़ियाँ इस तरह—
खुद-ब-खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
द ढ़ हनु;
कोई अनजानी अन-पहचानी, आकृति।
कौन वह दिखायी जो देता, पर
नहीं जाना जाता है!!
कौन मनु? (प० 256)

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविधिर गजानन माधव मुक्तिबोध के प्रसिद्ध काव्य संकलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित अंधेरे में कविता से ली गयी हैं। यहाँ कवि अंधेरे में टहलते हुए या अन्तर्मन की गहराईयों में यात्रा करते हुए अचानक उभर आने वाली आकृति को निहार कवि का चेतन प्रश्नात्मक रूप धारण कर लेता है। यहाँ कवि उसी का वर्णन कर रहा है।

व्याख्याः कवि कहता है कि मेरा अन्तर्मन अनुभव करता है कि इस जीवन रूपी कमरे के अंधेरे में हमेशा एक अद श्य-सी आकृति चक्कर लगाती रहा करती है। अर्थात्-अन्तर्मन की गहराईयों में वैचारिकता एवं रचनाधर्मिता के स्तर पर कुछ-न-कुछ उमड़-उमड़ पड़ने की चेष्टा कर रहा है। उसके पैरों की आहट मुझे लगातार और बार-बार सुनाई देती रहती है, पर उसकी आकृति नहीं दिखाई देती तो नहीं ही दिखती। किन्तु इस अन्तर्मन की जादुई गुफा में कोई एक व्यक्ति बन्दी बना हुआ घूम जरूर रहा है। दीवार के पार से पास आती हुई सी प्रतीत होती हुई पैरों की आवाज के रूप में वह अपने अस्तित्त्व का अहसास निरन्तर कराता रहता है। अर्थात् - मेरे और उसके बीच मन-भावना रूपी दीवार होने के कारण मैं उसे भले ही न देख पाता हूँ लेकिन उसका अनिवार्यतः अहसास करता रहता हूँ। तब मेरा धुकधुकता ह्रदय प्रश्न करता है कि आखिर वह है कौन, जो सुनाई देकर केवल अपने अस्तित्त्व का अहसास कराता है। परन्तु आँखों के सामने आकर अपनी आकृति नहीं दिखाता। अर्थात् कवि अन्तर्मन में कई प्रकार के भावों की अनुभूति तो करता है पर उनका सत्ता रूप में वास्तविक दर्शन नहीं कर पाता है।

तभी जैसे समय की मार से पुराने खण्डहर या मकान फूले हुए पलस्तर अपने आप गिरने एवं झड़ने लगते हैं। चूने से भरी रेत खुरचकर झरने लगती है और इस सब से अपने आप दीवारों पर कोई बड़ी आकृति-सी बन जाती है, और दीवारों पर मुख भी बन जाता है। नुकीली नाक, ऊँचा-चमकीला मस्तक, द ढ़ ठोड़ी आदि बनकर एक परिचित-अपरिचित आकृति के रूप में प्रकट हो जाया करती है। इसी प्रकार कवि के मन में भी पुरानी-बीती घटनाओं के पलस्तर-रेत-चूना झर कर आँखों के सामने विचारों-भावों की आकृतियाँ-सी खड़ी कर रहे हैं। कवि मन की आँखों से देख लेता है पर पहचान नहीं पाता। कवि अन्तर्चेतना में उभरी अजान-अलक्षित आकृति से प्रश्न करता है—मेरे मन के अंधेरे में, विचारों की गहराई में क्या स्वयं मनु (आदि मानव) उभर आया है?

विशेषः

1. अंधेरे कमरे कवि के अन्तर्मन की अबूझ गहराई का प्रतीक है।

2. चिन्तन की गहन स्थितियों में व्यक्ति की द्वन्द्वपूर्ण मनःस्थिति का यथार्थ अंकन है।
3. दीवार से पलस्तर का गिरना कवि की विगत स्म तियों, घटनाओं, द श्यों का क्रमशः उघड़ना प्रतीकात्मक रूप है।
4. कौन मनु? से कवि का प्रश्नात्मक भाव मानवता का आरम्भ से मूल्यांकन करने से है।
5. पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का प्रयोग है।
6. भाषा-शैली अनुभूतिपरक एवं रहस्य का यथार्थ अंकन करने वाली है।

2.

अरे ! अरे ! !
तलाब के आस-पास, अंधेरे में वन-व क्ष
चमक-चमक उठते हैं, हरे-हरे, अचानक
व क्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ,
शाखाएँ, डालियाँ झूमकर झपटकर
चीख, एक दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात्
व क्षों के अंधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलिस्मी खोह का शिला-द्वार
खुलता है धड़ से
....
घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी,
अन्तराल-विवर के तम में
लाल-लाल कुहरा;
कुहरे में, सामने, रक्तालोक स्नात-पुरुष एक,
रहस्य साक्षात् ! ! **(प० 257)**

शब्दार्थः हरे = हरियाले। शीश = शिखर। तिलिस्मी खोह = जादुई गुफा, रहस्मय मनःस्थिति। शिलाद्वार = पथरीला दरवाजा। अकस्मात = अचानक। धड़ से = धड़ाक शब्द करके। अंतराल-विवर के तम में = छेद या द्वार के भीतरी अंधेरे में। रक्तालोक स्नात = प्रकाश की लालिमा में नहाया। रहस्य साक्षात = भेद साकार होना।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः अरे! अरे! गहरे अंधेरे में तालाब के आस-पास हरे-हरे जंगली व क्ष एका-एक चमक उठते हैं। अचानक व क्षों की चोटियों पर प्रकाश फैलाने वाली बिजलियाँ रह-रहकर नाच उठती हैं। व क्षों की शाखाएँ, डालियाँ तेज आँधी के एक-दूसरे पर अपना सिर-सा पटकती हुई नजर आती हैं। तभी अचानक व क्षों के गहन अंधकार में जादुई गुफा का पत्थर बना द्वार धड़-धड़ाधड़ की आवाज करता हुआ खुलता है। उसमें एक अजीब-सी लाल-लाल मशाल घुसती हुई दिखती है। उस गुफा के भीतरी भाग में लाल-लाल कुहरा छा रहा है। उस कुहरे में प्रकाश की लालिमा से नहाया हुआ-सा एक पुरुष दिखाई देता है। इस प्रकार यह सारा का सारा वातावरण एवं यह रक्तरंजित पुरुष किसी रहस्य, भेद को साकार कर रहे हैं।

विशेषः

1. इसमें कवि के अपने चारों ओर के हड़ताली वातावरण को उभारा है। जिसमें श्रमिकों पर होने वाले अत्याचार एवं खून-खराबे के वातावरण के रहस्य का अंतश्चेतना में पुनरीक्षण किया है।
2. अंधेरा, व क्ष की शाखाओं का आपस में टकराना, बिजलियों का चमकना, तिलिस्मी खोह, शिला द्वार, लाल मशाल, लाल कुहरा रक्तालोक-स्नात पुरुष आदि प्रतीक हैं। इन्हें साम्यवादी विचारधारा और उसमें अन्वित श्रमिक आन्दोलनों की देन कहा जा सकता है।
3. द श्य-बिम्ब
4. वीप्सा एवं पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार
5. भाषा में रहस्य को खोलने की अद्भुत क्षमता

3.

**वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज-सम्भावनाओं, निहित प्रभाओं, प्रतिभाओं की
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा।**

**किन्तु, वह फटे हुए वस्त्र क्यों पहने हैं?
उसका स्वर्ण-वर्ण मुख मैला क्यों?
वक्ष पर इतना बड़ा घाव कैसे हो गया?
उसने कारावास-दु:ख झेला क्यों?
उसकी इतनी भयानक स्थिति क्यों है?
रोटी उसे कौन पहुँचाता है?
कौन पानी देता है?
फिर भी, उसके मुख पर स्मित क्यों है?
प्रचण्ड शक्तिमान क्यों दिखायी देता है?**

**प्रश्न थे गम्भीर, शायद खतरनाक भी,
इसीलिए बाहर के गुंजान
जंगलों से आती हुई हवा ने
फूँक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी....
कि मुझको यों अंधेरे में पकड़कर
मौत की सजा दी!
किसी काले 'डैश' की घनी काली पट्टी ही
आँखों पर बँध गयी,
किसी खड़ी पाई की सूली पर मैं टांग, दिया गया,
किसी शून्य बिन्दू के अँधियारे खड्डे में
गिरा दिया गया मैं
अचेतन स्थिति में! (प० 258)**

शब्दार्थः अभिव्यक्तिः अभिव्यंजना, भावों का प्रकटीकरण। निहित = भीतरी। निज सम्भावनाओं = अपनी भविष्य की इच्छाओं कल्पनाओं। आविर्भाव = उदय। रिस रहे = टपक रहे। गुंजन = गहरे सूने। आत्मा की प्रतिमा = आत्मा का प्रतिरूप या चित्र।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कवि मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित लम्बी, प्रतिनिधि 'अंधेरे में' शीर्षक कविता से उद्‌घ त की गई हैं। कवि ने अपनी अंतश्चेतना में एक समग्र मानवीय समाज की परिकल्पना की है। जो जीवन रूपी गहरे अंधेरे में अभिव्यक्ति पाने के लिए मचल रही है। लेकिन जीवन में छाई विषमताएँ, निराशाएँ उसे व्यंजित नहीं होने दे रही। इन्हीं विचारों को प्रकट करता कवि कहता है।

व्याख्याः इस अंधेरी गुफा में रक्त-रंजित रूप में सहसा उभरने वाली वह दिव्य आकृति, वस्तुतः मेरे भावों, विचारों का ही स्वरूप है जो अब तक अभिव्यंजित हो पाने में असमर्थ है। मेरे ऊपर जो अब तक प्रभाव पड़े हैं, मेरे मन में जो भिन्न-भिन्न प्रतिमाएँ हैं और मेरे मन में जीवन के भविष्य की अनेकविध सम्भावनाएँ हैं, यह रहस्यपूर्ण व्यक्ति उन्हीं सब का साकार रूप है। इसके रूप में मेरे ही सम्पूर्ण मानवीय रूप एवं व्यक्तित्त्व का उद्‌य हो रहा है। मेरे मन मस्तिष्क में बौद्धिकता एवं ज्ञान-विज्ञान का संघर्ष एवं तनाव चल रहा है, यह उसी का प्रतीक है। इसे मेरी आत्मा की प्रतिमा भी कहा जा सकता है।

कवि प्रश्न करता हुआ कहता है कि वह फटे हुए कपड़े क्यों पहने हुए है? इसका सुनहरी रंग का मुँह साँवल क्यों हो गया है? और उसकी छाती पर गहरा घाव क्यों हो गया है। उसने जेल की सजा क्यों काटी। उसकी भयंकर स्थिति क्यों है? उसे कौन रोटी और पानी देता है? यह सब होते हुए भी उसके मुँह पर मुस्कराहट क्यों है? फिर भी वह शक्तिशाली क्यों दिखाई देता है?

कवि कहता है कि ये प्रश्न न केवल गम्भीर है बल्कि खतरनाक भी हैं। शायद इसीलिए बाहरी वातावरण के सूनेपन एवं वातावरण की हवा अर्थात् प्रभाव ने मेरे अन्दर की ज्ञान रूपी मशाल को फूँक मार कर ही बुझा दिया। ताकि मैं बाहरी जीवन की विषमताओं को, अत्याचारों को, अनाचारों को न देखूँ, न व्यक्त करूँ इसीलिए मुझे अंधेरे में पकड़कर मौत की सजा दी। मेरी आँखों पर काली पट्टी बाँध दी गयी है। मेरे विचारों के पीछे विराम चिह्न लगा दिया। मुझे खड़ी पाई की सूली पर टाँग दिया गया है मुझे किसी शून्य बिन्दु के गहरे-अंधेरे खड्डे में गिरा दिया गया है ताकि मैं कुछ भी न सोचूँ, व्यक्त करूँ। मुझे शून्यता की स्थिति में अवचेतन की स्थिति में पहुँचा दिया गया।

विशेषः

1. मानवीय अभिव्यक्तियों की विवशता का मार्मिक चित्रण है।
2. 'मशाल' चेतना और ज्ञान का प्रतीक है। वह क्रान्ति और संघर्ष के शंखनाद की भी प्रतीक है। 'गुंजान जंगली हवाएँ' जीवन के सूनेपन की प्रतीक हैं। 'शून्य बिन्दु के अन्धियारे खड्डे बर्बरता का प्रतीक है।
3. मशाल बुझाना, आँखों पर काली पट्टी बाँधना मानवीय अभिव्यक्ति को अवरुद्ध करने का प्रतीक है।
4. 'मौत की सजा दी' में कवि ने समकालीन परिवेश को अभिव्यक्त किया है।
5. भाषा-शैली प्रतीकात्मक है।

4.

कमजोर घुटनों को बार-बार मसल,
लड़खड़ाता हुआ मैं
उठता हूँ दरवाजा खोलने,
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पोंछता हूँ हाथ से,
अँधेरे के ओर-छोर टटोल-टटोलकर
बढ़ता हूँ आगे,
पैरों से महसूस करता हूँ धरती का फैलाव,
हाथों से महसूस करता हूँ दिशाएँ
साँसों से अनुभव करता हूँ दुनिया,
मस्तक अनुभव करता है आकाश,
दिल में तड़पता है अँधेरे का अन्दाज,
आँखें ये तथ्य को सूंघती-सी लगतीं,
केवल शक्ति है स्पर्श की गहरी।
आत्मा में, भीषण
सत्-चित-वेदना जल उठी, दहकी।
विचार हो गये विचरण-सहचर।
बढ़ता हूँ आगे,
चलता हूँ सँभल-सँभलकर,
द्वार टटोलता,
जंग-खायी जमी हुई, जबरन

चिटखनी हिलाकर
जोर लगा, दरवाजा खोलता,
झाँकता हूँ बाहर···· (प० 261)

शब्दार्थः रक्तहीन = सूखा, दुबला। शून्य = सूनापन। ओर-छोर = कूल-किनारा। अन्दाज = अनुमान। तथ्य = वास्तविकता। स्पर्श = छूना। भीषण = भयानक। सत = सत्य, अस्तित्त्व। चित्त = चेतना। दहकी = सुलगी। विवरण सहचर = विचार पाने के साथी।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कवि मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित 'अंधेरे में' कविता से उद्ध त की गई है। यहाँ कवि पुरानी बेकार मान्यताओं के त्यागने एवं नवयुग के स्वागत के बारे में अपनी अन्तरात्मा की आवाज की प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

व्याख्याः कवि विषमताओं की मार से कमजोर पड़े अपने घुटनों को बार-बार मसल कर अर्थात् उनमें शक्ति लाने का प्रयास कर लड़खड़ाते कदमों से नए युग के द्वार खोलने के लिए उठता है। कवि कहता है कि मैं आगे बढ़ने की चेष्टा करता हूँ। मैं रक्तहीन, सूखे पड़े चेहरे और उस पर छाई हुई वातावरण की बर्बरता एवं शून्यता को अपने हाथों से पोंछने का प्रयास करता हूँ। मैं अंधेरे में आगे-पीछे टटोलकर आगे बढ़ता हूँ। मैं संपूर्ण धरती पर फैली मानवता के दर्द को महसूस करता हूँ। मैं जिस दिशा में हाथ बढ़ाता हूँ उसी दिशा में वही दर्द महसूस करता हूँ और साँसों से पूरी दुनिया के दर्द को अनुभव करता हूँ। मस्तक के ऊपर आकाश का अनुभव भी करता हूँ। मेरा तड़पता दिल चारों ओर के विषम वातावरण का अनुमान लगाता है। मेरी आँखें जीवन के यथार्थ को सूँघने की कोशिश करती हैं। बस स्पर्श की शक्ति है अर्थात् जीवन के विषम वातावरण के अनुभव की शक्ति है। मेरी आत्मा में सत्य एवं नित्य वेदना की आग जलने लगी है। अब मेरे विचार ही विचार के साथी बन गए हैं। अर्थात् विचार ही मेरे उत्प्रेरक हैं। मैं आगे बढ़ता हूं सम्हल-सम्हल कर कदम रखता हूँ। बन्द दरवाजे को खोलने के लिए अर्थात् चेतना के प्रकटीकरण के लिए उसे टटोलता हूँ। जंग लगी पुरानी मान्यताओं को जबरन तोड़कर नवयुग को देखने के लिए झाँकता हूँ।

विशेषः

1. बन्द दरवाजा, बन्द चेतना का प्रतीक है। अंधेरे का अंदाज, अंध परम्पराओं, मान्यताओं का प्रतीक है।
2. नवयुग के स्वागत के लिए कवि दरवाजा खोलता है।
3. कवि जड़ मान्यताओं को और विश्व मानवीयता को खुली संवेदनात्मक द ष्टि से देखने की प्रेरणा देता है।
4. भाषा-शैली प्रतीकात्मक है।

5.

रात के दो हैं,
दूर-दूर जंगल में सियारों का हो-हो,
पास-पास आती हुई घहराती गूंजती
किसी रेलगाड़ी के पहियों की आवाज ! !
किसी अनपेक्षित
असम्भव घटना का भयानक सन्देह,
अचेतन प्रतीक्षा,
कहीं कोई रेल-एक्सीडेण्ट न हो जाय।
चिन्ता के गणित अंक
आसमानी सलेट-पट्टी पर चमकते
खिड़की से दीखते।
..
हाय ! हाय ! तॉल्सतॉय

कैसे मुझे दीख गये
सितारों के बीच-बीच
घूमते व रूकते
प थ्वी को देखते।
शायद, तॉल्सतॉय-नुमा
कोई वह आदमी
और है,
मेरे किसी भीतरी धागे का आखिरी छोर वह,
अनलिखे मेरे उपन्यास का
केन्द्रीय संवेदन
दबी हाय-हाय-नुमा,
शायद, तॉल्सतॉय-नुमा **(प० 263–64)**

शब्दार्थः हो-हो = सियारों द्वारा किया जाने वाला, हुआं, हुआं शब्द। घहराती = गहरी होती। अचेतन = अनजानी। अनपेक्षित = असम्भावित। तॉल्सतॉय = रशियन विचारक एवं लेखक। केन्द्रीय संवेदन = मूलभाव।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि रात के दो बजे हुए हैं। दूर जंगलों से सियारों की हुआं-हुआं की आवाज सुनाई दे रही है। किसी रेलगाड़ी के पास आती उसके पहियों की गरजती, गूँजती भयानक आवाज सुन रही है। अर्थात् समय चक्र चल रहा है और उसके परम्परागत क्रम भी ज्यों के त्यों चल रहे हैं। किन्तु मेरे मन में किसी अघटित, असम्भावित घटना के घटने का भयानक सन्देह है। पता नहीं क्यों मेरे अवचेतन में किसी रेल दुर्घटना के घट जाने की प्रतीक्षा हो रही है। आसमान-रूपी स्लेट की पट्टी पर चिन्ता रूपी गणित के अंक चमक रहे हैं अर्थात् डर है कि कहीं जीवन में भी कोई दुर्घटना न घट जाए।

कवि को चिन्ता के क्षणों में (War and Peace = युद्ध और शान्ति उपन्यास के) रूसी लेखक तॉल्सतॉय की याद आ जाती है। कवि कहता है कि सितारों के बीच-बीच से कभी घूमते, कभी रूककर प त्वी की ओर देखते हुए महान दार्शनिक, लेखक तॉल्सतॉय न जाने क्यों दिखाई देने लगे हैं। शायद वह तॉल्सतॉय नहीं बल्कि उसी जैसा कोई और है जो मेरे अन्तर्मन में स्थित अभिलिखित उपन्यास का केन्द्रीय संवेदन है। हाय! हाय! वह तॉल्सतॉय नुमा मेरा दबा केन्द्रीय संवेदन है।

विशेषः

1. कवि ने तॉल्सतॉय का स्मरण युद्ध और शान्ति के मिथ के रूप में किया है अर्थात् मानवता के साथ होने वाली दुर्घटनाओं से बचाने का भाव व्यंजित है।
2. रेलगाड़ी का पहिया यान्त्रिक सभ्यता अर्थात् पूंजीवादी यान्त्रिक सभ्यता का प्रतीक है।
3. अनलिखे उपन्यास का केन्द्रीय संवेदन मानवता और उसकी कल्याण कामना प्रतीत होता है।
4. द श्य बिम्ब
5. प्रतीकात्मक भाषा
6. संदेह भाव का मूल्यांकन,

6.

उनके पीछे यह क्या ! !
कैवलरी ! !
काले-काले घोड़ों पर खाकी मिलिट्री ड्रैस,
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी-गेरुआ
आधा भाग कोलतारी भैरव,
भयानक ! !

हाथों में चमचमाती सीधी खड़ी तलवार
आबदार! !
कन्धे से कमर तक कारतूसी बैल्ट है तिरछा।
कमर में, चमड़े के कवर में पिस्तौल,
रोषभरी एकाग्र द ष्टि में धार है,
कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल मार्शल
कई और सेनापति सेनाध्यक्ष
चेहरे वे मेरे जाने-बूझे-से लगते,
उनके चित्र समाचार-पत्रों में छपे थे,
उनके लेख देखे थे,
यहाँ तक कि कविताएँ पढ़ी थीं
भई वाह !
उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान्
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय, हाय ! !
यहाँ ये दीखते हैं भूत-पिशाच-काय।
भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब
साफ उभर आया है,
छुपे हुए उद्देश्य
यहाँ निखर आये हैं,
यह शोभा-यात्रा है किसी म त्यु-दल की (प० 266–67)

शब्दार्थः कैलेवरी = घुड़सवार सेना। भैरव = भयानक। आबदार = चमकीला। रोष = क्रोध। थाह = तीखापन। प्रकाण्ड = बहुत बड़ा। काय = शरीर

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित काव्य 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित महाकाव्यात्मक रूप लिए एक लम्बी कविता 'अंधेरे में' से उद्ध त हैं। सहसा दिख पड़ने वाले जुलूस उसके चमकीले बैण्ड दल एवं अन्य तरह से उसमें सम्मिलित अनेक प्रकार से परिचित साम्राज्यवादी, तानाशाही, शोषक आदि जो अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं। इन्हीं तथ्यों को कवि मुक्तिबोध अपनी अन्तः चेतना से अभिव्यक्त करता हुआ कहता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि उस जुलूस के पीछे घुड़सवार सैनिकों का दल है। काले-काले घोड़ों पर खाकी रंग वाली सैनिक पोशाक में सैनिक हैं। उनके चेहरों का आधा भाग तो सिन्दूरी गेरुएं रंग जैसा है, आधा काले कोलतार जैसा भयानक किन्तु चमकदार है। उनके हाथों में चमकती हुई तलवार है। कन्धे से कमर तक कारतूसों से भरा बैल्ट तिरछा बांधे हुए हैं। और चमड़े के कवर में लिपटा पिस्तौल भी है। उनकी क्रुद्ध और निशाना साधने वाली पैनी द ष्टि है। उनमें कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल आदि सभी टैंकों के सेनाध्यक्ष और सेनापति हैं। ये सभी चेहरे मेरे परिचित-से हैं, जाने पहचाने-से हैं क्योंकि इनके फोटो अखबारों में देखे थे। इनके लेख एवं कविताएँ पढ़ी थीं। वाह! भई वाह! इन सबके क्या कहने। इनमें तो प्रसिद्ध आलोचक, विचारक, कवि, मंत्री, उद्योगपति, विद्वान तो हैं ही साथ ही है शहर का कुख्यात हत्यारा डोमाजी उस्ताद। जो अपने को बलबन के समान समझता है। हाय! ये सभी भूत-पिशाचों के समान दिखाई देते हैं। इनके भीतर जो स्वार्थी राक्षस छिपा है वह सब इनके चेहरों पर दिखाई दे रहा है। इनके भीतर जो स्वार्थी उद्देश्य छिपे हुए हैं वे बाहर आ गए हैं। यह शोभा-यात्रा नहीं है। यह तो शव की शोभा यात्रा है।

विशेषः

1. कवि ने मंत्री, सेनापति, ब्रिगेडियर आदि के जो नाम लिये हैं वे सभी अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और साथ ही निजी स्वार्थों के प्रतीक भी हैं।
2. कवि ने सभी को एक ही थाली के चट्टे-बट्टे दिखाया है।
3. द श्य-बिम्ब
4. प्रतीकात्मकता
5. भावानुकूल भाषा का प्रयोग है।

7.

रास्ते पर भाग-दौड़ धका-पेल ! !
गैलरी से भाग मैं पसीने से सराबोर ! !

एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न-भिन्न
हो गये सब चित्र।

जागते में फिर से याद आने लगा वह स्वप्न,
फिर से याद आने लगे अंधेरे में चेहरे,
और, तब मुझे प्रतीत हुआ भयानक
गहन म तात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलतीं,
परन्तु, दिन में
बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यन्त्र
विभिन्न दफ्तरों-कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में।
हाय, हाय! मैंने उन्हें देख लिया नंगा,
इसकी मुझे और सजा मिलेगी। **(प० 267–68)**

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि मेरे अन्तर्मन में उभरने वाला वह सपना प्रतिक्रियाओं की ध्वनियाँ सुनकर एकाएक टूट गया, छिन्न-भिन्न हो गया। विचारों और स्वप्नों के सभी चित्र गायब हो गए। मेरे जाग-जाने पर वे सारे अनुभूत घटनाबद्ध स्वप्न फिर से मेरी स्म तियों में आने लगे। अंधेरे में अर्थात् गुप्त रूप से लगे स्वार्थों की सिद्धि करने वाले सारे चेहरे फिर से मेरी स्म ति में आने लग गए। मुझे प्रतीत हुआ की इस नगर में मरी हुई आत्माएँ प्रत्येक रात जुलूस में चलती हैं। अर्थात् गुप्त रूप से अपने स्वार्थों की सिद्धि में निकलते हैं। पर दिन में ये सभी आत्माएँ मिल-बैठकर विभिन्न दफ्तरों, कार्यस्थलों, केन्द्रों, घरों में बैठकर मानवता के विरुद्ध अनेक प्रकार के षड़यन्त्र रचा करती हैं।

हाय! हाय! आज मैंने इन सब षड़यन्त्रकारियों का वास्तविक रूप देख लिया है अर्थात् षड़यन्त्र रचते देख लिया है। अतः मैं उनकी स्वार्थी नीयत को और घिनौने स्वरूप को उजागर करता हूँ। इसीलिए मुझे सजा मिलेगी।

विशेषः

1. 'नगर की म तात्माएँ' कहने से कवि का तात्पर्य है कि जो जीवित तो है, पर आत्मिक, वैचारिक, मानवीय स्तर पर स्वार्थों के कारण मर गए हैं।
2. प्रतीकात्मकता एवं चित्रात्मकता है।
3. द श्य-बिम्ब योजना है।

8.

एकाएक मुझे भान होता है जग का,
अखबारी दुनिया का फैलाव,
फँसाव, घिराव, तनाव है सब ओर,
पत्ते न खड़कें
सेना ने घेर ली हैं सड़कें।
बुद्धि की मेरी रग
गिनती है समय की धकधक।
यह सब क्या है?
किसी जन-क्रान्ति के दमन-निमित्त यह
मार्शल लॉ है !!

दम छोड रहे भाग गलियों में मेरे पैर,
साँस लगी हुई है,
जमाने की जीभ निकल पड़ी है,
कोई मेरा पीछा कर रहा है लगातार।
भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़,
चौराहा दूर से ही दीखता,
वहाँ शायद कोई सैनिक पहरेदार
नहीं होगा फिलहाल।
दीखता है सामने ही अन्धकार-स्तूप-सा
भयंकर बरगद—
सभी उपेक्षितों, समस्त वंचितों,
गरीबों का वही घर, वही छत,
उसके ही तल-खोह-अँधेरे में सो रहे
ग हहीन कई प्राण।
अँधेरे में डूब गये
डालों में लटके जो मुटमैले चिथड़े
किसी एक अति दीन
पागल के धन वे।
हाँ, वहाँ रहता है सिरफिरा कोई एक। **(पृ० 268–69)**

शब्दार्थः भान होना = सूझना, ज्ञान होना। दमन-निमित्त = दबाव के लिए। मार्शल लॉ = फौजी कानून, जो दमनात्मक होता है। अंधकार-स्तूप-सा = अंधेरे का गुम्बद जैसा। वंचितों = ठगे गए।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि एकाएक संसार की वास्तविकता का स्वरूप मुझे ज्ञात होता है। चारों ओर अखबारी दुनिया का फैलाव है अर्थात् सम्पूर्ण वातावरण में एक-दूसरे को फँसाने, घेरने, का तनावपूर्ण माहौल व्याप्त है। इस मानसिक तनाव के क्षणों में सेना ने सड़के घेर ली हैं ताकि कहीं कोई विद्रोहात्मक हलचल एवं आन्दोलन क्रान्ति न हो। मेरी बौद्धिकता की रंगे समय की धड़कन को गिन रही है। बौद्धिकता के स्तर पर मन-मस्तिष्क में एक ही प्रश्न उठता है कि आखिर यह क्यों हो रहा है? क्या कहीं जन-क्रान्ति हो रही है जिसे दबाने के लिए यह मार्शल-लॉ लागू कर दिया है। परन्तु कहीं कोई क्रान्ति दिखाई नहीं देती। फिर साहस छोड़ मेरे पैर गलियों में क्यों भाग रहे हैं। सभी भाग रहे हैं। क्यों नहीं सभी जन-क्रान्ति के लिए विरोधों से भिड़ जाते, सभी

जैसे हाँफ रहे हैं। हाँफने से जीभ बाहर निकल आई है और लगता है कि कोई लगातार मेरा पीछा कर रहा है। मैं साहस छोड़ भागता हुआ कई मोड़ काट जाता हूँ। दूर से ही चौराहा दिखता है (चौराहा विभिन्न मतों, सम्प्रदायों, विचारधाराओं का प्रतीक है) अर्थात् अनेक प्रकार के विचार दूर-दूर से ही आभासित हो रहे हैं और लगता है कि इन पर अब तक कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगा है। तभी मुझे सामने ही अंधकार स्तूप-सा भयंकर बरगद जो कि जीवन का प्रतीक है, दिखाई देता है। वह बरगद (मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार जीवन स्थल) सभी उपेक्षितों, अधिकार-वंचितों, गरीबों को आश्रय देने वाली घर की छत के समान है। उसके नीचे खोह में-अंधेरे में कई ग हहीन प्राणी सो रहे हैं। एक निर्धन-व्यक्ति के कपड़े डालियों पर लटक रहे हैं। वही उस पागल के धन एवं सम्पत्ति हैं जो उस बरगद के नीचे रहता है। अर्थात् दु:खी मानवता का बरगद ही आश्रय स्थल है।

विशेष:

1. कवि ने व्यंजित किया है कि वर्तमान-पूँजीवादी-साम्राज्यवादी यान्त्रिक सभ्यता ही जीवन में समस्त प्रकार के तनावों का कारण है।
2. कवि कहता है कि मानव अपने अस्तित्त्व की स्वयं रक्षा नहीं कर सकता बल्कि उसकी रक्षा मार्क्सवादी प्रतीक बरगद की दर्शन-छाया ही कर सकती है।
3. 'चौराहा' विभिन्न मतवादों का, सेना सत्ता का, अंधकार-स्तूप-सा भयंकर बरगद जीवन की अस्पष्ट दार्शनिक विचारधारा का प्रतीक बनकर उभरे हैं।
4. जीवन की असमर्थता का विद्रूप, संत्रस्त एवं आतंकित करने वाला बिम्ब उभरा है।
5. प्रतीकात्मकता है।
6. भाषा भावानुकूल है।

9.

''....ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया ! !
उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में क़नात से तन गये,
किसी व्यभिचार के बन गये बिस्तर,

दु:खों के दागों को तमगों-सा पहना,
अपने ही ख्यालों में दिन-रात रहना,
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,
जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर,

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया ! ! **(प० 270)**

शब्दार्थ: उदरम्भरि = पेट भरने वाला। अनात्म = जड़। असंग = निर्लिप्त। निष्क्रिय = क्रियाहीन, व्यर्थ।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित ''चाँद का मुँह टेढ़ा है'' में संकलित 'अंधेरे में' शीर्षक कविता से उद्ध त हैं। चेतना के द्वन्द्व की बौखलाहट से ग्रस्त, मन की पगलाहट का प्रतीक मन, जीवन की कठोरताओं से सचेत होकर कोई पद उद्बोधन गा रहा है। कवि उसी का सार तत्त्व व्यक्त करता है।

व्याख्या: कवि कहता है कि ओ मेरे आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी मन। अब तक तुमने आदर्शों और सिद्धान्तों की राह पर चलकर मानवता की मुक्ति के लिए क्या किया है। तुमने इस आतंकपूर्ण जीवन को कैसे जिया है। तुमने केवल अपने पेट की सोची है तुम जड़ हो गए हो। तुम शादी में तनी कनातों की तरह हो अर्थात् भूत बने प्राणियों के विवाह में तनी कनातों के समान ही

जड़ बनकर रह गये हो। या तुम व्यभिचार में डूबे, अत्याचार में डूबे, शासकों, पूँजीपतियों साम्राज्यवादियों के लिए बिस्तर का ही काम कर रहे हो।

वातावरण में व्याप्त अव्यवस्था और विषमता के कारण जो अनेक प्रकार के दु:ख तुम्हारे जीवन में आए तुमने उनके प्रतिकार का प्रयास नहीं किया बल्कि उन्हें जीवन के परितोषक तमगे समझकर अपना लिया है। तुमने सुख-दु:खों से निर्लिप्त रहकर अकेले में ही सब कुछ सहते रहने को जीवन की सफलता मान लिया है अर्थात्-सामूहिक शक्ति एवं श्रम से जिंदगी को बदलने की कोशिश नहीं की। इस तरह तुम्हारा जीवन निष्क्रिय बन कर रह गया है। तुम सोच-विचार के देखो कि आज तक मानवता के हित के लिए तुमने क्या किया है। तुमने कैसा जीवन-यापन किया है तनिक सोचो।

विशेष:

1. कवि ने सभी आदर्शों, सिद्धान्तों के खोखलेपन को उजागर किया है।
2. कवि ने तुलनात्मकता से स्वार्थियों एवं मानवता-विद्रोहियों का अंकन किया है।
3. उमपा, रूपक और विशेष-विपर्णय अलंकार।
4. उद्बोधनात्मक शैली।
5. विश्वात्मा से जुड़ने का मानवीय स्वर ध्वनित है।

10.

लोकहित-पिता को घर से निकाल दिया।
जन-मन-करुणा-सी माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य''' त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य''' मार डाले!
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,
जम गये, जाम हुए, फँस गये,
अपने ही कीचड़ में धँस गये ! !
विवेक बधार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये।

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया, और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम ! ! (प० 271)

शब्दार्थ: लोकहित-पिता = मानवता की भलाई रूपी पिता। हंकाल दिया = फटकार कर भगा देना। मन्तव्य = मतलब, विचार। भाल = मस्तक। जाम हुए = रूक या अड़ गए। विवेक = ज्ञान। बघार डाला = जलाकर उड़ा दिया, तल डाला।

प्रसंग: पूर्ववत्

व्याख्या: अरे स्वार्थी मानव तूने अपने स्वार्थों के लिए मानवीय हित रूपी पिता को और जन-मन में परिव्याप्त करुणा की भावना रूपी माँ को अपने मन रूपी जीवन के घर से निकाल दिया है और बदले में स्वार्थ के भयावह टेरियर कुत्तों को पाल लिया है, ताकि तुम्हारे स्वार्थों की रक्षा हो सके। सहज उदात्त मानवीय भावनाएँ एवं पावन कर्तव्यों को त्याग दिया है और अपने हृदय के उच्च भाव-विचारों को स्वार्थी बर्बरता से मार डाला है। इसी तरह उचित-अनुचित का ज्ञान रखने वाली बुद्धि का मस्तक ही फोड़ दिया है और तर्क के हाथ तोड़ दिए हैं। अर्थात् आज के जीवन में हृदय, बुद्धि एवं तर्क के औचित्य के लिए कहीं

भी स्थान नहीं रहा है। इस तरह आज सद्भाव, मानवीय विचार परम्परित स्वार्थ के कीचड़ में धंस कर रह गए हैं। तुमने स्वार्थ के तेल में सूझों को बघार कर, तन-भुनकर रख दिया है। तुम अपने आदर्श, मूल्य खा गए हो।

हे स्वार्थी बताओ तुमने अब तक मानवता के हित के लिए क्या किया है? कैसा जीवन जिया? तुमने जीवन में अधिक से अधिक स्वार्थ साधने की कोशिश की है। अतः तुमने मानवता के हित के लिए कुछ नहीं किया है या बहुत कम किया जबकि अपने हित के लिए अधिकाधिक किया है।

विशेष:

1. कवि ने स्वार्थी प्रव त्ति पर चोट की है।
2. सम्पूर्ण मानवता के हित को ही सच्चा जीवन बताया है।
3. प्रतीकात्मकता
5. व्यंग्यात्मकता
6. आत्म-सम्बोधन शैली

11.

एकाएक मुझे भान ! !
पीछे से किसी अजनबी ने
कन्धे पर रक्खा हाथ।
चौंकता मैं भयानक
एकाएक थरथर रेंग गयी सिर तक,
नहीं, नहीं। ऊपर से गिरकर
कन्धे पर बैठ गया बरगद-पात एक,
क्या वह संकेत, क्या वह इशारा?
क्या वह चिट्ठी है किसी की?
बरगद-आत्मा का पत्र है वह क्या?
कौन-सा इंगित?

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़ ! !
बन्दूक धाँय-धाँय
मकानों के ऊपर प्रकाश-सा छा रहा गेरुआ।
भागता मैं दम छोड़
घूम गया कई मोड़।
घूम गयी प थ्वी, घूम गया आकाश,
और फिर, किसी एक मुंदे हुए घर की
पत्थर-सीढ़ी दिख गयी, उस पर
चुपचाप बैठ गया सिर पकड़कर ! !
दिमाग में चक्कर,
चक्कर···भँवरें
भँवरों के गोल-गोल केन्द्र में दीखा
स्वप्न सरीखा— **(प० 273–74)**

शब्दार्थः भान = ज्ञान, अहसास। अजनबी-अपरिचित। बरगद-पात = बरगद का पत्ता। इंगित = इशारा। गेरुआ = लाल। सरीखा = जैसा, समान।

प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है'' में संकलित महाकाव्यात्मक विशेषता लिए कविता 'अँधेरे में' से उद्ध त हैं। कवि किसी के रहस्यमय हाथ के कंधे पर आ जाने से चौंककर भागते हुए, उधर सूर्योदय होने के वातावरण का चित्रण करता हुआ कहता है।

व्याख्याः कवि को सहसा अहसास हुआ कि किसी अपरिचित ने आकर कंधे पर हाथ रख दिया है। इससे चौंककर कवि के सिर से पैर तक थर-थर की कपंन गई। कवि को लगा कि ऊपर से बरगद का पत्ता गिरा है। कवि कहता है कि वह किस बात का संकेत एवं इशारा है। क्या वह किसी का पत्र है? कवि बरगद से प्रश्न करता है कि क्या वह जीवन रूपी बरगद की आत्मा का पत्र है अर्थात् क्या वह शोषितों, गरीबों, पीड़ितों की आत्मा की आवाज है?

कवि कहता है कि मैं साहस छोड़ कर भागने लगा और विचारों के कई मोड़ काट गया। मुझे लगा कि बंदूक से धाँय-धाँय गोलियाँ दागी जा रही हैं और इनसे निकली आग के कारण मकानों पर गेरुआ प्रकाश-छा गया है। मैं अपने ही विचारों के कई मोड़ काट गया हूँ। मुझे प थ्वी और आकाश भी घूमते हुए नजर आए। फिर मुझे एकाएक किसी बन्द मकान की पथरीली सीढ़ियां दिखाई दी। इन सीढ़ियों पर मैं अपना सिर पकड़कर चुपचाप बैठ गया। बैठने पर भी दिमाग में भिन्न-भिन्न विचारों के चक्कर चल रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो विचार किसी भँवर में फँस कर रह गए हैं। उन्हीं भंवरों में मंडराता एक स्वप्न दिखा।

विशेषः

1. अजनबी का कवि के कंधे पर हाथ रखने से कवि द्वन्द्वात्मक स्थिति में है।
2. बन्दूक की धाँय-धाँय से कवि सशक्त क्रान्ति का दबे स्वर में संकेत देता है।
3. द्वन्द्वात्मक चेतना का बिम्ब उभरा है।
4. द श्य व श्रव्य बिम्ब बन पड़ा है।
5. प्रतीकात्मक भाषा है।

12.

हाय, हाय! मैंने उन्हें गुहा-वास दे दिया
लोक-हित क्षेत्र से कर दिया वंचित
जनोपयोग से वर्जित किया, और
निषिद्ध कर दिया
खोह में डाल दिया ! !
वे खतरनाक थे,
(बच्चे भीख माँगते) खैर
यह न समय है,
जूझना ही तय है। (प० 275)

शब्दार्थः गुहा वास = गुफा में निवास, अन्तर्मन में वास। लोक हित क्षेत्र = बाह्य संसार की भलाई का क्षेत्र। वंचित = रहित। जनोपयोग = जनहित में उपयोग या प्रयोग करना। निषिद्ध = निषेधपूर्ण। खोह = गुफा।

प्रसंगः कवि मानवता-हित के विचारों को दबाने एवं छिपाने से होने वाली हानि एवं प्रायश्चित की ओर संकेत करता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि बड़े दुःख की बात है कि मैंने मानवता का हित करने वाले विचारों को जानबूझ कर अन्तर्मन की गुफा में भेज दिया है जबकि इन विचारों की अभिव्यक्ति से लोक-क्षेत्र लाभान्वित हो सकता था लेकिन मैंने अपने स्वार्थ हेतु हठधर्मिता से लोगों को इन विचारों से वंचित रखा। उन्हें गुफाओं के अंधकार में डालकर बन्द कर दिया है क्योंकि उनके प्रति खतरनाक होने की सम्भावना थी और यह समय आलोचना करने का नहीं है, यह समय तो वर्तमान परिस्थितियों से संघर्ष करने का है।

विशेषः

1. कवि का पश्चाताप व्यक्त हुआ है।

2. धीरे-धीरे क्रान्तिकारी भाव फिर से उभरता दिखाई देता है।
3. द श्य-बिम्ब।
4. प्रतीकात्मकता।

13.

सीन बदलता है,
सुनसान चौराहा साँवला फैला,
बीच में वीरान गेरुआ घण्टाघर,
ऊपर कत्थई बुजुर्ग गुम्बद,
साँवली हवाओं में काल टहलता है।
रात में पीले हैं चार घड़ी-चेहरे,
मिनिट के काँटों की चार अलग गतियाँ
चार अलग कोण,
कि चार अलग संकेत,
(मनस् में गतिमान चार अलग गतियाँ)
खम्भों पर बिजली की गर्दनें लटकीं,
शर्म से जलते हुए बल्बों के आस-पास
बेचैन ख्यालों के पंखों के कीड़े
उड़ते हैं गोल-गोल
मचल-मचलकर।
घण्टाघर तले ही
पंखों के टुकड़े बीट व तिनके !
गुम्बद-विविर में बैठे हुए बूढ़े
असम्भव पक्षी
बहुत तेज नजरों से देखते हैं सब ओर,
मानो कि इरादे
भयानक चमकते। **(प० 275)**

शब्दार्थ: साँवला = अन्धेरा। वीरान = सूना। गेरुआ = लाल रंग का, रक्तम। बुजुर्ग गुम्बद = पुराने पड़ चुके गुम्बद। गतियाँ = चालें। मनस में = मन में। मतियाँ = मत, विचार। विवर = बिल, छिद्र।

प्रसंग: प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित महाकाव्यात्मक विशेषताएँ लिए 'अँधेरे में' कविता से उद्ध त है। यहाँ कवि अपने विचारों को छुपाने से होने वाले मानवता के अहित की ओर इशारा करता हुआ विभिन्न मतों से से जीवन को देखते हुए कह रहा है।

व्याख्या: कवि कहता है कि सीन बदलता है। एक सूनसान चौराहा है जिस पर अँधेरा-सा छाया हुआ है। उस चौराहे के बीच में लाल रंग का एक घण्टाघर है अर्थात् चारों ओर के वातावरण में विभिन्न मतवादों के फैले अंधेरे के बीच एवं क्रान्ति का मतवाद भी है और यह मत मार्क्सवादी विचारधारा का है। उस घण्टाघर के ऊपर कत्थई रंग के पुराने गुम्बद हैं। वहाँ लगता है कि उस अँधेरे में स्वयं काल टहल रहा है। उस काल-पुरुष के प्रभाव से चार पीली घड़ी रुपी चेहरे हैं। उनमें मिनटों को दर्शाने वाली चार सुइयाँ हैं अर्थात् अलग-चार-अलग-अलग विचारधाराओं को दिखाने वाली सुईयाँ हैं। उनके चार अलग ही कोण बन रहे हैं। अर्थात् चार मत एवं खेमे बने हुए हैं। इनके अलग-अलग संकेत मेरे मानस को भी चार अलग-अलग दिशा में गतिशील कर रहे हैं। आस-पास के खम्बों पर लटकते बल्ब ऐसे लगते हैं जैसे बिजली की गर्दनें लटक रही हों। लगता है ये बल्ब शरमा रहे हों और उन बल्बों के आस-पास मचल-मचलकर उन्हीं के पास समान गोल पंखों वाले बेचैन ख्याल रूपी कीड़े उड़ रहे हों।

उस घण्टाघर के नीचे नुचे हुए पंखों के टुकड़े और बीट तथा तिनके बिखरे पड़े हैं। पंखों के टुकड़े, बीट और तिनके प्राचीनता का प्रतीक हैं। इसीलिए कवि कहता है कि इन्हें आज त्याग दिया गया है। घण्टाघर के गुम्बद के छिद्रों में जो असम्भव पक्षी बैठे हैं वे बड़ी पैनी नजर से चारों ओर की गतिविधियों को देख रहे हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि जैसे इरादे इनके भयानक हैं।

विशेषः

1. कवि ने घण्टाघर, घड़ियों और सुईयों से समय के चक्र को तो दिखाया है साथ ही मतवाद की विभिन्नता की ओर भी इशारा करता है।
2. नुचे पंख, बिखरे तिनके, फैली बीट बेकार और व्यर्थ हो चुकी परम्पराओं और मान्यताओं के प्रतीक रूप में आए हैं।
3. असम्भव पक्षी की तेज नजरें कवि की खोजी द ष्टि की परिचायक हैं।
4. द श्य बिम्ब।
5. 'मानो इरादे भयानक चमकते' पद में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

14.

हाय, हाय पितः पितः ओ,
चिन्ता में इतने न उलझो
हम अभी जिन्दा हैं जिन्दा,
चिन्ता क्या है ! !
मैं उस पाषाण-मूर्ति के ठण्डे
पैरों को छाती से बरबस चिपका
रुआँसा-सा होता
देह में तन गये करुणा के कांटे
छाती पर, सिर पर, बाँहों पर मेरे
गिरती हैं नीली
बिजली की चिनगियाँ
रक्त टपकता है ह्रदय में मेरे
आत्मा में बहता-सा लगता
खून का तालाब।
इतने में छाती के भीतर ठक-ठक
सिर में है धड़-धड़ ! ! कट रही हड्डी ! !
फिक्र जबर्दस्त ! !
विवेक चलाता तीखा-सा रन्दा
चल रहा वसूला
छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई
भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे भी अन्दर,
कोई बड़ा भारी हठ उठ खड़ा हुआ है। (प० 278)

शब्दार्थः पितः = पिता। बरबस = बलपूर्वक विवश। रुआँसा-सा = रोना-सा। फिक्र जबरदस्त = अत्यधिक चिन्ता। विवेक = ज्ञान। रन्दा = लकड़ी को छीलने वाला यन्त्र। वसूला = छेद करने वाला यन्त्र।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित् 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित 'अँधेरे में' शीर्षक कविता से अवतरित है। यहाँ पर कवि बाल गंगाधर तिलक की सर्वहारा क्रान्ति भावना को जीवित रखने एवं उसे एक मुकाम तक पहुँचाने वाले लोगों के जीवित होने की घोषणा करता हुआ कहता है।

व्याख्याः कवि अपनी अन्तश्चेतना में लोकमान्य तिलक की प्रतिमा को रक्तरंजित एवं चिन्तित देखकर आश्वस्त भरे स्वर में कहता है कि हे क्रान्ति के विचारों के प्रणेता पिता! तुम चिन्ताओं में इतने मत उलझों। अभी हम जिन्दा है अर्थात् तुम्हारे क्रान्तिकारी विचारों को जीवित रखने के लिए हम जिन्दा है। अतः तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इतना कहता हुआ कवि प्रतिमा के पैरों को बरबस अपने हृदय से लगा लेता है। कवि रोने-सा हो गया उसका कण्ठावरोध हो गया। मेरे सारे शरीर में करुणा के कांटे चुभने लगे अर्थात् कण-कण से करुणा व्यक्त होने लगी। मेरे सिर, छाती और बांहों पर बिजली की नीली चिंगारिया-सी गिरने लगीं। अर्थात् मेरा मस्तिष्क, मेरा हृदय और मेरी बांहें सभी क्रान्ति लाने की भावना से फड़क उठे। मुझे लगता कि मेरे हृदय में खून की बूंदें टपकने लग गयी हैं और इनसे मेरी आत्मा का तालाब भरता ही जा रहा है। अर्थात् मेरा खून कुछ करने के लिए मचल रहा है।

आगे कवि कहता है कि इतने में ही मुझे अपनी छाती के भीतर से ठक-ठक कर ठोंकने और सिर में धड़-धड़ करने की आवाज सुनने लगी। मुझे ऐसा लगा कि कोई शक्ति मेरी भीतरी हड्डी को काट रही है। यह सब महसूस कर मैं बहुत ज्यादा चिन्तित हूँ। विवेक अपने तीखे रन्दे से मेरे विचारों को तराशने लग गया। मुझे ऐसा लगा कि कोई वसूला चलाकर मुझसे मेरे निजत्व को ही छील-तराश कर अलग कर देना चाहता है। किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को करने की जिद्द, हठ मेरे अन्दर जाग उठी। अर्थात् क्रान्ति लाने की जिद्द मेरे अन्दर उठी।

विशेषः

1. कवि कहना चाहता है कि हम तिलक जैसे आदर्श पुरुषों से प्रेरणा लेकर कुछ करना तो चाहते हैं पर सत्ता की पाबन्दियाँ हमें विवश-सा बनाकर कुछ नहीं करने देती।
2. तिलक को पिता के सम्बोधन से लगता है कि कवि ने उनके उग्र एवं क्रान्तिकारी विचारों को स्वीकारा है।
3. लाल रक्त क्रान्तिकारी चेतना का प्रतीक है।
4. भाषा का ओज गुण है।
5. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार है।
6. द श्य बिम्ब
7. प्रतीकात्मकता है।

15.

अँधेरे की स्याही में डुबे हुए देव को सम्मुख पाकर
मैं अति दीन हो जाता हूँ पास कि
बिजली का झटका
कहता है-"भाग जा, हट जा
हम हैं गुजर गये जमाने के चेहरे
आगे तू बढ़ जा।"
किन्तु, मैं देख किया उस मुख को।
गम्भीर द ढ़ता की सलवटें वैसी ही,
शब्दों में गुरूता।

वे कह रहे हैं-
"दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुर्गा
यदि बाँग दे उठे जोरदार
बन जाये मसीहा।"
वे कह रहे हैं-
"मिट्टी के लोंदे में किरणीले कण-कण

गुण हैं,
जनता के गुणों से ही सम्भव
भावी का उद्भव”
गंभीर शब्द वे और आगे बढ़ गये,
जाने क्या कह गये!!
मैं अति उद्विग्न! **(पृ० 279-80)**

शब्दार्थः स्याही कालिमा। गुरूता-बड़प्पन। कुक्कुट=मुर्गा। मसीहा=नेता धर्म प्रचारक। लांदे=ढेले। किरगीले=किरकरी पैदा करने वाले। भावी=भविष्य। उद्भव=उदय, आरंभ। अति उद्विग्न=बहुत व्याकुल।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित काव्य ‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’ में संकलित महाकाव्यात्मक विशेषताएँ लिए हुए कविता ‘अंधेरे में’ से उद्ध त हैं। कवि अपनी अन्तश्चेतना में गांधी के असमर्थ चेहरे को देखकर गांधीवादी की व्यर्थता को अनुभव कर गांधी के ही शब्दों में पुराने को त्याग एवं नए संदर्भ एवं साधनों से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

व्याख्याः उस अंधेरे अर्थात् अतीत की कालिमा में डूब चुके अर्थात् व्यतीत हो चुके उस देवपुरूष (गांधी) को मैं अपनी अन्तश्चेतना के सम्मुख पाकर मैं अत्यधिक दीन बनकर उसके सम्मुख पहुँचने की कोशिश करता हूँ। तभी बिजली सा झटका कहता है-अरे दूर हट जा। यहाँ से हट जा भाग जा। हम तो बीते युग के चेहरे हैं अर्थात् हमारे पास तो बीते युग की केवल यादें ही हैं। हमें पीछे छोड़कर तू आगे बढ़ जा। मैं चेतना में उभरे गांधी के चेहरे को एक आशा-भरी नजर से देख रहा था। उनके चेहरे पर द ढ़ निश्चय लेने की गंभीर सलवटें पहले के समान ही थी। उनके शब्दों में गंभीरता एवं गरिमा भी पहले ही जैसी थी। अर्थात् आज भी वे प्रत्येक स्थिति का सामना करते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए लग रहे थे।

कवि कहता है कि ऐसा लगता है कि मेरी चेतना में उभरे गांधी मुझे कह रहे हैं कि यह दुनिया गए बीते कुड़े करकट का ढेर नहीं है। जिस पर दाना चुगने के लिए कोई भी मुर्गा चढ़ आया और वह जोरदार बांग देने लगे तो उसे मसीहा मान लिया जाय। अर्थात् जैसे केवल बांग देने वाला मुर्गा महत्त्व नहीं रखता उसी प्रकार कोरे सिद्धान्तों का भाषण देने वाला महत्त्व नहीं रखता और न ही वह युग नेता बन सकता है। वे पैगम्बर और भी कहते हैं कि मिट्टी के ढेलों से खुरने वाले कणों में ही कुछ उत्पन्न कर सकने के गुण हुआ करते हैं। कवि का कहना है कि जो जनता अपने को मिट्टी का लोंदा समझ रही है। उसके जाग त होने पर सुखद भविष्य की संभावना है। इस प्रकार मेरी चेतना में उभरे गांधी के मुख से गुंजते शब्द और भी बहुत कुछ कह गए और मैं उद्विग्न-सा होकर सुनता रहा।

विशेषः

1. कवि का मानना है कि महापुरूषों की मूर्तियों को पूजने की बजाए उनके आदर्श एवं विचारों को ग्रहण कर नवयुग के निर्माण की आवश्यकता है।
2. कवि की मान्यता है कि गांधीवाद की आज कोई प्रासंगिकता नहीं रही है।
3. कवि को गांधीवाद में मानवता के भविष्य की समस्याओं का समाधान दिखाई नहीं देता।
4. गांधी की मानवतावाद जीवन-द ष्टि का समर्थन भी है।
5. गांधी के नाम पर नेता किस प्रकार जनता को मूर्ख बनाते हैं इस बात पर भी व्यंग्य किया है।
6. द श्य बिम्ब।
7. भाषा गम्भीरता को व्यक्त करने में सक्षम है।

16.

सहसा रो उठा कन्धे पर वह शिशु
अरे, अरे, वह स्वर अतिशय परिचित!!
पहले भी कई बार कहीं तो भी सुना था,
उसमें तो स्फोटक क्षोभ का आवेग,
गहरी है शिकायत,

क्रोध भयंकर।
मुझे डर, यदि कोई वह स्वर सुन ले।
हम दोनों फिर कहीं नहीं रह सकेंगे।
मैं पुचकारता हूँ, बहुत दुलारता;
समझाने के लिए तब गाता हूँ गाने,
अधभूली लोरी ही होंठों से फूटती!
मैं चुप करने की जितनी भी करता हूँ कोशिश
और-और चीखता है क्रोध से लगातार!!
गीले-गीले अंगार टपकते हैं मुझ पर। (पृ० 281)

शब्दार्थः अतिशय=बहुत अधिक। स्फोटक=फटने जैसा द्युतिमान, विस्फोट भरा। क्षोभ=क्रोध। फूटती=निकलती। अश्रु=आँसू।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियां कविवर मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' संकलन में महाकाव्यात्मक विशेषताएँ लिए लम्बी कविता 'अंधेरे में' से उद्ध त हैं। यहाँ पर कवि गांधी द्वारा दिए गए दायित्व का, स्वतंत्रता का, क्रांति का प्रतीक रूपी बच्चे के रोने पर उसे चुप कराने के प्रयास में अपने आप को संकट में फँसा मान कहता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि कंधे पर बैठा वह शिशु एकाएक रोने लगा। उसका रोने का स्वर कवि को जाना-पहचाना लगने लगा। इस प्रकार का स्वर तो पहले भी कई जगह सुना था अर्थात् पहले भी क्रांति के स्वर कई जगह, कई बार सुने थे। उसके स्वर में विस्फोट भरा क्रोध है उसे जो शिकायत है वह गहरी है अर्थात् उसकी शिकायत सही है। उसका उसके प्रति क्रोध उसके इस स्वर को सत्ता के, व्यवस्था के ठेकेदार न सुन ले। अगर उन्होंने इसे सुन लिया तो वे लोग हम दोनों को ही नष्ट कर देंगे। यह विचार आते ही कवि बच्चे को चुप करने के लिए प्यार से सहलाता है, दुलारता है, पुचकारता है। पर कवि जितना भी चुप कराने की कोशिश करता है। वह उतना ही अधिक क्रोधित होकर चीखता, चिल्लाता है। फिर बच्चे की आँखों से आँसू वो भी गर्म-गर्म जो कि क्रांति का सूचक है कवि पर टपककर उसके तन-मन को भिगोने लगे।

विशेषः

1. बच्चे का रोना स्वातन्त्र्योत्तर भारत के नेताओं को देखकर आक्रोश को प्रतीकात्मकता से व्यक्त करना है।
2. कवि का गर्म-गर्म आँसुओं से भींगना क्रान्ति का सूचक है और भारत की दुर्दशा करने वालों के व्यवहार से दुःखी होना ही है।
3. व्यवस्था को जन विरोधी दिखाया है।
4. प्रतीकात्मकता है।
5. बिम्बात्मकता है।

17.

किन्तु, न जाने क्यों बहुत प्रसन्न हूँ।
(जिसको न मैं इस जीवन में कर पाया,
वह कर रहा है)
मैं शिशु-पीठ को थपथपा रहा हूँ,
आत्मा है गीली।
पैर आगे बढ़ रहे, मन आगे जा रहा।

डूबता हूँ मैं किसी भीतरी सोच में........
ह्रदय की थाह में रक्त का तालाब,
रक्त में डूबी हैं द्युतिमान मणियाँ,
रुधिर से फूट रहीं लाल-लाल किरणें,

अनुभव रक्त में डूबे हैं संकल्प,
और ये संकल्प
चलते हैं साथ-साथ।
अँधियारी गलियों में चला जा रहा हूँ। (प० 282)

शब्दार्थः शिशु पीठ=बच्चे की पीठ। गीली=करूणापूर्ण दयार्द। द्युतिमान=चमकीली। रूधिर=रक्त। संकल्प=कुछ करने की द ढ़ इच्छा शक्ति।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि के मन में बच्चे के रोने से कई प्रकार की आशंकाएँ उठती हैं पर आशंकाओं के बावजूद भी कवि को प्रसन्नता का अनुभव रहता है। कवि को खुशी है कि वह चाहकर भी जो आज तक नहीं कर पाया था। आज उसी जन-स्वतन्त्रता रूपी शिशु को सम्भालने का दायित्व भार कंधों पर आ गया है। इसी अनुभूति के कारण कवि शिशु की पीठ थपथपाता है। उसे चुप करने की कोशिश करता है। ऐसे करते समय कवि की आत्मा करूणा से भर जाती है। पैर भी, मन भी क्रान्ति की ओर निरन्तर बढ़ते लग रहे हैं। अन्तर्मन किसी गहरी सम्वेदना में उतर महसूस करने लगता है कि जैसे हृदय-रूपी थाली में रूधिर का एक सरोवर-सा उमड़ने लगता है। उसमें लाल-लाल मणिमा चमक रही हैं। अर्थात् कवि के मन में अनेक स्वर्णिम अनुभूतियाँ होती हैं। उसी अनुभव के रक्त में अनेक संकल्प तैरते प्रतीत होते हैं। अंधेरी गलियों में उस नन्हें शिशु के साथ चलते हुए रक्त में नहाए अनेक प्रकार के संकल्प भी उसी के साथ चलते दिखाई देते हैं।

विशेषः

1. कवि की स्वतन्त्रता की रक्षा एवं सामाजिक दायित्व बोध भावना व्यक्त हुई है।
2. रहस्यमयता एवं प्रतीकात्मकता है।
3. रूपक अलंकार है।
4. द श्य बिम्ब।

खुला-खुला कमरा है, साँवली हवा है,
झाँकते हैं खिड़की से, अँधेरे में टँके हुए सितारे
फैली है बर्फीली साँस-सी, वीरान
तितर-बितर सब फैला है सामान।
बीच में ही कोई जमीन पर पसरा,
फैलाये बाँहें, ढह पड़ा आखिर।
मैं देह के चेहरे पर फैलाता टॉर्च कि यह क्या-
खूनभरे बाल में उलझा है माथा,
भौंहों के बीच में गोली का सूराख,
खून का परदा-सा गालों पर फैला,
होंठों पर सूखी है कत्थई धारा,
फूटा है चश्मा, नाक है सीधी,
ओफ्फो! एकान्त-प्रिय यह मेरा
परिचित व्यक्ति है, वही, हाँ,
सचाई थी सिर्फ एक अहसास
वह कलाकार था
गलियों के अँधेरे का, हृदय में भार था
पर, कार्य-क्षमता से वंचित व्यक्तित्व
चलाता था अपना असंग अस्तित्व।
सुकुमार मानवीय हृदयों के अपने

शुचितर विश्व के मात्र थे सपने।
स्वप्न व ज्ञान व जीवनानुभव जो
हलचल करता था रह-रह दिल में,
किसी को भी दे नहीं पाया था वह तो।
शून्य के जल में डूब गया नीरव
हो नहीं पाया उपयोग उसका।
किन्तु न जाने किस झोंक में क्या कर गुजरा कि
सन्देहास्पद समझा गया और
मारा गया वह बधिकों के हाथों।
मुक्ति का इच्छुक त षार्त्त अन्तर
मुक्ति के यत्नों के साथ निरन्तर
सबका था प्यारा,
अपने में द्युतिमान।
उसका यों वध हुआ,
मर गया एक युग,
मर गया एक जीवनादर्श!!
इतने में मुझको ही चिढ़ाता है कोई।
सवाल है-मैं क्या करता था अब तक,
भागता फिरता था सब ओर।
(फजूल है इस वक्त कोसना खुद को)
एकदम जरूरी---दोस्तों को खोजूँ
पाऊँ मैं नये-नये सहचर
सकर्मक सत्-चित्-वेदना-भास्वर! **(प० 283-84)**

शब्दार्थः कार्यक्षमता=काम करने की क्षमता। वंचित=विरहित, ठगा गया। असंग=एकांकी। शुचितर=पवित्रतर। नीरव=मौन। बधिकों=हत्यारों। त षांत=प्यास से व्याकुल। अंतर=हृदय। द्युतिमान=प्रकाशवान। सकर्मक=कर्मशील। सहचर=साथी। सत=सत्य। चित=नित्य। वेदना भास्वर=सम्वेदना का सूर्य।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि कमरा खुला है पर षडयन्त्र रूपी संवलाई हवा बह रही है। दूर अंधेरे आकाश पर टंगे तारे खिड़कियों से झाँक रहे हैं-अर्थात् दूर-दूर तक टोह हो रही है। वातावरण में सूनापन फैला हुआ है। सारा सामान अव्यवस्थित है। उस सब के बीच में बाहें फैलाये कोई गिरकर अंततोगत्वा पसराया फैला-सा या गिर पड़ा है। उसके शरीर पर टार्च मारने पर स्पष्ट दीख जाता है। एकदम कवि के अन्तस् से आवाज निकलती है-ओह! यह क्या? उसका चेहरा खून भरे बालों में उलझ रहा है। उसकी भौहों के बीच में गोली लग जाने का एक सूराख है। उसके गालों पर खून की परतें जमी हुई हैं। खून की सूख कर कत्थे जैसी बन गई धारा उसके होठों पर जम गई है। उसका चश्मा टूट गया है। लेकिन नाक सीधी है। अर्थात् सम्मान उसका ज्यों-का-त्यों ही है।

ओफ हो! मेरे एकान्त का यह परिचित है। अर्थात् मेरा अन्तर्मन इसकी शक्ति से परिचित है। वस्तुतः यह महान कलाकार था और सच्चाई ही इसका अहसास था। गलियों के अंधेरे ने मन को चिन्तित कर रखा था। फिर भी कार्य करने की शक्तियों से सर्वथा विरहित होकर यह जो व्यक्ति पड़ा है, वह नितांत निजी और व्यक्तित्व के लिए, अपने पथ पर निरन्तर चला जा रहा था। इस महान व्यक्तित्व के संबल कोमल और एकाकी पवित्रतर मानवता के हृदय में पलने वाले महानता के स्वप्न हैं। मानवता हित एवं सुखद भविष्य के लिए इसके मन में जो कल्पनाएं थी, ज्ञान और जीवन के महान् अनुभव थे, उनको वह साकार नहीं कर सका था और न ही संसार को दे सका था। आज वह बर्वरता की आग में जला दिया गया है। उसे मार दिया गया है। उसके ज्ञान, अनुभव का जीवन के लिए कोई उपयोग नहीं हो पाया। पता नहीं किस मोड़ पर, झोंक में उसने क्या कर

दिया। उस पर संदेह किया जाने लगा और उसे पापी हत्यारों के हाथों मार डाला गया। उसका हृदय तो सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति का प्यासा था। वह मानवता की मुक्ति का प्रयास करता रहा इसीलिए वह सभी का प्यारा था। वह अपने मन-मस्तिष्क से मानवता के आलोक से आलोकित था। उसका इसी तरह वध किया। अर्थात् यह मानवता का वध हुआ।

उसके साथ ही एक पूरा युग मर गया। जीवन का महान् आदर्श भी मर गया है। इन विचारों में डूबे देख कोई मुझे चिढ़ाता है। प्रश्न है-मैं अब तक क्या कर रहा था? मैं भिन्न-भिन्न विचारों में भटकता हुआ सभी दिशाओं में भाग-दौड़ ही रहा था अर्थात् मैं बौद्धिकता एवं वैचारिकता के स्तर पर कहीं भी स्थिर नहीं हो पाया था। पर इस समय अपने को कोसना फजूल है। इस समय तो नए-नए दोस्तों के खोजने की आवश्यकता है जो सक्रिय रूप से नित्य सत्यों और सहज मानवीय वेदनाओं के सूर्य के समान प्रज्ज्वलित हों। अर्थात् उन मित्रों की आवश्यकता है जो सत्य को, मानवीय वेदना को पहचान कर कुछ करें।

विशेषः

1. शून्य बर्वरता एवं बर्वर प्रव त्तियों का प्रतीक है।
2. कवि ने जनवादी विचारों की अभिव्यक्ति दी है।
3. उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकार है।
4. द श्य-बिम्ब है।
5. प्रतीकात्मक एवं रहस्यमय भाषा शैली है।

19.

रिहा!!
छोड़ दिया गया!!
अब छाया-मुख कई करते हैं पीछा,
श्यामाकार न छोड़ते हैं मुझको,
जहाँ गया, जहाँ रूका, जहाँ चला, वहाँ पर
भौंहों के नीचे के रहस्यमय छेद
मारते हैं संगीन-
द ष्टि की पत्थरी चमक है पैनी।

मुझे अब खोजने होंगे साथी-
काले गुलाब व स्याह सिवन्ती,
श्याम चमेली,
सँवलाये कमल जो खोहों के जल में,
भूमि के भीतर पाताल तल में
खिले हुए कब से भेजते हैं संकेत
सुझाव-सन्देश भेजते रहते!! (प० 287)

शब्दार्थः रिहा=मुक्त। छाया=मुख। छायाक तियाँ=परछाँइयाँ। पैनी=तीखी, तेज। भीमाकार=बहुत बड़े-बड़े आकार प्रकार वाला। सिवंती=एक काले फूल का नाम। खाहों=कन्दराओं।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित 'अंधेरे में' कविता से उद्ध त हैं। अन्तर्मन के द्वन्द्व से छुटकारा पाने की कामना से क्रांति के साम्यवादी मार्ग पर बढ़ने का संकेत करते हुए कवि कहता है।

व्याख्याः कवि कहना चाहता है कि मैं विभिन्न वैचारिक धारणाओं में मुक्ति का अनुभव करता हूँ। अर्थात् कवि की अंतश्चेतना मुक्ति का अनुभव करती है। फिर भी कवि को लगता है कि जहाँ भी जाता हूँ वहाँ कई प्रकार की परछाईयाँ निरन्तर पीछा करती रहती हैं। ये परछाइयाँ नए संगीत का आभास कराने का प्रयास करती रहती हैं। ये रहस्यमयी छायाएँ कहीं भी कवि का पीछा नहीं छोड़ती। इनकी पथराई द ष्टियों की चमक बहुत तेज है। वह अन्तर्मन तक को बेधने में सक्षम है।

कवि कहता है कि मुझे अब साथियों के रूप में काले गुलाब, स्याह सिवन्नी और श्याम चमेली के फूल खोजने होंगे। अर्थात् विषमताओं से उत्पीड़ित विवश मेरे साथी होंगे। मुझे वे कमल खोजने होंगे जो काले पड़ गए हैं। और जो खड्डे जैसे जीवन के चल की पाताली गहराई में धंसे संकेतों की भाषा में अपने सुझाव और संदेश भेजा करते हैं। अर्थात् मेरी प्रेरणा का स्रोत वे ही बन सकते हैं जो युगों-युगों से विवशता का जीवन यापन कर रहे हैं।

विशेषः

1. रंगीन फूल विभिन्न कल्पनाओं के प्रतीक हैं।
2. छायाएँ विभिन्न विचारों की प्रतीक हैं।
3. विभिन्न क्रान्तिकारी विचारों के लिए सुझाव-संदेश पद प्रयुक्त हुआ है।
4. प्रतीकात्मकता है।
5. शब्दों को लेकर प्रयोग किए गए हैं।

20.

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरूण कमल एक,
धँसना ही होगा
झील के हिम-शीत सुनील जल में।
जादुई झील को करनी ही होगी मेरी प्रतीक्षा। **(प० 289)**

शब्दार्थः अभिव्यक्ति=विचारों की व्यंजना, विचार प्रकट करना। गढ़=किले, बंधन। दुर्गम=अगम्य, कठिन चढ़ाई वाले। अरूण=लाल। हिम-शीत=बर्फ की तरह ठण्डे। मटियाले=मिट्टी वाले।

प्रसंगः कवि जीवन के घिनौने विद्रूप यथार्थ को देखकर उन्हें व्यक्त करना चाहता है लेकिन उसे सत्ता पक्ष का भय है। कवि का मानना है कि किसी भी अच्छे या बुरे परिणाम की चिन्ता किए बगैर विचारों को अभिव्यक्त करना ही होगा।

व्याख्याः कवि कहता है कि यहाँ अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने की छूट नहीं है। जीवन के घिनौने यथार्थ को व्यक्त करना ही होगा। उसे खत्म करने के लिए अपने क्रान्तिकारी विचारों को प्रकट करना ही होगा। इनके व्यक्त करने के लिए भले ही कितने ही खतरों का सामना करना पड़े अर्थात् सत्ता का कोपभाजन बनना पड़े। लेकिन सब-कुछ झेलना पड़ेगा। मानवता के विरोधी जितने भी मठ एवं गढ़ है सभी को तोड़ना ही होगा और मानवता का विकास करना ही होगा। इस कार्य के लिए जो भी पहाड़ रूपी प्रतिरोध खड़े हैं उन्हें तोड़कर उनके पार जाना ही होगा। तभी वे बांहें देखने को मिलेंगी जिनमें प्रत्येक क्षण क्रान्ति का सूचक लाल कमल कांप रहा है। उस कमल को लाने के लिए इस विषमता के शीतल जल में धँसना ही होगा।

विशेषः

1. कवि ने प्रत्येक मानवता विरोधी कार्यवाही के विरूद्ध क्रान्तिकारी चेतना फूँकने का प्रयास किया है।
2. कवि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पाने के लिए हर खतरा झेलने के लिए तैयार है।
3. अरूण-कमल रूस प्रेरित लाल क्रान्ति का प्रतीक है।
4. भाषा का ओज गुण है।
5. प्रतीकात्मक शैली है।

21.

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़,
टूटी हुई भीतों के उस पार कहीं पर
बहस गरम है
दिमाग में जान है, दिलों में दम है
सत्य से सत्ता के युद्ध का रंग है,
पर, कमजोरियाँ सब मेरे संग हैं;
पाता हूँ सहसा-
अँधेरे की सुरंग-गलियों में चुपचाप
चलते हैं लोग-बाग
द ढ़-पद गम्भीर,
बालक युवागण
मन्द-गति नीरव
किसी निज भीतरी बात में व्यस्त हैं,
कोई आग जल रही कहीं तो भी अन्तस्थ। (पृ० 290)

शब्दार्थः दम छोड़=साहस छोड़कर। ध्वस्त=टूटी-फूटी, नष्ट। दम=साहस, हिम्मत। सत्ता=व्यवस्था, शासन। द ढ़-पद=मजबूत कदमों से। मन्दगति नीरव=धीरे और चुप। भीतरी बात=मानसिक या आन्तरिक कारण। अन्तःस्थ=भीतर ही भीतर, हृदय में।

प्रसंगः कवि अन्तर्मन में उमड़ते विचारों को मोड़ देकर कह रहा है।

व्याख्याः कवि कहता है कि मैं साहस छोड़ भाग लेता हूँ। मैं भागता-भागता विचारों के कई मोड़ काट जाता हूँ। जहाँ मैं जाता हूँ वहाँ परम्परा की टूटी-फूटी दीवारों के पार कहीं उत्तेजनापूर्ण गर्म-गर्म बहस हो रही है। उसे सुनकर ऐसा लगता है कि लोगों के बौद्धिक तर्कों में काफी जीवन्तता है। उनके दिलों में कुछ कर गुजरने की हिम्मत भी है। आज सत्य और शासन में जो युद्ध चल रहा है, बहस एवं तर्कों का केन्द्र बिन्दु वही है। पर हमारे साथ अनेक कमजोरियाँ, दुर्बलताएँ भी जुड़ी हैं। सहसा अनुभव होता है कि विचारों एवं मनोभावों की अंधेरी गलियों में लोगों के चुपचाप चलते हुए भी उनके कदम द ढ़ गम्भीर हैं। अर्थात् उनमें वैचारिक गम्भीरता आ रही है। बालक, युवक, सभी मौन और मन्दगति से अपने भीतरी विचारों की उलझन में फँसे हुए हैं। सभी के भीतर ही भीतर कोई आग जरूर जल रही है। लेकिन वह आग प्रकट नहीं हो पा रही है।

विशेषः

1. कवि कहना चाहता है कि व्यवस्था के प्रति लोगों में अत्यधिक क्रोध है पर विषम परिस्थितियों के कारण उनकी वैचारिक आग अभिव्यक्ति नहीं पा रही है।
2. जन-मानस की संकीर्ण भावना को एक दुर्बलता के रूप में उभारा है।
3. अन्तस्थ की आग क्रान्ति का परिचायक है।
4. भाषा शैली में फैन्टेसी है।
5. रहस्यमयता एवं प्रतीकात्मकता है।

22.

गलियों के अँधेरे में मैं भाग रहा हूँ;
इतने में चुपचाप कोई एक
दे जाता पर्चा,
कोई गुप्त शक्ति
हृदय में चुपचाप करती है चर्चा!!

मैं बहुत ध्यान से पढ़ती हूँ उसको।
आश्चर्य!
उसमें तो मेरे ही गुप्त विचार व
दबी हुई संवेदनाएँ व अनुभव
पीड़ाएँ जगमगा रही हैं।
यह सब क्या!! **(प० 291)**

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि मैं अंधेरी गलियों में भाग रहा होता हूँ कि कोई मेरे हाथ में एक पर्चा थमा देता है। कवि के कहने का तात्पर्य है कि अभी तक कुछ करने के लिए कोई भी विचार स्पष्ट नहीं है कि कोई हाथ में पर्चा थमा जाता है। उस पर्चे को पाकर मेरा अन्तर्मन स्वयं से ही विचार-विमर्श करने लगता है और कुछ तर्क-वितर्क के बाद मैं उस पर्चे को खोलकर देखता हूँ और बड़े ही ध्यान से पढ़ता हूँ। कवि यह जानकर हैरान हो जाता है कि इस पर्चे में तो उन्हीं के संचित विचार है। गरीबों, शोषितों के प्रति दबी हुई संवेदनाएँ हैं और इस घिनौने जीवन का यथार्थ अनुभव है। शोषकों के, सत्ता के दिए दुःखों की पीड़ाएँ तारों की भाँति जगमगा रही है। आखिर यह सब क्या है। अर्थात् यह मेरी ही अभिव्यक्ति इस पर्चे में कैसे व्यक्त हुई मिली है।

विशेष

1. पर्चा प्रचार-पत्र का प्रतीक है।
2. गुप्त पर्चा सामूहिक स्तर पर क्रान्ति के प्रयास का भी सूचक है।
3. अभिव्यक्ति को जीवंत बनाने के लिए प्रक ति का भी आश्रय लिया है।
4. भाषागत फैंटेसी है।

आसमान झाँकता है उन स्याह लकीरों के बीच-बीच
वाक्यों की पाँतों में आकाश-गंगा-सी फैली
शब्दों के व्यूहों में झिलमिल नक्षत्र
और उन तारक दलों में तो खिलता है आँगन
जिसमें कि चम्पा के फूल चमकते
और उन पुष्पों के अन्तस्तल में
प्राण-समस्या का कोई है।

पर्चा पढ़ते हुए उड़ता हूँ हवा में,
चक्रवात-गतियों में घूमता हूँ नभ भर,
जमीन पर एक साथ
सर्वत्र सचेत उपस्थित।
प्रत्येक स्थान पर लगा हूँ मैं काम में,
प्रत्येक चौराहे, दुराहे व राहों के मोड़ पर
सड़क पर खड़ा हूँ,
मनाता हूँ, मानता हूँ, मनवाता अड़ा हूँ। **(प० 291 - 92)**

शब्दार्थः पांतों=पंक्तियों। व्यूहों=घेरों, चक्कों। तारक-दलों=तारों के समूहों। श्यामल=हरे, सांवले। मनोज्ञ=सुन्दर। चक्रवात=वायु का चक्र-सा। सचेत=सावधान।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि एक निश्चित विचारधारा से उत्साहित होकर चलने वाले लोगों की पंक्तियों के बीच मुझे आकाश झाँकता हुआ दिखाई देता है। अर्थात् उनके उच्च इरादे स्पष्ट दिखाई देते हैं। कवि को पर्चे की रेखाओं में आकाश, पंक्तियों में आकाश गंगा अर्थात् शब्दों के घेरों में जगमगाते तारे दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है कि तारों के जगमगाते आँगन में चम्पा-चमेली के फूल खिलकर वातावरण को सुगन्धित बना रहे हैं। पर्चे में जो शब्द लिखे गए हैं उनके आकाश कोणों में हरीतिमा लिए सांवले तुलसीदल चमक रहे हैं। उनके सुन्दर मुखों से चमचमाता हुआ आशय अभिव्यक्त हो रहा है कि जैसे पारिजात के स्वर्गीय फूल महक रहे हैं। कवि को वह नयी चेतना, नयी प्रेरणा देने वाला लगता है।

कवि कहता है कि उस पर्चे को पढ़कर, उसमें अभिव्यक्त सामूहिक संवेदना को समझकर मैं हवा में उड़ने लगता हूँ। मेरा मन हवा के चक्रवातों में उड़ने वाले पत्तों के समान आकाश की ऊँचाइयों में उड़ने-घूमने लग जाता है। लेकिन उसी क्षण में अपने को जमीन पर भी अनुभव करता हूँ। अर्थात् मेरा मन कल्पना की ऊँचाइयों में उड़ता हुआ भी जीवन के यथार्थ से अलग नहीं होता। कवि अनुभव करता है कि धरती हो या आकाश, प्रत्येक जगह मैं अपने क्रान्तिकारी कार्यों में लगा हूँ। प्रत्येक रास्ते, दुराहे, चौराहे पर, सड़क के बीच मैं लोगों की बातें मानता और लोगों को अपनी बात मनवाने के लिए अड़ा-खड़ा हूँ।

विशेषः

1. कवि की सामूहिक चेतना अभिव्यक्त हुई है।
2. आकाश गंगा, आकाश, तारे, फूल आदि भावी आशा के विविध स्वरूपों के प्रतीक बनकर व्यक्त हुए हैं।
3. पर्चा सामूहिक क्रान्ति के प्रयासों का सूचक है।
4. कवि ने अनुभवों को जीवंतता प्रदान करने के लिए प्रक ति का आश्रय लिया है।
5. भाषा शैली में फैन्टेसी है।

24.

कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता।
पूँजी से जुड़ा हुआ ह्रदय बदल नहीं सकता,
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को,
जन को। (प० 292)

प्रसंग: पूर्ववत्

व्याख्याः कवि की चेतना एक मोड़ काट कर कहने लगी कि कविता के माध्यम से उपदेशात्मक तरीके से कुछ कहने की आदत तो नहीं फिर भी कह देता हूँ कि जड़ पत्थरों से बनी सामाजिक मूर्ति का चलन संभव नहीं है। वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था पर टिका समाज चल नहीं सकता क्योंकि शोषकों का ह्रदय परिवर्तन करना संभव नहीं है। वह मानवता की स्वतन्त्रता का प्रतिवादी है। और इस प्रतिवादी के सामने मानवीय स्वतन्त्रता का वादी मन अब मानव की मुक्ति को अधिक छल धोखा नहीं दे सकता। वह अब जनता को और अधिक दिनों के लिए भुलावे में नहीं रख सकता। अब मानवता की स्वतन्त्रता अनिवार्य ही है।

विशेषः

1. कवि ने पूँजीवाद के विरूद्ध समाजवाद की घोषणा की है।
2. कवि विश्व मानवता से जुड़ने का प्रयास करता है।
3. भाषा शैली प्रतीकात्मक, सजीव स्पष्ट है।
4. कवि का पूँजी के समान विभाजन का और सामूहिक कर्म एवं श्रम का भाव व्यक्त है।

25.

सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्
चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं;
उनके ख्याल से यह सब गप है
मात्र किंवदन्ती।
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल-बद्ध ये सब लोग
नपुंसक भोग-शिरा-जालों में उलझे,
प्रश्न की उथली-सी पहचान
राह से अनजान
वाक् रूदन्ती।
चढ़ गया उर पर कहीं कोई निर्दयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी। (प० 293)

शब्दार्थः निर्वाक्=मौन। चिन्तक=दार्शनिक। किंवदन्ती=सुनी-सुनाई बात जो गप भी हो सकती है। रक्तपायी वर्ग=शोषक वर्ग, पूँजीवाद साम्राज्यवादी वर्ग। नाभिनल बद्ध=जन्मजात बंधा। शिरा-जालों में=कपोल कल्पनाओं में। वाक् रूदन्ती=वाणी का कोरा रूदन। भव्याकार=सुन्दर सजीले आकार वाले। विवरों=छिद्रों। जन-मन-डर-शूर=जनता का मन शूरवीर। क्रीतदास=खरीदा हुआ गुलाम। उद्भास=अभिव्यक्ति, आभास। विश्लेष गतिया=विश्लेषण की गतियाँ। उर=हृदय। स्पिलिट=सरकते हुए।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कवि मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित महाकाव्यात्मक विशेषताएँ लिए 'अंधेरे में' कविता से उद्ध त हैं। यहाँ पर कवि ने कवियों, कलाकारों तथा अन्य बौद्धिक वर्गो की दिखावटी, बनावटी बातों को नपुंसकता की संज्ञा देकर चित्र रूप में उभारा है।

व्याख्याः कवि सम्पूर्ण वातावरण को देखकर कहता है कि कहीं आग लगी हुई है कहीं गोली चली है पर समस्त बुद्धिजीवी वर्ग गूंगा बना हुआ है, मौन है। साहित्यकार, कवि, दार्शनिक, कलाकार, विचारक, नर्तक आदि सब के सब मौन है, कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर रहे हैं। उनके ख्याल में ये क्रान्ति की घटनाएँ कोरी झूठ है। शोषक वर्ग से जन्मजात रूप से ये सत्य पर विश्वास नहीं कर सकते क्योंकि ये बुद्धिजीवी लोग तो नपुंसक बनकर सिर्फ भोग-विलास की क्रियाओं एवं गतिविधियों में लगे रहते हैं। आम लोग जिन प्रश्न एवं समस्याओं से जूझ रहा है, उसके बारे में इनकी पहचान केवल ऊपरी है। लोक क्रान्ति से अनजान, अपरिचित ये बुद्धिजीवी लोग सिर्फ बातें का रोना-धोना ही रखते हैं। करते-कराते कुछ नहीं है। इनका हृदय तो किसी नितान्त निष्ठुर व्यक्ति ने इन्हीं की चेतना पर सवार होकर कुचल दिया है। अतः कहीं आग लगे, गोली चले, क्रान्ति हो इन्हें कोई सरोकार नहीं है।

विशेषः

1. कवि ने समस्त सुविधाभोगी बुद्धिजीवी वर्ग पर करारा व्यंग्य किया है।
2. कवि ने बुद्धिजीवी वर्ग को फटकारते हुए अतःप्रेरणा दी है कि वे जीवन के सत्य को प्रचारित, प्रसारित करें और क्रान्ति की लहर से जुड़े उसे व्यक्त करें।
3. नाभिनालबद्ध और वाक् रूदन्ती जैसे शब्द कवि की प्रयोगधर्मी द ष्टि के परिचायक हैं।
4. द श्य-बिम्ब।
5. प्रतीकात्मकता।

26.

भव्याकार भवनों के विवरों में छिप गये
समाचार-पत्रों के पतियों के मुख स्थूल।
गढ़े जाते संवाद,
गढ़ी जाती समीक्षा,
गढ़ी जाती टिप्पणी जन-मन-उर-शूल।
बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराये के विचारों का उद्भास।
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गयीं।
नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी,
कही आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी। **(पृ० 294)**

शब्दार्थः विवरों=छिद्रों। क्रीतदास=खरीदा हुआ गुलाम। समाचार पत्रों के पतियों के=समाचार पत्रों के मालिकों के। स्थूल=मुटाए हुए, झुले हुए। उर-शूल=हृदय के शूल। उद्भास=धमक, उदय। स्याहियाँ पुतना=कलंकित होना।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि समाज में चारों ओर उथल-पुथल हो रही है। क्रान्ति हो गयी है। परिवर्तन आ रहे हैं। लेकिन समाचार पत्र मौन हैं। क्रान्ति की लहर में कोई भूमिका नहीं निबाह रहे हैं। उनके पूँजीपति मालिकों ने अपने मुँह भव्य भवनों के छिद्रों में छिपा लिए हैं। अर्थात् अपने विलासी भवनों में विलासिता में डुबे हुए हैं। उनमें सत्य को निकालकर समाचार-पत्रों में छापने का साहस ही नहीं है। ये संपादक तो समाचारों को, समीक्षाओं को, टिप्पणियों को कल्पनाओं से रचते हैं। जन मानस के हृदय में तीर की तरह चुभन वाला समाचार जरूर रचते हैं। इसी तरह समस्त बुद्धिजीवी वर्ग सत्ता का खरीदा हुआ गुलाम है उसी के समर्थन से, इशारे से अपने विचार प्रकट करता है। इन्हीं भाड़े के गुलामों के कारण बड़े-बड़े जन-सेवकों, आन्दोलनकारियों के चेहरे पर कालिमा लग गई है। ऐसे लोग अगर क्रान्ति के प्रति कुछ श्रद्धा-भाव दिखाते भी हैं तो उसे नपुनंसकता ही कहा जाएगा। वह श्रद्धा गटरों के नीचे छिपे कीचड़ और गन्दगी से अधिक महत्त्व रखने वाली नहीं क्योंकि चाहे कहीं आग लगे, गोली चले, क्रान्ति फैले इन बुद्धिजीवियों को कोई मतलब नहीं।

विशेषः

1. कवि ने समाचार पत्रों से जुड़े लोगों पर गहरा क्षोभ दिखाया है।
2. कवि ने बौद्धिक वर्ग को क्रीतदास कहा है और क्रान्ति के प्रति उनकी श्रद्धा को नपुंसकता कहा है।
3. कवि का उग्र स्वभाव स्पष्ट है।
4. भाषा का ओज गुण विद्यमान है।

27.

एकाएक फिर स्वप्न-भंग
बिखर गये चित्र कि मैं फिर अकेला।
मस्तिष्क-हृदय में गहरे व बारीक छेदों से भर गये।
पर, उन रंध्रों के दुखों में गहरा
प्रदीप्त ज्योति का रस बस गया है।
मैं उन सपनों को खोजता हूँ आशय,
अर्थों की वेदना घिरती है मन में।

अजीब झमेला।
घूमता है मन उन भावों के घावों के आस-पास
आत्मा में चमकीली प्यास भर गयी है।
जग भर दीखती हैं सुनहली तसवीरें मुझको
मानो कि कल रात किसी अनपेक्षित क्षण में ही सहसा
प्रेम कर लिया हो मनोहर मुख से
जीवन भर के लिए!!
मानो कि उस क्षण
अतिशय म दु किन्हीं बाँहों ने आकर
कर लिया था मुझको
उस स्वप्न-स्पर्श की, चुम्बन-घटना की याद आ रही है,
याद आ रही है!!
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी? (प० 296)

शब्दार्थः रन्ध्रों=छिद्रों। प्रदीप्त=प्रज्ज्वलित। ज्योति=प्रकाश। आशय=अर्थ। अनपेक्षित=अचाचित, अचिन्तित। अतिशय म दु=बहुत अधिक मीठा, कोमल। अज्ञात प्रणयिनी=अज्ञात प्रेमिका।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित महाकाव्यात्मक विशेषताएँ लिए 'अंधेरे में' कविता से उद्ध त हैं। यहाँ कवि अन्तर्मन में चल रहे विचारों के स्वप्निल द्वन्द्व के टूट जाने पर अकेलेपन को महसूस करता हुआ कहता है।

व्याख्याः कवि कहता है कि मैं अपने अन्तर्मन में विचारों के द्वन्द्वों में घिरा जन-चेतन और लाल क्रान्ति के जो सपने देख रहा था, वे एकाएक भंग हो गए। चेतना की यथार्थ भूमि पर आकर मैं अपने को अकेला पाता हूँ। वे स्वप्न चित्र मुझे अकेलेपन का अहसास दे गए हैं। सपनों के भंग होने के कारण मेरे मन-मस्तिष्क में रिक्तता के छेद पड़ गए हैं। रिक्तता के इन दुखते छिद्रों में काल्पनिक लाल क्रान्ति का प्रकाश समा गया था। मैं उन सपनों की वास्तविकता खोजने का प्रयास करता हूँ। उससे जो नव-निर्माण, नव लाल क्रान्ति का आशय स्पष्ट होता है। उसकी पूर्ति के अभाव की वेदना मेरे मन में घिरकर उसे अनवरत आक्रान्त किए जा रही है। मैं इस उलझन में फँसा हूँ। सपनों के अर्थ जो आपूर्ति के घाव दे गए हैं मेरा मन उन्हीं के आस-पास घुम रहा है। मेरी आत्मा में लाल क्रान्ति की चेतनता, आग समा गई है। मुझे सारा ही संसार उसी आग से बने सुन्दर चित्र के समान दिखाई देता है। मुझे लगता है कि मैंने रात को किसी आयचित क्षणों में अचानक किसी से प्यार कर लिया है। किसी को जीवन भर के लिए अपना बना लिया हो मानो उस क्षण में किन्हीं बहुत मीठी, कोमल बाहों ने आकर मुझे इस प्रकार से कस लिया था कि उसके स्वप्निल चुम्बनों, स्पर्शों की याद अभी तक मेरे शरीर में बसी हुई है। न जाने वह कौन थी जिसकी याद अब भी है।

विशेषः

1. कवि ने अज्ञात प्रेयसी के रूप में क्रान्ति का चित्रण किया है।
2. रोमानियत प्रभावी है।
3. बिम्बात्मकता है।
4. रोमानियत में फैंटेसी का संचार किया है।
5. उत्प्रेक्षा अलंकार है।
6. भाषा का ओज गुण विद्यमान है।

28.

कमरे में सुबह की धूप आ गयी है,
गैलरी में फैला है सुनहला रवि-छोर
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी?
हाय! यह वेदना स्नेह की गहरी
जाग गयी क्योंकर?

सब ओर विद्युत्तरंगीय हलचल
चुम्बकीय आकर्षण।
प्रत्येक वस्तु का निज-निज आलोक,
मानो कि अलग-अलग फूलों के रंगीन
अलग-अलग वातावरण हैं बेमाप,
प्रत्येक अर्थ की छाया में दूसरा, आशय
झिलमिला रहा-सा
डेस्क पर रखे हुए महान् ग्रन्थों के लेखक
मेरी इन मानसिक क्रियाओं के बन गये प्रेक्षक,
मेरे इस कमरे में आकाश उतरा,
मन यह गगन की वायु में सिहरा। **(पृ० 296-97)**

शब्दार्थः रवि छोर=सूर्य का भाग। विद्युतरंगीय=बिजली की चमक वाली। निज=अपना। आलोक=प्रकाश। प्रेक्षक=दर्शक।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः कवि कहता है कि रात के बीत जाने के बाद सुबह के सूर्य की किरणों की धूप गैलरी मे फैल गई है। कमरे के अन्दर भी धूप आ गई है। कवि के स्म ति पटल पर आता है कि क्या कोई प्रेमिका मिलेगी। हाय प्रेम की गहरी पीड़ा मेरी ह्रदय में कैसे जाग गई। कवि को लगता है कि चारों ओर विद्युत की लहरों की तरह ही हलचल हो रही है। प्रेमिका का प्यार चुम्बकीय आकर्षण बना हुआ है। अपने चारों ओर दिखाई देने वाली प्रत्येक वस्तु अपने-अपने वास्तविक रंग में रंगी रंग-बिरंगे पुष्पों के समान चमकती-फैलती दिखाई देने लगती है। इस अलग-अलग छाया में कोई अन्याय झलकता-सा प्रतीत हो रहा है। अर्थात् इन अलग-अलग रंगों से अलग-अलग ही आशय स्पष्ट होता सा दिखाई देता है। मेरे डेस्क पर रखे ग्रन्थों के महान लेखक अद श्य रूप से मेरी इस समय की मानसिक क्रिया-प्रक्रियाओं के दर्शक बन गए हैं। ऐसा लगता है कि सारा आकाश ही मेरे कमरे में उतर आया है। मेरा मन आकाशीय वायु से सिहर उठता है।

विशेषः

1. कवि को प्रेमिका की स्म ति की अनुभूति होना वास्तव में क्रान्ति की सूचक है।
2. दार्शनिक रहस्यवादिता है कि एक ही ज्योति अलग-अलग परिवेशों में अलग-अलग महत्त्व रखती है।
3. कवि ने अनुभूतियों की विविधता का रोमानी वर्णन किया है।
4. कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार का सहारा लेकर अनुभूतियों की उज्ज्वलता का सजीव वर्णन किया है।
5. भाषा रोमानीपन लिए हुए है।

29.

उठता हूँ, जाता हूँ, गैलरी में खड़ा हूँ।
एकाएक वह व्यक्ति............

सामने
गलियों में, सड़कों पर, लोगों की भीड़ में
चला जा रहा है।
वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा में।
धड़कता है दिल
कि पुकारने को खुलता है मुँह
कि अकस्मात्...........
वह दिखा, वह दिखा
वह फिर खो गया किसी जन-यूथ में.............
उठी हुई बाँह यह उठी हुई रह गयी!! (पृ० 297)

शब्दार्थः गुहा=गुफा। जन-यूथ=जवानों के समूह की भीड़।

प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः सूर्योदय हो गया है। धूप भी कमरे में आ गई है। कवि कहता है कि मैं उठकर गैलरी में आकर खड़ा हो जाता हूँ। कवि कह रहा है कि जिस व्यक्ति को मैंने अन्तर्मन की गुफाओं में देखा था वही इस समय गलियों में, सड़कों में और लोगों की भीड़-बाजार में आ जा रहा है। अर्थात् कवि का मन एक बार फिर क्रान्ति की भावनाओं से भर उठता है। कवि उस क्रान्तिधर्मा व्यक्ति को पुकारने के लिए मुँह ही खोलता है कि इतने में वह व्यक्ति पुनः जन-समूह या भीड़ में खो जाता है। कवि ने उसे बुलाने के लिए जो बाँह उठाई थी वह उठी ही उठी रह गई।

विशेषः

1. कवि ने भीड़ में जिस व्यक्ति को देखा वह वास्तव में कवि की क्रान्तिधर्मा चेतना का सूचक है।
2. यहाँ पर कवि अपनी चेतना और अनुभूति का जन-समुदाय को साक्षात्कार करता दिखाई देता है।
3. कवि ने अपने प्रेरणास्त्रोत का ही व्यक्तिकरण किया है।
4. भाषा सहज सरल मुहावरेदार है।

30.

अन-खोजी निज सम द्धि का वह परम उत्कर्ष,
परम अभिव्यक्ति..........
मैं उसका शिष्य हूँ
वह मेरी गुरू है,
गुरू है!!

वह मेरे पास कभी बैठा ही नहीं था,
वह मेरे पास कभी आया ही नहीं था,
तिलिस्मी खोह में देखा था एक बार,
आखिरी बार ही।
पर, वह जगत् की गलियों में घूमता है प्रतिपल
वह फटे-हाल रूप।
विद्युल्लहरिल वही गतिमयता,
उद्विग्न ज्ञान-तनाव वह

सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
वही फटे-हाल रूप!!
परम अभिव्यक्ति
अविरत घूमती है जग में
पता नहीं जाने कहाँ, जाने कहाँ
वह है।
इसीलिए मैं हर गली में
और हर सड़क पर
झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि,
प्रत्येक चरित्र,
व हर एक आत्मा का इतिहास,
हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति!!
खोजता हूँ पठार......... पहाड़........... समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भवा। (पृ० 297-98)

शब्दार्थः अनखोजी=बिना खोज की। निज सम द्धि=अपनी उन्नति। परम उत्कर्ष=चरम विकास। परम अभिव्यक्ति=श्रेष्ठ अभिव्यंजना, पवित्र अभिव्यंजना। तड़ित्त रंगीय=बिजली की सी त्वरित। उद्विग्न=व्याकुल। सकर्मक=कर्ममय। अतिशयता= अधिकता। विवेक प्रक्रिया=बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार। क्रियागत परिणति=कर्मो का परिणाम। परम अभिव्यक्ति अनिवार=न रूकने वाली श्रेष्ठ अभिव्यंजना।

प्रसंगः प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध विरचित 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित महाकाव्यात्मक विशेषताएँ लिए 'अंधेरे में' शीर्षक कविता से उद्ध त की गयी है। कविता के इस अंतिम अंश में कवि का मन मानवता के सत्य स्वरूप को खोजने में ही अनवरत प्रव त्त रहता है। उसी की सत्य रूप में अभिव्यक्ति को कवि अपना परम कर्त्तव्य बताता हुआ कह रहा है।

व्याख्याः कवि कहता है कि मेरे अन्तर्मन में वास करने वाला वह व्यक्ति जिसे कुछ ही क्षण पहले सड़कों, गलियों और भीड़ में देखा था वह मेरी खोजी और न पाने वाली मानवीय सम द्धि का चरम विकसित रूप और श्रेष्ठ, पवित्र अभिव्यंजना का मूल आधार है। मैं उसी चेतना के क्रान्तिधर्मा व्यक्ति का शिष्य हूँ। वही मेरा एकमात्र गुरू है। इससे पहले वह मेरे पास न कभी बैठा था और न कभी आया था। अर्थात् आजतक मेरी अन्तर्मन से उसका साक्षात्कार नहीं हो सका था लेकिन आज हो गया है। मैंने उसे इससे पहले प्रथम और अंतिम बार मन की जादुई गुफा में देखा था कवि कहता है कि मुझे सुखद अनुभव होता है कि वह आज भी प्रत्येक पल क्रान्ति का शंखनाद करता हुआ घूमता रहता है। आज भी पहले की तरह ही उसकी चाल में बिजली की तरंगों के समान गति है। वह ज्ञान के तनाव में अत्यधिक व्याकुल और फटेहाल होते हुए भी सकर्मक मानवीय प्रेम की अधिकता से पूरित है।

परम और श्रेष्ठ अभिव्यक्तियों का क्रान्तिधर्मा स्वरूप पता नहीं संसार में निरन्तर कहाँ-कहाँ घूमता रहता है। न जाने वह अब कहाँ है? इसीलिए मैं उसी की खोज के लिए प्रत्येक गली, सड़क और प्रत्येक मकान को झाँक-झाँक देखता रहता हूँ। मैं उसकी प्रत्येक गतिविधि में, प्रत्येक मानवीय चरित्र और मानवीय आत्मा का इतिहास, उसी की सक्रियता में प्रत्येक देश की राजनीतिक

परिस्थितियाँ और मानव जाति के स्वयं अनुभवों से प्राप्त आदर्श और ज्ञान की क्रिया-प्रक्रिया कार्य में परिणत होती जा रही है।

कवि कह रहा है कि मैं अपने अन्तर्मन के क्रान्तिधर्मा व्यक्तित्व को पठारों, पहाड़ों, वनों, समुद्रों में चारों ओर खोज रहा हूँ। अर्थात् मैं अपने क्रान्तिकारी विचारों की श्रेष्ठ परम अभिव्यंजना को खोज रहा हूँ। कहीं भी, जहाँ भी मुझे वह मिल सके मैं उसे खोजता हूँ। वह मेरी आत्मा में ही सम्भव हो सकने वाली परम श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की अनिवार्यता खो गई है, मैं उसे प्राप्त करने के लिए ही खोजता हूँ।

विशेष:

1. कवि अपने उस व्यक्तित्व को खोजना चाहता है जो जीवन के यथार्थ को श्रेष्ठ, पवित्र, सत्य अभिव्यक्ति दे सके।
2. कवि जीवन की विद्रूप विषमताओं से अपने क्रान्तिधर्मा विचारों से मानवता को मुक्ति दिलाना चाहता है।
3. कवि ने जीवन के सत्य और क्रान्तिधर्मिता की सत्य अनुभूति और उसकी परम अभिव्यक्ति को ही कलाकारों की पवित्रतम और श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति माना है।
4. कवि प्रत्येक व्यक्ति, देश, स्थिति, परिस्थिति में जीवन के सत्य की खोज करने का प्रयास करता है।
5. कवि जन-जन में अपनी आत्मा एवं अस्मिता के दर्शन करना चाहता है।
6. कवि के क्रान्तिधर्मा व्यक्तित्व के केन्द्र में जन ही है और यही कविता का कथ्य भी है।
7. भाषा सहज सरल एवं भावों को व्यक्त करने में सक्षम है।
8. शैली आत्मपरक एवं निष्कर्षात्मक है।

खण्ड 'ख'

आलोचना

मुक्तिबोधः जीवन एवं रचना प्रक्रिया

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 ई० को ग्वालियर (मध्यप्रदेश) के श्योपुर में माधव मुक्तिबोध के यहां हुआ था। उनके पिता का कार्य क्षेत्र उज्जैन होने के कारण उनकी प्रारम्भिक शिक्षा वहीं हुई। ये प्रारम्भिक जीवन से ही विश ंघल स्वभाव के थे। सन् 1938 ई० में होतकर कालेज इन्दौर से बी.ए. करने के बाद ये मार्डन स्कूल में अध्यापक हुए। सन् 1938 ई० शान्ता से प्रेम विवाह किया। छात्र जीवन से इन पर एक ओर रवीन्द्रनाथ, गांधी, प्रसाद, निराला, महादेवी, माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन का प्रभाव था तो दूसरी ओर झाँ, इल्सन, बर्गसा, रसेल, मार्क्स के अध्ययन प्रभाव ने साहित्य पढ़ने और लिखने की शक्ति दी। अनेक समस्याओं का सामना करते हुए 1953 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० किया। उनकी म त्यु 11 सितम्बर 1964 को लम्बी बिमारी के बाद दिल्ली में हुई।

उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा में अनेक छोटी-मोटी नौकरियाँ की। मास्टरी से वायुसेना और पत्रकारिता से पार्टी के गठन ने साहित्य की गति में अनुभव और राजनीति के विशिष्ट योग ने उनके व्यक्तित्व का निर्माण किया। उन्होंने सूचना तथा प्रसारण विभाग, आकाशवाणी तथा नयाखून के सम्पादक की नौकरियाँ की है। इन नौकरियों ने उनके व्यक्तित्व को निर्मित किया है। युग-प्रभाव और युग-वैगम्य का राजनीतिक अनुभवीकरण उनके काव्य की एक ओर आदिमबोधी व्याख्या करता है तो दूसरी ओर मनुष्य के वर्तमान जीवन में नयी जीवनी शक्ति का संचार करता है। इस द ष्टि से उनका 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', जहां काव्य में बिना किसी माध्यम के अनुभव को व्यक्तित्व के सापेक्ष संश्लिष्ट करते हैं वहीं कथा साहित्य जैसे 'काठ का सपना', 'विपात्र।' सतह से उठता आदमी में भाषायी माध्यम को अपनाकर अपनी चिन्तन शक्ति का सर्जन विकसित करते हैं। 'कामायनी एक पुनर्विचार', 'नयी कविता' का आत्मसंघर्ष नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, जहाँ अध्ययन बोध को प्रमाणित करते हैं। वहीं अन्तःप्रक्रिया को बाह्यकेन्द्रीक त करके काव्य प्रतिमानों की पारम्परित तथा समाजशास्त्रीय व्याख्या करते हैं। एक साहित्यिक की डायरी अपने आलोचनात्मक रूप में तथा 'भारत इतिहास और संस्क ति' वर्तमान मानवीय बोध तथा सांस्क तिक मानव की व्याख्या में योग देते हैं।

मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया छायावाद के अवसान (1936) ई० से आरम्भ होकर नयी कविता के विखण्डनवाद तक गतिशील है। शोषित पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का विरोध करने की युगीन काव्य-प्रव तियों ने मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया के लिए प ष्ठभूमि का कार्य किया है। जनवाद और आत्मवाद की परिस्थितियों ने उनको यथार्थ जीवन का बोध तो कराया ही है साथ ही मध्यमवर्ग की आदर्शवादी मनोव त्ति से भी जोड़े रखा है। इसलिए रचना में कथ्य की वरीयता जिस विशेष पहचान के साथ मुक्तिबोध को अलग करती है। उनमें भाषा का टटकापन और किसानों मजदूरों की अक त्रिमताओं की संवेदना को विशेष आस्था के साथ, उनका आत्मसात करना भी माना जा सकता है। मुक्तिबोध ने स्वयं अपन हंस में लिखा था-"कवि की अनुभूतियाँ बहुत संयम के साथ प्रकट होती हैं। उनमें शीघ्र पुकार या अट्टहास का आलोड़न नहीं है, न वह चीज है जिसे आप अम त कामना कह सकते हैं। इन सब दोषों से युक्त विचारों और भावनाओं से आलोकित काव्य मिलना कठिन होता है। साथ ही कवि की प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण आन्तरिक क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं आयी है, वरन् कवि से अपने जीवन-संघर्ष से मँज घिसकर तैयार हुई है। संघर्ष ने उनकी चेतना को मात्र विकसित ही नहीं किया है, उसे प्रसारणशील भी बनाया है और जीवन के विविध अंगों को समझने की शक्ति भी दी है। इस वैविध्य के प्रति संघर्षनात्मक प्रसरणशील अनुशक्ति ने उसके मन को वस्तुन्मुख और बुद्धिप्रधान भी कर दिया है। इसके कारण ही उसके काव्य में बैचेनी, विह्वलता नहीं है बल्कि एक विशेष प्रकार की तटस्थता है। (हंस-जुलाई 1946 ई०)

मुक्तिबोध की कविताएँ तो तारसप्तक में प्रकाशित हो गई थी। किन्तु उनके गद्य की 1946 ई० तक कोई विशेष पहचान नहीं बन पाई थी। इसका कारण उनका उस समय का व्यक्तिवाद से मार्क्सवाद में रूपान्तरण भी माना जा सकता है। मुक्तिबोध ने अपने लेखन के बारे में तारसप्तक की भूमिका में लिखा है - सन् 1935 ई० से काव्य आरंभ किया था। सन् 1936 से 1938 ई० तक काव्य के पीछे कहानी चलती रही सन् 1938 से 1942 ई० के पाँच-सात वर्ष मानसिक संघर्ष और वर्ग-स्तोतीय व्यक्तिवाद के संघर्ष थे। (तारसप्तक प ० 6)

मुक्तिबोध में मानसिक द्वन्द्व का कारण यथार्थ के गहरे स्तरों से खुलना और झेलना भी माना जा सकता है। वे पुष्टि करते हुए लिखते हैं - 'मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ कि जिस भी क्षेत्र में हूँ, वह स्वयं अपूर्ण है और उसका ठीक-ठीक प्रकटीकरण भी नहीं हो पा रहा है। फलतः गुप्त अशाांति मन के अन्दर घर किये रहती है। (तार सप्तक प ० 6) इसीलिए जब वे फैंटेसी की भाषा का प्रयोग करते हैं तो उनका मन कथ्य पर विजय पाता दिखाई देता है। मुझे पुकारती हुई पुकार खो गई काव्य का निम्न अंश देखा जा सकता है।

'मुझे पुकारती हुई पुकार खो गई कहीं-
आज भी नवीन प्रेरणा यहाँ न मर सकी
न जी सकी, परन्तु वह न डर सकी
धनान्धकार के कठोर पक्ष
दंश चिह्न से
गम्भीर लाल बिम्ब प्राण ज्योति के
गम्भीर लाल-इन्दु से
सगर्व भीम शांति में उठे अयास मुसकरा
धनान्धकार की भिदी परम्परा।
सफेद राख के अचेत शीत
सर्व और रेंगते प्रसार में
दबी हुई अनन्त ज्योति जल उठी
मलीन म त्युगीत के उदास छंद बावरे
धनान्धकार के भुजंग-बंध दीर्घ साँवरे
विनिष्ट हो गए
प्रबुद्ध ज्वाला में हताश हो
विशाल भव्य वक्ष से।"

इस रूप में 'न मर सकी न जी सकी' से जिस गहरी यातना का बोध वे कराना चाहते हैं वस्तुतः वह उनका भोगा हुआ सुख है। प्रगतिशील चेतना की इस चरम अभिव्यक्ति को वे अपना साध्य मान लेते हैं। इसमें विरोधी परिस्थितियों का सामंजस्य एक और पाठकों के मन में सौन्दर्य बोध कराता है और दूसरी ओर आधुनिक मानव के यातनापूर्ण मानसिक तनाव को 'डर' शब्द से सर्वाधिक भयावह मनोदशा का जो बिम्ब वे उकेरना चाहते हैं वह उसके काव्य को सामाजिक दायित्व के साथ जोड़ता है। इसीलिए उनका कविहृदय पूँजीपतियों की प्रत्येक क्रिया एवं चेष्टा की घ णास्पद मानते हुए लिखता है-

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घ णा आता तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोगक मि है उम्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।

इसी कारण प्रगतिवादी काव्य पूँजीवादी वर्ग का आलम्बन ग्रहण करने के कारण व्यग्र हो गया है। कहीं-कहीं यह व्यग्रता काव्य दोष से युक्त हो गयी है। 'पूँजीवादी समाज के प्रति' कविता के क्रूरता, अत्याचार, शोषण एवं उत्पीड़न एक ओर सामाजिक व्यवस्था का विम्ब उभारते हैं तो दूसरी ओर भावक के हृदय में बार-बार प्रस्तुत होकर वीभत्सता अस्त्रचिरता तथा अकाव्योचितता का निर्माण करते हैं।

नयी कविता के समय जब राजनीतिक नेता, शक्ति के सिपाही। लेखक तथा कवि, विश्वविद्यालय की अध्यायनी से लेकर पत्रकारिता तथा अन्य माध्यमों से जुड़े थे तो उस समय एक ऐसा वर्ग साहित्य में गति दौड़ा रहा था जो शक्ति और विचार में अन्योन्य रिश्ते के लिए संघर्षरत तथा प्रतिबद्ध था। इसी वर्ग ने सबसे पहले मूल्यों के संकट का प्रश्न आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्क तिक मूल्यों के साथ उठाया और मानव मूल्य का निर्धारण किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने ही मानव के आन्तरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होने वाले संवेदनात्मक व्यक्तित्व की यथासामर्थ्य छानबीन की। मुक्तिबोध मूल्य की संवेदनात्मक बनावट को वैज्ञानिक तरीके से जाँचने-परखने में सफल भी हुए - 'जीवन ज्ञान व्यवस्था में मूल्य भावना और आलोचना सूत्र होते हैं। यह जीवन ज्ञान व्यवस्था जीवन यात्रा के क्रम में विकसित होती जाती है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इसके अन्तर्गत समाया हुआ जो विश्व बोध या जीवन-जगतबोध है, जो मूल्य भावना है, जो विचार व्यवस्था है, जो आलोचना सूत्र हैं, वे परिष्क त हो, निजबद्धता से परे होकर वे संशोधित-सम्पादित किए गये हों।' (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र प० 14) मुक्तिबोध की कविताएँ, कहानियाँ, आलोचनाएँ, एवं डायरी रचनानुभव के इस व्यक्तित्व सर्जन का पालन करते हैं। वे अपनी सांस्क तिक स्थिति के दोनों पहलुओं को इस रूप में रेखांकित भी करते हैं - "काव्य रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं, वह एक सांस्क तिक प्रक्रिया है और भी वह एक आत्मिक प्रयास है। उसमें जो सांस्क तिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज की या वर्ग की अपनी देन हैं।"

रचनाओं का अनुशीलन

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' संग्रह की कविताओं और तारसप्तक में संकलित रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध ने अपनी रचनाओं में जीवन के वैविध्यमय स्रोत को देखा है। उन्होंने जो भोगा है, सो लिखा है और जो लिखा है सो भोगा है, रचना और जिंदगी का अन्तराल उनमें नहीं रहा। मुक्तिबोध की कविताओं में अक्सर उनका 'एकांतिक सहचर' पाया जाता है। जिसे श्मशेर ने 'साथीन का भाव' कहा है। दरअसल, मुक्तिबोध जैसे 'मनस्थी की मनीषा' है जो जलते तारक सी घोर एकांत में पश्चिम की मधुर संवेदन बन जाती है, वह प्रगति पथ का सहारा होती है जो मुक्तिपथ की ओर ले जाती है। इसीलिए कवि को प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास है।

वह छिपा प्रत्येक डर में,
प्रति ह्दय मे कल्मषों के बाद
जैसे बादलों के बाद की है शून्य नीलाकाश।
उसमें भागता है एक तारा,
जो कि अपने ही प्रगति पथ का सहारा,
जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र,
भीतिहीन विराट-पुत्र।

मुक्तिबोध मानवीय आस्था के लेकर चलने वाला कवि है। वह जीवन-बोध की तलाश के लिए सहज अन्वेषी और विद्रोही होता है। वह नयी चिनगारियों से 'नव स्वप्न का आलोक' प्राप्त करता है। वह जलते स्पंदनों का कवि है। इसीलिए वह कहता है-

जिस देश प्राणों की जलन में,
एक नूतन स्वप्न का संचार हो,
ओ ह्दय मेरे उस ज्वलन की भूमि में बिछ जा स्वयं ही,
ओ तड़पकर उस निराले देश में तू खोल आँखें।

'तारसप्तक' में जोड़ी गई एक रचना है-'एक आत्म वक्तव्य' जिसे कवि ने भाव प्रक तियों के ख्याल से प्रायः सर्वागीण प्रतिनिधित्व करने वाली रचना कहा है। कवि का मानना है कि व्यवसायीकरण व्यापारीकरण के नाजुक दौर में उत्पन्न वैषम्य व्यक्ति के भीतरी जगत को भयावह बनाता है। अतः कवि के आत्म संवेदन सीधे सामाजिक यथार्थ को उजागर करते हैं। वह भोगे गये कटुतम यथार्थ से (भूतपूर्व भुगते हुए अनगिनत में) वर्तमान और भविष्य की स्थिति का विश्लेषण करता है। कवि की द ष्टि इतिहास बोध के साथ मूलतः मानवीय यातना पर केन्द्रित है-वो थी सर्वहारा के दमन पर।

मार-काट करती हुई सदियों की चीख,
मुठभेड़ करते हुए स्वार्थों के बीच
भोले-भोले लोगों के माथों पर घाव....

अँधियाली गलियों में घूमता है,
तड़के ही, रोज/कोई मौत का पठान
माँगता है जिन्दगी जीने का ब्याज,
अनजाना कर्ज माँगता है चुकारे में, प्राणों का मारना।

मुक्तिबोध की विश्वद ष्टि लड़घड़ाती दुनिया का मानचित्र देखती है। सत्ताग्रही अर्थाकांक्षी शक्ति के क त्य देखती है। इस यथार्थ वस्तुस्थिति के बाद वह आत्मधन, सारसत्य खोजती है। जन सामान्य में समशील समधर्म छटपटाती हुई मेरी छाँह खोजता है, क्रान्ति की आग भी जलाता है-

मैं हूँ जवाबी गदर
जिससे कि और ज्यादा तैयारियाँ कर
आज नहीं कल फूट पहूँगा जरूर। जरूर।
असंख्यक इत्यादि जनों का मैं भाग
इसीलिए अनदिखे। सुलगाता धीरे से आग
सच्चा है जहाँ असन्तोष। मेरा वहाँ परितोष।

चाँद का मुँह टेढ़ा हैः मूल भावभूमि

संकलन की पहली रचना 'भूल गलती' में दरबारेआम का द श्य है जहाँ सब बेजुबाँ, सिर झुकाये कतारबद्ध खड़े हैं। शाही हथियार चारों ओर चमक रहे हैं और उसकी आँखें नुकीले तेज पत्थर की तरह चिलकती है। उन सबमें एक ऐसा कैदी भी है। जो हथकड़ी पहने तार-तार वस्त्र और बहते खून के लम्बे दाग लिये बेखौफ 'सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता है। वह कैदी दरअसल। कैद कर लाया गया ईमान है। अतः निर्भय है। बड़े-बड़े मनसबदार, सूफी खामोश हैं। यह यथार्थ है। वस्तुस्थिति जहाँ सत्ता के हाथों कलम बिक जाती है, धर्म, दर्शन, विचार सब दबाव में आ गए हैं। किन्तु वह कैदी कोई समझौता नहीं करता-नामंजूर उसको जिन्दगी की शर्म की शर्त। यहाँ कवि की मध्यवर्गीय चेतना मानवीय धरातल पर शोषित और दलित के साथ संलग्न होती है। यह वर्ग चेतस या वर्ग पसारित स्थिति है। वह बेनाम, बेमालूम, विद्रोही गुप्त ढंग से साथियों की खोज करता है। अंधेरी घाटियों के टीलों में छिपकर क्रांति की तैयारी करता है। कवि आश्वस्त है कि उसकी संकल्पधर्मा चेतना, हमारे हृदय में सुप्त क्रान्तिबोध को झकझोरेगी और उसका रक्तप्लावित स्वर हमारी हार का बदला चुकाने अर्थात् शोषण और पीड़ा से मुक्ति देने आयेगा। तभी कवि लिखता है-

हमारी हार का बदला चुकाने आयेगा
संकल्पधर्मी चेतना का रक्तप्लावित स्वर
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वणक्षिर
प्रकट होकर विकट हो जाएगा!!

इस कविता में जिंदगी के दो स्तर जीने वाले बुजुर्गों (दढ़ियल, सिपहसालारों) पर व्यंग्य है जो-दिल में अलग जबड़ा अलग दाढ़ी लिये, दुमुँहेपन के सौ तजुर्बो की बुजुर्गों से भरे। जमाने की शोषण व्यवस्था और जहरीलेपन को मुक्तिबोध नया मुहावरा देते हैं - 'जमाना साँप का काटा'।

पता नहीं:

इस रचना में शक्ति पुरूष की आत्मीय छवि की बात कही गई है जो सर्वहारा का अग्रदूत है, मानवता का अगुवा है, जो हमारी जड़ व्यक्तिबद्धता को नष्ट कर सामाजिक चेतना का प्रदाता है। यहाँ कवि किसी संबोधित व्यक्ति से प्रतीकों के सहारे समाज के उत्पीड़न, शोषण, असंतोष, वैमनस्य और छिन्न-भिन्न संबंधों की बात करता है। वह तत्प अनुभवों याने वर्तमान हालातों को पेश करता है - 'चिलचिला रहे फासले, तेज दुपहरी भूरी, काल बाँका - तिरछा।

'ब्रह्मराक्षस' कविता फैंटेसी, बिम्ब प्रतीक और वातावरण के माध्यम से समझी जा सकती है। मुक्तिबोध ने अपने कथ्य को बहुत जटिलताओं में निबाहा है और तरह-तरह के शिल्प पेटर्नों का प्रयोग भी किया है। खंडहर की तरफ सूनी बावड़ी के भीतरी ठंडे अंधेरे में ब्रह्मराक्षस पागल की तरह बड़बड़ाता है। उसके प्राण में स्याह संवेदनाएँ हैं, कभी कुद्ध मन्त्रोच्चार करता है। कभी शुद्ध संस्क त में गालिया देता है। वह दम्भी ब्रह्मराक्षस गहरी बावड़ी की भीतरी दीवारों पर आई हुई सूर्य किरणों को अपने प्रति सूर्य का नमन समझता है। वह बार-बार बावड़ी की अंधेरी सीढ़ियों पर चढ़ता उतरता है। वह भयानक आत्मसंघर्ष से गुजरता

है। उसने वैदिक ऋचाओं से लेकर महान विचारकों का अध्ययन किया है - मार्क्स, एंजेलस, सार्त्र, गांधी आदि आदि। वह अतिरेकवादी पूर्णता को प्राप्त करना चाहता है लेकिन उसे असफलता मिलती है। असल में, वह भाव, तर्क कार्य-सामन्जस्य स्थापित नहीं कर पाया है। वह मध्यवर्गीय भ्रमों में भटकता, अन्तर्वहय के असामन्जस्य के कारण आत्म संघर्ष में जुट गया। उसे महता नहीं मिली क्योंकि वह अपनी पूर्णता और निजी मुक्ति तक सीमित था।

पिस गया वह भीतरी
ओ बाहरी दो कठिन पाटों बीच
ऐसी ट्रेजिडी है नीच!!

दिमागी गुहान्धकार का औरांग उटाँगः

यह प्रतीक है आदमी के भीतर की बर्बरता। जंगली असभ्यता और अहंकारी शोषक प्रव त्ति का। वह असत्य शक्ति का प्रतिरूप है। एक विलक्षण वातावरण में फैंटेसी का निर्माण होता है। असल में व्यक्ति नहीं बोलता उसके स्वर में औराँग उटाँग की बौखलाती हुन्च ति ध्वनियाँ बोलती हैं।

लकड़ी का बना रावणः

यहाँ फैंटेसी के बीच से उभरती तबाह इन्सानियत की स्याह तस्वीर का एक चित्र है। सत्ताधारी और पूँजीपति समुत्तुंग शिखरों पर रहकर सुरक्षित है। ये व्यवस्था के शोषक रावण जन्तन्त्रात्मक चेतना से भयभीत हैं, ये भीड़ को, मजदूरों को श्याम वर्ण मूढ़ समझते हैं। वे करवट लेते आन्दोलन को दबा देना चाहते हैं।

बढ़ न जायँ। छा न जायँ। मेरी इस अद्वितीय।
सत्ता के शिखरों पर स्वणभि
हमला न कर बैठे खतरनाक। कुहरे के जनतन्त्री।
वानर ये, नर ये!! समुदाय। भीड़।
डार्क मासेज ये मौंग हैं
श्यामवर्ण मूढ़ों के दिमाग खराब हैं।

इसतरह एक ओर यह रचना हमारे व्यक्तित्व को काठ के रावण की तरह खोखली रिक्त और हास्यास्पद बताती है तथा दूसरी ओर यह वर्ग-संघर्ष, वैषमीय और रावणीय क त्यों को दर्शाती है।

चाँद का मुँह टेढ़ा हैः

इस कविता में क ष्ण पक्ष की आधी रात में निकली क्षीण चाँदनी टेढ़ा सा मुँह किये अपनी किरणों के जासूसों द्वारा नगर के कोनों के तिकोनों में छिपकर शहर में फुसफुसाते षडयन्त्रों हत्याओं और राजनीतिक उथल-पुथल को देखती है। तभी अंधेरे से आकर ये भुजाए हड़ताली अक्षरों में लाल पोस्टर चिपका देती है; किंतु शोषक वर्ग की हिमायती रजनी के निजी गुप्तचरों की प्रतिनिधि बिल्ली यमदूत-पुत्री सी हड़ताली पोस्टर चिपकाने वाले को ताड़ लेती है। रात के जहाँपनाह (उल्लू) काले कारनामों से अपनी पूँजीवादी संस्क ति सुरक्षित किये हुए हैं। मध्यवर्ग चिमगादड़ दल-सा नपुंसक पंखों की छटपटाती रफ्तार लेकर स्वार्थ और दंभ के घेरे में भटकता है किंतु क्रान्ति के लिए संगठित जनता (बरगद) पूरा ऐतिहासिक द्वन्द्व समझ चुकी है। अतः कविता फैंटेसी से गुजरती हुई म त परम्पराओं पर व्यंग्य करती है।

डूबता चाँद कब डूबेगाः

इस रचना में ह्रासशील सामंती-पूँजीवादी वैभव के पूरे विनाश की प्रतीक्षा है। इसमें युगीन परिस्थितियाँ, व्यक्ति के कलुषमय आचरण और संघर्षमय विश्वास को रूपायित किया गया है। शोषक व्यवस्था ने आशंका की भुतही छायाएँ और बीमार समाजों के घर में कराहते गर्भ पैदा किये हैं। पाखण्ड पूर्ण हिंसक, अमानवीय क त्यों के जनक यहीं हैं जो, 'शोषण के वीर्य बीज में-दुर्दभ 'राक्षस बालक' को जन्म देते हैं। स्थिति यह है कि जीवन का आत्मज सत्य त्याग दिया गया है और व्यक्ति हाँ में हाँ नहीं में नहीं करता संसार में खप रहा है।

एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथनः

यहाँ विद्रोही ने व्यवस्था के महल को ढहाने का संघर्ष किया है। वह सामंती अस्तित्व का निशान भी मिटाने के लिए क्रान्ति करना चाहता है। उसे पता है कि उसकी भूमिका व्यर्थ नहीं जाएगी-

आत्म विस्तार यह। बेकार नहीं जाएगा
जमीन में गड़े हुए देहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से, धूल से खिलेंगे गुलाबी फूल
यही है कि हम पहचाने नहीं जायेंगे।
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
ह्वदयानुभव-राग-अरूण। गुलाबी फूल, प्रक ति के
गंधकोश। काश, हम बन सकें।

मुझे कदम-कदम पर रचना में कवि हर ह्वदय की संवेदनाओं को समझना चाहता है-

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमलसदा नीरा है।
मुझे भ्रम है कि प्रत्येक वाणी में,
महाकाव्य पीड़ा है।

इस संग्रह में संमलित कविताएँ हैं- 'मुझे याद आते हैं,' 'मेरे लोग', 'मेरे सहचर मित्र', 'मैं तुम लोगों से दूर', 'कल जो हमने चर्चा की थी', 'एक अंतर्कथा' एक 'अरूण शून्य के प्रति' ओ काव्यात्मन फणिधर, 'नक्षत्र खंड़', चकमक की चिनगारियाँ, 'शून्य', 'जब प्रश्न चिह्‌न न बौखला उठे', 'एक स्वप्न कथा', 'अंतःकरण का आयतन', 'इस चौड़े ऊँचे टीले पर', 'चम्बल की घाटी में', 'अंधेरे में'। अंधेरे में कविता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। नामवर सिंह ने इस कविता को नयी कविता की चरम उपलब्धि माना है और कवि कर्म की चरम परिणति कहा है। अशोक वाजपेयी ने इसे 'पिछले बीस वर्ष की कविता की सम्भवतः श्रेष्ठतम उपलब्धि माना है। इस कविता पर विस्तार से चर्चा आगे की जाएगी।

मुक्तिबोध की काव्य भाषा

उनकी भाषा विचारों की प्रखरता को सबल अभिव्यक्ति दे सकी है। परम्परा के मोह को त्यागकर मौलिकता के साथ। चाहे मानसिक तनाव और अतःसंघर्ष हो या युगीन पाशविकता और व्यवस्था की क्रूरता, कवि की काव्य भाष आतंक, गति, विस्फोट और ऊर्जा से सम्प क्त होकर एक-एक पर्त को उधेड़कर सामने रखती है। उनका तिलस्मी खोफनाक, संसार-स जन भी भाषा की सामर्थ्य का परिचय देता है। उसे हम भले ही सुरदरी, अनगड़ और रूपी भाषा कहें लेकिन उसमें अर्थवत्ता है और जिंदगी की नग्न यथार्थवता को व्यक्त करने की प्रबल क्षमता। उनकी काव्य-भाषा उन्हें लम्बी कविताओं का समर्थ कवि बनाने में सहायक सिद्ध होती है। वह उनकी रचनाओं को महाकाव्यात्मक कल्पना और नाटकीयता से सम्पन्न बनाती है। भाष के न जाने कितने स्तर उनके पास है - संस्क त निष्टा सामाजिक पदावली, अरबी-फारसी, उर्दू के सटीक प्रयोग, अंग्रेजी मराठी के शब्द, तद्‌भव, देशज, शब्दों का सार्थक, प्रस्तुतीकरण और नये शब्दों का निर्माण। उनकी काव्य-भाषा चेतन-अचेतन, स्थूल; सूक्ष्म रंग, स्पदन और विविध मानसिकताओं के गहरे चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है। उनके व्यंग्य शाब्दिक मितव्ययता के साथ चुभन में बहुत तीखे हैं। चाहे स्वप्न चित्रों की लड़ी हो, चाहे सस्पेंस की प ष्ठभूमि, चाहे दहशत और आतंक हो या आशा, आस्था और करूणा की दुनिया, कवि की भाषा सारे रूपरंग सजाने में पीछे नहीं हटी। उसने रहस्य, रोमांच और जिज्ञासा के संसार को भी बखूबी निभाया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चाहे मुक्तिबोध का कवि व्यक्तित्व हो चाहे उनकी रचना-प्रक्रिया हो और चाहे समीक्षा पद्धति - इन तीनों की एकतानता नयी कविता में मुक्तिबोध के अलावा अन्य किसी में दिखाई नहीं देती।

मुक्तिबोध की सामाजिक चेतना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और साहित्य मनुष्यों के सुख-दुखों की अभिव्यक्ति का साधन है। इस प्रकार साहित्य को सामाजिक संदर्भो से अलग नहीं देखा जा सकता।

श्रेष्ठ साहित्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन न होकर जन-सामान्य के हितों को वाणी देना एवं सामाजिकता में प्रवेश करना होता है। मुक्तिबोध संघर्षशील कवि हैं। उनका जीवन संघर्षो की महागाथा है। जीवन के कटु अनुभवों, परिवेश तथा परिस्थितियों ने उनके काव्य को एक ऐसा हथियार बना दिया है जो पीड़ितों, दलितों, शोषितों को चिरकाल तक संबल देता रहेगा।

मुक्तिबोध के काव्य में सामाजिक चेतना तथा जटिल यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। उनका काव्य वर्तमान युग की विसंगतियों और व्यक्तिमन की पीड़ा, घुटन, संत्रास, निराशा, कुण्ठा का मार्मिक चित्रण करता है। उन्होंने यथार्थ से गहरा साक्षात्कार करते हुए आम-आदमी की समकालीन त्रासदी को बड़ी बैचेनी एवं पैनेपन के साथ स्थापित किया है।

जीवन के कटु अनुभवों एवं सामाजिक विषमता ने उन्हें मार्क्सवाद की ओर प्रव त्त किया। किन्तु उनका चिंतन प्रगतिशील रहा और उन्होंने मार्क्स का भारतीयकरण किया, अपनी चेतना में पुनराविष्कार किया है। उन्होंने मार्क्स की प्रासंगिकता को संवेदना के स्तर पर उद्घाटित किया है।

सामाजिक स्तर पर मुक्तिबोध के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती पूंजीवादी व्यवस्था रही, जिसकी यन्त्रणाओं में पिसकर सामान्य व्यक्ति इस व्यवस्था के चक्रव्यूह से बच नहीं पाता है। इस व्यवस्था में योग्यता, पुरूषार्थ, कर्त्तव्य, धर्म सभी की कसौटी बन जाता है। व्यक्तिगत लाभ ही जीवन का सर्वोपरि मूल्य बन जाता है। फलतः शोषक वर्ग शोषित वर्ग का चतुर्दिक शोषण करता है। मुक्तिबोध शोषण की चरम सीमा को उद्घाटित करते हुए कहते हैं-

"जनता को ढोर समक्ष
ढोरों की पीठ भरे
घावों में चोंच मार
रक्त भोज, मांस भोज
करते हुए गर्दन भटकाते दर्प भरे कौओं-सा
भूखी अस्थि-पंजर शेष
नित्य मार खाती-सी
रंभाती हुई अकुलाती दर्प भरी
दीन मलिन गौओं-सा।"

ऐसी समाज व्यवस्था के प्रति मुक्तिबोध का संवेदनशील हृदय तड़प उठता है। जो समाज की जड़ों को खोखला करके व्यक्ति के बीच खाई बना रही है। व्यक्ति और समाज के नैतिक मूल्यों का ह्रास कर केवल व्यक्तिगत स्वार्थ को प्राथमिकता दे रही है। ऐसी समाज व्यवस्था में संस्क ति और सभ्यता अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकती-

"शोषण की अतिमात्रा
स्वार्थो की सुखयात्रा
जब-जब सम्पन्न हुई
आत्मा से अर्थ गया,
मर गई सभ्यता।"

शोषण के खिलाफ कवि की यह लड़ाई बाह्य नहीं बल्कि उनकी आन्तरिक पीड़ा है, कवि हृदय की तड़प है। अशोक वाजपेयी जी उनकी कविता के सामाजिक संदर्भो की भावात्मकता को लक्षित करते हुए कहते हैं - "उनकी कविता का सामाजिक द श्य सिर्फ एक पीड़ा भरा बाह्य नहीं, बल्कि वैसी ही पीड़ा वाला एक अंतस् भी है और इसीलिए अत्यन्त सामाजिक होते हुए भी अत्यन्त निजी है। मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जो अपने समय में अपने पूरे दिल और दिमाग के साथ, पूरी मनुष्यता के साथ रहते हैं।"

उनकी रचनाओं में शोषण से पीड़ित समाज के प्रति करूणा पिघल उठती है, वे कराह उठते हैं और विरोध की भावना से भरकर चिल्लाते हैं-

आँखों में तैरता है चित्र एक
डर में सम्भाले दर्द गर्भवर्ती नारी का
अपनी सारी थकान के बावजूद
मजदूरी करती है......................।"

कवि इस शोषिता की पीड़ा से आहत होकर शोषण के विरूद्ध चिल्लाता है। सिर्फ चिल्लाता ही नहीं अपितु शोषक वर्ग की खातिर अत्याचार से लड़ने के लिए गलियों में भी उतरता है-

"ऐ हिन्दुस्तानी फटेहाल जिन्दादिल जिन्दगी
तेरे साथ यह बन्दा नित रहेगा।

गलियों में रहेंगे..............................।
गलियों में रहने वालों के लिए हम लड़ेंगे।"

कवि मुक्तिबोध स्थान-स्थान पर आत्म-विश्लेषण करते हुए अपने लेखकीय दायित्व की समीक्षा करता है और आत्म फटकार लगाते हुए अपने आप से भी प्रश्न करता है कि पीड़ित समाज के लिए उसने क्या किया -

"ओ मेरे सिद्धान्त वादी मन
अब तक क्या किया
जीवन क्या जीया
उदरम्भरि बन अनात्म बन गये
भूतों की शादी में कनात से तन गये
किसी व्यभिचारी के बिस्तर बन गये।" (अंधेरे में)

कवि कर्त्तव्य की खातिर आत्म तिरस्कार करने वाले मुक्तिबोध सभी साहित्यकारों को सजग करता है और उन साहित्यकारों को फटकारता है जो पूंजीपतियों की नाभि-नाल से जुड़कर जन-सामान्य पर हो रहे अत्याचारों को देखते हुए भी मौन हैं। जीवन की जिजीविषा एवं अदम्य साहस भी उनके काव्य में सामाजिक दायित्व एवं प्रतिबद्धता के रूप में व्यक्त हुआ है। उनकी कल्पना सम्पूर्ण समाज को मुक्ति प्रदान करके सहज ही विश्वफलक को घेर लेती है-

"मुक्ति के राजदूत सस्ते हैं

याद रखो कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ है।"

उनकी कविता में 'आदमी का अस्तित्व' समाज से गहरे जुड़ा है। जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्था उनकी वैयक्तिकता को सामाजिकता में बदल देती है। इसीलिए उन्होंने प्रत्येक डर की पीड़ा को स्वर दिया है-

"मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य की पीड़ा है
पल भर में सबसे गुजरना चाहता हूँ
प्रत्येक डर से तिर आना चाहता हूँ।"

और यही मानवीय चेतना उनकी सामाजिक चेतना का शक्ति पुंज है। इसीलिए वह सामाजिक यथार्थ को शीघ्रता से पहचान लेता है।

याद रखो
कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ ही...........

कवि की सामाजिक चेतना जीवन और समाज की मौलिक समस्याओं के गहन चिन्तन एवं चित्रण में दत्तचित हो जाती है। कवि अपने चारों ओर की समस्याओं को ही नहीं देखता बल्कि सम्पूर्ण मानवता तक पहुँचने की कोशिश करता है-

"वही फटे हाल रूप।
परम अभिव्यक्ति। लगातार झूमती है जग में
पता नहीं जाने कहां, जाने कहां। वह है।

इसलिए मैं हर गली में
और हर सड़क पर
झांक-झांक देखता हूँ हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि,
प्रत्येक चरित्र..................."

कविवर मुक्तिबोध समाजवादी चिंतक कार्ल मार्क्स से प्रभावित थे। उन्होंने पूँजीवादी मानसिकता का नग्न-नर्तन खुली और पैनी आँखों से देखा था। उन्होंने पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामान्तवाद को एक ही सिक्के के पहलू माना है। कवि ने इन्हें रक्तपायी वर्ग कहा है और कहा है कि इन्होंने नपुंसक-भोग-शिरा-जालों में उलझकर आम आदमी का अनवरत शोषण किया है। उन्होंने पूँजीवाद को कंस का क्रूर चरित्र एवं "बाबर फौज के खूनी चेहरे" कहा है। उन्होंने एक कविता में पूँजीवाद को जीवन्त अभिशाप कहा-

"तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।"

कवि नवीन समाज निर्माण के लिए पूँजीवादी साम्राज्यवादी शक्तियों के सर्वनाश पर बल देता है। उनका मानना है कि पूँजीवाद शोषण पर टिका है और शोषण मानवता को असह्य है। इसीलिए कवि कहता है-

"कविता में कहने की आदत नहीं पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता।
पूँजी से जुड़ा ह्रदय बदल नहीं सकता,
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को,
जन को।

मुक्तिबोध जनवादी चेतना के कवि हैं। उन्होंने आम आदमी के संघर्षो को देखा ही नहीं बल्कि अनुभूत किया था। उनके व्यक्ति मन की पीड़ा काव्य का आधार पाकर मानव-मात्र की पीड़ा बन गई। कविवर शमशेर बहादुर सिंह का कथन है-"जिन अनुभूतियों को इस अड़ियल कवि ने झेला है, उनमें जीकर उनकी अग्नि परीक्षा देकर वह वहाँ आ खड़ा हुआ है, जहाँ वह प्रत्येक संघर्षशील देश व जनता का अपना हो गया है।" 'अंधेरे में' कविता पूरे समाज में हो रहे अत्याचार के विरूद्ध जन-सामान्य की परम-अभिव्यक्ति है, जन-मन की अभिव्यक्ति का इस्पाती दस्तावेज है। उदाहरणतः

"रात में पीले हैं चार घड़ी-चेहरे,
मिनट के कांटों की चार अलग गतियाँ
चार अलग कोण। चार अलग संकेत,
खम्बों पर बिजली की गरदने लटकी,
शर्म में जलते हुए बल्बों के आस-पास
मचल-मचल कर।"

कवि कहता है कि जीवन और समाज हर प्रकार के शोषण से अत्याचार से मुक्त होना चाहिए। एक वर्गहीन, मानवीय समाज होना चाहिए

"समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी सुन्दर व शोषित मुक्त कब होंगे"

कवि की परम अभिव्यक्ति हर गली में, सड़क पर घुमती हुई प्रत्येक अत्याचारी और शोषक का चेहरा देख रही है और उनकी प्रत्येक गतिविधि भी देख रही है। वह हर एक आत्मा का इतिहास, देश व राजनैतिक परिस्थिति, प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श, विवेक प्रक्रिया देख रही है। कवि इसी को परम अभिव्यक्ति कहता है। इसे अभिव्यक्त करना चाहता है। यह परम

अभिव्यक्ति शोषण की नियामक शक्ति के विरूद्ध है, जो कवि के अचेतन मन से बाहर निकलकर सामाजिक परिवर्तन करना चाहती है। 'भूली गलती' में यह विश्वास व्यक्त हुआ है कि शोषित वर्ग की चेतना का रक्तप्लावित स्वर अपने अत्याचारों का बदला चुकाने आएगा। इसी तरह 'पता नहीं' में मुक्ति का प्रयास करने वाली आत्मीय छवि का प्रदर्शन है। 'एक स्वप्न कथा' में सर्वहारा समाज की वर्तमान वैषम्यों और बन्धनों से मुक्ति की खोज का उपक्रम है। चकमक की चिनगारियाँ में सभी कविताएँ 'जन-चरित्री' है। 'एक अन्तर्कथा' में दलित मानवता का चित्रण है।

मुक्तिबोध का काव्य-व्यापार और परिवेश के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। वहाँ मानव विरोधी हरकतों को समझता हुआ सामाजिक चेतना सही भूमि पर अवस्थित है। उसमें भय, संदेह, उत्पीड़न तथा आशंकाओं के बीच जीते हुए समकालीन मनुष्य के विविध पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। मुक्तिबोध की रचना का केन्द्रिय तत्व पीड़ित मानवता की पक्षधरता है। कवि ने स्थान-स्थान पर जन सामान्य को हीनता, बौनेपन, गूंगेपन से मुक्त कराने के लिए अभिव्यक्ति के खतरे उठाये हैं। कवि की द ष्टि से समाज के प्रत्येक स्तर को सोचने, समझने, वर्ग-चेतस होकर कर्मरत होने की प्रेरणा मिलती है।

मुक्तिबोध संतकवियों की तरह समाज की कुरीतियों का विरोध करते हैं, रूढ़ियों के प्रति आवाज उठाते हैं। एक नितान्त आम आदमी की हैसियत से कवि मानवीय न्याय के प्रति अत्यधिक जागरूक है। उनके समस्त काव्य में समाज के प्रत्येक दुःख दर्द का मार्मिक अंकन है। व्यक्ति की पीड़ा, घुटन, छटापटाहट, वर्तमान स्थितियों के प्रति गहरा असन्तोष और आक्रोश है। कवि परिस्थितियों की विषमताओं और विसंगतियों से निराश एवं हताश न होकर समाज को भविष्य के लिए आशावान रहने की प्रेरणा देता है। यह आशावादी स्वर भी उनकी सामाजिक चेतना का वैशिष्ट्य है।

सांस्क तिक मूल्य संदर्भ

मुक्तिबोध ने वर्तमान जीवन की विक तियों तथा उनके संदर्भ में आधुनिक कविता के दायित्व पर विचार करते हुए 'काव्य : एक सांस्क ति प्रक्रिया' नामक निबंध में लिखा है- "आज की कविता का मूल प्रश्न जीवन जगत के ज्ञान के अधूरेपन या पूरेपन, विकारग्रस्तता या शुद्धता के प्रश्न के साथ अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। आज के कवि को, अर्थात् हमें, ज्ञान पक्ष के विकास की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं रही। इसका कारण यह है कि आज का कवि एक असाधारण, असामान्य युग में रह रहा है। जहाँ मानवता-संबंधी प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो उठे हैं। समाज भयानक रूप में विषमता-ग्रस्त हो गया है। चारों ओर नैतिक ह्रास के द श्य दिखाई दे रहे हैं।

मुक्तिबोध काव्य-रचना को केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया न मानकर एक सांस्क तिक प्रक्रिया मानते हैं। उन्होंने काव्य में परिलक्षित होने वाले सांस्क तिक-मूल्यों को समाज की देन माना है। स्वयं मुक्तिबोध का काव्य सांस्क तिक-मूल्यों के तनाव, टूटन और नव-निर्मिति का समवेत बिम्ब है। यथा-

"यह सही है कि चिलचिला रहे फासले
तेज दुपहर भरी
सब ओर गरम धार-सा रेंगता चला
काल बाँका-तिरछा
पर तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद छाँह वहीं
गहरी-गहरी सपनीली-सी
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी डर सू-स शा
स्वर्गीय उषा......................
लाखों आँखों से, गहरी अन्तःकरण त षा
तुमको निहारती बैठेगी
आत्मीय और इतनी प्रसन्न
मानव के प्रति मानव के
जी की पुकार। जितनी अनन्य।"

सांस्क तिक मूल्य

सांस्क तिक व्यक्ति और समूह के मंगल के लिए अनिवार्य होते हैं। संस्क ति समाज की सभी उपलब्धियों का प्रतिफल होती है। मूल्य उपलब्धियों का मानवीकरण। अतः सांस्क तिक मूल्य समाज के भौतिक, भावात्मक तथा कलात्मक क्षेत्र की वे उपलब्धियाँ हैं, जो समस्त समाज तथा कई पीढ़ियों के सामूहिक प्रयत्न का परिणाम होते हैं। प्रश्न है-क्या सांस्क तिक मूल्य स्थिर होते हैं अथवा देशकाल के अनुरूप परिवर्तित होते हैं। हाँ, संस्क ति परिवर्तनशील है। मूल्य गतिशील है। यदि विकास की प्रक्रिया से देखें तो भौगोलिक एवं अन्य कारणों से संस्क ति का रूप चिरकालिक होता है, उसका बाह्य रूप बदल जाता है किन्तु अन्तर्धारा नहीं बदलती। चूँकि मूल्यों का संबंध अन्तर्धारा से है इसलिए वह जड़ न होते हुए भी स्थायी है, चिरकालिक है। कोई भी मूल्य स्वतन्त्र न होकर पूरी मूल्य व्यवस्था का अंग होता है।

आधुनिक युग में प्रायः सांस्क तिक मूल्यों के विघटन की बात की जाती है। विघटन के मुख्य कारण हैं-वैज्ञानिक शक्ति का आश्चर्यजनक विकास और उसके संभावित दुरूपयोग से सर्वनाश की आशंका, मानव-मन के गुह्यतम रहस्यों के उद्‌घाटन और विवेक पर सन्देह, स ष्टि के विस्तार की असीमता का ज्ञान तथा परिणामतः मानव की लघुता का बोध।

बेशक, उनकी कविता में सांस्क तिक विघटन का स्वर क्षीण है किंतु उन्होंने विघटन को जीवन की प्रक ति के रूप में नहीं स्वीकारा। उन्होंनें जीवन की विक ति को फैशन रूप में अंकित नहीं किया। दुर्दान्त संघर्षो में लीन उनका अपना जीवन भी इन मूल्यों की कसौटी पर था। एक जागरूक कलाकार की सूक्ष्म तटस्थ द ष्टि से समाज को तो उन्होंने देखा ही था-"संस्क ति के सुवासित आधुनिकतम वस्त्रों के अन्दर का वासी, वह नग्न, अति बर्वर देह, सूखा हुआ से गीला पंजर।"

व्यक्ति और समाज

मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभावी कवि हैं। शायद इसी कारण डॉ० जगदीश गुप्त ने कहा-"यदि केवल प्रगतिवाद से अनुप्रेरित हिन्दी काव्य को द ष्टि में रखा जाये तो उन्हें उसकी सबसे बड़ी देन कहा जा सकता है....... उसमें (काव्य में) जो सांस्क तिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की अपनी देन नहीं, समाज या वर्ग की देन है। यह ध्यान में रखने की बात है कि नयी कविता वर्तमान ह्रासगत, अधः पतनशील सभ्यता की असलियत को जब तक पहचानती नहीं है, सभ्यता के मूलभूत प्रश्नों से अपने को जब तक जोड़ नहीं लेती है, मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष से जब तक वह स्वयं को संयोजित नहीं कर पाती। जब तक उसमें उत्पीड़न और शोषित मुखों के बिम्ब दिखाई नहीं देते, उनके हृदयों का आलोक नहीं दिखाई देता, तब तक सचमुच हमारा कार्य अधूरा रहेगा।" मुक्तिबोध कवि पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था और उससे संबद्ध विषयों पर समझौते की सोच भी नहीं सकते-

"मैं परिणत हूँ
कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह देता हूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को
जन को।"

'तारसप्तक' में संग हीत 'पूँजीवादी समाज के प्रति' नामक कविता में उन्होंने लिखा था-

"तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ"

अतः मुक्तिबोध पूँजीवादी मूल्य स्वीकार नहीं करते। वे सामूहिकता के अतिरिक्त अन्य किसी तरह भी स्व-मंगल की कल्पना नहीं कर सकते-

अरे! जन-संग उष्मा के
बिना व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते

और कि अपनी मुक्ति के रास्ते
अकेले में नहीं मिलते।

यहाँ कवि ध्वंस पर ही द ष्टि रखकर नहीं चलता बल्कि विकल्प भी प्रस्तुत करता है। पूँजीवादी व्यवस्था शोषण पर आधारित हैं। कवि उसका विरोधी होने के कारण उस व्यवस्था की म त्यु की घोषणा कर देता है-

"शोषण की अतिमात्रा
स्वार्थो की सुख यात्रा
जब-जब सम्पन्न हुई
आत्मा से अर्थ गया,
मर गई सभ्यता।"

कवि का कहना है कि शोषण के वीर्य-बीज से शोषक ही पैदा होंगे। जिस समाज में शोषक रहते हैं वह चल नहीं सकता। भले ही हम लाख ऊँचे आदर्श रखे, संसार को अच्छा बनाने के लिए जिस निष्ठा की ओर प्रयत्न की आवश्यकता है वह यहाँ नहीं है। 'अंधेरे में' कविता का अंश देखिए, जिसमें आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी मन को सम्बोधित करते हुए जीवन का अर्थ ढूँढ़ने की चेष्टा की गई है, सामाजिक यथार्थ के खोखलेपन, व्यक्ति की नैराश्य एवं विवशता को उजागर करता कवि कहता है -

"उदरम्भरि बन अनात्म बन गए
भूतों की शादी में कनात से तन गए
किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर

लोकहित पिता को घर से निकाल दिया
जन-मन-करूणा-सी माँ को हँकाल दिया
स्वार्थ के टेरियर कुत्तों को पाल लिया

विवेक बधार डाला स्वार्थो के तेल में
आदर्श खा गये।"

कवि मुक्तिबोध परम्परागत अध्यात्मकवाद को नकार देते हैं क्योंकि मार्क्सवाद को अपना लेने के बाद उनके लिए अध्यात्म का महत्त्व भी नहीं था। उन्होंने इसकी व्यर्थता को समझ लिया था 'अरूप शून्य के प्रति' कविता में शून्य की साधना में लगे लोगों से पूछते हैं-

"मात्र अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अँधेरे का इतना तेज उजाला
लोग बाग
अनाकार ब्रह्म के सीमाहीन शून्य के
बुलबुलों में यात्रा करते हुए गोल-गोल
गोल-गोल
खोजते हैं जाने क्या"

मुक्तिबोध कवि खुदा के अस्तित्व को नकारते हुए व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार करते हैं-

जिन्दगी के दलदल-कीचड़ में धँसकर
वक्ष तक पानी में धँसकर
मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ
भीतर से इसलिए गीला हूँ
पंक से आव त
स्वयं में घनीभूत
मुझे तेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है।"

मुक्तिबोध के अनुसार "हमारा सामाजिक व्यक्तित्व हमारी आत्मा है।" बहरहाल ऐसे स्थलों पर कवि की आस्था के क्षणिक विचलन को हम उनका प्रतिनिधि स्वर नहीं मान सकते।

वैचारिकता से उतरकर व्यावहारिकता के धरातल पर कवि मुक्तिबोध कहता है-"मूल्य मूर्त होते हैं, जो केवल भावुक और वैचारिक धरातल पर 'मूल्य' कहलाकर वस्तुतः व्यक्तित्व का गुण बनने का प्रयास करते रहते हैं।" बहुत प्रश्न एवं समस्याएँ हैं जिनका उत्तर नहीं। कवि का मानना है कि युग बदल रहा है। ध्वंस करके ही पुनर्निर्माण करना होगा-

हे रहस्यमय,
ध्वंस महाप्रभु,
जो जीवन के तेज सनातन
तेरे अग्निकणों से जीवन,
तीक्ष्ण बाण से नूतन सर्जन
हम घुटनों पर नाश-देवता
बैठ तुझे करते हैं वन्दन
मेरे सिर पर एक पैर रख नाप तीन जग तू असीम बन।

मुक्तिबोध ने अपने काव्य में जीवन के प्रति अटूट आस्था को अभिव्यक्त किया है। जीवन की विषम परिस्थितियाँ उनकी इस अवस्था को तोड़ नहीं पायी। आधुनिक सभ्यता की विसंगतियों को उन्होंने पहचाना। निर्धन की प्रतिभा और ईमान को अपमान की आग में सुलगता पाया। समाज में व्याप्त वचन और कर्म के विरोध को देखा। इस विषय में डॉ० रवीन्द्रनाथ का कहना है-"शोषण की सभ्यता के नियमों के अनुसार बनी हुई संस्क ति के तिलस्मी स्याह चक्रव्यूहों में फँसे हुए प्राणों की छटपटाहट इस अति संवेदनशील कवि के अनुभव की, इस चक्रव्यूह को तोड़ने की कोशिश की, लेकिन यह सब उन विक त सामाजिक रूढ़ियों का ही विरोध था जो सांस्क तिक मूल्यों का जामा पहनकर वैचारिक जगत में आ घुसी थी। एक शोषण-मुक्त समाज, उसमें पनपने वाले सांस्क तिक मूल्यों और इनसे बढ़कर मानवता के प्रति उनकी अटूट आस्था थी, और यही हम मुक्तिबोध के काव्य में मानवता की मुक्ति का बोध पाते हैं।" अतः मुक्तिबोध के काव्य में सांस्क तिक मूल्यों को वर्तमान सामाजिक यथार्थता से देखा, परखा गया है।

मुक्तिबोध के काव्य में फैन्टेसी

'फैन्टेसी' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द "फैन्टेशिया" से हुई है। जिसका अर्थ है अवास्तव या अमूर्त को द श्य बनाना अर्थात् काल्पनिक या स्वप्न-द श्यों को बिम्बात्मक स्वरूप देने का सामर्थ्य। 'विश्व साहित्य कोश' में भी फैन्टेसी को परिभाषित करते हुए लिखा है कि फैन्टेसी की क्रिया शीलता में ऐसा वातावरण या चरित्र उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य जीवन की सामान्य परिस्थितियों में असम्भव माने जाते हैं....... पशु या मानव जीवन का अन्तर मिट जाता है, मनुष्य के स्वभाव की आधार शिला डगमगा जाती है।

फैन्टेसी में रचनाकार असम्भव एवं अवास्तविक परिस्थितियों के भयानक चित्र अपने साहित्य में प्रस्तुत करके ऐसा विस्मय उत्पन्न कर देता है जो बाहरी रूप से अनगढ़ लगता है। परन्तु आन्तरिक रूप से तर्क संगत एवं कटु सत्यों से परिपूर्ण होता है। फैन्टेसी में कवि कल्पना जगत् में विचरण करता हुआ रहस्यपूर्ण ढंग से यथार्थ को प्रस्तुत करता है। अति प्राक त तत्वों के आकर्षण से अपने कथ्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है।

लोक जीवन के जासूस कवि मुक्तिबोध ने अपने काव्य-शिल्प में फैन्टेसी को अपनाया। उन्होंने अपनी कविता में यथार्थ की असमापनीयता; विसंगति, अन्तर एवं बाह्य जगत सभी को एक साथ समेटने के लिए फैन्टेसी का सहारा लिया है। मुक्तिबोध की वैचारिक प्रतिबद्धता एवं जनचेतना अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वप्न के भीतर स्वप्न और विचारधारा के भी एक और अन्य सघन विचारधारा से साक्षात्कार कराती है। उनकी कविताओं में आई स्वप्न कथाएँ मूलतः सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिम्बित करती है। उनकी कविताओं में फैन्टेसी की प्रक्रिया उनके शिल्प पर अपना विशेष प्रभाव बनाए हुए हैं। उनकी गतिमान फैन्टेसी सामाजिक वास्तविकता की पर्त दर-पर्तो का उद्‌घाटन करती है।

'ब्रह्मराक्षस' कवि की यथार्थवादी द ष्टिकोण से प्रेरित कविता है जिसमें सुन्दर फैन्टेसी रचना प्रक्रिया उपलब्ध है। इस कविता में कवि कल्पना के माध्यम से एक अयथार्थ आदिम प्रतीक जनित बावड़ी का निर्माण करता है-

"शहर के उस ओर खंडहर की तरफ
परिव्यक्त सूनी बावड़ी के भीतरी
ठण्डे अंधेरे में बसी गहराईयाँ जल की......
सीढ़ियाँ डूबी अनेक उस पुराने घिरे पानी में.........."

इस सूनी बावड़ी के चारों ओर शाखाएं, लाल फूल, गटर की बेल, घुग्घुओं के घोंसले हैं और है घटाटोप अन्धकार। यह चित्रण भयावह कथ्य के सम्प्रेषण की प्रतीकात्मक भूमिका है। सूनी बावड़ी के भीतर एक ब्रह्मराक्षस बैठा है जो कल्पना जनित है, ब्रह्मराक्षस एक मध्यमवर्गीय बुद्धि जीवी है जो आत्ममुक्ति के लिए छटपटा रहा है। कवि ने इस फैन्टेसी में एक ऐसे पात्र का निर्माण किया है जो जीवन की सामान्य स्थितियों में नहीं पाया जाता। वह आजीवन अध्ययन करता है। अपने प्रतिभा ज्ञान से बेबीलोन और वैदिक कथाओं, छन्दमन्त्र, थ्योरम एवं प्रमेय तथा मार्क्स, एंजिल्स, रसेल, टापेबी, हिडेग्गर, सात्र, गांधी सभी के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में समर्थ हैं। परन्तु अपने ज्ञान को व्यवहार में परिणत नहीं कर पाता। बावड़ी में आत्ममुक्ति की छटपटाहट एवं अपना गणित करता करता मर जाता है।

कविवर मुक्तिबोध ने फैन्टेसी का आश्रय लेकर अपने आस-पास के कटु यथार्थ को अपनी कविता में चित्रित किया है। वे फैन्टेसी को 'यथार्थ के अनुभव की कन्या' कहते हैं। वे तो यहाँ तक भी कहते हैं कि-

"मैं विचरण सा करता हूँ कि एक फैन्टेसी में,
यह निश्चित है कि फैन्टेसी कल वास्तविक होगी।"

कवि ने लगभग अपनी सभी लम्बी कथाओं में जीवन के यथार्थ के साथ कल्पित सपने मिलाकर रहस्य युक्त फैन्टेसी का निर्माण किया है। 'अंधेरे में' जैसी लम्बी कविता का आरम्भ ही फैन्टेसी से होता है-

"इतने में अकस्मात गिरते हैं भीतर से
फूले हुए पलिस्तर। बिखरती हुई चूने भरी रेत
खिसकती है पपड़ियाँ इस तरह
खुद व खुद कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयंमणि। मुख्य बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है, द ढ़..................
कोई अनजानी अन पहचानी आक ति।"

उनकी कविताओं में बरगद, अन्धे कुएं, गुफाएं, टीले, सीढ़ियाँ कालापानी, सरोवर, तेज आंधी आदि का चित्रण होना कल्पित का सजीव के साथ समज्जित होकर फैन्टेसी की प्रक्रिया बन गया है। यह चित्रण पाठक को चौकाकर आतंकलोक में पहुँचाता है और नग्न सामाजिक यथार्थ से साक्षात्कार कराता है। कवि के ये चित्रण अत्यन्त रोमांचकारी एवं अर्थपूर्ण हैं -

"मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क
उसके भी भीतर एक और कक्ष
कक्ष के भीतर एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के सांवले गुहान्धकार में मजबूत
.... संदूक
द ढ़ भारी भरकम
और उस सन्दूक के भीतर कोई बन्द है।"

इस प्रकार के रहस्य रोमांचकारी चित्र मुक्तिबोध के काव्य में भरे पड़े हैं।

मुक्तिबोध के काव्य में फैन्टेसी का इस्तेमाल सौन्दर्य-बोध, पलायन और कल्पना जनित आनन्द के लिए नहीं अपितु उसकी फैन्टेसी भीतरी बाहरी द्वन्द्वों एवं आघातों का परिणाम है। जीवन-ज्ञान और अभिप्रेत अर्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त और

अनिवार्य माध्यम है। प्रतीक और बिम्ब फैन्टेसी का आशय स्पष्ट करते हैं। वर्गीय विषमता से ग्रस्त समाज का प्रतीकात्मक वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

> **"नहीं इनकार करने वाले द्वारा खुलते, किन्तु**
> **उन सोते हुओं के गूढ़ स्वप्नों में**
> **परस्पर विरोधों का नुर विदारक शोर होता है**
> **विचित्र प्रतीक गुँथ जाते,**
> **नीलाकाश।"**

यहाँ पर दरवाजा बन्द करके सोने वाले लोग वर्गीय विषमता से ग्रस्त समाज के प्रतीक है। उनके गूढ़ स्वप्न परस्पर विरोधी आशा-आकांक्षाओं के प्रतीकाभास है, जिन्हें कवि की वाचक छाया 'परस्पर विरोधों के डर विदारक शोर' के रूप में सुनती है। इस प्रकार प्रतीक बिम्ब, रूपक आदि की मुक्तिबोध ने अलग से व्याख्या नहीं कि अपितु ये सभी उपकरण उनकी कविताओं में फैन्टेसी का अभिन्न अंग बनकर आए हैं।

मुक्तिबोध ने फैन्टेसी को एक भाववादी शिल्प के रूप में स्वीकार किया है। भाववादी शिल्प के अन्तर्गत ही उन्होंने फैन्टेसी का प्रयोग किया है। संवेदनात्मक उद्देश्यों को साकार करने तथा जीवानानुभवों की अभिव्यक्ति के साधन के रूप में फैन्टेसी का प्रयोग किया गया है। स्वयं मुक्तिबोध के शब्द हैं-

"फैन्टेसी के रूप में जो कथा प्रस्तुत होती है और कथा के अन्तर्गत जो पात्र-चरित्र कार्य प्रस्तुत होते हैं, वे सब प्रतीक होते हैं वास्तविक जीवन तथ्यों के।"

स्पष्ट है कि कवि और जन-मानस के विश्वास और संवेदनात्मक उद्देश्य आदि का प्रतिफलन फैन्टेसी में होता है।

वस्तुतः मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया में फैन्टेसी आत्म-चेतना को विश्व-चेतना बनाने का माध्यम बनी है। कवि फैन्टेसी के माध्यम से अपने जीवन तथ्यों से प्राप्त अनुभवों को मानवीयता पूर्ण बनाकर दूसरे के अनुभवों को विस्तारित एवं परिष्कारित करते हैं। यहीं फैन्टेसी की स जन शीलता एवं गतिशीलता है। डॉ० लल्लन राय मुक्तिबोध की फैन्टेसीगत प्रक्रिया की उपादेयता बताते हुए लिखते हैं-

"यहाँ जीवन तथ्यों का ही अमूर्तीकरण हुआ है, वह नयी चाल (न्यू डिवाइस) के रूप में भटकने वाला या यथा स्थिति को बनाए रखने वाला न होकर, यथार्थ को अधिक मानवीय और ठोस बनाने के लिए हुआ है। अतः भाववादी शिल्प को ग्रहण करते हुए भी मुक्तिबोध एक यथार्थवादी समाजवादी कलाकार सिद्ध होते हैं।"

इस प्रकार मुक्तिबोध ने फैन्टेसी जैसी अभिव्यक्ति की नयी पद्धति को ग्रहण करते हुए उसका सार्थक प्रयोग किया है और जीवन की समस्याओं, आकांक्षाओं, वास्तविक स्थितियाँ और अपने आत्मसंघर्षो को रोमांचकारी बनाकर रूपायित किया है।

मुक्तिबोध का काव्य-वैशिष्ट्य

काव्य का कला पक्ष अथवा रूप शिल्प उसके वस्तु तत्व से अभिन्न होता है। भावपक्ष या वस्तुपक्ष के अनुरूप ही कला पक्ष अपना रूप धारण करता है। कवि अपनी भाषा प्रतीकात्मकता, विम्बात्मकता, अलंकार-विधान छन्द आदि के माध्यम से पाठकों के अन्तर्मन में अनुभूति के अणुओं का विस्फोट करता है। परन्तु कला पक्ष का सबसे अधिक सम्बन्ध कवि की काव्य प्रतिभा, निपुणता आदि पर निर्भर करता है। मुक्तिबोध काव्य रचना के शक्ति पुंज कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचना के आधारभूत तीन क्षणों को महत्त्वपूर्ण माना है-"कला का पहला क्षण है जीव का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है, इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से प थक हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह फैंटेसी अपनी आंखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है, इस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।"

इसमें शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया कला पक्ष का महत्त्वपूर्ण अंग है। लोक मानस के हितैषी कवि मुक्तिबोध की उत्तेजनायें विचारात्मकता, अनुभूति की कुचालें, सहज ज्ञान की छटपटाहट एक गंभीर एवं व्यग्र कला पक्ष की मांग करती है।

मुक्तिबोध ने भाषा के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग किया है। उनकी काव्य भाषा उनके भावों को संबल अभिव्यक्ति प्रदान करती है। परम्परा का मोह त्यागकर मौलिकता का आग्रह लिए हुए है। सीधी और सपाट भाषा भी अपनी अर्थगत लय से जुड़कर

काव्य-भाषा बन जाती है। कवि का पूरा बयान अर्थ के बन्द दरवाजों को खोलकर क्रान्ति की लपटों को प्रज्जवलित करने का उपक्रम करता है-

"मैं अपने कमरे में यहाँ लेटा हूँ
काले-काले शहतीर छत के
ह्रदय दबोचते, यद्यपि आँगन में नल जोर मारता
नल खखारता किंतु, न शरीर में नल है
अंधेरे में गल रहा दिल यह
बुद्धि की मेरी रग
गिनती है समय की धक्-धक्
दम छोड़ रहे हैं भाग गलियों में मेरे पैर।"

यहाँ कवि का पराजित अनुभव प्रत्यक्ष हो उठता है। 'आँगन क नल' का चित्र चरमोत्कर्ष है। अधिकतर स्थानों पर मुक्तिबोध जी की भाषा सहज, सरल एवं प्रसाद गुण युक्त है। कवि ने अपनी भावाभिव्यक्ति में कल्पना का सहारा तो लिया है परन्तु यद्यपि के धरातल पर रहकर। कवि ने अपनी रचना के सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके सरसता पैदा की है।

"शुभारूण किरणों से विम्बित
रजत-नील उत्कट उज्जवल
जिसमें अनलीर्मिल अनिलोर्मिल
कमल खिले हैं के रम्तोत्पल।"

मुक्तिबोध ने अपनी भाषा में लाक्षणिक अर्थ की स ष्टि की है। इस प्रयोग से भाषा में एक विशिष्ट ओज गुण आ गया है। जैसे-

"दिन के बुखार रात्रि की म त्यु
के बाद ह्रदय पुंसत्वहीन।"

वास्तव में मुक्तिबोध का विद्रोहीपन उनकी भाषा में भी लक्षित है। वे कहीं-कहीं व्याकरण के शासन को तोड़ते हुए मुक्त भाषा का प्रयोग करते हैं। मंजे हुए शब्द शिल्पी की तरह शब्दों में कांट-छांट अपने कथ्य सम्प्रेषण के अनुरूप कर लेते हैं। जैसे-

"गांधी जी की मूर्ति पर
बैठे हुए धुग्धु ने
गाना शूरू किया
हिचकी की ताल पर
टेलीफून के खम्भों पर चमे हुए तारों ने
सट्टे टंककाल सुरों में
थर्राना एवं झनझनाना शुरू किया।"

मुक्तिबोध की भाषा के बारे में डॉ० श्याम परमार का कथन है-"अनगठ शब्दों के सजह प्रवाह के साथ ऐसे स्पर्श दिए हैं कि शब्दों की समग्रता कुल मिलाकर एक भव्य विराट योजना का आभास देने लगती है। किसी भी प्रकार के शब्दों की भटका देने वाली भीड़ नहीं है। प्रत्येक व्यंजना अपने में सार्थक है, प्रतीत होता है कि कविता के व्यापक व त्त में हर शब्द मौजूद है।"

मुक्तिबोध का शब्द भण्डार अत्यन्त विस्त त है। वे अभिव्यक्ति को सटीक एवं यथार्थ बनाने के लिए जिस भी शब्द को उपयुक्त समझते हैं उसे बेहिचक ले लेते हैं चाहे वह अंग्रेजी का हो, चाहे उर्दू का, चाहे मराठी का।

अंग्रेजी शब्दों का बड़ा स्वाभाविक प्रयोग है। कहीं-कहीं तो अंग्रेजी वाक्यों के प्रयोग से ही कविता के नाटकीय शिल्प को प्रेषणिय बनाया है-

"स्क्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता
क्रास-ऐग्जामिन हिम थारोली।"

इसके अलावा टावर, फोटो, कर्नल, डैश, पोज, टेरियार, क्विक मार्च आदि अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से कथ्य को प्रभावशाली बनाया गया है।

इसी प्रकार उर्दू के शब्दों का सहज प्रयोग जगह-जगह मिलता है। जैसे-मेहराव, जिस्म, मुफालिसी, खामोश, नाजुक, गैरहाजिर आदि।

मराठी के ऐसे शब्द जो हिन्दी के लिए अजनबी है, धड़ल्ले से मुक्तिबोध के काव्य में प्रस्तुत हुए हैं। क्योंकि कवि की स्थानीय भाषा मराठी ही है। नक्षीदार, बास, हकाल दिया गजर, कंदील आदि मराठी शब्दों का सार्थक प्रयोग है।

तत्सम शब्दों में-उष्मश्वस्, आगमिव्यत, प्रथा, अधिष्ठान रूधिरस्नात, मन्त्रोच्चार, प्रकोष्ठ, प्रमेय, चक्रवात आदि। शब्द विस्तार की योजना से जुड़कर प्रयुक्त हुए हैं।

तद्भव और देशज शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग स्वाभाविक है। जन चरित्र को चित्रित करने के लिए कवि ने इन शब्दों का अधिकाधिक एवं सार्थक प्रयोग किया है यथा-ठूठ, घुसठ, भीत, टिकाऊ, बिचकना, सरवाना, चुना, चुनरी, शनिश्चर आदि।

मुक्तिबोध की काव्य भाषा को मुहावरे अत्यन्त समर्थ बनाते हैं। काव्य के प्रतीकार्थ को प्रभावपूर्ण बनाने के संदर्भ में मुक्तिबोध ने जिन मुहावरों का प्रयोग किया हैं, उनमें से कुछ द ष्टव्य है-अपना गणित करना, दिल की बस्ती उजाड़ना, मूठ मारना, केंचली उतारना, सिर पर चढ़ना, सिट्टी गुम होना, नाड़ी ठंडी होना आदि।

डॉ० नामवर सिंह उनके भाषिक महत्त्व को लक्षित करते हुए लिखते हैं-"इसमें से एक रीतिबद्ध भाषा की चमक, लालित्य, प्रसन्नता आदि गुण भले ही न हो, किन्तु वह प्राणशक्ति असदिंग्ध है जो स जनशीलता की अनिवार्य शर्त है। कहना न होगा कि मुक्तिबोध की प्राणवान काव्यभाषा उसके प्राणवान कथ्य की प्रतिध्वनि है।"

मुक्तिबोध के काव्य प्रतीक-विधान अभिव्यक्ति को व्यापक एवं हृदय-संवेघ और अर्थ-व्यंजक बनाते हैं। मुक्तिबोध में लकड़ी का बना रावण, ब्रह्मराक्षस, कंस, वानर, मनु, एकलव्य, औरांग-उटांग, बरगद आदि। अनेक प्रतीकों का अर्थपूर्ण प्रयोग किया है। ब्रह्मराक्षस आज के बाह्य और आन्तरिक संघर्षो के बीच पिसते मानव का प्रतीक बनकर आया है।

"पिस गया वह भीतरी
ओ बाहरी दो कठिन पाये बीच
ऐसी ट्रेजेडी है नीच।"

औरांग-उटांग मानव के मन में छिपी हुई स्वार्थी तथा हिंसक प्रव त्ति का प्रतीक है। 'लकड़ी का बना रावण' शोषक सत्ता का प्रतीक है 'मनु' का प्रतीक मुक्तिबोध की मानवतावाद में आस्था का द्योतक है। इस प्रकार मुक्तिबोध में अपनी काव्याभिव्यक्ति में नवीन एवं मौलिक प्रतीकों, उपमानों का कुशलता से प्रयोग किया है।

मुक्तिबोध जी अपनी रचनाओं में भावों के विस्तार हेतु सशक्त विम्बों का भी प्रयोग करते हैं। जीवन के वैषम्य और मानव की पीड़ा के यथार्थ बिम्ब मुक्तिबोध की कला पक्ष का महत्त्वपूर्ण अंग है। कहीं-कहीं ये बिम्ब अस्पष्ट एवं कलिष्ट भी बन पड़े हैं। परन्तु अधिकतर स्थानों पर ये बिम्ब कवि के काव्य को जीवन सार्थकता प्रदान करते हुए सौन्दर्य और मादकता की स ष्टि करते हैं।यथा-

खूबसूरत अमरीकी मैग्जीन-प ष्ठों-सी
खुली थी
नंगी सी नारियों के उघरे हुए अंगों
के विभिन्न पोषों में
लेटी हुई थी चांदनी
सफेद
अण्डरवीयर सी आधुनिक प्रतीकों में
फैली थी चाँदनी

यहाँ पर चाँदनी नये बिम्ब विधान में अमूर्त को मूर्त करने की सहज शक्ति सम्पन्न है।

मुक्तिबोध ने आम आदमी के जीवन सम्बन्धी बिम्बों घर-आँगन, ढिबरी, शीशे, कम्बल, अंडरवियर, रूंदा, तेलखण्डहर, चोली आदि सार्थक और जटिल प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध में परिस्थितियों की क्रुरता एवं भयावयता प्रकट करने के लिए वीभत्स, भयानक एवं विराट बिम्बों की स ष्टि भी की है-

"अस्थिर यक त स्वरूप उदराक ति
आंतो के जालों से
बाजे से दमकते हैं भयंकर।"

इस प्रकार के बिम्ब उनकी लम्बी कविताओं में देखे जा सकते हैं।

मुक्तिबोध के काव्य में कहीं रिक्तता, शिथिलता, द्वन्द्व के भाव चित्र हैं तो कहीं 'म त्युदल की शोभा यात्रा का विचित्र प्रोसेशा' मूर्तिमान हो उठा है। उनका सम्पूर्ण काव्य सार्थक एवं जीवन्त बिम्बों एवं प्रतीकों से बहुत सम द्ध है, उनके भाव-चित्र चाहे प्रक ति से हो या जीवन जगत से दोनों ही पाठक के मन पर अंकित हो जाते हैं और अपना गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।

मुक्तिबोध ने अपनी कविता में मिथक का प्रयोग नये संदर्भो में किया है जो प्रसाद एवं निराला के मिथक प्रयोग से कुछ भिन्न है 'चाँद का मूँह टेढ़ा है' में चाँद आदि मिथक युगीन ट्रेजडी का बोध कराते हैं। उनकी लगभग सभी लम्बी कविताओं में मिथकों की भांति अतिरंजनापूर्ण कथात्मकता मिलती है। 'बह्मराक्षस', 'चम्बल की घाटी', 'अंधेरे में' आदि कविताओं में ऐसी बिम्बों-प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जो मिथकीय काव्य का आभास देते हैं।

मुक्तिबोध ने अपनी रचनाओं में मुक्त छन्द के व्यापक प्रयोग किये हैं। मुक्तिबोध के छन्द का निर्माण लय से होता है। इनका मुक्त छन्द सीधी अभिव्यक्ति, तरल मानवीय व्यंजना लिये हुए है मुक्तछंद की रचना शैली में कवि भावों एवं विचारों के प्रयोग में पूर्ण स्वतन्त्र रहा है। कवि ने अपने भावों को बिना किसी बंधन के मुक्त होकर प्रवाहित किया है। जैसे-

"वर्तमान समाज चल नहीं सकता।
पूँजी से जुड़ा ह्रदय बदल नहीं सकता
स्वतन्त्र व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को जन को।"

मुक्तिबोध की कविताओं में अलंकारों का समुचित प्रयोग हुआ है। मुक्तिबोध ने अलंकारों का प्रयोग युगानुरूप नये अपनिषुगों सहित किया है। इनकी कविताओं में अलंकार बिम्ब और प्रतीक इतने घुले मिले हैं कि उन्हें सहज अलग नहीं किया जा सकता।

मुक्तिबोध के काव्य में अनेक अलंकार स्वयं उपस्थित हो गये हैं। जो उनके भावों की अभिव्यक्ति में उनके सहायक बनकर आये हैं। इन अलंकारों का प्रयोग सायास न होकर अनायास ही है। काव्य के सम्प्रेषण के निर्मित अलंकार स्वयंयेव काव्य में अपना स्थान बनाये हुए हैं। लेकिन कवि द्वारा प्रत्युक्त अलंकार - अनुप्रास, रूपक, उपमा, मानवीकरण प्रतीप, अतिशयोक्ति, विशेषण-विपर्यय आदि मनोरम, सरल एवं सुबोध बन पड़े हैं। यथा-

"ओ जीवन मन के सुन्दर-सुन्दर समाधान" (अनुप्रास)
"आँखे चिलकती है, नुकीले तेज पत्थर-सी" (उपमा)
"लटरों की ग्रीवा में सूरज की वरमाला" (रूपक)
"अचानक आसमानी फासलों में से
चतुर चाँद ऐसे मुस्कुराता है।" (मानवीकरण)
"म त्यु के पथ पर
बढ़ते हैं दबंग बुढ़े हुए सितारे" (विशेषण-विपर्यय)

निष्कर्ष, कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की काव्य-शिल्प प्रगतिशील है। उसमें नई भाषा, नये शब्द, सार्थक बिम्ब और प्रतीक जो मिथक और फैण्टेसी का निर्माण करते हैं और उसके साथ-साथ शब्द-विन्यास की सार्थकता भी है। मुक्तिबोध की भाषा शैली विशिष्ट होने की वजह से उनकी कविता जीवन्त हो उठी है। डॉ० जगदीश गुप्त ने उनके काव्य शिल्प के महत्त्व को प्रकट करते हुए कहा है-

"मैं उनकी कविताओं को पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के अनुरूप रूपकों, प्रतीकों और बिम्बों की परिकल्पना करते हुए पर्याप्त सशक्त भाषा गढ़ी है। अतः जितने अंशों में उनकी अभिव्यक्ति सफल हुई है उतने अंशों में वे अपनी ही मान्यता के अनुरूप महान कहलाने के हकदार है।"

इस प्रकार मुक्तिबोध की काव्य शिल्प कहीं-कहीं जटिल शब्द, जटिल बिम्बों एवं दुरन्ह फैन्टेसी से ग्रस्त होते हुए भी, अपने अभिष्ट अर्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति करता हुआ नितांत मौलिक एवं नवीन कहा जा सकता है।

काव्य-भाषा

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा विचारों की प्रखरता को सबल अभिव्यक्ति दे सकी है। इनकी भाषा परम्परा के मोह को त्यागकर मौलिकता को साथ अभिव्यक्त हुई है। चाहे मानसिक तनाव और अंर्तसंघर्ष हो, या युगीन पाशविकता, बर्बरता और व्यवस्था की क्रूरता, कवि की काव्य भाषा आतंक, गति, विस्फोट और ऊर्जा से सम्प क्त होकर एक-एक पर्त को उधेड़ती चलती है। उनका भयावह तिलस्मी संसार-स जन की भाषा की सामर्थ्य का परिचय दे देता है। उसे बेशक कुछ लोग खुरदरी, अनगढ़ और रूखी मानते हों लेकिन उसमें अर्थवत्ता है। उसमें जिन्दगी की यथार्थता को प्रबल रूप में व्यक्त करने की क्षमता है। उनकी भाषा लम्बी कविताओं का कवि बनाने में सहायक ही सिद्ध होती चलती है। भाषा ही उनकी कविताओं को महाकाव्यात्मक कल्पना और नाटकीयता से सम्पन्न बनाती है। भाषा के बहुस्तरीय कोण उनके पास हैं-संस्क त निष्ठ सामाजिक पदावली, अरबी-फारसी उर्दू के सटीक प्रयोग, अंग्रेजी मराठी के शब्द, तद्भव, देशज शब्दों का सार्थक प्रस्तुतीकरण और नये शब्दों का निर्माण। मुक्ति बोध की काव्य साधना 'तार सप्तक' से आरंभ होती है और चाँद का मुँह टेढ़ा है' में पूर्ण होती है। उनकी काव्य भाषा निरन्तर तद्भव शब्दावली के प्रयोग की ओर बढ़ती चलती है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है भावों के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग। उन्होंने तत्सम शब्दावली का प्रयोग अभिजात्य, शिष्ट वर्ग की भावधारा को व्यक्त करने के लिए किया है तो लोक शब्दावली का प्रयोग ग्रामीण अँचल से जुड़े प्रसंग में ही किया है। ऐसे अवसरों पर मुक्तिबोध ने तद्भव शब्दों का ही प्रयोग किया है -

> **दादा का सोंटा भी करता है दाँव-पेंच।**
> **नाचता है हवा में**
> **गगन में नाच रही कक्का की लाठी।**

कन्टोप, कन्दील, लत्तर, सियाह, अकुलायी, हुलसी, संवलायी आदि शब्द उनकी भाषा को ग्रामीण अँचल से ही जोड़ने वाले हैं। धूल-धक्कड़, गिरस्टिन, दल्लिद्दर, देठा फफोला आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं। नगरीय संवेदना का चित्रण करने में उनकी भाषा कथ्य के अनुरूप ही हो जाती है-अभिजात्य मुहल्ले में फैली चांदनी का एक चित्र प्रस्तुत है-

> **नंगी-सी नारियों के, उभरे हुए अंगों के**
> **विभिन्न पोजों में, लेटी थी चांदनी।**

उन्होंने जहाँ कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। उनके काव्य में चुम्बकी शक्ति, गुरुत्व आकर्षण, इलेक्ट्रान, मैगनेट आदि शब्द आए हैं तो वही कथ्य के अनुरूप हठयोग के रहस्यवादी शब्द भी आए हैं-

> **तब धरती की महानाड़िया, इड़ा पिंगला फड़क रही थीं**
> **और सुषम्ना के अभ्यन्तर, उन अंगारी प्राण-पथों पर**
>
> **जीवन संयम की कुण्डलिनी**
> **प थ्वी के भीतर की ज्वालामयी कमलिनी की**
> **विवेकमय पंखुरियों पर, हम जा लेटे।**

यहाँ उनका इरादा कविता को रहस्यवादी बनाना नहीं है अपितु संदर्भनुसार अपनी बात को प्रभावशाली बनाना है। उन्होंने जहाँ तुच्छता, क्षुद्रता, आदि का वर्णन किया है। वहाँ भदेस का भी प्रयोग कर दिया है-

> **लार टपकाती आत्मा की कुतिया**
> **स्वार्थ-सफलता के पहाड़ी ढाल पर**
> **चढ़ती है हाँफती**
> **राह का हर कोई कुत्ता छेड़ता है।**

मुक्तिबोध की भाषा की एक यह भी विशेषता है कि वह विशिष्ट और सामान्य को एक साथ चित्रित करती है। जिससे दोनों प्रकार की संवेदनाएं एक साथ संप्रेषित होती हैं-

मैं कनफटा हूँ हेटा हूँ। शैव्रलेट-डाज के बीच में लेटा हूँ
तेलिया-लिवास में पुरजे सुधारता हूँ।
तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ।

मुक्तिबोध ने मुहावरों एवं लोकोक्तियाँ के प्रयोग से अपनी भाषा को सम द्ध बनाया है। इससे भाषा का सौन्दर्य तो बढ़ता है, साथ ही अर्थ की गम्भीरता भी बनती है।

तब तारे सिर्फ साथ देते, पर नहीं साथ देते पल भर

मुक्तिबोध ने वर्ण्य-विषय को प्रभावशाली तरीके से सम्प्रेषणीय बनाने के लिए अलंकारों का भी प्रयोग किया है। वे उपमान एवं उपमेय दोनों ही नए-नए खोज कर प्रयोग करते हैं। उन्होंने अधिकरत रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि का ही उल्लेख किया है। अलंकारों की संख्या पर उनका कोई ध्यान नहीं है। रूपक अलंकार का एक उदाहरण देखिए—

रवि निकलता
लाल चिन्ता की रुधिर सरिता
प्रवाहित कर दीवारों पर
उदित होता चन्द्र
ब्रण पर बांध देता। श्वेत धौली पट्टियाँ।

एक मानवीकरण का उदाहरण देखिए—

सूनापन सिहरा
अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे,
शून्य के मुख्य पर सलवटें स्वर की,
मेरे ही उर पर, धंसती हुई सिर,
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
मीठी हैं दुःसह।

मुक्तिबोध के पास चित्रांकन की अद्‌भुत क्षमता थी। उनके खींचे प्रत्येक चित्र में चेतना झाँकती नजर आती है उनके शब्द चित्रों में मनोदशा के अनुरूप रंग भरते चलते हैं—

गहरा गड़ गया और धंस गया इतना
कि ऊपर प्राण भीतर घुस आया
लगी है झनझनाती आग।
लाके बई काटों में अचानक काट खाया है।

मुक्तिबोध के पास वातावरण निर्मित करने की भी अद्वितीय कला थी। उनकी कविता का अध्ययन करते समय कोई भी पाठक बड़ी ही सहजता से अपने वातावरण को भूल कविता के वातावरण, में रज-बस जाता है। देखिए—रहस्य, रोमांच, जिज्ञासा, आतंक आदि का वातावरण—

तिलस्मी धोह का शिला-द्वार। खुलता है धड़ से
घुसती है लाल-लाल मसाल अजीब सी
अंतराल-विवर के तम में लाल-लाल कुहरा।
कुहरे में, सामने रक्तालोक-स्नात पुरुष एक रहस्य साक्षात!!

यूँ देखा जाए तो मुक्तिबोध की सारी कविता ही व्यंग्य का निर्वाह करती दिखाई देती हैं। पर कहीं-कहीं उनकी कविता शोषक, पीड़क, बुर्जुआ मानसिकता वाले समाज पर और अधिक तीखा एवं मार्मांतक प्रहार करती हैं—

मुझको है भयानक ग्लानि।
निज के श्वेत वस्त्रों पर
स्वयं की शील शिक्षा रूप दीक्षा के
विरोधी अस्त्र शस्त्रों पर
कि नगरों के सुसंस्कृत सौम्य चेहरों पे

उचटता मन। उतारूँ आवरण
यह साफ गहरा दूधिया कुर्ता
व चूने की सफेदी में चिलकते से
सभी कपड़े निकालूँगा।

इसी तरह पूँजीपतियों पर करारा व्यंग्य करता हुआ कवि कहता है—

वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता।

इसी प्रकार पूँजीवादी, महानगरीय सभ्यता का भी पर्दाफाश करते हुए वे व्यंग्य में कहते हैं—

गहन म तालाएँ, इस नगर की।
हर रात जुलूस में चलती
परन्तु दिन में बैठती हैं मिलकर करती हुई षड़यन्त्र
विभिन्न दफ्तरों, कार्यालयों, केन्द्रों में घरों में।

मुक्तिबोध को शब्दों का शिल्पी कहना तर्कसंगत ठहरता है। वे शब्दों के पारखी और जौहरी हैं। वे शिल्पी के समान शब्दों की आत्मा की पहचान करने में सफल हैं और काट-छाँट कर उनका प्रयोग करते हैं। वे इस प्रक्रिया में व्याकरण के शासन को लांघ स्वयं व्याकरण का निर्माण कर लेते हैं। उनके शब्द ध्वन्यात्मक होने के साथ ही अर्थ गांभीर्य लिए हुए हैं इसलिए उन्हें भाषा प्रभु कहा गया है। इस संदर्भ में आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कहना है—''मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में लय और संगीत की अपेक्षा चिल्लाहट का अधिक प्रयत्न मिलता है।'' यह कथन उचित भी जान पड़ता है क्योंकि उनका काव्य संगीत का निषेध करता है। उनकी भाषा में कोमल स्त्रैणता न होकर दारुण पौरुष है। वह पराजय की नहीं पराक्रम की भाषा है। यह उनके व्यक्तित्त्व के अनुरुप ही है। इनका कारण है मुक्तिबोध की शब्द संस्कार के प्रति, सजगता, युग संद क्ति तथा शब्द की ऐतिहासिक और अर्थ की सामाजिक परख। नक्षों, नक्षीदार, कंदील आदि मराठी शब्दों के साथ उर्दू के बेखटके प्रयोग उनकी काव्य-भाषा की जान है—वारदात, वाकई, तजुर्बा बक्त, मुफलिसी, फिक्र आदि। ये प्रचलित अप्रचलित शब्द सायास नहीं आयास आए हैं। भावों तथा विचारों के प्रवाह में अपने आप प्रयुक्त हुए हैं। ड्रेस, टावर, फ्यूज मार्शल, कर्नल, बल्ब, प्रोसेशन, गैस लाइट, फ्रेम रिवाल्वर, ड्राअर आदि शब्दों का प्रयोग बिना किसी परहेज के किया गया है।

खट्-खटक्-खट्। तड़-तड़ातड़-तड़, सटर-पटर, धड़मधूम, छपाछप, भड़भड़, दलिद्दर, टण्टा, धूल-धक्कड़ आदि शब्द ध्वनि, गतिशीलता, वातावरण और विशिष्ट मानसिकता व्यक्त करने में पर्याप्त समर्थ हे। फैंटेसी के अपने मूल रूप रंग की अभिव्यक्ति के लिए कवि को शब्दों और मुहावरों की अर्थवता प्रदान की है। कमरे के भीतर कमरे की तरह, प्रकोष्ठ के भीतर प्रकोष्ठ की तरह उनमें अर्थ के भीतर भी अर्थ है। जमाना और साँप का काँटा, चिलचिला रहे फासले, फुसफुसाता षड़यंत्र तुकारती हुई पुकार, लार टपकाती हुई आत्मा की कुतिया, कल्याणमयी करुणाओं के हिन्दुस्तानी सपने, मौत अब नए-नए बच्चे जन रही है। भाग चले लोगों में भागता, ईर्ष्या रूपी औरत के मूँछ निकल आयी, खेत रहे काम आये, नशा रंग लाता है, केंचुली उतारना आदि प्रयोग उनके अर्थ को गांभीर्य आकेषण नवीनता और वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। उनके शब्दों में अर्थो के भीतर अर्थ हैं। जो लक्षणा, व्यंजना से अर्थ खोलती हैं। स्वयं मुक्तिबोध का कहना है—''इनमें लय और सुर और ताल की बारीकियाँ न ढूंढ़ो। ये लिपियों की भावुकता नहीं इनमें विचार गुनगुनाते हैं। इनमें तस्वीरें बहुत ही जागे हुए होश की हैं। इनका अर्थ...... प्रेम का आलिंगन नहीं, विलाप नहीं, पैमानों के इशारे नहीं, भीगती रातों, करवटें लेती सुबहों की अंगड़ाईयाँ और कसमसाहटें नहीं। यहाँ देश-विदेश के इमेजों के उलझाव नहीं।''

अतः मुक्तिबोध की काव्य भाषा चेतन-अचेतन; स्थूल; सूक्ष्म, रंग, स्पंदन और विविध मानसिकताओं के गहरे चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। उनके व्यंग्य शाब्दिक मितव्यता के साथ चुभन में बहुत तीखे हैं। उनकी भाषा स्वप्न चित्रों की लड़ी, सस्पैंस की प ष्ठभूमि, दहशत और आतंक का वातावरण, आशा, आस्था और करुणा की दुनिया को एक साथ दिखाने में समर्थ हैं। उनकी भाषा के बारे में कुछ विद्वानों ने एक ही आक्षेप लगाया है कि वह दुरुह और उबड़-खाबड़ है। उनकी भाषा की दुरुहता और उबड़-खाबड़ता का एक ही कारण है कि उन्होंने भाषा की नक्काशी और मेकअप में समय न गवाँकर यथार्थ के काफी नजदीक लाने की कोशिश की है। वे समय और युग की कड़वाहट को उत्तेजना के साथ निर्भीकतापूर्वक कह सके हैं और भाषा शिल्प की असाधारण ताकत का नमूना पेश कर सके हैं। कवि के समस्त जीवनानुभवों को, खौफनाक काव्य संसार को और भीतरी-बाहरी सर्वेक्षण को उनकी काव्य भाषा सम्प्रेषित करने में सफल हो सकती है।''

बिम्ब एवं प्रतीक

बिम्ब

परिवेश के संवदेनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त मनुष्य के मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्त्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द संभवतः इसी मानस प्रक्रिया का प्रभाव है। बिम्ब विधान समस्त काव्यकला, संगीत और नवनिर्माण का मूलाधार है। वास्तव में भाषा और चिन्तन के मूल उपादान बिम्ब ही हैं। बिम्ब को परिभाषित करते हुए डॉ० केदारनाथ सिंह कहते हैं—''काव्यगत बिम्ब वह शब्द चित्र है, जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है। काव्यगत बिम्ब वह शब्द चित्र है जो 'संवेग और वासना' से उद्रिक्त होता है।'' अतः कहा जा सकता है कि बिम्ब कवि की अनुभूतियों, मानस छवियों, भावों आदि का एन्द्रिय ग्राह्य रूप खड़ा करने वाला वह तत्त्व है, जो वस्तु विशेष के आसन्न सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में, उच्चकोटि की साद श्य विधायिनी .... प्रतिभा के योग से उद्भुत होता है।''

प्रतीक

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ 'चिह्न' हैं किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अद श्य, अश्राव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्व, द श्य, श्राव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है। जैसे अद श्य या अश्र व्य ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—''किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आयी हुई कुछ वस्तुएँ विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जाग त कर देती हैं। जैसे 'सर्प' से क्रूरता और कुटिलता का, अग्नि से तेज और क्रोध का, वाणी या विद्या का, 'चातक' से निःस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है।'' अतः प्रतीक अप्रस्तुत की समस्त आत्मा का धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है प्रतीक अप्रस्तुत रूप में अवतार ही है।''

बिम्ब और प्रतीक में अन्तर बताते हुए डॉ० केदारनाथ सिंह ने कहा है—''प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है और उस मौलिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक बिम्ब अपने प्रभाव में चाहे जितना एन्द्रिय और संवेगात्मक हो, पर अतः उसकी परिणति किसी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होती है। प्रतीकात्मक ध्वन्यात्मकता से हीन बिम्ब काव्य के शोभा-धर्म को क्षीण करने वाला होता है।''

प्रतीक स्वयं अप्रमुख होता है, प्रमुखता होती है उस दिशा की जिस ओर वह संकेत करता है। बिम्ब एक साथ कई स्तरों एवं कई दिशाओं की ओर इंगित करता है, प्रतीक व्यंग्यात्मक होता है बिम्ब लाक्षणिक। प्रतीक मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं जबकि बिम्ब के लिए यह आवश्यक है कि वह ज्ञानेन्द्रिय के किसी भी स्तर पर मूर्त हो। डॉ० केदारनाथ सिंह के शब्दों में-''यह मूर्तता केवल द श्य विषयक ही होती हे। नाद, घ णा और स्वादपरक हो सकती है। प्रतीक किसी वस्तु का चित्रांकन नहीं करता, केवल संकेत द्वारा उसकी किसी विशेषता को ध्वनित करता है। इसीलिए प्रतीक का ग्रहण सन्दर्भ से अलग और एकान्त रूप में सम्भव हो सकता है पर बिम्ब की प्रेषणीयता उसके पूरे सन्दर्भ के साथ होती है।''

बिम्ब-विधान की द ष्टि से मुक्तिबोध का काव्य अत्यन्त सम द्ध है। उनकी समस्त कविता बिम्बमय हैं। उनका कविता माध्यक ही बिम्ब है। प्रत्येक प्रकार का बिम्ब यहाँ मिलता है। इनकी कविताओं को बिम्बों का नगर कहा जाता है। बिम्ब के संदर्भ में मुक्तिबोध की यह विशेषता है कि वे शब्द बिम्बों का लयात्मक उपयोग करते हुए उसे जीवन द ष्टि का संवाहक बनाकर समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इसी समग्रता की विशेषता के बारे में इधनाथ सिंह का कहना है—''उनके यहाँ एक पूरा का पूरा स्टेंजा एक बिम्ब होता है। उसे आप बीच से नहीं तोड़ सकते। वह अन्त में जाकर फिर सम्पूर्णतः शुरू की ओर लौटता है और शुरू की ओर जाकर फिर अन्त की ओर घूम जाता है।''

मुक्तिबोध की कविता में शोषित, पीड़ित और जनसामान्य का चित्रण है। उनकी अपने समय तथा समाज की गहरी समझ कविता में दिखाई पड़ती है। अपरिमय तथा अकेलेपन के युग में जहाँ पूरा कस्बा अब भी एक बड़े परिवार के रूप में जीता है, का आत्मीय बिम्ब देखिएः—

धुंधलके में खोये इस
रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं

लठधारी बूढ़े से पटेल बाबा
ऊँचे से किसान-दादा
वे दाढ़ी-धारी देहाती मुसलमान चाचा और
बोझा उठाये हुए
माएँ, बहनें, बेटियाँ
सबको सलाम करने की इच्छा होती है
सबको राम-राम करने को चाहता है जी
आँसुओं से तर होकर प्यार के।''

हिन्दी के साहित्य कोष के अनुसार उद्भव के आधार पर बिम्बों के दो प्रकार माने जाते हैं। स्म ति जन्म और स्वरचित्त और ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर द ष्टि, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि। मुक्तिबोध के काव्य में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

स्म तिजन्म

इनका कथ्यात्मक आधार स्म ति है, जो कल्पना के द्वारा उद्भावित होती है, उदाहरणतः

मुझे याद आती है,
आँखों में तैरता है चित्र एक
डर में सम्भाले दर्द
गर्भवती नारी का।

स्वरचित

ये नूतन एवं मौलिक होते हैं। विशुद्ध कल्पना तत्त्व को आधार बनाकर इनका चित्रण किया जाता है। यथा—

''रात्रि की काली स्याह
कड़ाही से अकस्मात
सड़कों पर फैल गयी
सत्यों की मिठाई की चाशनी।

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर बिम्ब पाँच माने गए हैं—

1. **चाक्षुष या द श्य बिम्ब:** चक्षु रूपी इन्द्रिय ही संवदेना को उद्वेलित करते हैं मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता का एक उदाहरण देखिएः—

''किन्तु गहरी बावड़ी
की भीतरी दीवार पर
तिरछी गिरी-रवि-रश्मि
के उड़ते हुए परमाणु, जब
तल तक पहुँचते हैं कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुक कर नमस्ते कर दिया है।

2. **शब्द बिम्ब:** जब शब्दों के माध्यम से बिम्ब उपस्थित होता है उसे शब्द बिम्ब कहते हैं—

''पिछवाड़े, ढेरों में खड़ खड़
कोई गड़बड़
सर-सर करता छत चढ़ा, चाँद दीवार बड़ा वह नाग,
एक भय-जनक श्याम-संवेदन-कोब्रा।

यहाँ 'सर-सर' शब्द कोब्रा की गति का द्योतक है और खड़-खड़ साँप के रेंगने से उद्भुत है।

3. **गन्ध बिम्बः** घ्राण शक्ति के संवेदन के आधार पर वातावरण का चित्रण गन्ध बिम्ब कहलाता है। मुक्तिबोध ने 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता में अजगरी मेहराब की आदिम, जीर्ण, मटमैली एवं उपेक्षित अवस्था को इस गन्ध बिम्ब से उकेरा है—

    'अजगरी-मेहराब
    भरे हुए जमानों की संगठित छायाओं में
    बसी हुई
    सड़ी-बुसी बात लिए—
    फैली हैं गली के
    मुहानों में चुपचाप।

4. **रस बिम्बः** कवि के अनुभव को आस्वाद परक बनाने वाला रस बिम्ब कहलाता है। देखिए निम्न पंक्तियों के हृदय में ध ँसती हुई लहरें असहनीय रूप में मीठी हैं—

    मेरे ही उर पर, धँसती हुई सिर,
    छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
    मीठी है, दुःसह!

5. **स्पर्श बिम्बः** स्पर्श संवेदन का अभिव्यक्त करने वाला बिम्ब स्पर्श बिम्ब कहलाता है। मुक्तिबोध स्पर्श बिम्ब का निर्माण भयानक एवं विसंगत संसार के अनुभव की शारीरिक प्रतिक्रिया के रूप में करते हैं—'चाँद का मुँह टेढ़ा है' से एक उदाहरण—

    'अपने ही कृत्यों डरी
    रीढ़-हड्डी
    पिचपिची हुई,
    वह मरे साँप के तन-सी ही लुचलुची हुई।

    भयानकता के अनुभव की स्पर्श शारीरिक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति ओरांग-उटांग के रूप में देखिए—

    स्वयं की ग्रीव पर
    फेरता हूँ हाथ कि
    करता हूँ महसूस
    एकाएक गर्दन पर उगी हुई
    सघन आयाल और
    शब्दों पर उगे हुए बाल तथा
    वाक्यों में ओरांग-उटांग के....
    बढ़े हुए नाखून!

मिश्रित बिम्ब

दो-तीन इन्द्रियों को एक साथ संवेदन प्रदान करने वाला बिम्ब मिश्रित बिम्ब कहलाता है। यथा—

प्रश्न पूछता हूँ मैं
आँखों के कानों पर उत्तर के प्रारम्भिक
कडुए से आँसू ये मिठास छू ही लेते हैं।

इनके अतिरिक्त मुक्तिबोध के काव्य में भाव बिम्बों की कमी भी नहीं है। उत्साह, करुणा, वीभत्स, निराशाजन्य बिम्ब देखे जा सकते हैं। हाँ, श्ंगार और हास्य के बिम्ब यहाँ नहीं हैं। करुण बिम्ब का एक उदाहरण देखिए—

''............मैं अपने कमरे में
यहाँ पड़ा हुआ हूं!
आँखें खुली हुई हैं,

पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा
उदास इकहरा,
स्लेट-पट्टी पर खींची गई तस्वीर
भूत जैसी आकृति-
क्या वह मैं हूँ
मैं हूं?''

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मुक्तिबोध का समग्र काव्य बिम्बत्मकता पर आधारित है। बिम्ब की अभिव्यक्ति में मुक्तिबोध अद्वितीय हैं। उनकी कविताओं में बिम्ब के सभी रूप मौजूद हैं।

प्रतीक योजना

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है और यही प्रतीक और बिम्ब का प्रयोग ही उनके काव्य की महती विशेषता है। उनके प्रतीक परिचित होते हुए भी नवीन प्रतीत होते हैं। वस्तुतः मुक्तिबोध को फैन्टेसी मानवीकरण और प्रत्येक प्रिय हैं। ये फैन्टेसी प्रतीकों का माध्यम ग्रहण करते हैं और प्रतीकों को मानवीकरण और प्रतिमाओं से सजाते हैं। यथार्थ में मुक्तिबोध ने चिर परिचित प्रतीकों को नया आयाम दिया है। मुक्तिबोध की रचनाओं में हमें सांस्कृतिक, पौराणिक प्रकृत ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक विभिन्न प्रकारों के प्रतीक प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण द ष्टव्य हैं—

सांस्कृतिक प्रतीक

प्रगतिशील होने के कारण मुक्तिबोध प्राचीन संस्कृति की शोषणकारी प्रव त्ति के विरुद्ध हैं किन्तु परम्परित शोषण को स्पष्ट करने के लिए कवि ने इन्हीं प्राचीन सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'डूबता चाँद कब डूबेगा'—से एक उदाहरण देखिए:—

'आँखें फाड़े मैंने देखा मन के मन में
जाने कितने कारावासी वसुदेव
स्वयं अपने घर में, शिशु-आत्मजले,
बरसाती रातों में निकले,
धंस रहे अंधेरे जंगल में
विक्षुब्ध पूर में यमुना के
अति-दूर, अरे उस नन्द-ग्राम की ओर चले।
जाने किसके डर स्थानांतरित कह रहे वे
जीवन के आत्मज सत्यों को,
किस महाकंस से भय पाकर गहरा-गहरा।'

यहाँ महाकंस शोषक का प्रतीक है। वसुदेव शोषित एवं शिशु आत्मज सत्य का प्रतीक है। कवि इस पौराणिक सत्य को उजागर कर रहा है जिस सत्य का निष्कासन नया नहीं अपितु पौराणिक काल से चला आ रहा है।

पौराणिक प्रतीक

उन्होंने प्राचीन प्रतीकों का चयन कर उनका सफल प्रयोग किया है। पौराणिक घटनाओं को आधुनिक समाज से जोड़ने का प्रयास किया है और इस प्रयोग में वे सफल भी है। उदाहरणतः—

'मैं एकलव्य जिसने निरखा—
ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही
भीतर का महा मनोमंथनशाली मनोज्ञ
प्राणाकर्षक प्रकाश देखा।'

महाभारत कालीन समाज में एकलव्य जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के लिए शिक्षा के दरवाजे बंद कर दिए गए थे, वैसे ही आज भी समाज में ''जीनियस'' है। जिसके विकास का रास्ता बन्द है और वे रोजगार, ज्ञान एवं शिक्षा की तलाश में भटक रहे हैं। कुछ ऐसे भी इन्सान हैं मानव मुक्ति की दिशा में कदम उठाते हैं और शोषित जन का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुक्तिबोध की कविता में शोषित-जन का प्रतिनिधित्व करने वाले अर्जुन का चित्र द ष्टव्य है—

यह संवलाया कलियाया मुँह
है स्नेह-भरी चिन्ता में
शाल्मलि व क्ष तले
उद्विग्न खड़े वनवासी दुर्धर अर्जुन का
जिनके नेत्रों में चमक उठे
चन्दन के पावन अंगारे।'

ऐतिहासिक प्रतीक

मुक्तिबोध के काव्य में ऐतिहासिक प्रतीक कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। हाँ इतना जरूर है कि इनके ऐतिहासिक प्रतीकों से सामान्य मानव को महत्ता मिली है। निम्न उदाहरण में देखिए, जिसमें कवि दिखाना चाहता है कि आज भी मालिकों के लिए अपने पुत्रों का बलिदान न जाने कितनी पन्ना दाइयों ने इस समाज के कल्याण हेतु किया है। बलिदान के रूप बदल गए हैं, किन्तु परम्परा ज्यों की त्यों है। आज भी मजूदर मिल मालिक के बेटे की अपने रक्त से उसकी दुनिया आबाद ही करता है—

'अम्बर के चलने से उतार रवि-राजपुत्र
ढांक कर सांवले कपड़ों में
रख दिया-टोकरी में उसको
रजनी-रूपी पन्ना दाई
अपने से जन्मा पुत्र-चन्द्र फिर खुला गगन के पलने में
चुपचाप टोकरी सिर पर रख
रवि-रज पुत्र से खिसक गयी
पुर के बाहर पन्ना दाई।

प्राकृतिक प्रतीक

मुक्तिबोध के काव्य में इन प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। वट-व क्ष, कमल मधुमक्खी आदि कवि के प्रिय प्रतीक हैं। वट-व क्ष में ही कवि ने अलग-अलग स्थानों पर आवश्यकता के अनुसार कहीं जीवन के, कहीं परम्परा के, कहीं स्नेह के रूप में प्रयुक्त किया है। निम्न उदाहरण देखिए जिसमें कवि ने वट-व क्ष को आतंकित जनपद का प्रतीक रूप माना है—

''इन्हीं हलचलों के कारण तो सहसा
बरगद में पले हुए पंखों की डरी हुई
चौकी हुई अजीब सी गन्दी-सी फड़ फड़।''

अब स्नेह के रूप में बरगद का प्रतीक देखिए—

''चिलचिला रहे फैसले,
तेज दुपहर भूरी
सब और गरम धार-सा रेंगता चला
काला-बाँका-तिरछा,
पर, हाथ तुम्हारे में जब भी भिन्न का हाथ
फैलेगी बरगद-छाँह वहीं।''

बरगद का ही विषदमय जीवन के रूप में एक और प्रतीक देखिए—

''भयंकर बरगद—
सभी उपेक्षितों, समस्त वंचितों,
गरीबों का वही घर, वही छत,
उसके ही तल-खोह-अंधेरे में सो रहे
ग हहीन कई प्राण।''

यहीं नहीं मुक्तिबोध ने मौलिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया है मधुमक्खी के छत्ते में असंख्य छिद्र होते हैं उसी प्रकार कवि की छाती में अनेक छिद्र हैं। मधुमक्खी फूलों से इकट्ठे किए हुए मधु की रक्षा करती है उसी प्रकार कवि भी पैने डंकों वाली बुद्धि से जिन्दगी के फूलों से एकत्र किये गये मधु के रस-बिन्दु की रक्षा करता है। उदाहरणतः

''छाती में मधुमक्खी का छत्ता फैला है
जो अकुलाया,
औ दंश-तत्परा मधुमक्खी के दल-दल।
रस-मर्मज्ञाओं की सेना स्नेहान्वेषी,
पर डंक सतत तैयार,
बुद्धि का नित संबल।
मधुमक्खी दल ने जिन्दगियों के फूलों से
रस-बिन्दु-मधुर एकत्रित कर संचित रखने
मेरे प्राणों में
अग्नि-परीक्षाओं-से गहरे छेद किये
छाती मधूपूरित अनगिन छेदों का जाला।''

सैद्धान्तिक प्रतीक

आधुनिक यान्त्रिक जीवन एवं सभ्यता की परम अभिव्यक्ति के लिए कवि ने यंत्र प्रतीकों की योजना की है जो मौलिक है। उनका कहना है–

'इस दिल के भरे रिवाल्र में
बेचैनी जोर मारती है, इसमें क्या शक!
क्यों ताकतवर उस मशीन के
पिस्टल की-सी दिल की धक्-धक्।'

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कवि के बरगद, चाँद, कमल, बिजली, बबूल, घुग्घू, टीला, अक्षयवट आदि प्रिय प्रतीक हैं। कवि मार्क्सवादी है इसीलिए उन्होंने अपनी मार्क्सवादी विचारधाराओं को बरगद के प्रतीक रूप में उभारा है–

''तब बैठ एक
गम्भीर व क्ष तले
टटोलो मन।''

यहाँ कवि ने गम्भीर व क्ष को मार्क्सवादी विचारधारा के रूप में उभारा है। कवि यह भली भाँति जानता है कि अकेले रहकर अपनी विचारधारा को पनपाया नहीं जा सकता। इसके लिए घुलना-मिलना आवश्यक है–

''हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद छाँह वहीं
गहरी-गहरी सपनीली-सी''

यहाँ पर बरगद स्नेह का प्रतीक है। चाँद प्रतीक का प्रयोग परम्परागत रूप से सौन्दर्य के लिए होता है। किन्तु मुक्तिबोध ने उसे पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक माना है। यथा–

''रवि निकलता
लाल चिता की रुधिर-सरिता
प्रवाहित कर दीवारों पर,
उदित होता चन्द्र
व ण पर बाँध देता
श्वेत-धौली पट्टियाँ
उद्विग्न भालों पर।''

यहाँ चन्द्र पूँजीवादी व्यवस्था का ऐसा प्रतीक है जो समाजवादी विचारक को शान्ति का पुजारी, मध्यवर्गीय व्यक्ति बनाने का प्रयत्न करता है और सत्य का गला घोंटने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

''वह चाँद कि जिसकी नजरों से
यों बचा-बचा,
यदि आत्मज सत्य यहाँ रखें झरने के तट,
अनुभव शिशु की रक्षा होगी।''

मुक्तिबोध ने बिजली का प्रतीक रूप में कहीं पर प्रयोगसत्-चित्-वेदना के रूप में तो कहीं पर बहना ही बिजली बन जाती है। कवि ने 'बबूल' को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक माना है। हाँ, 'घुग्घू' का परम्परागत रूप में प्रयोग किया है। यहाँ पर 'घुग्घू' पूँजीवादी व्यवस्था के वाहकों का प्रतीक है। रात्रि के अन्धकार में अपना कार्य करता है तथा दिन के प्रकाश में यथास्थिति का हिमायती बना फिरता है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता में दो उल्लूओं की बातचीत से स्पष्ट होता है—

''गाँधी के पुतले पर
बैठे हुए आँखों के दो चक्र
यानि की घुग्घू एक
तिलक के पुतले पर
बैठे हुए घुग्घू से
बातचीत करते हुए
कहता ही जाता है
..............मसान में
मैनें भी सिद्धि की
देखो मूठ मार दी
मनुष्यों पर इस तरह..........''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुक्तिबोध के प्रतीक निजी एवं मौलिक हैं। पारम्परिक प्रतीकों को उन्होंने नवीन अर्थ दिया है। इस विषय में स्वयं उन्होंने कहा है—''अपने स्वयं के शिल्प का विकास वही कवि कर सकता है, जिसके पास अपने निज का कोई ऐसा मौलिक विशेष हो। जो यह चाहता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्त्वों के आधार को, उन्हीं मनस्तत्त्वों के रंग की, उन्हीं के स्पर्श और गन्ध भी हो।'' इस कथन की परख उनके काव्य में हो जाती है। निःसंदेह मुक्तिबोध प्रकाश के कवि हैं। क्योंकि उन्हें इसका ज्ञान है कि सत्य अंधकार में नहीं प्रकाश में मिलता है। उन्हें स्वयं कहा—''साहित्य मनुष्य के आंशिक साक्षात्कारों के बिम्बों की एक मालिका तैयार करता है। साहित्य में प्रकाश ही प्रकाश है किन्तु हमें प्रकाश में सत्यों को ढूंढना है।'' इसी सत्य की खोज में उनकी कविताओं में प्रतीकात्मकता वर्णित है—

''तब उन्हें लगेगा अकस्मात्
ले प्रतिमाओं का सार, स्फूलिगों का समूह
सबके मन का
जो एक बना है अग्नि-व्यूह
अन्तस्तल में,
उस पर जो छायी है ठण्डी
प्रस्तर-सतहें
सहसा कांपी, तड़कीं, टूटीं
ओ भीतर का वह ज्वलत् कोष
ही निकल पड़ा!!''

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध के काव्य में एक ओर परम्परित प्रतीक मिलते हैं तो दूसरी ओर निजी एवं मौलिक प्रतीक भी मिलते हैं। निःसंदेह उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को गति दी है। उनके निजी प्रतीक बड़े ही उत्कृष्ट एवं सजे-संवरे बन पड़े हैं। इसका कारण यही है कि उनके भावबोध में बिखराव नहीं है।

अंधेरे में: मूल संवेदना

'अंधेरे में' एक ऐसी कविता है जो स्वयं प्रतिमान है। इसमें न कोई कथा है, न जीवन का उहापोह है। यह बने बनाए आशावाद के सरल मार्ग से भी नहीं चलती। यह जुगुप्सा, निराशा और यौन-पिपासा के कीचड़ से पाँव धँसाकर नहीं चलती। इसके बारे में रामदरश मिश्र का कहना है कि—''यह एक ऐसी नयी कविता है जो स्वयं सामाजिक संदर्भों से कथा गढ़ती है वह भी कोई एक सूत्रित कथा नहीं खंड़ कथा। उस कथा को कवि की आत्मकथा से जोड़ती है, कवि की भी आत्मकथा कोई बनी-बनायी कथा नहीं है वह उसकी यातना, उसकी संवेदना, उसके चिंतन से बनती हुई कथा है—खंड कथा।'' इस कविता को नामवर सिंह ने परम अभिव्यक्ति की खोज कहा है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का भी कुछ ऐसा ही मत है—''अंधेरे में'' से गुजरना एक काव्य-यात्रा है। तरह-तरह के अनुभवों के बीच वह कवि भी न खत्म होने वाली रचनात्मकता की तलाश है जिसे उसने 'परम अभिव्यक्ति' नाम दिया है। यह रचनात्मकता बहुमुखी संघर्षों में बनती है और एक बेहतर सामाजिक जीवन-क्रम की आकांक्षा से अभिप्रेरित है।''

यह कविता भीतर और बाहर के साहचर्य और टकराहट से बनती चलती है। इसकी संवेदना जटिल रूप धारण करती चलती है। इसमें टकराहटे बाहर भीतर की ही नहीं है बाहर और बाहर तथा भीतर और भीतर की भी हैं। कवि के भीतर जो चेतन और अबचेतन के, निराशा और आशा के, क्रिया और कर्महीनता के, भय और साहस के वे आपस में टकराते रहते हैं। इन टकराहटों के कारण ही यह आत्मसंघर्ष और सामाजिक संघर्ष तथा आत्म और अनात्मक संघर्ष से गुजरने वाली कविता है। कवि ने यहाँ जटिल कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए स्वप्न एवं फैंटेसी की शैली अपनाई है।

इस कविता का आरम्भ जिंदगी के अंधेरे कमरों से होता है। कवि केवल अंधेरे कमरों का नाम लेता है चित्रण नहीं करता। फिर चित्र शुरू होता है इन अंधेरे कमरों में टहलते हुए किसी प्रकाशमय व्यक्तित्त्व के अस्तित्त्व बोध से। अंधेरे में बंदी व्यक्तित्त्व प्रकाशमय और जीवित और गतिमान है। उसका बोध हो रहा है परन्तु वह दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ अंधेरा और प्रकाशमय व्यक्तित्त्व दुहरे अर्थ में है। अंधेरा सामाजिक विसंगति और विरुपता का तो है ही साथ ही कवि के अवचेतन मन का भी है। और प्रकाशमय व्यक्तित्त्व सामाजिक मूल्य और रचनाधार्मिता का भी व्यक्तित्त्व है। और कवि की चरम अभिव्यक्ति का भी है। फिर छोटा-सा मोड़ लक्षित होता है। अंधेरे टहलते व्यक्तित्त्व का बोध गहरा होता जाता है। यहाँ कवि अनुभव करता है कि व्यक्तित्त्व के दबाव से पुराने अंधेरे कमरे का अस्तित्त्व दरक उठा है। फिर इसी क्रम में एक छोटा-सा मोड़ आता है—वह प्रकाश पुरुष दिखाई जरूर पड़ने लगता है पर पहचान में नहीं आता—

भव्य ललाट है
द ढ़ ह्नु
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति।
कौन वह दिखायी जो, देता पर
नहीं जाना जाता है।
कौन मनु?

यहाँ फिर एक मोड़ के साथ कमरों का अंधेरा पूरे विश्व में फैला दिखाई देता है। कमरे घर में होने के कारण लगता है कि घर को कवि के जीवन का प्रतीकमान कह सकते हैं कि चारों ओर अंधेरा है, कवि के जीवन में भी और बाहरी परिवेश में भी। यहाँ पर एक नाटकीय मोड़ आता है। जिस अंधेरे को ऊपर ताल के बिम्ब से थोड़ा-सा चित्रित किया गया था। उसे यहाँ आकर विस्तार और सघनता प्राप्त होती है। अंधेरे के चित्र की प्रकाश-पुरुष से टकराहट होती है।

लाल लाल कुहरा
कुहरे में, सामने, रक्तालोक-स्नात पुरुष एक
रहस्य साक्षात!

पुरुष तो कवि को अभी समझ में नहीं आया किन्तु धीरे-धीरे अनुभव होता चलता है कि वह पुरुष उसकी अपनी ही अस्थिरता का रूप है।

कविता के दूसरे खण्ड में फिर वही कमरे के भीतर का चित्र उभरता है। किन्तु यहाँ सूनेपन में ही स्वर उभर रहे हैं। सूनेपन का और स्वर का संघर्ष चल रहा है। दरवाजे की साँकल बजाकर कोई कवि को बुला रहा है। आधी रात कोई मिलने आया

है। यहाँ कवि के अवचेतन के अँधकार को तोड़कर उसका प्रकाशमय चेतन उसके व्यक्तित्त्व में उदित होना चाहता है और (कवि तथा समाज के) जीवन के अंधकार को तोड़कर मूल्यों का प्रकाश उभरना चाहता है। वह सौन्दर्य को, मूल्य चेतना को पसन्द तो करता है किन्तु उसे सही रूप में पाने के लिए खतरे उठाने से डरता है क्योंकि उसे यथास्थिति और सुविधाओं में जीने की आदत पड़ चुकी है। यहाँ मुक्तिबोध ने सामाजिक मूल्यों की चुनौती और उसे न स्वीकार करने की समकालीन कवियों की असमर्थता को उजागर किया है—

वह बिठा देता है तुंग शिखर के
खतरनाक खुरदरे कगार-तट पर
शोचनीय स्थिति में ही छोड़ देता है मुझको।
कहता है—पार करो पर्वत-संधि के गह्वर
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर कगार पर स्वयं ही पहुँचो।
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा
मुझे डर लगता है ऊँचाईयों से
बजने दो साँकल।

यहाँ प्रकाश-पुरुष का मूल्यबोध अंधेरे में सो रहे सांसारिक सत्यों को पहचान लेता है। झूठ सच की समीक्षा भी करता है। वह भविष्य की प्रकाशमय चित्र को प्रस्तुत करता है इसे सुविधाजीवी सह नहीं पाता किन्तु वह छोड़ भी नहीं सकता—

नहीं, नहीं उसका मैं छोड़ नहीं सकूँगा
सहना पड़े मुझे चाहे जो भले ही।

इसके उपरान्त कवि लड़खडाता खड़ा होता है, दरवाजा खोलने के लिए ताकि प्रकाश-पुरुष आ सके। यह आत्म जागरण है, अपने से बाहर निकलना है। यह आत्म जागरण का संबंध सामाजिक है—

अंधेरे के ओर-छोर टटोल कर
बढ़ता हूँ आगे
पैरों से महसूस करता हूँ—धरती का फैलाव
हाथों से महसूस करता हूँ दुनिया
मस्तक अनुभव करता है प्रकाश
दिल में तड़पता है अँधेरों का अंदाज
आँखें ये तथ्य को सूंघती-सी लगतीं
केवल शक्ति है स्पर्श की गहरी

तीसरे खंड में अंधेरे और प्रकाश की तनावपूर्ण यात्रा अधिक गहरी और संदर्भ बहुला है। बाहर और भीतर के अंधेरे संदेह और भय की अनुभूति। इस परिवेश को तोड़कर उगता हुआ मूल्य बोध है। यहाँ स्वप्न के भीतर जाग ति है। बेशक सब कुछ स्वप्न में चल रहा है लेकिन यह खुली आंखों से देखा यथार्थ है—सामाजिक अंधकार का यथार्थ, अंधकार के यथार्थ में रह-रहकर उभरता और आहत होता प्रकाश का यथार्थ। यहाँ फैंटेसी में कई महापुरुषों की अवतारणा भी की है। अंधेरे का जुलूस, जुलूस की भयावह गतिविधियाँ, अनेक वस्तुओं के, स्वरों के, रंगों के प्रभावशाली बिम्ब, सार्थक विशेषणों और अप्रस्तुत विधानों द्वारा अंधेरे की संवेदना की अभिव्यक्ति बहुत ही प्रभावशाली है। यह जुलूस बहुत डरावना है। पूरा शहर सोया हुआ है। जुलूस शहर के अवचेतन से उपजा किन्तु उसी का विसंगतिग्रस्त रूप है। इस जुलूस में शामिल प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं—मंत्री, उद्योगपति, आलोचक, विचारक, कवि, कर्नल, ब्रिगेडियर, सेनापति, सेनाध्यक्ष और कुख्यात डकैत डोमाजी उस्ताद। सभी असली रूप में एक ही कतार में हैं। जुलूस पर कवि की द ष्टि पड़ते ही शोर उठता है—

मारो गोली, दागो साले की एकदम
दुनिया की नजरों से हटकर
छिपे तरीके से हम जा रहे थे कि

आधी रात-अंधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खत्म करो एकदम

अतः यहाँ जुलूस विवेकशील द ष्टि का विरोधी है।

चौथे खंड में फिर नयी गति आती है। सुबह होने को है फिर भी चारों और बिखराव है। सेना चुपचाप सड़के घेर लेती है। जन-क्रान्ति का दमन करने के लिए मार्शल लॉ लगा दिया जाता है। कवि दम छोड़कर भागता है। कहता भी है।

भागता मैं दम छोड़
घूम गया कई कई मोड़

इस कविता में इन पंक्तियों की आव त्ति है और हर बार जन-क्रान्ति के दमन के लिए तत्पर व्यवस्था की अमानवीय क्रूरता, भयावहता तथा तज्जन्य कवि या जन की असहायता और भय का चित्रण करती है। कवि दमन का चित्र बनाता है। वह भागता है। एक बरगद दिखाई पड़ता है जिसके नीचे एक पागल रहता है। यह पागल क्रान्ति चेता कवि ही है। यह जन जाग ति के गीत गाता है। यहाँ कवि के बाहर और भीतर समानान्तर संघर्ष चलता है—

चक्र से चक्र लगा हुआ है..........।
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में
चलता है द्वन्द्व कि
फिक्र से फिक्र लगी हुई है

यहाँ कवि सामाजिक यथार्थ का सीधा चित्रण करने वाला प्रगतिशील नहीं लगता, वह सामाजिक यथार्थ और व्यक्ति मन के यथार्थ के जटिल बुनावट से एक अधिक गहरे और व्यापक यथार्थ की पहचान करता है। जहाँ जनसंघर्ष भी है, उसका दमन भी है, कवि का पलायन भी, पागल का अतीत भी है, जाग त वर्तमान भी है और यह आत्मबोध नहीं है कि उसकी यह निष्क्रियता ही इस सामाजिक विसंगति की उत्तरदायी भी है। बरगद का पेड़ गाँव की सामूहिक जिंदगी का प्रतीक मालूम पड़ता है। इसके नीचे गरीब अपनी थकान दूर करते हैं तो कवि कलाकार संघर्ष चेतना प्राप्त करते हैं।

पाँचवें खंड में फिर मोड़ आता है। बंदूकें धाँय-धाँय छूटने लगती है और मकानों के ऊपर गेरुआ प्रकाश फैलने लगता है। कवि गुफ में छिपता है। यह गुफा अपना ही अवचेतन रूप है। यहाँ कवि अनुभव करता है कि इस गुफा में कितनी ही छवियाँ और द्युतिया छिपी हुई हैं। इन छवियों और द्युतियों को सामाजिक जीवन से विच्छिन्ना कर अपने ही भीतर छिपा लिया है। फिर सीन बदलता है। सुनसान चौराहा; सिपाही ऊँघ रहे हैं फिर भी चौकन्ने हैं। कवि भय से भाग रहा है—वो भी ठंडे लंबे-चौड़े कोलतारी रास्ते पर। यहाँ मनःस्थिति के रूप में फिर से प्रकाश-पुरुष का उदय होता है। यहाँ कवि भय को संत्रास रूप में लाता है। प्रकाश-पुरुष नहीं चाहता कि जिस देश के लिए इतना कुछ किया वही देश भय और संगीनों का देश बन जाए।

हाय, हाय पितः पितः ओ
चिंता में इतने न उलझो
हम अभी जिंदा है
चिंता क्या है।

मूल्य बोध से कवि की यह पीड़ा पैदा हुई है। मूल्य बोध के तीव्र होने पर कवि मन-ही-मन कोई निर्णय लेता ही है कि इतने में बंदूक का धड़ाका सुनाई देता है। इससे चारों ओर रोने की, चीखने की, वेदना की भरभराहट व्याप जाती है। शायद यह बंदूक गोड़से की है या फिर यह बंदूक क्रूर व्यवस्था की है जो इन्सानों का खून करती है। इसी परिवेश में जनता के प्रतीक रूप में बोरा ओढ़े गांधी दिखाई पड़ते हैं। वे कहते हैं—

दुनिया न कचरे का ढेर जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुरगा

यदि बांग दे उठे जोरदार
बन जाये मसीहा

वे कह रहे हैं—

मिट्टी के लोदे में किरणीले कण-कण
गुण हैं
जनता के गुणों से ही संभव
भावी का उद्‌भव

गांधीजी के हाथ में जन-भविष्य के रूप में एक बच्चा है! जिसे वे नयी पीढ़ी के हाथ में सौंप देता है।

मेरे पास चुपचाप सोया हुआ यह था
संभालना इसको, सुरक्षित रखना

यह भविष्य है। इस दायित्व को कवि अनुभव करता है। एकाएक बच्चा पता नहीं कहाँ चला जाता है। उसके स्थान पर रह जाते हैं सूरजमुखी फूल-गुच्छे। फिर कवि अभावग्रस्त परिवेश में आता है। सुन्दर भविष्य और अभावग्रस्त कठोर वर्तमान की हल्की सी टकराहट है—

जीना है अंधेरा
कहीं कोई ढिबरी-सी टिमटिमा रही है।

सूरजमुखी के गुच्छे गायब, सुखद अनुभव गायब। कंधे पर एक भारी बंदूक है। यह बंदूक सत्ता की बंदूक का प्रतीक है। इसी से सत्ता जनता का खून करती है। जनता की नियति उसे कंधे पर ढोने में ही है—

ओ हो,
बंदूक आ गयी
वाह वा...........
वजनदार राइफल
यही खूब

यहाँ लगता है कि यह बंदूक जनता की शक्ति की प्रतीक है लेकिन आगे के संदर्भ से लगता है कि भीतरी विडम्बना को व्यक्त करती है। यहाँ अभावग्रस्त परिवेश के बीच एक कलाकार मरा नहीं मारा गया है मानो वह स्वयं कवि ही है।

वह कलाकार था,
गलियों के अंधेरे का, हृदय में भार था
पर, कार्य क्षमता से वंचित व्यक्ति
बलात था अपना असंग अस्तित्व।

उसकी विडम्बना यही थी कि वह अपने ज्ञान, स्वप्न, अनुभव दे नहीं सकता था—

शून्य के जल में डूब गया नीरव
हो नहीं पाया उपयोग उसका

कवि का मानना है कि वह मरा हुआ कलाकार सभी का प्यारा एवं मुक्ति का कामी था उसके साथ पूरा युग मर गया, एक आदर्श मर गया। स्वयं कवि की आत्मा कहती है—

सवाल है—मैं क्या करता था अब तक
भागता फिरता था सब ओर..........

फिर परिस्थितियों की टकराहट होती है। कवि नए सहचरों की तलाश में निकलता है लेकिन आततायी उसे पकड़कर सताना शुरू कर देते हैं। अंधेरे कमरे में यातना दी जा रही है। ये आततायी उसकी देह को तोड़कर तलाशी ले रहे हैं। इस प्रक्रिया

में वे पाते हैं कि कवि के भीतर जो खतरनाक चीज है वह है विचार। वह विचारों के परचे ही उनके खिलाफ जनता में बांटता है। और इन विचारों का सेक्रेटरी है आस्था और सरगना है आत्मा। यहाँ कवि की आस्था और आत्मा को निकालकर उसे शक्ति शून्य करने का प्रयास किया जाता है।

सातवें खण्ड में यातना की स्थूलता सूक्ष्मता में बदल जाती है आततायी रिहा तो कर देते हैं किन्तु उनकी छाया निरन्तर पीछा ही करती रहती है। फिर प्रगतिशील द ष्टि उभरती है। कवि अनुभव करता है कि उसे अब साथी खोजने ही होंगे। वे साथी हैं—सँवलाये कमल, काले गुलाब, स्याह सिंवती, श्याम चमेली आदि। ये सभी फूल भीतर से सुगंध बिखेरने वाली जनता के प्रतीक हैं। ये कवि के लिए संदेश भेजते हैं। कवि से लगता है कि कहीं दूर नीचे मोतिया चम्पई, गुलाबी फूल मर रहे हैं। ये दूर क्षितिज समाजवादी देश हो सकते हैं या फिर कवि की कल्पना में उभरता भविष्य भी हो सकता है। अभिव्यक्ति रूढ़ हो गई है। सही अभिव्यक्ति नहीं मिल पाती इसीलिए अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे। मठ और गढ़ तोड़ने ही पड़ेंगे। यहाँ अभिव्यक्ति का अर्थ है भीतर के अनुभवों की सच्ची अभिव्यक्ति करना है। भीतर का अनुभव अन्तर्विरोधग्रस्त है। कवि जन जीवन के लिए सपने देखता है, उसके दर्द को महसूस करता है मुक्ति की पीड़ा भी है। साथ ही भय है, पलायन है, अवचेतन का अकेलापन और अंतर्मुखता है। कवि जन-जीवन से जुड़ना चाहता है किन्तु विवेक जाग त होने पर व्यक्तित्त्व के अनुभवों की अभिव्यक्ति पूरी नहीं दे पाता।

कवि अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का फैसला करके भागता है और वहाँ पहुँच जाता है जहाँ सत्य और सत्ता के संघर्ष की बहस चल रही है। यहाँ एक सुरंग में भीतरी आग लिए एक जन समूह चल रहा है। अतः कवि के विवेक को लेकर लोग आगे बढ़ रहे हैं।

आठवें खण्ड में सकल क्रियाएँ एवं विचार घूमते एवं टकराते हैं। कहीं आग लगी है। कहीं गोली चल रही है भयानक धुआँ उठ रहा है। यहाँ एक ओर व्यवस्था के चरम अत्याचार और उसकी भयावहता का गतिशील चित्र है, दूसरी ओर मौन बैठे कलाकारों और बुद्धिजीवियों की स्वाभिकता का चित्रण है, तीसरी ओर जनसंघर्ष का अंकन है। जन संघर्ष का एक बिम्ब देखिए—

गेरुआ मौसम, उमड़ते हैं अंगार
जंगल जल रहे जिंदगी के अब
जिनके कि ज्वलंत प्रकाशित भीषण
फूलों से बहती वेदना नदियाँ
जिनके कि जल में
सचेत होकर सैकड़ों सदियाँ, ज्वलंत अपने
बिम्ब फेंकती।

इसके जल को पीकर युवाओं का व्यक्तित्त्व बदल रहा है। फिर स्वप्न टूटता है। कवि अकेला पड़ जाता है। कवि जन संघर्ष को किसी से हुए प्रेम के समान आत्मीय लगाव मानता है। महान ग्रंथों के लेखक कवि भी इस नयी मानसिकता को देख रहे हैं। फिर वही प्रकाश पुरुष दिखाई पड़ जाता है। वास्तव में वह पुरुष कवि की अपनी अनखोजी सम द्धि का परम उत्कर्ष है, कवि उसका शिष्य है, उससे वह आलोक प्राप्त करता है। यह प्रकाश कवि की परम अभिव्यक्ति ही है जो खोह में छिपने की बजाय जगत की गलियों में घूमती है—

अत्यन्त उद्विग्न ज्ञान तनाव वह
सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
वही फटे हाल रूप
परम अभिव्यक्ति
लगातार घूमती है जग में
पता नहीं जाने कहाँ, जाने कहाँ
वह है।

अतः कवि यहाँ अपनी परम अभिव्यक्ति के लिए हर चेहरे को देखता है। हर चेहरे का साक्षात्कार करके ही कवि अपना जनवादी व्यक्तित्त्व बना सकता है और परम अभिव्यक्ति का सीधा अर्थ इसी व्यक्तित्त्व से है।

इस कविता के बारे में डॉ० रामदरश मिश्रा का कहना है कि ''वह स्वप्न कथा होने के बावजूद हमारी समकालीन जिंदगी की विषम वास्तविकताओं के विभिन्न स्तरों और पहलुओं से सर्वाधिक तीव्रता और समीपता से टकराती है और इस कविता में तनावपूर्ण स्थितियों से उद्भूत संक्रांत गहन अनुभवों तथा इंद्रिय बोधों के अनेक सुंदर बिम्ब हैं जो कविता को बनाते हैं किन्तु इस कविता की कमजोरियों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह स्वप्न कथा है। यानी फैंटेसी है क्योंकि कवि किसी सुलझी हुई सरल या संक्रांत समकालीन या पूरी कथा का सहारा लेकर नहीं चलता बल्कि वह हमारी सामाजिक जिंदगी में इधर-उधर बिखरे हुए एक-दूसरे से टूटे हुए फिर भी जुड़े हुए यथार्थ के पहलुओं को चित्रित करना चाहता है।'' आगे रामदरश मिश्र स्वयं ही निराकरण करते हुए कहते हैं—''जाहिर है इस चतुर्मुखी अस्त-व्यस्त वास्तविकता को किसी एक कथा के जरिये नहीं चित्रित किया जा सकता। कथा का अपना आग्रह होता है, सीमा होती है। इसीलिए कवि ने फैंटेसी अर्थात् स्वप्न कथा का सहारा लिया है।'' अतः कहा जा सकता है कि कवि मुक्तिबोध इस कविता के शुरू में ही अपनी परम अभिव्यक्ति की खोज में निकले और रचना प्रक्रिया के दौरान अभिव्यक्ति के खतरे उठाते हुए अभिव्यक्त करते रहे।

खण्ड 'ग'

लघुत्तरी प्रश्न

प्रश्नः मुक्तिबोध के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 ई० को ग्वालियर (मध्य प्रदेश) के श्योपुर में माधव मुक्तिबोध के यहाँ हुआ था। इनका वास्तविक नाम गजानन था किन्तु इनके साथ पिता का नाम माधव और वंश परम्परा का नाम मुक्तिबोध जोड़कर इनका पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध बना दिया गया। उनके पिता का कार्य क्षेत्र उज्जैन होने के कारण उनकी प्रारम्भिक शिक्षा वहीं हुई। ये प्रारम्भिक जीवन से ही विश ंखल स्वभाव के थे। इनका एक सहपाठी शान्ताराम नगर में गश्त की ड्यूटी पर तैनात था। ये उनके साथ-साथ पूरी रात गलियों-सड़कों में बीड़ी पीते हुए मटरगस्ती करते फिरते थे। 'अँधेरे में' कविता में यह घुमक्कड़ी देखी भी जा सकती है। सन् 1938 ई० में यह होल्कर कॉलेज इन्दौर से वी०ए० करने के बाद ये मार्डन स्कूल में अध्यापक हुए। सन् 1938 ई० में शान्ता से प्रेम विवाह किया। छात्र जीवन से इन पर एक ओर रवीन्द्रनाथ, गांधी, निराला, महादेवी, माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन का प्रभाव था तो दूसरी ओर झाँ, इस्सन, बर्गसा, रसेल, मार्क्स के अध्ययन प्रभाव ने साहित्य पढ़ने और लिखने की शक्ति दी। अनेक समस्याओं का सामना करते हुए 1953 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम०ए० किया। उनकी म त्यु 11 सितम्बर 1964 को लम्बी बीमारी के बाद दिल्ली में हुई।

प्रश्नः कविवर मुक्तिबोध के रचना-संसार पर द ष्टि डालिए।

उत्तर: कविवर मुक्तिबोध मुख्यतया कवि के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। पहला 'तार सप्तक' सन् 1943 में जिन सात कवियों की प्रतिनिधि रचनाएँ समेट कर सामने आया उनमें कविवर मुक्तिबोध का विशेष स्थान है। पहले-पहल कवि की तार सप्तक में सोलह कविताएँ प्रकाशित की गई थीं। सन् 1966 में इसका दूसरा संस्करण निकला जिसमें कवि की आत्म वक्तव्य नामक एक और कविता सम्मिलित की गई। इसके बाद उनका रोगशय्या पर पड़े जीवन और म त्यु से जूझते हुए अपने जुझारू स्वभाव के कारण सन् 1964 में 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' निकला। इस संकलन को प्रकाशित रूप में देखने से पहले ही मुक्तिबोध को म त्यु ने डस लिया। इसमें कुल मिलाकर 28 कविताएँ हैं। जिनमें प्रमुख हैं—ब्रह्म राक्षस, दिमागी महान्धकार का ओरांग उटांग, चाँद का मुँह टेढ़ा है, अंधेरे में, इनका दूसरा काव्य संकलन 'भूरी-भूरी खाक-धूल' सन् 1980 में प्रकाशित हुआ जिसमें कुल 47 कविताएँ संकलित हैं।

काव्य के अतिरिक्त मुक्तिबोध द्वारा रचित कहानियाँ, उपन्यास, आलोचनात्मक निबन्ध आदि भी हैं। इनका पहला कहानी संकलन 'काठ का सपना' है। जिसमें इनकी 1943 से लेकर 1963 तक की रची गई कहानियाँ हैं। इनका दूसरा कहानी संकलन 'सतह से उठता आदमी' है। जिसमें कुल नौ कहानियाँ संकलित हैं। आलोचकों का मानना है कि ये इनके भोगे हुए यथार्थ को विभिन्न कथा-बिम्बों में स्वरूपायित करने वाली है। इनकी एक औपन्यासिक कृति है—विपात्र।

इनका निबंधों के रूप में 'नई कविता का आत्मसंघर्ष और अन्य निबन्ध' हैं। जो तेरह निबन्धों के आयामों वाला है। इनका दूसरा निबन्ध संकलन-नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' है। और तीसरा—'एक साहित्यिक की डायरी' है जिसे निबन्ध संकलन न कहकर डायरी विद्या की रचना कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। इनकी समीक्षक के रूप में 'कामायनी-एक पुनर्विचार' नामक रचना है। जो प्रसाद रचित 'कामायनी' की आलोचना है।

प्रश्नः मुक्तिबोध की सामाजिक चेतना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर: कवि ने जीवन और सामाजिक यथार्थ को खुली और पैनी आँखों से देखा था। इसीलिए तो 'अंधेरे में' कविता में वे कहते हैं कि मेरी परम अभिव्यक्ति हर गली में, सड़क पर घूमती हुई प्रत्येक अत्याचारी और शोषक का चेहरा देख रह है और उनकी प्रत्येक गतिविधि भी देख रही है। वह हर एक आत्मा का इतिहास, देश व राजनैतिक परिस्थिति,

प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श, विवेक प्रक्रिया देख रही है। कवि ने इसी को अभिव्यक्त किया हैं उनकी अभिव्यक्ति शोषण की नियामक शक्ति के विरुद्ध है, जो कवि के अचेतन मन से बाहर निकलकर सामाजिक परिवर्तन करना चाहती है। इसीलिए वे पूँजीवाद के ध्वंस पर बल देते हैं—

''तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।''

इसी प्रकार 'भूल गलती' में कवि का विश्वास है कि शोषित वर्ग की चेतना का स्वप्लवित स्वर अपने अत्याचारों का बदला चुकाने आएगा। इसी तरह 'पता नहीं' में मुक्ति का प्रयास करने वाली आत्मीय छवि का प्रदर्शन है। 'एक स्वप्न कथा' में सर्वहारा समाज की वर्तमान वैषम्यों और बन्धनों से मुक्ति की खोज का उपक्रम है। उनकी सभी कविताएँ 'जन चरित्री' हैं। 'एक अन्तर्कथा' में दलित मानवता का चित्रण है। कवि के स्थान-स्थान पर जन-सामान्य को हीनता, बौनेपन गूँगेपन से मुक्त कराने के लिए अभिव्यक्ति के खतरे उठाये हैं। यहाँ भय, सन्देह, उत्पीड़न तथा आशंकाओं के बीच जीते हुए समकालीन मनुष्य के विविध पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है।

अतः मुक्तिबोध का काव्य-व्यापार व्यक्ति और परिवेश के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। कवि मानव-विरोधी हरकतों को समझता हुआ सामाजिक चेतना को सही भूमि पर अभिव्यक्त करता है।

प्रश्नः मुक्तिबोध लोक जीवन के जासूस कवि माने जाते हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध को देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी की तरह एय्यार और जासूस नहीं मिले। उन्हें ब्रह्मराक्षस, भैरव, रावण, पुलिस के जासूस और ओरांग-उटांग ही मिले हैं। उन्होंने अपने ही खून से 'चाँद का मुँह टेढ़ा' की कुछ कविताएँ लिखी हैं। इस संदर्भ में रमेश कुंतल मेघ कहते हैं—''इस 'गुटके' से हमने व्यवस्था का तिलस्म तोड़ा और यह पाया कि मुक्तिबोध 'किले' के हरेक, कक्ष, कुएँ, गली, खाई, बावली की गहरी छानबीन कर चुके थे। उनके पीछे बिल्लियों, भूतों और पुलिस के जासूस लगे थे और उनके अन्दर एक द्युतिमान शक्ति पुरुष, विराट् पुरुष, युग पुरुष, आदिमानव तथा विद्रोही मनु बार-बार आत्मचेतना बनकर दीप्तिमान होता था। इस तरह जासूसों और मनु के बीच सभ्यता का शोषण मूलक 'रहस्य' और संस्कृति का घिनौना 'भय' निरन्तर युद्धरत नजर आता है।'' अतः मुक्तिबोध ने जिस तिलस्म को तोड़ा था, वह व्यवस्था के शोषण की सत्ता की बर्बरता का था। वे लोकचित्र की अंधविश्वासी भूमि में दबकर, गढ़कर उसे तोड़ने की कोशिश में निरन्तर लगे रहे। उनके लिए जो मोहभंग हुए हैं वे सब ब्रह्मराक्षस और ओरांग उटांग हैं। उन्होंने संस्थाओं के भ्रष्टाचार और सत्ताधारी वर्ग के आतंक को खण्डहरों, घुग्घुओं, उल्लुओं, बिल्लियों और जासूसों के जरिए उभारा है। इसीलिए उन्हें लोकजीवन का जासूस कहा गया है।

प्रश्नः कविवर मुक्तिबोध की अलंकार योजना पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः कविवर मुक्तिबोध के काव्य में अलंकार, बिम्ब, प्रतीक इतने घुले मिले हैं कि उन्हें सहज अलग नहीं किया जा सकता। इनके काव्य में अनेक अलंकार स्वयं उपस्थित हो गए हैं। अलंकार भावों की अभिव्यक्ति में उनके सहायक बनकर आए हैं। इनका प्रयोग सायास न होकर अनायास ही है। अलंकार योजना के लिए जब वे उपमान योजना करने लगते हैं, तब वे परम्परा से सर्वथा हट कर करते हैं। उपमेय तो नवीन होते ही हैं, वे उपमान भी नए-नए खोज लाते हैं। उन्होंने कुछ ही अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में अधिकतर उपमा, रूपक, मानवीकरण, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का ही प्रयोग किया गया है। यथा—

**''रवि निकलता
लाल चिन्ता की रुधिर सरिता
प्रवाहित कर दीवारों पर
उदित होता चन्द्र
ब्रण पर बांध देता/श्वेत धौली पट्टियाँ।'' (रूपक)**

**''अचानक आसमानी फासले में से
चतुर चाँद ऐसे मुस्कराता है।'' (मानवीकरण)**

''वेदना नदियाँ

जिनमें कि डूबे हैं युगानुयुग से
मानों कि आँसू
पिताओं की चिन्ता का उद्विगन रंग थी,
विवेर पीड़ा की गहराई बेचैन,
डूबा है जिनमें कार्मिक सन्ताप। (उत्प्रेक्षा)

"आँखें चिलकती हैं, नुकीले तेज पत्थर-सी (उपमा)

इसी प्रकार मुक्बिोध के काव्य में अनेक अलंकार खोजे जा सकते हैं। इन सभी में कवि का मौलिक चिन्तन फलित है।

प्रश्नः पूँजीवाद के प्रति मुक्तिबोध के विचारों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: कविवर मुक्तिबोध पश्चिम के समाजवादी चिन्तक कार्ल मॉर्क्स से प्रभावित हैं। उन्होंने सामाजिक परिवेश में व्याप्त पूँजीवादी मानसिकता का नग्न न त्य खुली एवं पैनी आँखों से देखा था। उन्होंने पूँजीवादी शोषकों पर उनकी नीतियों पर अपनी कविताओं में सीधा आक्रमण किया है। कवि पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद को एक ही सिक्के के अलग-अलग रूप मानता है। कवि ने उन्हें रक्तपायी वर्ग की संज्ञा दी है उनका कहना है कि पूँजीवादी मानसिकता नपुंसक-भोग-शिरा-जालों में उलझकर आम आदमी का शोषण कर रही है। उन्होंने इसे जीवन्त अभिशाप कहा है और इसके ध्वंस अनिवार्य माना है—

"तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।"

कविवर मुक्तिबोध का मानना है कि शोषण व वर्ग भेद का शिकार यह जीवन और समाज चल नहीं सकता। क्योंकि पूँजीवादी मानसिकता बदल नहीं सकती।

"कविता में कहने की आदत नहीं पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा ह्रदय बदल नहीं सकता
स्वातन्त्र्य व्यति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को,
जन को।"

अतः कहा जा सकता है कि कविवर मुक्तिबोध ने शोषण पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है और इसके ध्वंस में ही समाजवादी, मानवतावादी वर्गहीन समाज की कल्पना की है।

प्रश्नः फैंटेसी की परिभाषा देते हुए मुक्तिबोध की फैंटेसी पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

उत्तर: 'फैंटेसी' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द फैंटेशिया से हुई है। जिसका अर्थ है अवास्तव या अमूर्त को द श्य बनाकर अर्थात् काल्पनिक या स्वप्न-द श्यों को बिम्बात्मक स्वरूप देने का सामर्थ्य। 'विश्व साहित्य कोश' में भी फैंटेसी को परिभाषित करते हुए लिखा है कि फैंटेसी भी क्रियाशीलता में ऐसा वातावरण या चरित्र उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य जीवन की सामान्य परिस्थितियों में असम्भव माने जाते हैं—पशु या मानव जीवन का अन्तर मिट जाता है, मनुष्य के स्वभाव की आधार-शिला डगमगा जाती है।

फैंटेसी में रचनाकार असम्भव एवं अवास्तविक परिस्थितियों के चित्र प्रस्तुत करके ऐसा विस्मय उत्पन्न कर देता है जो बाहरी रूप से अनगढ़ लगता है परन्तु आन्तरिक रूप से तर्क संगत एवं कटु सत्यों से परिपूर्ण होता है।

लोकजीवन के जासूस कवि मुक्तिबोध ने अपनी कविता में यथार्थ की असमापनीयता, विसंगति, अन्तर एवं बाह्य जगत सभी को एक साथ समेटने के लिए फैंटेसी का सहारा लिया है। मुक्तिबोध की वैचारिक प्रतिबद्धता एवं जन चेतना अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वप्न के भीतर स्वप्न और विचारधारा के भीतर एक और अन्य सघन विचारधारा से साक्षात्कार कराती है। उदाहरणतः

"मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क

उसके भी भीतर एक और कक्ष
कक्ष के भीतर एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के सांवले गुहान्धकार में मजबूत
..................सन्दूक
द ढ़ भारी भरकम
और उस सन्दूक के भीतर कोई बन्द है।''

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता विराट फैंटेसी की कविता है। उदाहरण सहित बताइए।

उत्तरः 'अंधेरे में' कविता विराट फैंटेसी की कविता है। इस कविता में कवि ने जो कुछ भी वर्णित किया है वह अन्तर्मन या स्वप्न के स्तर पर कल्पना के आधार पर ही किया है। फैंटेसी की योजना में कवि सिद्धहस्त है। फैंटेसी उनकी अभिव्यक्ति में बाधक नहीं है बल्कि वह और भी अधिक प्रभावशाली बन जाती है। जैसेः

''वह नहीं दीखता, नहीं दीखता
किन्तु वह रहा घूम
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक।''

यहाँ अन्तर्मन के स्तर पर कोई और नहीं बलिक स्वयं कवि ही है। कवि प्रयोगधर्मी है। इसलए वह नए-नए प्रयोग करता है। इन्हीं प्रयोगों में एक प्रयोग उनकी फैंटेसी भी माना जा सकता है।

प्रश्नः मुक्तिबोध के काव्य में दलित, शोषित वर्ग का चित्रण है। उदाहरण सहित बताइए।

उत्तरः कवि उदात्त मानवता की भावना से अनुप्रणित होता हुआ वर्गहीन समाज की कल्पना करता है और दलित शोषित वर्ग के प्रति पूर्ण सहानुभूति व्यक्त करता है। कवि इन्हीं दलितों, शोषितों को क्रान्ति का वाहक स्वीकार करता है। कवि इनकी दशा को देख दुःखी है। कवि अनेक जगह शोषण का चित्रण करता है—

''रात में पीले हैं चार घड़ी चेहरें,
मिनिट के कांटों की चार अलग गतियाँ
चार अलग कोण, चार अलग संकेत,
खम्बों पर, बिजली की गरदनें लटकीं,
शर्म में जलते हुए बल्बों के आस पास
मचल-मचल कर।''

कवि का मानना है कि शोषक वर्ग शोषित वर्ग का चतुर्दिक शोषण करता है। शोषण की चरम सीमा को उद्घाटित करता हुआ कवि कहता है—

''जनता को ढ़ोर समझ
ढ़ोरों की पीठ भरे
घावों में चोंच मार
रक्त भोज, मांस भोज
करते हुए गरदन मटकाते दर्प भरे कौओं-सा
भूखी अस्थि-पंजर शेष
नित्य मार खाती-सी
रंभाती हुई अकुलाती दर्प भरी
दीन-मलिन गौओं-सा।''

ऐसी समाज व्यवस्था के प्रति मुक्तिबोध का संवेदनशील हृदय तड़प उठता है और कहता है कि ऐसी पूँजीवादी समाजवादी व्यवस्था में संस्कृति और सभ्यता अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकतीः

''शोषण की अतिमात्रा
स्वार्थों की सुखयात्रा

जब-जब सम्पन्न हुई
आत्मा से अर्थ गया
मर गई सभ्यता।''

अतः कवि के परिवेश में चतुर्दिक शोषण को देख उसके प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट की है और इसके प्रति जन-चेतस को जाग त करने की कोशिश की है।

प्रश्नः कविवर मुक्तिबोध के यथार्थ बोध पर पचास शब्द लिखिए।

उत्तरः कविवर मुक्तिबोध जीवन और समाज की वास्तविकता को अपने काव्य का एक द ढ़ बनाकर चलते हैं। मुक्तिबोध को कटु यथार्थ का जितना बोध था उतना उनके समकालीन अन्य किसी कवि को न था। कवि मुक्तिबोध जिस यथार्थ का चित्रण करता है वह जीवन के सभी क्षेत्रों से संबद्ध है। वह कल्पना का यथार्थ नहीं है वह कवि के जीवन का भोगा एवं घटित यथार्थ है। कवि ने इसे भोगा पहले है व्यक्त बाद में किया है। कवि को अतीत, वर्तमान और शाश्वत यथार्थ का बोध होता है उसे 'स्याह पहाड़' की संज्ञा देते हुए वे कहते हैं—

''आज के अभाव के, व फल के उपवास के
व परसों की म त्यु के
दैन्य के, महा अपमान के, व क्षोभपूर्ण
भयंकर चिन्ता के उस पागल यथार्थ का
दीखता पहाड़—
स्याह।''

प्रश्नः मुक्तिबोध की कविता में उनका विरोधी और विद्रोह का स्वर अभिव्यक्त हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध की कविता विरोध और विद्रोह से परिपूर्ण है। उनके काव्य में विरोध की अनेक दिशाएँ मिलती हैं। उनकी कविताओं में यंत्रणा, त्रास, भूख, पीड़न, म त्यु, दरिद्रता, सामाजिक उलझनों का आशावाद, अवसाद और नैराश्य का स्वर भी मिलता है। उन्होंने अपने काव्य में आन्दोलन, क्रान्ति आदि शब्द प्रयुक्त किए हैं। सही रूप में उनके जीवन को देखें तो उन्होंने अपने समाज, अपने इतिहास, अपने अस्तित्त्व और अपने आप से कितनी लड़ाई लड़ी हैं। अपने से लड़ने की प्रक्रिया में उनका विरोध और विद्रोह उनके काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। 'अंधेरे में' कविता को ही देखें जहाँ वे एक अन्वेषक के रूप में कहते हैं—

'इसलिए मैं हर गली में/और हर सड़क पर
झाँक, झाँक कर देखता हूँ हर एक चेहरा/प्रत्येक गतिविधि
प्रत्येक चरित्र व हर एक आत्मा का इतिहास/
हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति/
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक प्रक्रिया क्रियागत परिणति
खोजता हूँ पठार, पहाड़, सुन्दर ! !
जहाँ मिल सके मुझे/मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार/आत्मा।

अतः कहा जा सकता है कि उनका विरोध भावना एवं बुद्धि दोनों ही स्तरों पर अभिव्यक्त हुआ है। उनका यह विरोध और विद्रोह व्यक्ति की मूल प्रकृति से लेकर संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था तक प्रसारित है।

प्रश्नः कविवर मुक्तिबोध की व्यंग्य और विद्रूप द ष्टि पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः मुक्तिबोध का काव्य सामाजिकता और वास्तविकता पर आधारित होने के कारण उसमें व्यंग्य और विद्रूप का समावेश हो जाना स्वाभाविक ही है। उनके व्यंग्य क्षेत्र में जीवन और समाज का परिवेश, मूल्य, राजनैतिक-सामाजिक स्थितियाँ आदि आते हैं। उन्होंने इस दिशा में शून्य पर भी व्यंग्य किया है। एक उदाहरण द ष्टव्य है—

गाँधी की मूर्ति पर/बैठे हुए घुग्घू ने

गाना शुरू किया, हिचकी की ताल पर···
टेलीफेन-खम्भें पर थमे हुए तारों ने
सट्टे के ट्रंक-काल सुरों में। थर्राना और
झनझनाना शुरू किया। रात्रि का काला-स्याह
कन-टोप पहने हुए। आसमान बाबा
ने हनुमान-चालीसा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी कविता व्यंग्य विद्रपू का जीवन्त दस्तावेज है।

प्रश्नः सांस्कृतिक मूल्यों के संदर्भ में कविवर मुक्तिबोध ने नैतिक ह्रास की बात की है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध ने वर्तमान जीवन की विकृतियों तथा उनके संदर्भ में आधुनिक कविता के दायित्व पर विचार करते हुए 'काव्यः एक सांस्कृतिक प्रक्रिया' नामक निबंध में लिखा है—''आज की कविता का मूल प्रश्न जीवन जगत् के ज्ञान के अधूरेपन या पूरेपन, विकारग्रस्तता या शुद्धता के प्रश्न के साथ अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। आज के कवि को, अर्थात् हमें ज्ञान पक्ष के विकास की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं रही। इसका कारण यह है कि आज का कवि एक असाधारण असामान्य युग में रह रहा है, जहां मानवता संबंधी प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो उठे हैं। समाज भयानक रूप से विषमता ग्रस्त हो गया है। चारों ओर नैतिक ह्रास के द श्य दिखाई दे रहे हैं।'' इस द ष्टि से 'अंधेरे में' कविता का अंश देखिए, जिसमें आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी मन को सम्बोधित करते हुए जीवन का अर्थ ढूंढने की चेष्टा की गई है, सामाजिक यथार्थ के खोखलेपन, व्यक्ति की नैराश्य एवं विवशता को उजागर किया गया है। अर्थात् नैतिक ह्रास की बात कही है—

''उदरम्भरि बन अनात्म बन गए
भूतों की शादी में कनात से तन गए
किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर

o o o o

लोकहित पिता को घर से निकाल दिया
जन-मन-करुणा-सी माँ को हँकाल दिया
स्वार्थ के टेरियार कुत्तों को पाल लिया,

o o o o

विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गए।''

अतः कवि मुक्तिबोध ने जीवन और समाज में व्याप्त नैतिक पतन को द ष्टिपात किया है।

प्रश्नः मुक्तिबोध की मिथक-योजना पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः मुक्तिबोध ने अपनी कविता में मिथक का प्रयोग नये संदर्भों में किया है जो प्रसाद एवं निराला के मिथक प्रयोग से कुछ भिन्न है। उनकी लगभग सभी लम्बी कविताओं में मिथकों की भाँति अतिरंजनापूर्ण कथात्मकता मिलती है। 'ब्रह्मराक्षस' 'चम्बल की घाटी', 'अंधेरे में' आदि कविताओं में ऐसे बिम्बों, प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जो मिथकीय काव्य का आभास देते हैं। 'ब्रह्मराक्षस' कविता में जब वे कहते हैं कि 'मानस मस्तिष्क में से निकले हुए कुछ ब्रह्मराक्षसों ने गाँधी जी की टूटी चप्पल पहन ली'—तो वे एक प्रतीक को जन्म देते हैं किन्तु जब वे इसको एक घटना का रूप दे देते हैं तो मिथक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है—

'मानव मस्तक में से निकले/कुछ ब्रह्मराक्षसों ने पहनी
गाँधी जी की टूटी चप्पल, हर हरा उठा यह पीपल तन
हँस पड़ा ठठाकर, गर्दन कर, गाँव का कुआँ।
तब दूर, सुनाई दिया शब्द 'हुआँ' 'हुआँ'!

यहाँ पीपल के हरहरा उठने में ही मिथक की स ष्टि हुई है। इसी प्रकार हम उनकी अन्य कविताओं में भी मिथक-स ष्टि का अविरण प्रवाह देख सकते हैं।

प्रश्नः कविवर मुक्तिबोध की वैयक्तिकता से सामाजिकता तक की यात्रा पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तरः कविवर मुक्तिबोध की काव्य चेतना का आरम्भ घोर वैयक्तिकता को महत्त्व देने वाले छायावादी युग में हुआ था। इसी कारण उनके काव्य में कहीं-कहीं वैयक्तिकता के दर्शन हो जाते हैं।

''अपनी व्यति सत्ता के सहारे जो चले हैं प्राण
उनको कौन देता है/अचल विश्वास का वरदान।
उनको कौन देता है प्रखर आलोक
खुद ही जल/कि जैसे सूर्य
अपने ही हृदय के रक्त की ऊषा
पथिक के क्षितिज पर बिछ जाए...

यह वैयक्तिता कवि को अधिक समय तक नहीं बाँध सकी वे शीघ्र ही समाज के यथार्थ की पहचान कर लेते हैं—

याद रखो
कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ ही...

अतः कवि वैयक्तिकता से सामाजिक की ओर आते हैं। वे जीवन और समाज की मौलिक समस्याओं के गहन चिन्तन एवं चित्रण में दत्तचित हो जाते हैं।

प्रश्नः मुक्तिबोध की बिम्ब-योजना पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए

उत्तरः मनुष्य के मानस पटल पर परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अतीत की तथा कभी अस्तित्त्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द संभवतः इसी मानस प्रक्रिया का पर्याय है। बिम्ब-योजना की द ष्टि से मुक्तिबोध का काव्य अत्यन्त सम द्ध है उनकी समस्त कविता बिम्बम्य है। उनका कविता माध्यम ही बिम्ब है। प्रत्येक प्रकार का बिम्ब यहाँ मिलता है। इनकी कविताओं को बिम्बों का नगर कहा जाता है। बिम्ब के संदर्भ में मुक्तिबोध की यह विशेषता है कि वे शब्द बिम्बों का लयात्मक उपयोग करते हुए उसे जीवन द ष्टि का संवाहक बनाकर समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविता में शोषित, पीड़ित और जनसामान्य का चित्रण है। उनकी अपने समय तथा समाज की गहरी समझ कविता में दिखाई पड़ती है। अपरिचय तथ अकेलेपन के युग में जहाँ पूरा कस्बा अब भी एक बड़े परिवार के रूप में जीता है, का आत्मीय बिम्ब देखिए—

धुंधलके में खोये इस
रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं
लठ-धारी बूढ़े-से पटेल बाबा
ऊँचे से किसान-दादा
वे दाढ़ी-धारी देहाती मुसलमान चाचा और
बोझा उठाये हुए
माएँ, बहनें, बेटियाँ
सबको सलाम करने की इच्छा होती है
सबको राम-राम करने को चाहता है जी
आँसुओं से तर होकर प्यार के।''

अतः मुक्तिबोध की कविता बिम्बमय है। इसी तरह उनकी अन्य कविताओं में भी बिम्ब के दोनों प्रकार स्म ति जन्म और स्वरचित खोजे जा सकते हैं। शब्द, गंध, रस स्पर्श आदि बिम्ब इनकी कविताओं में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

प्रश्नः क्या मुक्तिबोध की कविता में द श्य एवं शब्द बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः चक्षु रूपी इन्द्रिय ही संवेदना को उद्वेलित करते हैं। इसे ही द श्य या चक्षु बिम्ब कहा जाता है। मुक्तिबोध की ब्रह्मराक्षस कविता का एक उदाहरण देखिए—

"किन्तु गहरी बावड़ी
की भीतरी दीवार पर
तिरछी गिरी-रवि-रश्मि
के उड़ते हुए परमाणु जब
तल तक पहुँचते हैं कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुक कर नमस्ते कर दिया है।

शब्दों के माध्यम से जब बिम्ब उपस्थित होता है तब उसे शब्द बिम्ब कहा जाता है। एक उदाहरण द ष्टव्य है—

"पिछवाड़े, ढेरों में खड़-खड़
कोई गड़बड़
सर-सर करता हुआ छत चढ़ा, चाँद दीवार बड़ा
वह नाग,
एक भय-लजनक श्याम-संवेदन-कोब्रा।

यहाँ 'सर-सर' शब्द कोब्रा की गति का द्योतक है और खड़-खड़ साँप के रेंगने से उद्‌भुत है।

प्रश्नः मुक्तिबोध के काव्य में सांस्कृतिक प्रतीक भी प्रयुक्त हुए हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः बिम्ब एवं प्रतीक का प्रयोग ही मुक्तिबोध की कविताओं की महत्ती विशेषता है। उनके प्रतीक परिचित होते हुए भी नवीन प्रतीत होते हैं मुक्तिबोध को फैंटेसी मानवीकरण और प्रतीक प्रिय हैं। ये फैंटेसी प्रतीकों का माध्यम ग्रहण करते हैं। यथार्थ में उन्होंने चिर-परिचित प्रतीकों को नया आयाम दिया है। प्रगतिशील होने के कारण मुक्तिबोध प्राचीन संस्कृति की शोषणकारी प्रव त्ति के विरुद्ध हैं किन्तु परम्परित शोषण को स्पष्ट करने के लिए कवि ने प्राचीन सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'डूबता चाँद कब डूबेगा' से एक उदाहरण देखिए:

"आँखें फाड़े मैंने देखा मन के मन में
जाने कितने कारावासी वसुदेव
स्वयं अपने धर में, शिशु-आत्मजले,
बरसाती रातों में निकले,
धंस रहे अंधेरे जंगल में
विक्षुब्ध पूर में यमुना के
अति-दूर, अरे, जल नन्द-ग्राम की ओर चले।
जाने कितने डर स्थानांतरित कर रहे वे
जीवन के आत्मज सत्यों को,
किस महाकंस से भय खाकर गहरा-गहरा।"

यहाँ प्रयुक्त महाकंस शोषक का प्रतीक है। वसुदेव शोषित एवं शिशु आत्मज सत्य का प्रतीक है। कवि उस पौराणिक सत्य को उजागर कर रहा है जिस सत्य का निष्कासन नया नहीं अपितु पौराणिक काल से चला आ रहा है।

प्रश्नः क्या मुक्तिबोध ने पौराणिक प्रतीकों को भी प्रयुक्त किया है?

उत्तरः हाँ, मुक्तिबोध ने प्राचीन प्रतीकों का चयन कर उनका सफल प्रयोग किया है। पौराणिक घटनाओं को आधुनिक समाज से जोड़ने का प्रयास किया है और इस प्रयोग में वे सफल भी हुए हैं—

'मैं एकलव्य जिसने निरखा
ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही

भीतर का महा मनोमंथनशाली मनोज्ञ
प्राणाकर्षक प्रकाश देखा।'

महाभारत कालीन समाज में एकलव्य जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के लिए शिक्षा के दरवाजे बंद कर दिए गए थे, वैसे ही आज भी समाज में 'जीनियस' है। जिसके विकास का रास्ता बन्द है और वे रोजगार, ज्ञान एवं शिक्षा की तलाश में भटक रहे हैं।

प्रश्नः मुक्तिबोध की ऐतिहासिक प्रतीक योजना पर द ष्टि डालिए।

उत्तरः मुक्तिबोध के काव्य में ऐतिहासिक प्रतीक कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। हाँ इतना जरूर है कि इनके ऐतिहासिक प्रतीकों से सामान्य मानव को महत्ता मिली है। निम्न उदाहरण में देखिए—जिसमें कवि दिखाना चाहता है कि आज भी मालिकों के लिए अपने पुत्रों का बलिदान न जाने कितनी पन्ना दाइयों ने इस समाज के कल्याण हेतु किया है। बलिदान के रूप बदल गए हैं, किन्तु परम्परा ज्यों की त्यों है। आज भी मजदूर मील मालिक के बेटे की अपने रक्त से उसकी दुनिया आबाद ही करता है—

'अम्बर के चलने से उतार रवि-राजपुत्र
ढांककर सांवले कपड़ों में
रख दिया-टोकरी में उसको
रजनी, रूपी पन्ना दाई
अपने से जन्मा पुत्र-चन्द्र फिर खुला गगन के
पलने में चुपचाप टोकरी सिर पर रख
रवि राज-पुत्र से खिसक गयी
पुर के बाहर पन्ना दाई।'

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता के केन्द्रिय संवेदन पर द ष्टि डालिए।

उत्तरः मुक्तिबोध का काव्य-व्यापार व्यक्ति और परिवेश के बीच संबंध स्थापित करता है। वहाँ मानव विरोधी हरकतों को समझता हुआ कवि सामाजिकता की सही भूमि पर अवस्थित है। उसमें भय, संदेह, उत्पीड़न तथा आशंकाओं के बीच जीते हुए समकालीन मनुष्य के विविध पक्षों का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। मुक्तिबोध की रचना का केन्द्रिय तत्त्व पीड़ित मानवता की पक्षधरता है। कवि ने स्थान-स्थान पर जन-सामान्य को हीनता, बौनेपन, गूंगेपन से मुक्त कराने के लिए अभिव्यक्ति के खतरे उठाए हैं—

''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक,
धँसना ही होगा
झील के हिम-शीत सुनील जल में।''

कवि की द ष्टि से समाज के प्रत्येक स्तर को सोचने, समझने, वर्ग चेतस होकर कर्मरत होने की प्रेरणा मिलती है।

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता के प्रथम खण्ड के घटनाक्रम पर द ष्टिपात कीजिए।

उत्तरः अंधेरे में कविता का आरम्भ ही जिंदगी के अंधेरे कमरों से होता है। अंधेरे कमरे में टहलते हुए किसी प्रकाशमय व्यक्तित्त्व के अस्तित्त्व का बोध होता है दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ दोहरा अर्थ है। अंधेरा सामाजिक विसंगति और विरूपता का तो है ही साथ ही कवि के अवचेतन मन का भी है और प्रकाशमय व्यक्तित्त्व सामाजिक मूल्य और रचनाधर्मिता का भी व्यक्तित्त्व है और कवि की चरम अभिव्यक्ति का भी है। फिर मोड़ लक्षित होता है। अंधेरे टहलते व्यक्तित्त्व का

बोध गहरा होता है। कवि अनुभव करता है कि व्यक्तित्त्व के दबाव से पुराने अंधेरे कमरे का अस्तित्त्व दहक उठा है। फिर मोड़ आता है। प्रकाश पुरुष दिखाई पड़ता है। पर पहचाना नहीं जाता—

भव्य ललाट है
द ढ़ हनु
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति।
कौन वह दिखाई जो देता, पर
नहीं जाना जाता है।
कौन मनु?

फिर मोड़ आता है कमरे का अंधेरा पूरे विश्व पर फैला दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि कवि के जीवन में भी अंधेरा है और बाहरी परिवेश में भी। फिर मोड़ आता है पर कवि को वह पुरुष समझ में नहीं आता लेकिन धीरे-धीरे अनुभव होता है कि वह कवि की अपनी ही अस्मिता का रूप है।

प्रश्नः ‘अंधेरे में’ कविता के दूसरे खण्ड पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः कमरे का चित्र उभरता है। सूनेपन और स्वर का संघर्ष चलता है। आधी रात कवि को कोई मिलने आया है। दरवाजे की साँकल बजती है। यहाँ कवि जीवन के अंधकार को तोड़कर मूल्यों का प्रकाश उभारना चाहता है। वह सौन्दर्य एवं मूल्य चेतना को पसन्द तो करता है पर इसे पाने के लिए खतरे उठाने से डरता है। यहाँ समकालीन सुविधाभोगी जीवन जीने वाले कवियों की असमर्थता को व्यक्त किया है। प्रकाश पुरुष या मूल्यबोध अंधेरे में सो रहे सांसारिक सत्यों को पहचान लेता है। झूठ सच की समीक्षा भी करता है। इसके उपरान्त कवि लड़खड़ाता हुआ खड़ा होता है। दरवाजा खोलने के लिए ताकि प्रकाश आ सके। यह आत्म जागरण है। कवि अपने से बाहर निकलता है और यह आत्म जागरण का संबंध सामाजिक है।

प्रश्नः ‘अंधेरे में’ कविता के तीसरे खण्ड के घटनाक्रम पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः इस खण्ड में अंधेरे और प्रकाश की तनावपूर्ण यात्रा अधिक गहरी और संदर्भ बहुला है। बाहर और भीतर के अंधेरे संदेह और भय की अनुभूति इस परिवेश को तोड़कर उगता हुआ मूल्य-बोध है। यहाँ सब कुछ स्वप्न में चल रहा है लेकिन यह खुली आँखों से देखना यथार्थ है। यहाँ फैंटेसी में कई महापुरुषों की अवतारणा भी की है अंधेरे का जुलूस, जुलूस की भयावह गतिविधियाँ, अनेक वस्तुओं के, स्वरों के, रंगों के प्रभावशाली बिम्ब, सार्थक विशेषणों और अप्रस्तुत विधानों द्वारा अंधेरे की संवेदना की अभिव्यक्ति बहुत ही प्रभावशाली है। यह जुलूस बहुत डरावना है, पूरा शहर सोया हुआ है। जुलूस शहर के अवचेतन से उपजा किन्तु उसी का विसंगतिग्रस्त रूप है। इस जुलूस में शामिल प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं—मंत्री, उद्योगपति, आलोचक, विचारक, कवि, कर्नल, बिग्रेडियर, सेनापति, सेनाध्यक्ष और कुख्यात डकैत डोमाजी उस्ताद। सभी असली रूप में एक ही कतार में हैं। जुलूस पर कवि की द ष्टि पड़ते ही शोर उठता है—

मारो गोली, दागो साले को एकदम
दुनिया की नजरों से हटकर
छिपे तरीके से हम जा रहे थे कि
आधी रात-अंधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खत्म करो एकदम

अतः यहाँ जुलूस विवेकशील द ष्टि का विरोधी है। विवेकशील द ष्टि का दमन करना चाहता है।

प्रश्नः ‘अंधेरे में’ कविता के चौथे खण्ड के घटनाक्रम पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः सुबह होने को है। चारों ओर बिखराव है। सेना चुपचाप सड़कें घेर लेती हैं। जन क्रान्ति का दमन करने के लिए मार्शल लॉ लगा दिया जाता है। कवि दम छोड़ भागता है। कवि को एक बरगद दिखाई पड़ता है जिसके नीचे एक पागल

रहता है। यह पागल क्रान्ति चेता कवि ही है। यह जन क्रान्ति के गीत गाता है। कवि के बाहर और भीतर समानान्तर संघर्ष चलता है—

चक्र से चक्र लगा हुआ है.....।
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में
चलता है द्वन्द्व कि
फिक्र से फिक्र लगी हुई है।

यहाँ जनसंघर्ष भी है, उसका दमन भी है, कवि का पलायन भी है, पागल का अतित भी है, जाग त वर्तमान भी है और यह आत्मबोध भी है कि उसकी यह निष्क्रियता ही इस सामाजिक विसंगति की उत्तरदायी भी है। बरगद का पेड़ गाँव की सामूहिक जिंदगी का प्रतीक मालूम पड़ता है। इसके नीचे गरीब अपनी थकान दूर करते हैं तो कवि, कलाकर संघर्ष चेतना प्राप्त करते हैं।

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता में पाँचवें खण्ड के घटनाक्रम पर पचास शब्द लिखिए।

उत्तरः बंदूकें धाँय-धाँय छूटने लगती हैं और मकानों के ऊपर गेरुआ प्रकाश फैलने लगता है। कवि गुफा में छिपता है। यह गुफा कवि का अपना ही अवचेतन रूप है। फिर सीन बदलता है। सुनसान चौराहा; सिपाही ऊँघ रहे हैं फिर भी चौकन्ने हैं। कवि भय से भाग रहा है—वो भी ठंडे लम्बे-चौड़े कोलतारी रास्ते पर। यहाँ कवि भय को संत्रास रूप में लाता है। प्रकाश-पुरुष नहीं चाहता कि जिस देश के लिए इतना कुछ किया वही देश भय और संगीनों का देश बन जाए। मूल्य बोध से कवि की यह पीड़ा पैदा हुई है। मूल्यबोध के तीव्र होने पर कवि मन-ही-मन कोई निर्णय लेता ही है कि इतने में बंदूक का धड़ाम सुनाई देता है। इससे चारों ओर रोने की, चीखने की थरथराहट व्याप जाती है। शायद यह बंदूक गोडसे की है या फिर यह बंदूक क्रूर व्यवस्था की है जो इन्सानों का खून करती है। इसी परिवेश में बोरा ओढ़े गाँधी दिखाई पड़ते हैं। गाँधी जी के हाथों में जन-भविष्य के रूप में एक बच्चा है जिसे वे नई पीढ़ी के हाथों में सोंप देते हैं—

मेरे पास चुपचाप सोया हुआ यह था
संभालना इसको, सुरक्षित रखना।

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता में छठे खण्ड के घटनाक्रम पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः गाँधी जिस बच्चे को सौंपता है वह भविष्य है। एकाएक बच्चा गायब हो जाता है। उसके स्थान पर रह जाते हैं सूरजमुखी फूल के गुच्छे। फिर सूरजमुखी के गुच्छे गायब, सुखद अनुभव गायब। कंधे पर एक भारी बंदूक है। यह बंदूक सत्ता की बंदूक का प्रतीक है। इसी से सत्ता जनता का खून करती है। जनता की नियति उसे कंधे पर ढोने में ही है। यहाँ लगता है कि बंदूक जनता की शक्ति का प्रतीक है लेकिन आगे के सन्दर्भ से लगता है कि भीतरी विडम्बना को व्यक्त करती है। यहाँ अभावग्रस्त परिवेश के बीच एक कलाकार मरा नहीं मारा गया है, मानो वह स्वयं कवि ही है। उसकी विडम्बना यही थी कि वह अपने ज्ञान, स्वप्न, अनुभव दे नहीं सकता था। कवि के अनुसार वह मरा हुआ कलाकार सभी का प्यारा एवं मुक्ति का कामी था उसके साथ पूरा युग मर गया। स्वयं कवि की आत्मा कहती है—

सवाल है—मैं क्या करता था अब तक
भागता फिरता था, सब ओर...

परिस्थितियों की टकराहट होती है। कवि नये सहचरों की तलाश में निकलता है लेकिन आततायी उसे पकड़कर सताते हैं। अंधेरे कमरे में यातना देते हैं। ये उसको देह को तोड़कर तलाशी लेते हैं उन्हें देह के अन्दर खतरनाक चीज मिलती है विचार। वह विचारों के पर्चे उनके खिलाफ जनता में बाँटता है और इन विचारों का सेक्रेटरी है आस्था और सरगना है आत्मा। यहाँ कवि की आस्था और आत्मा को निकालकर उसे शक्ति-शून्य करने का प्रयास किया जाता है।

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता के सातवें खण्ड के घटनाक्रम का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तरः आततायी कवि को रिहा तो कर देते हैं पर उनकी छाया निरन्तर पीछा ही करती रहती है। कवि की प्रगतिशील द ष्टि उभरती है। कवि साथी खोजने की सोचता है। साथी है सँवलाये कमल, काले गुलाब, स्याह सिवंती, श्याम चमेली

आदि। ये सभी फूल कवि के लिए संदेश भेजते हैं। ये दूर क्षितिज समाजवादी देश हो सकते हैं या फिर कवि की कल्पना में उभरता भविष्य भी हो सकता है। अभिव्यक्ति रूढ़ हो गई है। सही अभिव्यक्ति नहीं मिल पाती इसीलिए अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे। मठ और गढ़ तोड़ने ही पड़ेंगे। अभिव्यक्ति का अर्थ है भीतर के अनुभवों की सच्ची अभिव्यक्ति करना है। कवि के भीतर मुक्ति की पीड़ा भी है, भय भी है। कवि जन-जीवन से जुड़ना चाहता हे किन्तु विवेक जाग त होने पर व्यक्तित्त्व के अनुभवों की अभिव्यक्ति पूरी नहीं दे पाता।

कवि अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का फैसला करके भागता है और वहाँ पहुँच जाता है जहाँ सत्य और सत्ता के संघर्ष की बहस चल रही है। यहाँ एक सुरंग में भीतरी आग लिए एक जनसमूह चल रहा है। अतः कवि के विवेक को लेकर लोग आगे बढ़ रहे हैं।

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता के आठवें खण्ड के आधार पर कवि के विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तरः इस खण्ड में सकल क्रियाएँ एवं विचार घूमते एवं टकराते हैं। कहीं आग लगी है। कहीं गोली चल रही है। भयानक धुआँ उठ रहा है। यहाँ एक ओर व्यवस्था के चरम अत्याचार और उसकी भयावहता का गतिशील चित्र है। दूसरी ओर मौन बैठे कलाकारों और बुद्धिजीवियों की स्वार्थपरता का चित्रण है, तीसरी ओर जनसंघर्ष का अंकन है। वह जन-संघर्ष को आत्मीय लगाव मानता है। महान ग्रंथों के लेखक कवि की इस नयी मानसिकता को देख रहे हैं। फिर वही प्रकाश-पुरुष दिखाई पड़ जाता है। वास्तव में वह पुरुष कवि की अपनी अनखोजी सम द्धि का परम उत्कर्ष है; कवि उसका शिष्य है, उससे वह आलोक प्राप्त करता है। यह प्रकाश पुरुष कवि की परम अभिव्यक्ति ही है जो खोह में छिपने की बजाए जगत की गलियों में घूमती है—

''अत्यन्त उद्विग्न ज्ञान तनाव वह
सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
वही फटे हाल रूप
परम अभिव्यक्ति
लगातर घूमती है जग में
पता नहीं जाने कहाँ, जाने कहाँ
वह है।''

अतः कवि यहाँ अपनी अभिव्यक्ति के लिए हर चेहरे को देखता है। हर चेहरे का साक्षात्कार करके ही कवि अपना जनवादी व्यक्तित्त्व बना सकता है और परम अभिव्यक्ति का सीधा अर्थ इसी व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति से है।

प्रश्नः मुक्तिबोध शब्दों के शिल्पी हैं। इस तर्क की पुष्टि कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध शब्दों के शिल्पी हैं। शब्दों के पारखी, जौहरी हैं। वे एक कुशल शिल्पी के समान शब्दों की आत्मा परख लेते हैं, उन्हें काँट-छाँट कर प्रयोग करते हैं और आवश्यकतानुसार उन्हें तराश लेते हैं। इस प्रक्रिया में वे व्याकरण का शासन भी तोड़ देते हैं। और कहीं-कहीं अपने ढंग से व्याकरण का निर्माण भी करते हैं। उनके शब्दों में ध्वन्यतात्मकता के साथ-साथ अर्थ गाम्भीर्य भी है। उनकी भाषा की विशेषता ही शब्दों का सही निरूपण माना जाता है। उनकी कविताओं में शब्दों के प्रयोग बहुस्तरीय हैं—संस्कृत निष्ठ सामाजिक पदावली, अरबी-फारसी उर्दू के सटीक प्रयोग, अंग्रेजी, मराठी के शब्द, तद्भव, देशज शब्दों का सार्थक प्रस्तुतीकरण और नए शब्दों का निर्माण, मुक्तिबोध की काव्य साधना 'तार सप्तक' से आरम्भ होती है 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में पूर्ण होती है। उनकी काव्य-भाषा निरन्तर तद्भव शब्दावली के प्रयोग की ओर बढ़ती चलती है। उन्होंने तत्सम शब्दावली का प्रयोग अभिजात्य, शिष्ट वर्ग की भाव-धारा को व्यक्त करने के लिए किया है तो लोक शब्दावली का प्रयोग ग्रामीण अंचल से जुड़े प्रसंग में ही किया है। ऐसे अवसरों पर मुक्तिबोध के तद्भव शब्दों का ही प्रयोग किया है—

दादा का सोटा भी करता है दाँव-पेंच
नाचता है हवा में
गगन में नाच रही कक्का की लाठी।

कन्टोप, कन्दील, लत्तर, सिपाह, अकुलायी, हुलसी, संवलायी आदि शब्द ग्रामीण अंचल से लिए गए हैं। धूल-धक्कड़, गिरस्तिान, दल्तिद्दर, हेठा, फफोला आदि शब्द भी इसी तरह के हैं। नगरीय संवेदन के चित्रण में उनके शब्द प्रयोग कथ्य के अनुरूप ही हैं—

नंगी-सी नारियों के। उभरे हुए अंगों के
विभिन्न पोजों में। लेटी थी चाँदनी।

इसी प्रकार कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए ही विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है—चुम्बकीय शक्ति, गुरुत्व आकर्षण, इलेक्ट्रान, मैगनेट आदि ऐसे ही शब्द हैं। रहस्यवादी चित्रण में इड़ा, पिंगला, सुषम्मना, कुण्डलिनी आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

प्रश्नः मुक्तिबोध की काव्य-भाषा पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध की काव्य भाषा विचारों की प्रखरता को सकल अभिव्यक्ति दे सकी है। इनकी काव्य भाषा परम्परा के मोह को त्याग कर मौलिकता के साथ अभिव्यक्त हुई है। चाहे मानसिक तनाव और अंतःसंघर्ष हो या युगीन पाशविकता, बर्बरता और व्यवस्था की क्रूरता, कवि की काव्य भाषा आतंक, गति, विस्फोट ऊर्जा से सम्प क्त होकर एक-एक पर्त को उधेड़ती चलती है। उनका भयावह तिलिस्मी संसार स जन की भाषा की सामर्थ्य का परिचय देता है। देखिए रहस्य, रोमांच, जिज्ञासा, आतंक आदि का एक साथ वातावरण—

तिलिस्मी खोह का शिला-द्वार। खुलता है धड़ से
घुसती है लाल-लाल मसाल अजीब-सी
अंतराल-विवर के तम में लाल-लाल कुहरा।
कुहरे में, सामने रक्तालोक-स्नात पुरुष एक
रहस्य साक्षात् ! !

उनकी काव्य-भाषा में कथ्य के अनुरूप संस्कृतनिष्ठ, तद्भव, देशज, विदेशी, ग्रामीण, आँचलिक आदि सभी प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

उनकी काव्य-भाषा चेतन-अचेतन; स्थूल; सूक्षम, रंग-स्पंदन और विविध मानसिकताओं के गहरे चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है। उनके व्यंग्य शाब्दिक मितव्ययता के साथ चुभन में बहुत तीखे हैं। उनकी भाषा स्वप्न चित्रों की लड़ी, सस्पेंस की प ष्ठभूमि, दहशत और आतंक का वातावरण, आशा और आस्था और करुणा की दुनिया को एक साथ दिखाने में समर्थ हैं उनकी काव्य-भाषा पर विद्वानों ने एक ही आक्षेप लगाया है कि वह दुरुह और उबड़-खाबड़ है। उन्होंने भाषा की नक्काशी और मेकअप में समय न गँवाकर यथार्थ को काफी नजदीक लाने की कोशिश की है। वे समय और युग की कड़वाहट को उत्तेजिना के साथ निर्भीकतापूर्वक कह सके हैं और भाषा शिल्प की असाधारण ताकत का नमूना पेश कर सके हैं। कवि के समस्त जीवानुभावों को, खौफनाक काव्य संसार को और भीतरी-बाहरी सर्वेक्षण को उनकी काव्य-भाषा सम्प्रेषित करने में सफल हो सकी है।

प्रश्नः कविवर मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त 'अंधेरा' शब्द की प्रतीकात्मकता पर विचार कीजिए।

उत्तरः अंधकार के मूल में अंधशब्द हैं, जिसका अर्थ है द ष्टिहीन, देखने में असमर्थ। मुक्तिबोध ने अंधेरे के लिए श्याम, संवलाई, शब्दों का प्रयोग किया है जो काले रंग के वाचक हैं, परन्तु यहाँ श्यामला या सांवलापन श्रम और अत्याचार दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अंधकार का लाक्षणिक अर्थ मन की वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अच्छे-बुरे के बीच निर्णय नहीं कर पाता। यानि विवेकहीनता। न देख सकने के कारण अंधकार निष्क्रियता और आलस्य को जन्म देता है। अंधकार का तीसरा अर्थ है कि वह अपने तक सीमित है, दूसरे को नहीं देखता। यही उसका स्वार्थ है। स्वार्थ में व्यक्ति भी अपने अर्थ तक सीमित रहता है। कवि द्वार प्रयुक्त अंधेरे शब्द के कुछ प्रयुक्त अर्थ देखिए—

अंधियारे मैदानों के इन सुनसानों में का अर्थ है = अन्यायपूर्ण क्षेत्रों के इन सन्नाटों में। बीहड़ के अन्धकार में = भयानकता के अपने आतंक में। अंधकार की नगरी = अन्याय की नगरी। अंधेरे छेदों में = अस्पष्ट साधनों में। गुहा तिमिर में = गुहा के अंधकार में। काव्यात्मक फणिधर—अंधेरे में निकलो = वहाँ निकलो जहाँ अन्याय और शोषण हो रहा है। जब प्रश्न बौखला उठे-घर-घर के सजन अंधेरे में = घर -घर की करुण निराशा में सूर्य के

अंधेरे श्याम धब्बे = शासन के अन्याय के धब्बे। अंधेरे में = मन की अवचेतन स्थिति में। अंधियारा पीपल पहरा देता है = पीपल अंधेरे में पहरा दे रहा है। अतः कवि ने अंधेरे शब्द को ही अलग-अलग अर्थ रूपों में प्रयुक्त किया है।

प्रश्नः मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त रहस्यात्मक संकेत बताइए।

उत्तरः 'मेरे सहचरमित्र' कविता में नीले-नीले आसमान की सरहद से चिड़ियाँ आती हैं, जिसे कवि परिचित बताता है, जो कभी घर के आंगन में ही उड़ती थी वह घर की आत्मा थी, पर अब वह दूर क्षितिज पर काली बिंदिया बन बैठ गई है, जो अब पक्षीराज बनकर कवि से कहती है तुम अपने घर आंगन की शैलांचल गिरिराज की ऊँचाई तक तो ले जाओ। इसमें रहस्य प्रतीकात्मकता के कारण हैं कवि का कहना है कि आत्मा से परमात्मा की कल्पना, इसलिए की गई थी, कि व्यक्ति घर ग हस्थी की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर, व्यापक मानवता की कल्पना कर सके, परन्तु दार्शनिकों ने उस कल्पना को आसमान में काली चिड़िया के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। 'अंधेरे में' कविता में 'शिलागुहाद्वार' से रक्तालोक पुरुष का निकलना, रात के पक्षी का चीखना, सितारों के बीच टॉल्सतॉय का दिखना, गाँधी की प्रतिमा द्वारा बिजली का झटका दिया जाना आदि रहस्यात्मक संकेत हैं। कव को पहाड़ी के उस पार तालाब में जल के तम श्याम शीशे में श्वेत आकृति दिखाई देती है जो उससे अपनी पहचान बताती हैः (यह, सम्भवतः अहं के उस पार की करुण अनुभूतियों का जल है जिसमें उसे सफेद आकृति दिखाई देती है) तिलिस्मी खोह (मन की गुहा) का शिला द्वार (अहं) खुलता है, उसमें लाल-लाल मशाल (लाल क्रान्ति की विचारधारा) घुसती है, उसमें रक्तालोक स्नात पुरुष, एक साक्षात रहस्य की तरह दिखाई देता है। उसे देखकर कवि के मन में न केवल कम्पन होता है, प्रत्युत उसके विराट् व्यक्तित्त्व के में वह अपने व्यक्तित्त्व के पूर्ण विकास की अवस्थाओं, सम्पूर्ण संभावनाओं और निहित प्रभावों को चरम रूप में साकार देता है।

प्रश्नः मुक्तिबोध की श ंगार-भावना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध श्रमजीवी जनता के संघर्ष आर्थिक न्याय और मानवता के कवि हैं। श ंगार के चित्र उनकी दो कविताओं को छोड़ अन्य किसी कविता में नहीं मिलते। परन्तु जिन दो कविताओं में श ंगार के चित्र मिलते हैं वे भी गौण हैं क्योंकि ये सामाजिक क्रान्ति की प ष्ठभूमि और आवश्यकता को स्पष्ट करने के लिए है। आर्थिक विषमता न केवल मनुष्य के रहन-सहन के स्तर को प्रभावित करती है, प्रत्युत नारी सौन्दर्य को दो रूपों में विभक्त कर देती है, चांदनी के रूप हैं। चांदनी (सरकार) का एक रूप वह शीशों की सुविशाल झांइयों के रमणीय द श्यों में। बसी थी चांदनी। खूबसूरत अमरीकी मैगजीन प ष्ठों सी। खुली थी। नंगी-सी नारियों के। विभिन्न पोजों में। लेटी थी चांदनी। लेकिन यह चांदनी गरीब बस्तियों में यह द श्य बनाती है—

> गन्दगी के काले से नाले के झाग पर। बदमस्त कल्पना-सी फैली थी रात भर। सेक्स के कष्टों के कवियों के काम-सी।

प्रश्नः मुक्तिबोध की कविताओं में प्रयुक्त बरगद की प्रतीकात्मकता पर विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तरः कवि का सर्वाधिक प्रिय प्रतीक बरगद ही है। अक्षय वट या वट व क्ष भारत का प्राचीन व क्ष है, जो सर्वत्र पाया जाता है। यह बिना किसी भेदभाव के सबको अपनी छाया देता है। इसी कारण वह कवि के ऊँचे आदर्शों का प्रतीक है—

> बाहर पीली कन्हेर। बरगद ऊँचा। जमीन गीली। मन जिन्हें देख कल्पना करेगा क्या?

यहाँ कवि कहना चाहता हे कि बरगद ऊँचा अवश्य है, परन्तु उसकी जमीन गीली है। जीवन के संघर्षों में कवि ''प्रेम'' को ही बरगद छांह मानता है और कहता है—''गंभीर व क्ष तले टटोलो मन'' ''चाँद का मुँह टेढ़ा हे'' में बरगद की घनघोर शाखाओं के गांठ वाले गोल मेहराव का उल्लेख है जिसमें भरे हुए जमाने की संगठित छायाओं (विचारधाओं) की सड़ांध भरी हुई है। वह बरगद को मानवी अनुभवों का जीवित ताबूत मानता है। यह बरगद गरीबों के लिए बस्ती का काम करता है, इसके अंधेरे तल में गाएँ रंभा रही हैं, पत्थर ईंट के चूल्हे हैं, काले गन्दे बच्चे खेल रहे हैं। कवि कहता है—

गरीबों का वही घर वही छत। उसके ही तल खोह-अंधेरे में सो रहे। ग हीन कई प्राण। अंधेरे में डूब गए।

अतः बरगद/वट व क्ष/अक्षयवट कवि के व्यक्तित्त्व आदर्श और विचारों का प्रतीक है। यह बरगद पुरानी संस्कृति और अंधविश्वासों का प्रतीक है। जिसका ऊपरी हिस्सा सड़गल चुका है उसमें भूतों का निवास है, नीचे के हिस्से में जीवन शक्ति है, परन्तु वह कचरे में दबी हुई है।

प्रश्नः मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त कन्हेर की प्रतीकात्मकता पर विचार कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध के कन्हेर प्रयोग कई जगह किया है। यह मैदानी और पठारी इलाकों में पाई जाती है, उसमें लाल पीले और लाल फूल लगते हैं। ब्रह्मराक्षस कविता का उदाहरण देखिए—

लाल फूलों का लहकता झौंर। मेरी वह कन्हेर। वह बुलाती एक खतरे की तरफ। जिस ओर अंधियारा खुला मुँह बावड़ी का। उसका लाल फूलों का लहकता और जनवादी विचारधारा का प्रतीक है। काव्यातमन् फणिधर में भी कन्हेर अंधेरे कुएँ की चौड़ी मुंडेर पर उपस्थित है—

यह है अंधेरा कुआँ। करौंदी की झाड़ी में। छिपी हुई मुंडेर। अघूट्टी। वीरान महके सूखी-सूखी। ठंडी कन्हेर। वह लाल-लाल कुछ फूल।

ब्रह्मराक्षस की कन्हेर की तुलना में काव्यात्मन् फणधर की कन्हेर ठंडी और सुखी है। झोंर की जगह लाल-लाल कुछ फूल बचे हैं।

प्रश्नः 'अंधेरे में' कविता में सिरफिरा पागल कौन है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः 'अंधेरे में' कविता में सिरफिरा पागल कोई और नहीं है बल्कि स्वयं कवि का अन्तर्चेतस है। वह निरा पागल होते हुए भी सैनिक प्रशासन का पता रखता है उसके (कवि के) ''आत्मोद् बोधमय'' पद की सबसे चुभती पंक्तियाँ हैं—

उदरम्भरि बन अनात्म बन गए।
भूतों की शादी में कनात से तन गए।
किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर।

अतः पागल का प्रतीक कवि के मूल अभिप्रेत को व्यक्त करता है। इसी कारण इसे कवि का अन्र्चेतस माना गया है।

प्रश्नः मुक्तिबोध की कविताओं के आधार पर 'मानव शिशु' की प्रतीकात्मकता पर विचार कीजिए।

उत्तरः मुक्तिबोध की कविताओं में मानव शिशुओं के सन्दर्भ हैं, जो साभिप्राय है। ''डूबता चाँद कब डूबेगा'' में कवि कहता है—''म त बालक ये कितने जनमें। बीमार समाजों के घर में।'' यहाँ कवि कहना चाहता है कि वर्तमान समाज का कोई भविष्य नहीं है। फिर इस कविता में एक नारी चिथड़े में लिपटा शिशु झरने के तट पर छोड़ जाती है। यह सद्योजात बालक जीवन के आत्मज सत्य का प्रतीक है।

इस कविता में तीसरे शिशु का उल्लेख म दुल कर्कश स्वर में रोते हुए शिशु के रूप में हुआ है। कवि का उसके प्रति प्रेम है, परन्तु प्रतिपालन दायित्व भार से वह डरा हुआ है। वह शिशु मानव परम्परा है। 'काव्यात्मन् फणिधर कविता में दो मानव शिशुओं का उल्लेख है। बरगद के नीचे एवं शिशु पागल स्त्री के स्तन से चिपटा है, वह रो रहा है। वह किसी शोषित और व्यभिचारिणी स्त्री का बच्चा है। वह मर चुका है। कवि उसकी म त्यु को आधुनिक सभ्यता संकट का प्रतीक मानता है। दूसरा नवजात शिशु कुएँ के तले में पड़े कचरे में मिलता है, जिसे कोई वहाँ छोड़ गया है, वह रो रहा है वह आत्मोत्पन्न सत्य है, जिसे मौन विवशता या भय के कारण छोड़ दिया गया है? यह शिशु नवजात सत्य का प्रतीक है।

''अंधेरे में'' कविता में गाँधी, कवि के हाथ में एक सोते शिशु को थमाकर चले जाते हैं। कवि को आभास होता है कि इसे पहले भी देखा था। यह वही शिशु है (जिसे लकड़ी की टोकरी में देखा था, जिसे सिवन्ती के पास सुलाया था, गलियों में जिसकी छाया देखी थी, कुमार संभव में कालीदास ने जिसका वर्णन किया था कवि अनुभव के रक्तिम संकल्पों से उसे जिलाना चाहता है) अतः यह शिशु भविष्य की धरोहर रूप में उभरा है। अगर तुलना करे तो ये शिशु दो विचारधाराओ के प्रतीक रूप में उभरे हैं—एक ह्रासोनमुख व्यवस्था, दूसरी उदीयमान व्यवस्था का काल्पनिक आभास जिसे, नाम जीवियों के बच्चे ही मूर्त रूप दे सकते हैं।

प्रश्नः मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में शक्ति पुरुष, क्रान्ति पुरुष और द्युतिपुरुष का उल्लेख किया है। 'अंधेरे में' कविता के आधार पर बताइए।

उत्तरः कवि ने शक्ति पुरुष, क्रान्ति पुरुष और द्युतिपुरुष का उल्लेख तिलक, गाँधी, टॉल्सटॉय के प्रतीक रूपों में भी किया है और स्वयं की अन्तर्चेतना के रूप में भी । 'अंधेरे में' कविता में कवि अनेक मानसिक आवेगों की प्रक्रिया से गुजरता है, कल्पना के द्वारा द श्यों की योजना करता है, जिनमें से वह द्युतिपुरुष की आकृति की स ष्टि करता है। 'अंधेरे में' अंधेरे के कई अभिप्राय है लेकिन यह निश्चित तौर से कहा जा सकता है कि प्रकाश का उदय अंधेरे से ही होता है। इस कविता में कवि जिन्दगी के जिस अंधेरे कमरों की बात करता है। वह मन के ही कमरे हैं जिनमें से द्युतिपुरुष प्रकट होता है। यहाँ द्युतिपुरुष स्वयं कवि का अन्तर्चेतस ही है। इस कविता में गाँधी को भी द्युतिपुरुष के रूप में उभारा गया है। जो द्युति के रूप में एक शिशु को भविष्य की सुरक्षित निधि के रूप में कवि को सौंप कर चला जाता है। यहाँ गाँधी को भी द्युतिपुरुष कहा गया है। रही क्रान्ति पुरुष की बात। यह कवि का अपना क्रान्ति चेतस मन ही है, अपनी क्रान्तिकारी विचारधारा ही है।

प्रश्नः बुद्धिजीवियों के संदर्भ में कविवर मुक्तिबोध के विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तरः कविवर मुक्तिबोध ने स्वाधीनता और उसके बाद के क्रान्ति संघर्षो में बुद्धिजीवियों, कवियों, कलाकारों, नर्तकों और शिल्पकारों की कड़ी आलोचना की है। कवि उन्हें रक्तपायी वर्ग से नाभिनालबद्ध बताता है। कवि कहता है कि सैनिक, कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल, सेनापति, सेनाध्यक्ष, प्रकाण्ड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण, मन्त्री, विद्वान सभी के सभी पूँजीपतियों से, उद्योगपतियों से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं। दमन के, शोषण के, अन्याय के, अत्याचार के सहयोगी हैं। सभी जन-क्रान्ति को दबाने वाले जुलूस में शामिल हैं।

नागार्जुन

एम.ए. (प्रथम)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक-124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

भाग कः व्याख्या खण्ड

अध्याय 1	चंदू, मैंने सपना देखा	5
अध्याय 2	बाकी बच गया अंडा	7
अध्याय 3	अकाल और उसके बाद	8
अध्याय 4	शासन की बंदूक	10
अध्याय 5	बादल को घिरते देखा है	12
अध्याय 6	तीन दिन तीन रात	17
अध्याय 7	मास्टर!	21
अध्याय 8	आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी	26
अध्याय 9	तीनों बंदर बापू के	30
अध्याय 10	सत्य	35

भाग खः आलोचना खण्ड

अध्याय 1	नागार्जुनः व्यक्तित्व एवं कृतित्व	38
अध्याय 2	नागार्जुनः राजनीतिक द ष्टि	42
अध्याय 3	नागार्जुनः प्रकृति चित्रण	43
अध्याय 4	नागार्जुनः आर्थिक द ष्टि	47
अध्याय 5	नागार्जुनः काव्य वैशिष्ट्य	50
अध्याय 6	नागार्जुनः यथार्थ चेतना	55
अध्याय 7	नागार्जुन और कबीर में समानताएँ एवं विषमताएँ	59
अध्याय 8	नागार्जुनः व्यंग्य भावना	63
अध्याय 9	नागार्जुनः नारी भावना	67
अध्याय 10	नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना	71
अध्याय 11	नागार्जुन का काव्य सौष्ठव	76

भाग गः लघुत्तरी प्रश्न 81

भाग घः अतिलघुत्तरी प्रश्न 86

आधुनिक हिन्दी कविता

पूर्णांकः 100

समयः 3 घंटे

नागार्जुन

भाग 'क' - व्याख्या खण्ड

अध्याय 1 चंदू, मैंने सपना देखा

अध्याय 2 बाकी बच गया अंडा

अध्याय 3 अकाल और उसके बाद

अध्याय 4 शासन की बंदूक

अध्याय 5 बादल को घिरते देखा है

अध्याय 6 तीन दिन तीन रात

अध्याय 7 मास्टर!

अध्याय 8 आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी

अध्याय 9 तीनों बंदर बापू के

अध्याय 10 सत्य

भाग 'ख' - आलोचना खण्ड

अध्याय 1 नागार्जुनः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अध्याय 2 नागार्जुनः राजनीतिक द ष्टि

अध्याय 3 नागार्जुनः प्रकृति चित्रण

अध्याय 4 नागार्जुनः आर्थिक द ष्टि

अध्याय 5 नागार्जुनः काव्य वैशिष्ट्य

अध्याय 6 नागार्जुनः यथार्थ चेतना

अध्याय 7 नागार्जुन और कबीर में समानताएँ एवं विषमताएँ

अध्याय 8 नागार्जुनः व्यंग्य भावना

अध्याय 9 नागार्जुनः नारी भावना

अध्याय 10 नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना

अध्याय 11 नागार्जुन का काव्य सौष्ठव

भाग 'ग' - लघुत्तरी प्रश्न

भाग 'घ' - अतिलघुत्तरी प्रश्न

भाग 'क' - व्याख्या खण्ड

1. चंदू, मैंने सपना देखा

चंदू, मैंने सपना देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा
चंदू, मैंने सपना देखा, अमुआ से हूँ पटना लौटा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम्हें खोजते बद्री बाबू
चंदू, मैंने सपना देखा, खेल-कूद में हो बेकाबू

चंदू, मैंने सपना देखा, कल परसों ही छूट रहे हो
चंदू, मैंने सपना देखा, खूब पतंगे लूट रहे हो
चंदू, मैंने सपना देखा, लाए हो तुम नया कलैंडर
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम हो बाहर, मैं हूँ बाहर
चंदू, मैंने सपना देखा, अमुआ से पटना आए हो
चंदू, मैंने सपना देखा, मेरे लिए शहद लाए हो

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण हिन्दी के आधुनिक कबीर, प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित उपन्यासकार, स्वनाम धन्य एवं जनकवि बाबा 'नागार्जुन' द्वारा रचित सुप्रसिद्ध कविता 'चंदू, मैंने सपना देखा' से उद्‌घ्य त है। प्रस्तुत काव्यांश में कवि अपने स्वप्न के अनुभव को अभिव्यक्त करते हुए कहते है।

व्याख्या

कवि चंदू को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि भैया चंदू आज रात को मैंने एक स्वप्न देखा। उस स्वप्न में तुम मुझे इस प्रकार दिखाई पड़े जैसे कि तुम हिरण के बच्चे के समान उछल-कूद कर रहे हो। उस स्थान में मुझे ऐसे लगा कि जैसे मै अभी-अभी अमुआ नामक स्थान से पटना लौटा हूँ और वहाँ तुम्हें बद्री बाबू खोज रहे हैं। उसी समय मैंने देखा कि तुम खेल-खेल में अनियन्त्रित होकर अपने संयम को त्याग देते हो अर्थात् तुम संयमरहित होकर उच्छ खंला करने पर उतारन हो जाते हो। उस उच्छ खंता में तुमसे कोई गलत कार्य हो जाता है। परिणामस्वरूप तुम्हें जेल में बंद कर दिया जाता है परन्तु मैंने सपने मे देखा कि तुम कल-परसों ही जेल से छूटे हों और अब खुशी मनाते हुए खूब पतंगे उड़ा-उड़ाकर आनन्द लूट रहे हो। मुझे स्वपन मे ऐसा दिखाई दिया जैसे तुम भी जेल से बाहर हो और मैं भी। साथ ही मुझे दिखाई पड़ा कि तुम अब अमुआ से पटना आए हो और मेरे लिए शहद लाए हो। कवि स्वप्न के आधार पर सारे तथ्यों का रहस्योद्‌घाटन कर रहा है।

विशेष

1. आव तिशैली अत्यन्त रोचक बन पड़ी है।
2. प्रस्तुत कविता लोकगीत की धुन पर है।
3. भाव पक्ष और कला पक्ष की द ष्टि से यह काव्यांश सुंदर है।
4. भाषा सजीव, सरल, स्पष्ट एवं आम बोलचाल की शब्दावली से युक्त है।
5. उपमा, अनुप्रास अलंकारों की छटा दर्शनीय है।
7. संगीतात्मकता विद्यमान है।

चंदू, मैंने सपना देखा, फैल गया है सुयश तुम्हारा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम्हें जानता भारत सारा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम तो बहुत बड़े डॉक्टर हो
चंदू, मैंने सपना देखा, अपनी ड्यूटी में तत्पर हो

संदर्भ

प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के आधुनिक कवि बहुचर्चित उपन्यासकार व जनकवि, स्वनामधन्य 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'चंदू मैंने सपना देखा' से अवतरित है। कवि अपने स्थान के अनुभव को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है।

व्याख्या

कवि चंदू को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि तुमने अपने जीवन में जो सद्कार्य किए हैं उनसे तुमने बहुत अधिक वाहवाही लूटी है, तुम्हारा यश चारों ओर फैल गया। जिसके कारण सम्पूर्ण भारत में तुम प्रसिद्ध हो गए और सभी भारतवासी तुमसे अवगत हो गए। स्वप्न में मैंने देखा कि तुम बहुत बड़े डॉक्टर हो गए हो और अपनी सच्ची, लगन, मेहनत एवं निष्ठा से अपना कार्य कर रहे हो। तुम कर्त्तव्यनिष्ठ एवं दायित्व प्रेमी हो। हे भैया चंदू मैने स्वप्न में देखा कि तुम किसी परीक्षा में बैठे हो और कोई इम्तिहान दे रहे हो। साथ ही मुझे दिखाई दिया कि तुमने कोई षडयन्त्र किया है या अंग्रेजी सरकार का बहिष्कार करने वाले आंदोलन में भाग लिया है इसलिए पुलिस ने तुम पर षडयन्त्र का आरोप लगाया और तुम्हें पुलिस अपने वाहन में बैठाकर गिरफ्तार करके ले जा रही है। परन्तु कुछ समय उपरान्त तुम्हें पुलिस छोड़ देती है। फिर मुझे स्वप्न में दिखाई दिया कि तुम जेल से बाहर हो और मैं भी जेल से बाहर हूँ। तुम अपने जीवन को समयानुसार चलाने तथा अपनी कार्य पद्धति निश्चित करने हेतु एक कलैण्डर खरीद कर लाए हो।

विशेष

1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है।
2. आव ति शैली का प्रयोग है।
3. भावपक्ष एवं कलापक्ष उत्तम है।
4. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
5. संगीतात्मकता विद्यमान है।
6. कविता लोकगीत की धुन पर आधारित है।

2. बाकी बच गया अंडा

पाँच पूत भारतमाता के, दुश्मन था खूँखार
गोली खाकर एक मर गया, बाकी रह गए चार
चार पूत भारतमाता के, चारों चतुर-प्रवीन
देश-निकाला मिला एक को, बाकी रह गए तीन
तीन पूत भारतमाता के, लड़ने लग गए वो
अलग हो गया उधर एक, अब बाकी बच गए दो
दो बेटे भारतमाता के, छोड़ पुराने टेक
चिपक गया है एक गद्दी से, बाकी बच गया एक
एक पूत भारतमाता का, कंधे पर है झंडा
पुलिस पकड़ के जेल ले गई, बाकी बच गया अंडा

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण हिन्दी के आधुनिक कवि समाज सुधारक, प्रगतिशील कवि, श्रेष्ठ उपन्यासकार, जनसाधारण के सहायक, परम्पराविरोधी जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित कविता 'बाकी बच अंड़ा' से अवतरित है। प्रस्तुत अंश में कवि भारतमाता के पुत्रों की विशेषताएं बताते उन पर करारा व्यंग्य किया है।

व्याख्या

कवि कहता है भारत माता के एक नहीं अपितु पाँच पुत्र थे जोकि सभी अपने अपने गुणों में प्रवीण भूर थे। वे सभी दुश्मन का सामना करने के लिए जाते है तो सामने का दुश्मन बड़ा खूँखार एंव भयावना था। उन पाँचों भारतमाता के सपूतों में से एक को गोली लगी और वह वहीं पर मर गया। अब भारत माँ की रक्षा करने वाले केवल चार पुत्र ही शेष रह गए। चारों ही पुत्र अत्यन्त चतुर और अपने काम में अत्यन्त दक्ष व प्रवीण थे। उन चारों में से एक को सरकारी कार्यों का विरोध करने के कारण देश से निकाल दिया गया अर्थात् उसे देश निकाला दे दिया गया। यद्यपि उन देश-भक्तों में देश भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी परन्तु शासन और सत्ता असंगत हाथों में होने के कारण वे कुछ कर नहीं पा रहे थे। शेष रहे तीनों पुत्र स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष करने लगे। तीनों की विचारधाराओं में सामंजस्य नहीं हो पा रहा था, तीनों के स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग अलग-अलग थे। परन्तु विचारों की असहमति के कारण उनमें से एक दुश्मन से जा मिला और शेष अब केवल दो पुत्र रह गए। उनमें से एक भारतमाता का पुत्र अपनी पुरानी रीति-नीति व धर्म का परित्याग कर एक तो चापलूसी करके, स्वार्थी बनकर गद्दी से चिपक गया। अब केवल एक ही पुत्र रह गया । वास्तव में भारतमाता का सच्चा सपूत तो एक ही पुत्र था जो कि अब शेष रह गया था उसी के कंधे पर अब तिरंगा झण्डा लहरा रहा था। जब पुलिस ने ऐसा देखा तो सरकार विरोधी कार्य करने तथा अपनी देशभक्ति की भावना का प्रचार करते देख उसे पुलिस पकड़कर जेल में ले गई। अब भारतमाता का वीर एवं सच्च सपूत कोई शेष नहीं रहा। अब तो बस अण्डा ही अर्थात् शून्य ही रह गया। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि यदि वास्तव में भारतमाता की रक्षा नहीं की गई तो शेष केवल शून्यता, नीता के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रहेगा।

विशेष

1. भारतमाता पर मँडरा रहे खतरे का संकेत हैं।
2. भाषा सजीव, सरल, स्पष्ट एवं आम बोलचाल की है।
3. बाकी-बच, पुलिस-पकड़, पाँच-पूत, चारों-चतुर में अनुप्रास अलंकार हैं।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाव, भाषा एवं शैली की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।

3. अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण यायावर व फक्कड़ व्यक्तित्व के स्वामी, मार्क्सवादी विचारधारा से आप्लावित, स्वनामधन्य प्रगतिशील कवि 'नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'अकाल और उसके बाद' से अवतरित है। कवि ने बिहार में पड़े अकाल का चित्रण किया है। इस अकाल में लाखों लोग म त्यु की गाल में समा गए थे। अकाल पड़ने पर खेती पर आश्रित किसानों और मजदूरों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई है। जनकवि नागार्जुन ने दलीत, पीड़ित शोषित और उपेक्षितों के प्रति गहरी सहानुभूति एवं संवेदना अभिव्यक्त की है तथा जहाँ भी उन्हें अत्याचार दिखाई पड़े वही उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा सर्वहारा वर्ग के दुःख दर्द को वाणी प्रदान करके उनके घावों पर मरहम अकाल समाप्ति पर जीवन प्रक्रिया का सुन्दर सजीव वर्णन किया है।

व्याख्या

कवि कहता है कि जब बिहार में अकाल पड़ा उस समय सामान्य जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। अकाल पड़ने से घरों मे अनाज समाप्त हो गया। खाने को उनके पास कुछ शेष नहीं रहा। उनका चूल्हा भी कई दिनों तक नहीं जलाया गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कि चूल्हा भी रो रहा हो कि इस घर में मैं सदैव जलता रहता था। परिवार के सदस्यों को गर्म-गर्म खाना देता था। लेकिन अब मेरे वश में भी कुछ नहीं रहा क्योंकि मैं भी अब शांत और उदास हूँ। चक्की भी पूर्ण रूप से शांत, निस्तब्ध और मौन हो गई अर्थात् चक्की भी उदास थी। चक्की से भी अब किसी प्रकार का अनाज न पीसा गया और चक्की चुपचाप उदास पड़ी रही। अकाल पड़ने से सभी फसलें नष्ट हो गई, इसलिए अब न तो चूल्हा ही जलाया गया और न चक्की में अनाज ही पीसा गया। घर के सभी निवासियों को खाली पेट ही सोना पड़ा। कई दिनों तक कानी कुतिया भी भूखे पेट वहीं उनके पास सोती रही। शायद इसी आशा में की कभी तो चूल्हा जलेगा कभी तो चक्की चलेगी मुझे भी खाना मिलेगा। चक्की और चूल्हा भारतीय संस्कृति के प्रमुख आधार हैं परन्तु अब इंसान को इनकी आवश्यकता नहीं रह गई है। घर के सदस्यों को भरपेट रोटी न मिलपाने के कारण सारी गतिविधियाँ ठप्प पड़ गई। घर की खस्ता हालत के परिवार के सदस्यों के कारण नहीं हुई थी अपितु अकाल के कारण ऐसा हुआ था। अब घर की दीवारों पर छिपकलियाँ भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमने लगी, साथ ही चूहों की हालत भी पतली हो गई क्योंकि अब उन्हें भी खाने को कुछ भी प्राप्त नहीं हो पा रहा था।

कुछ समय बाद अकाल की भयावहता समाप्त हुई, अर्थात् अकाल समाप्त हो गया। फसलें पुनः हरी-भरी हो गई। चारों ओर का वातावरण खुशहाल हो गया। भयंकर प्राकृतिक आपदा बीतने पर घर में अनाज आया और नवजीवन की आशा-उल्लास व उमंग चारों तरफ फूट पड़ीं। घर में अनाज आने से चक्की भी खिल उठी अर्थात् उससे अनाज अब पीसा जाने लगा। चूल्हें मे भी धुआँ अर्थात् काफी दिनों के बाद घर के आँगन में धुआँ फैला। घर में अनाज के आने के बाद सर्वत्र खुशियाँ छा गई।

सभी सदस्यों की आँखें चमक उठी। परिवार में गतिशीलता छा गई। जो वस्तुएँ अब तक उदास पड़ी थी अब अपने सौभाग्य पर खुश हो रही थी। काफी दिनों के बाद आज कौए ने भी घर की मुंडेर पर बैठकर अपनी पँखे खुजलाई, इस आशा के साथ कि उसके भी अब भरपेट भोजन मिलेगा। कवि का यहाँ अभिप्राय है कि जब अकाल पड़ता है तो सम्पूर्ण वातावरण शांत, निस्तब्ध हो जाता है। सभी प्रकार की क्रियाएं बंद हो जाती है। परन्तु जैसे ही अकाल समाप्त होता हैं। त्यों ही वातावरण में उल्लास एवं आनन्द छा जाता है।

विशेष

1. अकाल पड़ने तथा अकाल समाप्त होने के बाद की दशा का वर्णन किया गया है।
2. 'चूल्हें का रोना', 'चक्की के उदास होने में' मानवीकरण अलंकार है।
3. कानी-कुतिया, में अनुप्रास अलंकार है।
4. भाषा सरल, सहज, स्पष्ट एवं ग्रामीण अंचल की शब्दावली से युक्त है।
5. चूल्हा, चक्की, कानी-कुतिया, छिपकलियाँ और चूहे गाँव के आर्थिक रूप से दयनीय अवस्था वाले परिवार का वातावरण बनाने में सक्षम है।
6. भाषा के नए प्रयोग आकर्षक एंव रोमांचकारी हैं।
7. सरसी छन्द ही योजना है।
8. वर्णनात्मक शैली है।
9. अप्रत्यक्ष रूप से अकाल के दुष्प्रभावों का वर्णन हुआ है।
10. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।

4. शासन की बंदूक

"खड़ी हो गई चाँपकर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक

उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानी हो गई शासन की बंदूक

बढ़ी बधिरता दसगुनी, बने विनोबा मूक
धन्य-धन्य वह, धन्य वह, शासन की बंदूक

सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक
जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक

जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।"

संदर्भ

प्रस्तुत अवतरण आधुनिक कवि, प्रतिवादी कवि, सच्चे समाज सुधारक 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कविता 'शासन की बंदूक' से अवतरित है। यह कविता 1980 में 'तुमने कहा था' काव्य संग्रह में प्रकाशित हुई थी। प्रस्तुत रचना में सत्ता या व्यवस्था के बर्बर दमन चक्र की ओर संकेत किया गया है। शासन के दमन चक्र और आतंक के वातावरण को मूर्त करती इस कविता में कुल पाँच दोहे संकलित है। प्रस्तुत कविता में शासन के खिलाफ नागार्जुन का गैर समझौतावादी रूख प्रकट हुआ है। अन्यायी शासन को कवि जोरदार शब्दों में फटकारता है।

व्याख्या

कवि शासन की विध्वंशकारी प्रव त्तियों को उजागर करते हुए लिखता है कि एक ओर तो कंकालों, अस्थि-पिजंरों के ढेर लगे हुए है कि एक ओर तो कंकालों, अस्थिपिजरों के ढेर लगे हुए हैं और दूसरी ओर आकाश में विपुल, विराट शासन की बंदूकें हैं। एक ओर आकाश में निर्जीव-निष्प्राण मानवता की दुःख भरी आवाजें आकाश में गूँज रही हैं। दूसरी ओर व्यवस्था की बंदूकें मनुष्यों को मारकर उन्हें कंकालों में परिवर्तित कर रही हैं। कविवर नागार्जुन शासन की बंदूक हेतु विपुल और विराट विशेषण लगाकर शासन की विध्वंशकारी प्रकृतियों को उजागार करता है। शासन ने सत्ता के नशें में चूर होकर अमानवीय अत्याचार किए, कुकृत्यु किए अर्थात् विजयोंन्माद में अपनी सत्ता की सुरक्षा हेतु जघन्य पाप व अत्याचार किए। इतनी अधिक मात्रा में बंदूकों का प्रयोग किया गया कि वे चलती-चलती कानी हो गई थी। इस हिटलरी गुनाम अहं की सभी आलोचना भर्त्सना कर रहे थे। शासन व्यस्था भी बहरी-सी हो गई है। अर्थात् शासन जनता की उचित जायज फरियादें भी नहीं सुन रही है। ऐसा लगता है कि शासन बहरा हो गया हैं सत्य का संकल्प लेने वाले सत्यवादी विनोबा भावे ने भी चुप्पी धारण कर ली थी और वह भी शासन के अनुचित कार्य का विरोध नहीं कर रहा था। वह भी सत्ता के जुड़कर मौन हो गया था। एक प्रकार से वह अन्यायी-अत्याचारी सत्ता का मौन समर्थन कर उससे चिपक गया।

गाँधीवादी दर्शन का भी पतन हो चला है अर्थात् सत्य, अहिंसा का महत्त्व समाप्त हो चुका हैं। वास्तव में कवि कॉंग्रेस के ऊपर कटाक्ष करता हुआ कहता है कि सत्य एवं अहिंसा के प्रजारी भी सत्य और अहिंसा के पथ से भटक गए हैं। उनकी करनी और कथनी में अंतर आ गया हैं सत्य एवं अहिंसा का नारा लगाने वाले नेतागण अब जनता का शोषण करते हैं जिसके कारण सत्य स्वयं घायल हो गया ओर अहिंसा भी चूक गई। इन नेताओं ने जनता के ऊपर यहाँ वहाँ से गोलियाँ चलवानी आरम्भ कर दीं।

कवि जनता की अपारशक्ति की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि जनता के संगठन में बहुत बड़ी शक्ति निहित होती हैं यदि जनता एकता के सूत्र में बंधकर शोषणकर्त्ताओं का विरोध करना आरम्भ कर दे तो कोई ऐसी ताकत नहीं कि वह उन्हें बचा सके। जनता राजसिंहासन को पलटने की अपूर्व शक्ति से सम्पन्न है। यदि जनता क्रांति का मार्ग अपना ले तो शासन या सत्ता की निर्ममता-निष्ठुरता भी उसका कुछ नही बिगाड़ सकती। सत्ता की दमनकारी शक्तियाँ भी जनता के समक्ष घुटने टेकने पर मजबूर हो जाती है। यद्यपि सत्ता की दमनकारी शक्तियों के कारण सारा देश सम द्धि विहीन और उजड़ गया है और जनता रूपी कोयल कूक कर शासन को चिढ़ा रही है। कोयल जली हुई ठूँठ पर बैठकर कूक-कूक कर सत्ता की धज्जियाँ उड़ा रही है। शासन की बंदूक भी उसका बाल बाँका नहीं कर पाती।

विशेष

1. सत्ता के दमन चक्र और आतंक के वातावरण को चित्रित किया गया हैं।
2. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
3. जनवादी चेतना का स्वर मुधर है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।
5. भाषा सजीव, सरल, स्पष्ट एव सुबोध है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।
7. जनता की दयनीय दशा का चित्रण है।

5. बादल को घिरते देखा है

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादलों को घिरते देखा है।
तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिसतंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

संदर्भ

प्रस्तुत पंद्याश आधुनिक कवि, प्रगतिवादी कवि, जनकवि श्री नागार्जुन द्वारा रचित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'बादल को घिरते देखा है' से अवतरित है। यह कविता 1939 में लिखी गई थी और 1953 में 'युगधारा' काव्यसंग्रह में संकलित है। कवि यायावर और फक्कड़ प्रव त्ति का रहा है। अतः देशाटन पर्याप्त मात्रा में किया है। तिब्बत प्रवास के क्रम में कवि ने हिमालय पर्वत के अनुपम सौंदर्य को निहारता है। इस कविता के माध्यम से कवि को प्रकृति के प्रति स्वच्छ, निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है।

व्याख्या

कवि कहता है कि जब मैं घूमने हेतु हिमालय पर्वत के शिखर पर पहुँचा, तब मैंने वहाँ उज्ज्वल, स्वच्छ व निर्मल बादलों को हिमालय की चोटियों पर उमड़ते घुमड़ते हुए देखा। उस समय हिमालय पर्वत की चोटियाँ वर्फ से ढकी हुई थी और सफेद स्वच्छ पर्वत की चोटियों पर बादल घिर रहे थे। वहाँ पर मैंने देखा कि छोटी-छोटी ओंस की बूंदे साक्षात मोतियों के समान चमक रही थी और मानसरोवर के सुन्दर कमल पुष्पों पर ओस के कण मोती के समान गिर रहे थे। हिमालय पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियों पर समतल मैदानों में छोटी-बड़ी कई झीलें विद्यमान है। उन झीलों के साँवले-नीले स्वच्छ तल में, समतल मैदानों से आकर, वर्षा ऋतु की उमस गर्मी से व्याकुल होकर, तिक्त होकर मधुर कमल नाल को ढूँढते हुए मैंने हंसों को तैरते हुए देखा है।

इस प्रकार के चित्रण से स्पष्ट हैं कि कवि ने बादलों का चित्रण नैसर्गिक निश्छल रूप में चित्रित किया है। हिमाच्छित स्वच्छ-निर्मल पर्वत-शिखरों पर काले-काले बादलों का उमड़ना-घुमड़ना नागार्जुन के ह्रदय में सौंदर्य चेतना उत्पन्न करता हैं और छोटे-छोटे ओस बिंदु रूपी मोतियों को मानसरोवर के उन सुनहले कमलों पर कवि ने गिरते देखा है- में कवि अपने अनुभव की प्रामाणिकता और यथार्थ चित्रण सिद्ध करता है।

विशेष

1. प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य का यथार्थ चित्रण है।
2. तत्सम् शब्दों का प्रयोग है।

3. भाषा सरल, स्पष्ट है।
4. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
5. छोटे-छोटे में पुररूक्ति प्रकाश अलंकार है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।
7. कोमलकान्त पदावली है।
8. माधुर्य गुण है।
9. भाव, भाषा और शैली को त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।
10. भाव पक्ष एवं कलापक्ष दोनों सुन्दर है ।

ऋतु वसंत का सुप्रभात था
मंद मंद था अनिल बह रहा
बालारूण की म दु किरणें थीं
अगल बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशा काल से चिर-अभिशापित
बेबस उस चकवा-चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान् सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कविता 'बादल का घिरते देखा है' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रकृति का मनो मुग्धकारी व यथार्थपरक चित्रण किया है। कविवर नागार्जुन यायावर व फक्कड़ प्रव त्ति का स्वामी है, इसीलिए उसने प्रकृति-चित्रण अनुभव के आधार पर किया है। वास्तव में प्रस्तुत कविता में कवि अपने अनुभव को प्रमाणिकता और यथार्थता की कसौटी पर सत्य सिद्ध करता है।

व्याख्या

कवि कहते है कि वसन्त ऋतु का प्रभुत्व चारों तरफ फैल गया था। उसकी मादकता में सम्पूर्ण वातावरण आनन्द विभोर हो रहा था। मलयाचल पर्वत की शीतल और सुगन्धित वायु बह रही थी और प्रातः कालीन सूर्य की सुनहली आभा सर्वत्र छिटकी हुई थी। इसके साथ ही आस-पास में बर्फ से ढके तथा प्रातः कालीन सूर्य की स्वर्णिम आभा से मुक्त शिखर थे। वे सभी इस प्रकार दिखाई दे रहे थे कि मानों उन्हें अलग-अलग खड़ा कर दिया गया हो और उनका मिलन एक प्रकार से असंभव था। लेकिन दूसरी ओर चिरकाल से शापग्रस्त चकवी-चकवे का जोड़ा था जिन्हें यह शाप मिला हुआ था कि वे रात्रि में कभी नहीं मिल सकेंगे और प्रातः काल होते ही एक दूसरे से मिल सकेंगे। रात्रि के आने पर उन दोनों पक्षियों के जीवन में वियोग की एक बहुत बड़ी रात्रि सामने आ जाती है। वे क्रन्दन करके चीख पुकार करते हैं परन्तु अब जैसे ही उनके मिलन का समय अर्थात् प्रभात का समय आया तो उनका क्रन्दन समाप्त हो गया। मिलन की वेला आने के बाद दोनों पक्षी (चकवा-चकवी) मानसरोवर के किनारे काई की हरी दरी के बिछौने पर प्रणय व्यापार करते हुए कवि को दिखाई पड़े। अर्थात् रात्रि के वियोग के पश्चात् अब दोनों प्रेम किल्लोल करने लगे।

विशेष

1. प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है।
2. चकवा-चकवी के वियोग और मिलन का द श्य बांधा गया है।
3. वीप्सा और अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
4. कोमल कान्त पदावली का प्रयोग हुआ है।
5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम है।
6. भाषा सरल, सहज एवं तत्सम् शब्दों से युक्त है।
7. संगीतात्मकता विद्यमान है।

"दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत-सहत्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठनेवाले
निज के ही उन्मादक परिमल-
के पीछे धावित हो-होकर
तरल तरूण कस्तूरी म ग को
अपने पर चिढ़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
कहाँ गया धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढा बहुत परंतु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुंबी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

संदर्भ

प्रस्तुत काव्यावतरण सुप्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि, आधुनिक कबीर श्री नागार्जुन द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'बादल को घिरते देखा है' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक चित्रण किया है। जब कवि घूमने हेतु तिब्बत गए उस समय उन्होंने हिमालय पर्वत के अनिंघ सौंदर्य को निहारा था उस समय उनके मन में प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम उमड़ पड़ा था। उसी स्वच्छ, निर्मल प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में चित्रित हुई है।

व्याख्या

कवि कहता है कि हजारों फुट ऊँचाई पर हिमालय पर्वत की बर्फीली चट्टानों में अपनी ही नाभि में छिपी कस्तूरी की सुगन्ध से मदमस्त होकर सुनहरे म ग को मैंने वहाँ दौड़ते हुए देख अर्थात् म ग की ही नाभि से कस्तूरी की सुगंध निकल रही थी लेकिन अपनी सुगन्ध न समझकर वह म ग उस सुगनध को पाने के लिए यहाँ वहाँ दौड़ रहा था। सुगन्ध न पाने के कारण ही अपने पर खीजते हुए म गों को निहारा है।

कवि प्रश्न पूछता है कि धन का स्वामी कुबेर कहाँ चला गया है और उसकी ऐश्वर्य का नगरी अलका अब कहाँ है? कालिदास का आकाश से उतरकर प थ्वी पर बहने वाली गंगा नदी के गंगा जल का भी कहीं ठिकाना नहीं है। कवि स्पष्ट करता है कि मैंने मेघदूत को बहुत ढूँढा परन्तु उसका कहीं भी पता नहीं चला। इस बारे में मुझे कौन जानकारी देगा कि कहीं वह छायामय मेघदूत कहीं न कहीं बरस पड़ा हो। फिर कवि स्पष्ट करता है कि जाने दो इन सारी बातों को, क्योंकि ये तो सारी कवि की कल्पना प्रसूत बातें थीं। मैंने तो भयंकर शीत ऋतु में आकाश को छूने की होड़ करने वाले कैलाश पर्वत पर भीमकाय विराट बादलों को तुफानों के साथ गरजते भिड़ते हुए देखा है। कवि स्पष्ट करता है कि अब मैं बादल को दूत बनाकर न विराहिणी को ठगने का कार्य करूंगा और न (धरती) यथार्थ को कटु-कठोर भूमि का परित्याग कर कल्पना (आकाश) की ऊँची उड़ान भरूँगा।

विशेष

1. प्रकृति का मनोरम चित्रण है।
2. नाभिस्थित कस्तूरी की गंध के पीछे हिरण का भागना काव्य रूढ़ि का प्रयोग है।
3. कवि-कल्पित, तरल-तरूण और गरज-गरज में अनुप्रास और पुनरूक्ति प्रकाश अलंकारों का प्रयोग है।
4. नागार्जुन स्वयं अतिशय कल्पना का मार्ग त्यागकर यथार्थ की ओर उन्मुख हुए हैं।
5. भाषा सरल, स्पष्ट एवं तत्सम् शब्दावली से युक्त है।
6. कोमलकान्त पदावली है।
7. माधुर्य गुण है।

"शत-शत निर्झर-निर्झरणी कल
मुखरित देवदारू कानन में,
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले,
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लाल कमल वेणी में
रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपटी पर,
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
म गछालों पर पलथी मारे
मदिरारूण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
म दुल मनोरम अंगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यांश प्रगतिवादी कवि, स्वनामधन्य 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कविता 'बादल को घिरते देखा है' से अवतरित है। यह कविता ऐसी है जो भावों की सघनता, ऐन्द्रिय बोध की सम्पन्नता, सौंदर्य की नैसर्गिकता और शैली की

सशक्तता के लिए प्रसिद्ध है। कवि की प्रकृति के प्रति गहरी आत्मीयता रही है। प्रकृति के सौंदर्य का चित्रांकन करते हुए कहते हैं।

व्याख्या

कवि कहते हैं की सैंकड़ों झरनों की कल-कल की ध्वनि से मुखरित देवदार के वन में लाल सफेद भोजपत्रों से सजी हुई या सुशोभित हुई कुलिया के भीतर रंग-बिरंगे और सुगन्धित फूलों से अपने बालों को सजाए हुए, गले में इन्द्रनील की माला पहने हुए, शंख के समान सुन्दर गलों (गर्दन) में सुगन्धित सुरभित फूलों की माला शोभायमान थी। उनके कानों में कुवलय लटकते हुए शोभा पा रहे थे और सैंकड़ों पंखुड़ियों वाले लाला कमलों से अपनी वेणी का श्र ंगार कर रखा था या सजा रखा था। चाँदी से बनाए गए तथा मोती माणिक्य से अलंकृत एवं सुशोभित, सहज स्वाभाविक सुंदरता से युक्त पान का पात्र मदिरा से लबालब भरा हुआ रखा शोभा पा रहा था और अपने सामने लाल चंदन की तिपाई पर नरम, स्वच्छ, धवल, निर्मलव उज्ज्वल बाल कस्तूरी वाली म गछाल पर पालथी मारकर बैठे हुए थे। उन किन्नर जाति के स्त्री पुरूषों एवं युवतियों की आँखें मदिरा पान के कारण तथा मस्ती के कारण लाल हो गई थीं। वे अपनी कोमल अँगुलियों में दबी बाँसुरी को बजा रहे थे। ऐसा कवि ने देखा। वास्तव में किन्नर-किन्नारियाँ अद्‌भुत सौंदर्य के स्वामी व राग-रंग विलासिता के भाव से युक्त थे।

विशेष

1. इंद्रियों पर आधारित पाँचों बिम्बों का चित्रण इस पद्यांश में हुआ है-द श्य बिम्ब, श्रवण बिम्ब, घ्राणबिम्ब, स्पार्भिक बिम्ब आस्वाध बिम्ब आदि।
2. उपमा, अनुप्रास, वीप्सी पुनरूक्ति प्रकाश अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।
3. भाषा सजीव सरल एवं सुबोध हैं।
4. काव्यात्मकता विद्यमान है।
5. तत्सम् शब्दों का प्रयोग हुआ है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।
7. भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय है।

तीन दिन तीन रात

"बस-सर्विस बंद थी
तीन दिन, तीन रात
लगता था, जन-जन की
हृदय-गति मंद थी
तीन दिन, तीन रात
प्राचार्य, जिलाधीश, एस.पी.
रहे सब परेशान
तीन दिन, तीन रात
बस-सर्विस बंद थी
तीन दिन, तीन रात
गुम रहीं गतिहीन सड़कें
तीन दिन, तीन रात
पंक्तिबद्ध व क्षों के
दिल भला क्यों नहीं धड़कें
तीन दिन, तीन रात
बस-सर्विस बंद थी.........."

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण आधुनिक कबीर, समाज सुधारक सच्चेजन नायक कवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित कविता 'तीन दिन तीन रात' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि तत्कालीन प्रशासन की क्रुरता को चित्रित करता है। 'तीन दिन तीन रात' से तात्पर्य है कि 1968 में पूर्णिया शहर में छात्रों ने उपद्रव मचाया, जिसके कारण **तीन दिन तीन रात** तक लगातार कर्फ्यू लगाया गया। इसीलिए इस कविता का शीर्षक 'तीन दिन तीन रात' है। इस कर्फ्यू के दौरान क्या-क्या हुआ इसका वर्णन इस कविता में किया गया है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि छात्रों द्वारा किए उपद्रव के कारण 1968 में पूर्णिया शहरी में कर्फ्यू लगाया गया था। जिसके कारण बसों का आवागमन बंद हो गया था और शहर की सभी गतिविधियाँ ठप्प हो गई थी। कहीं भी कोई हलचल नहीं दिखाई पड़ रही थी। ऐसा लग रहा था मानो शहर में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की हृदयगति मंद पड़ गई हो, क्योंकि शहर में आवागमन बंद था। चारों ओर नीरव शांति छाई हुई थी। प्रत्येक स्त्री-पुरूष अपने-अपने घरों में कैद से हो गए थे। कॉलेज के प्राचार्य, जिलाधीश और एस.पी. तीन दिन तीन रात तक छात्रों की विध्वंशकारी प्रव त्तियों एवं तोड़-फोड़ के कारण परेशान थे। तीन दिन तक किसी प्रकार का वाहन गतिशील नहीं था। सड़कों पर किसी प्रकार की चहल-पहल नहीं थी। सड़क भी इस समय गुमसुम पड़ी थी जो कि कभी हमेशा चलती रहती थी। चकाचौंध से युक्त रहती थी लेकिन इन दिनों में चारों ओर शांति ही शांति व्याप्त थी। सड़कों के किनारे खड़े हुए व क्ष भी शांत थे उनमें भी कोई हलचल नहीं थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि प्रशासन की क्रुरता के कारण इन व क्षों की हँसी, उल्लास भी छिन लिया गया था। इनके दिल भी अब धड़क नहीं रहे थे। इस प्रकार छात्रों द्वारा किए गए उपद्रव के कारण तीन दिन तीन रात तक कर्फ्यू लगा दिया गया और बस-व्यवस्था बंद हो गयी।

विशेष

1. प्रशासन की क्रुरता का चित्रांकन किया गया है।
2. कर्फ्यू के समय के वातावरण को अभिव्यक्ति मिली है।

3. अनुप्रास, वीप्सा, अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
4. वनस्पतियों की उदासी और वाहन के अभावों का चित्रण हुआ है।
5. भाषा, सरल, स्पष्ट एवं सुबोध है।
6. संभीतात्मकता विद्यमान है।
7. कोमलकान्त पदावली है।
8. माधुर्य गुण का प्रयोग है।

"दस गुनी कमाई पर
ताँगा व रिक्शावाले
मस्त थे, मगन थे
तीन दिन, तीन रात
डूबे थे ताड़ी और दारू में
माटी के हजारों चुक्कड़
धुत्त थे, नगन थे
तीन दिन, तीन रात
बस-सर्विस बंद थी
तीन दिन, तीन रात

ठप थी अदालतें
सस्ते थे वकील व मुख्तार
तीन दिन, तीन रात
वीरान थे होटल
धीमी थी धुएँ की रफ्तार
तीन दिन, तीन रात
सरकार जीप-ट्रक
पीती रहीं पेट्रोल
तीन दिन, तीन रात
बसवाले पीते रहे
मालिकों की खीझ का
मट्ठा और घोल
तीन दिन, तीन रात"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यांश आधुनिक कबीर, प्रगतिवादी कवि, अवतरित है। कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से दीन, दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षितों के प्रति गहरी सहानुभूति व आत्मीयता प्रकट की है। प्रस्तुत अंश में 1968 में पूर्णिया शहर में लगाए गए कर्फ्यू के दौरान की गतिविधियों का चित्रांकन किया गया है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि जब तीन दिन तक लगातार कर्फ्यू लगाया गया तो बस व्यवस्था ठप्प थी, उस समय ताँगा व रिक्शा वाले बाहर से आने वाले यात्रियों से दस गुणा अधिक किराया वसूल करके उन्हें उनके निश्चित स्थान पर पहुँचा रहे थे। रिक्शा और ताँगे वाले अपने-अपने कार्य में लीन थे और धन कमाने में मस्त थे। तीन दिन तीन रात तक पूर्णिमा शहर में कर्फ्यू लगा हुआ था। इस समय जब चारों ओर कहीं आना-जाना असंभव था तो लोग अपने-अपने घरों में बैठकर मिट्टी के बने हुए चुक्कड़ अर्थात् पात्रों में शराब पीने में मस्त थे। हजारों मिट्टी के बने बर्तन जिनमें शराब आदि डाली जाती है, शराब और ताड़ी से सरोबार

थे। तीन दिन तक कर्फ्यू लगा होने के कारण सस्ते से हो गए थे। पूर्णिया शहर के सभी होटल भी सुनसान वीरान पड़े थे और यातायात के साधनों के भी न चलने के कारण धुएँ की गति अत्यंत मंद थी अर्थात् वायु प्रदूषण भी नहीं हो रहा था। बस अब इस समय केवल सरकारी जीप-ट्रक ही सड़क पर दौड़ रहे थे और अपना भोजन पेट्रोल पी रहे थे। बस चलाने वाले ड्राइवर और कंडक्टर अब यात्री बैठे थे इसलिए अब अपने मालिकों की खीज सहन कर रहे थे। ऐसा लगता था जैसे मानो वे मालिकों की खीज का मट्ठा और घोल पी रहे हों। तीन दिन तीन रात तक पूर्णिया शहर में कर्फ्यू लगने के कारण बस व्यवस्था बंद थी।

विशेष

1. प्रशासन के अत्याचार एवं क्रुरता का चित्रण हुआ है।
2. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
3. मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग है।
4. भाषा सरल, स्पष्ट, सहज एवं आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है।
5. कोमलकान्त पदावली है।
6. माधुर्य गुण है।

"बस के अड्डों पर
फौज रही तैनात
तीन दिन, तीन रात
उड़ती रहीं, अफवाहें
कटरी रही हर बात
तीन दिन, तीन रात
विकल थी हकूमत
चित्रित थे अधिकारी
तीन दिन, तीन रात
पूर्णिया टाउन में
कर्फ्यू था जारी
तीन दिन, तीन रात
तरूणों में गर्मी थी
लोग परेशान थे
तीन दिन, तीन रात
बस की लाश का
चिता-भस्म देख-देख
हम भी हैरान थे
तीन दिन, तीन रात
बस-सर्विस बंद थी
तीन दिन, तीन रात
तीन दिन, तीन रात
तीन दिन, तीन रात।"

संदर्भ

प्रस्तुत काव्यांश 'बाबा नागार्जुन' द्वारा विरचित उनकी प्रसिद्ध कविता 'तीन दिन तीन रात' से उद्ध त है। पूर्णिया शहर में 1968 में जब कर्फ्यू लगाया गया तो सब कुछ सुनसान पड़ा हुआ था। प्रक ति की वीरान एवं स्पंदन रहित थी। इस शांत, नीरव वातावरण को ही यहाँ अभिव्यक्त किया गया है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि छात्रों के उपद्रव एवं प्रदर्शन को रोकने के लिए शहर के प्रत्येक बस अड्डों पर फौजें तैनात कर दी गई थी। तीन दिन तीन रात तक शहर में सरकार विरोधी तथा छात्रों के पदर्शन के पक्ष और विपक्ष में अफवाहें उड़ती रही। उनका विरोध भी होता रहा। पूरे शहर में शांति व्यवस्था बनाने हेतु प्रशासन भी बड़ा चिंतित एवं बैचेन था। तीन दिन तीन रात तक पूर्णिया शहर में कर्फ्यू लगा हुआ था। छात्रों में अत्यधिक जोश भरा हुआ था। सामान्य जनता भी कर्फ्यू के कारण परेशान थी। क्योंकि दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उन्हें परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। छात्र जब आगजनी पर उतर आए थे, उन्होंने बसों को आग लगाना आरम्भ कर दिया। जलती हुई बसों तथा छात्रों के जोश को देखकर स्वयं कवि कहता है कि हम भी हैरान थे कि इतनी अधिक मात्रा में छात्रों ने बसें जला दी थी। पूर्णिया शहर में तीन दिन तीन रात तक जो कर्फ्यू लगाया गया था वह केवल शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए लगाया गया था। इसलिए बस व्यवस्था भी बंद कर दी गई थी। कवि सैन्य बल के प्रयोग से जनता के दमन के चित्र उकेरना चाहता है तथा अहिंसा की आड़ में नादिरशाही ढंग अपनाता है।

विशेष

1. सैन्य बल की दमनकारी नीति का पर्दाफाश किया गया है।
2. वीप्सा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
3. भाषा सरल स्पष्ट एवं रोचक है।
4. आव त्ति शैली का प्रयोग है।
5. संगीतात्मकता विद्यमान है।
6. भाव पक्ष एवं कलापक्ष का सुंदर समन्वय हुआ है।
7. कवि की अपनी अनुभूति को भी अभिव्यक्ति मिली है।

मास्टर!

"धुन-खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे
कटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते रहते किसी तरह आदम के साँचे

अरे, अभी उस रोज वहाँ पर सरे आम जक्शन-बाजार में
शिक्षा मंत्री स्वयं पधारे चम-चम करती सजी कार में
ताने थे बंदूक सिपाही, खड़ी रहीं जीपें कतार में
चटा गए धीरज का इमरित, सुना गए बातें उधार में
चार कोस से दौड़े आए जब मंत्री की सुनी अवाई
लड़कों ने बेले बरसाए, मास्टर ने माला पहनाई
संगीनों की घनी छाँव में हिली माल, मूरत मुसकाई
तंबू में घुस गए मिनिस्टर, मास्टर पर कुछ दया न आई।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण प्रगतिशील कवि, आधुनिक कबीर, समाजसुधारक 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'मास्टर' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने वर्ग विषमता का उद्‌घाटन करते हुए शिक्षकों की दयनीय दशा पर प्रकाश डाला है। साथ ही

यह भी दर्शाया है कि किस कदर जर्जर भवनों में पाठशाला चलाई जाती है। कवि शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियों को पाठकों के समक्ष रखता है।

व्याख्या

कवि पाठशाला की जर्जर दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिन शहतीरों के ऊपर बारह कड़ियाँ रखी हुई हैं, वे शहतीर भी धुन के खाए हुए हैं। धुन खाए हुए शहतीर और उसके ऊपर रखी बारह कड़ियाँ अपने ऊपर रखो असीम बोझ के कारण परमात्मा का नाम स्मरण कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यालय की कड़ियाँ और शहतीर छत के बोझ को रोकने में असमर्थ है और वह अब गिरा कि तब गिरा की स्थिति में पहुँचा हुआ है। उसकी दीवारें फटी हुई है और छत में भी छिद्र हो गए हैं। वर्षा काल में इतना पानी टपकता जैसे विद्यालय पर छत नहीं, छत के स्थान पर छलनी रखी हो। दीवार में बने आले में बिसतुइयाँ नामक जहरीला जानवर न त्य करता-सा प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार विद्यार्थियों के सिर पर चारों ओर से खतरा है-छत गिरने का, दीवारें गिरने का, विसतुइया नामक जहरीले जानवर के काटने का। विद्यालय का अध्यापक इस प्रतिकूल वातावरण में छात्रों पर एक-एक मिनट में पाँच-पाँच तमाचे बरसाकर उन्हें पढ़ाने का प्रयास कर रहा है। स्वयं से दुःखी मास्टर बेबस बच्चों को पीट-पीटकर उन्हें आदमी बनाने का प्रयास कर रहा है। अरे अभी उस दिन की बात है कि शिक्षा मंत्री अपनी चमचमाती कार में बैठकर जक्शन बाजार में पधारे थे। सिपाही अपनी बंदूकें ताने खड़े थे और सरकारी जीपें कतार में लगी खड़ी थी। मंत्री महोदय जनता को धैर्य-सहनशीलता का अम त रूपी भाषण देकर चले गए। जैसे ही मास्टर को पता चला कि मंत्री महोदय आने वाले हैं तो वे अपने छात्रों को लेकर चार कोस तक पैदल चलकर वहाँ पहुँचे। बच्चों ने उनका (मंत्री जी का) स्वागत करने के लिए बेले के फूल बरसाए और मास्टर जी ने उन्हें माला पहनाई। संगीनों अर्थात् बंदूकों की छांव में मंत्री रूपी मूरत इस स्वागत सत्कार को पाकर हल्के से मुस्कुराए; बच्चों द्वारा पहनाई गई माला भी कुछ देर के लिए हिली। बस इतना ही करके मंत्री जी आराम करने के लिए तम्बू में प्रवेश कर गए। उन्होंने मास्टर की दयनीय दशा दी और कोई ध्यान नहीं दिया। न ही उनकी कोई बात सुनी।

विशेष

1. वर्ग विषमता का साक्षात चित्रण है।
2. नेताओं की करनी और कथनी के अंतर को अप्रत्यक्ष रूप से उजागर किया गया है।
3. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाषा सरल, स्पष्ट एवं आम बोलचाल की है।
6. कोमलकांत पदावली है।

"अंदर जाकर तंबू में ही चलो दूख दर्द सुनाएँ
नहीं, अकेला मैं ही जाऊँ, कहीं भीड़ में वह घबराएँ
बचपन के परिचित ठहरे, हम क्यों न चार बात कर आएँ
मौका पाकर विद्यालय की बुरी दशा पर ध्यान दिलाएँ"
सुनकर बात गुरूजी की फिर "हाँ, हाँ" बोले लड़के सारे
"हम जब तक सुसता भी लेंगे आगे बढ़कर कुआँ किनारे"
हाथ हिलाकर मास्टर बोला, "जाओ बच्चो, जाओ प्यारे
चने चबाकर पानी पीना, सूख रहे हैं हलक तुम्हारे"

खिचड़ी बाल, साँवली सूरत दुखरन प्राइमरी के मास्टर
लपके-लपके बढ़े आ रहे मैदानी हाते के भीतर

जहाँ तंबुओं की कतार थी जिसमें पैठे रहे मिनिस्टर
चारों ओर मिलिटरी, जिसके लोहे का टोपा था सिर पर
पके बाँस का पक्का घेरा, हरे बाँस की कच्ची फाटक
पतला बाँस बीस गज ऊँचा गड़ा हुआ था पूरी धड़ तक
फर-फर-फर फहराने वाला तिनरंगा था जिसका मस्तक
दुखरन मास्टर लगे देखने कांगरेस की शान एकटक।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण प्रगतिशील कवि, आधुनिक कबीर, सच्चे जननायक 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'मास्टर' से अवतरित है। प्रस्तुत काव्यांश में शिक्षकों की दयनीय दशा और विद्यालयों की जर्जरित अवस्था पर प्रकाश डालते हुए वर्ग-वैषम्य का चित्रण किया गया है।

व्याख्या

कवि कहता है कि मंत्री जी से चार कोस पैदल चलकर मास्टर विद्यालय की जर्जरित अवस्था पर बात करने के लिए आए हैं। परन्तु मंत्री जी उनसे बात दिए बिना ही तम्बू में आराम करने के लिए चले जाते हैं। तब मास्टर जी ने सोचा क्यों न अन्दर जाकर ही मंत्री जी के सामने अपनी विनती सुनाई जाए। फिर उसने सोचा कि यह ठीक है कि अंदर चलकर ही बात करनी चाहिए परन्तु इतनी भीड़ सहित अंदर जाना उचित न होगा, कहीं मंत्री जी घबरा जाएँ, इसलिए मैं अकेला ही अंदर जाकर उनसे बात करता हूँ। फिर उन्होंने बच्चों से कहा कि मंत्री जी मेरे बचपन के परिचित हैं। हम दोनों बचपन में मित्र हुआ करते थे। इसलिए ही आज हम अवसर पाकर यहाँ अपने विद्यालय की खंडित अवस्था के विषय में बात करने आए हैं। सभी छात्र अपने अध्यापक की बात मानकर उनकी हाँ में हाँ मिलकर एक स्वर में कहने लगे कि ठीक है जी आप अकेले ही इस विषय में मंत्री जी से बात कर आओ तब तक हम आगे चलकर मार्ग में कुएँ के समीप बैठकर आराम कर लेंगे। अध्यापक ने बच्चों की बात मानकर हाथ हिलाकर कहा जाओ प्यारे बच्चो! तुम वहाँ बैठकर चने चबाकर पानी पी लेना क्योंकि तुम्हारा गला भी सूख रहा होगा।

प्राइमरी विद्यालय के मास्टर के बाल खिचड़ी जैसे, उलझे हुए और अस्त-व्यस्त थे। उनकी सूरत सांवली थी। वे मैदानी अहाते (आंगन) में लपकते हुए दौड़े चले आ रहे थे। जहाँ तम्बुओं की पंक्तियाँ लगी हुई थी और जिनमें मंत्री महोदय आराम फरमा रहे थे। चारों ओर मिलिटरी का पहरा था तथा इन सुरज्ञक्षा कर्मियों ने अपने-अपने सिरों पर लोहे की टोप पहन रखी थी। इन तम्बुओं के चारों ओर पक्के बाँस का घेरा बना हुआ था और हरे बाँस की कच्ची फाटक बनी हुई थी। वहाँ पर बीस गज ऊँचा पतला बाँस अपनी धड़ तक धरती में गड़ा हुआ था और जिसके ऊपरी भाग पर फर-फर फहराने वाला तिरंगा झण्डा विद्यमान था। दुखरन मास्टर कांग्रेस पार्टी की शान एवं गौरव को एकटक द ष्टि से देखने लगा।

विशेष

1. तिरंगे झण्डे की ऊँची शान का चित्रण है।
2. वीप्सा और अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
3. संगीतात्मकता विद्यमान है।
4. मंत्रियों की शान-शौकत का वर्णन है।
5. भाषा सरल, स्पष्ट एवं आम बोल चाल की शब्दावली से युक्त है।

"फाटक पर पहुँचे तो देखा, डटे हुए थे दो नेपाली
हाथों में संगीन सँभाले, लटक रही थी निजी भुजाली
"कहाँ जाएगा?" वे गुर्राए, आँखों में उतराई लाली
दुखरन का दिल दुखी हुआ, सुन सूखा तू-तू सूखी गाली

मास्टर बोले, "यों मत कहना, पढ़ा-लिखा हूँ, मैं हूँ शिक्षक
तुम भी हो जनता के सेवक, मैं भी हूँ जनता का सेवक"
फिर तो वे धकियाकर बोले "भागभाग, जा मत कर बकबक
हम फौजी हैं, नहीं समझते क्या होता है सिच्चक-सेपक"

कुछ दिन बीते मास्टर ने यह कड़ा विरोध-पत्र लिख डाला
"ताम-झाम थे प्रजातंत्र के, लटका था सामंती ताला
मंत्री जी, इतनी जल्दी क्या आजादी का पिटा दिवाला
अजी आपको उस दिन मैंने नाहक ही पहनाई माला"
और लिखा "उस रोज आपसे भीख माँगने नहीं गया था
आप नए थे, नया ठाठ था, लेकिन मैं तो नहीं नया था
भूल गए क्या अजी आपका छोटा भाई फेल हुआ था
और आपने मुझे जेल से मर्मस्पर्शी पत्र लिखा था।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कवि, जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'मास्टर' से उद्ध त है। प्रस्तुत पद्य में एक शिक्षक की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। विद्यालय की जर्जर अवस्था के चित्रांकन के साथ-साथ वर्ग विषमता का भी उद्घाटन किया गया है। शिक्षा विभाग की बदहाली का जीवन्त उदाहरण है-विद्यालय की अवस्था एवं शिक्षक को वेतन प्राप्त न होना। दुखरन मास्टर चार कोस पैदल चलकर मंत्री महोदय से मिलने जाते हैं परन्तु मंत्री उनसे बातें किए बिना ही तम्बू में आराम करने चले जाते हैं। मास्टर स्वयं तम्बू में जाकर बातें करने का प्रयास करता है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि जब मास्टर मंत्री से तम्बू में अकेले ही वाद करने के लिए जाने लगे तो मार्ग के फाटक पर दो नेपाली पहरेदार बने खड़े थे। उन्होंने अपने हाथों में सभी ने संभाल रखी थी और अपने अपने कंधों पर भुजाली लटका रखी थी। उन्होंने दुखरन लाल को देखा और क्रोध से आँखें लाल करके कहने लगे कि तू कौन है? और तू कहाँ जाएगा? दुखरन मास्टर ने जब उन दो पहरेदारों से तू, तड़ाक सुना, उनकी आवाज में कहीं कोई सम्मान न था, तब मास्टर का दिल बड़ा दुखी हुआ। उसने अपने लिए ये शब्द एक प्रकार से सूखी गलियाँ ही लगी। परन्तु भी शांत होकर कहने लगा कि भाई यूं मत समझना कि मैं अनपढ़ हूँ, अपितु पढ़ा लिखा हूँ, एक शिक्षक हूँ। इसलिए मैं भी जनता का सेवक हूँ और आप भी जनता के सेवक हैं। अर्थात् हम दोनों ही जनता की सेवा करते हैं। इतना सुनना था कि दोनों पहरेदारों ने मास्टर को धक्का देकर बोले तू भाग जा! ज्यादा बक-बक मतकर! हम फौजी हैं हमें तुम्हारी ये बातें अच्छी नहीं लगती, हम कोई सेवक नहीं है। हम तुम्हारी सेवक की भाषा नहीं समझते। जब दुखरन मास्टर की मंत्री से बातें नहीं हो पाई तो उन्होंने काफी दिनों के बाद मंत्री जी को अत्यन्त कड़ा पत्र लिखा कि यद्यपि प्रजातन्त्र है। इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने का अधिकार होता है परंतु ऐसा लगता है कि बाहर से तो प्रजातन्त्र का आवरण है परन्तु वास्तव में सामन्ती वातावरण फैला हुआ है उसका ताला लगा हुआ है। अर्थात् इस सामन्ती वातावरण में किसी व्यक्ति को मंत्री से मिलने तक का अधिकार नहीं दिया जाता। ऐसा लगता है मंत्री जी कि स्वतन्त्रता का दिवाला पिट गया है और सामंती व्यवस्था हावी हो गई। मैंने आपका स्वागत करते हुए उस दिन वैसे ही माला नहीं पहनाई थी और न ही मैं आपसे कोई भीख माँगने के लिए ही वहाँ आया था अपितु अपने अधिकारों की माँग करने के लिए आया था। आप नए-नए मंत्री बने थे, आपका शान-शौकत भी नई थी लेकिन मैंने तो अनेकों मंत्री देखे हैं। मैं कोई नया नहीं था। अरे क्या आप वो दिन भूल गए जब आपका छोटा भाई परीक्षा में फेल हो गया था और आपने उसे पास कराने हेतु जेल से ही मुझे मर्मस्पर्शी पत्र लिखा था। ठीक है कि बुरे दिनों में कोई किसी का साथ नहीं देता, आपने भी ऐसा ही किया है।

विशेष

1. मंत्री की अवसरवादिता प्रकट हुई है।
2. भारत की प्रजातन्त्र व्यवस्था पर कटु व्यंग्य किया गया है।
3. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।
4. एक-एक शब्द संगीत के रेशमी तारों में माणिक्य मोती की तरह गूँथा हुआ है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

"प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं' तुलसी बाबा भले कह गए
जिसमें वाजिद अली बह गया उसी बाढ़ में आप बह गए
आप बने शिक्षा-मंत्री तो देहातों के स्कूल ढह गए
हम तो करते रहे पढ़उनी, जेल न जाके यहीं रह गए
और आपका तो कहना क्या, मुँह से बहै आरत की धारा
आदर्शों की छौंक मारकर अजी आपने हमें सुधारा
उपदेशों की धुआँधार में अकुलाता शिक्षक बेचारा
अजी आपको लगता होगा सुखमय यह भूमंडल सारा"
लिखा अंत में "ध्यान दीजिए, बहुत दिनों से मिला न वेतन
किससे कहूँ, दिखाई पड़ते कहीं नहीं अब वे नेता-गण
पिछली दफे किया था हमने पटने में जा-जा के अनसन
स्वयं अर्थ-मंत्री जी निकले, वह दे गए हमें आश्वासन
और क्या लिखूँ, इन देहाती स्कूलों पर भी दया कीजिए
दीन-हीन छात्रों-गुरूओं की कुछ भी तो सुध आप लीजिए
हटे मिटे यह निपट जहालत; प्रभु ग्रामीणों पर पसीजिए
कई फंड हैं उनमें से अब हमको वाजिब एड दीजिए"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग 'बाबा नागार्जुन' द्वारा विरचित उनकी वर्ग वैषम्य पर तीव्र कटाक्ष करने वाली प्रसिद्ध कविता 'मास्टर' से अवतरित है। यह कविता शिक्षकों की दयनीय अवस्था के साथ-साथ समय पर वेतन उपलब्ध न होने के स्थिति तथा विद्यालय की जर्जर अवस्था का चित्रांकन भी करती है। दुखरन मास्टर द्वारा प्रजातंत्र पर भी कटाक्ष कराया गया है।

व्याख्या

कवि गोस्वामी तुलसीदास का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि प्रभुता पाने या ऊँचे पद पर आसीन होने पर व्यक्ति में अभिमान नहीं आना चाहिए। यदि ऐसा हो गया तो उसकी प्रभुता एवं ऊँचाई का कोई मूल्य नहीं है। तुलसी जी ठीक कह गए हैं कि प्रभुता पा लेने पर घमण्ड नहीं करना चाहिए। जिस सत्ता या प्रभुता के वेग में वाजिद अली शाह बह गए उसी में मंत्री महोदय आप भी बह गए हैं। जिस दिन से आप शिक्षा मंत्री बने हैं उसी दिन से देहातों के स्कूलों पर वज्रपात हुआ अर्थात् वे स्कूल ढहना आरम्भ हो गए हैं क्योंकि आपने उनकी तरफ कोई ध्यान ही नहीं दिया। आपका तो कहना ही क्या, आपके मुख से हमेशा ही दीन, दुःखियों, दलित-पीड़ितों के लिए करूणा की अविरल धारा बहती है। आपकी करनी और कथनी में अत्यधिक अंतर है। आदर्शों की बातें करके आपने हमारा जीवन सुधार दिया है। आपके उपदेशों के बीच में शिक्षक बेचारा व्याकुल एवं व्यथित है पीड़ित है। आपके द्वारा दिए गए आश्वासनों से अब शिक्षक परेशान हैं। क्योंकि कई महीने से उन्हें वेतन नहीं मिला है। वैसे आपको यह लगता है कि प थ्वी पर रहने वाले सभी व्यक्ति सुखी हैं? लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। क्योंकि आप तो सुखी

हैं ही। कहते हैं आप सुखी तो जग सुखी। अब हम अपने वेतन की बात किससे कहें? क्योंकि अब वे पहले वाले आदर्शवादी नेता ही नहीं रहे। पिछली बार जब हमने वेतन के लिए पटना में अनशन किया था तो स्वयं अर्थ मंत्री ने हमें आश्वासन दिया था कि जल्दी ही वेतन मिल जाएगा, परन्तु अभी तक नहीं मिला। मंत्री जी अब मैं इस पत्र में इससे अधिक और क्या लिखूँ। बस इतना निवेदन है कि आप इन देहातों के स्कूलों पर दया करके इनकी हालत सुधारने का प्रयास कीजिए। दीन-हीन गुरू और छात्रों के दुःख-दर्दो को दूर करने का प्रयास कीजिए। अब तो आप ही हमारे प्रभु हो। अब आप हमारी इस जिल्लत की जिंदगी से हमें बचा सकते हैं। इस जिहालत की जिंदगी को मिटाकर इन ग्रामीणों पर दया करें। आपके पास तो अनेक प्रकार के फण्ड हैं उनमें से ही हमारी सहायता करके उचित वेतन देकर हमें क तार्थ करें।

विशेष

1. मंत्रियों की करनी और कथनी में अंतर बताया गया है।
2. सत्ता की चकाचौंध में नेता लोग अपने वादे कैसे भूल जाते हैं, उसी ओर संकेत किया गया है।
3. शिक्षकों, जनता की दयनीय हालत का साक्षात चित्रण हुआ है।
4. प्रस्तुत पद्य भाग में कवि तुलसीदास की उक्ति द्वारा अपने मंतव्य को स्पष्ट किया है।
5. भाषा सरल है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।
7. प्रजातन्त्र व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किया गया है।
8. वीप्सा अलंकार का सुंदर प्रयोग है।

आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी

"आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहरलाल की
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहरलाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

आओ, शाही बैंड बजाएँ,
आओ, बंदनवार सजाएँ,
खुशियों में डूबें उतराएँ,
आओ तुमको सैर कराएँ-
उटकमंड की, शिमला-नैनीताल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

तुम मुस्कान लुटाती आओ,
तुम वरदान लुटाती जाओ,
आओ जी चाँदी के पथ पर,
आओ जी कंचन के रथ पर,
नजर बिछी है, एक-एक दिक्पाल की
छटा दिखाओ गति की लय की ताल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य हिन्दी के आधुनिक कबीर, बहुचर्चित उपन्यासकार 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'आओ रानी,

हम ढोएँगे पालकी' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में नेहरू की विदेश नीति पर कटु कटाक्ष किए हैं क्योंकि इंग्लैण्ड साम्राज्यवादी देश है और स्वतन्त्र भारत के कंधे पर भी गुलामी की पालकी लदी हुई है। वास्तव में यहाँ भारतीय अर्थव्यवस्था और राजनीति पर बढ़ते साम्राज्यवादी दबाव संकेतित हैं। कवि स्पष्ट प्रश्न पूछता है कि स्वतन्त्रता के बाद भी भारत को राष्ट्रमण्डल के हाथों गिरवी क्यों रखा जा रहा है? कवि यहाँ नेहरू की विदेश नीति की आलोचना करते हुए कहते हैं।

व्याख्या

कवि इंग्लैण्ड की रानी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि आओ रानी हम आपको ढोने के लिए तैयार हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की भी यही सम्मति है कि हम साम्राज्यवादी देश इंग्लैण्ड के साथ अपनी विदेश नीति स्थापित करें। ऐसा करके प्रधानमंत्री फटे-पुराने जाल की मरम्मत करेंगे। आओ हे रानी! हम आपके स्वागत में शाही बैंड बजाकर आपके स्वागत में बंदनवार एवं फूलों की लड़ियाँ लगाकर पूरे भारत को अलंक त करेंगे। आपके भारत आगमन पर हम सब भारतवासी खुशियाँ मनाएंगे एवं हर्षोल्लास की धूम में नाच उठेंगे। हम आपको हमारे यहाँ के प्रसिद्ध स्थलों की यात्रा कराएंगे। तुम केवल भारतीयों पर अपनी क पा द ष्टि बनाए रखो, उन पर अपनी हँसी न्योछावर करती रहो और भारतीय जनता को आशीर्वाद देती रहो। हे इंग्लैण्ड की महारानी! हमने आपका स्वागत करने के लिए सोने और चाँदी से निर्मित मार्ग को खोल दिया है अर्थात् आपके स्वागत में हम भारतीय तुम्हारे ऊपर सोने और चाँदी को बिखेर देंगे। तुम्हें सभी खुशियाँ प्रदान करेंगे। आपके स्वागत में हमारी आँखों की पलकें बिछी हुई हैं। दिशाओं के स्वामी हाथी भी आपका स्वागत करने के लिए नजरें झुकाए खड़े हैं। इसलिए आप हमारे यहाँ आकर हमें क तार्थ करें और अपनी चाल की सुर, ताल और लय दिखाकर हमें धन्य करें।

विशेष

1. जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति पर कटु व्यंग्य किया गया है।
2. भारतीय किस कदर इंग्लैण्ड की महारानी की सेवा करना चाहते हैं, इसका विवरण किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाव, भाषा एवं शैली का उत्तम सामंजस्य है।

"सैनिक तुम्हें सलामी देंगे
लोग-बाग बलि-बलि जाएँगे
द ग-द ग में खुशियाँ छलकेंगी
ओसो में दूबें झलकेंगी
प्रणति मिलेगी नए राष्ट्र की भाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी।

बेबस-बेसुध, सूखे-रूखड़े,
हम ठहरे तिनकों के टुकड़े
टहनी हो तुम भारी भरकम डाल की
खोज खबर तो लो अपने भक्तों के खास महाल की!
लो कपूर की लपट
आरती लो सोन के थाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग सच्चे जननायक, समाज सुधारक, हिन्दी के आधुनिक कबीर, जनकवि स्वनाम धन्य 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' से अवतरित है। प्रस्तुत पद्य में नेहरू की विदेश नीति की कटु आलोचना की गई है। जब भारत स्वतंत्र हो चुका है तो साम्राज्यवादी देशों से गठबंधन अनुचित है। कवि इंग्लैण्ड के साथ भारत के

सम्बन्धों का विरोध करता है, क्योंकि साम्राज्यवादी देश फिर से उसे आर्थिक व राजनैतिक द ष्टि से पराधीन बना सकते हैं।

व्याख्या

कवि कहता है कि नेहरू जी ने इंग्लैण्ड की महारानी के स्वागतार्थ कहा कि भारत के वीर सैनिक आपके यहाँ पधारने पर सम्मानपूर्वक सलामी देंगे और भारतवर्ष के सभी नर-नारी प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे ऊपर बलिहारी जाएंगे तथा उनकी आँखों में तुम्हारे आगमन की खुशी स्पष्ट झलकती हुई दिखाई देगी। तुम्हारे स्वागत में हरी-भरी घास भी अपने ऊपर ओस की बूदें झलकाकर स्वागत करेंगी। तुम्हें नए राष्ट्र भारतवर्ष के मस्तक का सम्मान मिलेगा और इससे तुम्हारा पूरे विश्व में सम्मान व वजूद बढ़ेगा। भारतवर्ष तो इंग्लैण्ड के मुकाबले में गरीब देश हैं तथा जहाँ के लोग भी रूखे-सूखे बेवस व वेसुध हैं तथा वे तो तिनको के टुकड़ों के समकक्ष हैं जबकि हेरानी तुम तो भारी भरकम डाल की टहनी हो अर्थात् भारत इतना सम्पन्न देश नहीं है जितना सम्पन्न और साम्राज्यवादी देश है। तुम्हें अपने भक्तों की खोजखबर लेनी चाहिए। भारत के लोग तो इंग्लैण्ड के मित्र व भक्त रहे हैं। तुम्हें यहाँ आकर सम्मान ग्रहण करना चाहिए। सोने के थाल से आरती उतरवानी चाहिए और कपूर की सुगन्धित महक की लेनी चाहिए। आओ रानी हम आपकी पालकी उठाने के लिए तैयार है।

विशेष

1. नेहरू की विदेश नीति पर कटु-कटाक्ष किया गया है।
2. अनुप्रास एवं वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाव, भाषा एवं शैली का सुन्दर समन्वय है।

> "भूखी भारत माता के सूखे हाथों को चूम लो
> प्रेसिडेंट की लंच-डिनर में स्वाद बदल लो, झूम लो
> पद्म भूषणों, भारत-रत्नों से उनके उद्‌गार लो
> पर्लिमेंट के प्रतिनिधियों से आदल लो सत्कार लो
> मिनिस्टरों से शेक हैंड लो, जनता से जयकार लो
> दाएँ-बाएँ खड़े हजारी ऑफिसरों से प्यार लो
> धन कुबेर उत्सुक दीखेंगे उनके जरा दुलार लो
> होंठों को कंपित कर लो, रह-रह के कनखी मार लो
> बिजली की यह दीपमालिका फिर-फिर इसे निहार लो
>
> यह तो नई-नई दिल्ली है, दिल में इसे उतार लो
> एक बात कह दूँ मलका, थोड़ी-सी लाज उधार लो
> बापू को मत छेड़ो, अपने पुरखों से उपहार लो
> जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की!
> आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
> रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की!
> यही हुई है राय जवाहरलाल की!
> आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!"

संदर्भ

प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के आधुनिक कबीर, जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' से अवतरित है। इस कविता का संदर्भ राजनीतिक है परन्तु नेहरू की विदेश नीति पर कटु कटाक्ष किया है। ब्रिटेन अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए उसे साम्राज्यवादी जाल में फंसाना चाहता था तथा नेहरू इसमें सहयोग देकर भिन्नता

के फटे पुराने जाल की मरम्मत करने के लिए तत्पर था। कवि की इस पूरी कविता में व्यंग्य का तीखापन व्याप्त है।

व्याख्या

कवि ब्रिटेन की रानी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि भारत माता दरिद्र है, भूखी है अतः तुम उसके भूखे, सूखे एवं कांतिहीन हाथों को चूमकर उसे क तार्थ कर दो। अपनी जिह्वा के स्वाद को बदलने के लिए प्रेसिडेंट के पास लंच और डिनर ग्रहण करो तथा वहाँ मस्ती में झूमो। पद्मभूषण और भारत रत्न पुरस्कारों से उनकी भावनाओं को जानो और पार्लियामेंट के सदस्यों से आदर-सत्कार प्राप्त करो। यहाँ भारतवर्ष में आने के बाद पद्मभूषण भारत रत्न विजेताओं व पार्लियामेंट के प्रतिनिधियों से वार्तालाप करो तथा उनसे सम्मान पाओ। मंत्रीगण से हाथ मिलाओ और भारतीय जनता तुम्हारी जय-जयकार करेंगी। तुम्हारी यश गाथा गाएगी। तुम्हारे दाएँ-बाएँ हजारों ऑफीसर खड़े होंगे, वे तुम्हें प्यार प्रदान कर रहे होंगे। पूँजीपति वर्ग तुमसे मिलने के लिए बड़े व्याकुल होकर और लालायित होंगे। अतः उनसे प्रेमपूर्वक मिलो। अपने होठों को कँपा लो तथा रह-रह के कनखड़ियों से इधर-उधर देख लो। तुम्हारे सम्मान में लगाई गई बिजली के दीपों की इस पंक्ति को बार-बार देख लो क्योंकि पूरी जनता तो अंधकार में डूबी हुई है लेकिन तुम्हारे सम्मान में दीपों की माला सजाई गई है।

कवि कहते हैं कि दिल्ली अभी नई-नई है, इसलिए आप यहाँ चलकर इसके सौंदर्य को अपने हृदय में उतार लो। लेकिन मैं तुमसे एक बात कहता हूँ मलिका! कि आप जरा सी लज्जा और शर्म को भी उधार ले लो। आप राजघाट पर जाकर गांधी जी को मत छेड़ो और अपने पूर्वजों से उपहार स्वरूप में इसे प्राप्त करो। कवि इंग्लैण्ड की जय-जयकार करता हुआ इस कतिकाल की भी जय बोलता है। आओ रानी हम आपकी पालकी ढोने के लिए अर्थात् उठाने के लिए तैयार हैं और नेहरू जी मित्रता रूपी फटे पुराने जाल की मरम्मत करेंगे।

प्रधानमंत्री की भी यही सम्मति है कि भारत स्वतंत्र होकर भी साम्राज्यवादी देश ब्रिटेन की पालकी ढोए, उसका स्वागत करे।

विशेष

1. नेहरू की विदेश नीति का कवि ने विरोध किया है।
2. अनुप्रास एवं वीप्सा अलंकारों का सुंदर प्रयोग है।
3. नौटकी में लोकगीत की धुन व्यंग्य सहित अनूठी बन पड़ी है।
4. भाषा सरल एवं स्पष्ट है।
5. भावपक्ष एवं कलापक्ष का सुंदर समन्वय है।

तीनों बंदर बापू के

"बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बंदर बापू के!
ज्ञानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बंदर बापू के!
जल-थल-गगन-बिहारी निकले तीनों बंदर बापू के!
लीला के गिरधारी निकले तीनों बंदर बापू के!
सर्वोदय के नटवर लाल फैला दुनिया भर में जाल
अभी जिएंगे ये सौ साल ढाई घर घोड़े की चाल
मत पूछो तुम इनका हाल सर्वोदय के नटवर लाल!"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यभाग हीन, दलित, पीड़ित व शोषितों के हमदर्द, हिंदी के आधुनिक कबीर, जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने उन समाज सेवियों और नेताओं पर व्यंग्य किया है जो गांधी के अनुयायी होने का दावा करते हैं किंतु वही लोग गीता और उपनिषद् के सिद्धांतों की आड़ लेकर अनैतिक और अनुचित कार्य

करते हैं और पूँजीपतियों के हित साधक हैं।

व्याख्या

महात्मा गांधी जिन्हें भारतीय जनता बापू कहकर सम्बोधित करती है। उनके तीन बंदर अर्थात् न बुरा देखना, न बुरा सुनना, न बुरा बोलना। आज वही गांधी जी के अनुयायी समाजसेवी व राजनेता आज सत्य, अहिंसा और शांति के सिद्धांतों का पालन करने में स्वयं गांधी जी से भी आगे निकल गए हैं अर्थात् जितनी निष्ठा और लगाव इन समाजसेवी एवं नेताओं का गांधी जी के सिद्धांतों के प्रति है शायद स्वयं गांधीजी का नहीं होगा। वे गांधी दर्शन के सरल सूत्रों की उलझाने वाली कठिन व्याख्या कर रहे हैं। वास्वत में ये समाजसेवी या राजनेता परमात्मा की भांति सबको जीवनदान देने वाले हैं। उपनिषदों और वेदों की व्याख्या करने वाले ये समाजसेवी-राजनेता सच्चे अर्थो में ज्ञानी कहलाने के अधिकारी हैं। ये लोग सच्ची साधना करने वाले ध्यानी है। साधारण जनता को मूर्ख बनाने के लिए ये समाजसेवी-राजनेता योग साधना और उपनिषदों तथा वेदों का आश्रय लेते हैं। वास्तव में ये ढोंगी और पाखण्डी हैं। इन्होंने समुद्री जहाज में यात्रा करके समुद्र की असीम अनन्त गहराई व विस्तार को माप लिया है तथा हवाई जहाज से अनन्त आकाश की छाती को चीर दिया है। ये गोवर्धन पर्वत के धारण करने वाले श्री क ष्ण की भांति अनेक प्रकार मोह-माया का जाल पूरी दुनिया में फैला रखा है। अभी ये सौ साल तक जीवित रहेंगे और इनकी चाल भी ढाई घर घोड़े की भांति है। तुम इन सर्वोदय के नटवरलाल का हालचाल मत पूछो?

विशेष

1. नागार्जुन जी ने गाँधी के तथाकथित पाखण्डी अनुयायियों पर कटु कटाक्ष किया है।
2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है।
3. भाषा प्रवाहमयी है।
4. भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है।
5. कोमलकांत पदावली है।

“लम्बी उमर मिली है, खुश हैं तीनों बंदर बापू के
दिल की कली खिली है, खुश है तीनों बंदर बापू के
बूढ़े हैं फिर भी जवान है तीनों बंदर बापू के
परम चतुर हैं, अति सुजान हैं तीनों बंदर बापू के
सौंवी बरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बच्चे होंगे माला माल
खूब गलेगी उनकी दाल
औरों की टपकेगी राल
इनकी मगर तनेगी पाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवर लाल।”

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग आधुनिक कबीर, सच्चे समाज सुधारक, प्रगतिशील कवि ‘श्री नागार्जुन’ द्वारा विरचित कविता ‘तीनों बंदर बापू के’ से अवतरित है। इसमें अवसरवादी, स्वार्थी तथा तथाकथित गाँधीवादी नेताओं पर कटु कटाक्ष किया गया है। उन नेताओं की करनी और कथनी में अंतर है। कवि इन्हें ज्ञानी और ध्यानी घोषित करता है।

व्याख्या

कवि व्यंग्यात्मक शैली में कहते हैं कि इन तथाकथित नेताओं, समाज सुधारकों को लम्बी आयु मिली है, इसीलिए वे अत्यधिक खुश हैं। इनके दिल की कली खिली हुई है। क्योंकि ये समाज में सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ भोग रहे हैं। इन्हें राजनैतिक संरक्षण प्राप्त है साथ ही इन्हें समाज में सम्मान प्राप्त है। यद्यपि आयु की द ष्टि से ये बूढ़े हैं परन्तु फिर भी दिल

इनका जवान है। ये रसिक प्रव त्ति के स्वामी है। परम चतुर एवं अत्यन्त सुजान हैं, अपनी चातुर्य भावना के साथ गांधी जी का नाम लेकर ये अपना दाम निकालना खूब जानते हैं। बापू के ये तथाकथित अनुयायी उनकी सौंवी बरसी मना रहे हैं और उनके द्वारा किए गए कार्यों के अनुसरण का दिखावा करके उन्हें ही मूर्ख और शांति की बात करते हैं परन्तु इन सिद्धान्तों की आड़ में धन एकत्रित करना व अनैतिक कर्म करना इनका प्रमुख उद्देश्य है। शांति का भाषण देने वाले ये नेता लोग चारों ओर अशांति फैला रहे हैं। अहिंसा की पूजा करने वाले स्वयं ये नेता उनके साथ अनाचार और अत्याचार कर रहे हैं। इस प्रकार का कार्य करने वाले नेताओं के ही बच्चे मालामाल होते हैं और उनका प्रत्येक कार्य स्वतः ही पूरा हो जाता है। दूसरों की इन पर लालच भरी नजर रहेगी। इनकी जीवन-शैली देखकर दूसरों के मन ललचाया करेगा। इनका कार्य हमेशा पूरा होगा। इसलिए तुम ऐसे व्यक्तियों का हाल मत पूछो।

विशेष

1. गीता और उपनिषदों को सुरक्षा कवच बनाकर तथा उनके नाम पर शोषण और अत्याचार करने वाले तथाकथित गाँधीवादी नेताओं की अच्छी खबर ली है।
2. अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. भाक भाषा और शैली का अद्‌भुत सामन्जस्य है।
5. भाव पक्ष और कला पक्ष का उत्तम समन्वय है।

"सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के
युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बंदर बापू के
सत्य अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
पँछो से कवि आँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
मुस्काते हैं आँखें मीचे तीनों बंदर बापू के
छील रहे गीता की खाल
उपनिषदें हैं इनकी ढाल
उधर सजे मोती के थाल
इधर सजे सतजुगी दलाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवर लाल।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग प्रगतिवादी जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने गाँधीवादियों पर कटु व्यंग्य किए हैं क्योंकि उनकी करनी और कथनी में अंतर है और वे गांधी दर्शन का अक्षरशः पालन न करके समाज में दीन-दलितों का शोषण करते हैं और उनके ऊपर अमानवीय अत्याचार करते हैं। कवि उन्हें दीनदलितों को भक्षक और पूंजीपतियों का रक्षक घोषित करता है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि ये तथाकथित गाँधीवादी नेता जनसाधारण का शोषण करके पूँजीपतियों एवं सेठों का हित साधने अर्थात् उनका कल्याण कर रहे हैं। वास्तव में वे पूँजीपतियों के हित चिंतक एवं हित साधक है। ये गाँधीवादी नेता पूरे युग के लोगों को प्रवचन एवं उपदेश देकर उनपर चलने के लिए प्रेरित करते हैं अर्थात् इन नेताओं को समाज में उपदेशक या प्रवचनकर्ताओं की भांति सम्मान दिया जाता है। गाँधी द्वारा प्रदत्त सत्य एवं अहिंसा के मार्ग का ये नेता अक्षरशः पालन न करके गाँधीदर्शन ही खिल्ली उड़ा रहे हैं। उनकी मर्यादा एवं गौरव को मिटाने पर तुले हुए हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि ये तथाकथित

नेतागण पूँजीपतियों की थैली से उनकी शोभा का मूल्यांकन करने का प्रयास करते हैं। इनको कांग्रेस पार्टी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। और एक समाज सेवक की द ष्टि से इन्हें पार्टी में एक कार्य कर्ता का स्थान प्राप्त है। ये वास्तव में पाखण्डी एवं ढोंगी हैं, सब कुछ अपनी आँखों से देखने के बाद भी स्वयं अनजान बने आँखें बंद किए रहते हैं। ये धार्मिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवतगीता तथा उपनिषदों की आड़ में सब प्रकार के अनुचित कार्य करते हैं। धर्म के नाम पर आम जनता को धोखा देते हैं। इनके पास सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, ये ऐश्वर्यमय जीवन जीते हैं। इनके पास मोतियों के थाल सजे हुए हैं और दूसरी ओर ये सतयुग की दलीलें देकर अपने कार्यो की पुष्टि करते हैं। कवि कहते हैं कि तुम इन पाखण्डी, स्वार्थी, ढोंगी, तथाकथित गाँधीवादी नेताओं का हाल मत पूछो! इन्हें अपने ही हाल पर छोड़ दो।

विशेष

1. गाँधीवादी नेताओं पर कटु व्यंग्य किया गया है।
2. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।

“बदल-बदल कर चखे मलाई तीनों बंदर बापू के
मूड़ रहे दुनिया जहान को तीनों बंदर बापू के
चिढ़ा रहे हैं आसमान को तीनों बंदर बापू के
करें रात-दिन टूर हवाई तीनों बंदर बापू के
गाँधी छाप झूल डाले हैं तीनों बंदर बापू के
असली हैं, सर्कस वाले हैं तीनों बंदर बापू के
दिल चटकीला, उजले बाल
नाप चुके हैं गगन विशाल
फूल गए हैं कैसे गाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवर लाल।”

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी के आधुनिक कबीर, प्रगतिवादी कवि ‘श्री नागार्जुन’ द्वारा विरचित कविता ‘तीनों बंदर बापू के’ से अवतरित हैं। प्रस्तुत कविता में कवि नागार्जुन बापू के अनुयायियों, समाजसेवी या राजनेताओं पर कटु कटाक्ष करता है क्योंकि वे दीन-दलितों का शोषण करते हैं तथा उनपर अमानवीय अत्याचार करते हैं और दूसरी ओर वे पूँजीपतियों के हित चिंतक और हितसाधक है। कवि स्पष्ट करता है कि उनकी करनी और कथनी में अंतर है और वे पाखण्डी एवं ढोंगी हैं। उपनिषदों एवं गीता को सुरक्षा कवच के रूप में धारण करते हैं।

व्याख्या

कवि का कहना है - बापू के तथाकथित ये गाँधीवादी नेता अपनी सत्ता का बदल बदल कर स्वाद चखते हैं और सारे संसार को लूट रहे हैं, अपने आचरण द्वारा लोगों को उल्लू बना रहे हैं। वास्तव धन प्राप्त करना ही इनका अभिप्रेय है। इसीलिए गाँधीदर्शन की ओट में ये पूँजीपतियों से धन ऐंठ रहे हैं। ये आसमान से भी ऊँचा उठकर आकाश की बुलंदियों को छूकर उनसे भी ऊपर स्वयं को विकसित करके आसमान को चिढ़ाते हुए प्रतीत हो रहे हैं। इनको सरकार में बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त है इसीलिए ये दिन-रात हवाई यात्रा करते हैं। ये नेता अपने स्वाद को परिवर्तित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्यपदार्थो का रसास्वादन करते हैं। इन्होंने अपने शरीरों पर गाँधीवादी पहनावे तथा गाँधीवादी थैले अपने कन्धों पर लटका रखे हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि ये गांधीवादी नेता सर्कस वाले कलाकारों की भांति भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिनय करते हैं। ये रोमानी

प्रव त्ति के स्वामी हैं, सौंदर्य प्रेमी हैं यद्यपि उम्र के ये नेता व द्ध हो गए हैं परन्तु इनके मन में चाह अभी बाकी है। अर्थात् व द्धावस्था आने पर भी इनके दिल जवान हैं इनके मन स्त्री-सुख की चाह शेष है। यद्यपि इनके बाल सफेद हो गए हैं। संतुलित भोजन करने के बाद तथा सुख-सुविधापूर्ण जीवन जीने के कारण इनके गाल फूल गए हैं। कवि स्पष्ट कहता है कि तुम इनका हाल मत पूछो क्योंकि ये सर्वोदय के नटवर लाल हैं।

विशेष

1. महात्मा गाँधी के पाखण्डी, अनुयायियों पर कटु व्यंग्य किया है।
2. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
3. अनुप्रास, अलंकार का प्रयोग है।
4. भाव, भाषा एवं शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

"हमें अँगूठा दिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के
कैसी हिकमत सिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के
प्रेम पगे हैं, शहद-सने हैं तीनों बंदर बापू के
गुरूओं के भी गुरू बने हैं तीनों बंदर बापू के
सौंवी वरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण प्रगतिवादी व जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। इसमें कवि महात्मा गाँधी के अनुयायियों, समाजसेवी राजनेताओं पर कटु व्यंग्य करता है क्योंकि उनकी कथनी और करनी में अंतर है तथा दीन-दुखियों का शोषण करते हैं और उनपर अमानवीय अत्याचार करते हैं। कवि ने स्पष्ट किया है कि ये रोमानी प्रव त्ति के स्वामी है और दिल चटकीला है तथा बाल सफेद हो गए हैं। सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं को भोगने के कारण इनके गाल फूल गए हैं। कवि कहता है-

व्याख्या

कवि कहते हैं कि जब नेताओं को जीवन में सफलता मिल गई तब ये सभी हमें अँगूठा दिखा रहे हैं अर्थात् जब इन्हें प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर ली है तथा समाज में प्रभुत्व एवं गौरव प्राप्त कर लिया है। अब ये गाँधीवादी समाजसेवी या राजनेता मुझे चिढ़ा रहे हैं क्योंकि मैंने जीवन में असफलता ही प्राप्त की है। मैं दीन-दलितों, पीड़ितों व शोषितों का हमदर्द व पक्षधर रहा हूँ जबकि ये पूँजीपतियों के हित चिंतक वहित साधक रहे हैं तथा दीन-दलितों का शोषण करके धन एकत्रित कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि ये समाज सेवी-राजनेता सारे संसार के लोगों की खिल्ली उड़ा रहे हैं व उनको जीवन जीने की पद्धति या शैली सिखा रहे हैं। ये अत्यन्त मधुर भाषी हैं और प्रेम रस में सराबोर है। मधुरता से डूबी हुई शहद में सनी हुई मीठी-मीठी बात करते हैं अर्थात् ये एक-दूसरे से म दुल व्यवहार करते हैं। ये वास्तव में धर्म गुरूओं व अन्य गुरूओं से भी महान् बने हुए हैं और उनके भी गुरू बन बैठे हैं। ये धर्म गुरूओं व अन्य गुरूओं को भी उपदेश या प्रवचन देते हैं। ये गाँधी की सौंवी बरसी मना रहे हैं अर्थात् गाँधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उनके तथाकथित नेता उनकी सौंवी साल गिरह मना रहे हैं। वास्तव में ये उनके अनुयायी गाँधी जी को उल्लू बना रहे हैं क्योंकि गांधी जी का सहारा लेकर धन ऐंठने में लगे हुए हैं और समाज में महत्त्व प्राप्त कर रहे हैं। बापू के दर्शन को आलाप कर सत्य, अहिंसा और शांति का उच्चारण कर करके इन्होंने समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है और मोतियों के थाल भी एकत्रित कर लिए हैं।

विशेष

1. गाँधी के अनुयायियों पर तीव्र व्यंग्य किया गया है।
2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. भाषा सरल स्पष्ट एवं प्रवाहमयी है।
4. आव त्ति शैली का प्रयोग हुआ है।
5. संगीतात्मकता विद्यमान है।

सत्य

“सत्य को लकवा मार गया है
वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात
वह फटी-फटी आँखों से
टुकुर-टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात
कोई भी सामने से आए-जाए
सत्य की सूची निगाहों में जरा भी फर्क नहीं पड़ता
पथराई नजरों से वह यों ही देखता रहेगा
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात।”

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी के आधुनिक कबीर जनकवि ‘श्री नागार्जुन’ द्वारा विरचित उनकी प्रसिद्ध कविता ‘सत्य’ से अवतरित है। कवि वर्तमान युग में असत्य, अन्याय, अत्याचार और अनैतिकता की महत्ता को स्थापित करता है कि आज चारों ओर असत्य का प्रभुत्व छाया हुआ है। स्वार्थी, ढोंगी एवं पाखण्डी व्यक्ति पुरस्क त होते हैं, अयोग्य व्यक्तियों का मान सम्मान होता है। सत्य का पक्ष लेने वालों का निरादर होता है। कवि सत्य की निष्क्रियता-जड़ता पर विचार प्रकट करते हुए कहता है-

व्याख्या

कवि का कथन है कि चारों ओर असत्य के वातावरण को देखकर ऐसा लगता है जैसे सत्य को लकवा मार गया है। वह पंगु हो गया है। सत्यवादी व्यक्तियों को संदेह की द ष्टि से देखा जाता है और उन्हें दण्डित किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सतय अकर्मण्य, निर्जीव एवं जड़ हो गया है, उसे पक्षाघात हो गया है। वह लम्बी काठ की लकड़ी की तरह सारा दिन और सारी रात यूँ ही पड़ा रहता है। शरीर के अंगों ने क्रिया शीलता का परित्याग कर दिया है। वह अपलक, एकटक द ष्टि से सबको देखता रहता है लेकिन कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करता। सुबह से सायं तक प्रत्येक आने-जाने वाले को लगातार देखता भर रहता है। कोई भी उसके सामने आए या जाए उसकी सूनी निगाहों में कोई भी अंतर नहीं पड़ता। वह पथराई द ष्टि से सारी रात सारी दिन इसी तरह शून्य में देखता रहता है। क्योंकि वर्तमान युग में सत्य का प्रभुत्व, उसका बोलबाला सब कुछ समाप्त हो गया है। चारों तरफ असत्य का प्रभुत्व छाया हुआ है। झूठे-अयोगय व्यक्तियों को गद्दी पर आसीन किया जा रहा है तथा योग्य एवं विद्वान व्यक्ति धूल छानते रहते हैं।

विशेष

1. वर्तमान युग में हेरा-फेरी, छल-कपट, अयोग्यता, अनैतिकता का बोलबाला है इसपर कटाक्ष किया गया है।
2. ‘अंधेर नगरी चौपट राजा’ की उक्ति चरितार्थ होती प्रतीत हो रही है।
3. इस पद्य में सत्य का मानवीकरण किया गया है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
5. भाषा में गहनता विद्यमान है।

“सत्य को लकवा मार गया है
गले से ऊपर वाली मशीनरी पूरी तरह बेकार हो गई है
सोचना बंद
समझना बंद

याद करना बंद
याद रखना बंद
दिमाग की रगों में जरा भी हरकत नहीं होती
सत्य को लकवा मार गया है
कौर अंदर डालकर जबड़ों को झटका देना पड़ता है
तब जाकर खाना गले के अंदर उतरता है
ऊपरवाली मशीनरी पूरी तरह बेकार हो गई है
सत्य को लकवा मार गया है।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त करने वाले, हिन्दी के आधुनिक कबीर 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'सत्य' से अवतरित है। कवि वर्तमान व्यवस्था पर कटु व्यंग्य करता है कि वर्तमान समय में चारों ओर असत्य, अत्याचार, छल-कपट और हेरा-फेरी का बोलवाला है जिसके कारण सत्य उपेक्षित-सा हो गया है और उसे लकवा मार गया है। वह अपलक द ष्टि से एकटक सबको निहारता रहता है परन्तु कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता।

व्याख्या

कवि स्पष्ट करता है कि सत्य को लकवा मार गया है। उसके शारीरिक अंग-प्रत्यंग शिथिल एवं निष्क्रिय हो गए हैं। उसके गले स ऊपर का भाग निष्क्रिय एवं क्रियाशून्य हो गया प्रतीत होता है। उसके बोलने की शक्ति समाप्त हो गई है, उसके सोचने-समझने की शक्ति तभी समाप्त हो गई है अर्थात् उसके अच्छे-बुरे की पहचान करने की शक्ति का पतन हो गया है। वह न सोच सकता है, न समझ सकता है, यहाँ तक कि उसकी स्मरण शक्ति भी नष्ट हो गई है। उसके मस्तिष्क की नाड़ियों ने भी कार्य करना बंद कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य को पक्षाघत हो गया है। ऐसी कौन-सी वस्तु है जो सत्य के मुख में हाथ डालकर उसे झिंझोड़ देने का सामर्थ्य रखता है। यदि ऐसा हो पाता तो तभी उसका खाना अंदर उसके गले से नीचे उतर सकेगा, अन्यथा नहीं। वास्तव में उसके ऊपरवाला भाग (मशीनरी) बेकार हो गया है। उसमें न बौद्धिक क्षमता है, न चिंतन मनन करने की योग्यता है और न वाकपटुता ही रही है। अतः वह अवशिथिल होकर चुपचाप पड़ा रहता है।

विशेष

1. वर्तमान युग में हेरा-फेरी, छल-कपट, योग्यता-अनैतिकता का बोलबाला है, इस पर कटाक्ष किया गया है।
2. सत्य का मानवीकरण किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।

"वह लंबे काठ की तरह पड़ा रहता है
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात
वह आपका हाथ थामे रहेगा देर तक
वह आपकी ओर देखता रहेगा देर तक
वह आपकी बातें सुनता रहेगा देर तक
लेकिन लगेगा नहीं कि उसने आपको पहचान लिया है
जी नहीं, सत्य आपको बिल्कुल नहीं पहचानेगा
पहचान की उसकी क्षमता हमेशा के लिए लुप्त हो चुकी है
जी हाँ, सत्य का लकवा मार गया है
उसे इमरजेंसी का शाक लगा है
लगता है, अब वह किसी काम का न रहा
जी हाँ, सत्य अब पड़ा रहेगा
लोथ की तरह, स्पंदनशून्य मांसल देह की तरह!"

सन्दर्भ

प्रस्तुत काव्यांश हिन्दी के आधुनिक कबीर, प्रगतिशील कवि, स्वनामधन्य 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'सत्य' से अवतरित किया गया है। इसमें बताया गया है कि वर्तमान समय में चारों तरफ हेरा-फेरी, छल-कपट का वातावरण फैला हुआ है। सत्य का कहीं नामोनिशान तक नहीं है ऐसा लगता है कि उसे पक्षाघात हो गया है। इसी कारण इमरजेन्सी लगाए जाने के कारण उसको शॉक लग गया है और उसके शारीरिक अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए हैं।

व्याख्या

कवि का कहना है कि सत्य सारे दिन सारी रात काठ की लकड़ी के समान निष्क्रिय होकर चुपचाप पड़ा रहता है। क्योंकि वर्तमान युग में उसकी कोई प्रभुता नहीं है। वह काफी लम्बे समय तक एक व्यक्ति की बाजू थामे रहता है और एकटक द ष्टि से निरन्तर उसे देखता रहता है परन्तु उसे पहचान नहीं सकता। एक कुशल श्रोता के समान बनकर वक्ता की बातें धैर्य के साथ सुनता रहेगा परन्तु ऐसा नहीं लगेगा कि उसने आपको पहचान लिया है उसकी पहचान करने की क्षमता समाप्त-सी हो गई है। उसे पक्षाघात हो गया है। उसे इमरजेन्सी का शॉक लगा है क्योंकि आपातकाल में सत्य का गला घोंटा गया, न्याय को अनदेखा किया गया तथा सर्वत्र असत्य, छल-कपट का बोल-बाला रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब सत्य किसी काम का नहीं रहा और अब सत्य एक लोथ की भांति अर्थात् मांस के लोथड़े के समान निर्जीव निस्पंद व जड़ मांसल देह की तरह पड़ा रहता है। कोई क्रिया उसमें नहीं होती।

विशेष

1. वर्तमान समय में हेरा-फेरी, छल-कपट का बोलबाला है, इस पर कटाक्ष किया गया है।
2. सत्य की स्थिति का चित्रण किया गया है।
3. सत्य का मानवीकरण किया गया है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
5. उपमा और वीप्सा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।

7. मास्टर!

"धुन-खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे
कटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते रहते किसी तरह आदम के साँचे

अरे, अभी उस रोज वहाँ पर सरे आम जक्शन-बाजार में
शिक्षा मंत्री स्वयं पधारे चम-चम करती सजी कार में
ताने थे बंदूक सिपाही, खड़ी रहीं जीपें कतार में
चटा गए धीरज का इमरित, सुना गए बातें उधार में
चार कोस से दौड़े आए जब मंत्री की सुनी अवाई
लड़कों ने बेले बरसाए, मास्टर ने माला पहनाई
संगीनों की घनी छाँव में हिली माल, मूरत मुसकाई
तंबू में घुस गए मिनिस्टर, मास्टर पर कुछ दया न आई।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण प्रगतिशील कवि, आधुनिक कबीर, समाजसुधारक 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'मास्टर' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने वर्ग विषमता का उद्‌घाटन करते हुए शिक्षकों की दयनीय दशा पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी दर्शाया है कि किस कदर जर्जर भवनों में पाठशाला चलाई जाती है। कवि शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियों को पाठकों के समक्ष रखता है।

व्याख्या

कवि पाठशाला की जर्जर दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिन शहतीरों के ऊपर बारह कड़ियाँ रखी हुई हैं, वे शहतीर भी धुन के खाए हुए हैं। धुन खाए हुए शहतीर और उसके ऊपर रखी बारह कड़ियाँ अपने ऊपर रखे असीम बोझ के कारण परमात्मा का नाम स्मरण कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यालय की कड़ियाँ और शहतीर छत के बोझ को रोकने में असमर्थ है और वह अब गिरा कि तब गिरा की स्थिति में पहुँचा हुआ है। उसकी दीवारें फटी हुई है और छत में भी छिद्र हो गए हैं। वर्षा काल में इतना पानी टपकता जैसे विद्यालय पर छत नहीं, छत के स्थान पर छलनी रखी हो। दीवार में बने आले में बिसतुइयाँ नामक जहरीला जानवर न त्य करता-सा प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार विद्यार्थियों के सिर पर चारों ओर से खतरा है-छत गिरने का, दीवारें गिरने का, बिसतुइओं नामक जहरीले जानवर के काटने का। विद्यालय का अध्यापक इस प्रतिकूल वातावरण में छात्रों पर एक-एक मिनट में पाँच-पाँच तमाचे बरसाकर उन्हें पढ़ाने का प्रयास कर रहा है। स्वयं से दुःखी मास्टर बेबस बच्चों को पीट-पीटकर उन्हें आदमी बनाने का प्रयास कर रहा है। अरे अभी उस दिन की बात है कि शिक्षा मंत्री अपनी चमचमाती कार में बैठकर जक्शन बाजार में पधारे थे। सिपाही अपनी बंदूकें ताने खड़े थे और सरकारी जीपें कतार में लगी खड़ी थी। मंत्री महोदय जनता को धैर्य-सहनशीलता का अम त रूपी भाषण देकर चले गए। जैसे ही मास्टर को पता चला कि मंत्री महोदय आने वाले हैं तो वे अपने छात्रों को लेकर चार कोस तक पैदल चलकर वहाँ पहुँचे। बच्चों ने उनका (मंत्री जी का) स्वागत करने के लिए बेले के फूल बरसाए और मास्टर जी ने उन्हें माला पहनाई। संगीनों अर्थात् बंदूकों की छांव में मंत्री रूपी मूरत इस स्वागत सत्कार को पाकर हल्के से मुस्कुराए; बच्चों द्वारा पहनाई गई माला भी कुछ देर के लिए हिली। बस इतना ही करके मंत्री जी आराम करने के लिए तम्बू में प्रवेश कर गए। उन्होंने मास्टर की दयनीय दशा दी और कोई ध्यान नहीं दिया। न ही उनकी कोई बात सुनी।

विशेष

1. वर्ग विषमता का साक्षात चित्रण है।
2. नेताओं की करनी और कथनी के अंतर को अप्रत्यक्ष रूप से उजागर किया गया है।
3. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाषा सरल, स्पष्ट एवं आम बोलचाल की है।
6. कोमलकांत पदावली है।

"अंदर जाकर तंबू में ही चलो दुख दर्द सुनाएँ
नहीं, अकेला मैं ही जाऊँ, कहीं भीड़ में वह घबराएँ
बचपन के परिचित ठहरे, हम क्यों न चार बात कर आएँ
मौका पाकर विद्यालय की बुरी दशा पर ध्यान दिलाएँ"
सुनकर बात गुरूजी की फिर "हाँ, हाँ" बोले लड़के सारे
"हम जब तक सुसता भी लेंगे आगे बढ़कर कुआँ किनारे"
हाथ हिलाकर मास्टर बोला, "जाओ बच्चो, जाओ प्यारे
चने चबाकर पानी पीना, सूख रहे हैं हलक तुम्हारे"

खिचड़ी बाल, साँवली सूरत दुखरन प्राइमरी के मास्टर
लपके-लपके बढ़े आ रहे मैदानी हाते के भीतर
जहाँ तंबुओं की कतार थी जिसमें पैठे रहे मिनिस्टर
चारों ओर मिलिटरी, जिसके लोहे का टोपा था सिर पर
पके बाँस का पक्का घेरा, हरे बाँस की कच्ची फाटक
पतला बाँस बीस गज ऊँचा गड़ा हुआ था पूरी धड़ तक
फर-फर-फर फहराने वाला तिनरंगा था जिसका मस्तक
दुखरन मास्टर लगे देखने कांगरेस की शान एकटक।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण प्रगतिशील कवि, आधुनिक कबीर, सच्चे जननायक 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'मास्टर' से अवतरित है। प्रस्तुत काव्यांश में शिक्षकों की दयनीय दशा और विद्यालयों की जर्जरित अवस्था पर प्रकाश डालते हुए वर्ग-वैषम्य का चित्रण किया गया है।

व्याख्या

कवि कहता है कि मंत्री जी से चार कोस पैदल चलकर मास्टर विद्यालय की जर्जरित अवस्था पर बात करने के लिए आए हैं। परन्तु मंत्री जी उनसे बात दिए बिना ही तम्बू में आराम करने के लिए चले जाते हैं। तब मास्टर जी ने सोचा क्यों न अन्दर जाकर ही मंत्री जी के सामने अपनी विनती सुनाई जाए। फिर उसने सोचा कि यह ठीक है कि अंदर चलकर ही बात करनी चाहिए परन्तु इतनी भीड़ सहित अंदर जाना उचित न होगा, कहीं मंत्री जी घबरा जाएँ, इसलिए मैं अकेला ही अंदर जाकर उनसे बात करता हूँ। फिर उन्होंने बच्चों से कहा कि मंत्री जी मेरे बचपन के परिचित हैं। हम दोनों बचपन में मित्र हुआ करते थे। इसलिए ही आज हम अवसर पाकर यहाँ अपने विद्यालय की खंडित अवस्था के विषय में बात करने आए हैं। सभी छात्र अपने अध्यापक की बात मानकर उनकी हाँ में हाँ मिलकर एक स्वर में कहने लगे कि ठीक है जी आप अकेले ही इस विषय में मंत्री जी से बात कर आओ तब तक हम आगे चलकर मार्ग में कुएँ के समीप बैठकर आराम कर लेंगे। अध्यापक ने बच्चों की बात मानकर हाथ हिलाकर कहा जाओ प्यारे बच्चो! तुम वहाँ बैठकर चने चबाकर पानी पी लेना क्योंकि तुम्हारा गला भी सूख रहा होगा।

प्राइमरी विद्यालय के मास्टर के बाल खिचड़ी जैसे, उलझे हुए और अस्त-व्यस्त थे। उनकी सूरत सांवली थी। वे मैदानी अहाते (आंगन) में लपकते हुए दौड़े चले आ रहे थे। जहाँ तम्बुओं की पंक्तियाँ लगी हुई थी और जिनमें मंत्री महोदय आराम फरमा रहे थे। चारों ओर मिलिटरी का पहरा था तथा इन सुरक्षा कर्मियों ने अपने-अपने सिरों पर लोहे की टोप पहन रखी थी। इन तम्बुओं के चारों ओर पक्के बाँस का घेरा बना हुआ था और हरे बाँस की कच्ची फाटक बनी हुई थी। वहाँ पर बीस गज ऊँचा पतला बाँस अपनी धड़ तक धरती में गड़ा हुआ था और जिसके ऊपरी भाग पर फर-फर फहराने वाला तिरंगा झण्डा विद्यमान था। दुखरन मास्टर कांग्रेस पार्टी की शान एवं गौरव को एकटक द ष्टि से देखने लगा।

विशेष

1. तिरंगे झण्डे की ऊँची शान का चित्रण है।
2. वीप्सा और अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
3. संगीतात्मकता विद्यमान है।
4. मंत्रियों की शान-शौकत का वर्णन है।
5. भाषा सरल, स्पष्ट एवं आम बोल चाल की शब्दावली से युक्त है।

"फाटक पर पहुँचे तो देखा, डटे हुए थे दो नेपाली
हाथों में संगीन सँभाले, लटक रही थी निजी भुजाली
"कहाँ जाएगा?" वे गुर्राए, आँखों में उतराई लाली
दुखरन का दिल दुखी हुआ, सुन सूखा तू-तू सूखी गाली
मास्टर बोले, "यों मत कहना, पढ़ा-लिखा हूँ, मैं हूँ शिक्षक
तुम भी हो जनता के सेवक, मैं भी हूँ जनता का सेवक"
फिर तो वे धकियाकर बोले "भागभाग, जा मत कर बकबक हम फौजी हैं, नहीं समझते क्या होता है सिच्चक-सेपक"
कुछ दिन बीते मास्टर ने यह कड़ा विरोध-पत्र लिख डाला
"ताम-झाम थे प्रजातंत्र के, लटका था सामंती ताला
मंत्री जी, इतनी जल्दी क्या आजादी का पिटा दिवाला
अजी आपको उस दिन मैंने नाहक ही पहनाई माला"
और लिखा "उस रोज आपसे भीख माँगने नहीं गया था
आप नए थे, नया ठाठ था, लेकिन मैं तो नहीं नया था
भूल गए क्या अजी आपका छोटा भाई फेल हुआ था
और आपने मुझे जेल से मर्मस्पर्शी पत्र लिखा था।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कवि, जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'मास्टर' से उद्ध त है। प्रस्तुत पद्य में एक शिक्षक की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। विद्यालय की जर्जर अवस्था के चित्रांकन के साथ-साथ वर्ग विषमता का भी उद्घाटन किया गया है। शिक्षा विभाग की बदहाली का जीवन्त उदाहरण है-विद्यालय की अवस्था एवं शिक्षक को वेतन प्राप्त न होना। दुखरन मास्टर चार कोस पैदल चलकर मंत्री महोदय से मिलने जाते हैं परन्तु मंत्री उनसे बातें किए बिना ही तम्बू में आराम करने चले जाते हैं। मास्टर स्वयं तम्बू में जाकर बातें करने का प्रयास करता है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि जब मास्टर मंत्री से तम्बू में अकेले ही वाद करने के लिए जाने लगे तो मार्ग के फाटक पर दो नेपाली पहरेदार बने खड़े थे। उन्होंने अपने हाथों में संगीने संभाल रखी थी और अपने अपने कंधों पर भुजाली लटका रखी थी। उन्होंने दुखरन लाल को देखा और क्रोध से आँखें लाल करके कहने लगे कि तू कौन है? और तू कहाँ जाएगा? दुखरन मास्टर ने जब उन दो पहरेदारों से तू, तड़ाक सुना, उनकी आवाज में कहीं कोई सम्मान न था, तब मास्टर का दिल बड़ा दुखी हुआ। उसने

अपने लिए ये शब्द एक प्रकार से सूखी गलियाँ ही लगी। परन्तु फिर भी शांत होकर कहने लगा कि भाई यूं मत समझना कि मैं अनपढ़ हूँ, अपितु पढ़ा लिखा हूँ, एक शिक्षक हूँ। इसलिए मैं भी जनता का सेवक हूँ और आप भी जनता के सेवक हैं। अर्थात् हम दोनों ही जनता की सेवा करते हैं। इतना सुनना था कि दोनों पहरेदारों ने मास्टर को धक्का देकर बोले तू भाग जा! ज्यादा बक-बक मतकर! हम फौजी हैं हमें तुम्हारी ये बातें अच्छी नहीं लगती, हम कोई सेवक नहीं है। हम तुम्हारी सेवक की भाषा नहीं समझते। जब दुखरन मास्टर की मंत्री से बातें नहीं हो पाई तो उन्होंने काफी दिनों के बाद मंत्री जी को अत्यन्त कड़ा पत्र लिखा कि यद्यपि प्रजातन्त्र है। इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने का अधिकार होता है परंतु ऐसा लगता है कि बाहर से तो प्रजातन्त्र का आवरण है परन्तु वास्तव में सामन्ती वातावरण फैला हुआ है उसका ताला लगा हुआ है। अर्थात् इस सामन्ती वातावरण में किसी व्यक्ति को मंत्री से मिलने तक का अधिकार नहीं दिया जाता। ऐसा लगता है मंत्री जी कि स्वतन्त्रता का दिवाला पिट गया है और सामंती व्यवस्था हावी हो गई। मैंने आपका स्वागत करते हुए उस दिन वैसे ही माला नहीं पहनाई थी और न ही मैं आपसे कोई भीख माँगने के लिए ही वहाँ आया था अपितु अपने अधिकारों की माँग करने के लिए आया था। आप नए-नए मंत्री बने थे, आपकी शान-शौकत भी नई थी लेकिन मैंने तो अनेकों मंत्री देखे हैं। मैं कोई नया नहीं था। अरे क्या आप वो दिन भूल गए जब आपका छोटा भाई परीक्षा में फेल हो गया था और आपने उसे पास कराने हेतु जेल से ही मुझे मर्मस्पर्शी पत्र लिखा था। ठीक है कि बुरे दिनों में कोई किसी का साथ नहीं देता, आपने भी ऐसा ही किया है।

विशेष

1. मंत्री की अवसरवादिता प्रकट हुई है।
2. भारत की प्रजातन्त्र व्यवस्था पर कटु व्यंग्य किया गया है।
3. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।
4. एक-एक शब्द संगीत के रेशमी तारों में माणिक्य मोती की तरह गूँथा हुआ है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

"प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं' तुलसी बाबा भले कह गए
जिसमें वाजिद अली बह गया उसी बाढ़ में आप बह गए
आप बने शिक्षा-मंत्री तो देहातों के स्कूल ढह गए
हम तो करते रहे पढ़उनी, जेल न जाके यहीं रह गए
और आपका तो कहना क्या, मुँह से बहे आरत की धारा
आदर्शों की छौंक मारकर अजी आपने हमें सुधारा
उपदेशों की धुआँधार में अकुलाता शिक्षक बेचारा
अजी आपको लगता होगा सुखमय यह भूमंडल सारा"
लिखा अंत में "ध्यान दीजिए, बहुत दिनों से मिला न वेतन
किससे कहूँ, दिखाई पड़ते कहीं नहीं अब वे नेता-गण
पिछली दफे किया था हमने पटने में जा-जा के अनसन
स्वयं अर्थ-मंत्री जी निकले, वह दे गए हमें आश्वासन
और क्या लिखूँ, इन देहाती स्कूलों पर भी दया कीजिए
दीन-हीन छात्रों-गुरूओं की कुछ भी तो सुध आप लीजिए
हटे मिटे यह निपट जहालत; प्रभु ग्रामीणों पर पसीजिए
कई फंड हैं उनमें से अब हमको वाजिब एड दीजिए"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग 'बाबा नागार्जुन' द्वारा विरचित उनकी वर्ग वैषम्य पर तीव्र कटाक्ष करने वाली प्रसिद्ध कविता 'मास्टर' से अवतरित है। यह कविता शिक्षकों की दयनीय अवस्था के साथ-साथ समय पर वेतन उपलब्ध न होने के स्थिति तथा विद्यालय की जर्जर अवस्था का चित्रांकन भी करती है। दुखरन मास्टर द्वारा प्रजातंत्र पर भी कटाक्ष कराया गया है।

व्याख्या

कवि गोस्वामी तुलसीदास का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि प्रभुता पाने या ऊँचे पद पर आसीन होने पर व्यक्ति में अभिमान नहीं आना चाहिए। यदि ऐसा हो गया तो उसकी प्रभुता एवं ऊँचाई का कोई मूल्य नहीं है। तुलसी जी ठीक कह गए हैं कि प्रभुता पा लेने पर घमण्ड नहीं करना चाहिए। जिस सत्ता या प्रभुता के वेग में वाजिद अली शाह बह गए उसी में मंत्री महोदय आप भी बह गए हैं। जिस दिन से आप शिक्षा मंत्री बने हैं उसी दिन से देहातों के स्कूलों पर वज्रपात हुआ अर्थात् वे स्कूल दहाना आरम्भ हो गए हैं क्योंकि आपने उनकी तरफ कोई ध्यान ही नहीं दिया। आपका तो कहना ही क्या, आपके मुख से हमेशा ही दीन, दुःखियों, दलित-पीड़ितों के लिए करूणा की अविरल धारा बहती है। आपकी करनी और कथनी में अत्यधिक अंतर है। आदर्शों की बातें करके आपने हमारा जीवन सुधार दिया है। आपके उपदेशों के बीच में शिक्षक बेचारा व्याकुल एवं व्यथित है पीड़ित है। आपके द्वारा दिए गए आश्वासनों से अब शिक्षक परेशान हैं। क्योंकि कई महीने से उन्हें वेतन नहीं मिला है। वैसे आपको यह लगता है कि प थ्वी पर रहने वाले सभी व्यक्ति सुखी हैं? लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। क्योंकि आप तो सुखी हैं ही। कहते हैं आप सुखी तो जग सुखी। अब हम अपने वेतन की बात किससे कहें? क्योंकि अब वे पहले वाले आदर्शवादी नेता ही नहीं रहे। पिछली बार जब हमने वेतन के लिए पटना में अनशन किया था तो स्वयं अर्थ मंत्री ने हमें आश्वासन दिया था कि जल्दी ही वेतन मिल जाएगा, परन्तु अभी तक नहीं मिला। मंत्री जी अब मैं इस पत्र में इससे अधिक और क्या लिखूँ। बस इतना निवेदन है कि आप इन देहातों के स्कूलों पर दया करके इनकी हालत सुधारने का प्रयास कीजिए। दीन-हीन गुरू और छात्रों के दुःख-दर्दो को दूर करने का प्रयास कीजिए। अब तो आप ही हमारे प्रभु हो। अब आप हमारी इस जिल्लत की जिंदगी से हमें बचा सकते हैं। इस जिहालत की जिंदगी को मिटाकर इन ग्रामीणों पर दया करें। आपके पास तो अनेक प्रकार के फण्ड हैं उनमें से ही हमारी सहायता करके उचित वेतन देकर हमें क तार्थ करें।

विशेष

1. मंत्रियों की करनी और कथनी में अंतर बताया गया है।
2. सत्ता की चकाचौंध में नेता लोग अपने वादे कैसे भूल जाते हैं, उसी ओर संकेत किया गया है।
3. शिक्षकों, जनता की दयनीय हालत का साक्षात चित्रण हुआ है।
4. प्रस्तुत पद्य भाग में कवि तुलसीदास की उक्ति द्वारा अपने मंतव्य को स्पष्ट किया है।
5. भाषा सरल है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।
7. प्रजातन्त्र व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किया गया है।
8. वीप्सा अलंकार का सुंदर प्रयोग है।

8. आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी

"आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहरलाल की
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहरलाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

आओ, शाही बैंड बजाएँ,
आओ, बंदनवार सजाएँ,
खुशियों में डूबें उतराएँ,
आओ तुमको सैर कराएँ-
उटकमंड की, शिमला-नैनीताल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

तुम मुस्कान लुटाती आओ,
तुम वरदान लुटाती जाओ,
आओ जी चाँदी के पथ पर,
आओ जी कंचन के रथ पर,
नजर बिछी है, एक-एक दिक्पाल की
छटा दिखाओ गति की लय की ताल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य हिन्दी के आधुनिक कबीर, बहुचर्चित उपन्यासकार 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में नेहरू की विदेश नीति पर कटु कटाक्ष किए हैं क्योंकि इंग्लैण्ड साम्राज्यवादी देश है और स्वतन्त्र भारत के कंधे पर भी गुलामी की पालकी लदी हुई है। वास्तव में यहाँ भारतीय अर्थव्यवस्था और राजनीति पर बढ़ते साम्राज्यवादी दबाव संकेतित हैं। कवि स्पष्ट प्रश्न पूछता है कि स्वतन्त्रता के बाद भी भारत को राष्ट्रमण्डल के हाथों गिरवी क्यों रखा जा रहा है? कवि यहाँ नेहरू की विदेश नीति की आलोचना करते हुए कहते हैं।

व्याख्या

कवि इंग्लैण्ड की रानी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि आओ रानी हम आपको ढोने के लिए तैयार हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की भी यही सम्मति है कि हम साम्राज्यवादी देश इंग्लैण्ड के साथ अपनी विदेश नीति स्थापित करें। ऐसा करके प्रधानमंत्री फटे-पुराने जाल की मरम्मत करेंगे। आओ हे रानी! हम आपके स्वागत में शाही बैंड बजाकर आपके स्वागत में बंदनवार एवं फूलों की लड़ियाँ लगाकर पूरे भारत को अलंक त करेंगे। आपके भारत आगमन पर हम सब भारतवासी खुशियाँ मनाएंगे एवं हर्षोल्लास की धूम में नाच उठेंगे। हम आपको हमारे यहाँ के प्रसिद्ध स्थलों की यात्रा कराएंगे। तुम केवल भारतीयों पर अपनी क पा द ष्टि बनाए रखो, उन पर अपनी हँसी न्योछावर करती रहो और भारतीय जनता को आशीर्वाद देती रहो। हे इंग्लैण्ड की महारानी! हमने आपका स्वागत करने के लिए सोने और चाँदी से निर्मित मार्ग को खोल दिया है अर्थात् आपके स्वागत में हम भारतीय तुम्हारे ऊपर सोने और चाँदी को बिखेर देंगे। तुम्हें सभी खुशियाँ प्रदान करेंगे। आपके स्वागत में हमारी आँखों की पलकें बिछी हुई हैं। दिशाओं के स्वामी हाथी भी आपका स्वागत करने के लिए नजरें झुकाए खड़े हैं। इसलिए आप हमारे यहाँ आकर हमें क तार्थ करें और अपनी चाल की सुर, ताल और लय दिखाकर हमें धन्य करें।

विशेष

1. जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति पर कटु व्यंग्य किया गया है।
2. भारतीय किस कदर इंग्लैण्ड की महारानी की सेवा करना चाहते हैं, इसका विवरण किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाव, भाषा एवं शैली का उत्तम सामंजस्य है।

"सैनिक तुम्हें सलामी देंगे
लोग-बाग बलि-बलि जाएँगे
द ग-द ग में खुशियाँ छलकेंगी
ओसो में दूबें झलकेंगी
प्रणति मिलेगी नए राष्ट्र की भाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी।

बेबस-बेसुध, सूखे-रूखड़े,
हम ठहरे तिनकों के टुकड़े
टहनी हो तुम भारी भरकम डाल की
खोज खबर तो लो अपने भक्तों के खास महाल की!
लो कपूर की लपट
आरती लो सोन के थाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग सच्चे जननायक, समाज सुधारक, हिन्दी के आधुनिक कबीर, जनकवि स्वनामधन्य 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' से अवतरित है। प्रस्तुत पद्य में नेहरू की विदेश नीति की कटु आलोचना की गई है। जब भारत स्वतंत्र हो चुका है तो साम्राज्यवादी देशों से गठबंधन अनुचित है। कवि इंग्लैण्ड के साथ भारत के सम्बन्धों का विरोध करता है, क्योंकि साम्राज्यवादी देश फिर से उसे आर्थिक व राजनैतिक द ष्टि से पराधीन बना सकते हैं।

व्याख्या

कवि कहता है कि नेहरू जी ने इंग्लैण्ड की महारानी के स्वागतार्थ कहा कि भारत के वीर सैनिक आपके यहाँ पधारने पर सम्मानपूर्वक सलामी देंगे और भारतवर्ष के सभी नर-नारी प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे ऊपर बलिहारी जाएंगे तथा उनकी आँखों में तुम्हारे आगमन की खुशी स्पष्ट झलकती हुई दिखाई देगी। तुम्हारे स्वागत में हरी-भरी घास भी अपने ऊपर ओस की बूदें झलकाकर स्वागत करेंगी। तुम्हें नए राष्ट्र भारतवर्ष के मस्तक का सम्मान मिलेगा और इससे तुम्हारा पूरे विश्व में सम्मान व वजूद बढ़ेगा। भारतवर्ष तो इंग्लैण्ड के मुकाबले में गरीब देश हैं तथा जहाँ के लोग भी रूखे-सूखे बेवस व वेसुध हैं तथा वे तो तिनको के टुकड़ों के समकक्ष हैं जबकि हे रानी तुम तो भारी भरकम डाल की टहनी हो अर्थात् भारत इतना सम्पन्न देश नहीं है जितना सम्पन्न और साम्राज्यवादी देश है। तुम्हें अपने भक्तों की खोजखबर लेनी चाहिए। भारत के लोग तो इंग्लैण्ड के मित्र व भक्त रहे हैं। तुम्हें यहाँ आकर सम्मान ग्रहण करना चाहिए। सोने के थाल से आरती उतरवानी चाहिए और कपूर की सुगन्धित महक की लेनी चाहिए। आओ रानी हम आपकी पालकी उठाने के लिए तैयार है।

विशेष

1. नेहरू की विदेश नीति पर कटु-कटाक्ष किया गया है।
2. अनुप्रास एवं वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।

4. संगीतात्मकता विद्यमान है।
5. भाव, भाषा एवं शैली का सुन्दर समन्वय है।

"भूखी भारत माता के सूखे हाथों को चूम लो
प्रेसिडेंट की लंच-डिनर में स्वाद बदल लो, झूम लो
पद्म भूषणों, भारत-रत्नों से उनके उद्‌गार लो
पार्लिमेंट के प्रतिनिधियों से आदर लो सत्कार लो
मिनिस्टरों से शेक हैंड लो, जनता से जयकार लो
दाएँ-बाएँ खड़े हजारी ऑफिसरों से प्यार लो
धन कुबेर उत्सुक दीखेंगे उनके जरा दुलार लो
होंठों को कंपित कर लो, रह-रह के कनखी मार लो
बिजली की यह दीपमालिका फिर-फिर इसे निहार लो

यह तो नई-नई दिल्ली है, दिल में इसे उतार लो
एक बात कह दूँ मलका, थोड़ी-सी लाज उधार लो
बापू को मत छेड़ो, अपने पुरखों से उपहार लो
जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की!
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की!
यही हुई है राय जवाहरलाल की!
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!"

संदर्भ

प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के आधुनिक कबीर, जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' से अवतरित है। इस कविता का संदर्भ राजनीतिक है परन्तु नेहरू की विदेश नीति पर कटु कटाक्ष किया है। ब्रिटेन अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए उसे साम्राज्यवादी जाल में फंसाना चाहता था तथा नेहरू इसमें सहयोग देकर भिन्नता के फटे पुराने जाल की मरम्मत करने के लिए तत्पर था। कवि की इस पूरी कविता में व्यंग्य का तीखापन व्याप्त है।

व्याख्या

कवि ब्रिटेन की रानी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि भारत माता दरिद्र है, भूखी है अतः तुम उसके भूखे, सूखे एवं कांतिहीन हाथों को चूमकर उसे क तार्थ कर दो। अपनी जिह्वा के स्वाद को बदलने के लिए प्रेसिडेंट के पास लंच और डिनर ग्रहण करो तथा वहाँ मस्ती में झूमो। पद्मभूषण और भारत रत्न पुरस्कारों से उनकी भावनाओं को जानो और पार्लियामेंट के सदस्यों से आदर-सत्कार प्राप्त करो। यहाँ भारतवर्ष में आने के बाद पद्मभूषण भारत रत्न विजेताओं व पार्लियामेंट के प्रतिनिधियों से वार्तालाप करो तथा उनसे सम्मान पाओ। मंत्रीगण से हाथ मिलाओ और भारतीय जनता तुम्हारी जय-जयकार करेंगी। तुम्हारी यश गाथा गाएगी। तुम्हारे दाएँ-बाएँ हजारों ऑफीसर खड़े होंगे, वे तुम्हें प्यार प्रदान कर रहे होंगे। पूँजीपति वर्ग तुमसे मिलने के लिए बड़े व्याकुल होकर और लालायित होंगे। अतः उनसे प्रेमपूर्वक मिलो। अपने होठों को कँपा लो तथा रह-रह के कनखड़ियों से इधर-उधर देख लो। तुम्हारे सम्मान में लगाई गई बिजली के दीपों की इस पंक्ति को बार-बार देख लो क्योंकि पूरी जनता तो अंधकार में डूबी हुई है लेकिन तुम्हारे सम्मान में दीपों की माला सजाई गई है।

कवि कहते हैं कि दिल्ली अभी नई-नई है, इसलिए आप यहाँ चलकर इसके सौंदर्य को अपने हृदय में उतार लो। लेकिन मैं तुमसे एक बात कहता हूँ मलिका! कि आप जरा सी लज्जा और शर्म को भी उधार ले लो। आप राजघाट पर जाकर गांधी जी को मत छेड़ो और अपने पूर्वजों से उपहार स्वरूप में इसे प्राप्त करो। कवि इंग्लैण्ड की जय-जयकार करता हुआ इस कतिकाल की भी जय बोलता है। आओ रानी हम आपकी पालकी ढोने के लिए अर्थात् उठाने के लिए तैयार हैं और नेहरू जी मित्रता रूपी फटे पुराने जाल की मरम्मत करेंगे।

प्रधानमंत्री की भी यही सम्मति है कि भारत स्वतंत्र होकर भी साम्राज्यवादी देश ब्रिटेन की पालकी ढोए, उसका स्वागत करे।

विशेष

1. नेहरू की विदेश नीति का कवि ने विरोध किया है।
2. अनुप्रास एवं वीप्सा अलंकारों का सुंदर प्रयोग है।
3. नौटंकी में लोकगीत की धुन व्यंग्य सहित अनूठी बन पड़ी है।
4. भाषा सरल एवं स्पष्ट है।
5. भावपक्ष एवं कलापक्ष का सुंदर समन्वय है।

9. तीनों बंदर बापू के

"बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बंदर बापू के!
ज्ञानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बंदर बापू के!
जल-थल-गगन-बिहारी निकले तीनों बंदर बापू के!
लीला के गिरधारी निकले तीनों बंदर बापू के!
सर्वोदय के नटवर लाल फैला दुनिया भर में जाल
अभी जिएंगे ये सौ साल ढाई घर घोड़े की चाल
मत पूछो तुम इनका हाल सर्वोदय के नटवर लाल!"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यभाग हीन, दलित, पीड़ित व शोषितों के हमदर्द, हिंदी के आधुनिक कबीर, जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने उन समाज सेवियों और नेताओं पर व्यंग्य किया है जो गांधी के अनुयायी होने का दावा करते हैं किंतु वही लोग गीता और उपनिषद् के सिद्धांतों की आड़ लेकर अनैतिक और अनुचित कार्य करते हैं और पूँजीपतियों के हित साधक हैं।

व्याख्या

महात्मा गांधी जिन्हें भारतीय जनता बापू कहकर सम्बोधित करती है। उनके तीन बंदर अर्थात् न बुरा देखना, न बुरा सुनना, न बुरा बोलना। आज वही गांधी जी के अनुयायी समाजसेवी व राजनेता आज सत्य, अहिंसा और शांति के सिद्धांतों का पालन करने में स्वयं गांधी जी से भी आगे निकल गए हैं अर्थात् जितनी निष्ठा और लगाव इन समाजसेवी एवं नेताओं का गांधी जी के सिद्धांतों के प्रति है शायद स्वयं गांधीजी का नहीं होगा। वे गांधी दर्शन के सरल सूत्रों की उलझाने वाली कठिन व्याख्या कर रहे हैं। वास्वत में ये समाजसेवी या राजनेता परमात्मा की भांति सबको जीवनदान देने वाले हैं। उपनिषदों और वेदों की व्याख्या करने वाले ये समाजसेवी-राजनेता सच्चे अर्थो में ज्ञानी कहलाने के अधिकारी हैं। ये लोग सच्ची साधना करने वाले ध्यानी है। साधारण जनता को मूर्ख बनाने के लिए ये समाजसेवी-राजनेता योग साधना और उपनिषदों तथा वेदों का आश्रय लेते हैं। वास्तव में ये ढोंगी और पाखण्डी हैं। इन्होंने समुद्री जहाज में यात्रा करके समुद्र की असीम अनन्त गहराई व विस्तार को माप लिया है तथा हवाई जहाज से अनन्त आकाश की छाती को चीर दिया है। ये गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले श्री क ष्ण की भांति अनेक प्रकार की लीलाएँ रचते हैं। सर्वोदय के नटवरलाल की भांति अपनी मोह-माया का जाल पूरी दुनिया में फैला रखा है। अभी ये सौ साल तक जीवित रहेंगे और इनकी चाल भी ढाई घर घोड़े की भांति है। तुम इन सर्वोदय के नटवरलाल का हालचाल मत पूछो?

विशेष

1. नागार्जुन जी ने गाँधी के तथाकथित पाखण्डी अनुयायियों पर कटु कटाक्ष किया है।
2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है।
3. भाषा प्रवाहमयी है।
4. भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है।
5. कोमलकांत पदावली है।

"लम्बी उमर मिली है, खुश हैं तीनों बंदर बापू के
दिल की कली खिली है, खुश है तीनों बंदर बापू के

बूढ़े हैं फिर भी जवान है तीनों बंदर बापू के
परम चतुर हैं, अति सुजान हैं तीनों बंदर बापू के
सौंवी बरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बच्चे होंगे माला माल
खूब गलेगी उनकी दाल
औरों की टपकेगी राल
इनकी मगर तनेगी पाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवर लाल।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग आधुनिक कबीर, सच्चे समाज सुधारक, प्रगतिशील कवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। इसमें अवसरवादी, स्वार्थी तथा तथाकथित गाँधीवादी नेताओं पर कटु कटाक्ष किया गया है। उन नेताओं की करनी और कथनी में अंतर है। कवि इन्हें ज्ञानी और ध्यानी घोषित करता है।

व्याख्या

कवि व्यंग्यात्मक शैली में कहते हैं कि इन तथाकथित नेताओं, समाज सुधारकों को लम्बी आयु मिली है, इसीलिए वे अत्यधिक खुश हैं। इनके दिल की कली खिली हुई है। क्योंकि ये समाज में सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ भोग रहे हैं। इन्हें राजनैतिक संरक्षण प्राप्त है साथ ही इन्हें समाज में सम्मान प्राप्त है। यद्यपि आयु की द ष्टि से ये बूढ़े हैं परन्तु फिर भी दिल इनका जवान है। ये रसिक प्रव त्ति के स्वामी है। परम चतुर एवं अत्यन्त सुजान हैं, अपनी चातुर्य भावना के साथ गांधी जी का नाम लेकर ये अपना दाम निकालना खूब जानते हैं। बापू के ये तथाकथित अनुयायी उनकी सौंवी बरसी मना रहे हैं और उनके द्वारा किए गए कार्यो के अनुसरण का दिखावा करके उन्हें ही मूर्ख और उल्लू बना रहे हैं क्योंकि गांधी दर्शन सत्य-अंहिसा और शांति की बात करते हैं परन्तु इन सिद्धान्तों की आड़ में धन एकत्रित करना व अनैतिक कर्म करना इनका प्रमुख उद्देश्य है। शांति का भाषण देने वाले ये नेता लोग चारों ओर अशांति फैला रहे हैं। अहिंसा की पूजा करने वाले स्वयं ये नेता उनके साथ अनाचार और अत्याचार कर रहे हैं। इस प्रकार का कार्य करने वाले नेताओं के ही बच्चे मालामाल होते हैं और उनका प्रत्येक कार्य स्वतः ही पूरा हो जाता है। दूसरों की इन पर लालच भरी नजर रहेगी। इनकी जीवन-शैली देखकर दूसरों के मन ललचाया करेगा। इनका कार्य हमेशा पूरा होगा। इसलिए तुम ऐसे व्यक्तियों का हाल मत पूछो।

विशेष

1. गीता और उपनिषदों को सुरक्षा कवच बनाकर तथा उनके नाम पर शोषण और अत्याचार करने वाले तथाकथित गाँधीवादी नेताओं की अच्छी खबर ली है।
2. अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. भाव भाषा और शैली का अद्‌भुत सामन्जस्य है।
5. भावपक्ष और कलापक्ष का उत्तम समन्वय है।

"सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के
युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बंदर बापू के
सत्य अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
पँछो से कवि आँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
मुस्काते हैं आँखें मीचे तीनों बंदर बापू के
छील रहे गीता की खाल
उपनिषदें हैं इनकी ढाल

उधर सजे मोती के थाल
इधर सजे सतजुगी दलाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवर लाल।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग प्रगतिवादी जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। प्रस्तुत कविता में कवि ने गाँधीवादियों पर कटु व्यंग्य किए हैं क्योंकि उनकी करनी और कथनी में अंतर है और वे गांधी दर्शन का अक्षरशः पालन न करके समाज में दीन-दलितों का शोषण करते हैं और उनके ऊपर अमानवीय अत्याचार करते हैं। कवि उन्हें दीनदलितों को भक्षक और पूंजीपतियों का रक्षक घोषित करता है।

व्याख्या

कवि का कहना है कि ये तथाकथित गाँधीवादी नेता जनसाधारण का शोषण करके पूँजीपतियों एवं सेठों का हित साधने अर्थात् उनका कल्याण कर रहे हैं। वास्तव में वे पूँजीपतियों के हित चिंतक एवं हित साधक है। ये गाँधीवादी नेता पूरे युग के लोगों को प्रवचन एवं उपदेश देकर उनपर चलने के लिए प्रेरित करते हैं अर्थात् इन नेताओं को समाज में उपदेशक या प्रवचनकर्ताओं की भांति सम्मान दिया जाता है। गाँधी द्वारा प्रदत्त सत्य एवं अहिंसा के मार्ग का ये नेता अक्षरशः पालन न करके गाँधीदर्शन ही खिल्ली उड़ा रहे हैं। उनकी मर्यादा एवं गौरव को मिटाने पर तुले हुए हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि ये तथाकथित नेतागण पूँजीपतियों की थैली से उनकी शोभा का मूल्यांकन करने का प्रयास करते हैं। इनको कांग्रेस पार्टी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। और एक समाज सेवक की द ष्टि से इन्हें पार्टी में एक कार्यकर्ता का स्थान प्राप्त है। ये वास्तव में पाखण्डी एवं ढोंगी हैं, सब कुछ अपनी आँखों से देखने के बाद भी स्वयं अनजान बने आँखें बंद किए रहते हैं। ये धार्मिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवतगीता तथा उपनिषदों की आड़ में सब प्रकार के अनुचित कार्य करते हैं। धर्म के नाम पर आम जनता को धोखा देते हैं। इनके पास सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, ये ऐश्वर्यमय जीवन जीते हैं। इनके पास मोतियों के थाल सजे हुए हैं और दूसरी ओर ये सतयुग की दलीलें देकर अपने कार्यों की पुष्टि करते हैं। कवि कहते हैं कि तुम इन पाखण्डी, स्वार्थी, ढोंगी, तथाकथित गाँधीवादी नेताओं का हाल मत पूछो! इन्हें अपने ही हाल पर छोड़ दो।

विशेष

1. गाँधीवादी नेताओं पर कटु व्यंग्य किया गया है।
2. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।

"बदल-बदल कर चखे मलाई तीनों बंदर बापू के
मूड़ रहे दुनिया जहान को तीनों बंदर बापू के
चिढ़ा रहे हैं आसमान को तीनों बंदर बापू के
करें रात-दिन टूर हवाई तीनों बंदर बापू के
गाँधी छाप झूल डाले हैं तीनों बंदर बापू के
असली हैं, सर्कस वाले हैं तीनों बंदर बापू के
दिल चटकीला, उजले बाल
नाप चुके हैं गगन विशाल
फूल गए हैं कैसे गाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवर लाल।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी के आधुनिक कबीर, प्रगतिवादी कवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित हैं। प्रस्तुत कविता में कवि नागार्जुन बापू के अनुयायियों, समाजसेवी या राजनेताओं पर कटु कटाक्ष करता है क्योंकि वे

दीन-दलितों का शोषण करते हैं तथा उन पर अमानवीय अत्याचार करते हैं और दूसरी ओर वे पूँजीपतियों के हित चिंतक और हितसाधक है। कवि स्पष्ट करता है कि उनकी करनी और कथनी में अंतर है और वे पाखण्डी एवं ढोंगी हैं। उपनिषदों एवं गीता को सुरक्षा कवच के रूप में धारण करते हैं।

व्याख्या

कवि का कहना है - बापू के तथाकथित ये गाँधीवादी नेता अपनी सत्ता का बदल बदल कर स्वाद चखते हैं और सारे संसार को लूट रहे हैं, अपने आचरण द्वारा लोगों को उल्लू बना रहे हैं। वास्तव में धन प्राप्त करना ही इनका अभिप्रेय है। इसीलिए गाँधीदर्शन की ओट में ये पूँजीपतियों से धन ऐंठ रहे हैं। ये आसमान से भी ऊँचा उठकर आकाश की बुलंदियों को छूकर उनसे भी ऊपर स्वयं को विकसित करके आसमान को चिढ़ाते हुए प्रतीत हो रहे हैं। इनको सरकार में बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त है इसीलिए ये दिन-रात हवाई यात्रा करते हैं। ये नेता अपने स्वाद को परिवर्तित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्यपदार्थो का रसास्वादन करते हैं। इन्होंने अपने शरीरों पर गाँधीवादी पहनावे तथा गाँधीवादी थैले अपने कन्धों पर लटका रखे हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि ये गांधीवादी नेता सर्कस वाले कलाकारों की भांति भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिनय करते हैं। ये रोमानी प्रव त्ति के स्वामी हैं, सौंदर्य प्रेमी हैं यद्यपि उम्र के ये नेता व द्ध हो गए हैं परन्तु इनके मन में चाह अभी बाकी है। अर्थात् व द्धावस्था आने पर भी इनके दिल जवान हैं इनके मन में स्त्री-सुख की चाह शेष है। यद्यपि इनके बाल सफेद हो गए हैं। संतुलित भोजन करने के बाद तथा सुख-सुविधापूर्ण जीवन जीने के कारण इनके गाल फूल गए हैं। कवि स्पष्ट कहता है कि तुम इनका हाल मत पूछो क्योंकि ये सर्वोदय के नटवर लाल हैं।

विशेष

1. महात्मा गाँधी के पाखण्डी, अनुयायियों पर कटु व्यंग्य किया है।
2. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
3. अनुप्रास, अलंकार का प्रयोग है।
4. भाव, भाषा एवं शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

"हमें अँगूठा दिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के
कैसी हिकमत सिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के
प्रेम पगे हैं, शहद-सने हैं तीनों बंदर बापू के
गुरूओं के भी गुरू बने हैं तीनों बंदर बापू के
सौंवी वरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्यावतरण प्रगतिवादी व जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'तीनों बंदर बापू के' से अवतरित है। इसमें कवि महात्मा गाँधी के अनुयायियों, समाजसेवी राजनेताओं पर कटु व्यंग्य करता है क्योंकि उनकी कथनी और करनी में अंतर है तथा दीन-दुखियों का शोषण करते हैं और उनपर अमानवीय अत्याचार करते हैं। कवि ने स्पष्ट किया है कि ये रोमानी प्रव त्ति के स्वामी है और दिल चटकीला है तथा बाल सफेद हो गए हैं। सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं को भोगने के कारण इनके गाल फूल गए हैं। कवि कहता है-

व्याख्या

कवि कहते हैं कि जब नेताओं को जीवन में सफलता मिल गई तब ये सभी हमें अँगूठा दिखा रहे हैं अर्थात् जब इन्हें प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर ली है तथा समाज में प्रभुत्व एवं गौरव प्राप्त कर लिया है। अब ये गाँधीवादी समाजसेवी या राजनेता मुझे चिढ़ा रहे हैं क्योंकि मैंने जीवन में असफलता ही प्राप्त की है। मैं दीन-दलितों, पीड़ितों व शोषितों का हमदर्द व पक्षधर रहा हूँ जबकि ये पूँजीपतियों के हित चिंतक वहित साधक रहे हैं तथा दीन-दलितों का शोषण करके धन एकत्रित कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि ये समाज सेवी-राजनेता सारे संसार के लोगों की खिल्ली उड़ा रहे हैं व उनको जीवन जीने की पद्धति या शैली सिखा रहे हैं। ये अत्यन्त मधुर भाषी हैं और प्रेम रस में सराबोर है। मधुरता से डूबी हुई शहद में सनी हुई मीठी-मीठी

बात करते हैं अर्थात् ये एक-दूसरे से म दुल व्यवहार करते हैं। ये वास्तव में धर्म गुरूओं व अन्य गुरूओं से भी महान् बने हुए हैं और उनके भी गुरू बन बैठे हैं। ये धर्म गुरूओं व अन्य गुरूओं को भी उपदेश या प्रवचन देते हैं। ये गाँधी की सौंवी बरसी मना रहे हैं अर्थात् गाँधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उनके तथाकथित नेता उनकी सौंवी सालगिरह मना रहे हैं। वास्तव में ये उनके अनुयायी गाँधी जी को उल्लू बना रहे हैं क्योंकि गांधी जी का सहारा लेकर धन ऐंठने में लगे हुए हैं और समाज में महत्त्व प्राप्त कर रहे हैं। बापू के दर्शन को आलाप कर सत्य, अहिंसा और शांति का उच्चारण कर करके इन्होंने समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है और मोतियों के थाल भी एकत्रित कर लिए हैं।

विशेष

1. गाँधी के अनुयायियों पर तीव्र व्यंग्य किया गया है।
2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
3. भाषा सरल स्पष्ट एवं प्रवाहमयी है।
4. आव त्ति शैली का प्रयोग हुआ है।
5. संगीतात्मकता विद्यमान है।

10. सत्य

"सत्य को लकवा मार गया है
वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात
वह फटी-फटी आँखों से
टुकुर-टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात
कोई भी सामने से आए-जाए
सत्य की सूनी निगाहों में जरा भी फर्क नहीं पड़ता
पथराई नजरों से वह यों ही देखता रहेगा
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी के आधुनिक कबीर जनकवि 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित उनकी प्रसिद्ध कविता 'सत्य' से अवतरित है। कवि वर्तमान युग में असत्य, अन्याय, अत्याचार और अनैतिकता की महत्ता को स्थापित करता है कि आज चारों ओर असत्य का प्रभुत्व छाया हुआ है। स्वार्थी, ढोंगी एवं पाखण्डी व्यक्ति पुरस्क त होते हैं, अयोग्य व्यक्तियों का मान सम्मान होता है। सत्य का पक्ष लेने वालों का निरादर होता है। कवि सत्य की निष्क्रियता-जड़ता पर विचार प्रकट करते हुए कहता है-

व्याख्या

कवि का कथन है कि चारों ओर असत्य के वातावरण को देखकर ऐसा लगता है जैसे सत्य को लकवा मार गया है। वह पंगु हो गया है। सत्यवादी व्यक्तियों को संदेह की द ष्टि से देखा जाता है और उन्हें दण्डित किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य अकर्मण्य, निर्जीव एवं जड़ हो गया है, उसे पक्षाघात हो गया है। वह लम्बी काठ की लकड़ी की तरह सारा दिन और सारी रात यूँ ही पड़ा रहता है। शरीर के अंगों ने क्रियाशीलता का परित्याग कर दिया है। वह अपलक, एकटक द ष्टि से सबको देखता रहता है लेकिन कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करता। सुबह से सायं तक प्रत्येक आने-जाने वाले को लगातार देखता भर रहता है। कोई भी उसके सामने आए या जाए उसकी सूनी निगाहों में कोई भी अंतर नहीं पड़ता। वह पथराई द ष्टि से सारी रात सारी दिन इसी तरह शून्य में देखता रहता है। क्योंकि वर्तमान युग में सत्य का प्रभुत्व, उसका बोलबाला सब कुछ समाप्त हो गया है। चारों तरफ असत्य का प्रभुत्व छाया हुआ है। झूठे-अयोगय व्यक्तियों को गद्दी पर आसीन किया जा रहा है तथा योग्य एवं विद्वान व्यक्ति धूल छानते रहते हैं।

विशेष

1. वर्तमान युग में हेरा-फेरी, छल-कपट, अयोग्यता, अनैतिकता का बोलबाला है इस पर कटाक्ष किया गया है।
2. 'अंधेर नगरी चौपट राजा' की उक्ति चरितार्थ होती प्रतीत हो रही है।
3. इस पद्य में सत्य का मानवीकरण किया गया है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
5. भाषा में गहनता विद्यमान है।

"सत्य को लकवा मार गया है
गले से ऊपर वाली मशीनरी पूरी तरह बेकार हो गई है
सोचना बंद
समझना बंद
याद करना बंद

याद रखना बंद
दिमाग की रगों में जरा भी हरकत नहीं होती
सत्य को लकवा मार गया है
कौर अंदर डालकर जबड़ों को झटका देना पड़ता है
तब जाकर खाना गले के अंदर उतरता है
ऊपरवाली मशीनरी पूरी तरह बेकार हो गई है
सत्य को लकवा मार गया है।"

संदर्भ

प्रस्तुत पद्य भाग सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त करने वाले, हिन्दी के आधुनिक कबीर 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'सत्य' से अवतरित है। कवि वर्तमान व्यवस्था पर कटु व्यंग्य करता है कि वर्तमान समय में चारों ओर असत्य, अत्याचार, छल-कपट और हेरा-फेरी का बोलबाला है जिसके कारण सत्य उपेक्षित-सा हो गया है और उसे लकवा मार गया है। वह अपलक द ष्टि से एकटक सबको निहारता रहता है परन्तु कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता।

व्याख्या

कवि स्पष्ट करता है कि सत्य को लकवा मार गया है। उसके शारीरिक अंग-प्रत्यंग शिथिल एवं निष्क्रिय हो गए हैं। उसके गले से ऊपर का भाग निष्क्रिय एवं क्रियाशून्य हो गया प्रतीत होता है। उसके बोलने की शक्ति समाप्त हो गई है, उसके सोचने-समझने की शक्ति तभी समाप्त हो गई है अर्थात् उसके अच्छे-बुरे की पहचान करने की शक्ति का पतन हो गया है। वह न सोच सकता है, न समझ सकता है, यहाँ तक कि उसकी स्मरण शक्ति भी नष्ट हो गई है। उसके मस्तिष्क की नाड़ियों ने भी कार्य करना बंद कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य को पक्षाघत हो गया है। ऐसी कौन-सी वस्तु है जो सत्य के मुख में हाथ डालकर उसे झिंझोड़ देने का सामर्थ्य रखता है। यदि ऐसा हो पाता तो तभी उसका खाना अंदर उसके गले से नीचे उतर सकेगा, अन्यथा नहीं। वास्तव में उसके ऊपरवाला भाग (मशीनरी) बेकार हो गया है। उसमें न बौद्धिक क्षमता है, न चिंतन मनन करने की योग्यता है और न वाकपटुता ही रही है। अतः वह अवशिथिल होकर चुपचाप पड़ा रहता है।

विशेष

1. वर्तमान युग में हेरा-फेरी, छल-कपट, योग्यता-अनैतिकता का बोलबाला है, इस पर कटाक्ष किया गया है।
2. सत्य का मानवीकरण किया गया है।
3. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
4. संगीतात्मकता विद्यमान है।

"वह लंबे काठ की तरह पड़ा रहता है
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात
वह आपका हाथ थामे रहेगा देर तक
वह आपकी ओर देखता रहेगा देर तक
वह आपकी बातें सुनता रहेगा देर तक
लेकिन लगेगा नहीं कि उसने आपको पहचान लिया है
जी नहीं, सत्य आपको बिल्कुल नहीं पहचानेगा
पहचान की उसकी क्षमता हमेशा के लिए लुप्त हो चुकी है
जी हाँ, सत्य को लकवा मार गया है
उसे इमरजेंसी का शाक लगा है
लगता है, अब वह किसी काम का न रहा
जी हाँ, सत्य अब पड़ा रहेगा
लोथ की तरह, स्पंदनशून्य मांसल देह की तरह!"

सन्दर्भ

प्रस्तुत काव्यांश हिन्दी के आधुनिक कबीर, प्रगतिशील कवि, स्वनामधन्य 'श्री नागार्जुन' द्वारा विरचित कविता 'सत्य' से अवतरित किया गया है। इसमें बताया गया है कि वर्तमान समय में चारों तरफ हेरा-फेरी, छल-कपट का वातावरण फैला हुआ है। सत्य का कहीं नामोनिशान तक नहीं है ऐसा लगता है कि उसे पक्षाघात हो गया है। इसी कारण इमरजेन्सी लगाए जाने के कारण उसको शॉक लग गया है और उसके शारीरिक अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए हैं।

व्याख्या

कवि का कहना है कि सत्य सारे दिन सारी रात काठ की लकड़ी के समान निष्क्रिय होकर चुपचाप पड़ा रहता है। क्योंकि वर्तमान युग में उसकी कोई प्रभुता नहीं है। वह काफी लम्बे समय तक एक व्यक्ति की बाजू थामे रहता है और एकटक द ष्टि से निरन्तर उसे देखता रहता है परन्तु उसे पहचान नहीं सकता। एक कुशल श्रोता के समान बनकर वक्ता की बातें धैर्य के साथ सुनता रहेगा परन्तु ऐसा नहीं लगेगा कि उसने आपको पहचान लिया है उसकी पहचान करने की क्षमता समाप्त-सी हो गई है। उसे पक्षाघात हो गया है। उसे इमरजेन्सी का शॉक लगा है क्योंकि आपातकाल में सत्य का गला घोंटा गया, न्याय को अनदेखा किया गया तथा सर्वत्र असत्य, छल-कपट का बोल-बाला रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब सत्य किसी काम का नहीं रहा और अब सत्य एक लोथ की भांति अर्थात् मांस के लोथड़े के समान निर्जीव निस्पंद व जड़ मांसल देह की तरह पड़ा रहता है। कोई क्रिया उसमें नहीं होती।

विशेष

1. वर्तमान समय में हेरा-फेरी, छल-कपट का बोलबाला है, इस पर कटाक्ष किया गया है।
2. सत्य की स्थिति का चित्रण किया गया है।
3. सत्य का मानवीकरण किया गया है।
4. भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।
5. उपमा और वीप्सा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
6. संगीतात्मकता विद्यमान है।

भाग 'ख' - आलोचना खण्ड

1. नागार्जुनः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

स्वभाव से फक्कड़ एवं यायावर प्रव त्ति के स्वामी, सुप्रसद्धि प्रगतिवादी कावि बाबा नागार्जुन ग्राम तरौनी जिला दरभंगा में ज्येष्ठ पूर्णिमा सन् 1911 में बिहार में पैदा हुए थे। उनका वास्तविक नाम वैधनाथ मिश्र था परन्तु जनसामान्य में 'बाबा' के नाम से पुकारे एवं जाने जाते थे। इन्हें अपने परिवार का स्नेह नहीं मिला। जीवन की शैशवस्था में ही उनकी माता का आसामयिक निधन हो गया केवल इतना ही नहीं भाई-बहन भी काल के गाल में समा गए। इनके पूर्वज मैथिली ब्राह्मणों के संस्कृत पंडित घराने से सम्बन्धित हैं। परन्तु इनका मुख्य व्यवसाय खेती करना था। इनका पालन पोषण प्राचीन रूढ़िवादी परम्परानुसार ब्राह्मण परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। काशी के संस्कृत विद्यालय से व्याकरण का सम्यक् अध्ययन करने के उपरान्त इन्होंने कलकत्ता में साहित्य-शास्त्राचार्य तक संस्कृत में विशेष अध्ययन किया। काशी में रहकर ही इन्होंने अवधी, ब्रज, खड़ी बोली का भी सम्पूर्ण अध्ययन किया। आरम्भ में 1930 में सर्वप्रथम मैथिली भाषा में इनकी काव्य रचना प्रकाशित हुई। में इनका विवाह अपराजिता से हुआ। नागार्जुन प्रारम्भ से ही यायावर एवं घुमक्कड़ प्रव त्ति के थे, इसी प्रव त्ति के कारण 1934 में 1941 तक इनका जीवन घुमते हुए ही व्यतीत हुआ। लंका घूमने के लिए बौद्ध धर्म में दीक्षा ली और बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। इन्होंने अपना नागार्जुन नाम भी यहीं पर धारण किया श्रीलंका में रहते हुए उन्हों पाली भाषा एवं बौद्ध दर्शन का विशेष अध्ययन किया। यहीं पर रहकर उन्होंने थोड़ी-सी अंग्रेजी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त किया। श्रीलंका से भारत वापिस आने के बाद बिहार में चल रहे किसान सक्रिय आंदोलन में योगदान दिया। इस प्रकार के कार्यों में भाग लेने के कारण इन्हें कई बार जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद उन्होंने ग हस्थी को त्याग दिया परन्तु 1941 में ये पुनः ग हस्थ बने। इनके इस कार्य के कारण इन्हें समाज में सम्मान मिलना कम हो गया। क्योंकि इस प्रकार अर्थात् एक बार ग हस्थी को त्याग कर बौद्ध बनने तथा पुनः ग हस्था बनने को अनुमति समाज नहीं देता था। अतः इन्हें हेय द ष्टि से देखा जाने लगा था। साथ ही खुफिया विभाग के कर्मचारी भी इन पर कड़ी नजर रखते थे क्योंकि ये राजनीतिक गतिविधि ायों में विशेष रूचि रखते थे।

आरम्भ में इन्होंने 'यात्री' साहित्य स जन किया। परन्तु 1931 ई. में बौद्ध धर्म स्वीकार करने के उपरान्त उन्होंने अपना नाम नागार्जुन रख लिया और इसी नाम से साहित्य स जन करने लगे। इनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाले दो महान् साहित्यकार हैं- एक तो महापंडित राहुल सांकृत्यायन और दूसरे छायावाद के श्रेष्ठ क्रांति तथा ओज के कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। यद्यपि किसान नेताओं-स्वामी सहजानन्द, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, प्रेमचंद और मैथिलीशरण गुप्त के सम्पर्क में आए परन्तु उनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर राहुल जी व निराला की ही अमिट छाप पड़ी।

नागार्जुन जी मार्क्सवासी विचारधारा के समर्थक हैं परन्तु वे कट्टर मार्क्सवादी नहीं हैं, राजनैतिक अर्थ में तो नहीं किंतु उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट है कि वे दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षित के पक्षधर हैं तथा अपनी संवेदना, सहानुभूति इन्हीं को सहजता से समर्पित करते हैं। उन्होंने जीवनभर अभाव, कष्ट व पीड़ा को भोगा है इसीलिए वे जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहें। 1962 में चीनी आक्रमण के बाद नागार्जुन जी ने मार्क्सवादी पार्टी की सदस्यता को तिलांजलि दे दी। वास्तव में वे किसी एक मद, वाद या पार्टी के साथ बँधे हुए नहीं है बल्कि वे तो दलित-पीड़ित शोषित (सर्वहारा वर्ग) के वकील हैं, पक्षधर हैं। जीविका हेतु संघर्ष करते हुए 1943 में पत्नी को लेकर पंजाब पहुँचे लेकिन उसी साल पिता का स्नेहांचल उठ गया और गाँव का सारा उत्तरदायित्व पत्नी ने अपने निर्बल कंधों पर ले लिया परन्तु ये घुमक्कड़ी ही करते रहे। बिहार में जयप्रकाश नारायण द्वारा चलाए गए आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण इन्हें फिर जेल हुई।

नागार्जुन ने साहित्यकार के बाहरी आवरण को उत्तम् कर जीवन की विसंगतियों से बचने के लिए स्वयं ही छोटी-छोटी आठ-आठ प ष्ठों की कविताएं लिखकर ट्रेन में बेची जिससे कि आर्थिक स्थिति सुधर सके। लेकिन संस्कृत, पाली और मैथिली

में प्रवीणता अर्जित करके उन्होंने स्वयं के बारे में स्पष्ट कहा है-

जन कवि हूँ मैं
साफ कहूँगा, क्या हकलाऊँ।'

नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है। जीवन व जगत के प्रति अध्ययन रूचि उनकी अत्यन्त गहरी है। इनका अनेक भाषाओं पर अधिकार था। मैथिली और हिन्दी में भी बहुत गहरी पकड़ थी। 'दीपक' (मासिक हिन्दी) 1935 तथा 1942-43 में 'विश्व-बंधु' (साप्ताहिक) का इन्होंने कुशलतापूर्वक सम्पादन किया। केवल काव्य पर ही उन्होंने लेखनी नहीं चलाई, अपितु उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि पर भी कुशलतापूर्वक अपनी लेखनी चलाई। उनकी रचनाओं का विवरण निम्न है -

काव्य रचनाएँ: बूढ़वर (1941), विलाप (1941), शपथ (1948), चित्रा (1949), चना जोर गर्म (1952), युगधारा (1953), खून और शोले (1955), प्रेत का ब्यान (1957), संतरंगे पंखों वाली (1957), प्यासी पथराई आँखें (1962), पत्रहीन नग्नगाछ (1967), अब तो बंद करो हे देवी (1971), तालाब की मछलियाँ (1974), चंदना (1974), तुमने कहा था (1980), हजार-हजार बाँहों वाली (1981), पुरानी जूतियों का कोरस (1983), रत्न गर्भ (1984), ऐसे भी हम क्या, ऐसी भी तुम क्या (1985), आखिर ऐसा कया कह दिया मैंने (1986)।

उपन्यासः रतिनाथ की चाची (1984), बलचनमा (1952), वरून के बेटे (1954), बाबा बटेसरनाथ (1954), दुःखमोजन, इमरितिया, उग्रतारा, जमनिया के बाबा, कुम्भीपाक (1970), हे अभिनन्दन (1970), नई पौध, पारो मैथिली एवं हिन्दी दोनों में (1970)।

कहानी संग्रहः आसमान में चन्दा तेरे (1982)।

निबंध संग्रहः अन्नहीनम् क्रियाहीनम् (1983)।

अनूदित कार्यः मेघदूत, गीत गोबिन्द, विद्यापति की पदावली।

इस प्रकार नागार्जुन ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पीड़ित-शोषित और उपेक्षित जनता के दुख-दर्दों को वाणी प्रदान की है तथा उनके प्रति अपनी सहानुभूति अभिव्यक्त की है। वैसे उनकी काव्य-रचनाएँ लगभग पचास वर्ष की परिधि को घेरे हुए हैं और भारतीय जन-जीवन में पराधीनता के सैंकड़ों सजीव चित्र तथा स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक जो कुछ घटा है- वह सब नागार्जुन ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा लिपिबद्ध कर दिया है। **प्रो. रामचरण महेन्द्र** ने ठीक ही कहा है- "नागार्जुन सर्वहारा कविता की धारा को तीव्र कर देते हैं। उनमें मजदूर वर्ग की संघर्षशील चेतना समुन्नत रूप में प्रकट हुई है। पूँजीवादी चट्टानों से टकराती, भयंकर संघर्षों में तपती, मजदूर-वर्ग की हिमायत करती हुई नागार्जुन की काव्यधारा जनवादी परम्पराओं में आगे बढ़ी है।

इसी प्रकार नागार्जुन की रचनाओं में भ्रष्ट राजनेताओं पर कटु कटाक्ष किए हैं- **डॉ. नामवर सिंह** ने ठीक लिखा है- "हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा था या नागार्जुन ने।" **डॉ. रामविलास शर्मा** ने भी उनकी रचनाओं पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिंदा दिली पैदा की, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि है।" 'दुःख मोचन', 'समाज सेवा', 'बलचनमा' में 'शोषितों के प्रति सहानुभूति', 'बाबा बटेसरनाथ और वरून के बेटे में चित्रित वर्ग-संघर्ष तथा प्राचीन मूल्यों से संघर्ष उनके साहित्य की समाज-सापेक्षता के सूचक हैं। समाज में व्याप्त वैषम्य सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रत्येक स्तर पर विद्यमान हैं।

'रतिनाथ की चाची' में लेखक नागार्जुन ने चिरकाल से शोषित-पीड़ित, सामन्ती वातावरण के तले दबी हुई नारी की दशा एवं उनकी समस्याओं को तीव्रता से उठाते हुए 'नारी की करुण हानी को अनुभव करते हुए व्यक्त किया है। 'बलचनमा' में लेखक ने आजादी के प्रति अपने अनुमान को व्यक्त किया था- "स्वराज मिलने पर बाबू-भइया आपस में दही मछली बाँट लेंगे। जो लोग आज मालिक बन बैठे हैं, आगे भीतर माल-वाल वही उड़ाएंगे। हम लोगों के हिस्से में सीठी ही सीठी पड़ेगा।" इसी प्रकार 'बाबा बटेसर नाथ' उपन्यास में स्वतंत्रता के प्रति मोह भंग को उपन्यासकार ने इस प्रकार से व्यक्त किया- 'आजादी! छिः! आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कूलानन्द बाबू को, ... कांग्रेस के टिकट पर जो भी चुने गए हैं, उन्हें मिली है आजादी। मिनिस्टरों को तो खैर ऊँचे दर्जे की आजादी मिली है, राजनीति गरीबों और भूखों के लिए नहीं हुआ करती, वह तो खाते-पीते स्थानों की चौपड़ है।"

नागार्जुन के उपन्यासों की प ष्ठभूमि मिथिलांचल की गरीबी, अशिक्षा जमींदारों द्वारा दलित वर्ग का शोषण, सर्वहारा, वर्ग में उदीप्त होती विद्रोही चेतना आदि का चित्रण करती हुई मैथिल ब्राह्मणों में प्रचलित बहु-विवाह प्रथा, बेमेल-विवाह, बाल-विवाह, विधवाओं की शोचनीय दशा तथा रीति-रिवाजों, मान्यताओं व परम्पराओं आदि का सजीव अंकन करती है। 'रतिनाथ की चाची' (1948) में विधवा ब्राह्मणियों के दयनीय जीवन के कुरूप-उपेक्षित व तिरस्कृत चित्र अंकित है तथा बलचनम (1952) की कथा मिथिला अंचल की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करती है। नागार्जुन का यह उपन्यास आँचलिक उपन्यास में राजनैतिक संघर्ष को उकेरता है। उनकी भाषा भी आंचलिक शिल्प के अनुरूप ही है जैसे-'गोल मुँह, बादामी आँख, छोटी नाक, पत्तर सा कपार, सुनहले बाल, पतले होंठ, मांग में सिंदूर की घनी लकीर, कपार पर चमकी खुदिया दानों से श ंगार किया हुआ था।' आँचलिकता को उदीप्त करने हेतु उपन्यासकार ने मैथिल लोकगीतों का भी आश्रय लिया है। जैसे-

'सखि है मजरल आमक बाग
कुहूँ-कुहूँ चिकरइ कोइलिया
झींगुर गावे फाग'

एक विद्वान को इतने पर संतोष नहीं हुआ उसका मानना है कि हिन्दी में आंचलिक उपन्यास का प्रारम्भ ही नागार्जुन के 'बलचनमा' से हुआ है। नागार्जुन 'नई पौध' (1953) में मिथिला के आँचलिक जीवन का मनोमुग्धकारी चित्रण करते हैं तथा सौरा मेले का चित्रण ही आँचलिकता की परिधि के अंतर्गत आता है। बाबा बटेसर नाथ (1954) उपन्यास में बिहार के दरभंगा जिले की बस्ती के अँचल को वर्णय विषय बनाया गया है। बटेसरनाथ गाँव का विशाल-वट व क्ष जो शताब्दियों से ग्रामवासियों को अपनी छाया प्रदान करता है। किंतु स्वार्थी, शोषक जमींदार सार्वजनिक उपयोग की जमीन को बेच देता है जिसमें वट व क्ष खड़ा हुआ है तथा ग्रामवासी उस वट व क्ष के संरक्षण हेतु संघर्ष करते हैं। वास्तव में यह उपन्यास पुराने लोगों की वेशभूषा, जमींदारी प्रथा की निर्ममता, निष्ठुरता, भूकंप, अकाल आदि प्राकृतिक त्रासदियों का चित्रांकन, नील वाले अंग्रेजों द्वारा खेतिहरों के शोषण तथा प्रकृति की कोमलता, अमराइयों के सौंदर्य, चाँदनी के विस्तार का संकेत भी है। 'वरून के बेटे' (1957) में उपन्यास में मछुओं के जीवन-संघर्ष का सजीव चित्रांकन है। **डा. उषा कुमार** के अनुसार- "यहाँ नागार्जुन की दर्शन शैली में आँचलिक जीवन यथार्थ को मूर्त करने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।। इसी प्रकार 'दुःख मोचन' (1957) में उपन्यासकार ने आँचलिक यथार्थ से ही परिचित नहीं कराया बल्कि सामाजिक स्थिति का भी सजीव चित्रण किया है। यथार्थ का रंग देने के लिए सामाजिक कुरीतियों, रीति-रिवाजों, वेशभूषा, खान-पान व परम्पराओं का सुंदर अंकन किया है।

नागार्जुन की कविताएं लगभग पचास वर्षों के समय को अपने आँचल में समेटती हैं। उनमें देश की प्रत्येक स्थिति, शोषण, भ्रष्टाचार, सुख-दुःख आदि की स्पष्ट एवं नग्न कहानी प्रस्तुत की गई है। वास्तव में वे जन कवि है, उन्होंने स्वयं लिखा है-

'जन कवि हूँ मैं
साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।'

अपने मित्रों, देश-विदेश, अंग्रेजों और प्रसिद्ध महान विभूतियों पर भी नागार्जुन ने कविताएं लिखी हैं। शांति एवं अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए लिखा है-

'पर न आज रोके रूक पाती है
आँखें मेरी भर-भर आतीं
रोता हूं लिखता जाता हूँ
कवि को बेकाबू पाता हूँ
कैसे इस कोरे कागज पर पूरी उतार सकूँगा।'

क्रांतिकारी एवं महाप्राण निराला के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए एवं श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखते हैं-

'तिमिर में रवि खो गया,
दिन लुप्त है बेसुध गगन,
भारती सिर पीटती है
लूट गया है प्राणधन।'

नागार्जुन ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूप को चित्रित करते हुए अनेक प्रकृति परक कविताएं लिखीं है- काली सप्तमी का चाँद, शरद पूर्णिमा, झुक आए कजरारे मेघ, बसन्त की अगवानी, नील की टहनियाँ, देखना ओ गंगा मैया, खुरदरे पैर कुहरा क्या छाया, कोयल आज बोली है, हिम कुसुमों का चंचरीक, वर्षा मंगल, बादल को घिरते देखा है, धन-कुरंग, फूले कदंब, मेघ बजे आदि प्रकृतिपरक कविताएँ हैं। **डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना** का कहना उचित जान पड़ता है- "इनमें आलम्बन एवं उद्दीपन रूप के साथ-साथ प्रकृति का प्रयोग प्रतीकों एवं अलंकारों के लिए भी हुआ है और प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उसके सचेतन रूप में चित्र भी अत्यन्त कलात्मकता एवं सजीवता के साथ अंकित हुए हैं। प्रकृति के इन सभी चित्रणों में कवि का प्रकृति प्रेम बादलों की तरह घुमड़ रहा है।"

व्यंग्य की तीखी धार प्रवाहित करने वाली कविताओं में- आओ रानी हम ढोएंगे पालकी, शासन की बंदूक, तीन-दिन तीन-रात, अब तो बंद करो हे देवि, तीनों बंदर बापू के, मास्टर, आए दिन बहार के, प्रभुजी तुम चंदन हम पानी आदि प्रसिद्ध हैं।

कवि ने अवसरवादी, स्वार्थी व दल बदलू नेताओं का पर्दाफाश करते हुए उन पर कटु कटाक्ष किए हैं-

'चना है बना मसालेदार
खाइए भी तो यह सरकार
मिलेगा परमिट बारम्बार
मिलेंगे सौदे सब उधार
नया हो जाएगा घर-बार
कि लद-लद कर आवेगी कार।'

कवि के हृदय में देशानुराग की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है और उसे अपने देश, समाज, फूल-पेड़-पौधे, नदी-नाले आदि से गहरी आत्मीयता है। वह मात भूति और राष्ट्र का अनन्य सेवक है-

'खेत हमारा, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है;
इसीलिए तो हमको इसका चप्पा-चप्पा प्यारा है।'

कवि की वैयक्तिक संघर्षों व वैयक्तिक कष्टों की झांकियाँ अनेक स्थलों पर रचनाओं में चित्रित हुई हैं। कवि अनेक स्थलों पर आक्रोश व उग्र क्रोध से युक्त है। कवि जीवन रूपी युद्ध में अकेला ही संघर्ष करता हुआ द ष्टिगोचर होता है-

'पैदा हुआ था मैं। दीनहीन अपठित किसी कृषक-कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव की आसव ठेठ बचपन से
कवि मैं हूं दबी हुई दूबका। जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में
क्षुद्र व्यक्तित्वारूपक है सीमित है
आटा, दाल, नमक, लकड़ी के जुगाड़ में
पत्नी और पुत्र में।'

कवि ने अपनी प्रेयसी के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कविताओं का स जन किया, परन्तु इन कविताओं में कहीं भी अश्लीलता, नग्नता, छिछलापन आदि नहीं है। अपितु सात्विकता, पवित्रता भरी हुई है-

'तुम नहीं हो पास, तैं तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल सुनने के लिए
एक की ही दस अंगुलियाँ नहीं काफी कदाचित्
रेशमी परित प्तियों का जाल बुनने के लिए।'

उक्त विवेचन से अन्ततः स्पष्ट हो जाता है कि नागार्जुन एक सफल उपन्यासकार, कहानीकार एवं सचमुच जनता के हृदय कवि थे। इसीलिए उन्हें आधुनिक कबीर कहा जाता है। समाज की विसंगतियाँ, भ्रष्टाचार आदि का इन्होंने खुलकर चित्रण करते हुए विरोध किया है। अतः बाबा नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व थे।

2. नागार्जुनः राजनीतिक द ष्टि

साहित्य और राजनीति का धनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्तमान युग में राजनीति के सर्वव्यापी रूप से कोई भी साहित्यकार अछूता नहीं रह सकता। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं चिंतक अज्ञेय ने राजनीति एवं साहित्य का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए लिखा है- "साहित्य और राजनीति को दो प थक और विरोधी तत्व मान लेना, किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के संघर्षयुग में तो यह मुर्खतापूर्ण सा ही हैं। साहित्य और राजनीति का असर एक-दूसरे पर होने से रोका नहीं जा सकता।"

नागार्जुन के काव्य में तत्कालीन राजनीतिक चेतना को विशेष अभिव्यक्ति मिली हैं। कारण, नागार्जुन का सन् 1938 से देश की राजनीति से गहरा संबंध रहा है। जीवन में आर्थिक वैषम्य के निजी अनुभवों ने उन्हें राजनीति की ओर आकृष्ट किया और वे साम्यवादी दल के कर्मठ कार्यकर्ता रहे हैं। परिणामतः उनके राजनीतिक विश्वास भी साम्यवादी विचारों से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने बिहार, प्रांत के मिथिला और दरभंगा जनपद के जन-जीवन को अपनी कृतियों का आधार बनाकर युग के विभिन्न राजनीतिक दलों, विचारों, धाराओं तथा आंदोलनों का वास्तविक वर्णन प्रस्तुत करते हुए नवीन समाजवादी चेतना को स्वर प्रदान किया है-

राजनीतिक कवि

नागार्जुन हिन्दी के सबसे बड़े राजनीतिक कवि स्वीकार किए गए। स्वतंत्रता के बाद उन्हें भी यह दर्जा प्रदान किया गया। क्योंकि राजनीतिक घटनाओं और चरित्रों पर असंख्य कविताएँ लिखी हैं तथा भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को द ढ़तापूर्वक कटघरे में खड़ा कर दिया। उन्होंने अपनी-अपनी कविताओं में स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जिन भारतीयों ने सजा पाई, जेल गए और अपने प्राणों का बलिदान दिया उनको स्वतंत्रता कहाँ मिली स्वतंत्रता तो उन मुठ्ठी भर राजनेताओं को मिली जो जनता का खून चूस रहे हैं उन्होंने ऐसे नेताओं पर अपनी वानी में कटाक्ष किया है-

"व्यर्थ हुई साधन, त्याग कुछ काम न आया,
कुछ ही लोगों ने स्वतंत्रता का फल पाया,
इसीलिए क्या लाठी-गोली के प्रहार हमने थे झेले?
इसीलिए क्या डंडा-बेड़ी डलवाई हाथों पैरों में।"

राजनीति का गहरा ज्ञान

कवि नागार्जुन ने राजनीतिक के क्षेत्र का गम्भीरता से मनन किया और अनेक विषयों पर निर्भिक व निष्पक्ष होकर अपनी मौलिक विचार धारा प्रस्तुत की हैं। वास्तव में वे भारतीय चेतना के समर्थ संवाहक हैं, और उन्हें राजनीति का गहरा ज्ञान है। नागार्जुन राजनीतिक द ष्टि से संवेदनशील कवि हैं। वे ऐसे कवि हैं जिन्होंने भारतीय जनता के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष में भाग लिया। शायद ही ऐसा कोई अन्य कवि हो, जिसने राजनीतिक घटनाओं, चरित्रों पर इतनी बड़ी संख्या में कविताएं लिखी हों। नागार्जुन तो दीन-दलित, पीड़ित व शोषितों के समर्थक हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कवि से आंदोलन, प्रदर्शन, जेल कुछ भी छूटा हो। वे राजनीति में आकण्ठ डूबे रहे।

नेताओं के प्रति गहरा आक्रोश

कवि को उन नेताओं के प्रति गहरा आक्रोश है जिन्हें देशहित या जनहित से कोई लेना देना नहीं है। नेताओं के प्रति नागार्जुन के मन में श्रद्धा नहीं है, क्योंकि वे मर्यादा और राजनीति के मूल रूप से अलग हैं। वे अपने स्वार्थ में जनता को भूल जाते हैं। ऐसे नेताओं को केवल अपनी कुर्सी की चिंता अधिक सताती है। ऐसे स्वार्थी, भ्रष्टाचारी नेताओं के ऊपर कवि ने कटु कटाक्ष किए हैं-

"अभी-अभी उस दिन, मिनिस्टर आए थे।
बत्तीसे दिखलाई थी, वादे दुहराए थे।

भाषा लटपटाई थी नयन शरमाए थे
छपा हुआ भाषण भी नहीं पढ़ पाए थे
जाते वक्त हाथ जोड़े कैसे मुस्कराए थे।"

राजनीति की विसंगतियों का चित्रण

नागार्जुन ने इंदिरा गांधी, नेहरू, महात्मा गांधी, मोरारजी देसाई, जैसे राजनीतिज्ञों पर भी कविताएँ लिखकर जहाँ एक ओर उनके सुकृत्यों का स्तवन किया वहीं उनके कुकृत्यों पर कटु कटाक्ष भी किए।

इंदिरा गांधी के व्यक्तित्व और उनकी राजनीतिक गतिविधियों पर नागार्जुन ने सबसे अधिक प्रतिक्रिया व्यक्त की हैं। इंदिरा गांधी द्वारा 1967 में सत्ता संभालने पर उनके शासनकाल को 'नया जमाना' कहा तो जब इंदिरा जी ने आपातकाल की घोषणा की तो कवि ने उन्हें हिटलर की नानी कहकर संबोधित किया। इंदिरा के जनहितकारी रूप को कवि ने इस प्रकार रेखांकित किया है-

"महिष मर्दिनी का त्रिशूल तगड़ा तगड़म,
नहीं चलेगी अगड़म बगड़म।"

कवि ने नेहरू जी की विदेश नीति की भी कटु आलोचना की हैं विदेश नीति निर्धारण करने हेतु नेहरू जी ब्रिटेन जाने लगे तो कवि ने उसका तीव्र विरोध किया, क्योंकि वे इसके पक्ष में नहीं थे। 'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी' में नेहरू की विदेश नीति को बेनकाब किया है-

"पंडित जी जाने वाले हैं, रानी के दरबार में,
अपने ही हाथों गूथेंगे मोती उसके हार में।"

कवि ने गाँधी के नाम पर वोट बटोरने वाले तथा ऐसे स्वार्थी नेताओं की पोल खोली जो गाँधी जी के अनुयायी कहलाते हैं लेकिन वे गांधी जी के अहिंसात्मक सिद्धान्तों के पालन का दिखावा करते हुए गीता और उपनिषद की आड़ में अनैतिक आचरण करते हें और पूँजीपतियों के हित साधक व चिंतक कहलाए जाते हैं-

"सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के
युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बंदर बापू के।"

शासन के दमन चक्र व आतंक का चित्रण

कवि ने अपनी कविता 'शासन की बंदूक' में आतंक को उजागर किया है। इसमें राजनीतिक व्यवस्था की क्रुरता व निष्ठुरता का चित्रण हुआ है। कवि ने गांधीवादी काँग्रेस के नकाब को हटाते हुए स्पष्ट किया है कि जो काँग्रेस सत्य अहिंसा का राग अलापती है, उसका परित्याग करके वहीं हिंसा में लिप्त हो जाती है। उन्होंने उसका वर्णन इस प्रकार से किया है-

"सत्य वहाँ घायल हुआ, गई अहिंसा चूक,
जहाँ तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक।"

राजनीतिक वातावरण का सजीव चित्रण

कवि ने वोट की राजनीति, जातिवाद, क्षेत्रवाद और कर्मकाण्ड की भूमिका पर विस्त त विवेचन किया है। 'अब बंद करो हे देवी' में कवि ने राजनीति का विसंगतियों का चित्रण किया है। वहीं रोये बड़े-बड़े बलिदानी' में 1967 के चुनावी वातावरण का विषाक्त व भयावह चित्रण है तथा साथ ही टिकट बँटवारे में भाई-भतिजावाद व खुशामदी प्रव त्ति का भी मार्मिक चित्रण है। 'आए दिन बहार के' में भी टिकट पाने की खुखी का इज़हार किया गया है-

"श्वेत श्याम रतनार अँखिया निहार के
सिडी केटी प्रभुओं की पगधूर झार के
लोटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के।"

पूँजीपतियों व राजनीति का गठबँधन

कवि ने पूँजीपतियों एवं राजनीतिज्ञों के अपावन गठबंधन को भी अनेक स्थलों पर उजागर किया है क्योंकि ये अवसरवादी व स्वार्थी राजनेता इन्हीं पूँजीपतियों के हित चिंतक व हितैषी होते हैं। कवि की द ष्टि हमेशा पीड़ितों, शोषितों, उपेक्षितों के प्रति

सहानुभूति परक रही है। उन्होंने जहाँ इन पूँजीपतियों का विरोध किया वहीं इन राजनेताओं को भी अपने व्यंग्य से करारी मात दी। एक स्थल पर कवि ने इन दोनों के गठबंधन पर व्यंग्य किया है- "खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है।"

इस प्रकार कवि की नजर सर्वत्र शोषित पीड़ित जन पर हो रही है। पूँजीपतियों को उन्होंने खूब फटकारा है। उनके अभिमत जनाधारित हैं। वे पीड़ितों की ही द ष्टि से सोचते व महसूस करते हैं।

निश्चय ही नागार्जुन अपनी कविताओं में किसी राजनीतिक दलों के साथ नहीं रहे लेकिन जन-जन के साथ बराबर बंधे रहे। लोकजीवन और लोकमन को कितनी आत्मीयता से नागार्जुन ने व्यक्त किया उतना किसी अन्य आधुनिक कवि ने नहीं किया।

इस प्रकार नागार्जुन ने निर्भीक, निष्पक्ष होकर इन राजनेताओं पर कटु-कटाक्ष किए और वर्तमान की दूषित व्यवस्था व राजनीति पर भी खुलकर अपनी लेखनी चलाई जो राजनीति के साथ उनकी कविता के आत्मीयता व गहरे संबंधों की द्योतक है।

3. नागार्जुनः प्रकृति चित्रण

प्रत्येक साहित्यकार अपनी रचना में प्रकृति का अल्पाधिक संस्पर्श अवश्य देता है। नागार्जुन की कविताएँ भी प्रकृति-चित्रण अछुती नहीं है अपितु बहुत अधिक मात्रा में प्रकृति चित्रण हुआ है-

डॉ. नामवर सिंह ने नागार्जुन के प्रकृति चित्रण पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "नागार्जुन के काव्य-संसार का एक बहुत बड़ा भाग अनूठे प्रकृति-चित्रों से सजा है, जिनसे कवि की गहरी ऐन्द्रियता और सूक्ष्म सौन्द्रय-द ष्टि का एहसास होता है। वर्षा और बादलों पर इतनी अधिक कविताएँ निराला के बाद नागार्जुन ने ही लिखी हैं। एक ओर यदि यात्री के रूप में उन्होंने 'अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है।"

उन्होंने प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन संवेदनात्मक तथा प्रतिकात्मक आदि कई रूपों का चित्रण अत्यन्त सार्थकता व सजीवता के साथ किया है। कवि ने देशाटन पर्याप्त मात्रा में किया है, इसलिए अनेक देशों का भ्रमण करते हुए उन्होंने वहाँ की प्रकृति सुंदरी की अद्‌भूत छटा का चित्रण यथार्थपरक शैली में अपनी रचनाओं में किया है। कवि ने स्वयं हिमालय पर्वत की कंदराओं के पाकृतिक सौंदर्य को निहारा और उन्हें अपनी रचनाओं में चित्रित किया। वसन्त श्री के अनुपत, आकर्षक एवं दिव्य सौंदर्य का चित्रण करते हुए कवि लिखता है-

'व द्ध वनस्पतियों ढूठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकूलों के गुच्छे गदराए।
अलसी के नीचे फूलों पर नम मुसकाया।

'बादल को घिरते देखी है' नामक कविता नागार्जुन ने हिमालय पर्वत के अनिंध सौंदर्य का चित्रांकन करते हुए बादलों का उमड़ना-घुमड़ना कवि को अत्यन्त प्रिय रहा है, उसका वर्णन देखिए-

"अमल धवल गिरी के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है
छोटे-छोटे मोती
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है
बादलों को घिरते देखा है।"

प्रकृति के प्रति कवि की आत्मीयता उद्‌घाटन करते हुए **डॉ. जगन्नाथ पंडित** का कहना है-"नागार्जुन का प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध उनका प्राकृतिक परिवेश में जन्म लेने के कारण भी रहा है। कमला, कोशी, वागमती आदि नदियों से धिरे मिथिलांचल में प्रकृति अपने पूर्ण सौंदर्य के साथ क्रीड़ा करती है। प्राकृतिक परिवेश ने कवि की भावनाओं को सहायता और जीवन के संघर्षपूर्ण मार्ग पर चलने के लिए उकसाया।" कवि ने इस प्रकृति चित्रों में अलंकृत, कलात्मक और काल्पनिक रूप उपलब्ध नहीं है बल्कि उन्होंने प्रकृति के सहज और अकृत्रिम रूप को ही उभारा है। 'मेघ बजे', 'धन-कुरंग' में भी कवि ने बादलों के अप्रतिम सौंदर्य का वर्णन किया है तथा साथ ही वर्षा ऋतु का भी चित्रण किया है-

"धिन-धिन-धा धमक धमक
मेघ बजे
दामिनी यह गई दमक
मेघ बजे दादुर का कंठ खुला

मेघ बजे
धरती का ह्रदय धुला
मेघ बजे
पंक बना हरिचन्दन।'

कवि नागार्जुन की प्रकृति के प्रति आत्मीयता है और उन्हें प्रकृति धरती के गीत-गाने में ही उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। इसीलिए वे कवि कालिदास की कारयात्रे प्रतिभा से प्रभावित होते हुए भी उनके द्वारा वर्णित चित्रित राजगिरी और अलकापुरी के प्राकृतिक परिवेश को कल्पित कहकर उसकी आलोचना की है-

"कहाँ गया धनपति कुबेर वह।
कहाँ गयी उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के।
व्योमप्रवाही गंगाजल का
ढूँढ़ा बहुत परन्तु लगा क्या
मेघदूत का पता कह पर
कौन बताए वह छायामय बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो वह कवि-कल्पित था, मैंने तो भीषण जाड़ों में।
नभचुम्बी कैलाश शीर्ष पर महामेघ को झंझानिल से।
गरज-गरज भिड़ते देखा है बादल को घिरते देखा है।"

इसी प्रकार 'बसन्त' कविता में बसन्त ऋतु का अत्यन्त सुंदर चित्रण करते हुए लिखा है- कवि वसन्त को प थ्वी का यौवन तथा श ंगार घोषित करते हुए लिखता है-

"मैं बसन्त, मैं मदन सखा सुकुमार,
त्रिभुवन पर मेरा अखण्ड अधिकार
मैं मरू-उर में उद्‌भिद का अवतार
नवल स ष्टि विधि को मेरा उपहार
मैं धरती का यौवन, मैं श ंगार।"

हाड़ कंपाती भयंकर शीत ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने उसे 'विष कन्या' घोषित किया है क्योंकि अंकुरित फसलों पर वह अपने पाले की मार करके उन्हें असामयिक काल-क्रोड़ में समाने के लिए विवश कर देती है-

'दरक गये केलों के पात
लेते ही करवट
तेजाब की फुहारें
छिड़कने लगा सुरज
हजारों बाहों वाली शिशिर विषकन्या
उतरी लेकर साँसों में प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होठों के प्राणशोधी चुम्बन
तन-पन पर लेप गये ज्वालामय चन्दन।'

ऐसा नही है कि कवि को केवल प्रकृति की सुंदरता ही प्रिय है अपितु उसकी कुरूपता से भी उसे प्रेम है। उन्हें जहाँ एक ओर बसन्त, शरद और हेमन्त ऋतु अच्छी लगती हैं वहीं उनहें ग्रीष्म, शिशिर और पावस ऋतु से भी अत्यन्त स्नेह है। वर्षा ऋतु के प्रति उनका प्रेम अधिक है। प्रकृति के विभिन्न रूपों का सजीव, सशक्त चित्रण कवि ने किया है। श्वेत-खलिहान की पकी हुई सुनहली फसलों में कवि अपनी रग-रग की रक्त बूंदों को मुस्कराते हुए देखता है-

'नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है।
यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है।.....
भीनी-भीनी खुशबू वाले।

रंग-बिरंगे।
यह जो फूल खिले हैं।
पकी सुनहली फसलों से जो अब की यह खलिहान भर गया।
मेरी रग-रग की शोषित की बूँदें इसमें मुस्काती हैं।'

नागार्जुन ने 'मेरी भी आभा है' नामक अपनी रचना में प्रकृति से जुड़ी विभिन्न रागात्मक अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है जिसमें वैभव, उत्साह, अल्हड़ता, तटस्थता व चंचलता आदि भाव की समाहित हैं जैसे-

'नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें
भीनी-भीनी खुशबू वाले
रंग-बिरंगे। यह जो इतने फूल खिले हैं
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था।

कविवर नागार्जुन की प्रकृति योजना के बारे में डॉ. प्रभाकर माचवे का कहना है- "प्रकृति उनके लिए अपने अधूरे सपनों का नीड़ कभी नहीं रही। वहाँ पलायन कर इस धरती के दुःख-दर्द को भूल जाने की बात उन्होंने कभी अपने मन में नहीं ठानी। इसीलिए चाहे प्राकृतिक द श्य हो या प्राकृतिक विषयों पर मानवीकरण का आरोप हो, सर्वत्र वे अपने आस-पास के पूरे जीव व जगत् की विसंगतियों और विद्रूप को नहीं ढूँढ़ पाये हैं।"

नागार्जुन प्रकृति का चतुर चितेरा है, इसीलिए उनकी अनेक कविताएं बसन्ती प्रकृति के वैभव, सुषमा-प्रसार और मादक मानमोहक रूप को उजागर करती हैं। कहीं-कहीं तो वे प्रकृति-चित्रण में पंत जी से भी आगे निकल जाते हैं। कवि ने 'पूस की धूप' का एक मनमोहक व रमणीम चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

"पूस मास की धूप सुहावन। घिसे हुए पीतल सी पाँडुर
स्तनपायी नीरोग गौर छवि। शिशु के गालों सी मनहर
पूस की मास की धूप सुहावन।
फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बनी रही पत्नी बेचारी।"

कवि अपने मनोभावों को प्रकृति चित्रण करने के लिए आलम्बन रूप में भी व्यक्त करता है। 'काली सप्तमी का चाँद' कविता इसी प्रकार की है-

"काली सप्तमी का चाँद। पावस की नमी का चाँद
तिक्त स्म तियों का विकृत विष वाष्प कैसे सूँघता है चाँद
जागता था, विवश था, अब ऊँघता है चाँद
क्षीण दुर्बल कलाधार की कान्ति प्रतिपल खो रही है
सिमट आया प्रभाव मण्डल
पीतिमा की परिधि छोटी हो रही है।"

डॉ. शिवकुमार मिश्रा ने नागार्जुन की प्रकृति परक विशेषताओं का मूल्यांकन करते हुए लिखा है- "प्रकृति नागार्जुन की रचनाओं में अपने सारे रंग रूपों में, सारी मुद्राओं में, सारे संसार के साथ आई है। प्रकृति के प्रति इतना उन्मुक्त और खुला हुआ अनुराग, उसके प्रति इतनी ललक भरी आत्मीयता, उसके आकाशीय और धरती से जुड़े वैभव की इतनी सूक्ष्म और गहरी पकड़, उसका इतना बारीक और संवेदनात्मक पर्यवेक्षण आधुनिक कविता में कम ही मिलेगा। बहुत बड़ी संख्या है नागार्जुन की प्रकृति कविताओं की, और एक अच्छी खासी संख्या इस संकलन की कविताओं में भी बानगी के तौर पर है। एक बड़ी प्रसिद्ध कविता है- 'अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है' यह कविता उनके युगधारा' संकलन में सबसे पहले प्रकाशित हुई थी। कालिदास के 'कुमार संभव' के हिमालयपर्वत से जो लोग वाकिफ हैं वे मेरे इस कथन की ताईद करेंगे कि नागार्जुन

की यह कविता अपनी सीमित परिधि में भी हिमालय के वैसी ही अनुभूति देती है और संस्कृति की क्लासिकल शैली की अनुरूपता में उसे और भी प्रगाढ़ कर देती है। नागार्जुन के यहाँ प्रकृति रोमानी नहीं, काल्पनिक नहीं, अलंकारों से सजी सजाई नहीं, वायवी नहीं, एक सजीव वास्तविकता है, अपने समूचेपन में, अपनी सारी मुद्राओं में। धरती और आकाश, गाँव और नगर, सब तक उनकी व्याप्ति है। प्रकृति के साधारण-असाधारण सारे रूप उनके यहाँ हैं, उसका सौन्दर्य और उसकी कुरूपता, दोनों ही उन्हें प्रिय हैं, उसके मनोहारी रूपों के प्रति भी उनकी अनुरक्ति है और उसके रौद्र रूपों के प्रति उनमें दुराव नहीं है। बसन्त, शरद और हेमन्त ऋतुएँ उन्हें जितनी प्रिय है, ग्रीष्म शिशिर, पावस से भी उन्हें उतना ही प्यार है। पावस तो उनहें बेहद प्रिय है। उसके फलस्वरूप आने वाली बाढ़ तथा महामारियों का चित्रण भी वे करते हैं, जनता के कष्ट से व्यथित भी होते हैं परन्तु पावस के प्रति उनकी ममता कम नहीं होती। कदाचित् ही आाधुनिक युग के किसी कवि ने पावस के कीचड़ का अभिनन्दन किया हो। नागार्जुन 'जय हे कीचड़' नाम से कविता ही नहीं लिखते, पावस पंक को हरि चंदन से उपमित करते हैं। 1 वर्ष पर जितनी कविताएं नागार्जुन ने उसमें भीगकर लिखी हैं कम कवियों ने ही लिखी होंगी।"

डॉ. जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- 'नागार्जुन ने प्रकृति के नवीन रूपों और चित्रण की नवीन प्रणालियों के प्रयोग किए। उनकी प्रकृतिपरक कविताएं छोटी पर उबाऊपन से रहित हैं। इन कविताओं में छायावाद की तरह प्रकृति के संश्लिष्ट और पेचीदे रूप नहीं मिलते। इन सरल चित्रों के पीछे कवि की सरल मानसिकता के साथ युग की मांग और छायावाद के संशिलष्ट प्रकृति चित्रों के प्रति सरल चित्रों की प्रतिक्रियात्मकता का योग है। अतः नागार्जुन का प्रकृति चित्रण न कालिदास की तरह कल्पना बोझिल हो पाया है और न पंत की प्रकृति की तरह अतिरंजनापूर्ण और निरीक्षक दोष से युक्त ही।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नागार्जुन का प्रकृति चित्रण-प्रकृति के प्रत्येक पहलु को अपने आँचल में समेट कर जनसमुदाय के सामने प्रस्तुत हुआ है। कोई भी रूप उनसे छूट न सका। प्रकृति के दोनों रूपों सुन्दर और असुन्दर का भी चित्रण हुआ है। प्रकृति चित्रण में नागार्जुन को बादल और वर्षा ऋतु से अधिक प्यार है क्योंकि बादल किसान का जीवनदाता है। उसी पर किसान निर्भर है और नागार्जुन किसानों का समर्थक है।

4. नागार्जुनः आर्थिक द ष्टि

डॉ. रामविलास शर्मा ने नागार्जुन की कवितओं का मूल्यांकन करते हुए लिखा है- "जहाँ मौत नहीं है, बुढ़ापा नहीं है, जनता के असंतोष और राज्य सभाई जीवन को संतुलन नहीं है, वह कविता है नागार्जुन की। ढाई पसली के घुमन्तू जीव, दमे के मरीज, ग हस्थी का भार-फ़िर भी क्या ताकत है नागार्जुन की कविताओं में। और कवियों में जहाँ छायावादी कल्पनाशीलता प्रबल हुई है, नागार्जुन की छायावादी काव्य-शैली कभी की खत्म हो चुकी है। अन्य कवियो में रहस्यवाद और यथार्थवाद को लेकर द्वन्द्व हुआ है, नागार्जुन का व्यंग्य और पैना हुआ है, क्रान्तिकारी आस्था और द ढ़ हुई है, उनके यथार्थ चित्रण में अधिक विविधता और प्रौढ़ता आई है। उनकी कविताएँ लोक संस्कृति के इतना नजदीक हैं कि उसी का एक विकसित रूप मालूम होती हैं। किन्तु वे लोकगीतों से भिन्न हैं, सबसे पहले अपनी भाषा खड़ी बोली के कारण, उसके बाद अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण और अन्त में बोलचाल की भाषा की गति और लय को आधार मानकर नये-नये प्रयोगों के कारण। 'हिन्दी भाषा..... किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा .... समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।"

कवि ने किसानों, मजदूरों, कृषकों की अनेकों समस्याओं को अपनी कविताओं में चित्रण करते हुए किसान-आंदोलन, अन्न संकट, शोषन, महंगाई, वर्ग-संघर्ष आदि का भी चित्रण किया है। आज से ही नहीं अपितु चिरकाल से भारतीय किसान का शोषण होता चला आ रहा है। कवि किसानों की दयनीय एवं शोचनीय दशा के लिए स्वयं उनको ही जिम्मेवार मानता है क्योंकि उनकी अशिक्षा और अज्ञानता के कारण ऐसा होता चला आ रहा हैं कवि किसानों, मजदूरों की जर्जर हालत के लिए सरकार को भी उत्तरदायी मानता है-

"लाख-लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा हे रेत?
छीन चुका है कौन करोड़ों खेतिहारों के खेत?
किसके बल पर कूद रहें हैं सत्ताधारी प्रेत?
किसके बल पर कांग्रेसी नेता हुए अचेत।"

अनादिकाल से किसान शोषित एवं पीड़ित है। जमींदार और महाजन उसे नोंचते हैं। कवि किसानों के प्रति अपनी सच्ची सहानुभूति व आत्मीयता अभिव्यक्त करता है तथा उनके दुःख दर्दों को व उसके विकास में अवरोधक तत्वों को लिपिवद्ध करता है-

"बीज नहीं है, बैल नहीं है वर्षा बिन अकुलाते हैं।
नहर रेट बढ़ गया खेत में पानी नहीं पटाते हैं।
नहीं भूमि में कनमा भर भी दाना उपजा पाते हैं।
पिछला कर्ज चुका न सके, साहु की झिड़की खाते हैं।"

शोषकवर्ग किसानों का शोषण करते ही चले जाते हैं। कर्ज रूपी दलदल में वे दिन-प्रतिदिन धंसते चले जाते हैं। कवि ने मिल मालिकों का चित्रण इस प्रकार से किया है-

"उतना ही फँसते, अपने को जितना अधिक बचाते हैं।
भूखे रहकर, आधा खाकर, दिन पर दिन दुबराते हैं।
हड्डी छेद रहा है जाड़ा, बरबस दाँत बजाते हैं
मिल वाला मनमानी करता, ऊख अगर उपजाते हैं।"

नागार्जुन किसानों की दयनीय दशा का जिम्मेवार कांग्रेस सरकार को मानते हैं और कहते हैं-

"कांग्रेस को वोट दे दिया, लेकिन अब पछताते हैं
तंग आ गए हैं किसान, संगठन स्वतंत्र बनाते हैं।"

कवि जमींदारीं उन्मूलन कानून की असफलता का उत्तदायी केवल पूँजीपतियों और जमींदारों को मानता है। इन्हीं के कारण भूखमरी, नग्नता, रोजगार का अभाव आदि की समस्या उत्पन्न होती है। इन सभी विसंगतियों का चित्रन करते हुए कवि कहते हैं -

"लो वे कोशी का कछार, करते हैं तुमको दान।
आठों पहर यहाँ बेदखली, कुर्की साँझ परात।
हम क्या जाने सन्त तुम्हारे भूमिदान की बात।
बिना हीड के हुए करोड़ों यहाँ डोम, बँस फोड़।
लाखों लाख फिर वे नंगन, भूखे मरे करोड़।
कहाँ गया वह जमींदारी उन्मूलन का फरमान।
छिने जा रहे गाछी-गोचर, पोखर और श्मशान।"

कवि के मन में इन पूँजीपतियों एवं जमींदारों के प्रति तीव्र आक्रोश विद्यमान है। क्योंकि इन्हीं के कारण समाज में अव्यवस्था फैली है। वे इन्हें 'रावण की औलाद' कहकर सम्बोधित करते हैं। सरकार को यद्यपि किसान ही बनाते हैं परन्तु वह भी पूंजीपतियों को ही भता आदि देती है इसका नागार्जुन कड़ा विरोध करता है और शोषितों का पक्ष लेकर वह अपनी 'लाल भवनि' कविता में जमींदारों को बुरा भला कहता है-

"सदियों तक लुटता रहा है जमा किया है खाएगा
दो पैसा भी जमींदार अब क्यों मुआवजा पाएगा।
गूँज रहा है दसों दिशा में, भूखे खेतिहरों का स्वर।"

मार्क्सवादी विचार से प्रेरित होकर कवि गरीबों को उनके अधिकार दिलाने के लिए कटिबद्ध है-

"सड़ी लाश है जमींदारियाँ, इनको हम दफनाएँगे।
खेत हमारे भूमि हमारी, सारा देश हमारा है।
जिसका जाँगर उसकी धरती यह एक बस नारा है।
होशियार कुछ देर नहीं है, लाल सवेरा आने में
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना है तेलंगाने में।"

कवि नागार्जुन ने प्रथम पंचवर्षीय योजना की असफलता पर भी कटु टिप्पणी की है। इसकी असफलता का कारण उन्होंने कांग्रेस सरकार की भेदभावपूर्ण नीति को स्वीकार किया है क्योंकि कांग्रेस सरकार ने पूंजीपतियों का साथ दिया था। वे अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"पाँच वर्ष की बनी योजना, एक नहीं दो-तीन
कागज के फूलों ने ली है सबकी खुशबू छीन
कागज पर खेती होती है, कलम हुए हर-धार
कृषि विकास की खबरें, प्रतिदिन छाप रही सरकार
उपजाऊ खेतों पर उनको दिला दिया अधिकार
हदबंदी बिल पेश हुआ था, उसका बना आचार।"

कवि गरीबों, किसानों, मजदूरों का कट्टर समर्थक है। उनके प्रति उसके मन में सहानुभूति है। इसीलिए वह मनोहर श्याम जोशी को स्पष्ट कहता है- "हम सर्वहारा के साथ हैं, किंतु हमें इस विषय में किसी की लगाई कैद मंजूर नहीं है। हम गरीब के साथ हैं, गरीब मजदूर के साथ है, हरिजन के साथ हैं, इनका उद्धार हो, ऐसा हम चाहते हैं।" कवि स्पष्ट घोषणा करता है कि हरित क्रांति का उद्देश्य उदान्त था परन्तु उससे सर्वहारा वर्ग लाभान्वित नहीं हो सका। कवि उसका गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन करता है-

"हरित क्रान्ति के घटाघोट में। पालक की पत्तियाँ गल गई।
माखन चोर बने भूस्वामी। कृषकों पर गोलियाँ पर गोलियाँ चल गईं।"

वर्ग वैषम्य जो कि भारतीय समाज में इस कदर व्याप्त है कि इसका अंत होना नामुमकिन-सा लगता है। इसका भी कवि अपनी कविताओं में चित्रण करता है। एक तरफ बड़ी-बड़ी, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ झालरों एवं फूलों से सजी हुई हैं तो दूसरी ओर मजदूरिन अपने बच्चे को कंधे पर बैठाकर पोटली में सत्तु बांधे कार्य कर रही है। इस प्रकार का वातावरण वर्ग-वैषम्य को चित्रित करने वाला है। 'पैसा चहक रहा है' कविता में कवि पूँजीपतयों के ठाठ-बाट, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन और उनके वैभव का प्रदर्शन करता है तथा पैसा सच है दुनिया फानी' में सार्वभौमिक सार्वकालिक सत्य का उद्घाटन किया गया है कि 'दादा बड़ा न भैया सबसे बड़ा रुपया।' कवि इस वर्ग विषमता को जड़ सहित समाप्त करना चाहता है। वह घोषणा करता हुआ कहता है -

"ढंहे विषमता के प्राचीर। पूँछे कोटि नयनों के नीर।
मिटे मनुजता के सब रोग। सहज सुखी हो सारे लोग।'

'26 जनवरी, 15 अगस्त' कविता भी समाज के वर्ग वैषम्य का ही उद्घाटन करती हैं कवि स्पष्ट करता है कि मेहनत सर्वहारा वर्ग करता है, मुनाफा सेठों की तिजोरियों में श्सुशोभित होता है, मोती की माला अपने स्वेदकणों से निर्मित करते हैं ये मजदूर, लेकिन गले एवं छाती की शोभा बढ़ाती है पूँजीपतियों की। 'चिथड़ों के अम्बार' में रेशमी वस्त्र का ठुमकना भी वर्ग विषमता को उद्दीप्त करता है। उधर मजदूरों पर छँटनी रूपी तलवार लटक रही है तथा सरकार धन कुबेरों को ही संरक्षण दे रही है। नागार्जुन का चित्रण देखिए-

"लटक रही है श्रमिकों पर अब भी। छँटनी की तलवार।
छूट दे रही अब भी। धन्ना सेठों को सरकार।"

डॉ. जगन्नाथ पंडित ने उनकी रचनाओं का विवेचन विश्लेषण करते हुए लिखा है- "नागार्जुन की कविताओं में शोषण के जितने रूप हैं, स्वतंत्रता काल के किसी एक कवि में प्रायः नहीं मिलते। नीचे से लेकर ऊपर तक जहाँ भी शोषण है, नागार्जुन ने उसकी खिलाफत की है। इसका मूल कारण है कि नागार्जुन का लेखन शोषण धर्मी चेतना के खिलाफ चला है। सामन्ती शोषण, साम्राज्यवादी शोषण, धार्मिक शोषण है, कृषि और उद्योग क्षेत्र में अर्थ और श्रम का शोषण। सब पर उन्होंने लिखकर जनता को उनसे परिचय कराया है। उसका स्वयं विरोध किया है तथा विरोध के लिए दूसरों को भी उकसाया है"।

नागार्जुन ने 1960 में महंगाई को 'रावण की नानी' से सर्पूणखाँ के दाँत और महाकाल के डैने से उपमित किया है। 'अब तो बंद करो हे देवी इस चुनाव का प्रहसन' में भी महँगाई की भयावहता का चित्रण है। कवि ने भाव चढ़ने का चित्रण इस प्रकार से किया है-

"कागज का रुपया रोया सुनना पड़ते है ताने,
हर सीढ़ी छोटी पड़ती है भाव चढ़े मनमाने।"

जिन व्यक्तियों में नैतिकता का नाम नहीं है और जो मुनाफा कमाने की ही बात सोचते हैं, उनकी पोल खोलते हुए कवि ने कहा है -

'लगता है कंट्रोल कभी फिर खुल जाती है
कपड़ों पर से पहली कीमत धुल जाती है।
बनिया तो यही मना रहे हैं; विश्वयुद्ध फिर हो शुरू।
फिर लखपति कोटिश्वर बने, कुछ चेहरे हों सुखरू।"

सारांश यह है कि कविवर नागार्जुन एक अर्थशास्त्री की भाँति रुपए का अवमूल्यन बढ़ती महँगाई तथा मूल्यों के उत्थान-पतन को साहित्य की सतह पर लाने का सफल प्रयास किया है और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की शह पर कालाबाजारी व मुनाफाखोरी करने वाले पूँजीपतियों के अनैतिक धन्धों की पोल खोली है तथा वर्ग विषमता का उद्घाटन करते हुए धनिकों के ऐशवर्यमय जीवन का चित्रांकन किया है, दीन-दलितों व शोषितों के अभावमय-दयनीय जीवन के भी करुणाजनक चित्र उतारे हैं। वह कभी सरकारी नीतियों की आलोचना करता है- पंचवर्षीय योजनाओं को कटघरे में खड़ा करता है तथा बढ़ती महँगाई व अवमूल्यित होते हुए रुपए के बारे में चिंता करता है। कवि आर्थिक विकास हेतु संचालित योजनाओं का विवेचन करके अकर्मक, स्वार्थी तथा भ्रष्टाचार के दलदल में धंसे इन अफसरों पर भी कटु प्रहार करके उन्हें सचेत किया है।

5. नागार्जुनः काव्य वैशिष्ट्य

निर्धन, असहाय, पीड़ित जनता का प्रतिनिधि एवं जन-गायक कवि नागार्जुन, मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आज तक जन समुदाय में क्या कुछ घटित हुआ, इसका वर्णन नागार्जुन की कविता में भरा पड़ा है। एक ओर तो उनकी कविता दलित-पीड़ित, शोषित और उपेक्षिताओं के प्रति गहरी आत्मीयता एवं सहानुभूति प्रदर्शित करती हैं तो दूसरी ओर पूँजीपतियों, जमींदारों, शोषकों के प्रति गहरा आक्रोश एवं रोष भी प्रकट करती है। **श्री अरूण कमल** ने उनके काव्य की विशेषताओं पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"एक-एक कतरे को एक-एक कविता को जोड़ने से जो नक्शा बनता है, वह इतना विस्त त, इतना जन संकुल है कि किसी एक बिंब या सूत्र में उनके काव्य लोक को व्यक्त नही किया जा सकता। यह हजार-हजार बाहों वाली कविताएँ हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती हजार वस्तुओं को अपनी मुट्ठियों में थामे।' वास्तव में नागार्जुन का काव्य संसार 'मिथिला के रूचिर भूभाग से लेकर मुलुण्ड के अति सुदूर प्रदेश तक फैली हुई काव्य भूमि, बिहार के सामन्ती उत्पीड़न से लेकर अमेरीकी साम्राज्यवाद तक की शोषण-श्रं खला, भूमिहीन मजदूरों के दुर्दम संघर्ष से लेकर जुलियन रोजनबर्ग की महान संघर्ष गाथा और नितांत व्यक्तिगत जीवन-प्रसंगों से प्राप्त सुख-दुख से लेकर बाकी सारे जगत् के सुख-दुख मोतिया, नेवले और मधुमती गाय तक के, यह चौहद्दी है नागर्जुन के काव्य-महादेश की।" उन्होंने राजनीतिक कविताओं में सामन्तों, पूँजीपतियों ओर भ्रष्ट राजनेताओं पर कटु कटाक्ष किए है। उनके व्यंग्य इतने पैने है कि धूल चाटने के `सिवाय और कोई चारा नहीं रहता। नागार्जुन का काव्य बहुआयामी है। उनके काव्य की विशेषताएं भी अनेक हैं। वर्णन निम्न प्रकार से है-

1 **राजनैतिक वर्ग का चित्रण**: कवि ने राजनैतिक वर्ग में राजनेताओं और राजनीति का गम्भीर अध्ययन मनन कर अपनी मौलिक विचारधारा प्रस्तुत की है। वास्तव में वे भारतीय चेतना के समर्थ संवाहक है और राजनीति का उन्हें गहरा ज्ञान है। उन्होंने अनेक स्थानों पर राजनीतिक-साहित्यिक सम्बन्धों को उजागर किया है। **डॉ० विष्णु प्रभाकर** का कहना है-'इसमें संदेह नहीं है कि बाबा राजनीति में आंकठ डूबे हैं। आन्दोलन, प्रदर्शन, जेल कुछ भी नहीं छूटा उनसे। उसी को लेकर उनका व्यक्तित्व घनघोर रूप से विवादास्पद हो उठा है।' डॉ० जगन्नाथ पंडित का कहना है-'आजादी क बाद के हिन्दी के सबसे बड़े राजनीतिक कवि हैं तथा उन्होंने भारतीय समाज और राजनीति की विकासमान और हासमान स्थितियों को रेखांकित किया है।' **श्री अरूण कमल** का कहना है-'आज नागार्जुन हिन्दी के सबसे बड़े राजनीतिक कवि हैं।' यदि यूं कहा जाए कि नागार्जुन सच्चे अर्थों में दीन-दलित, पीड़ित व शोषित जनता के कट्टर समर्थक वकील हैं। जहाँ-जहाँ वे अन्याय, अत्याचार देखते हैं, वहाँ-वहाँ उसका डटकर विरोध भी करते हैं।

कवि नेहरू जी की विदेश नीति की तीव्र आलोचना करते हैं। जब वे ब्रिटेन जाने लगते हैं तो नागार्जुन कहते हैं।

'पंड़ित जी जाने वाले हैं रानी के दरबार में
अपने ही हाथों गूँथेंगे मोती उसके हार में
मनमाने डूबकी लगाएँगे वहाँ टेम्स की धार में
दिल-दिमाग को पेश करेंगे, अबकी वह उपहार में।'

कवि ने अनेक स्थानों पर पुलिस की बर्बरता एवं निष्ठुरता को भी चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है-

'जिनके बूटों से कीलित है भारत माँ की छाती
जिनके दीपों मे जलती है तरूण आँत की बात्ती
ताजा मुँडों से करते जो पिशाच का पूजन
है असह्य जिनके कानों को बच्चों का कल कूजन।'

कवि 'शासन की बंदूक' नामक आनी कविता में भी व्यवस्था की क्रुरता एवं निष्ठुरता का चित्रण करता हुआ इंदिरा गांधी को प्रजातन्त्र की हत्यारिन, हिटलर की नानी, और लोकतन्त्र के मानचित्र को रौंदने वाली घोषित करता है जबकि शास्त्री जी को शक्तिदूत, शांतिदूत, वामन का अवतार तथा अपनी मिट्‌टी की महिमा का कलाकार कहता है।

कवि बोफोर्स की दलाली पर भी टिप्पणी करने से नहीं चूकते-

"बोफोर्स की दलाली
गुपचुप हजम करोगे
नित राजघाट जाकर
बापू भजन करोगे।"

1. **प्रकृति का यथार्थ चित्रणः** कविवर नागार्जुन ने प्रकृति-चित्रण भी काल्पनिक करके यथार्थपरक किया है। उनके प्रकृति-चित्रण में न तो कृत्रिमता है और न वायवी कल्पना अपितु स्वानुभूत, यथार्थ चित्रण है। उनकी मान्यता है-

'कहाँ गया धनपति कुबेर वह। कहाँ गयी उसकी वह अलका
नही ठिकाना कालिदास के। व्योम प्रवाही गंगाजल का
ढूँढ़ा बहुत परन्तु लगा क्या। मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो वह कवि कल्पित था। मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभचुम्बी कैलास शीर्ष पर। महामेघ को झंझानिल से।
गरज-गरज भिड़ते देखा है। बादल को घिरते देखा है।'

नागार्जुन की यह विशेषता है कि चाहे पौराणिक संदर्भ हो या ऐतिहासिक, दाम्पत्य प्रेम हो या वात्सल्य-सब में उनकी द ष्टि मूलतः यथार्थपरक है। जहाँ छायावादी कविता में प्रकृति अलंकार सज्जा और रहस्यात्मकता का जटिल रूप लेकर आती है, वहाँ नागार्जुन की प्रकृति यथार्थ का सहज, सरल और निश्छल रूप के साथ आती है। नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण में युग-जीवन की कोई-न-कोई समस्या मुखर होती है। वे प्रकृति को आनन्द की वस्तु नहीं भौतिक जीवन को सम द्ध बनाने के साधन रूप में स्वीकारते हैं। नागार्जुन का यह प्रकृति-दर्शन परम्परागत काव्य धाराओं के प्रकृति-चित्रण की विशिष्टता है।

3. **वर्ग वैषम्य का चित्रणः** किसानों, मजदूरों की दयनीय दशा का अवलोकन करके कवि नागार्जुन ने उनकी असहाय, अवस्था का यथार्थ चित्रण किया है तथा साथ ही उनके रास्ते में आने वाली बाधाओं का भी चित्रण किया है। जब अच्छे बीज और बैलों को पौष्टिक आहार तथा सिंचाई के लिए जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता तो कवि कहता है-

"बीज नहीं है, बैल नहीं है वर्षा बिन अकुलाते हैं
नहर रेट बढ़ गया, खेत में पानी नहीं पटाते हैं
नहीं भूमि में कनमा भर भी दाना उपजा पाते हैं
पिछला कर्ज चुका न सके, साहू की झिड़की खाते हैं।"

उन्होंने अपनी कविता 'लक्ष्मी' मे महल-झोंपड़ी को आमने-सामने रखकर बेकारी, मजदूरों की छँटनी, ऋणग्रस्तता जैसी समस्याओं का वर्णन किया है-

"बेकार है जनबल। हाथों पर चल रही है छँटनी की आरी
ओर है न छोर है। अपव्यय का जोर है।
कब तक चलेगा ऋण कब तक उधारी।
झुकाकर व्यथित माथ। खाली मन खाली हाथ।
पूजे तुम्हें कैसे कोटि नर-नारी।''

इस प्रकार समाज में बने हुए दो वर्ग एक-दूसरे से सदैव संघर्षरत रहते हैं। दिन-प्रतिदिन तनाव का वातावरण निर्मित होता रहता है परन्तु नागार्जुन ने इसे समूलनष्ट करने का प्रयास किया है।

4. **प्रेम के प्रति पवित्र द ष्किोण**: जीवन में यदि प्रेम नही हैं तो कुछ भी नहीं है इसलिए प्रेम सदैव सात्विक, दिव्य और संयत रूप में होना चाहिए, यही धारणा कवि नागार्जुन की भी है। उन्होंने अपने काव्य में प्रेम के अलौकिक, अशरीरी और पवित्र प्रेम का चित्रण किया है वे पत्नी के समक्ष अपना दोष स्वीकारते हैं-

'मार्जना कर दोष मेरे। बहुत कुछ अविवाहित किया है
बहुत कुछ अनुचित किया है। क्षमा करदे मुदित मन से
क्योंकि तू सर्वसहा है।'

'यह तुम थी' नामक कविता में कवि नारी से बुढ़ापे की प्रेरक और जीवनदायिनी शक्ति स्वीकारता है। नवीन ढंग से व्याख्या करने वाली यह कविता नारी को उदात्त, धरातल पर स्थापित करती है। उसने अपनी प्रियतमा को 'जोत की फाँक', 'छरहरी टहनी' और 'यादों की तलइया' कहा है। वास्तव में कवि का यह प्रेम परकीया न होकर स्वकीया है।

डॉ. शिव कुमार मिश्र के अनुसार-"उनके यहाँ प्रेम महज स्त्री-पुरूषों के राग ही को अन्तिम संस्कार नहीं रहा गया है, वरन् उससे आगे वात्सल्य अंचल, देश-देश के जन, देश की धरती और मनुष्य मात्र तक सीमित है। नागार्जुन की दाम्पत्य प्रेम की ये कविताएँ रोमानी मानसिकता की कविताएँ नहीं हैं, कवि एक ब हत्तर परिवेश से पूरी आत्मीयता से जुड़ा हुआ है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि उनका यह दाम्पत्य प्रेम लगभग सबसे अलग हटकर है। उनका यह दाम्पत्य प्रेम एंकागी नहीं है बल्कि उसमे समर्पण भाव है। इस प्रकार कह सकते हैं कि कवि का वात्सल्य एवं प्रेम निरूपण भी अत्यन्त मार्मिक एंव आकर्षक बन पड़ा हैं।

5. **नारी के प्रति प्रगतिशील द ष्टिकोण का चित्रण**: नारी आदि काल से ही भोग की वस्तु मानी गई है। उसका सदैव ही शोषण हुआ है। परन्तु कवि नागार्जुन की द ष्टि में शोषण के लिए नहीं अपितु पूजा योग्य है। कवि ने शोषित-दलित व पीड़ित नारी की समस्याओं को उठाकर नारी को एक नई द ष्टि प्रदान की है। उन्होंने नारी को पुरूष के समकक्ष मानकर समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयास किया है। उन्होंने नारी की पर्दा-प्रथा, कृत्रिम संकोच को भी अनुचित ठहराया है तथा बाल-विवाह, बेमेल विवाह का विरोध किया है तथा विधवा-विवाह का समर्थन किया है। वास्तव में कवि का नारी के प्रति यथार्थवादी और प्रगतिशील द ष्टिकोण है। वे नारी की सुखद, सफल दाम्पत्य जीवन समवयस्क दम्पति की अनिवार्यता पर जोर डालते हैं तथा रति के माध्यम से अनमेल विवाह पर कटाक्ष करते हैं-

"क्यों बूढ़े को करने लगी पसन्द?
क्या अनमेल समागम है अनिवार्य?
सुर समाज की बुद्धि हो गयी है भ्रष्ट करते हैं कैसे-कैसे खिलवाड़
बस यों ही ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश।"

कवि की मान्यता है कि नारी तभी परिपूर्ण होती है जब वह माँ बन जाती है। 'मात त्व ही नारी का चरमोत्कर्ष है वे स्वीकारते हैं कि नारी-पुरूष एक-दूसरे के पूरक हैं तथा एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। आधुकताओं पर वे कटु कटाक्ष करते हैं, क्योंकि नारी का यह रूप परम्परागत भारतीय नारी के प्रतिकूल हैं। इस प्रकार उनका द ष्टिकोण नारी के प्रति प्रगतिशील सिद्ध होता है।

डॉ. जगन्नाथ पंडित का कहना है-"कुत्सित सैक्स की भावनाओं की जगह एक स्वस्थ, प्रगतिशील भावना उनके काव्य में व्यक्त हुई हैं। सहधर्मिणी, माँ और प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित नागार्जुन की नारी सामाजिक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। वह रोमांस केलिए नहीं है, सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए है। इस तरह नागार्जुन ने दासता से नारी की मुक्ति का जो आहवान किया है वह जनवादी आन्दोलन का एक अंग है। नारी जीवन की विभिन्न विवशतापूर्ण स्थितियों को काव्य-बिम्बों में बाँधकर नागार्जुन ने समाज को स्थिति-बोध कराने की पहल की है।"

6. **राष्ट्रप्रेम की भावना का चित्रण**: कवि नागार्जुन की कविता में राष्ट्रीयभावना भरी हुइ है। उनके मन-प्राणों में राष्ट्रप्रेम की धुन बहुत गहरे तक समाई हुई है। कवि स्वतन्त्र भारत में दीन-हीन ओर दयतीय-विकृत दशा देखकर लिखने के लिए आबद्ध है।

"सताती तुमको न क्या अपने वतन की पीर
हाय ! नाहक देश माता के द गों से बह रहा है नीर।"

सोने की चिड़िया कहलाने वाला यह देश आर्थिक द ष्टि से खोखला हो गया है क्योंकि सारा वैभव, अमूल्य निधियाँ परिचय की ओर वह चली हैं-

"हो गया हाय पूरब उजाड़ खिंच गया खून, रह गया हाड़ा।''

भारत पर चीन के आक्रमण के समय कवि के मन में राष्ट्र प्रेम की भावना उद्दीप्त हो उठी। उन्होंने भी चाहा कि

"जी करता है सीखूँ मैं बंदूक चलाना,
जी करता है सीखूँ मैं फौलाद गलाना,
जी करता है जन-जन में भड़काऊँ शोले।
जी करता है नेफा पहुँच कर दागू गोले।"

डॉ॰ जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की राष्ट्रीय भावना का विवेचन-विश्लेषण करते हुए लिखा है-"नागार्जुन की राष्ट्रीय भावना उनके समाज बोध का ही विकसित रूप है, जिसमें उन्होंने राष्ट्र की सांस्कृतिक सम्पदा, समाज की स्वतंत्रता ओर उसकी रक्षा के भाव को सामने रखा है। राष्ट्रप्रेम की कविताओं में कहीं राष्ट्र के प्रति विनम्रता का भाव है कहीं भौगोलिक सीमाओं की रक्षा का और कहीं उसकी दुर्दशा पर करूणा प्रदर्शित करने का। देश के पराभवकाल में जिस राष्ट्रीयता की भावना पनपी थी, वह भारतेन्दु, गुप्त जी और निराला से होती हुई नागार्जुन के काव्य में मूर्त हुई इन कविताओं में नागार्जुन ने एक सच्चे राष्ट्रप्रेमी और देश-सेवक के रूप में अपने भावों को व्यक्त कर राष्ट्रहित से जुड़े प्रश्नों को उठाया है।"

7. **उत्तम बोलचाल की सरल-सहज भाषा**: नागार्जुन ने अपनी कविताओं की भाषा में आमबोलचाल से सम्पन्न सरल, सहज, रूप को अपनाया है। इसी कारण वे 'जनकवि' कहे जाते हैं। कबीर की भाषा की ही परिपाटी अपनाते हुए उन्होंने भाषा को सजाने का प्रयास नहीं किया। वास्तव में उनकी भाषा आम आदमी से तथा उसकी धड़कनों से सीधे जुड़ती है। उनकी भाषा के अनेक रूप हैं-तत्सम् शब्दों का प्रयोग कवि वहाँ करते हैं जहाँ उद्दान्त एवं गंभीर भावों का चित्रण करना हो। तद्भव शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ आमबोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है। मुहावरे-लोकोक्तियाँ का प्रयोग करके कवि ने जन आंकाक्षाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे कविता में अलंकारों की अपेक्षा नहीं करते। यदि हम यूं कहें कि नागार्जुन की भाषा आमजनता के बहुत करीब थी तो कोई अत्युक्ति न होगी।

8. **शैली**: शैली का वैविध्य नागाजुन के काव्य में द ष्टिगोचर होता है। उनकी कविताओं में आत्मकथात्मक शैली, नाटकीय शैली, वर्णनात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, विचारात्मक शैली, पद-शैली, सूक्त्यात्मक शैली, आव ति मूलक शैली, प्रश्न शैली और उद्बोधनात्मक शैली दिखाई पड़ती है। आत्म-कथात्मक शैली का उदाहरण द ष्टव्य है।

घुमक्कड़ी का शौकिन। मैं यानी अर्जुन नागा।
उर्फ वैधनाथ मिसिर उर्फ यात्री जी। लाकिन मौजे तरौनी बड़की।
थाना बहेड़ा। जिला दर भंगा विहार राज्य।

कवि उद्बोधन शैली में भारतीय नागरिकों को उद्बोधित करता हुआ ज्ञान की ज्योति लेकर अविद्या के अधंकार को मिटाने के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है।

"मत चुओ आँसू सरीखे, वर्फ जैसे गलो,
संकटों की आग में, फौलाद जैसे तुम ढलों।"

आव ति शैली का उदाहरण देखिए-

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।"

वर्णनात्मक शैली भी उनकी अनेक कविताओं में द ष्टिगोचर होती है यथा-

"दूर कहीं पर अमराई में कोयल बोली
परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
ब द्ध वनस्पतियों की ठूँठी शाखाओं में पोर-पोर
टहनी-टहनी का लगा दहकने।
टूसे निकल, मुकुलों के गुच्छे गदराये
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया।"

इन अनेक शैलियों के अतिरिक्त उनकी व्यंग्य शैली भी लाजबाब है। इसके द्वारा उन्होंने पाखँडियों, ढोंगियों और अवसरवादी नेताओं पर कटु प्रहार किए हैं।

उपर्युक्त विवेचनोपरान्त कहा जा सकता हैं कि नागार्जुन के अपनी रचनाओं में जहाँ एक और वर्ग-वैषम्य का उद्घाटन किया है तो दूसरी ओर प्रकृति-प्रेम के दिव्य-भव्य चित्र उकेरे है। राजनीति के कुत्सित व घिनौने स्वरूप पर भी कटु प्रहार किए हैं। नारी के प्रति उनका द ष्टिकोण प्रगतिशीली है और उन्होंने उनकी समस्याओं को उठाया है। कवि के मन में राष्ट्रीय भावना भरी हुई है और इन सबकी अभिव्यक्ति सरल भाषा में की है।

6. नागार्जुनः यथार्थ चेतना

आधुनिक कबीर कहे जाने वाले बाबा नागार्जुन अपनी कविताओं में कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं भरते अपितु यथार्थ की प ष्ठभूमि से टकराकर चलने वाले कवि हैं। **डॉ० बसन्त बंसल** ने ठीक ही कहा है- "कवि जब अपनी कविता में यथार्थ के धरातल को स्पर्श कर कविता का स जन करता है तो उसमें जनसमुदाय की वास्तविकता वातावरण की सजीवता, राजनीति के वास्तविक क्रियाकलाप एवं समाज का हूबहूब चित्र द ष्टिगोचर होता है।"

डॉ० लल्लन राय का कहना है-"अपने युग की समूची सुगन्ध और दुर्गन्ध के साथ समय की अविकल तथा सही छवि प्रस्तुत करने में नागार्जुन अब तक बेजोड़ हैं।" **डॉ० जगन्नाथ पण्डित** ने नागार्जुन की यथार्थ चेतना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"नागार्जुन की यह विशेषता है कि चाहे पौराणिक संदर्भ हो या ऐतिहासिक, दाम्पत्य प्रेम हो या वात्सल्य-सब में उनकी द ष्टि मूलतः यथार्थपरक है। जहाँ छायावादी कविता में प्रकृति अलंकार सज्जा और रहस्यात्मकता का जटिल रूप लेकर आती है, वहाँ नागार्जुन की प्रकृति यथार्थ का सहज, सरल और निश्छल रूप के साथ आती है।"

कवि द्वारा वर्णित किए गए सभी चित्र यथार्थपरक है। चाहें वह प्रकृति चित्रण हो, या राजनीतिक चित्रण। वे यायावर व घुमक्कड़ व्यक्तित्व के स्वामी हैं तथा देशाटन उन्होंने पर्याप्त मात्रा में किया है। कवि ने जीवन के हर क्षेत्र और काव्यवस्तु के हर रूप को यथार्थपरक द ष्टि से देखा है। वे गगनविहारी व कल्पना जीवी कवि नहीं है बल्कि जन-जन के गीत-गाते हुए मिट्टी से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। कवि के प्रकृति चित्रण में न उनकी वायवी कल्पना है, न कृत्रिमता है अपितु यथार्थ चित्रण है। कवि कल्पनाओं में विचरण करने वाले कवियों का विरोध करता हुआ लिखता है-

"कहाँ गया धनपति कुबेर वह कहाँ गई उसकी वह अलका,
नहीं ठिकाना कालिदास के व्योम प्रवाही गंगा जल का,
ढूँढा बहुत परन्तु लगा क्या मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो वह कवि-कल्पित था मैंने तो भीषण जाड़ों में,
नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर, महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है बादल को घिरते देखा है।"

नागार्जुन छलछाली प्रगतिशील आत्मकेन्द्रित और पलायनवादी रचनाओं के कट्टर विरोधी हैं। इसीलिए गगनविहारी ओर कल्पनाजीवी स्वर्ण किरण की जाली बुनने वाले कवियों की बड़े प्रखर स्वर में निंदा करते हैं-

"भस्मसात होने वाला है नीड़ तुम्हारा
काम आएगी स्वर्ण किरण की जाली
पैराशूट बना लेना प्रिय !"

डॉ० जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की यथार्थ चेतना का विवेचन-विश्लेषण करते हुए लिखा है-"अकाल, महामारी, सूखा आदि विषयों पर लिखकर नागार्जुन ने यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाया है। दहेज, बाल-विवाह, बाल-शोषण, अशिक्षा, साम्प्रदायिकता, अविद्या तथा मध्यकालीन संस्कारों से ग्रस्त समाज के चित्रण उनकी सामाजिक चेतना के महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। यथार्थ के प्रति नागार्जुन की द ष्टि कई तरह की है-"भावात्मक, वर्णनात्मक, आलोचनात्मक और परिवर्तनकामी। भावात्मक संदर्भ में वे शोषितों के प्रति संवेदना और सहानुभूति दिखाते हैं, वर्णनात्मक में समाज की यथास्थितियों को उजागर करते हैं। आलोचनात्मक में सामाजिक स्थितियों के प्रति आलोचनात्मक रूख अख्तियार करते हैं और परिवर्तनकामी रूपों में सामाजिक बदलाव के लिए जनता को उत्प्रेरित कर वर्ग-संघर्ष को प्रश्रय देते हैं। यथार्थ के प्रति चार प्रकार के ये द ष्टिकोण यथार्थ को समग्रता में प्रस्तुत करते हैं।" इसी प्रकार **डॉ० नामवर सिंह** का कहना है-"इसी प्रकार यथार्थ के रूप जिन्हें शिष्ट और सुरूचिपूर्ण कवि वीभत्स समझकर छोड़ देना ही उचित समझते हैं, नागार्जुन की साहसिक कल्पना से काव्य का रूप प्राप्त करते

हैं।" "प्रभु तुम कर दो वमन।" होगा मेरी क्षुधा का शमन' जैसी पंक्तियाँ लिखने का साहस नागार्जुन ही कर सकते थे। इसी प्रकार ग्राम्य, अश्लील और भदेश कहलाने का खतरा उठाकर भी वे 'फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण-सरोवर' तथा 'एक दूसरे का गुह्य अंग सूँघ रहे हैं' जैसी पंक्तियों के द्वारा आज की कुत्सा को मूर्तिमान करने का साहस रखते हैं। वैसे संस्कृत काव्यशास्त्र में नौ रसों के अन्तर्गत वीभत्स की भी गणना की गई है और खानपूरी के लिए थोड़ी-बहुत वीभत्स रस की रचनाएँ भी हुई हैं किन्तु नागार्जुन पहले कवि हैं जिन्होंने सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में वीभत्स को एक नई शक्ति प्रदान की है।"

डॉ० शिवकुमार मिश्र के शब्दों में-"नागार्जुन की सारी कविता यथार्थ की ठोस प ष्ठ भूमि पर आधारित है। वे कहीं भी कल्पना की अतिशयना में नहीं भटके हैं। समाज तथा जनता के सजग पहरुए की भाँति उनकी द ष्टि ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर को स्पर्श करते हुए यथार्थ को मूर्तिमान किया है।"

कवि ने अपनी 'विवाह' नामक कविता में वर्ग-वैषम्य का चित्रण करते हुए पूँजीपतियों के दोहरे मापदण्डों का चित्रण किया है। एक और तो पूँजीपतिवर्ग अपने भोग विलास एवं ऐश्वर्यमय जीवन को भोगने मे लिप्त हैं लेकिन दूसरी ओर शोषित वर्ग जूठे पत्तों को चाटकर अपनी क्षुधा को शांत एवं त प्त करने में लीन हैं।

"रेशम की यह चकाचौंध मणिमुक्ता का उद्दीपन
पास-पड़ौस उजागर बिजली लेती अंगड़ाई
थिरक रही है माइक पर उस्तादों की शहनाई
चाट रहे हैं कुछ प्राणी बाहर जूठन के दोने
चहक रहे हैं अन्दर ये लक्ष्मी के पुत्र सलोने
कला गुलाम हुई इनके आगे, कविता पानी भरती है।
सौ-सौ की मेहनत इनकी मुस्कानों पर मरती है।"

कवि का बादलों के प्रति विशेष अनुराग है। अतः उनका बादलों के प्रति यथार्थवादी द ष्टिकोण देखिए-

"मेघ, तुम्हारी दया की रातों-रात हो गई पुरानी दूब
जीवनदाता! अपने को तुम खूब उड़ेलो खूब।"

कवि केवल प्रकृति के सौंदर्य पर ही मोहित नही है। बल्कि कीचड़ और धूल को भी अपनी आत्मीयता व सहानुभूति समर्पित करता है। **डॉ० बच्चन सिंह** के अनुसार-"नागार्जुन की चेतना में जनपद अपने सम्पूर्ण भोलेपन और सौंदर्य में निवास करता है।" कीचड़ का स्पर्श उन्हें ओस के समान शीतलता प्रदान करता है और धमनियों में दौड़ने वाले रक्त को जमा सकने में सक्षम है -

"सरिता के कछार से धँसना तो पड़ेगा ही
कर्दम का तुहिनमय स्पर्श कंपन की पराकाष्ठा
जड़िमा में डूब गया स्पर्श बोध
रंगों में प्रवहमान रक्त..........जय हे कीजड़, जय हे।"

डॉ० विश्वम्भर मानव का कहना है-"गाँव की पंक' धूलि, दरिद्रता में पनपी, मानवता, शिशुओं की भोली मुस्कान को देखकर उनका हृदय कहीं गहरे अनुराग से भर उठता है, कहीं एकदम द्रवित हो जाता है, कहीं विस्मय में डूब जाता है।"

ग्रामीण जन-जीवन एवं किसानों के साथ नागार्जुन का गहरा तादात्मय है। इसी कारण किसानों की दुर्दशा का चित्रण उनकी कविताओं में हुआ है। पूँजीवादी व्यवस्था में पिसे किसान नरकीय जीवन जीने को विवश है। कवि ने उनके प्रति अपनी हृदयस्थ, ममता, सहानुभूति प्रकट की है-

"बीज नहीं है, बैल नही है वर्षा बिन अकुलाते हैं
नहर रेट बढ़ गया, खेत में पानी नहीं पटाते हैं।
नहीं भूमि में कनमा भर दाना उपजा पाते हैं।
पिछला कर्ज चुका न सके, साहू की झिड़की खाते हैं।"

उनकी 'पसेनाक गुण धर्म' कविता समाज के कटु यथार्थ से परिचय कराती है, इसमें शोषित पीड़ित किसानों के प्रति आत्मीयता व्यक्त की है-

"सो रहेगा चुपचाप झोपड़े के अन्दर।
भूखी माँ के पेट से सटकर।"

आज़ादी मिलने पर भी सर्वहारा वर्ग की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति नही हो पाती उनको न तो शरीर ढांपने को वस्त्र मिलता है और न भूख मिटाने को अन्न।

"पूस मास की धूप सुहावन। फटी दरी पर बैठा है चिर-रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़, बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भभार से अलस शिथिल है अंग-अंग
सब कुछ है, कोयला नहीं है। कैसे काम चलेगा बोलो
चावल नहीं सिझा सकती है। रोटी नहीं सेंक सकती है।
भाजी नहीं पका सकती हैं। घिसे हुए पीपल-सी पाडुंर
पूस मास की धूप सुहावन। फौरन उठकर जाना होगा
जहाँ कहीं से एक अठन्नी लानी होगी
वरना इस चूल्हे के मुँह पर फिर मकड़ी का जाला होगा।"

इसी प्रकार नारी के प्रति भी कवि का द ष्टिकोण यथार्थवादी रहा हैं। चिरकाल से शोषित-उत्पीड़ित नारी की स्थिति समाज में अत्यन्त दयनीय है। कवि ने नारी की दयनीय अवस्था का चित्रण इस प्रकार से किया है-

"दासी जीवन बिता रहा अब भी नारी समुदाय,
तितली या कुतिया अब भी समझी जाती है हाय।"

कवि का काव्य नारी जागरण की भावना से भरा है वे नारी को पराधीनता से मुक्त कराने की बात करते हैं उसकी घूँघट व त्ति, कृत्रिम-संकोच, पर्दा-प्रथा आदि का भी कवि ने द ढ़ता के साथ विरोध किया है। कवि का यहाँ नारी के प्रति यथार्थवादी द ष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। नारी की पूर्णता उसके मात त्व में ही निहित है इसीलिए कवि सन्तानहीन लक्ष्मी पर कटु कटाक्ष करते हैं। 'भिक्षुणी' कविता में काम के स जनात्मक और सात्विक रूप की अभिव्यक्ति हुई है-

"भगवान अमिताभ सहचर मैं चाहती।
चाहती अवलम्ब चाहती सहारा देकर,
तिलांजलि मिथ्या संकोच को।
ह्रदय की बात, लो, कहती हूँ आज मैं। कोई एक होता कि जिसको।
अपना मैं समझती। भले वह पीटता, भले की मारता।
किन्तु किसी क्षण में प्यार भी करता।
जीवन रस उड़ेलता उर के रिक्त पात्र में,
भूख व मात त्व की मेरी मिटा देता
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास मैं धन्य होती।"

कवि आधुनिक और फैशन परस्त नारियों पर कटु कटाक्ष करता है। 'जयति नवरंजनी', विज्ञापन सुन्दरी आदि कविताओं में आधुनिक एवं फैशनपरस्त नारियों पर व्यंग्य करके उनकी भर्त्सना करते हैं। **डॉ० जगन्नाथ पंडित** का कहना है-"कुत्सित सैक्स की भावनाओं की जगह एक स्वरूप, प्रगतिशील भावना उनके काव्य में व्यक्त हुई है। सहधर्मिणी, माँ और प्रेरक-शक्ति के रूप में चित्रित नागार्जुन की सारी सामाजिक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। वह रोमांस के लिए नही है। सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए हैं।"

भक्तिकाल में निर्गुण काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर ने जिस कड़े स्वर में जाति-पांति का विरोध किया था उसी स्वर में आधुनिक काल के आधुनिक कबीर माने जाने वाले कवि नागार्जुन ने भी जाति-पांति का विरोध किया है। ब्राह्मण के प्रभुत्व को चुनौती देते हुए शुद्र विरोधी परम्परा को नष्ट करना अपना धर्म मानते है। वे धर्म में व्याप्त पाखण्डों, बाह्याडम्बरों और परम्पराओं के कट्टर विरोधी हैं क्योंकि इससे समाज में गतिरोध उत्पन्न होता है। हरिजनों एवं अस्प श्य जाति के प्रति भी नागार्जुन अपनी ममता सहानुभूति, संवेदना समर्पित करते हैं। 'तेरी-खोपड़ी के अंदर में' कवि साम्प्रदायिकता के घिनौने और दूषित रूप पर प्रकाश डालता है। साथ ही कवि पूँजीपतियों की पोल खोलता हुआ कहता है-

"जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं व्यापारी हैं,
अन्दर-अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं।
सब घुस आये भरा पड़ा है, भारत माता का मन्दिर।
एक बार जो फिसले अगुआ फिसल रहे हैं फिर फिर फिर।"

इतना ही नहीं कवि नेताओं और पूँजीपतियों के बेमेल गठजोड़ को भी अपनी यथार्थपरक द ष्टि से निहारता है और पूँजीपतियों के सुखमय जीवन को इस प्रकार से अभिव्यक्त करता है-

"खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है,
बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दिवाली है।"

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना नागार्जुन की यथार्थ चेतना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-"इस तरह कवि ने मजदूर, किसान, शिक्षक, व्यापारी, नेता, कवि, सेठ, जमींदार, आदि सभी पर तीक्ष्ण द ष्टि डालते हुए समाज के यथार्थ जीवन का जीता-जागता चित्र अंकित किया है और सामाजिक विषमता, असमानता, अभाव, बेकारी, यातना, कष्ट, पीड़ा, वेदना आदि का चिंतन करते हुए सच्चे जन-कवि की भूमिका का अत्यन्त सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।"

निम्न मध्यवर्गीय कलर्क की आर्थिक अवस्था तो इतनी दयनीय-शोचनीय है कि उसके बंधे हुए वेतन में परिवार का जीवनापन नहीं होता और उसकी समस्याएँ द्रोपदी की साड़ी के चीरे की भाँति बढ़ती ही जाती हैं"- कवि कहता है-

"आह! द्रोपदी की साड़ी सी फाइल
एक-एक पट एक-एक पर लगती जाती ढेर
देखों तो कभी आँख निकल आती है
सच समझो छोटे बाबू पर तरस मुझे आता है।"

शिक्षकों की आर्थिक दशा भी इतनी दयनीय है कि कई महीनों से उन्हें पगार नहीं मिली है, इसके लिए उनको अनशन भी करना पड़ता है-

"लिखा अंत में ध्यान दीजिए, बहुत दिनों से मिला न वेतन
किससे कहूँ, दिखाई पड़ते कहीं नहीं अब वे नेतागण
पिछले दफे किया था हमने पटने में जा-जा के अनसन
स्वयं अर्थ-मन्त्री जी निकले, वह दे गए हमें आश्वासन।"

चाहे अकाल पड़े या सुखा हो किसानों की तो दशा दिन-प्रतिदिन बदतर होती चली जाती है। परन्तु मिनिस्टरों की आय में कोई कमी नहीं होती। वे दिन-प्रतिदिन सुख चैन से जीवन व्यतीत करते हैं-

"जाँता चुप है; चूल्हा ठण्डा, हांडी तौला खाली हैं
फसलों की बर्वादी क्या थी, जनता की पामा ली है
मिनिस्टरों के गालों पर देखो तो फिर भी लाली है।"

डॉ० जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की यथार्थ चेतना का मूल्यांकन-विवेचन-विश्लेषण करते हुए स्पष्ट लिखा है-"अकाल, महामारी, सूखा आदि विषयों पर लिखकर नागार्जुन ने यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाया है। दहेत, बाल-विवाह, बाल-शोषण, अशिक्षा, साम्प्रदायिकता, अविद्या तथा मध्यकालीन संस्कारों से ग्रस्त समाज के चित्रण उनकी सामाजिक चेतना के महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। यथार्थ के प्रति नागार्जुन की द ष्टि कई तरह की है-भावात्मक, वर्णनात्मक, आलोचनात्मक और परिवर्तकामी। भावात्मक संदर्भ में वे शोषितों के प्रति संवेदना और सहानुभूति दिखातें हैं, वर्णनात्मक में समाज की यथास्थितियों के प्रति आलोचनात्मक रूख अखित्यार करते हैं और परिवर्तनकामी रूपों में सामाजिक बदलाव के लिए जनता को उत्प्रेरित कर वर्ग संघर्ष को प्रश्रय देते हैं। यथार्थ के प्रति चार प्रकार के ये द ष्टिकोण यथार्थ को समग्रता में प्रस्तुत करते हैं।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाबा नागार्जुन का काव्य यथार्थ की भूमि पर आधारित है। कहीं भी कल्पना नहीं है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की शोचनीय दशा का यथार्थ चित्रण किया है। जीवन का कोई भी रूप उनकी यथार्थ द ष्टि से छूट न सका। अतः **डॉ० शिव कुमार मिश्र** के ये शब्द ठीक ही जान पड़ते हैं-"नागार्जुन की सारी कविता यथार्थ की ठोस भूमि पर आधारित हैं, वे कहीं भी कल्पना की अतिशयता में नहीं भटके हैं। समाज तथा जनता के सजग पहरूए की भाँति उनकी द ष्टि ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर का स्पर्श करते हुए यथार्थ को मूर्तिमान किया है।"

7. नागार्जुन और कबीर में समानताएँ एवं विषमताएँ

डॉ० हरिनारायण मिश्रा ने नागार्जुन की कविताओं की शक्ति उपादेयता का मूल्यांकन करते हुए लिखा है-"नागार्जुन की व्यंग्य रचना मे कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करूणा और निराला की विनोद वक्रता का विक्षखण सामंजस्य है।" नागार्जुन का काव्य कबीर के काव्य की ही तरह है, उन्होंने जिस प्रकार समाज की रूढ़ियों को विरोध किया है, इसी तरह नागार्जुन ने अपने काव्य में रूढ़ियों का विरोध किया है। निराला ने भी इसी प्रकार सामाजिक बंधनों को त्यागा था। तभी तो **डॉ० नामवर सिंह** का कहना है-"हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा या नागार्जुन ने।" इसी प्रकार **डॉ० रामविलास शर्मा** का कहना है-"भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिन्दादिली पैदा की है, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि है।" **श्री विश्वम्भर मानव** ने नागार्जुन के व्यंग्य कौशल का चित्रण करते हुए लिखा है-"हरिश्चन्द्र युग के कुछ साहित्यिकों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसा तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ।" कबीर की ही भाँति नागार्जुन ने समाज में व्याप्त बाह्याडम्बरों, परम्पराओं व रूढ़ि रीति-रिवाजों पर कटु कटाक्ष किए हैं तथा साथ ही जहाँ उन्होंने पाखण्ड, अन्धविश्वास, अनाचार व अत्याचार देखा वहीं उनका स्वर उग्र व कटु हो गया। उन्होंने कबीर की भाँति ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती दी और जातीयता एवं अस्प श्यता के उग्र होते पुश्न को बार-बार उठाया। वे धर्म के पाखण्डी, कर्मकाण्डी स्वरूप और धार्मिक सस्थानों के कुकृत्यों का भी पर्दाफाश करते हैं और जाति तथ धर्म की जड़ता पर कटु प्रहार करते हैं।

डॉ० जगन्नाथ पंडित का कहना है-"नागार्जुन ने कबीर की तरह दलित जनता के भीतर स्वाभिमान को जगाने की कोशिश की है, उसमें आत्मबल की प्रतिष्ठा कर उसके अभिशप्त पौरूष को विद्रोह की वाणी दी है। इसी अर्थ में नागार्जुन लोकजीवन और लोक ह्रदय की पहचान करते है।" उन्होंने अपनी कविता 'धोखे मे डाल सकते हैं' में बगुला धर्मी पंडितों पर कटु व्यंग्य किए गए है तो परपीड़क एवं पाखण्डी हैं तथा कथनी-करनी में अन्तर है। हिंसा-अहिंसा में वे आस्था नहीं रखते थे तथा स्वार्थ परस्ती और अवसरवादी है। 'काली माई' में देवी पर कटु व्यंग्य किया गया है क्योंकि वह श्रद्धालु भक्त जनों से निरीह बेजुबान प्राणियों की बलि लेती है। 'ऊहँह-अहँह' में कवि ने विष्णु की निष्क्रयता-अकर्मण्डता की पोल खोली है कि सक्षम होते हुए भी वे निष्क्रिय अकर्मण्य होकर क्षीर-सागर में शयनरत् हैं। देवी के प्रति कटाक्ष करता हुआ कहता है-

"मुंडमाल के लिए गरीबों पर निगाह है
धनपतियों के लिए दया की खुली राह है।"

कवि ने 'त त्यंताम-त प्यताम' में कर्मकाण्डी ब्राह्मणों पर कटु प्रहार करते हुए स्पष्ट किया है कि दिवंगत आत्मा हेतु त पर्ण का विधान करके निरीह जनता को बहका कर धन लूटते हैं। कवि की मान्यता है कि देवी-देवता, यक्ष और गंधर्व सभी ब्राह्मणों की पोथियों में नजरबंद है। वह प्रकारान्तर से धार्मिक पोथियों को अमान्य ठहराकर कर्मकाण्ड पर कटु कटाक्ष करता है। मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार और नैतिक पतन हेतु कवि जनता की अंध श्रद्धा भक्ति को जिम्मेदार ठहराता है।

"धर्म भीरू, पारस्परिक समुदायों की
बूँद-बूँद संचित श्रद्धा के सौ-सौ भाँड
जमा है, जमा होते रहेंगे। मठों के अन्दर।"

डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कहना है-'कवि ने अपने व्यंग्यों के माध्यम से अपनी विद्रोही एवं क्रान्तिकारी मनोव त्ति का परिचय बड़ी तत्परता के साथ दिया है। कवि अन्याय एवं अत्याचार का घोर विरोधी है, उसे छद्मवेषी नेता अच्छे नहीं लगते, वह छल-कपट का व्यवहार करने वाले राजनीतिज्ञों का दुश्मन है, उसे धोखा-धड़ी करने वाले भ्रष्टाचारियों से नफरत है, वह पाखण्डी साधुओं को समाज का कलंक समझता है, उसको स्वार्थी व लालची कांग्रेसियों से एकदम घ णा है और वह जनता के धन को व्यर्थ बर्बाद करने वालों को देशद्रोही मानता है। इसी कारण उसके ह्रदय में ऐसे अनाचारियों, अन्यायियों एवं भ्रष्टाचारियों के प्रति तीव्र आक्रोश है।'

कवि स्वार्थी, अवसरवादी व चापलूसी राजनेताओं पर कटु कटाक्ष करता है कि वे असत्य व पाप का सहारा लेकर विकास की बुलन्दियों पर चढ़ गये हैं।

सपने में भी सच न बोलना, वरना पकड़े जाओगे
भैय्या लखनऊ दिल्ली पहुँचो मेवा-मिसरी पाओगे
माल मिलेगा रेत सका यदि गला मजूंर-किसानों का
हम मर भूक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का।

छल कपट करने वाले छद्‌म वेश धारण करने वाले नेताओं पर कटु कटाक्ष करते हुए कहा है-

"चना है बना मसालेदार
खाइए भी तो यह सरकार
मिलेगा परमिट बारम्बार
मिलेंगे सौदे सभी उधार
नया हो जाएगा घर-बार
कि लद-लद कर आवेगी कार।"

इसी प्रकार कवि भारत सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं पर भी कटु प्रहार करता है क्योंकि भ्रष्टाचार ने विकास को दीमक की तरह चाट लिया है और कवि इन योजनाओं की विफलता व भ्रष्टाचार पर कटु व्यंग्य करता है-

"पाँच वर्ष की बनी योजना एक दो नहीं तीन
काजल के फूलों ने ले ली सबकी खशबू छीन
बलिहारी कागजी खुशी की क्यों न बजायें बीन
फटे बाँध से बालू बोले हम भी हैं स्वाधीन
अश्वमेध का घोड़ा दौड़ा चित्त है चारों नाल
कौन कहेगा आजादी के बीते तेरह साल।"

छब्बीस जनवरी, पंद्रह अगस्त, पैने दाँतों वाली, खड़ाऊ थी गद्दी पर, इन्दुजी, लाए टिकट मार के, जय नन्दा गुलजारी लाल, सपने दिखाकर के, गगन विहार के आदि रचनाओं में कवि ने राजनीतिक व्यंग्य लिखे हैं। इसी प्रकार से रामराज्य कविता में कवि ने गांधी के राजराज्य की कल्पना और उसके अनुयायियों द्वारा फैलाई गई असंगति को इस प्रकार से चित्रित किया है-

"रामराज्य में सबकी रावण नंगा होकर नाचा है
सूरत शक्ल वही है भैया, बदला केवल ढाँचा है,
लाज शरम रह गई न बाकी गाँधी जी के चेलों में
फूल नहीं, लाठियाँ बरसती रामराज्य की जेलों में,
भैया लंदन की पसन्द है आजादी की सीता को
नेहरू जी अब उमर गुजारेंगे अंग्रेजी खेलों में।"

इसी प्रकार कवि स्वार्थी व अवसरवादी नेताओं पर कटु व्यंग्य करता है क्योंकि वे चापलूसबाज और स्वार्थी हैं तथा कवि व्यंग्य करता है-

"वोट मिलना लगता आसान,
कहीं पर भोज कहीं गुनगान
कहीं पर थोक नकद नग दान।"

कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीतिक नेताओं, धार्मिक ठेकेदारों, स्वार्थियों, अवसरवादियों, भ्रष्टाचारियों, अत्याचारियों, पाखण्डी साधुओं आदि पर कटु व्यंग्य करते हुए अपनी विद्रोही प्रव ति का परिचय दिया है। कवि ने इंदिरागांधी, राजनारायण, राजीव, संजय, मोरारजी देसाई, जय नारायण आदि पर कटु कटाक्ष करते हुए इंदिरा जी को हिटलर की नानी, लोकतंत्र की हत्यारिन, ठग उच्चकों की मलिकाइन आदि कहकर उस पर कटु कटाक्ष किए हैं। जब इमरजेन्सी लगाई गई तो कवि को नेहरू जी अच्छे लगने लगे-

इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको?
सत्ता की मस्ती में। भूल गई बाप को?

कांग्रेसी नेताओं की पोल खोलते हुए कवि ने उन्हें पूँजीपतियों के हितचिंतक, हित साधक, स्वार्थी, अवसरवादी व निर्मम-निष्ठुर घोषित किया है-

"कांग्रेस जन तो तेणे कहिए, जो पीर आपनी जाणे रे
परदुख में अपना सुख साधे, दया भाव न आणे रे
तीन भुवन मा ठगे सभी को, शरम न राखे केनी रे
टोपी, कुर्ता, धोती, खद्दर, धन-धन जननी तेनी रे।"

कवि ने पूँजीपतियों द्वारा आयोजित की जानेवाली जयन्तियों का भी चित्रण किया है जिन पर बेशुमार खर्च किया जाता है। 'तीस हजारी कार' में आर्थिक विषमता, भूख, अकाल, और महामारी से संघर्ष करते भारत के करूणाप्रदा चित्र अंकित किए गए है। कवि ने 'नाकहीन मुखड़ा' में वस्त्र और आवास की समस्या पर भी प्रकाश डाला है। 'स्वदेशी शासक' में कवि ने स्वार्थी, अवसरवादी व भ्रष्टाचार की दल-दल में धँसे नेताओं पर कटु कटाक्ष किए हैं क्योंकि वे स्वयं तो सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ भोग रहे हैं, ऐश्वर्य व विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं, परन्तु जनता आर्थिक विपन्नताओं को झेल रही है-

"हमें सीख दो शांत और संयत जीवन की
अपनी खातिर करो जुगाड़ अपरिमित धन की
बेच-बेचकर गाँधी जी का नाम
बटोरो बोट। हिलाओ शीश। निपोरी खीस।"

स्वतंत्र भारत की पूँजीपति प्रव त्ति बहुत वेग से पनपी है और इसके कारण बेकारी की समस्या बढ़ती चली गई। धन-कुबेर अपनी मिलों में मजदूरों की छँटनी कर रहे हैं तथा सरकार भी पूँजीपतियों को संरक्षित कर रही है।

"लटक रही है श्रमिकों पर अब भी
छटनी की तलवार
छूट दे रही अब भी
धन्नासेठों को सरकार।"

'अकाल और उसके बाद' कविता में अकाल की भयावहता उससे प्रभावित जीवों की पस्ती आदि का चित्रण इस प्रकार से किया है। वैसे अकाल, महामारी, सुखा आदि विषयों पर कवि ने यथार्थवादी शैली में चित्रण किया है-

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

साहूकार की गिरफ्त से बचने लिए मजदूर-किसान जितना हाथ-पैर मारता है उतना ही शोषण रूपी दल-दल में धँसता जाता है। चीनी मिल मालिकों की मनमानी और शोषण का चित्रण कवि ने इस प्रकार से किया है-

"उतना ही फँसते, अपने को जितना अधिक बचाते हैं।
भूखे रहकर आधा खाकर, दिन पर दिन दुबराते हैं।
हड्डी छेद रहा जाड़ा, बरबस दाँत बजाते हैं।
मिल वाला मनमानी करता, ऊख अगर उपजाते हैं।"

इसी प्रकार कविवर नागार्जुन ने आर्थिक विषमता को खोलते हुए पूँजीपतियों के शोषण पर कटु कटाक्ष किए हैं। उन्होंने शोषकों को चोर, डाकू, झूठा, मक्कार, कातिल, छलिया, लुच्चा-लबार जैसे घ णित-तिरस्कृत उपमान प्रदान किए हैं। उन्होंने भारतीय जनता की दरिद्रता का उद्घाटन भी अपनी कविताओं में किया है।

इसीलिए **श्री रामेशवर शर्मा** के अनुसार "उनके व्यंग्यों की एक प्रधान विशेषता यह है कि उनके पीछे एक सच्चे देशभक्त कवि के हृदय की गहरी मनोव्यथा और परिस्थिति को बदल देने की एक उत्कृष्ट प्रेरणा विद्यमान है। वास्तव में एक व्यंग्यकार के रूप में नागार्जुन भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त के सच्चे वारिस हैं। उन्होंने एक नये कौशल के साथ व्यंग्य के लिए भारतेन्दु युग के कई काव्य रूपों जैसे चूरन के लटके आदि को प्रयुक्त किया है।" इसी प्रकार **विश्वम्भर मानव** ने कबीर की भाँति नागार्जुन की व्यंग्य कुशलता की प्रशंसा की है"- हरिश्चन्द्र युग के कुछ साहित्यिकों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसी तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ।"

डॉ. द्वारिका प्रसान सक्सेना ने नागार्जुन के काव्य की शक्ति व गुणवत्ता का चित्रण करते हुए लिखा है- "उनकी कविताओं में निराला का सा आक्रोश है, निराला का सा क्षोय है, निराला की सी अक्खड़ता है, निराला का-सा तीक्ष्ण व्यंग्य है, निराला की सी तड़पन है, निराला की सी हलचल है, निराला का सा क्रांति का स्वर है, निराला की सी विद्रोही भावना है, निराला की सी फटकार है, निराला की सी ललकार है और कहीं-कहीं निराला की सी ही हुंकार है।

इसी प्रकार नागार्जुन ने भी पीड़ित जनता के कष्टों को स्वर प्रदान किया है, अभावग्रस्त निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, अभावों में लालित-पालित तथा कष्टों से जूझने वालों के प्रति संवेदना भी है। समाज की मन्त्रनाओं और पीड़ाओं से संगस्त मानवों के उत्थान के लिए क्रांति का आह्वान किया है, उच्च समाज के शोषण कार्यों का विरोध किया है और वीरता के साथ संघर्षरत सर्वहारा वर्ग का स्तवन किया है।"

इसी प्रकार **डॉ. शेरचन्द्र गर्ग** ने नागार्जुन की व्यंग्य भावना का चित्रण इस प्रकार किया है- "ऊबड़-खाबड़ किन्तु चट्टान जैसे मजबूती रखने वाली, क्षिप्त और हथौड़ी सी चोट करने वाली, बेतकल्लुफ, फक्कड़ और निर्भिक व्यंग्य रचनाएँ लिखने के कारण नागार्जुन का स्थान अन्य व्यंग्यकारों की तुलना में हमेशा अलग रहेगा।" इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन के व्यंग्य भी कबीर की भाँति अत्यन्त प्रखर-पैने और अद्‌भुत मारक क्षमता से युक्त हैं।"

`कवि नागार्जुन के कटाक्षों राजनीतिक वर्ग पर किए व्यंग्यों, पूँजीपतियों के प्रति किया गया विरोध, आम आदमी के प्रति उनका प्रेम आदि को देखकर कहा जा सकता है कि वास्तव में उनमें कबीर जैसी तल्खी विद्यमान थी। इस विषय में **डॉ. जगन्नाथ पंडित** का कहना है कि-

डॉ. जगन्नाथ पंडित का कहना है-"वे कबीर की भाँति स्पष्टवादी और दो टूक जवाब देने वाले हैं। अन्तर इतना है कि कबीर के व्यंग्य मूलतः धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र तक सीमित हैं, जबकि नागार्जुन के व्यंग्य इन क्षेत्रों के अतिरिक्त राजनीति की विशाल परिधि तक फैले हैं। इसका कारण है कि कबीर के समय धार्मिक और सामाजिक तत्त्व ही प्रबल थे, आधुनिक युग में राजनीति की प्रबलता है, इसीलिए राजनीति सबसे अधिक व्यंग्य का शिकार बनी है। नागार्जुन में राजनीतिक व्यंग्य की प्रमुखता है। कबीर ने जन भाषा के प्रयोग किये लेकिन पंडितों को परास्त करने के लिए कड़े प्रतीकों, रूपकों और उलटबासियों के प्रयोग किये हैं। नागार्जुन ने मूल रूप से उस भाषा को महत्त्व दिया जो जीने में सहायक हो, जानने में नहीं है। फिर भी उन्होंने पंडितों की भाषा का भी ख्याल किया है, इसीलिए ग्रामीण मुहावरों और कहावतों से युक्त भाषा के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग भी किया हैं।"

इस प्रकार सम्पूर्ण अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक नीतियों तथा राजनेताओं के ऊपर कटु कटाक्ष किए हैं और उनकी पोल खोली है। इसलिए कहा जा सकता है कि नागार्जुन हिन्दी के आधुनिक कबीर हैं और उसी की भाँति उन्होंने बाह्यडम्बर, परम्पराओं व रीति-रिवाजों का कड़ा विरोध किया है तथा पाखण्ड, अंधविश्वास, अनाचार व अत्याचार पर कटु कटाक्ष किए हैं। जिस प्रकार कबीर ने जाति प्रथा, वर्ग-भेद, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े के भेद-भाव को मिटाकर सबको समान माना ठीक इसी प्रकार नागार्जुन ने भी इन सबका विरोध किया है और सबको समान मानकर सभी से समानता का व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया है। उन्होंने अपने तीखे स्वर में समाज के ठेकेदारों की खुलकर आलोचना की है। अतः कहा जा सकता है उनकी रचनाओं में "कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद वक्रता का विलक्षण सामंजस्य है।"

8. नागार्जुनः व्यंग्य भावना

डॉ० रामबिलास शर्मा ने उनकी व्यंग्य-योजना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने उनकी व्यंग्य-योजना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है,-"भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिन्दादिली पैदा की है, नागार्जुन उसके समर्थ प्रतिनिधि हैं।" अत स्पष्ट है कि कवि को जहाँ भी शोषण दिखाई दिया वहीं अपनी प्रखर वाणी में समाज के ठेकेदारों को फटकार दिया। उन्होंने समाज के विकास में बाधक तत्वों-रूढ़ियों, पाखण्डों, बाह्यडम्बरों, जाति-पाति या साम्प्रदायिकता या राजनैतिक नेताओं की अनुचित कार्य पद्धति या जिस्म का प्रदर्शन करती फिरती नारी की विसंगतियाँ- उन सब पर कवि ने निर्मम-निष्ठुर व निर्भीक होकर कटु व्यंग्य किए हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने उनकी व्यंग्यों की मारक शक्ति के विषय में विचार करते हुए कहा है- "विचार और व्यंग्य की आग नागार्जुन की कविताओं में दहकती दिखाई देती है। हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा था या नागार्जुन और केदार ने।"

आज समाज भ्रष्टाचार से लिप्त है। चारों और भ्रष्टाचारी नेताओं की धूम है। इन पर अपनी व्यंग्यद ष्टि डालते हुए कहते हैं-

"रामराज्य में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।
सूरत शक्ल वहीं है भैया, बदला केवल ढाँचा है।
नेताओं की नीयत बदली, फिर तो अपने ही हाथों,
भारतमाता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है।"

1962 में उसी चीन ने जो हिन्दी-चीनी भाई-भाई का राग अलापते थे, उन्होंने ही भारत पर आक्रमण करके पंचशील सिद्धान्त को मिटाया और भारत की भूमि पर कब्जा किया तो कवि ने उनकी छल-कपट पूर्ण नीति पर व्यंग्य करते हुए कहा है-

"अब तो मुँह में दही जम गया
अब तो आती है उबकाई
बोलो फिर से कौन कहेगा
हिन्दी-चीनी भाई-भाई।"

डॉ. शिवकुमार मिश्र का कहना है कि- "राजनीतिक, समाजशास्त्र, अर्थ-नीति, शासन-तन्त्र, धर्मनीति, देश-विदेश के नेता, समाज के प्रभु, नौकरशाह, थैलीशाह, राजनीतिक छुट भैये चापलूस, बटमार, साधु-सन्यासी, पीर-फकीर, पंडित मौलवी सब उनके व्यंग्यों की लपेट में आए हैं और सबकी असलियत उन्होंने खोली है। वे आधुनिक कविता के कबीर हैं। उन्होंने राजनेताओं- इंदिरागांधी, नेहरू, जे. पी., राजीव गांधी, संजय गांधी, राजनारायण, मोरारजी देसाई, अरविंद घोष और गोविंद पंत तथा साहित्यिक आदि पर कटु-कटाक्ष किए हैं। "इंदिरा गांधी द्वारा लगाई गई इमरजेंसी के समय कवि को नेहरू जी की नीतियाँ अच्छी लगने लगी थीं-

"इन्दु, इन्दु जी, क्या हुआ आपको?
सत्ता की मस्ती में। भूल गई बाप को।"

इमरजेंसी के समय इंदिरागांधी काफी 'तानाशाह' बन गई थी। उसकी इस तानाशाही व्यक्तित्व पर प्रहार करने के लए उन्होंने अपनी कविता 'अब तो बंद करो हे देवी इस चुनाव का प्रहसन' में चुनावी क्रिया-कलाप और देश की दुर्व्यवस्था पर कटु व्यंग्य किया गया है। इसीलिए कवि इंदिरा को 'हिटलर की नानी, 'डायन' सेठों की रखैल और प्रजातंत्र की हत्यारिन आदि कहकर उसकी कार्य-शैली पर कटु प्रहार करता है। कवि ने इंदिरा गांधी को प्रजातन्त्र में वंश परम्परागत की कील गाड़ने वाली कहा है और कहीं उसे जनमर्दिनी कह कर कटु व्यंग्य किया है-

"तुम देवी दस बाँहों वाली, हम हैं बकरे बलि के
आज नहीं तो कल निश्चय ही भोग चढेंगे बलि के
हथगोला-पिस्तौल स्टेनगन सज्जित चंडी रूप।"

उचित समय पर जब शिक्षकों को वेतन उपलब्ध नहीं होता तो आर्थिक स्थिति की खराब दशा तथा वेतन की अनियमितता के कारण उनका पेट नहीं भर पाता और कुछ शिक्षक काल कवलित हो जाते हैं। 'प्रोत का ब्यान' कविता में स्वतंत्र भारत से 'गरीबी हटाओ' की दुहाई देने वालों पर कटु कटाक्ष करता हुआ कवि कहता है-

"साक्षी है धरती साक्षी है आकाश
और और और और और भले
नाना प्रकार की व्याधियाँ हों भारत में
किन्तु उठाकर दोनों बाहें
किट किट करने लगा प्रेत
किन्तु भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको"

डॉ. जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की व्यंग्य योजना का विवेचन-विश्लेषण करते हुए लिखा है- "नागार्जुन की व्यंग्य कवितओं में राजनीतिक व्यंग्य की संख्या सबसे अधिक है जो उनकी राजनीतिक सोच का परिचय देती है।"

'तीनों बंदर बापू के', आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी, 'खडाऊ थी गद्दी पर तथा प्रभु जी तम चंदन हम पानी में आदि व्यंग्य की दाहकता अवलोकनीय है। 'चीलों की चली बारात' में नेहरू जी और उनके मंत्रीमंडल पर कटु कटाक्ष किया गया है। इसी प्रकार 'तीनों बंदर बापू के' में गांधीवादी नेताओं पर कटु प्रहार किए गए हैं जो गांधीवादी होने का ढोंग करते हैं, परन्तु सत्य-अहिंसा और शांति तथा वेदों की ओट में होकर अनैतिक अनुचित कार्य करते हैं। व दीन-दलित, पीड़ित व शोषितों का हितचिंतक न होकर सेठों के हितसाधक हैं। कवि कटु प्रहार करते हुए लिखता है-

"सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बन्दर बापू के
युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बन्दर बापू के
सत्य-अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बन्दर बापू के
पूँछों से छवि आँक रहे हैं तीनों बन्दर बापू के
दल से ऊपर, दल के नीचे तीनों बन्दर बापू के
मुस्काते हैं आँखें मीचे तीनों बन्दर बापू के।
छील रहे गीता खाल। उपनिषद् है इनकी ढाल
उधर सजे मोती के थाल। इधर जमे सतजुगी दलाल
मत पूछो तुम इनका हाल। सर्वोदय के नटवर लाल।"

नागार्जुन ने जयप्रकाश की कार्य पद्धति पर भी कटु प्रहार किए तथा उसे 'खिचड़ी विप्लव' और 'सरकारी बक्कर' कहकर उस पर तीखे प्रहार किए। इतना ही नहीं अन्तश्चेतनावादी प्रव त्तियों के संत श्री अरविंद घोष भी उनके कटु व्यंग्य से नहीं बच सके, क्योंकि जब सम्पूर्ण देश शोषण से उत्पीड़ित था और अन्याय-अत्याचार से संघर्षरत था, उस समय अरविंद का आध्यात्मिक प्रव त्तियों में लीन होना प्रासंगिक नहीं है। अतः कवि उसे 'आज़ाद हिन्द का पोप' और 'बुद्धि हत्या का केन्द्र खोलने वाला कहकर कटु व्यंग्य करता है क्योंकि उनके ग हमंत्रित्व काल में देश में अव्यवस्था का बोलबाला रहा है-

"आजादी की कलियाँ फूटी, पाँच साल में होंगे फूल
पाँच साल में कमल निकलेंगे रहे पंत जी झूला-झूल।"

कवि ने पाखण्डी-ढोंगी व रंगे सियार प्रगतिशील कवियों पर भी व्यंग्य किए है। पंत की भाषा की दुरूहता तथा व्यक्तित्व के पौरुष अभाव पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं-

"कुहासा-सी भाषा, न साँझ की न मोर की।
कलित कलकण्ठ, विकल वेदनामय गाथा।
पौरुष नदारद, स्त्रैण सवा सोलह आना।"

इसी प्रकार नागार्जुन अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता तथा शिल्प-सजगता-शिल्प चमत्कार पर भी कटु कटाक्ष करते हैं-

"माँजो और माँजो, माँजते जाओ।
लय करो ठीक, फिर-फिर गुनगुनाओ।
मत करो परवाह क्या है कहना कैसे कहोगे,
इसी पर ध्यान दे रहे चुस्त हो सेन्टेन्स दुरुस्त हो कड़ियाँ
पके इतमीनान से गीत की बड़ियाँ
नैतिक-अनैतिक, सामाजिक-असामाजिक
भला या बुरा कुछ भी क्यों न हो।
तलकर घोलकर बघार कर कहो।
वस्तु है भूसी रूप है चमत्कार है।
ध्वनि और व्यंग्य पर मारता है संसार।"

'तो फिर क्या हुआ' कविता में उन अधिकारियों पर व्यंग्य करता है जो मार्ग में ही राहत सामग्री को हड़प जाते हैं पीड़ित जनता तक वह सामग्री सहायतार्थ नहीं पहुंच पाती। वे कहते हैं-

"कहाँ तक रोएंगे आप? प्रलय नहीं होगा तो स ष्टि कैसे होगी।
क्यों भला बंद हो नाश और निर्माण के चक्र।"

भ्रष्ट, सत्तालोलुप, अवसरवादी, स्वार्थी तथा पल-पल में निष्ठा परिवर्तित करने वाले नेताओं की पोल कवि ने अपनी 'दलबदलू बुजर्ग' कविता में तीव्र व्यंग्य किया है-

"काँग्रेस जन तो तेणे कहिए, जे पीर अपनी जाणे रे।
पर दुःख में अपना सुख साधे, दया भाव न आने रे।
तीन भुवन मा ठगबे सभी को, शरम न राखे के नी रे।
टोपी, कुर्ता, धोती, खद्दर, धन-धन जननी तेनी रे।"

नागार्जुन ने अंधविश्वासी जनता तथा ईश्वर और उसके तथा कथित साधनों पर भी कटु व्यंग्य किए हैं। 'हो बंभोला' कविता में शिव पर कटु व्यंग्य किया है तथा 'तीनों बंदर बापू के' नामक कविता में उपनिषद्-गीता की आड़ में अनुचित अनैतिक कार्य करने वालों की अच्छी खबर ली है। 'काली माई' कविता में पूँजीपतियों से पशु-बली लेकर उन पर कृपा करने वाली माँ पर भी व्यंग्य किए हैं-

"मुंडमाला के लिए गरीबों पर निगाह है
धनपतियों के लिए दया की खुली राह है।"

इस प्रकार नागार्जुन ने राजनेताओं और प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थितियों पर तथा सामाजिक विसंगतियों पर कटु व्यंग्य किए हैं ओर शोषक वर्ग के प्रति गहरा आक्रोश प्रकट किया है क्योंकि वे दीन-दलित, पीड़ित-शोषित और उपेक्षित का शोषण करते हैं। **डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना** के शब्दों में नागार्जुन की व्यंग्य भावना के विषय में कहा जा सकता है- "कवि ने देश-विदेश की उल्लेखनीय घटनाओं पर अपना अभिमत प्रकट किया है, समकालीन राजनीतिक गतिविधियों पर निडर होकर अपनी सम्मति दी है। चीनी-आक्रमण, पाकिस्तानी घुसपैठ, अमेरिकी कूटनीति आदि पर तीक्ष्ण व्यंग्य बाणों की बौछार की है। देश में व्याप्त नैतिक आचरण, भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण आदि का पर्दाफाश किया है, सामाजिक विषमता एवं आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार आदि को बढ़ावा देने वाले राजनीतिज्ञों एवं सरकारी कर्मचारियों की खूब खबर ली है। शोषित एवं दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए क्रान्ति के लिए सचेत एवं सावधान किया है और नक्सलवादियों एवं शिवसेना के सैनिकों पर करारे व्यंग्य किये हैं। हृदय पर चोट करने वाले एवं कर्त्तव्य का स्मरण दिलाने वाले व्यंग्य लिखकर न केवल नागार्जुन ने अपनी विद्रोही स्वभाव का आक्रोश व क्षोभ व्यक्त किया अपितु ऐसा मार्मिक एवं मनोरंजक व्यंग्य काव्य लिखा है, जो अपनी सहजता, नवीनता एवं मौलिकता के कारण अनुपम एवं अद्वितीय है, कवि की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों ही उत्कृष्ट एवं उच्चकोटि की हैं।"

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है व्यंग्य की इस विदाग्धता न ही नागार्जुन की अनेक तात्कालिक कविताओं को कालजयी बना दिया है। जिसके कारण वे कभी बासी नहीं हुई और अब भी तथाकथित तात्कालिक कविताओं की यही विशेषता है। इसलिए यह निर्विवाद है कि कबीर के बाद हिन्दी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ। नागार्जुन के काव्य में व्यक्तियों के इतने व्यंग्य चित्र हैं कि उनका एकविशाल एलबम तैयार किया जा सकता है। वास्तव में कवि नागार्जुन ने जीवन में प्रत्येक पहलु पर द ष्टिपात किया और शोषण उत्पीड़ित जनता के प्रति सहानुभूति दिखाकर समाज के प्रत्येक शोषक आत्याचारी के प्रति व्यंग्य एवं क्षोभ प्रकट किया है।

9. नागार्जुनः नारी भावना

नागार्जुन का काव्य पीड़ित मानवता का पक्षधर है, इसलिए शोषित-दलित नारी की समस्याओं को उठाकर नारी को एक नई द ष्टि देता है सामाजिक संदर्भों में नारी नागार्जुन के लेखन का प्रभुत्व विषय रही हैं नागार्जुन की नारी भावना मार्क्सवाद के नारी सम्बन्धी द ष्टिकोणों की स्थापिका है। मार्क्सवाद नारी के भोगया जैसे घ णित रूप के प्रति विद्रोह करता है और उसे पुरुष के समकक्ष मानकर सामाजिक अधिकारों का आधा हिस्सेदार बनाता है। निराला की 'तोड़ती पत्थर' कविता में मजदूरिन की दशा को चित्रण के समान नागार्जुन मजदूरिन के रूप सौंदर्य का चित्रण करने में गौरवान्वित महसूस करता है। 'पर्वत बालाएँ गई धूम' कविता में कवि लिखता है-

"भारी-भारी बोरियाँ लदी हैं पीठों पर
उभर-खाबर पगडण्डी पर खुरदरी लुनाई के आगे
श्रम गया लचक। श्रम उठा झूम
पर्वत बालाए गई धूम।"

मनुष्य नारी को मात्र भोग की वस्तु, सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने वाला एक उपकरण मात्र, घर की चारदीवारी में कैद रहने वाली एक उपकरण मानता है। जबकि कवि की धारणा है नारी नर को केवल प्रेरणा ही नहीं देती, दिशा निर्देश ही नहीं करती, जीवन के अंधकाएच्छन्न मार्ग पर उज्जवल आशा-किरणों का प्रसार ही नहीं करती बल्कि वह शाश्वत जीवन की प्रतीक है तथा युगों-युगों से पुरुष में शक्ति और तेज का संचार करने वाली कल्याणकारिणी, तारिणी नारी है। 'यह तुम थी' कविता में कवि ने नारी को पुरुष की प्रेरणादायिनी शक्ति मानकर कहा है-

"कर गई चाक। तिमिर का सीना
जोत की फाँक। यह तुम थी
सिकुड़ गई रग-रग। झुलग गया अंग-अुंग
बनाकर ठूँढ छोड़ गया पतझार
अलग असगुन-सा खड़ा रहा कचनार
अचानक उमंगी डालों की सन्धि में
छरहरी टहनी। पोर-पोर में गसे थे टूसे
यह तुम थी।"

नारी को अत्यन्त उपेक्षित अर्थात् उसे कुतिया के समकक्ष माना जाता है इससे शोचनीय दशा और नारी की कया हो सकती है-

"दासी जीवन बिता रहा अब भी नारी समुदाय
तितली या कुतिया या अब भी समझी जाती है हाथ।"

नागार्जुन ने 'तालाब की मछलियाँ' कविता में पुरुष की घिनौनी भोग व ति को उजागर किया है। क्योंकि व द्धावस्था जीवन की सांध्य बेला है, उपेक्षित और दुर्बल अवस्था है। इस अवस्था में वह केवल म त्यु को ही आमन्त्रित करती रहती है। इस समय उसकी सहायता करने वाले कोई यन्त्र नहीं होते। कवि का कहना है-

"हम भी मछली, तुम भी मछली।
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं।
कहीं नहीं अन्यत्र।
इन्हीं में मिलती आयी है अम त द्रव की अशेष परिव प्ति।
इसीलिए तो हम तुम दोनों।

युग-युग से पाती आयी हैं। विपुल प्रशंसा।
रसिकों की गोष्ठी में बहुशः।
इसलिए तो। हमें इन्होंने कैद कर लिया है तालाबों में।
तुम्हें इन्होंने कैदकर लिया।
सात-सात ड्योढ़ियों वाली हवेलियों में।
सुविधा और सामर्थ्य मुताबिक।"

इसके साथ ही कवि ने नारी की अनेक समस्याओं को भी उठाया है। वे पर्दा-प्रथा और कृत्रिम संकोच-लज्जा की भर्त्सना करते हैं क्योंकि पर्दा से प्रतिभा के अंकुर भस्मीभूत हो जाते हैं। वास्तव में कवि का नारी के प्रति यथार्थवादी और प्रगतिशील द ष्टिकोण है। सामन्ती वातावरण में नारी की दयनीयस्थिति को देखकर और भावविह्वल होकर नारी की गरिमा और उसे सम्माननीय स्थान प्रदान करने के उद्देश्य से स्पष्ट लिखते हैं-

"हाय हाय् साधु जन....। "अन्नजल, साथ-साथ देखते हैं
कुल भी" आज मुझे। दीन-हीन उपेक्षित दुर्गत पददलित।
अश्रु मुख क्रयक्रीत दासी के हाथ से।
होगा यदि भिक्षा-लाभ। करूंगा आहार तभी।
अन्यथा खाली लौट जाऊँगा।"

कविवर नागार्जुन नारी के मात -रूप को उभारते हुए अपनी 'भिक्षुणी' कविता में काम के स जनात्मक और पवित्र रूप की अभिव्यक्ति हुई है। नारी को जीवन में अबलम्ब व संरक्षण हेतु तथा ग हस्थाश्रम जीवन की सफलता हेतु पुरूष का साथ अनिवार्य है क्योंकि वही रिक्त पात्र रूपी ह्रदय में जीवन रस उडेलता है-

"भगवान अभिताभ सहचर मैं चाहती
चाहता अवलम्ब, चाहती सहारा देकर
तिलांजलि मिथ्या संकोच को।
ह्रदय की बात, लो, कहती हूँ आज मैं।
कोई एक होता। कि जिसको। अपना मैं समझती।
भले वह पीटता, भले ही मारता।
किन्तु किसी क्षण में प्यार भी करता
जीवन रस उड़ेलता उर के रिक्त पात्र में।
भूख मात त्व की मेरी मिटा देता।
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास धन्य मैं होती।"

बाल-विवाह, बेमेल-विवाह आदि नारी विषयक समस्याओं पर विचार करते हुए कवि नागार्जुन ने सुखद सफल दाम्पत्य जीवन के लिए समवयस्क दम्पति की अनिवार्यता पर दबाव डाला है। अनमेल विवाह को गलत ठहराते हुए कवि कहता है -

"क्यों बूढ़े को करने लगी पसन्द?
क्या अनमेल समागम है अनिवार्य?
सुर समाज में बुद्धि हो गई है भ्रष्ट करते हैं कैसे-कैसे खिलवाड़
बस यों ही ये ब्रह्म, विष्णु, महेश।"

नारी वास्तव में समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। नारी के बिना पुरुष का अस्तित्व धूमिल है। नारी ही पुरुष की जननी है और उसकी शक्ति का आधार है। इसलिए नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में नारी को सहधर्मिणी, माँ और प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया है। कवि नारी के उच्छ ंखल तितली रूप को पसन्द नहीं करते। आधुनिक फैशन परस्त नारी की भर्त्सना करते हैं क्योंकि

ऐसी नारियाँ जीवन में कृत्रिमता और प्रदर्शन को ही महत्व प्रदान करती हैं। वास्तव में नागार्जुन का नारी विषयक द ष्टिकोण स्वस्थ, उदार एवं प्रगतिशील है। कवि नारी के असीम दुःखों पर चिंता जताता हुआ कहता है-

"हृदय में पीड़ा, द गों में लिए पानी।
देखते पथ काट दी सारी जवानी।"

आज भी पुरुष प्रधान समाज में नारी को अभी वह सम्मान नहीं मिला जो उसे मिलना चाहिए। वह बेचारी बनकर अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को मूक बनकर सहन करती जाती है क्योंकि वह प्रकृति स्वरूपा है, धैर्यवान है, सहनशीला है। नारी के इस द ष्टिकोण पर कवि की टिप्पणी देखिए-

"शिशु समान होती है नारी जाति। म दुमति, तरल स्वभाव
रूप, रस, गन्ध। शब्द, स्पर्श के प्रति अर्पित
आप्राण पी जाती वह हलाहल चुपचाप।
कंठ नहीं होते हैं इनके नील।
खंडित होने देती अपना शील
चुकता करती भावुकता का मूल्य
तन-मन-धन सब कुछ देती है झोंक।"

नागार्जुन के काव्य में नारी के बहुआयमी चित्र उपलब्ध होते हैं। उनकी कुछ नारियाँ तो भारतीय दर्शन, विचारधारा, संस्कृति व रीति-रिवाजों से चिपकी हुई हैं और कुछ पाश्चात्य प्रभावों से युक्त है। कवि ने लिखा है कि जब सूर्पणखाँ ने अपनी छवि जल में निहारी और अपनी सुन्दरता की तुलना जानकी से करके सीता को असीम-अनन्त सौंदर्य से युक्त पाया। यहाँ नारी की ईर्ष्या-द्वेष और प्रतिशोध का चित्रण हुआ है। इसी प्रकार स्वच्छ चरित्र, निर्दोषमना व सात्विक विचारधारा वाली अहिल्या को इन्द्र को न पहचानने के कारण शिलाखण्ड बनना पड़ा लेकिन कवि के हृदय में अहिल्या के प्रति गहरी ममता-सहानुभूति व आत्मीयता है। शकुन्तला भी भावुकतावश सर्वस्व समर्पित कर देती है और कवि उसकी भावुकता पर तीव्र कटाक्ष करता है। रेणुका को सत्य का मूल्य चुकाना पड़ा। कवि नारी के ऊपर होनेवाले अन्याय-अत्याचार का डटकर विरोध करता है तथा कटु-प्रहार करता है-

"तो, अब क्या हम देखते नहीं हैं।
यहाँ वहाँ मछलियों के कामातुर जोड़े?"

डॉ॰ जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन के नारी विषयक द ष्टिकोण को इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है- "सारतः नागार्जुन ने न तो स्म तियों-पुराणों की नारी सम्बन्ध निन्दात्मक विचारों को ग्रहण किया और न रीतिकाल की नारी के प्रति क्रीड़ापरक भावना को ही अपनाया। कुत्सित सैक्स की भावनाओं की जगह एक स्वस्थ, प्रगतिशील भावना उनके काव्य में व्यक्त हुई है। सहधर्मिणी, माँ और प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित नागार्जुन की नारी साामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए है। इस तरह नागार्जुन ने दासता से नारी की मुक्ति का जो आह्वान किया है वह जनवादी आन्दोलन का एक अंग है। नारी जीवन की विभिन्न विवश्तापूर्ण स्थितियों को काव्य-बिम्बों में बाँधकर नागार्जुन ने समाज को स्थितिबोध कराने की पहल की है।"

"क्षमा प्रार्थना' कविता में कवि दाम्पत्य की अदालत में पत्नी के समक्ष अपने दोषों को स्वीकार करते हुए क्षमा याचना करता है-

"मार्जना कर दोष मेरे, बहुत कुछ अविहित किया है;
बहुत कुछ अनुचित किया है;
क्षमा कर दे मुदित मन से
क्योंकि तू सर्वसहा है।"

नारी के भीतर से जो स्नेह, सौहार्द, आन्तरिकता, ममत्व आदि का स्रोत बहता है वह म त्यु बोध में भी जीवन बोध देता है। कवि ने अपनी प्रेयसी को अनेक कविताओं में 'जोत की फाँक' 'भादों की तलइयाँ' तथा 'छरहरी टहनी' कहा है। **डॉ॰ शिवकुमार मिश्र**

के अनुसार- "उनके यहाँ प्रेम महज स्त्रीपुरुषों के राग को ही अंतिम मानकर नहीं रह गया है, वरन् इससे आगे वात्सल्य, अँचल, देश-देश के जन, देश की धरती और मनुष्य मात्र तक व्याप्त है। नागार्जुन की दाम्पत्य प्रेम की ये कविताएँ रोमानी मानसिकता की कविताएँ नहीं हैं, कवि एक ब हतर परिवेश से पूरी आत्मीयता से जुड़ा हुआ है। कवि की सात्विक निष्ठा और छलकते प्यार को बंगला की उस कविता में देखा जा सकता है, जिसमें व द्धावस्था में झड़ चुके केशोंवाली अपनी पत्नी-प्रिया से कवि पूछता है कि अपने माँग का वह अंश तो बताओ जहाँ किसी समय तुम सिंदूर लगाया करती थी।"

वास्तव में नारी की पंगुता के लिए पुरुष प्रधान समाज जिम्मेवार है। कवि नारी को जाग त-सचेत करके उसके अधिकारों को दिलवाने का भरसक प्रयास करता है तथा चार दीवारी की कारा में बंद नारी को मुक्त करवाना चाहते हैं। वे उसको पूर्णता मात रूप में देखते हैं तथा इसीलिए नारी की ग्रंथी, उसकी आत्मपीड़ो की प्रव त्ति को खोलते हैं जिसमें पुरुष द्वारा दिए गए सारे कष्टों को वह मात त्व की प्राप्ति में भुला देना चाहती है। अतः वे नारी को सामाजिक दायित्वों से पूर्ण करने के आकांक्षी हैं। नागार्जुन अपनी प्रनय भावना को स्वच्छ, निर्मल रूप में अपनी कविताओं 'यह तुम थी' तथा 'सिंदूर तिलकिल भाल' में अभिव्यक्त करते हैं-

**"तुम नहीं हो पास, मैं तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल सुनने के लिए
एक की ही दस अंगुलियाँ नहीं है काफी कदाचित्
रेशमी परित प्तियों का जाल बुनने के लिए।"**

डॉ॰ शिवकुमार मिश्र के अनुसार- "नागार्जुन की ये कविताएँ, जैसा कि हमने कहा है, दाम्पत्य की कविताएँ होते हुए भी पति-पत्नीका एकालाप नहीं हैं, रोमानी मानसिकता की कविताएँ नहीं हैं। कवि इनमें भी एक ब हत्तर परिवेश से जुड़ा हुआ है, पूरी आत्मीयता के साथ। प्रिया या पत्नी की याद के साथ वह सबकी याद करता है, ललक पड़ता है प्रिया के अलावा उस धरती का भी सामीप्य पाने के लिए, अपनी उस गँवई पगडण्डी की चन्दनवर्णी धूल माथे लगाने के लिए।''

कवि को स्वच्छ, उदात्त, श्लील और अतीन्द्रिय रूप ही अधिक प्रिय रहा है। उसमें शालीनता, गरिमा, पवित्रता और एक प्रकार की पारिवारिका है-

**"पास ही सोई पड़ी श्लथ कुन्तला
प्रेयसी की थपथपाई पीठ
जग गई तो दिखाकर तारे बचे दो चार
कहा मैंने पकड़ उसका हाथ
दो घड़ी का हमारा इनका रहा साथ
हो रहे विदा गा दो सुमुख एक विहाग।"**

इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन ने अपने काव्य के माध्यम से नारी को अपने अधीकारों के प्रति सचेत, जाग्रत करके नारी जाग ति की भावना उत्पन्न की है। नारी की समस्याओं को उठाकर उसे समाज में सम्मानीय स्थान प्रदान कराने का प्रयास किया है। उनकी नारी के प्रति मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप द ष्टिकोण यथार्थवादी एवं प्रगतिशील रहा है। कवि का मानना है कि नारी केवल भोग के लिए नहीं अपितु सामाजिक दायित्वों की पूर्ति हेतु है, उसे पुरुष के समन समझकर उचित आसन प्रदान करना एवं उसकी भावनाओं को समझकर उसके साथ खिलवाड़ न करना ही उन्हें अभिप्रेय है। इस प्रकार नारी के प्रति उनका द ष्टिकोण स्वच्छ, उदान्त एवं सात्विक है।

10. नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना

डॉ॰ प्रकाश चन्द्र भट्ट का कथन है कि -"नागार्जुन ऐसे साहित्यकार हैं जो अभावों में ही जनमें हैं। पीड़ित वर्ग के कष्टों को उन्होंने स्वयं झेला है। निसंदेह ऐसा ही व्यक्ति भारत की निम्नवर्गीय जनता का सच्चा सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व कर सकता है। देश की स्वतंत्रता तथा खुशहाली के लिए उच्च स्वर से आह्वान उनके काव्य में मिलता है।" कविवर नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में दीन-दलित, पीड़ित-शोषित, उपेक्षित और तिरस्कृतों के प्रति अपनी हृदयस्थ सच्ची सहानुभूति व आत्मीयता उड़ेली है और शोषकों-पूँजीपतियों के प्रति गहरा आक्रोश व क्षोभ प्रकट किया है। उन्होंने अभावों में लालित-पालित तथा कष्टों से जूझने वालों के प्रति संवेदना व्यक्त की है, तथा समाज की मंत्रणाओं और पीड़ाओं से संत्रस्त मानवों के उत्थान के लिए क्रांति का आह्वान किया है, उच्च समाज के शोषक कार्यों का विरोध किया है और वीरता के साथ संघर्षरत सर्वहारा वर्ग का स्तवन किया है। **डॉ॰ बेचन** ने कवि का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि- "कुकुरमुत्ता, खजोरा, महगूँ-महँगा रहा इत्यादि निराला की कविताएँ उनके काव्य साहित्य की एक विशेष दिशा की परिचायिका है, जिसमें युग की यर्थाथता ओर जन-चेतना प्रत्यक्ष रूप में बोलने लग गई है। इसी सामाजिक चेतना के गायक नागार्जुन हैं।" नागार्जुन ने भी अन्य प्रगतिवादी कवियों की भाँति अतिशय कल्पना का विरोध करके यथार्थ के कटु धरातल का आश्रय लिया है तथा साथ ही समाज के विकास में बाधक सामाजिक-धार्मिक, रूढ़ रीति-रिवाजों, पाखण्डों, बाह्ययाडम्बरों आदि का कड़ा विरोध किया है।

नागार्जुन की प्रगतिवादी चेतना को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया जा सकता है-

१ **परम्परागत रीति-रिवाजों का विरोधः** नागार्जुन ने परम्परागत रीति-रिवाजों, बाह्ययाडम्बरों, पाखण्डों तथा अंधविश्वासों का कड़ा विरोध किया है। उनकी द ष्टि में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद-भाव व्यर्थ है। वे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करते। नागार्जुन ने कबीर की भांति निम्न जाति को जगाने का प्रयास किया। उनमें आत्मबल तथा उनके पौरुष को विद्रोह की वाणी प्रदान की। जहाँ कहीं भी उन्हें पाखण्ड, ढोंग, आडम्बर, दिखाई दिए वहीं उन्होंने प्रखर स्वर में क्षोभ प्रकट किया है। 'मंत्र' कविता में प्राचीन रूढ़ियों परम्पराओं की धज्जियाँ उड़ाते हुए कहा है-

"ओं शब्द ही ब्रह्म है
ओं शब्द और शब्द और शब्द और शब्द
ओं प्रणव ओं नाद ओं मुद्राएँ
ओं वक्तव्य ओं उद्‌गार ओं घोषणाएँ
ओं दलों में एक दल अपना दल ओं
ओं गछी पर आजन्म वज्रासन। ओं ट्रिव्यूनल, ओं आश्वासन
ओं गुट निरपेक्ष सत्ता सापेक्ष जोड़ तोड़
ओं छल छन्द ओं मिथ्या ओं होडम-होड़
ओं बकवास ओं उद्‌घाटन
ओं मारण-मोहन-उच्चाटन।"

इतने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ, उन्होंने धर्म के कर्मकाण्डी स्वरूप और धार्मिक संस्थानों के कुकृत्यों पर भी कटु कटाक्ष करते हुए उनकी पोल खोली है-

"जपते रहो निसि दिन माला बनाकर
मूठ की मठ जलाओ अगरबत्तियाँ एक ही बैठक में
गुलाब, गुल दाउडी चंपा-चमेली की
अधखिली कलियों से सजाओ गुलदस्ते।"

२. **शोषितों के प्रति सहानुभूति व शोषकों के प्रति आक्रोशः** मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप ही कवि नागार्जुन ने भी शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश दिखलाया है। कवि शोषितों की दयनीय अवस्था के करुणाजनक चित्र उतारता है। और पूँजीपतियों के वैभवपूर्ण, ऐश्वर्यपूर्ण चित्र जनता के समक्ष प्रकट करके वर्ग वैषम्य का उद्घाटन करना चाहता है। नागार्जुन जी ने अपनी कविताओं में शोषण और दोहन की प्रक्रिया का पर्दाफाश किया है। कृषक, मजदूरों की दयनीय दशा को उजागर करता हुआ पूँजीपतियों और उनकी सरकार को उत्तरदायी घोषित करता है-

"लाख-लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा है रेत?
छीन चुका है कौन करोड़ों खेतिहारों के खेत?
किसके बल पर कूद रहे हैं सत्ताधारी प्रेत?
किसके बल पर कांग्रेसी नेता हुए अचेत।"

कवि ने एक ओर शिशु बूँद-बूँद को तरस रहे हैं तथा दूसरी ओर पूँजीपति की घोर विलासितापूर्ण जीवन का चित्रण करके इसमें व्याप्त वर्ग विषमता का उद्घाटन किया है। 'पैसा चहक रहा है' में पूँजीपतियों की शान-शौकत, एशो-आराम तथा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का चित्रण है। एक ओर ऊँची-ऊँची सतरंगी झालरों द्वारा सुसज्जित अट्टालिकाएँ सुशोभित हैं तो दूसरी ओर भूख से बिलबिलाते शिशु और उनकी माता का करुणाप्रद चित्र है। 26 जनवरी और 15 अगस्त कविता की आर्थिक वैषम्य को उजागर करती हैं कवि ने इन शोषकों को गलाकाटू, चोर डाकू, झूठा, मक्कार, कातिल, छलिया, लुच्चा-लबार जैसे घ णित व उपेक्षित शब्दों से नवाजा है। 'प्रेत का बयान' कविता में शिक्षक वेतन न मिल पाने के कारण क्षुधा से असामायिक काल कवलित हो जाता है। मजदूरों की छँटनी होती है तथा सरकार भी पूँजीपतियों को संरक्षण प्रदान करती है -

"लटक रही है श्रमिकों पर अब भी छँटनी की तलवार
छूट दे रही अब भी। धन्ना सेठों को सरकार।"

कवि का गाँव, किसान और मजदूर से निकट का परिचय है, इसीलिए उनके चित्रण में विश्वसनीयता और प्रमाणिकता मिलती है। कृषकों की बदहाली-दयनीय अवस्था का मूलकारण कवि पूँजीपतियों के शोषण और लगान को स्वीकारता है। उनकी दयनीय अवस्था का चित्रण करता हुआ कवि कहता है-

"बीज नहीं है, बैल नहीं है वर्षा बिन अकुलाते हैं
नहर रेट बढ़ गया खेत में पानी नहीं पटाते हैं
नहीं भूमि में कनमा भर भी दाना उपजा पाते हैं
पिछले कर्ज चुका न सके, साहू की झिड़की खाते हैं।"

डॉ. जगन्नाथ पंडित का कहना है- "नागार्जुन की कविताओं में शोषण के जितने रूप हैं, स्वातंत्र्योत्तर काल के किसी एक कवि में प्राय नहीं मिलते। नीचे से ऊपर तक जहाँ भी शोषण है, नागार्जुन ने उसकी खिलाफत की है। इसका मूल कारण है नागार्जुन का लेखन शोषण धर्मी चेतना के खिलाफ चला है। सामन्ती शोषण, साम्राज्यवादी शोषण, धार्मिक शोषण, कृषि और उद्योग क्षेत्र में अर्थ और श्रम का शोषण-सब पर लिखकर उन्होंने जनता का उनसे परिचय कराया है। उसका स्वयं विरोध किया तथा विरोध के लिए दूसरों को उकसाया भी है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि उनके काव्य में शोषितों के प्रति सहानुभूति तथा शोषकों के प्रति आक्रोश प्रकट हुआ है।

३. **यथार्थ के प्रति आग्रहः** कवि यथार्थ जीवी है, वे कल्पना विहारी नहीं है। यथार्थ के कटु धरातल से टकराकर जीवन के अनुभूत सत्यों को अनुभवों की कसौटी पर कसकर अभिव्यक्त करते हैं। वे कल्पनालोक में विचरण करने वाले कवि पंत का विरोध करते हैं-

"कहाँ गया धनपति कुबेर वह। कहाँ गयी उसकी वह अलका,
नहीं ठिकाना कालिदास के। व्योम प्रवाही गंगाजल का,

ढूँढा बहुत परन्तु लगा क्या मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो वह कवि कल्पित था। मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभचुम्बी कैलास शीर्ष पर। महामेघ को झंझानिल से।
गरज-गरज भिड़ते देखा है। बादल को घिरते देखा है"

कवि धरती के यथार्थ को देखकर, शोषित, उत्पीड़ितों और मजदूरों की भाषा में गीत गाता है। कवि ने सर्वहारा की दरिद्रता के यथार्थचित्र अंकित किए हैं-

"घाव-घाव है, दवा नहीं है,
चूल्हा है पर तवा नहीं है।"

नारी के प्रति कटु यथार्थवादी द ष्टिकोण अपनाते हुए, चिरकाल से शोषित-पीड़ित नारी की समाज में स्थिति अत्यन्त दयनीय है-

"दासी जीवन बिता रहा है अब भी नारी समुदाय
तितली या कुतिया समझी जाती है अब भी हाय।"

इस प्रकार कवि की यथार्थवादी द ष्टिकोण को देखकर **डॉ॰ शिव कुमार मिश्र** का कहना है कि- "नागार्जुन की सारी कविताएँ यथार्थ की ठोस भूमि पर आधारित है, वे कहीं भी कल्पना की अतिशयता में नहीं भटके हैं। समाज तथा जनता के सजग पहरुए की भांति उनकी द ष्टि ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर पर यर्थात को मूर्तिमान किया है।"

४. **नारी के प्रति द ष्टिकोण:** नागार्जुन नारी के सुकोमल सौंदर्य की अपेक्षा उसके स्थूल सौंदर्य का चित्रांकन करता है। उन्होंने कृषक बालाओं व मजदूरिनों का चित्रण करते हुए लिखा है-

"भारी-भारी बोरियाँ लदी हैं पीठों पर
उभर-खाभर पगदण्डी पर खुरदरी लुताई के आगे
श्रम गया लचक। श्रम उठा झूम
पर्वत बालाएँ गई धूम।"

कवि ने नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण बार-बार किया है। वे शोषित-पीड़ित, दलित नारी की समस्याओं को उठाकर नारी को एक नई द ष्टि देता है। नागार्जुन की नारी भावना मार्क्सवादी के नारी द ष्टिकोणों की स्थापिका है। मार्क्सवाद नारी के भोग्या जैसे घ णित रूप के प्रति विद्रोह करता है और उसे पुरुष के समकक्ष मानकर सामाजिक अधिकारों का आधा हिस्सेदार बनाता है। कवि पर्दा-प्रथा, कृत्रिम संकोच, सती-प्रथा, बेमेल विवाह, विधवा-विवाह तथा बालविवाह आदि नारियों से सम्बधित समस्याएँ उठाकर उनका सामाधान प्रस्तुत करता है। कवि का नारी के प्रति यथार्थवादी द ष्टिकोण प्रगतिशील है। 'यह तुम थी' में नारी पुरुष की प्रेरक शक्ति है तथा 'तालाब की मछलियाँ' कविता में पुरुष की कुत्सित वासनाव त्ति को उजागर किया है। कवि की धारणा है कि दोनों (नर-नारी) एक दूसरे के पूरक हैं और एक दूसरे के बिना दोनों का अस्तित्व नहीं है। बेमेल तथा बाल-विवाह के माध्यम से भी प्रश्न उठाया है-

"क्यों बूढ़े को करने लगी पसन्द?
क्या अनमेल समागम है अनिवार्य?
सुर समाज की बुद्धि हो गई है भ्रष्ट करते हैं कैसे खिलवाड़
बस यों ही ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश।"

५. **व्यंग्य भावना:** नागार्जुन को जहाँ भी शोषण, अत्याचार दिखाई दिया, वहीं उन्होंने कटु कटाक्ष किए हैं। आओ रानी झूले, धिन तो नहीं आती, तीनों बन्दर बापू के, छब्बीस जनवरी, पन्द्रह अगस्त, इन्दुजी, प्रेत का बयान', तीन दिन तीन रात, शासन की बंदूक आदि रचनाओं में राजनीतिक व्यंग्यों की अभिव्यक्ति हुई है। कवि की धार्मिक आडम्बरों पर व्यंग्य करने वाली

कविताओं में 'त प्यंताम-त प्यंताम', अहँह-अहँह, धोखे में डाल सकते हैं और काली माई आदि प्रसिद्ध हैं। अवसरवादी, भ्रष्टाचारी व स्वार्थी नेताओं पर कटु कटाक्ष करते हुए नागार्जुन जी लिखते हैं-

"चना है बना मसालेदार
खाइए भी तो यह सरकार
मिलेंगे सब सौदे उधार
नया हो जाएगा धर-बार
कि लद-लद कर आवेगी कार।"

डॉ. शिवकुमार मिश्र ने भी नागार्जुन के व्यंगों की विशुद्धता का चित्रण करते हुए लिखा है- "राजनीति, समाजतन्त्र, अर्थनीति, शासनतन्त्र, धर्मनीति, देश-विदेश के नेता, समाज के प्रभु, नौकरशाह, थैलीशाह, राजनीतिक छुटभैये, चापलूस, बटमार, साधु-संयासी, पीर-फकीर, पंडित-मौलवी सब उनके व्यंग्यों की लपेट में आये हैं ओर सबकी असलियत उन्होंने खोली है। वे आधुनिक कविता के कबीर हैं।"

इसी प्रकार कवि भ्रष्टाचार के भयावह रूप का उजागर करता हुआ भ्रष्टाचारी राजनेताओं की कार्य पद्धति और भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

"रामराज्य में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है
सूरत शक्ल वही है भैया, बदला केवल ढाँचा है,
नेताओं की नीयत बदली, फिर तो अपने ही हाथों
भारतमाता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है।"

इसी प्रकार कवि राजनेताओं की पोल खोलता है तथा उन्हें पूँजीपतियों व अपराधियों का हितचिन्तक-हितसाधक घोषित करता है-

"वोट मिलना-लगता आसान
कहीं पर भोज कहीं गुणगान
कहीं पर थोक नकद नगदान।"

इसी प्रकार कवि अधिकारी वर्ग के सम्बन्धवाद पर कटु व्यंग्य करते हैं-

"मुन्सिफ बना दामाद, भतीजे ने पाया प्रोमोशन,
बेटे ने पकड़ा दामोदर वैली कार्पोरेशन।"

नागार्जुन के व्यंग्यों की मारक क्षमता पर टिप्पणी करते हुए **डॉ. नामवर सिंह** का कहना है- "विचार और व्यंग्य की आग नागार्जुन की कविताओं में दहकती दिखाई देती है। हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा था या नागार्जुन ने।" **डॉ. रामविलास शर्मा** का भी कुछ इसी प्रकार का कथन है- "भारतेन्दु और बाल मुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिंदादिली पैदा की है, नागार्जुन उसके समर्थ प्रतिनिधि हैं।"

६. **भाषा शैली चित्रणः** कविवर नागार्जुन भाषा की सजावट, उसकी नक्कासी, उसके लिए आडम्बरों और लीपा-पोती में विश्वास नहीं करते। वे तो भाषा की सरला, स्पष्टता और सहजता को ही स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपने काव्य में ऐसी बोलचाल की भाषा को अपनाया है जो आम आदमी के लिए ग्राह्य हो। कबीर की भांति उन्होंने जनजीवन के दुःखों का चित्रण उनकी ही भाषा में किया है।

डॉ. जगन्नाथ पंडित का कहना है- "नागार्जुन की कविता भाषा जन जीवन से, उसकी धड़कनों से सीधे जुड़ती है, क्योंकि वे जीने की भाषा के हिमायती हैं, जानने की भाषा के नहीं इसलिए भाषा शब्द, विचार, संवाद और चिन्तन के क्षेत्र में किसी तरह की पाखण्ड लीला से उन्हें घ णा है। उनकी धारणा है कि मालिश द्वारा पोंछ-पोंछ चमकाये हुए सामन्त घोड़े

से पिंजरा पोल का बैल बनाना उन्हें अच्छा लगता है क्योंकि वे जनवादी हैं। सरल एवं सीधी-सादी भाषा का एक उदाहरण देखिए-

"बस सर्विस बंद थी। तीन दिन तीन रात
लगता था जन जीवन की। हृदय गति मंद थी
तीन दिन, तीन रात। प्रचार्य, जिलाधीश, एस.पी.
रहे सब परेशान। तीन दिन तीन रात
बस सर्विस बंद थी। तीन दिन-तीन रात।"

कवि ने अपने काव्य में तत्सम्, तद्भव व देशज शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है। जिसके कारण उनकी भाषा किसानों और मजदूरों की भाषा बन गई है। उनकी भाषा के विषय में कहा जा सकता है- "हिन्दी भाषी किसान ओर मजदूर जिस तरह की भाषा समझते हैं और बोलते हैं उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।"

उपर्युक्त विवेचन से कवि नागार्जुन की प्रगतिवादी चेतना स्पष्ट होती है। वास्तव में वे प्रगतिशील कवि हैं। समाज में परिवर्तन चाहने वाले हैं और मार्क्सवादी विचारधारा का सही प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। वे वास्तव में ही आधुनिक कविता के कबीर एवं जनकवि हैं।

11. नागार्जुन का काव्य सौष्ठव

डॉ० जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"नागार्जुन की कविता की भाषा जन जीवन से, उसकी धड़कनों से सीधे जुड़ती है, क्योंकि वे जीने की भाषा के हिमायती हैं, जानने की भाषा के नहीं। इसलिए भाषा, शब्द, विचार, संवाद और चिन्तन के क्षेत्र में किसी तरह की पाखण्ड-लीला से उन्हें घ णा है। उनकी धारणा है कि मालिश द्वारा पोंछ-पोंछ चमकाये हुए सामन्ती घोड़े से पिंजरा पोल का बैल बनना उन्हें अच्छा लगता है। क्योंकि वे जनवादी हैं।" मार्क्सवादी विचारधारा से आप्लावित, जनकवि श्री नागार्जुन ने अपनी कविताओं में खड़ी बोली प्रयुक्त की है, जिसमे अनेक भाषाओं व बोलियों के शब्द प्रयुक्त हैं। उनकी काव्यभाषा में शब्दों का वैविध्य विद्यमान हैं। श्री विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने ठीक ही कहा है-"वे जन प्रयुक्त भाषा के सबसे बड़े प्रयोगशील कर्म है।'' उनकी कविताओं में ठेठ हिन्दी का ठाठ है और उनकी वुनावट में इस जन शब्दावली के वैसे ही विन्यास हैं। जैसे कबीर में मिलते हैं।" उनकी भाषा कहीं पर संस्कृत की तत्सम् शब्दावली से युक्त साहित्यिक, प्रौढ़ और परिमार्जित बन बैठती हैं। जैसे-अमित, तुहिन यायावर, लावण्य, बह्नि मकरन्द, कनकाम, किसलय, गुच्छ, उन्माद आदि तत्सम् शब्द उनकी कविताओं में अवलोकनीय हैं। एक उदाहरण देखिए-

"रजत रचित मणि खाचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चन्दन की त्रिपटी पर
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
म गछालों पर पालथी मारे
मदिरा रूप आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
म दुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है।"

उनकी कविताओां में इसी प्रकार उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी के शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए है-अंग्रेजी के शब्दों में-मिनिस्टर, डॉक्टर, कलैंडर, ड्यूटी, लंचडिनर, पैट्रोल, मिलिटरी, ऐडशॉक आदि तथा उर्दू-फारसी के शब्दों में-'इंतजार, खाक, फिक्र, शौक हाजिर, मुताबिक, मौज, बखान, होश, मुस्तैद, आनन-फानन, किस्मत, बगावत, बेखबर, नागवार बदनाम, आदम कद, निगाह आदि हैं। आँचलिक शब्दों का प्रयोग भी नागार्जुन के काव्य में मिलता है-तामझाम, छोकरी, पुखइया, पाहुन, माटी, पढ़ऊनी, चुक्कड़, लील, चेला, चाटी, विछौने, तिपहिया, अखवारन आदि। स्वयं द्वारा निर्मित शब्द भी उनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं-द गअंजनी, हिरनौरा, नखरंजनी आदि। **डॉ० शिवकुमार मिश्र** ने ठीक ही लिखा है-"जन सामान्य की भाषा भी, पंडितों तथा काव्य रसिकों की भाषा भी।...... सारगर्भित उदात्त भाषा को छोड़ दिया जाए तो सामान्यतः उन्होंने सरल और सादी भाष का ही प्रयोग किया हैं।"

कवि ने अपने कथ्य को सशक्त प्रभावशाली व चमत्कार पूर्ण बनाने के लिए मुहावरे का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है जैसे-अँगूठा दिखाना, पीठ ठोंकना, बार-बार छाती पीटना, खाक हो जाना, बाजी मार लेना, खिलवाड़ करना, खैर मनाना, अम त घोलना, आनन-फानन में गायब होना, नाम सार्थक होना, नेत्र पथराना आदि मुहावरों का प्रयोग करके भाषा को सुसज्जित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। **डॉ० बसन्त बंसल** के शब्दों में यूं कहा जा सकता है-"अनेक भाषाओं के शब्दों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा में चुस्तता आ गई है। वास्तव में नागार्जुन ने सरल, स्पष्ट एवं आम जनता की शैली में अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति की है जो कि शुद्ध साहित्यिक एवं प्रांजल है।"

डॉ० जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की भाषा का मूल्यांकन करते हुए लिखा है-"छायावादी और प्रयोगवादी कविता जहाँ अर्थ को खोलती कम, छिपाती अधिक थी, वहाँ नागार्जुन की कविता अर्थ को खोलती अधिक है। उन्होंने कविता को स्पष्टता का दर्शन दिया। उनकी कविता का भाषिक तेवर समकालीन कविता के भाषिक तेवर का एक विशिष्ट रूप है। कवि ने आम जीवन से बिम्बों, प्रतीकों, मुहावरों और शब्दों को लेकर घोलकर भाषा को जीवन्त और सहज बनाने की कोशिश की है जो युग के लिए प्रासंगिक है। उन्होंने उस भाषा को महत्त्व दिया जो जीवन में सहायक हो, क्योंकि उनके सामने समस्या यह है कि कविता आम आदमी तक कैसे पहुँचाई जाये। इसलिए उन्होंने जनकांक्षाओं को उन्हीं के मुहावरों, कविताओं और शब्दों में व्यक्त करते हुए भाषा को एक नया तेवर दिया।" नागार्जुन के काव्य सौंदर्य की अनेक विशेषताएँ हैं-

1. **लाक्षीणिकताः** काव्य की भाषा में लाक्षणिक प्रयोग भाषा को और भी मार्मिक चिताकर्षक एवं मनोरंजक बना देता है। क्योंकि इस प्रकार के प्रयोग से उक्ति वैचित्र्य की स ष्टि होती है। दूसरी ओर इससे अभिव्यंजना में गहनता एवं सजीवता भी आती है-

   (i) अपने हाथों से झोकों यों अपनी ही आँखों में धूल।

   (ii) भले भले मुँह उगल रहे हैं चीन विरोधी आग।

   (iii) असमय हरियाली का पारावार।

   (iv) बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के।

2. **अलंकारः** यद्यपि नागार्जुन ने स्वयं अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है अपितु वे तो स्वतः ही आ गए हैं। इन अलंकारों में अनुप्रास, मानवीकरण वीप्सा, उत्प्रेक्षा, रूपक, द ष्टान्त, असंगति आदि प्रमुख हैं। कुछ के उदाहरण देखिए-

   (i) **अनुप्रासः**

      a. भारी भरकम डाल की।

      b. पीती रही पैट्रोल।

      c. बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।

   (ii) **मानवीकरणः** वह फटी-फटी आँखों से टुकुर-टुकुर ताकता रहता है सारा दिन सारी रात।

   (iii) **रूपकः** "हजार बाहों वाली शिशि विषकन्या उतरी साँसों मे प्रलय की वन्या।"

   (iv) **द ष्टान्तः** काँटों पर सोचा है कैसे नागफनी पर गिरागिट जैसे।

3. **छन्द योजनाः डॉ० हरदयाल** के अनुसार-"आधुनिक काल में इस छन्द (बरवै छन्द) का सबसे अधिक प्रयोग नागार्जुन ने किया है। किंतु उन्होंने इस छन्द के साथ अत्यानुप्रास को लेकर कहीं-कहीं छूट भी ली है और उसे पदान्तर प्रवाही बना दिया है।"

   इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन से बरवै छन्द का तो प्रयोग किया ही साथ ही अन्य छंदों का भी प्रयोग किया है। इनकी कविता दोनों प्रकार की है। अर्थात् छन्दबद्ध और छंदमुक्त। परम्परागत छन्द रूपों के प्रयोग में उनका मात्रा या वर्ण गणना के प्रति विशेष आग्रह नही है क्योंकि वे छंदामुक्ति आंदोलन के कट्टर समर्थक हैं।

   दोहा छन्द का उदाहरण देखिए-

   "जाली ठूँठ पर बैठकर, गई कोकिला कूक
   बाल न बाँका कर सकी, शासन की बंदूक।"

   सरसी छन्द का उदाहरण उनकी 'अकाल और उसके बाद' कविता से दिया जा सकता है-

   "कई दिनों तक लगी भीत पर, छिपकलियों की गश्त
   कई दिनों चूहों की भी, हालात रही शिकस्त।"

   इसी प्रकार उन्होंने मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया है। उन्होंने अष्टपदी, एकादशपदी, द्वादशपदी, चतुर्दशपदी, पंचदशपदी, षोडशपदी, सप्तदशपदी, अष्टदशपदी कविताएँ भी रची हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वे कुशल छन्द शिल्पी हैं और पुराने छन्दों के कुशल प्रयोक्ता भी हैं।

प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन जी एक मात्र कवि हैं जिन्होंने 'आँसू छन्द' का प्रयोग किया है।

"ग्रीष्मान्त घनो की करूणा
बरसी थी आज सवेरे
यों तो आवारा बादल
कल लगा रहे थे फेरे।"

डॉ० जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की छन्द-योजना का विवेचन-विश्लेषण करते हुए लिखा है-"छन्दों की द ष्टि से नागार्जुन के काव्य में वैविध्य है जो समकालीन कविता की मुख्य विशेषता रही है। नागार्जुन ने परम्परागत, शास्त्रीय, नये और नवनिर्मित छन्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। यद्यपि नागार्जुन ने अपनी कविताओं का विभाजन छन्द के आधार पर नहीं किया है और न छन्द सम्बन्धी लम्बी-चौड़ी भूमिकाएँ दी हैं, किन्तु उनकी छन्द-बहुज्ञता प्रशंस्य है।"

4. **प्रतीक योजनाः** कवि अपनी भावाभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। कवि ने भी ऐसा ही किया है। उन्होंने अपने काव्य में ऐतिहासिक, पौराणिक, प्राकृतिक, साम्प्रदायिकता तथा नवनिर्मित प्रतीकों का प्रयोग किया है।

(i) गीध-हिंसक, अत्याचारी, शोषक, साम्राज्यवादी नेता।

(ii) बंदर बापू के शिष्य, अनुयायी गांधीवादी नेता।

(iii) अवसरवादी, अत्याचार प्रशासकों के लिए प्रतीक-

'जयन्ती अशोक के सिंहों पर बेशर्म उल्लुओं की जमात।

(iv) दूब-दलित, पीड़ित जनता

(v) बछड़ा-भोली जनता।

डॉ० जगन्नाथ पंडित ने नागार्जुन की प्रतीक योजना के बारे में लिखा है-"प्रतीकों की द ष्टि से उन्होंने इनके सफल प्रयोग किये हैं। इन्होंने प्रतीकों में नयी अर्थवत्ता भरने की कोशिश की हैं जिनमें रूढ़ियों और मूल तत्वों से लड़ने की क्षमता है। आधुनिक कवियों में जहाँ **केदारनाथ अग्रवाल** ने मनोवैज्ञानिक और यौन प्रतीकों के अधिक प्रयोग किये हैं, अज्ञेय के अनेक प्रतीक भी इन्हीं के समानान्तर हैं। वहाँ नागार्जुन ने समाज परिचित और लोकजीवन से ही प्रतीकों को उठाया है, जिनके पीछे इतिहास, पुराण और जनसामान्य के परिचय का पुष्ट आधार मौजूद है।"

5. **बिम्ब योजनाः** यद्यपि नागार्जुन ने अपने काव्य में सायास बिम्बों का प्रयोग नहीं किया, परन्तु वे अनायास ही वहाँ उपस्थित हो गए हैं। इनमें ऐन्द्रिय, वस्तुपरक, भावात्मक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के बिम्ब द ष्टिगोचर होते हैं। बिम्बों के प्रयोग से काव्य की सम्प्रेषणीयता द्विगुणित हो जाती है। बिम्ब काव्य में सहजसवेंध और भास्वर आकृतिखड़ी कर देते हें। **विश्वम्भर नाथ उपाध्याय** ने 'नागार्जुन की कविता में बिम्ब योजना का कारण नागार्जुन की शास्त्र और लोक से सिद्धहस्तता को माना है। उनकी कविताओं में गतिशील बिम्बों के अनेक रूप दिखाई देते हैं। उनकी कविता 'फिसल रही चाँदनी' में चाँदनी का गतिशील बिम्ब है-

"पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर
नाच रही, कूद रही, उछल रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी।

चाक्षुष बिंब का एक सुन्दर उदाहरण अबलोकनीय है जो हमारी संवेदनशीलता एंव करूणा को जगाता है और वर्ग वैषम्य का उद्घाटन करता है-

"फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल के कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भभार से अलस शिथिल है अंग-अंग
मुँह पर उसकी मट मैली आभा
छप्पर पर बैठी है बिल्ली।"

इसी प्रकार स्थित बिम्ब का भी एक उदाहरण अवलोकनीय है-

"चौराहे के उस नुक्कड़ पर
काँटों का बिस्तरा बिछाकर सोया साधु दाढ़ी वाला
लोग तमाश देख रहे हैं।
काँटों पर सोया है कैसे
नागफनी पर गिरगिट जैसे।"

आस्वाघ बिम्ब का उदाहरण-

"अबकी मैंने जी भर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
बहुत दिनों के बाद।"

घ्राण बिम्ब का उदाहरण-

"अब की मैने जी भर सूँघे
मौलासिरी के ढेर-ढेर से ताजे टटके फूल।"

स्पर्श बिम्ब का उदाहरण-

"बहुत दिनों के बाद
अबकी मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चन्दनवर्णी धूल।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि की कविताओं में लगभग सभी प्रकार के बिम्ब उपलब्ध होते हैं। **श्री विष्णु प्रभाकर** के शब्दों में हम यूं कह सकते हैं- "नागार्जुन अनगढ़ अटपटी और अर्थहीन लगने वाली सहज, सरल भाषा में बिम्ब रचना करके ऐसे भाव अंकित कर जाते हैं जो न चौंकाते हैं और न उनमें कोई विशेष चमत्कार दिखाई देता है।"

6. **शैली**: नागार्जुन की कविताओं में उद्‌बोधन शैली, आव तिशेली, प्रश्नशेली, नाटकीय शैली और व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। उद्‌बोधन शैली द्वारा कवि युवा वर्ग को सम्बोधित करता है-

"मत चुओ आँसू सरीखे, बर्फ जैसे गलों।
संकटों की आग में फौलाद जेसे तुम गलों।"

'चंदू मैंने सपना देखा' में आव्ति शैली का प्रयोग किया है। 'भस्मासुर' में नाटकीय शैली तथा 'अकाल और उसके बाद' मे आव ति शेली का प्रयोग है। 'परसों था जंगल का राजा कल था धायल शेर' में पुराने कांग्रेस कर्मियों पर प्रतीकशैली में कटु व्यंग्य किया गया है।

डॉ० नामवर सिंह ने नागार्जुन के काव्य सौष्ठव पर विवेचन-विश्लेषण करते हुए लिखा है-"नागार्जुन की गिनती न तो प्रयोगशील कवियों के संदर्भ में होती है, न कोई कविता के प्रसंग में, फिर भी कविता के रूप सम्बन्धी जितने प्रयोग अकेले नागार्जुन ने किए हैं, उतने शायद ही किसी ने किए हों। कविता की उठान तो कोई नागार्जुन से सीखे और नाटकीयता में तो वे जैसे लाजवाब ही हैं। जैसी सिद्धि छन्दों में, वैसा ही अधिकार वेछन्द या मुक्तछन्द की कविता पर। उनके बात करने के हजार ढंग है। और भाषा में भी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृत की संस्कारी पदावली तक इतने स्तर हैं कि कोई भी अभिभूत हो सकता है। तुलसीदास और निराला के बाद की कविता में हिन्दी भाषा की विविधता और सम द्धि का ऐसा सर्जनात्मक संयोग नागार्जुन में ही दिखाई पड़ता है।XXXX इस बात में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि तुलसीदास के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं जिनकी कविता की पहुँच किसानों की चौपाल से लेकर काव्य रसिकों को गोष्ठी तक है।"

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त कहा जा सकता है कि कवि ने आम बोलचाल के शब्दों के साथ-साथ मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है। तत्सम्, तद्‌भव, देशज, विदेशी आदि प्रकार के शब्द नागार्जुन के काव्य में उपलब्ध होते हैं। नए-नए प्रतीक, नए-नए छन्द एवं अलंकारों के संयोग से भाषा में निखार आ गया है। बरवै जैसे परम्परागत छन्द को जीवित रखने

में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। **डॉ० नामवर सिंह** के शब्दों में-"प्रयोगवादियों ने तो प्रयोग का नारा भर दिया था, वस्तुतः अकेले नागार्जुन ने कविता के रूप विधान में जितने प्रयोग किए हैं, सारे प्रयोगवादी मिलकर भी उसका दशमांस कर दिखाने मे असमर्थ साबित हुए हैं। कविता में वाचिक परम्परा का गुणगान करने वाले और हैं, जबकि नागार्जुन से यह वाचिक परम्परा पुनर्जीवित हुई है बेहतर रूप में।"

नागार्जुन ने भाव और शिल्प दोनों द ष्टियों से नवीन प्रयोग किए हैं। उन्होंने प्रतीकों में नई अर्थवता भरने की कोशिश की है जिनमे रूढ़ियों और म त तत्वों से लड़ने की क्षमता है। **डॉ० विजय बहादुर सिंह** के शब्दों में कहा जा सकता है-"नागार्जुन का काव्य संगीत, वैविध्यपूर्ण, उतार-चढ़ाव से जुड़ा होने के कारण आकर्षक और रोमांचकारी है। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के कानों को सहलाने वाली कला उसमें है। उसमें चंचलता, फुर्ति, कल्लोल और प्रसरणशीलता है।"

भाग 'ग' - लघुत्तरी प्रश्न

प्रश्न 1. नागार्जुन की प्रणय भावना को अभिव्यक्त कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन की कुछ कविताओं मे प्रणय की भावना अत्यन्त गहनता एवं तीव्रता के साथ व्यक्त हुई है। प्रणय में अपनी प्रेयसी के प्रति सुकुमार भावों का अजस्र स्त्रोत तो बह रहा है परन्तु न तो यहाँ उच्छ खलता है, न छिछलापन है और न मर्यादा का उल्लंघन हुआ है, अपितु, ग हस्थ-जीवन की कोमल क्रान्ति भावनाओं के आवरण में पुनीत दाम्पत्य भावों की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ विरह की अपनी पवित्रता एवं उज्ज्वलता में स्वस्थ प्रणय का संदेशवाहक बनकर आया है। इसलिए कवि पुकार उठा है–

''तुम नहीं हो पास, मैं तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल सुनने के लिए
एक की ही दस अंगुलियाँ नहीं है काफी कदाचित्
रेशमी परित प्तियों का जाल बुनने के लिए।''

ऐसे ही संयोग की बेला में कवि उसी भाव-भूमि पर अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों को त प्त करने के लिए जी भरकर गंध-रूप, शब्द और स्पर्श का आस्वादन करता है–

''बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द स्पर्श सब साथ-साथ इस भू-पर।''

नागार्जुन की कविताओं में प्रेम के निश्छल, सात्विक, दिव्य और संयत रूप के भी दर्शन होते हैं। उन्होंने प्रेम के अलौकिक, अशरीरी और पवित्र प्रेम का चित्रण किया है। वे पत्नी के समक्ष अपना दोष स्वीकारते हैं–

''मार्जना कर दोष मेरे। बहुत कुछ अविवाहित किया है
बहुत कुछ अनुचित किया है। क्षमा करदे मुदित मनसे
क्योंकि तू सर्वहारा है।''

'प्रत्यावर्तन' दाम्पत्य प्रेम की रचना है और 'इसलिए तू याद आए' में कवि अपनी प्रियतमा को प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकारता है। 'यह तुम थी' में कवि नारी को बुढ़ापे की प्रेरक और जीवनदायिनी शक्ति स्वीकारता है। नवीन ढंग से व्याख्या करने वाली यह कविता नारी को उदात्त धरातल पर स्थापित करती है। डॉ० शिव कुमार मिश्र के अनुसार–

''उनके यहाँ प्रेम महज स्त्री-पुरुषों के राग ही को अंतिम संस्कार नहीं रह गया है, वरन् उससे आगे वात्सल्य अंचल, देश-प्रेम के जन, देश की धरती और मनुष्य मात्र तक सीमित है। नागार्जुन की दाम्पत्य प्रेम की ये कविताएँ नहीं है, कवि एक व हतर परिवेश से पूरी आत्मीयता से जुड़ा हुआ है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने उज्ज्वल, पुनीत एवं विशुद्ध प्रणय भावना का निरुपण करके स्वस्थ, स्वाभाविक एवं सजीव प्रणय का चित्रण अत्यन्त मार्मिकता मनोरंजनकता एवं कलात्मकता के साथ अंकित किया है।

प्रश्न 2. नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के अनूठे चित्रण हैं, विवेचन कीजिए।

उत्तर : डॉ० नामवर सिंह का कहना है कि–''नागार्जुन के काव्य संसार का एक बहुत बड़ा भाग अनूठे प्रकृति-चित्रों से सजा है, जिनसे कवि की गहरी ऐन्द्रियता और सूक्ष्म सौंदर्य-द ष्टि का एहसास होता है। वर्षा और बादलों पर इतनी अधिक कविताएँ निराला के बाद नागार्जुन ने ही लिखी है।''

कविवर नागार्जुन ने भारत, श्रीलंका, तिब्बत, बर्मा आदि अनेक स्थानों पर भ्रमण किया है और वहाँ की प्रकृति-सुंदरी की अद्‌भुत छटा को अत्यन्त निकट जाकर निहारा है। इतना ही नहीं, उन्होंने ग्राम, जनपद एवं हिमालय की तराई में भ्रमण करते हुए प्रकृति की अनिंध शोभा को खुली आँखों से देखा है। इसी कारण आपकी कविताओं में प्रकृति की सजीव एवं सुरम्य झांकियाँ अंकित हुई हैं—जो आपके प्रकृति प्रेम की द्योतक है। जैसे बसन्त श्री की अद्‌भुत झांकी देखिए—

''व द्ध वनस्पतियों ठठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुसकाया।''

इसी प्रकार शिशिर की भयंकर शीत का वर्णन करते हुए कवि ने विशिष्ट ऋतु को विषकन्या के रूप में देखा है,

''दरक गए केलों के पात
लेते ही करवट
तेजाब की फुहारें
छिड़कने लगा सूरज
हजारों बाहों वाली शिशिर विषकन्या
उतरी लेकर सांसों में प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होठों के प्राणशोधी चुम्बन
तन-मन पर लेप गए ज्वालामय चंदन।''

नागार्जुन को उमड़ते-घुमड़ते तथा कजरारे बादल अत्यन्त प्रिय हैं। इसीलिए उन्होंने बादलों पर निराला के बाद सबसे अधिक कविताएँ लिखी हैं यथा—'बादल को घिरते देखा है', मेघ बजे, घन-कुरंग, बादल भिगो गए रातों रात आदि कविताओं में कवि ने बादल के विविध रूपों को सुंदर और मार्मिक चित्र उतारने का स्तुत्य प्रयास किया है। बादल किसान का शुभचिंतक व कल्याणकारी है—

''मेघ, तुम्हारी दया कि रातों-रात हो गई नई पुरानी दूब
जीवनदाता। अपने को तुम खूब उडेलो।''

कविवर नागार्जुन की प्रकृति योजना के बारे में डॉ० प्रभाकर माचवे का कहना है—''प्रकृति उनके लिए अपने अधूरे सपनों का नीड़ कभी नहीं रही। वहाँ पलायन कर इस धरती के दुःख दर्द को भूल जाने की बात उन्होंने कभी अपने मन में नहीं ठानी। इसीलिए चाहे प्राकृतिक द श्य हो या प्राकृतिक विषयों पर मानवीकरण का आरोप हो, सर्वत्र वे अपने आस-पास के पूरे जीवन जगत की विसंगतियों और विद्रुप का निवारण नहीं ढूंढ पाए हैं।''

कवि ने अपनी अनेक कविताओं में प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूप के साथ-साथ प्रकृति का प्रयोग प्रतीकों एवं अलंकारों के लिए भी हुआ है और प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उसके सचेतन रूप के चित्र भी अत्यंत कलात्मकता एवं सजीवता के साथ अंकित हुए हैं। प्रकृति के इन सभी चित्रणों में कवि प्रकृति प्रेम बादलों की तरह घुमड़ रहा है।

प्रश्न 3. नागार्जुन की सामाजिक विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन ने अपनी रचनाओं के कल्पना की ऊँची उड़ान न भर कर यथार्थ के कटु-कठोर धरातल का ही चित्रण किया है। उन्होंने अपने युग में उत्पन्न सभी हलचलों, समस्याओं एवं परिस्थितियों का अध्ययन बड़ी गहनता एवं तीव्रता के साथ किया है। वह जानता है कि किस तरह भारत का दलित वर्ग अभावों की चक्की

मे पिस रहा है, किस तरह भारत का किसान विविध प्रकार की कठिनाइयों से जूझ रहा है, किस तरह यहाँ का मजदूर शोषण का शिकार बन रहा है, किस तरह मध्यवर्ग विविध समस्याओं में उलझकर व्यग्र एवं बैचेन बना रहता है, किस तरह निम्न वर्ग श्रमवत होकर भी भरपेट भोजन प्राप्त नहीं कर पाता और पग-पग पर ठुकराया जाता है एवं किस तरह उच्च वर्ग एवं विलास के पालने में झुलता हुआ ऐशो आराम का जीवन बिता रहा है, दूसरों की कमाई खा रहा है कम काम और अधिक आराम में लीन है और जनता को पीड़ा, कष्ट एवं व्यथा देने में ही आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार वैयक्तिक अभावों एवं सामाजिक कष्टों से पीड़ित एवं संत्रस्त जन-जीवन कवि के हृदय को बेचैन कर देता है। वह देखता है कि आज किस तरह मुखौटा लगाकर लोग जनता के साथ व्यवहार कर रहे हैं, तो वह पुकार उठता है—

''जमींदार है, साहूकार हैं, बनिया हैं, व्यापारी हैं,
अंदर-अंदर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं।
सब घुस आए भरा पड़ा है भारतमाता का मंदिर,
एक बार जो फिसले अंगुआ फिसल रहे हैं फिर-फिर-फिर।

कवि ने सामाजिक वैषम्य के बढ़ते हुए सुरसा के से मुख को भी देखा है और इसी कारण वह सामाजिक नेताओं को दोषी ठहरता हुआ पुकार उठता है—

''खादी ने मलमल से अपनी सांठ-गांठ कर डाली है,
बिड़ला, टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।''

इतना ही नहीं, इसी वैषम्य से दुःखी होकर और अभावों से उकताकर कवि मजदूर राज्य स्थापित करने के लिए जनता का आह्वान करता है, जिससे वर्ग संघर्ष समाप्त हो जाएगा। किसान मजदूर की जमीन के मालिक बन जाएंगे तथा अभाव और बेकारी का सफाया हो जाएगा—

''सेह और जमींदारों को नहीं मिलेगी एक छदाम,
खेत, खान, दुकान मिलें सरकार करेंगी दखल तमाम
खेत-मजदूरों और किसानों में जमीन बँट जाएगी,
नहीं किस कामकर के सिर पर बेकारी मंडराएगी।
नौकरशाही सुफला के गाएंगे, गीत प्रसन्न किसान मजूर

इस प्रकार कवि ने मजदूर, किसान, शिक्षक, व्यापारी, नेता, कवि, सेठ, जमींदार आदि सभी पर तीक्ष्ण द ष्ट डालते हुए समाज के यथार्थ जीवन का जीता-जागता चित्र अंकित किया है और सामाजिक विषमता, असमानता, अभाव, बेकार, यातना, कष्ट-पीड़ा, वेदना, आदि का चित्रण करते हुए सच्चे जन-कवि की भूमिका का अत्यन्त सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।

प्रश्न 4. कविवर नागार्जुन का काव्य राष्ट्र-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर : कविवर नागार्जुन की कविताओं में राष्ट्रीय भावना का भी मार्मिक और सुंदर चित्रण हुआ है। उनके मन-प्राणों में राष्ट्र प्रेम की धुन बहुत गहरे तक समायी हुई है। उनकी स्वीकृति है कि प्रत्येक की पहली वफादारी अपने देश के प्रति होती है। कवि स्वतन्त्र भारत में दीन-हीन और दयनीय-विकृत दशा देखकर लिखने के लिए आबद्ध है।

''सताती तुमको न क्या अपने वतन की थी
हाय! नाहक देश माता के द गों से बह रहा है नीर।''

कवि के हृदय में सामाजिक वैषम्य एवं अभावों की कटुता के रहते हुए भी अपने देश, अपने समाज, अपने राष्ट्र, अपने देशवासी, अपने नदी-वन-पर्वत, अपने खेत-खलिहान, अपने गाँव-नगर तथा अपने सभी प्राणियों एवं

सभी पदार्थों से गहरा अनुराग है। वह अपनी मात भूमि का अनन्य पुजारी है, अपने राष्ट्र का अनन्य भक्त है और अपनी जनता का अनन्य सेवक है। इसीलिए वह पुकार उठा है—

''खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
इसीलिए तो हमको इसका चप्पा-चप्पा प्यारा है।''

अपनी मात भूमि के चप्पे-चप्पे से प्यार करने वालो यह कवि इसीलिए शस्य श्यामला भूमि के प्रति असीम प्रेम, अटूट श्रद्धा एवं अनुपम अनुराग व्यक्त करता हुआ यहाँ तक कहता है—

''देवि, तुम्हारी वसुन्धरा का विता-विता रत्नाकर है।''

मात भूमि के अनन्य भक्त एवं राष्ट्र के कर्णधार महात्मा गाँधी की हत्या का समाचार पाते ही कवि का हृदय विदीर्ण हो जाता है, उसका रोम-रोम रोने लगता है और वह अपने उद्‌गार इस तरह व्यक्त करता है—

''तीन-तीन गोलियां, बाप रे, मुँह से कितना खून बहा है,
महा मौन यह पिता तुम्हारा, रह-रह मुझे कुरेद रहा है,
इसे न कोई कविता समझे यह तो पित वियोग व्यथा है।''

इतना ही नहीं, जब चीनी आक्रमणकारियों ने भारत की पुनीत वसुन्धरा को हड़पने के लिए अपने फौलादी हाथ इधर बढ़ाने शुरू किए, तब स्वदेश-प्रेम में डूबा हुआ कवि पुकार उठा है—

''आज तो मैं दुश्मन हूँ तुम्हारा
पुत्र हूँ भारतमाता का
और कुछ नहीं हिन्दुस्तानी हूँ महज
प्राणों से भी प्यारे हैं मुझे अपने लोग
प्राणों से भी प्यारी है मुझे अपनी भूमि।''

इतना ही नहीं, कवि ने 'राष्ट्र के अपमान हमने धो दिए हैं।' नामक कविता में जातीय एकता की ओर संकेत करते हुए स्वदेश-प्रेम इस प्रकार व्यक्त किया है—

''फ्रन्ट पर सौ जातियाँ बिल्कुल डटी हैं
राष्ट्र के अपमान हमने धो दिए हैं।''
चंद्रभागा, व्यास सतलज के तटों पर
एकता के बीज हमने बो दिए हैं।''

इस प्रकार कवि ने भारतीय जनता के दुःखदर्द भारतीय राजनीतिक गतिवधियों, भारतीय एकता, भारतीय जन-जीवन की हलचल आदि का वर्णन करते हुए अपने स्वदेशानुसार की अभिव्यक्ति की है।

प्रश्न 5. नागार्जुन के काव्य में सामाजिक व धार्मिक आडम्बरों का विरोध किया गया है। युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में जांति-पाति का बड़ा विरोध किया है, क्योंकि जाति-पाति समाज के विकास में बाधक तत्त्व हैं और उन्होंने ब्राह्मण वर्ग के हिन्दू धर्म में वर्चस्व का विरोध किया और वर्ण-व्यवस्था के पोषक तुलसीदास की कड़ी निंदा की। वे गुण को महत्त्व प्रदान करते हैं जाति तथा वंश परम्परा को नहीं। उन्होंने स्पष्ट किया है कि जातिवाद की भूल-भूलैया में पड़कर देश भटक गया है जैसे—'जातिवाद की भूल महक है।' रूढ़ रीति-रिवाज और जातिवाद ने देश के विकास को दीमक की तरह चाट लिया है—

''इस प्रजातन्त्र पर है सवार
नव रूढ़िवाद नव जातिवाद
प्रभुओं के नव-नव गोत्र ढले।''

इसी प्रकार कवि ने अपनी रचनाओं में भारतीय जनता के अंधविश्वास, पाखण्ड, बाह्य आडम्बर तथा साम्प्रदायिकता के दूषित रूप पर प्रकाश डाला है। 'चौराहे के उस नुक्कड़ पर' में छल-छद्मी-पाखण्डी साधुओं की पोल खोली है क्योंकि वे कांटों की शय्या पर सोकर भोली-भाली जनता की श्रद्धा के पात्र बनते हैं—

''श्रद्धा का तिकड़म से नाता जय है
भिक्षुक जय है दाता।''

कवि भारतीय जनता के भोलेपन, निरीहता, मूर्खता और अंधविश्वासों का पर्दाफाश करके उसकी खिल्ली उड़ाता है। 'हो बंभोला' में शिव पर कटु व्यंग्य किया गया है कि वह महादेव होकर भी चौरासी लाख योनियों की दुर्दशा की चिंता नहीं करता। इसी प्रकार 'तीनों बंदर बापू के' में गाँधीवादी नेता वेद् उपनिषद की ओट में अनैतिक-अन्याय, अत्याचार पूर्ण कार्य करते हैं। कवि ने साम्प्रदायिकता के दूषित और भयावह रूप पर भी प्रकाश डाला है—

''पेटी में पिस्तोल संभाले अमन चैन के बोल अधर पर,
अब भी बाइबिल बाँट रहे हैं
गौरी चमड़ी वाले बंदर।

कविवर नागार्जुन ने महात्मा कबीर की भांति भारतीय संस्कृति व उसके कर्मकाण्डी रूप पर कटु कटाक्ष किए हैं। 'त प्यंताम-त प्यतांम' में कवि कर्मकाण्डी, ढोंगी व पोंगा पोथियों वाले ब्राह्मणों की खिल्ली उड़ाता है क्योंकि वे भोली-भाली जनता को बहकाकर धन लूटते हैं और दिवंगत आत्मा हेतु तर्पण का विधान करते हैं। धार्मिक पाखण्डों व आडम्बरों पर उसके व्यंग्य अत्यन्त सटीक व पैने हैं—

''जपते रहो निसिदिन माला बनकर
मूठ की मूठ जलाओ अगरबत्तियाँ एक ही बैठक में
गुलाब गुलदाउदी, चम्पा चमेली की।
अधखिली कलियों से सजाओं गुलदस्ते।''

इस प्रकार कवि ने राजनीतिक नेताओं, धार्मिक ठेकेदारों, स्वार्थियों, अवसरवादियों, भ्रष्टाचारियों, अत्याचारियों, पाखण्डी साधुओं आदि पर व्यंग्य करते हुए न केवल अपना तीव्र आक्रोश एवं क्षोभ व्यक्त किया है, अपितु अपनी विद्रोही एवं क्रांतिकारी भावनाओं का भी परिचय दिया है।

भाग 'घ' - अतिलघुत्तरी प्रश्न

प्रश्न 1. नागार्जुन की राजनैतिक विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कविवर नागार्जुन ने राजनीति के क्षेत्र में गम्भीरता से मनन-चिंतक किया है और अनेक विषयों पर निर्भीक व निष्पक्ष होकर अपनी मौलिक विचारधारा प्रस्तुत की है। कवि को राजनीति का गहरा ज्ञान है। 'स्वदेशी शासक' में कवि स्वतन्त्रता प्राप्ति पर ही प्रश्नचिह्न लगाता है क्योंकि शहीदों ने प्राणोत्सर्ग करके जो भारत माता को मुक्त कराया, उस का फल चुनींदा व्यक्ति ही भोग रहे हैं। वास्तव में वे उन कवियों में से हैं जिन्होंने भारतीय जनता के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्षों में भाग लिया है। शायद ही ऐसा कोई दूसरा कवि हो जिसने राजनीतिक घटनाओं, चरित्रों पर इतनी बड़ी संख्या में कविताएँ लिखी हों। सच्चे अर्थों में नागार्जुन जी दीन-दलित, पीड़ित व शोषित जनता के कट्टर समर्थक व वकील हैं। जहाँ-जहाँ वे अन्याय अत्याचार देखते हैं वहाँ-वहाँ उसका डटकर कठोर शब्दों में विरोध किया है।

प्रश्न 2. 'अकाल और उसके बाद' कविता की मूल संवेदना को अभिव्यक्त कीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता में अकाल के बाद की विभीषिका का चित्रण करते हैं। अकाल पड़ने के उपरान्त घरों में चूल्हा बन्द हो जाता है, चक्की भी उदास होकर रोती हुई प्रतीत होने लगती है, जानवर भी इधर-उधर मारे-मारे घूमते हैं, चूहों तक को कुछ खाने नहीं मिलता। जब अकाल समाप्त हो जाता है तो पुनः घर में अनाज आता है, घर के सभी सदस्यों के चेहरों पर खुशी न त्य करने लगती है, चक्की पुनः चलने लगती है, चूल्हा जलने लग जाता है। पक्षियों को भी चाहत की सांस मिलती है। कवि बताना चाहता है कि गाँव की दयनीय स्थिति होने पर लोग किस प्रकार अपनी जीवन-प्रक्रिया को जीने पर मजबूर हो जाते हैं।

प्रश्न 2. नागार्जुन मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक हैं परन्तु कट्टर मार्क्सवादी नहीं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कवि दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षित के पक्षधर हैं। वे अपनी संवेदना, सहानुभूति इन्हीं को सहजता से समर्पित करते हैं। उन्होंने स्वयं जीवन भर अभाव, कष्ट व पीड़ा को भोगा है इसीलिए वे जीवन्तपर्यन्त संघर्षरत रहे। 1962 में चीनी आक्रमण के बाद नागार्जुन जी ने मार्क्सवादी पार्टी की सदस्यता को तिलांजलि दे दी। वास्तव में वे किसी एकमत, वाद या पार्टी के साथ बंधे हुए नहीं हैं बल्कि वे तो दलित, पीड़ित, शोषित (सर्वहारा वर्ग) वर्ग के वकील हैं, पक्षधर हैं। कहने का अभिप्राय है कि उनकी कविताओं में दलितों के प्रति सहानुभूति है अतः उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक कहा जा सकता है परन्तु कट्टर समर्थक नहीं।

प्रश्न 4. ''नागार्जुन के काव्य-संसार का एक बहुत बड़ा भाग अनूठे प्रकृति-चित्रों से सजा हुआ है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन प्रकृति के चतुर चितेरे हैं। उन्हें प्रकृति से अनन्य प्रेम है। उन्हें प्रकृति की प्रत्येक ऋतु से प्रेम है। जब आकाश से वर्षा होती है उस समय किसानों के चेहरों पर आई खुशी को भी वे व्यक्त रहते हैं। हिमालय पर्वत उन्हें सदैव अपनी और आकर्षित करता रहता है। जहाँ एक ओर उन्हें बसन्त, शरद और हेमन्त ऋतु सुहाती है वहीं दूसरी ओर उन्हें ग्रीष्म, शिशिर और पावस ऋतु भी अत्यन्त रूचिकर है। वे प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूपों का चित्रण करते हैं। डॉ० शिव कुमार मिश्र कहते हैं–''प्रकृति नागार्जुन की रचनाओं में अपने सारे रंग-रूपों में, सारी मुद्राओं में, सारे संभार के साथ आई हैं। प्रकृति के प्रति इतना उन्मुक्त और खुला हुआ अनुराग, उसके प्रति इतनी ललक भरी आत्मीयता, उसके आकाशीय और धरती से जुड़े वैभव की इतनी सूक्ष्म और गहरी पकड़, उसका इतना बारीक और संवेदनामय पर्यवेक्षण आधुनिक कविता में कम ही मिलेगा।''

प्रश्न 5. *'आओ रानी हम ढांगे पालकी'* कविता का उद्देश्य क्या है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : प्रस्तुत कविता में कवि नागार्जुन ने नेहरू की विदेश नीति पर कटु कटाक्ष किए हैं। इंग्लैण्ड साम्राज्यवादी देश है और स्वतन्त्र भारत के कंधे पर भी गुलामी की पालकी लदी हुई है। कवि नहीं चाहते कि देश स्वतन्त्र होने के पश्चात् भी अन्य देशों की गुलामी करें। उनके स्वागत में बैण्ड बजाए, खुशिया मनाए। ब्रिटेन की महारानी के स्वागत में करबद्ध (हाथ जोड़कर) होकर खड़ा हो जाए। भारत की जनता एवं सैनिक उन्हें सलामी दें। कवि का मानना है कि स्वतन्त्र होने के बाद भी साम्राज्यवादी देशों से गठबंधन अनुचित है। एक स्वाभिमानी राष्ट्र कदापि यह स्वीकार नहीं कर पायेगा कि उसके देशवासी दूसरे देश की महारानी के चरणों में सलाम करें। हमारे भारत रत्न, पद्म भूषण उपाधि धारक उनका आदर-सत्कार करें। इसलिए कवि स्पष्ट शब्दों में नेहरू की विदेश नीति का विरोध करते हैं और कहते हैं—

> **"रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की।**
> **यही हुई है राय जवाहर लाल की।**
> **आओ रानी हम ढाएंगे पालकी।"**

प्रश्न 6. नागार्जुन की वैयक्तिक अनुभूति को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन की कविताओं में भी वैयक्तिक अनुभूति का प्राधान्य द ष्टिगोचर होता है। कवि वैसे पर्याप्त बहिर्मुखी रहा है, फिर भी काव्य में वह अन्तर्मुखी ही अधिक दिखाई देता है। इसी कारण काव्य में वैयक्तिक अभावों, वैयक्तिक कष्टों एवं वैयक्तिक संघर्षों की झांकियाँ स्थान-स्थान पर मिल जाती हैं। कवि का विद्रोही स्वर जीवन की कठोरता एवं विषमता से परिपूर्ण होकर कहीं-कहीं तीव्र आक्रोश एवं उग्र क्रोध से कटु हो गया है और वह जीवन-संघर्ष में अकेला ही जूझता हुआ द ष्टिगोचर होता है। इसी कारण वह लिखता है—

> **"पैदा हुआ था मै**
> **दीन-हीन अपठित किसी कृषक-कुल में**
> **आ रहा हूँ पीता अभाव की आसव ठेठ बचपन से**
> **कवि मैं हूँ दबी हुई दूब का।"**

प्रश्न 7. नागार्जुन का काव्य समसामयिकता की भावना से मुक्त है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन ने बड़ी लग्न एवं तीव्रता के साथ समसामायिक घटनाओं का अध्ययन करके उन पर कटु तथा तीक्ष्ण व्यंग्य लिखे हैं। कवि की द ष्टि से न धार्मिक घटनाएँ बची हैं और न आर्थिक, न राष्ट्रीय घटनाएँ बची हैं और न अन्तर्राष्ट्रीय। कवि ने अपने समय की गतिविधियों पर तीक्ष्ण द ष्टि डालते हुए अपने काव्य का स जन किया है। जिस समय देश में स्थान-स्थान पर पुलिस और छात्रों का संघर्ष चल रहा था और पुलिस देश की तरुण शक्ति का संहार कर रही थी, उसका भी कवि ने वर्णन किया है। भ्रष्टाचारी, अवसरवादी नेताओं पर भी व्यंग्यों की बौछार की है। 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' कहने वालों की भी कटु आलोचना की है।

प्रश्न 8. नागार्जुन की भाषा पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर : नागार्जुन ने अत्यन्त लोकप्रिय खड़ी बोली का प्रयोग किया है, जिसमें अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, बंगला आदि के अतिरिक्त मैथिली भाषा के ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। इसी कारण इनकी कविता में कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ तत्सम पदावली का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में है। अंग्रेजी के शब्दों में—मिनिस्टर, कोर्ट, पोस्टर, ट्रेन आदि। उर्दू के शब्दों में—हमसफर, सलाम, जद्दोजहद आदि। बंगला के शब्दों में—डाकचों खोकोन, नक्शाल, छेड़िए पड़ूक दिके-दिके आदि शब्द अधिक प्रचलित हैं।

प्रश्न 9. *'तीन दिन तीन रात'* कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर : इस कविता में कवि नागार्जुन ने बताया है कि 1968 में पूर्णिया शहर में जब छात्रों ने उपद्रव मचाया, तब पूरे शहर तीन दिन तीन रात के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया। उस समय जन-जन परेशान थ। प्राचार्य, जिलाधीश,

एस०पी० सभी परेशान थे। गतिशीलता मिट सी गई थी, बसें बंद थी। आवागमन रूक गया था। अनेक शराबी व्यक्ति शराब के नशे में लीन रहने लगे थे। अदालतें बंद थीं। अधिकारी लोग भी परेशान थे कि किस प्रकार इस समस्या का समाधान किया जाए। छात्र समुदाय पूरे जोश से अपना उपद्रव जारी रखे हुए थे, बसें जलाई जा रही थीं। इस प्रकार तीन दिन तीन रात तक संपूर्ण वातावरण एक प्रकार से अव्यवस्थित सा हो गया था। जीवन रूक सा गया था।

प्रश्न 10. कविवर नागार्जुन की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन ने विविध प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग करके समसामयिक नेताओं, अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियों आदि पर करारे व्यंग्य किए हैं। इन प्रतीकों में अर्थवहन करने की अपूर्व क्षमता है, भाव सम्प्रेणीयता का विलक्षण गुण है और कथन को रोचक एवं मनोरंजक बनाने का पूर्ण सामर्थ्य है। जैसे पुराने कांग्रेसियों के लिए प्रतीकों का प्रयोग देखिए—'परसों था जंगल का राजा कल था घायल बूढ़ा शेर।' ऐसे ही शासन में रहकर अत्याचार करने वाले प्रशासकों के लिए प्रतीकों का प्रयोग देखिए—'जगती अशोक के सिंहों पर, बेशर्म उल्लुओं की जमात।''

प्रश्न 11. कवि की कविताएँ वर्ग वैषम्य का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन भारतीय समाज में व्याप्त वर्ग-विषमता का उद्घाटन करने से भी नहीं चूकता, क्योंकि वह एक तरफ तो पूँजीपतियों की अट्टालिकाओं पर सतरंगी झालें सुशोभित होती हैं और दूसरी ओर शिशुओं को कंधे पर बैठाए पोटल में सत्तू बांधे मजदूरिन की करुण दशा के दयनीय चित्र वर्ग-वैषम्य का उद्घाटन करते हैं। 'पैसा चहक रहा है' कविता में कवि पूँजीपतियों के ठाट-बाट, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन और उनके वैभव का प्रदर्शन करता है। कवि सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी ह्रदयस्थ ममता का सहानुभूति उडेलता है। कवि चाहता है—

''ढहे विषमता के प्राचीर। पूँछे कोटि नयनों के नीर
मिटे मनजता के सब रोग। सहज सुखी हो सारे लोग

प्रश्न 12. 'नागार्जुन के काल में नारी के प्रति सहज सहानुभूति अभिव्यक्त हुई है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन के काव्य में नारी के प्रति एक नवीन द ष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है। समाज में वह भी शोषित-पीड़ित मानवता का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। कवि नारी के भोग्या जैसे घ णित रूप के प्रति विद्रोह करता है और उसे पुरुष के समकक्ष मानकर समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाता है। उन्होने पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, बेमेल-विवाह का विरोध किया है तथा विधवा-विवाह समर्थन किया है। कविवर नागार्जुन को नारी का परिपूर्णत उसके मात त्व में द टिगोचर होती है। मात त्व नारी का चरमोत्कर्ष है। वे स्वीकारते हैं कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं तथा एक के बिना दूसरे का अस्तित्त्व नहीं है। डॉ० जगन्नाथ पंडित का कहना है—''कुत्सित सैक्स की भावनाओं की जगह एक स्वरूप, प्रगतिशील भावना उनके काव्य में व्यक्त हुई है।

प्रश्न 13. नागार्जुन की यथार्थ भावना को संक्षेप में लिखिए।

उत्तर : नागार्जुन की यह विशेषता है कि चाहे पौराणिक संदर्भ हो या ऐतिहासिक या फिर दाम्पत्य प्रेम हो या वात्सल्य—सब में उनकी द ष्टि मूलतः यथार्थ पर है। कहीं की किलोल कल्पनाओं में वे विचरण नहीं करते। प्रकृति का वर्णन हो या राजनीति का, समाज का वर्णन हो या राजनेताओं का सभी में यथार्थवादी द ष्टिकोण अपना कर अपने भावों के यथार्थवादी अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉ० विश्वम्भर मानव का कहना है—''गाँव की पंका, धूली, दरिद्रता में पनपी, मानवता, शिशुओं की भोली मुस्कान को देखकर इनका ह्रदय कहीं गहरे अनुराग से भर उठता है, कहीं एकदम द्रवित हो जाता है, कहीं विस्मय में डूब जाता है।''

प्रश्न 14. 'नागार्जुन और कबीर के काव्य में समानता है। यह कहाँ तक सत्य है तर्क सहित उत्तर दीजिए।

उत्तर : नागार्जुन को आधुनिक कबीर भी कहा जाता है। वे कबीर के समान ही जीवन के संघर्षों को भोगने वाले हैं।

उन्होंने कबीर की ही तरह जाति-पांति, ऊँच-नीच, बाह्य आडम्बरों का विरोध किया है। समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों, प्रथाओं का भी उन्होंने डटकर मुकाबला किया है। उन्होंने कबीर की भांति ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती दी और जातीयता तथा अस्प श्यता के उग्रह होते प्रश्न को बार-बार उठाया। वे धर्म के कर्मकाण्डी स्वरूप और धार्मिक संस्थानों के कुकृत्यों का भी पर्दाफाश करते हैं और जाति और धर्म की जड़ता पर कटु प्रहार करते हैं। डॉ० जगन्नाथ पंडित का कहना है—''नागार्जुन ने कबीर की तरह दलित जनता के भीतर स्वाभिमान को जगाने की कोशिश की है, उसमें आत्मबल की प्रतिष्ठा कर उसके अभिशप्त पौरुष को विद्रोह की वाणी दी है।''

प्रश्न 15. ''हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखा या नागार्जुन ने।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन ने व्यंग्यात्मक शैली में समाज के प्रत्येक वर्ग पर कटाक्ष किया है। उन्होंने न तो राजनेताओं को अछूता छोड़ा, व पूंजीपतियों को, न अधिकारियों को, न पाखण्डी, ढोंगी व रंगे सियार प्रगतिशील कवियों को अपितु उन्होंने सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को अपनी व्यंग्य की तीखी मार से इस तरह मारा है कि वह उफ! तक न कर सका। नागार्जुन के व्यंग्य एक तरफ सत्ता की शोषणव त्ति और तानाशाही प्रव त्तियों को बेनकाब करते हैं, वही नेताओं की दलबदल नीति और उनकी जन विमुखता के घातक पारिणामों को सामने लाता है। अंत में डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं—''भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिंदादिली पैदा की, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि है।

प्रश्न 16. नागार्जुन की प्रेम भावना को अभिव्यक्त कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन की कविताओं में प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति हुई है। वे सात्विक, दिव्य और संयत प्रेम में विश्वास करते हैं। प्रत्यावर्तन दाम्पत्य प्रेम की रचना है और 'इसीलिए तू याद आए' में कवि अपनी प्रियतमा को प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकारता है। डॉ० शिवकुमार मिश्र के अनुसार—''उनके यहाँ प्रेम महज स्त्री-पुरुषों के राग ही का अंतिम संस्कार नहीं रह गया है, वरन् उससे आगे वात्सल्य अंचल, देश-प्रेम के जन, देश की धरती और मनुष्य मात्र तक सीमित है। नागार्जुन की दाम्पत्य की ये कविताएँ रोमानी मानसिकता की कविताएँ नहीं हैं, कवि एक ब हत्तर परिवेश से पूरी आत्मीयता से जुड़ा हुआ है।''

प्रश्न 17. कवि नागार्जुन ने अपने काव्य के द्वारा अनेक नेताओं के लिए श्रद्धांजलियाँ दी है। विवेचन कीजिए।

उत्तर : कवि ने देश के महान् नेताओं, साहित्यकारों एवं महापुरुषों के प्रति श्रद्धाबनत होकर उनका गुण-गान किया है और उनके प्रति अत्यन्त भाव-भीनी श्रद्धांजलियाँ भी अपने काव्य द्वारा अर्पित की है। उनके काव्य में विश्वंध बाबू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महाप्राण निराला, रामव क्ष बेनीपुरी, कांगो के महान देश-भक्त एवं क्रांतिकारी नेता लुमुम्बा, लेनिन, राजकमल चौधरी आदि पर भी श्रद्धांजलि के रूप में काव्य रचना करके कवि ने अपने सहज एवं सरल उद्‌गारों को अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। विश्वंधु बापू के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कवि ने लिखा है—

''पर न आज रोके रूक पार्ती
आँखें मेरी भर-भर कर आर्ती
रोता हूँ, लिखता जाता हूँ
कवि को बेकाबू पाता हूँ
कैसे इस कोरे कागज पर पूरी पीर उतार सकूँगा।''

प्रश्न 18. नागार्जुन के बिम्ब विधान को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : कवि नागार्जुन का बिम्ब विधान भी अत्यन्त प्रौढ़ एवं प्रांजल है। उन्होंने ऐन्द्रिय, वस्तुपरक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। जैसे एन्द्रिय बिम्बों के अन्तर्गत द श्य बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्प श्य बिम्ब, घ्रातव्य बिम्ब और आस्वाद्य बिम्ब आदि प्रमुख हैं। द श्य बिम्ब या उदाहरण देखिए—

''छोटे-छोटे मोती जैसे अतिशय शीतल वारिकणों को
मान सरोवर के उस स्वर्णिम कमों पर गिरते देखा है।''

प्रश्न 19. नागार्जुन के काव्य का छंद विधान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन ने छन्दबद्ध और मुक्त छन्द में अनेक प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। उनकी छन्दबद्ध तुकान्त कविताएँ गेय हैं, जिनमें लय, तान, एवं स्वर का बंधान क्रमपूर्वक मिलता है। उन्होंने अनेक ऐसी कविताएँ लिखी हैं जो अतुकान्त हैं। उन्होंने कतिमय तुकान्त कविताएँ ऐसी भी लिखी हैं, जिनमें मात्राओं की क्रमबद्धता नहीं है और इसी कारण कोई पंक्ति छोटी या बड़ी हो जाती है, परन्तु तुक बराबर मिलती रहती है। तुकान्त का उदाहरण देखिए—

''छतरी वाला जाल छोड़कर
अरे, हवाई डाल छोड़कर
एक बंदरिया कूदी धम से
बोली तुमसे, बोली हमसे।''

प्रश्न 20. नागार्जुन के काव्य संसार की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन के अपने काव्य में समसामयिक, युग-जीवन, देश-विदेश को उल्लेखनीय घटनाओं, समकालीन, राजनीतिक गतिविधियों, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण आदि का पर्दाफाश किया है, सामाजिक विषमता एवं आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार आदि को बढ़ावा देने वाले राजनीतिज्ञों एवं सरकारी कर्मचारियों की खूब खबर ली है। शोषित एवं दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए क्रांति के लिए सचेत एवं सावधान किया है और नक्सलवादियों एवं शिव सेना के सैनिकों पर करारे व्यंग्य किए हैं। हृदय पर चोट करने वाले एवं कर्तव्य का स्मरण दिलाने वाले व्यंग्य लिखकर न केवल नागार्जुन ने अपने विद्रोही स्वभाव का आक्रोश एवं क्षोभ व्यक्त किया है, अपितु ऐसा मार्मिक एवं मनोरंजक व्यंग्य काव्य लिखा है, जो अपनी सहजता, नवीनता एवं मौलिकता के कारण अनुपम एवं अद्वितीय है, कवि की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों ही उत्कृष्ट एवं उच्चकोटि की है।''

प्रश्न 21. ''नागार्जुन कविता में आव तियाँ बहुत करते हैं।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन के काव्य में उद्‌बोधनशैली, नाटकीय शैली, प्रश्न शैली, आव ति शैली, वर्णनात्मक शैली और व्यंग्यात्मक शैली प्रयोग हुई है। 'भस्मांकुर' में नाटकीय शैली तथा 'अकाल और उसके बाद', 'चंदू मैंने सपना देखा', 'अन्न ब्रह्म की माया में' आव त्ति शैली प्रयुक्त हुई है। इस प्रकार नागार्जुन के काव्य में अनेक शैलियाँ व्यक्त हुई है। व्यंग्यात्मक शैली के साथ-साथ प्रतीक शैली में कटु व्यंग्य किए गए हैं।

प्रश्न 22. 'मास्टर' कविता में कवि नागार्जुन का क्या अभिप्राय अभिव्यक्त हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : 'मास्टर' कविता में कवि वर्ग वैषम्य चित्रित करते हैं। कवि ने एक ओर शिक्षक की दयनीय एवं शोचनीय अवस्था का चित्रांकन किया है तथा साथ ही वर्ग विषमता का भी उद्‌घाटन किया है। विद्यालय का जर्जरित भवन और कई महीनों से शिक्षक को वेतन न मिलना शिक्षा-विभाग की बदहाली का जीवन्त प्रमाण है। मास्टर दुखरन मन्त्री महोदय से मिलने के लिए चार कोस पैदल चलकर आते हैं परन्तु मन्त्री जी बिना बोले ही अंदर तम्बू में आराम करने के लिए चले जाते हैं। मंत्री महोदय पहरेदारी की सुरक्षा में रह रहा है, परन्तु शिक्षा की ओर उनका ध्यान नहीं है। पाठशाला में न कमरे हैं और अन्य सुविधाएँ परन्तु इस तरफ उनका ध्यान नहीं है। न ही मास्टर की बातों की ओर ध्यान दिया जाता है। बेचारा मास्टर शांत ही रह जाता है। कवि ने राजनीति के चंगुल में पिस रही शिक्षा की दयनीय स्थिति एवं मास्टर वर्ग की असहाय अवस्था का चित्रण किया है।

प्रश्न 23. नागार्जुन ने कविता के रूप विधान में नवीन प्रयोग किए हैं? समीक्षा कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन ने अपनी कविताओं के विषय अपने चारों ओर के वातावरण से चुने हैं। चाहे वह दलित वर्ग हो या फिर उच्च वर्ग, चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या प्रकृति चित्रण, चाहे वह छन्द का क्षेत्र या फिर भाषा का सभी में नवीन प्रयोग किए हैं और सफल भी हुए हैं। डॉ० नामवर सिंह ने उनके प्रयोगों के विषय में ठीक ही कहा है—''प्रयोगवादियों ने तो प्रयोग का नारा भर दिया था, वस्तुतः अकेले नागार्जुन ने कविता के रूप विधान में जितने प्रयोग किए हैं, सारे प्रयोगवादी मिलकर भी उसका दशमांस कर दिखने में असमर्थ साबित हुए हैं। कविता में वाचिक परम्परा का गुणगान करने वाले और हैं, जबकि नागार्जुन से यह वाचिक परम्परा पुनःजीर्वित हुई बेहतर रूप में।''

प्रश्न 24. नागार्जुन की अलंकार योजना को अभिव्यक्त कीजिए।

उत्तर : नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में भारतीय पाश्चात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। लेकिन अलंकार उनके काव्य में साधन बनाकर आएँ हैं न कि साध्य बनकर। उन्होंने अपने काव्य में अनुप्रास, वीप्सा, उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, विरोधाभास, रूपक, असंगति, द ष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इतना होने पर भी वीप्सा अलंकार के प्रति उनमें सबसे अधिक झुकाव है। पाश्चात्य अलंकारों में उन्हें मानवीकरण और ध्वन्यर्थ व्यंजना अपेक्षाकृत अधिक प्रिय है।

प्रश्न 25. नागार्जुन ने अपनी कविताओं के किन-किन समस्याओं को उजागर किया है। बताइए।

उत्तर : नागार्जुन ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की ज्वलंत समस्याओं को वाणी प्रदान की है। वे पर्दा-प्रथा, कृत्रिम संकोच लज्जा, नारी के प्रति व्यवहार, राजनेताओं के छल-कपट पूर्ण व्यवहार, दलितों की दयनीय स्थिति, शोषकों की शोषक व त्ति, किसानों की दयनीय स्थिति, बाल-विवाह, अनमेला विवाह आदि अनेक समस्याओं को चित्रित करते हैं। कवि का विशेष आकर्षण नारी की दयनीय स्थिति की ओर हुआ है। वे कहते हैं—''नारी रोमांस के लिए नहीं है और न वह वासना पूर्ति का उपकरण है बल्कि वह सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए है।'